

श्री
धर्मसिंधु

याचें
मराठी भाषांतर

(अनुष्ठाने व व्रतादिकांतील संकल्प मंत्र वगैरे सहित)

हें पुस्तक

रावजी हरि आठवले

पुरुषोत्तम गोपाळ शेट

याणीं

अह्मीबाग येथें

‘सत्यसदन’ छापखान्यांत

छापून प्रसिद्ध केलें.

चेत्र कृष्ण ९ शुक्रवार शके १८००

संवत् १९३४ सन १८७८

किंमत ४ रुपये.

M. PRATHI

प्रस्तावना.

आपला ~~धर्म~~ आचार यांचें यथार्थ ज्ञान होण्यास धर्मशास्त्राची माहिती असणें अवश्य आहे. परंतु ते ग्रंथ संकृत भाषेंत असून अर्वाचीन काळां संकृत भाषेचा अभ्यास लोकांत कमी झाल्यामुळे त्या ग्रंथांची महाराष्ट्र भाषेंत भाषांतरें केल्यावांचून लोकांस त्यांचा व्हावा तसा उपयोग होत नाहीं हें जाणून धर्मसंबंधी सर्व गोष्टींचें ज्यांत विवेचन केलें आहे अशा धर्मसिंधु नामक ग्रंथाचें भाषांतर करवून तें देशबन्धवांस सादर केलें आहे.

भाषांतराची पद्धति—हें जरी भाषांतर आहे तथापि अनुष्ठानादि प्रसंगी ज्या ज्या ठिकाणी संकल्प, मंत्र, आग व अन्य उच्चार करावयाचे त्या त्या ठिकाणी ते संकृतांतच हटले पाहिजेत यास्तव त्यांचें भाषांतर न करितां ते “ ” असी खुणा करून त्यांमध्ये लिहिले आहेत. तसेंच ग्रंथकारानें आपल्या ग्रंथांत जीं अन्य ग्रंथांतील वचने घेतलीं आहेत त्यांचें भाषांतराहि वरील प्रकारचे खुणांतच लिहिलें आहे; आणि कित्येक दुर्बोधशब्दांपुढें () असी खुणा करून त्यांत त्या शब्दांचा स्वार्थ सांगितला आहे. असी एकंतर भाषांतराची पद्धति आहे.

रा० ह० आ०

सूचना—हा माझा भाषांतर करण्याचा प्रथम प्रयत्नच असल्यामुळे न्यूनधिकाकडे लक्ष न देतां विद्वानांनीं यांतील दोष टाकून गुण ग्रहण करावे असी माझी त्यांत प्रार्थना आहे.

भाषांतर कर्ता.

अनुक्रमणिका.

| भाग पाहेला. | | विषय. | पृष्ठ | विषय | पृष्ठ |
|-----------------------------------|-------|-----------------------------------|-------|-------------------------------|-------|
| विषय | पृष्ठ | कर्मविशेषे करून निर्णय | ९ | एकादशी व्रताविषयी | |
| मंगलाचरण १ | | एकभक्तादि निर्णय १० | | नियम २९ | |
| वृत्तशास्त्रादि दिनांतकाल . . . २ | | स्वतंत्र व्रतांचा निर्णय . . . १० | | नियमभंगाचा दोष . . . २४ | |
| संक्रातिपूर्वकालनिर्णय . . . ३ | | नक्तव्रतांचा निर्णय . . . १० | | द्वादशीचा निर्णय . . . २४ | |
| संक्रातीचीं दाने ३ | | व्रतांची परिभाषा . . . ११ | | आठ महाद्वादशीचा नि० २४ | |
| संक्रातीस विष्णुपदादि संज्ञा ४ | | भोजनाच्या निषेध दिवशीं | | त्रयोदशीचा निर्णय . . . २४ | |
| संक्रातीमध्ये वर्ज्यावर्ज्य काल ४ | | व्रताची पारणा आली असतां | | यामध्ये प्रदोषादिकांचा | |
| मलमासाचा निर्णय ५ | | निर्णय १३ | | निर्णय २५ | |
| अधिकमासाचे उदाहरण . . . ५ | | प्रतिपदादि तिथिनिर्णय १४ | | चतुर्दशीचा नि० २५ | |
| क्षयमासाचे उदाहरण . . . ५ | | द्वितीयेचा निर्णय १५ | | गौर्णिमा व अमावास्या यां- | |
| अधिकमास व क्षयमास यांचे | | तृतीयेचा नि० १५ | | वा नि० २५ | |
| ठायीं वर्ज्यावर्ज्य ६ | | चतुर्थीचा नि० १६ | | तोमवती अमावास्येचा नि. २६ | |
| मलमासांतिल वर्ज्य कर्म . . ७ | | पंचमीचा नि० १६ | | शुष्टिकालाचा नि० . . . २६ | |
| सिंहस्थ गुह असतां वर्ज्य | | षष्ठीचा नि० १६ | | पूर्वसंबंधि निर्णय . . . २६ | |
| कर्म ८ | | सप्तमीचा नि० १६ | | सर्वांना बोध व्हावा या- | |
| सिंहस्थ गुल्चा अपवाद | | अष्टमीचा नि० १७ | | करितां याचे आणखी भेद २७ | |
| सिंहस्थ गुह असतां गोदा- | | नवमीचा नि० १७ | | पौर्णिमेचा विशेष निर्णय २८ | |
| वरींचे स्नानमहात्म्य" . . . ८ | | दशमीचा नि० १७ | | अमावास्ये विषयीं कात्या- | |
| तिथींच्या निर्णयाविषयीं | | एकादशीचा नि० १७ | | यनांचा विशेष नि० . . २९ | |
| समान्य परिभाषा ८ | | स्यामध्ये व्रतदिवसाचा नि० १८ | | सामवेदींच्या इष्टीचा नि० ३० | |
| व्रतादिकांविषयीं तिथि कशी | | एकादशीचे भेद १९ | | पिंडपितृयज्ञकाल निर्णय ३१ | |
| असावी याचा निर्णय . . . ९ | | स्मार्तांचा एकादशीचा | | इष्टिलोप व पिंडपितृयज्ञ लोप | |
| | | निर्णय १९ | | ज्ञाना असतां प्रायश्चित्त ३२ | |
| | | एकादशीचा वेध २१ | | श्राद्धा विषयीं अमावास्येच्या | |
| | | एकादशीव्रताचा प्रयोग २१ | | निर्णय ३२ | |

| विषय | पृष्ठ | भाग दुसरा. | विषय | पृष्ठ |
|----------------------------|-------|--------------------------|------------------------------|-------|
| इष्टि आणि स्थालीपाक | | विषय | रंभाव्रत | ५१ |
| यांचे आरंभाचा निर्णय | ३३ | मंगलाचरण | दशहराव्रत | ५८ |
| विकृतिकालनिर्णय .. | ३३ | चैत्रमास | याव्रताचा विधि | ५८ |
| पशुयागाचा काल .. | ३४ | तिथिनिर्णय | गंगास्तोत्र | ६० |
| चातुर्मास्यांचा काल .. | ३४ | मेषसंक्रांति | वटसावित्री व्रत .. | ६१ |
| काभ्येष्ट्याचा काल .. | ३५ | वर्षप्रतिपदा | आषाढमास | ६२ |
| नैमित्तिकेष्टीचा काल .. | ३५ | देवीनवरात्राचा आरंभ | दक्षिणायनसंज्ञककर्कसंक्रांति | ६२ |
| आधानाचा काल .. | ३५ | प्रपादान (पाणपोई) | श्रीरामरथोत्सव . . . | ६२ |
| ग्रहणाचा निर्णय .. | ३६ | उदकुंभदान | विष्णुशयनोत्सव ... | ६२ |
| ग्रहणातील रजस्वलेच्या | | दशावतारजयंत्या .. | चातुर्मास्य व्रताचा आरंभ | ६३ |
| नैमित्तिककन्याचा विचार | ३६ | हयव्रत | वै व्रत ग्रहण करण्याचा | |
| दानाविषयी पात्रापात्र | | दमनारोपण(दवणा वाहणे) | प्रयोग | ६३ |
| विचार | ३७ | रामनवमीचा निर्णय | चातुर्मास्यांतनिषिद्ध पदार्थ | ६४ |
| मंत्रोपदेशाचा प्रकार .. | ३७ | रामनवमी व्रताचा प्रयोग | काभ्यव्रते | ६५ |
| पुरश्चरणाचा विधि .. | ३८ | श्रीकृष्णाचा आंदोलनोत्सव | तप्तमुद्राधारण . . . | ६६ |
| ग्रहणाच्या वेधाचा विचार | ३९ | दमनोत्सवाचा प्रयोग . | वामनपूजा | ६६ |
| ग्रहण असतां नैमित्तिक | | अनंतपूजन व्रत . . . | शिवशयनोत्सव .. | ६६ |
| कर्माचा वि० | ४० | वैशाखस्नानारंभ | काकिलाव्रत | ६६ |
| आनिष्ट ग्रहणाची शांति व | | वारुणीयोग | संन्यासि यांच्या चातुर्मास्य | |
| विंबदान | ४० | वैशाखमास | स्थितीचा विधि .. | ६७ |
| मंगलकार्याविषयी वर्ज्य असे | | वृषभसंक्रांति | श्रावणमास | ६८ |
| ग्रहण संबंधी दिवस | ४१ | अक्षय्य तृतीया . . . | सिंहसंक्रांति | ६८ |
| समुद्रस्नानाचा विचार. | ४१ | उदकुंभदानाचा प्रकार | सोमवार व्रत | ६८ |
| कोणकोणत्या तिथि, नक्षत्रें | | परशुरामजयांति . . . | मंगलगौरीपूजन .. | ६८ |
| आणि वार यांचे ठिकाणी | | नासिंहजयंति | नागपंचमी | ६८ |
| कोणकोणते वर्ज्य पदार्थ | ४२ | वैशाखस्नानोद्घापन | पौवसांचा प्रयोग . . | ६९ |
| ग्रंथ करण्याचे प्रयोजन | | ज्येष्ठमास | उपाकर्माचा काल . | ७२ |
| बारे | ४२ | मिथुनसंक्रांति .. . | | |

| विषय | पृष्ठ | विषय | पृष्ठ | विषय | पृष्ठ |
|-------------------------------|-------|------------------------------|-------|----------------------------|-------|
| पञ्चवेदी यांचा उपाकर्मा | | देविनवरात्र | १०४ | बलिप्रतिपदा | १२८ |
| चाकाल | ७२ | नवरात्राचे गौणपक्ष | १०६ | गोवर्धनपूजा | १२९ |
| काण्व माध्यदिनादि-- | | घटस्थापना | १०६ | मार्गपालीबंधन | १३० |
| कांचा उ०का० .. | ७३ | नवरात्रारंभ प्रयोग | १०७ | भाऊजीन | १३० |
| सामवेदि यांचा उ०का० | ७३ | चंडीपाठाचा विधी | १०८ | गोपाष्टमी | १३१ |
| सर्वशाखा यांचा उ०का० | ७४ | कुमारीपूजेचा विधी | १०९ | भोष्मपंचकव्रत | १३१ |
| रक्षाबंधन | ७६ | उपांगल्लिताव्रत | ११० | मंत्रदीक्षाग्रहण | १३१ |
| जन्माष्टमी | ७७ | सरस्वतीपूजन | ११० | तुलसीकाष्ठमालाधारण | १३१ |
| पा व्रतांचाविधि | ८१ | पत्रिकापूजन | १११ | आंवळीचे मुळाचे ठापी | |
| पूजा शाल्यांतरचा विधि. | ८४ | महाष्टमी | १११ | देवपूजेचा विधि | १३३ |
| दर्भ कधी आणावे | ८५ | बलिदान | ११३ | प्रबोधोत्सव व तुलसी- | |
| भाद्रपदमास | ८५ | पारणेचा काल | ११४ | विवाह | १३४ |
| कन्या संक्रांति | ८५ | विजयादशमी | ११५ | वैकुंठचतुर्दशी | १३६ |
| हरितालिका व्रत | ८६ | कार्तिकस्नानारंभ | ११७ | चानुमास्थिव्रतसमाप्ति. | १३७ |
| गणेशचतुर्थी | ८६ | कार्तिक मासांत वर्ज्य | | त्रिपुरीपौर्णिमा | १३८ |
| ऋषिपंचमी | ८७ | पदार्थ | ११९ | मार्गशीर्षमास | १३९ |
| दुर्वापूजन व्रत | ८७ | व्रतसमाप्तीचे दिवशी | | धनुसंक्रांति | १३९ |
| श्रवणद्वादशीचे व्रत | ८८ | दाने | ११९ | नागपूजा | १३९ |
| या व्रताची पारणा | ९० | पुराणश्रवणाचा विधि | १२० | चंपाषष्ठी | १३९ |
| शामनजयंति | ९१ | कोजागरव्रत | १२१ | दत्तजयंति | १४० |
| अनंत व्रत | ९२ | आग्रयणाचा काल | १२२ | अष्टकाश्राद्ध | १४० |
| अग्रहस्तपूजन | ९२ | आग्रयणाचे गौण प्रकार | १२४ | सूर्यव्रत | १४१ |
| महालयाचा निर्णय | ९३ | करकचतुर्थी | १२४ | पौषमास | १४१ |
| पक्षश्राद्ध | ९४ | गोवत्सद्वादशी | १२४ | मकरसंक्रांति | १४१ |
| गजछाया पर्वाणि | १०२ | नरकचतुर्दशी | १२५ | माघस्नान | १४३ |
| कपिलाषष्ठी | १०२ | लक्ष्मीपूजन | १२७ | माघस्नानाचा विधि | १४४ |
| कपिलाषष्ठीव्रताचा विधी | १०२ | कार्तिकमास | १२८ | पावदानप्रयोग | १४५ |
| आश्विन मास | १०४ | वृश्चिकसंक्रांति | १२८ | | |
| तुळ्यासंक्रांति | १०४ | | | | |

| विषय | पृष्ठ | विषय | पृष्ठ | विषय | पृष्ठ |
|---------------------------------|-------|----------------------------------|-------|--------------------------------|-------|
| माघमास | १४६ | औषधियुक्त उदकस्नान | १६० | प्रायश्चित्ताचा प्रयोग . . . | १८ |
| कुंभसंक्रांति | १४६ | नवग्रहांचीं दानें | १६१ | गोमयस्नान | १८ |
| तिलपात्रदान | १४६ | शनीव्रत | १६१ | मृत्तिकास्नान | १८ |
| वेणीदान | १४७ | ग्रंथ करण्याचें प्रयोजन | | उदकस्नान | १८ |
| जलसमाधि | १४७ | बगैरे प्रथम परिच्छेदा- | | पंचगव्यविधि | १८ |
| द्वीद्विराजव्रत | १४८ | प्रमाणेंच | १६२ | हरिवंशग्रंथश्रवण | १८ |
| वसंतपंचमी | १४८ | भाग तिसरा. | | दुसरे विधि | १८ |
| रघुसप्तमी | १४९ | (पूर्वाधि) | | दत्तक ग्राह्याग्राह्य विचार | १८ |
| भीष्माष्टमी | १४९ | मंगलाचरण | १६३ | ऋग्वेदी यांणीं दत्तक कसी | |
| मार्घीपौर्णिमा | १५० | गर्भाधानसंस्कार | १६३ | ध्यावा त्याचा प्रयोग | १९० |
| शिवरात्रिव्रत | १५० | प्रथमराजोदर्शनविधि | १६४ | यजुर्वेदी यांचा बोधायन- | |
| या व्रताची पारणा | १५१ | सार्वकालिक राजोदर्शन | १६४ | मतानें सांगतलेला- | |
| शिवरात्रिव्रतप्रयोग | १५१ | रजस्वलेच्या पहिल्या दि- | | प्रयोग | १९१ |
| शिवाची प्रहरपूजा | १५३ | नसाचा निर्णय | १६६ | पुत्रकामेष्टि | १९२ |
| मृत्तिकाकालगूजा | १५४ | आनुराजस्वलाशुद्धि | १६६ | सोमंतोजयन संस्कार | १९४ |
| लिगविशेषानें पूजाकाल | १५५ | गर्भाधानाचा काल | १७० | गर्भिणीचे धर्म | १९६ |
| शिवनिर्माळ्यनिर्णय | १५६ | प्रथमऋतुगमन | १७० | गर्भिणीपतीचे धर्म | १९६ |
| काभ्युनमास | १५६ | नांदीश्राद्ध | १७२ | गर्भस्वावप्रतिबंध | १९७ |
| मीनसंक्रांति | १५६ | जीवित्युक्त नांदीश्राद्ध- | | वाळंत होण्याच्या घरांत | |
| घद्योव्रत | १५६ | कर्ता असल्यास निर्णय | १७४ | गर्भिणीचा प्रवेश | १९८ |
| होलिका | १५६ | नांदीश्राद्धांत पिढदान | १७५ | पुत्रावण संस्कार | १९८ |
| करुणागोर्धे मुख पुच्छ | १५७ | गर्भाधान संस्कार | १७६ | जातकर्मसंस्कार | २०० |
| होलिकापूजन | १५८ | भैरुनांति कर्तव्य विधि | १७७ | जन्मदापूजन | २०१ |
| वसंतराजोत्सव | १५९ | सेनातिप्रतिबंधनाशार्थ | | भाशौचांत कर्तव्याकर्त- | |
| दीन परिच्छेदांत राहि- | | नारायणबलि | १७७ | व्य निर्णय | २०१ |
| कोळी किरकोळ निर्णय | १५९ | नागबलीचा विधि | १७९ | वाळंतिणीची शुद्धि | २०३ |
| चंद्रवंगलादी ग्रहांचा | | रुद्धांचीं लक्षणें | १८१ | रुग्णचतुर्दशीचे ठायीं | |
| संक्रांतीपुण्यकाळ | १६० | रुद्धांचे प्रतिनिधि | १८१ | जन्म श्रान्यास शांति | २०४ |

अनुक्रमणीक

| विषय | पृष्ठ | विषय | पृष्ठ | विषय | पृष्ठ |
|------------------------------|-------|--------------------------|-------|----------------------------|-------|
| सिनीवाली आभि दर्श यात | | तीन पुत्र होऊन चवथी | | मौजीची नक्षत्रे. | २३६ |
| जन्म ह्याव्यास शांति .. | २०५ | कन्या किंवा ३ कन्या | | लग्नाविषयी ग्रहचल. | २३८ |
| दशदानप्रमाण .. | २०६ | होऊन ४ या पुत्र ह्या- | | मौजीस पदार्थ. | २३८ |
| दर्शशांति | २०६ | व्यास फळ व शांति. २१९ | | यज्ञोपवीत कसे करावे. | २३८ |
| नक्षत्रशांति | २०७ | दंतांसहित जन्म शाले अ | | मेखला, दंड इ० . | २४० |
| शांतीच्या होमाचा मुख्य- | | सतां शांति. | २१९ | मौजीचे अंतर्गत पदार्थ. २४० | |
| काल | २०८ | विपरीत उत्पत्ति शाली | | उपसंग्रहणविधि. . | २४१ |
| आभिप्रचक्र | २०८ | असतां शांति .. | २२० | आशीर्वाद. | २४१ |
| अभुक्ते मूळनक्षत्री जन्म | | नामकरणसंस्कार . | २२१ | विनायकशांति. | २४१ |
| शाले असतां शांति .. | २०९ | प्रयोगाचा विशेष | २२३ | ग्रहमख. | २४२ |
| अश्लेषाशांति .. | २११ | स्त्रियांचे नामकर्म | २२४ | वृहस्पतीची शांति . | २४३ |
| जन्मकाली ज्येठा नक्षत्र | | मुलास पाळण्यांत घालणे | २२४ | मौजी इत्यादिक संस्कारांचे | |
| असतां फळ | २१२ | दुग्धपाशन विधि .. | २२४ | ठायीं संकल्प. | २४४ |
| ज्येष्ठानक्षत्रशांति .. | २१२ | जलपूजा | २२४ | शांतीचा प्रयोग. | २४६ |
| चित्रादि नक्षत्रचरण- | | मुलास सूर्यावलोकनकरणे | २२५ | पेधाजननादिकार्ये. . | २४७ |
| फळ | २१३ | मुलास भूमीवर ठेवणे. | २२६ | ब्रह्मचारी याचे व्रत. . | २४७ |
| व्यतीपात, वैधृति, संक्रांति, | | अन्ननाशनसंस्कार. | २२६ | देवदेवक उठवणे. | २४७ |
| यांची फळे व शांति .. | २१३ | यानंतर कर्तव्य विधि. | २२६ | कुंडालकनिर्णय. . | २४८ |
| वैधृतिशांतीचा विशेष | २१४ | मुलाचे कान टांचणे. | २२६ | पुनरुपनयन. | २४९ |
| एकनक्षत्रावर जन्माचे फळ | | रक्षाविधि. | २२६ | याचा २१ व ३१ प्रकार | २५१ |
| व शांति | २१४ | वाट देवस. ... | २२६ | प्रायश्चित्तार्थ पुनरुपनयन | २५२ |
| ग्रहणावर जन्माचे फळ | | चौलसंस्कार. | २२८ | यजुर्वेदी यांचे पुनरुप | |
| व शांति | २१५ | विद्यारंभकाल. | २३० | नयन. | २५३ |
| नक्षत्रगंडांतशांति .. | २१६ | मौजीन ह्यालेखाचे धर्म | २३० | ब्रह्मचारी याचे धर्म. . | २५४ |
| सिपिंगंडान व लग्नगंडांत | २१६ | उपनयनसंस्कार (मौजी) | २३१ | ब्रह्मवर्धलोपप्रायश्चित्त. | २५४ |
| दिनक्षयशांति .. | २१७ | मौजीचाकाल. | २३१ | वेदाध्ययनारंभ. | २५५ |
| विषयघटीची शांति .. | २१७ | मौजीविषयी तिथि. . | २३३ | अनव्याय. | २५५ |
| मुळेजन्मनाची शांति. | २१८ | त्रैभित्तिक अनव्याय. | २३६ | | |

| विषय | पृष्ठ | विषय | पृष्ठ | विषय | पृष्ठ |
|------------------------------|-------|-----------------------------------|-------|---------------------------------|-------|
| अव्ययन कार्याचे धर्म | २५६ | सगोत्री इत्यादिकांशीं विवाह | | मृतभार्यात्वदोष परि- | |
| ज्ञते | २५६ | ज्ञान्यास प्रायाश्चित्त | २८१ | हार | २९९ |
| सोढमुंज | २५६ | विवाहान्यान्यनिषेध | २८२ | मृतपुत्रत्वदोष परिहार | २९९ |
| समावर्तनाचा काल | २५८ | ज्ञानिषेधांचे अपवाद | २८३ | कन्यादानप्रशांस्त्र | ३०० |
| समावर्तनाचा संकल्प | २५९ | प्रतिकूलाचा निर्णय | २८४ | वारदानप्रकार | ३०० |
| स्मृत्युक्तज्ञते | २६० | प्रतिकूलविषयीं विशेष | २८५ | विवाहदिनकृष्ण | ३०० |
| विवाह संस्कार | २६१ | श्रीपूजनानि शान्तीचा | | विवाह समयीं कर्तव्य | |
| प्रदाचे शत्रुभिषर | २६१ | विधि | २८६ | उच्चार | ३०१ |
| गणपैथी | २६२ | नाटोप्राद्धाचा अपकर्ष | २८७ | दत्तककन्येचा विवाह | ३०४ |
| राशीकूट | २६३ | विवाहापूर्वी कन्येला रजो- | | समांतपूजन | ३०५ |
| गाडी | २६३ | दर्शन ज्ञान्यास विधि | २९० | मधुपर्कविधि | ३०६ |
| छापिंठ्या निर्णय | २६३ | क्षयपक्षादिनिर्णय | २९० | लग्नादिस्थापनइ | ३०६ |
| याविषयीं उदाहरणे | २६४ | गुरुबलाचा निर्णय | २९१ | कन्यादानाची अंगभूत | |
| याविषयीं मते | २६७ | कन्याविवाहकाल | २९१ | दाने | ३०९ |
| गोत्रे आणी प्रवर | | विवाहाचे प्रकार | २९१ | अंतःपट धरणे | ३१० |
| यांचा निर्णय | २७१ | विवाहाविषयीं ज्येष्ठ कनिष्ठ- | | विवाहहोम | ३१० |
| आग्नीरुत्तम | २७४ | वाचा निर्णय | २९३ | गृहप्रवेशनीय होम | ३१० |
| भरद्वाज | २७५ | कन्यादाते यांचा अनुक्रम | २९३ | ऐरिणीदान | ३११ |
| केवल आगिरस | २७५ | विवाहाविषयीं मासादि | | वधूप्रवेश | ३१३ |
| अग्निगण | २७६ | निर्णय | २९४ | द्विरागमन | ३१३ |
| विश्वामित्र गण | २७७ | घातघ्न | २९५ | पुनर्विवाह | ३१४ |
| कश्यप गण | २७८ | लग्नाविषयीं ग्रहबल | २९६ | दोनअर्धींचा संसर्ग | ३१५ |
| वसिष्ठ गण | २७९ | वर्षग्रह | २९६ | दुसऱ्या विवाहाचा काल | ३१६ |
| अगस्त्य गण | २७९ | एकवीस महादोष | २९६ | अर्कविवाह | ३१६ |
| द्विगोत्र | २८० | गौरजं मुहूर्त | २९७ | आन्हिकविधि | ३१८ |
| आपले गोत्र माही नसल्या | | कन्यावैधव्यदोष परि- | | मूत्रपुरीषोत्सर्ग | ३१८ |
| चा निर्णय | २८१ | हार | २९८ | आचमन | ३१९ |

| विषय | पृष्ठ | विषय | पृष्ठ | विषय | पृष्ठ |
|---------------------------|-------|-----------------------------|-------|--------------------------|-------|
| आचमनार्ची निमित्तें | ३२० | अग्नी नष्ट झाल्यास | | तर्पणविधि | ३५३ |
| दंतदावन | ३२१ | कर्तव्य | ३३५ | कात्यायनाचा ब्रह्मयज्ञ | |
| स्नानविधि | ३२१ | होमद्रव्याचे दोष | ३३७ | विधि | ३५३ |
| ग्रहस्नान | ३२१ | अग्नीचा नाश करणारी | | पांचव्या भागाचें कृत्य | ३५५ |
| गौणस्नानें | ३२२ | निमित्तें | ३३९ | सायंप्रातर्वैश्वदेव | ३५६ |
| तिलकाचा विधि | ३२३ | स्त्रीप्रवासी असतां कर्तव्य | ३३९ | सायंकालीन वैश्वदेवाच्या | |
| भस्माचा त्रिपुंड्र | ३२३ | पत्नी मृत असतां कर्तव्य | ३४० | आहुती | ३५७ |
| संध्याकाल | ३२३ | अरणी खुवादि पात्रांची | | बलिहरण | ३५७ |
| ऋकूशाखी यांचा संध्या- | | लक्षणें | ३४१ | मनुष्यपक्ष | ३५८ |
| प्रयोग | ३२४ | कात्यायनांचे उपयोगी | | तैत्तिरीयशाखी यांचा | |
| मंत्राचमन | ३२४ | निर्णय | ३४१ | वैश्वदेव | ३५९ |
| गायत्रीमंत्राचा जप | ३२५ | बहुऋचकारिकोक्ति | ३४१ | देवयज्ञादिक ४ यज्ञ | ३६० |
| तैत्तिरीयशाखी यांचा | | निश्चदान | ३४३ | कात्यायनशाखी यांचा | |
| संध्याप्रयोग | ३२६ | दिनद्वितीयभागकृत्य | ३४३ | वैश्वदेव | ३६० |
| कात्यायनांचा संध्याप्रयोग | ३२७ | देवपूजेचा प्रयोग | ३४४ | भोजनादिकांचा सर्व साधारण | |
| औपासनहोम | ३२८ | दिनतृतीयभागकृत्य | ३४६ | निर्णय | ३६२ |
| आश्वलायनांचास्मार्तहोम | ३२९ | दिनचतुर्थभागकृत्य | ३४७ | भोजनोत्तर कृत्य | ३६६ |
| हिरण्यकेशीय यांचा | | तैत्तिरीयशाखी यांची | | दिनषष्ठ सप्तम भाग कृत्य | ३६६ |
| स्मार्तहोम | ३३० | माध्यान्हसंध्या | ३४८ | आधानाचा निर्णय | ३६८ |
| कात्यायनांचा स्मार्तहोम | ३३१ | कात्यायनशाखी यांची | | गूशांच्या संस्कारांचा | |
| होमार्ची द्रव्यें | ३३१ | माध्यान्हसंध्या | ३४८ | निर्णय | ३६९ |
| सप्तमहोम | ३३२ | ब्रह्मयज्ञविधि | ३४८ | विहिरी तलाव इत्यादिकांचा | |
| पक्षहोम | ३३२ | तर्पण | ३४९ | उत्सर्ग | ३७० |
| अग्निप्रसारोप | ३३३ | हिरण्यकेशीय यांचा | | जलोत्सर्गाचीं नक्षत्रें | ३७० |
| औपासनाभि नष्ट झाला | | ब्रह्मयज्ञ | ३५२ | वृक्षारोपण | ३७१ |
| असतां कर्तव्य | ३३४ | तर्पणाचा विधि | ३५२ | मूर्तिवतिष्ठा | ३७१ |
| यगापूर्वी अन्वाधान केलिला | | अपस्तंब इत्यादिकांचा | | पंचसूत्रीनिर्णय | ३७२ |

| विषय | पृष्ठ | विषय | पृष्ठ | विषय | पृष्ठ |
|----------------------------------|-------|--------------------------------|-------|-------------------------------|-------|
| दशाक्ष नृत्तसौ इत्यादिक | | शस्त्रे घटविषयास मुहूर्तः ३९६ | | पुर्तकमलाकारातील | |
| नवमासांचा संस्कार... ३७४ | | रोग उत्पन्न झाल्यास | | अश्वत्याचे उपनयन | |
| बापदेवोक दशाक्ष- | | नक्षत्रफलें ३९८ | | नाचा प्रयोग ... | ४०८ |
| धारणाचा संख्या... ३७५ | | नक्षत्रांचा शांतिप्रयोग... ३९९ | | पुत्रराहितानें वट, अंबा | |
| विष्णुइत्यादिकांचीं पंचा- | | सर्वरोगनाशकविधि ... ४०० | | इत्यादि वृक्षांस पुत्र मानून | |
| यत्नें मांडणें ... ३७६ | | औषधभक्षणास काल ... ४०० | | त्याचा प्रतिग्रह करण्या- | |
| केशवादि २४ मूर्तींची- | | अभ्यंगास निषिद्ध | | चा विधि ... ४०९ | |
| लक्षणें ३७६ | | काल ४०० | | सकल कर्मांची साधारण | |
| देवप्रतिष्ठेचा प्रयोग ... ३७७ | | गृहारंभास मुहूर्त .. ४०१ | | परिभाषा. ४१० | |
| प्रतिष्ठाकर्तव्यविधि ... ३७८ | | गृहप्रवेश ... ४०२ | | अग्नी कसा आणावा... ४११ | |
| स्यार्याची वगैरे... ३८३ | | द्रव्यसंपादन इत्या- | | कर्माविशेषानें अग्नीचीं | |
| पुनःप्रतिष्ठा ... ३८९ | | दिकाविषयां गमन | | नामें. ४११ | |
| भौक्षणाचा विधि .. ३८९ | | वारशूल ... ४०२ | | कर्माच्या अंगदेवता ४१२ | |
| बीजांद्वाराविधि - ३९० | | प्रयाणास लप्रशुद्धि | | कलियुगींकार्याकार्यनिर्णय ४१२ | |
| देवपूजे विषयी पुण्यें .. ३९१ | | प्रयाणां नियम ... ४०३ | | श्रीभागवतोक्त हरिपाद- | |
| स्निग्धपत्रे व पुण्ये कृती | | परस्थानाविषयी | | सेवन महात्म्य. . . ४१३ | |
| दिवसांनी शिळी होतात ३९३ | | देशमर्यादा ... ४०४ | | कलियुगांत निषिद्ध. . ४१४ | |
| तुळसीप्रहणविषयी | | गोचर प्रकार ... ४०४ | | स्वप्नांचा निर्णय. . ४१७ | |
| काल : ३९२ | | पक्षीपतन ४०४ | | अशुभफलस्वप्न. . . ४१७ | |
| विहित प्रतिषिद्ध पुण्यें ... ३९३ | | पक्षीतरठांची शांते | | नामृतावस्थेंतील अरिष्टें ४१८ | |
| विष्णूत प्रिय पुण्ये ३९३ | | घिरट; उखळइत्यादि | | विशेषें करून शुभफल | |
| शिवास प्रिय पुण्यें ... ३९३ | | अकस्मात् फुटण्यास | | प्रश्न ४१८ | |
| निषिद्ध पुण्ये ... ३९४ | | शांति ... ४०५ | | दुष्टक्षमपरिहार. . . ४१९ | |
| शिवनिर्वाण्यप्रहणाचा | | नानाप्रकारचे उत्पात | | तितऱ्या भागांतील विषय ४१९ | |
| निर्णय ... ३९४ | | शाले असतां शांति | | प्रथम व द्वितीय भागां- | |
| नक्षत्रांच्या संज्ञा ... ३९५ | | गायत्रीपुरश्चरणाचा | | तील विषय. . . . ४१९ | |
| बळागुदे धारणाचा | | प्रयोग ... ४०६ | | पुढें येणारे विषय. . . ४१९ | |
| मुहूर्त ... ३९५ | | निष्कर्ष ... ४०६ | | प्रंय करण्याचें प्रयोजन. | |
| | | | | वगैरे. : . . . ४२० | |

श्री

धर्मसिंधूचें मराठी भाषांतर.

॥ श्रीगणेशायनमः श्रीपांडुरंगायनमः ॥

॥ श्रीगुरुदेवदत्त. ॥

ईश्वरप्रार्थना.

श्रीविठ्ठलसुकुरुणार्णवमाशुतोषदांनेष्टपोषमघसंहतिंसिंधुशोषं
श्रीरुक्मिणीमातिमुपंपुरुषंपरंतवंदेदुरंतचरितंदादिसंचरंतं १

अर्थ—कुरुणेचा सागर, त्वरित संतोष पावणारा, दीनांचें इच्छित पुरवणारा, पातक समुदायरूपी जो समुद्र त्याचा नाश करणारा, श्रीरुक्मिणीचें चित्त हरण करणारा परम पुरुष, ज्याच्या चरिताला पार नाही असा, व हृदयाचे टायी वास करणारा, असा जो श्रीविठ्ठल त्याला नमस्कार करितो.

वेदप्रतिग्रंथमयानिशंकरंधन्तांसमेभूमिर्धिवानिशंकरम्
शिवांचविघ्नेशमथोपनामहंसरस्वतीमाशुभजेपितामहम् २

अर्थ—पातकांचा नाश करणारा व कल्याण करणारा असा जो शंकर त्याला नमस्कार करितो. तो शंकर सर्वकाळ माझ्या मस्तकीं वरद हस्त धारण करे. पार्वती, गणपति, ब्रह्मदेव व सरस्वती यांनाही मी त्वरित नमस्कार करितो.

श्रीलक्ष्मींगरुडसहस्रशिरसंप्रद्युम्नमीशंकार्यं
श्रीसूर्यविधुभौमविहुरुकविच्छायासुतान्यमुखम्
इंद्राद्यान्विवुधानगुरुंश्चजननीतातंस्वनंताभिधं
नत्वार्पान्वितनोमिमाधवमुखान्धर्माब्धिसारमितं ३

अर्थ—श्रीलक्ष्मी, गरुड, सहस्र मस्तकांचा असा शेष, प्रद्युम्न, ईश्वर, मातृती, श्रीसूर्य, चंद्र, मंगळ, बुध, बृहस्पति, शुक्राचार्य, शानि, षडानन, इंद्रादिदेव, गुरु, आणि माता, व अनंत नामक पिता, तसेच माधवप्रमुख श्रेष्ठ, यांस नमस्कार करून मी धर्माब्धिसार नांवाचा ग्रंथ करितो.

दृष्ट्वापूर्वनिबंधान्निर्णयसिधुक्रमेणसिद्धार्थान्

प्रायेणमूलवचनान्युद्धित्यलिखामिबालबोधाय ४

अर्थ—माघीन प्रंष आवलोकन करून प्रायः त्यांतील मूल वचनें सोडून निर्णय सिधुच्या क्रमानें त्यांचे प्रसिद्ध अर्थ आबालवृद्धांत बोध व्हावा एतदर्थ मी लिहितो.

वर्ष, अयन वगैरे कालाचे भेद.

वर्ष, अयन, ऋतु, महिना, पक्ष (पंध्रवडा) आणि दिवस असे कालाचे साहा भेद आहेत. चंद्र, सौर, सावन, नाक्षत्र, आणि बार्हस्पत्य, असे पांच प्रकारचे वर्ष आहे. शुद्ध प्रतिपदेपासून अमावास्ये पर्यंत एक महिना या मानानें चैत्रादि संवत्सरे जे बारा महिने लणजे ३५४ दिवस यांनी व अधिक मास असतां तेरा महिने यांनी चंद्र वर्ष होतें. चंद्रवर्षालाच प्रभव, विभव, शुक्ल, इत्यादि ६० संज्ञा आहेत. मेषादिक बारा राशी सूर्यानें भोगिल्या असतां ३६५ दिवसांनीं सौर वर्ष होतें. ३६० दिवसांचें जें वर्ष त्याला सावन असें लणतात. पुढें सांगण्यांत येतील असे जे बारा नाक्षत्र महिने ते भरल्यानंतर जें वर्ष होतें त्याला नाक्षत्र वर्ष लणतात. हें ३२४ दिवसांनीं होतें. मेषादिक दुसऱ्या सर्व राशी अनुक्रमानें वृहस्पत्यानें भोगिल्या असतां जें वर्ष भरतें त्याला बार्हस्पत्य असें लणतात. हें ३६१ दिवसांनीं होतें. कर्मादिकांच्या संकल्पांत चंद्र वर्षाचाच उच्चार करावा. अयन दोन प्रकारचे. एक दक्षिणायण व दुसरे उत्तरायण. सूर्याच्या कर्क संक्रांती पासून साहा राशीचे भोगानें दक्षिणायन व मकरसंक्रांती पासून साहा राशी भोगिल्या लणजे उत्तरायण होतें. ऋतु दोन प्रकारचे. सौर आणि चंद्र. मीनापासून किंवा मेषापासून सूर्यानें दोन दोन राशी भोगिल्या असतां वसंतादि साहा प्रकारचे सौर ऋतु होतात. चैत्रापासून आरंभ करून दोन दोन महिन्यांनीं होणारे जे वसंतादि सहा ऋतु ते चंद्र ऋतु होत. अधिक महिना असल्या तर किंचित् कमी अशा ९० दिवसांनीं चंद्र ऋतु होतो. श्रौतस्मार्तादि कर्मांत चंद्रऋतूचा उच्चार प्रशस्त होय. यास चार प्रकारचा—चंद्र, सौर, सावन आणि नाक्षत्र. शुद्ध प्रतिपदे पासून अमावास्ये धरून किंवा कृष्णप्रतिपदेपासून पौर्णिमा धरून भरणारा जो तो चंद्रमास. त्यांत शुद्धप्रतिपदेपासून भरणारा तो मुख्य. कृष्णप्रतिपदेपासून भरणारा तो विध्या स्त्रीच्या उत्तरे कडेस मानतात. कर्मादिकांचे ठायीं शुद्ध प्रतिपदेपासून भरणाऱ्या चैत्रादि मासाचा उच्चार करावा. मीन संक्रांतीपासून सौरमासाना चैत्रादि संज्ञा आहेत असें कोणी मानितात. सूर्यसंक्रांतीपासून पुढच्या सूर्यसंक्रांती पर्यंतचा जो मास तो सौर मास होय. तीस दिवसांचा तो सावन मास. अश्विनी आदीकरून १७ नक्षत्रे चंद्राने भोगिल्लीं असतां जो मास होतो त्याला नाक्षत्र मास लणतात.

प्रतिपदेपासून पौर्णिमेचे अखेरी पर्यंत जे दिवस तो शुक्लपक्ष. प्रतिपदेपासून अमाः वास्येचे अखेरीपर्यंत जे दिवस तो कृष्णपक्ष. ६० ऋटिकांचा एक दिवस. ॥ याप्रमाणे धर्मासिंधुसारांती३ पहिला उद्देश झाला. ॥

संक्रांतींच्या पर्वकालाचा निर्णय.

मेष सूर्य संक्रांतीच्या पूर्वीच्या १५ व पुढच्या १५ घटिका पुण्यकाळ. कोणी दाहा दाहा घटिकाही मानतात. वृषभ संक्रांतीच्या पूर्वीच्या १६ घटिका पुण्यकाळ. मिथुन संक्रांतीच्या पुढच्या १६. कर्काच्या पूर्वीच्या ३०. सिंह संक्रांतीच्या पूर्वीच्या १६. कन्येच्या पुढच्या १६. तुला संक्रांतीच्या पूर्वीच्या १५ व पुढच्या १५ घटिका पुण्यकाळ. कोणी दाहा दाहा घटिका मानतात. वृश्चिकेच्या पूर्वीच्या १६. धनु संक्रांतीच्या पुढच्या १६ घटिका. मकरसंक्रांतीच्या पुढच्या ४०. कुंभसंक्रांतीच्या पूर्वीच्या १६ घटिका. मीनसंक्रांतीच्या पुढच्या १६ घटिका पुण्यकाळ. दोन घटिकांहून किंचित् कमी इतका दिवस शेष राहिला असतां मिथुन, कन्या, धनु, मीन व मकर या संक्रांती होतील तर पूर्वीच्याच घटिका पुण्यकाळ. प्रातःकाळीं दोन घटिकांहून कमी अशा वेळीं वृषभ, सिंह, वृश्चिक कुंभ व कर्क या संक्रांती होतील तर पुढच्याच घटिका पुण्यकाळ. प्रातःकाळीं कर्क संक्रांत झाली असतां कित्येक पूर्व दिवशीं पुण्यकाळ मानतात. मध्यरात्रीच्या पूर्वी संक्रांत झाली असेल तर पूर्वीच्या दिवसाचें उत्तरार्ध पुण्यकाळ. मध्यरात्री नंतर संक्रांत झाल्यास पुढच्या दिवसाचें पूर्वार्ध पुण्यकाळ. नरोबर मध्यरात्रीच संक्रांत होईल तर पूर्व दिवसाचें उत्तरार्ध आणि पुढच्या दिवसाचें पूर्वार्ध अशा दोन दिवशींही पुण्यकाळ. मकर आणि कर्कसंक्रांती खेरीज करून बाकीच्या संक्रांती रात्रीं होतील तर हा शास्त्रार्थ जाणावा. मकरसंक्रांत रात्रीं होईल तर दुसऱ्या दिवशीं पुण्यकाळ. कर्कसंक्रांत रात्रीं होईल तर पूर्वीच्या दिवशीं पुण्यकाळ. सूर्यास्ता नंतर तीन घटिका पर्यंत सायंसंध्याकाळ, ते वेळीं मकरसंक्रांत झाली असतां पूर्व दिवशीं पुण्यकाळ. सूर्यादया पूर्वी तीन घटिका प्रातःसंध्याकाळ, ते वेळीं कर्कसंक्रांत झाल्यास दुसऱ्या दिवशीं पुण्यकाळ. या प्रमाणे संध्याकाळीं संक्रांत झाली असतां याचा विशेष निर्णय ज्योतिःशास्त्रांत प्रसिद्ध आहे.

वरील प्रसंगीं करावयाचीं दानें.

मेष संक्रांतीस मेषदान, वृषभ० गोप्रदान, मिथुन० वस्त्र व अन्नादिदान, कर्क० घृतधेनुदान, सिंह० छत्र व सुवर्णदान, कन्या० गृह आणि वस्त्रदान, तुला० तीळ व गौरसदान, वृश्चिक० दौपदान, धनु० वस्त्र व वाहनदान, मकर० काष्ठ व अभिदान,

कुंभ० गाई उदक व तृणदान, मीन० भूमी व माला यांचीं दाने करावीं. या प्रमाणे आपखोही दानाचे प्रकार आढळतात. मकर, कर्क, मेष व तुला या संक्रातींचे ठायीं पूर्वी त्रिरात्र किंवा एक रात्र उपोषण करून स्नान दानादि करावे. शेवटील उपोषण संक्रातियुक्त अहोरात्री किंवा पुण्यकालयुक्त अहोरात्री जसें होईल तसें करावे. हे उपोषण पुत्रवान् गृहस्थाश्रमी खेरीज करून इतरांनीं पापक्षयार्थ करावे. हे काम्य आहे, नित्य नाही. सर्व संक्रातींचे ठायीं पिडरहित असें श्राद्ध करावे. मकर व कर्क संक्रातींचे ठायीं श्राद्ध नित्य आहे. ज्या प्रमाणे त्या त्या संक्रातींचे ठायीं दानादिक करावीं झणून सांगितले अच प्रमाणे त्या संक्रातींच्या पूर्वी अयनांशकालीं त्या त्या संक्रातींचे उचित अशीं स्नानदानादिक करावीं. अयनांश ज्योतिःशास्त्रांत सांगितले आहेत. ते अयनांश सांप्रतकालीं शालिवाहन शके १७१२ मध्ये २१ आहेत, झणून संक्रातींच्या पूर्वी एकविसाव्या दिवसीं अयनांश पूर्वकाल होतो असा शेवटील अर्थ जाणवा. या प्रकारे करून अधिक उणा शक असला तथापि जाणावे.

संक्रातींस विष्णुपदादि संज्ञा.

वृषभ, सिंह, वृश्चिक आणि कुंभ या संक्रातींस विष्णुपद असे झणतात. मिथुन, कन्या, धनु आणि मीन यांना षडशीति संज्ञा आहे. मेष, तुला यांस विषुव झणतात. कर्क आणि मकर यांना अयन अशी संज्ञा आहे. या चार प्रकारचे संक्रातींचे ठायीं उत्तरोत्तर झणजे एकाहून दुसरी जास्त पुण्यकारक आहे. मंगल कार्यांचे ठायीं बहुधा सर्व संक्रातींच्या पूर्वीच्या व पुढच्या १६, १६ घटिका वर्ज्य कराव्या. चंद्रादि संक्रातींच्या ठायीं पूर्वीच्या व पुढच्या मिळून क्रमाने २, ९, २, ८४, ६, १६० घटिका टाकाव्या. रात्री संक्रांत शाली असतां ग्रहणा प्रमाणे रात्रीच स्नानदानादिक करावे असे कियेकांचे मत आहे. रात्री संक्रांत शाली असतांही दिवसासच स्नान करावे, रात्री करू नये असे सर्वमान्य संमत असून देशाचारही बहुधा असाच आहे. ज्याच्या जन्मराशीला सूर्य संक्रांत असेल त्याला धनसयादि पीडा होते झणून त्याच्या परिहारार्थ त्यानें कमल पत्राने पुक्त अशा पाण्यानें स्नान करावे. विषुव व अयन या संक्रातीं दिवसास झाल्या असतां पूर्वीची व पुढची रात्र आणि ती दिवस पटिवण्यास व पटण्यास ही वर्ज्य होय; आणि रात्री शाली असतां पूर्वीचा दिवस, पुढचा दिवस व ती रात्र हीं वर्ज्य जाणावीं. या प्रमाणे संक्राति शाली असतां बाराप्रहर पर्यंत अनध्याय, असें तात्पर्य. आपखोही विशेष निर्णय अयन संक्रातींचे प्रसंगीं सांगण्यांत येईल. ॥ या प्रकारे करून संक्रांत जाणावी. उदेश २ रा. ॥

मलमासाचा निर्णय

मलमास दोन प्रकारचा आहे. एक अधिक मास आणि दुसरा क्षय मास. संक्रांति रहित तो अधिकमास आणि दोन संक्रांतींनी युक्त तो क्षय मास. पूर्वीच्या अधिक महिन्या पासून पुढचा अधिक महिना होणे तो तिसऱ्या महिन्या पासून आठव्या किंवा नवव्या महिन्यांत कोणता तरी होतो. १४१ किंवा एकोणिस वर्षांनी क्षय मास होतो. अधिक महिन्या प्रमाणे अरूप काळाने होत नाही. क्षय मास येणे तो कार्तिक, मार्गशीर्ष व पौष या महिन्यांतून कोणता तरी येतो. यांखेरीज दुसरे येत नाही. ज्यावर्षी क्षय मास होतो त्या वर्षी मध्ये दोन अधिक मास होतात. एक क्षय मासाच्या पूर्वी, आणि एक क्षय मासा नंतर.

अधिक मासाचें उदाहरण.

चैत्र अमावास्येला मेष संक्रांत. पुढे शुद्ध प्रतिपदे पासून अमावास्ये पर्यंत संक्रांत नाही. नंतर शुद्ध प्रतिपदेला वृषभ संक्रांत झाली, तेव्हां याच्या पूर्वीचा संक्रांति रहित जो महिना तो अधिक वैशाख होय. वृषभ संक्रांतियुक्त जो तो शुद्ध वैशाख ज्ञानाव.

क्षयमासाचें उदाहरण.

भाद्रपद रूष्ण अमावास्येला कन्या संक्रांत. पुढे आश्वीन अधिक मास. शुद्ध आश्वीन महिन्याचे प्रतिपदेला तुला संक्रांत. कार्तिक शुद्ध प्रतिपदेला वृश्चिक संक्रांत. नंतर मार्गशीर्ष शुद्ध प्रतिपदेला धनु संक्रांत, व याच महिन्याचे अमावास्येला मकर संक्रांत. या प्रमाणे धनु संक्रांत आणि मकर संक्रांत या दोहोनीं युक्त जो एक महिना झाला क्षय मास असें ज्ञणतात. तो मार्गशीर्ष व पौष हे दोन महिने मिळून एकमास होतो- त्याच्या प्रतिपदादिक ज्या तिथी त्यांचे पूर्वीचे अर्ध मार्गशीर्ष व पुढचे अर्ध तो पौष मास होय. या प्रमाणे सर्व तिथी दोन महिन्याच्या होत. या महिन्या मध्ये तिथींच्या पूर्वाधांत मृत झाला असेल तर त्यांचे पतिसावःसरिक श्राद्ध मार्गशीर्षांत व उचराधांत मृत झाला असेल तर पौषांत करावे. या प्रमाणे जन्म झाला असतां वाढ दिवसादि विधीही तसाच करावा. त्यानंतर माघ अमावास्येला कुंभ संक्रांत पुढे फाल्गुन अधिकमास. शुद्ध फाल्गुनाच्या शुद्ध प्रतिपदेला मीन संक्रांत आली. या प्रमाणे पूर्वीच्या व पुढच्या दोन अधिक मासांनी युक्त असा क्षयमास ज्या वर्षी येतो ते वर्षे तेरा महिन्यांचे होऊन तीनशे नव्वदांत किंचित् कमी इतके त्याचे दिवस होतात. क्षयमासाच्या पूर्वीचा जो अधिक महिना झाला संसर्प असे ज्ञणतात. हा सर्व कर्मास योग्य असून शुभ कार्याविषयीं त्याज्य नाही. अहस्पति संज्ञक क्षयमास आणि त्याच्या पुढचा होणारा अधिकमास हे

सर्व कर्मांच्या ठिकाणीं वर्ज्य होत. याचप्रमाणे तीन वर्षांनीं येणारा जो अधिकमास तो ही वर्ज्य होय.

वरील महिन्यांतील वर्ज्यावर्ज्य कर्मांचा निर्णय.

ज्यांना दुसरी गती नाहीं झणजे जीं जेव्हांचे तेव्हांचे केलीं पाहिजेत अशीं जीं नियम, नैमित्तिक आणि काम्य कर्म तीं अधिक मास व क्षय मास यांचे ठिकाणीं करावीं. ज्यांना सबब आहे अशीं नियम, नैमित्तिक व काम्य कर्म वर्ज्य होत. झणजे असे—संध्या, अग्निहोत्र इत्यादि नियम कर्म; ग्रहणस्नान इत्यादि नैमित्तिक; आणि पर्जन्या करितां कारीर्यादिक व राक्षसांच्या नाशार्थ रक्षोघ्नेष्टि, इत्यादि काम्य कर्म अधिक मासांत हीं करावीं. ज्योतिष्टोम इत्यादि नियम कर्म, जातोष्टि इत्यादिक नैमित्तिक कर्म आणि पुत्रकामोष्टि इत्यादि काम्य कर्म हीं मूल मासा नंतर शुद्ध महिन्यांतच करावीं. पूर्वीं आरंभिल्ले असे काम्य कर्म अधिक मासांत हीं करावें. नवीन आरंभ किंवा समाप्ति करूं नये. तसेच, पूजेचा लोप वगैरे झाल्यामुळे पुनः मूर्त्तिप्रतिष्ठा करणे; प्राप्तकालाचे ठायीं अवश्य केलेच पाहिजेत असे जे गर्भाधाना पासून अन्नप्राशनापर्यंतचे आठ संस्कार; ज्वरादि रोगांचो ज्ञाति; अल्प्य योगाचे ठायीं श्राद्ध व्रतादिक, नैमित्तिक प्रायश्चित्त, नियमश्राद्ध, ऊन मासिकादिक श्राद्धे आणि दर्शश्राद्ध, हीं अधिक मासांत हीं करावीं. चैत्रादिक अधिक महिन्यांत कोण्णें मेले असतील आणि कदाचित् पार दिवसांनीं तोच चैत्र मास अधिक महिना आला तर या अधिक मासांतच याचे प्रति सांवत्सरिक श्राद्ध करावें. चैत्रादिक शुद्ध महिन्यांत मेलेल्याचे प्रतिसांवत्सरिक श्राद्ध अधिक महिन्यांत करूं नये. शुद्ध अशाचैत्रादिकांतच करावें. शुद्ध महिन्यामध्ये मेलेले आसतील यांचे पहिले वर्षश्राद्ध अधिक महिन्यांतच करावें, शुद्ध महिन्यांत करूं नये. दुस-या वर्षाचे श्राद्ध शुद्ध महिन्यांतच करावें. पहिल्या दिवसा पासून अकराव्या पर्यंतचे जे एकादशाहांत कर्म आणि सर्पिंडी कर्म हीं अधिक महिन्यांतही करावीं. दुसरे मासिका दिक श्राद्ध अधिक मास व शुद्ध मास यांत दोनदा करावें. याप्रमाणे वारावें मासिक जर अधिक महिन्यांत आले तर त्याची अधिक व शुद्ध महिन्यांत द्विरावृत्ति करून ऊनाब्द कालीं ऊनाब्दिक करून चवदावे महिन्यांत पहिले वर्षश्राद्ध करावें. ज्या वर्षी क्षय मासाच्या जवळ अधिक मास होतो, झणजे ज्या प्रमाणे कार्तिक अधिक मास, त्याच्या पुढील महिना वृश्चिक व धेनुसंक्रांतीनी युक्त असल्यामुळे तो क्षय मास होय. तेव्हां या कार्तिक महिन्यांतील प्रतिसांवत्सरिक श्राद्ध पूर्वींच्या अधिक महिन्यांत करून पुढच्या क्षय मासांतही करावें, जे वेळीं क्षय मासा पासून दूर पूर्वीं अधिक महिना होतो, झणजे जसा आश्विन अधिक मास व मार्गशीर्ष क्षय मास, ते वेळीं आश्विन महिन्यांतील श्राद्ध

अधिकान्त व शुद्ध आश्विन महिन्यांतही करावें. कारण दोन्हीही महिने कर्मात्मक योग्य आहेत असे वाटते. दुसऱ्या क्षय मासातील वर्षश्राद्ध क्षय मासांतच करावें. त्याच प्रमाणे पूर्वी सांगितलेले जें मार्गशीर्ष क्षय मासाचे उदाहरण आंत, मार्गशीर्षातील व पौषातील जें अधिकश्राद्ध तें एकाच महिन्यांत करावें. तिथीचे पूर्वार्धादि विभाग करूं नये असा इत्थर्थ.

मलमासांतिल वर्ज्य कर्मे.

उपाकर्म, उत्सर्जन, अष्टकाश्राद्धे, हीं अधिकांत करूं नयेत. चोळे, मुंज, लग्न, तीर्थयात्रा, देवयात्रा, घर बांधणे, गृहप्रवेश, देवाची अर्चा, विहोर, तलाव, नाग, यांचा उपसा, नवें वस्त्र व अलंकार धारण करणे, तुलापुरुषादिक महादानें, यज्ञ कर्म, अग्नीची स्थापना, पूर्वी केले नाही असे देवांचे व तीर्थांचे दर्शन, संन्यास, काव्य, असा वृषोत्सर्ग, राज्याभिषेक, व्रतें, जे करण्यास पुढें काल आहे असे अन्न प्राशन व सोडमुंज हे संस्कार, पुढें ठेवण्यास तबड नाही असा नामकर्मादि संस्कार, पवित्रे वाहणे, दमनार्पण, श्रवणाकर्म, सर्पवली आदिकरून पाकसंस्था, हायन, कुशास वळणे इत्यादि उत्सव, शपथ घेणे, दिव्य करणे, हीं सर्व मलमासामध्ये वर्ज्य करावीं. रजोदोषशांति, विच्छिन्न ज्ञालेल्या अग्नीचे पुनः संधान करणे, त्याची प्रतिष्ठा करणे, इत्यादि जीं नैमित्तिक कर्मे तीं जर निमित्तामुळेच कर्तव्य असतील तर त्या ठिकाणीं मलमासाचा दोष नाही. उक्त काल टळलेला असेल तर तीं शुद्ध महिन्यांतच करावीं. आग्रयण करावयाचे तें दुष्काळा सारखें एखादें संकट असल्यास अधिक महिन्यांत करावें. एरवीं शुद्ध महिन्यांत करावें. युगादि आणि मन्वादि श्राद्धे दोनही महिन्यांत आवृत्तीनें करावीं. क्षयमासाच्या पूर्वीचा संसर्प नांवाचा जो अधिक महिना पूर्वी सांगितला आहे, त्यामध्ये चोळे, मुंज, विवाह, अग्नीची स्थापना, यज्ञसमारंभ, महालय व राज्याभिषेक हीं वर्ज्य होत. दुसरीं वर्ज्य नाहीत. नवीन व्रताचा आरंभ व समाप्ति अधिक महिन्यांत होत नाही. पूर्वी-आरंभिलेले जे माघस्नानादिक त्याचा आरंभ व समाप्ति अधिक महिन्यांत होते. मकर संक्रांतीनें युक्त जो क्षयमास त्याच्या पौर्णिमेस माघस्नानाचा आरंभ करून कुंभ संक्रांतीनें युक्त जो माघमासांतिल पौर्णिमा तिचे टार्पी त्याची समाप्ति करावी. या प्रमाणेच कार्तिक महिन्यांतही समजावें. ज्या वर्षी वैशाखादिक अधिक महिना येतो तेव्हां वैशाखस्नानादिक जीं मासव्रतें त्यांचा चैत्र महिन्याच्या पौर्णिमेला आरंभ करून शुद्ध वैशाखाचे पौर्णिमेस समाप्ति करावी. या व्रतादिकांचे दोन महिने अनुष्ठान होय. जें कर्म मलमासांत वर्ज्य सांगितले तें गुरु व शुक यांचा अस्त, बाल्य आणि बार्धक्य यांचे टार्पीही वर्ज्य जाणावें. अस्ताच्यापूर्वी सात दिवस बार्धक्य व उदया

नंतर सात दिवस बाल्य, असा मध्यमपक्ष आहे. पंधरा, पांच व तीन दिवस इत्यादि जे पक्ष ते आपत्तिकाल व अनापत्तिकाल इत्यादि परतें व देशपरतें योजावे. हा वर्ज्यावर्ज्य निर्णय सिंहस्थ गुरू असतां जाणावा.

सिंहस्थ गुरू असतां विशेषेंकरून वर्ज्य कर्म.

कान टोंचणे, चोळे, मुंज, विवाह, देवयात्रा, व्रतें, घर बांधणे, देवप्रतिष्ठा आणि संन्यास हीं अवश्य वर्ज्य जाणावीं.

सिंहस्थ गुरूचा अपवाद.

मघा नक्षत्राचे ठायीं किंवा सिंहांसीं गुरूचा योग असतां सर्व देशांमध्ये कोणतींही मंगल कार्ये करूं नयेत. सिंहांशा नंतर, गोदावरीच्या दक्षिणेस, व भागीरथीच्या उत्तरेस सिंहस्थ्याचा दोष नाही. गंगा व गोदावरी यांच्या मध्यभागीं जो देश आहे तेंथे तर सर्व सिंहस्थ्यामध्ये विवाह व मुंज हीं करूं नयेत. इतर कर्म सिंहस्था नंतर सर्व देशांमध्ये करावीं. मेष राशीचा सूर्य असतां सर्व देशांमध्ये सर्व मंगल कार्ये करावीं. त्यास सिंहस्थ्याचा दोष नाही. वृषभराशीचा सूर्य असतांही दोष नाही असें कोणी क्षणत्नात. सिंहस्थ गुरू असतां गोदावरीचे स्नान आणि कन्यागत गुरू असतां कृष्णेचे स्नान हीं पुण्यकारक जाणावीं. गोदावरीच्या यात्रेला जाणा रानीं क्षीर व उपोषण हीं अवश्य करावीं. तिच्या तिरिं राहणारांस याची गरज नाही. गांभिणी स्त्री असतां किंवा विवाहादि मंगल कार्ये झाले असतांही गोदावरीचे ठिकाणीं क्षीर केले असतां दोष नाही. गया व गोदावरी यांचे यात्रेच्या ठिकाणीं अधिक मासाचा व गुरूशुक्रास्तादिकांचा दोष नाही. मलमासाचा विशेष निर्णय दुसरे प्रगांत सांगितला आहे. ॥ या प्रकारें करून धर्मसिधुसारांतील तिसरा उद्देश झाला. ॥

तिथींच्या निर्णयाविषयीं सामान्य परिभाषा.

तिथी दोन प्रकारची. एक पूर्णा व दुसरी सखंडा. सूर्योदयापासून साठ घटिका असणारी जी ती पूर्ण तिथी. इच्या खेरीज जी ती सखंडा. सखंडाहि दोन प्रकारची आहे. एक शुद्धा व दुसरी विद्धा. सूर्योदयापासून सूर्यास्तापर्यंत राहणारी, तसांच शिवरात्री इत्यादिकांचे ठायीं मध्यरात्री पर्यंत राहणारी ती शुद्धा. तिच्या खेरीज जी ती विद्धा. पंध दोन प्रकारचा. प्रातर्वेध व सायंवेध. सूर्योदयानंतर साहा घाटकांनीं पाहिल्या तिथींचा दुसऱ्या तिथीला स्पर्श होतो तो प्रातर्वेध. सूर्या स्ताचे पूर्ण सहा घटिकांनीं पूर्ण तिथींचा दुसऱ्या तिथीला स्पर्श होतो तो सायंवेध.

एकादशीव्रता विषयीचा वेध त्या प्रकर्णी सांगण्यांत येईल. कित्येक विशेष तिथीचे ठायी वेध जास्त सांगितला आहे:—पंचमी बारा घटिकांनी घड्याला विद्ध करिजे. दशमी पंधरा घटिकांनी एकादशीला विद्ध करिजे. चतुर्दशी ११ घटिकांनी पौर्णिमेला विद्ध करिजे. विद्धातिथि कितीएक कर्माविषयी ग्राह्य व कित्येका विषयी ग्राह्य होतात. संपूर्ण तिथि व शुद्ध तिथि यां निषयी संपन्न नसल्या मुळें बहुधा त्यांचा निर्णय सांगण्याची गरज नाही. निषेध केलेली जो संखंडा तिथि तिचाही निर्णय सांगण्याची गरज नाही. कारण ‘निषेध झटला ह्मणजे तो निवृत्तिरूप असून कालमात्राचीच अपेक्षा करितो’ असे जे वचन, त्याचे योगानें अष्टमी आदिकरून तिथींचे ठायीं केळें खाण्याचा जो निषेध आहे झाला ते वेळीं मात्र व्याप्त असणाऱ्या तिथीची गरज आहे.

व्रतादिकांविषयी तिथि कशी असावी त्याचा निर्णय.

ज्या कर्माला जो काल असेल त्या कालास व्यापणारी तिथि घ्यावी. ज्या प्रमाणें विनायकादिक व्रतांचे ठिकाणीं मध्यान्हकालीं पूजनादि विधी सांगितला आहे, या करितां मध्यान्हकालव्यापिनी तिथि घ्यावी. दोनही दिवसीं कर्मकालास व्यापणारी किंवा न व्यापणारी अशी एकदेशव्याप्ति तिथि असेल तर युग्मवाक्यादिकें करून पूर्वविद्धा किंवा परविद्धा तिथि घ्यावी. हे युग्मवाक्य— “युग्माभियुग्मभूतानांषण्ण्योर्वसुरंध्रयोः॥ रुद्रेणद्वादशीयुक्ताचतुर्दश्याचपूर्णांमा ॥प्रतिपद्याप्यमावास्यातिथ्योयुग्ममहाफल॥” द्वितीया तृतीयाविद्धा घ्यावी; नृतीया द्वितीयाविद्धा घ्यावी; या प्रकारें करून द्वितीया व तृतीया यांचें युग्म. चतुर्थी पंचमीचें युग्म; षष्ठी सप्तमीचें युग्म; अष्टमी नवमीचें युग्म; एकादशी द्वादशीचें युग्म; चतुर्दशी पौर्णिमेचें युग्म; अमानास्या प्रतिपदेचें युग्म; या प्रकारें करून जाणावी. क्वचित् प्रसंगीं ‘गणपतीच्या व्रताविषयी चतुर्थी मातृविद्धा प्रशस्त होय’ इत्यादि विशेष वचनांचे योगानें ग्राह्याचाच निर्णय करावा. वचनें करून जो तिथि कर्मकालास ग्राह्य नसेल ती साकर्यवचनें करून ग्राह्य मानावी. तीं वचनें—“ज्या तिथीचे ठायीं सूर्योदय होतो, ती तिथि स्नान, दान, जप इत्यादिकां विषयी संपूर्ण जाणावी. ॥ या प्रकारें करून सामान्य निर्णयाविषयी हा चवथा उद्देश झाला. ॥

कर्मविशेषाचा निर्णय:

कर्म दोन प्रकारचीं. दैव कर्म व पित्र्य कर्म. दैवकर्म सहा प्रकारचीं. तीं अशीं,

एकभुक्त, नक्त, अयाचित, उपवास, आणि दान. मध्यान्ह काळीं एकवेळ एका प्रकारच्याच अनाचे भोजन करणे हे एकभुक्त. रात्रीचे प्रदोष काळाचे ठायीं भोजन करणे हे नक्त. पाचना केण्यावांचून या दिवशींच मिळालेल्या अन्नाचे भोजन करणे हे अयाचित. स्त्रीपुत्रादिकांजवळ पाचना केण्या वांचून अन्य दिवशीं मिळालेल्या अनाचे ही भोजन करणे हे अयाचित होय, असें क्रियेकांचे मत आहे. अहोरात्रीमध्ये भोजन न करणे हे उपोषण. पूजादिक कर्माचा जो विशेष प्रकार ते व्रत. आपले स्वामित्व दूर करून दुसऱ्याची सत्ता स्थापीत करून कोणतीही वस्तु देणे हे दान. हीं एकभुक्तादिक व्रते क्वचित् व्रतादिकांच्या अंगभूत सांगितलीं, क्वचित् एकादशी आदींकरून नीं उपोषणे सांच्या प्रतिनिधि रूपाने सांगितलीं आणि क्वचित् स्वतंत्र, या प्रकारें करून तीन प्रकारचीं सांगितलीं. सांमध्ये अंगभूत व प्रतिनिधिभूत व्रतांचा निर्णय या या मुख्य व्रतांच्या निर्णया प्रमाणे जाणावा.

स्वतंत्रव्रतांचा निर्णय

आतां दिवसाचे पांच भाग करून सांपिकीं. प्रथम भागाला प्रातःकाल असें ह्मणतात. दुसरा संगवकाल, तिसरा मध्यान्ह, चवथा अपराण्ह, आणि पांचवा सायान्हकाल. सूर्य अस्ता नंतर तीन मुहूर्त पर्यंत प्रदोषकाल, सामध्ये एकभुक्त व्रता करितां तिथि घेणे ती मध्यान्हकालव्यापिनी ध्यावी. सामध्येही अर्धा दिवस जाऊन तीस घटिकांचे मध्यम दिनमानाने सोळा, सत्रा व आठरा या तिन घटिका मुख्य भोजन-काल होय. आनंतर संध्याकालपर्यंत गौण काल जाणावा. पूर्वे दिवशींच मुख्यकाळीं व्याप्ति, दुसऱ्या दिवशींच व्याप्ति, दोनही दिवसीं व्याप्ति, दोनही दिवसीं व्याप्ति नाहीं, दोनही दिवसीं सारखी एकदेशव्याप्ति, आणि कमीजास्तमानाने एकदेशव्याप्ति. याप्रमाणे तिथींच्या व्याप्तीविषयी सहा प्रकार आहेत. सांमध्ये अदल्या दिवसींच मुख्यकालाचे ठाई ग्राह्य तिथि असतां पूर्वेचीच ध्यावी. दुसऱ्या दिवसींच ग्राह्य असल्यास निःसंशय दुसरीच ध्यावी, दोनही दिवसीं पूर्णव्यापिनी असतां युग्मवाक्यानने निर्णय करावा. दोन ही दिवसीं व्याप्ति नसेल तर गौणकाळीं व्याप्ति आहे याकरितां पूर्वेचीच ध्यावी. सारखी एकदेशव्याप्ति असतां पूर्वेचीच. कमीजास्त मानाने एकदेशव्याप्ति असून दोनही दिवसीं कर्माचीसमाप्ती होई पर्यंत असल्यास युग्मवाक्यानने निर्णय करावा. कर्माचीसमाप्ति होई पर्यंत तिथि लाभत नसल्यास पूर्वेचीच ध्यावी. या प्रकारें करून एक भुक्ताचा निर्णय झाला.

नक्तव्रताचा निर्णय.

सूर्यास्ता नंतर सहा घटिका प्रदोषकालव्यापिनी तिथि नक्त व्रताविषयी ध्यावी. दोन दिवसांतून कोणत्याही एक दिवसीं ती व्याप्ति असेल किंवा प्रदोषकाळीं एकदेश व्याप्ति असेल तर तीच ध्यावी. भोजन करणे ते सूर्यास्तानंतर तीन घटिका संध्याकाल

टाकून करावें. संध्याकाळीं भोजन, निद्रा, मैथुन आणि अध्ययन हीं वर्ज्य आहेत. संध्यासी, पुत्ररहित, ज्याची पत्नी मृत झाली असेल तो, आणि विधवा, यांणी 'रात्री भोजन करूं नये.' असा निषेध आहे, या करितां सायान्हकालव्यापिनी तिथि असतां दिवसाचे आठव्या भागीं नक्त करावें. त्याच प्रमाणें सूर्य संबंधीं नक्त करणे तेंही सायंकालव्यापिनी तिथि असतां दिवसासच करावें. दोन दिवस प्रदोषव्यापिनी असल्यास दुसऱ्या दिवसाची तिथि घ्यावी. दोन दिवसीं प्रदोषव्याप्ति नसेल तर दुसऱ्या दिवसींच संध्याकाळीं दिवसाच्या आठव्या भागामध्ये नक्त करावें. रात्रीं करूं नये. दोनही दिवसीं एकसारखी एकदेशव्याप्ति असल्यास दुसऱ्या दिवसाचीच तिथि घ्यावी. दोन दिवसीं प्रदोष कालीं विषम मानानें एकदेशव्याप्ति असून त्या प्रसंगीं पूजा व भोजन होण्या सारखी अधिक तिथि मिळाल्यास ती अधिकव्यापिनी पूर्व दिवसींचीही घ्यावी. पूजा व भोजन होईल इतकी अधिक न मिळाल्यास साम्यपक्षा प्रमाणें दुसऱ्या दिवसाचीच घ्यावी. अधिकव्याप्ति आहे ह्मणून पूर्वींची घेऊं नये. नक्त व्रताचे संबंधानें भोजन करणें तें विधिप्राप्त असल्यामुळें रविवार, संक्रांति, इत्यादिकांचे ठायींही रात्री भोजन करावें. रविवारादिकांचे दिवसीं रात्री भोजनाचा जो निषेध आहे तो प्रीतिप्राप्त भोजनाचे संबंधानें आहे. एकादशी इत्यादिकांचे उपवासा ऐवजीं भोजन करावयाचें तें उपवासाच्या निर्णित दिवसींच करावें. अयाचित व्रत अहोरात्र साध्य असल्यामुळें उपोषणा प्रमाणेंच त्याचा निर्णय जाणावा. अपराण्हादिव्यापिनी तिथि घेण्याविषयीं पित्र्यकर्मांचा निर्णय त्या त्या प्रसंगीं सांगण्यांत येईल. एकभुक्त, नक्त, अयाचित आणि उपोषण, हीं पहिल्या तिथींचे ठायीं केलीं असल्यास दुसऱ्या दिवसीं त्या तिथींचे अंतीं पारणा करावी. तीन प्रहरांहून अधिक तिथि असल्यास सर्वत्र प्रातःकाळीं पारणा होय, याप्रमाणें माधव ह्मणतात. ॥ या प्रकारें करून एकभुक्तादि निर्णय जाणावा. उद्देश प्रांचवा. ॥

आतां व्रताची परिभाषा.

स्त्रिया व शूद्र यांना दोन दिवसांहून जास्त उपोषण करण्यास अधिकार नाही. स्त्रियांना तर पतीच्या आज्ञेवांचून व्रतें व उपोषणें इत्यादिक करण्याला अधिकार नाही. उपोषणाचे दिवसीं आणि श्राद्धदिवसीं काष्ठानें दांत घांसूं नयेत. पाना दिकानें किंवा बारा चूळ भरून दांत धुवावे. पाण्यानें भरलेलें तांब्याचें भांडें हातांत घेऊन उत्तर दिशेस तोंड करून उपोषणादिक व्रताचा संकल्प करावा. नव्या व्रताचा आरंभ व उच्चापन हीं, मलमास; गुह्यशुक्राचें अस्त; वैधृति, व्यतीपात इत्यादि कुयोग; कल्याणी; क्रूरवार व निषिद्ध अशीं अमानास्यादि तिथि यांचे ठायीं होत

नाहीत. मन्यव्रताचें वचन असे आहे की, " सूर्योदयकालीं तिथि असून ती दोन वरपर्यंत नसेल तर ती व्रताची तिथि, तिचे ठायीं व्रताचा आरंभ व समाप्ति करूं नये." या करितां खंडा तिथीलाही व्रताचा आरंभ व समाप्ति करूं नये. क्षमा, क्षमाभाषण, दया, दान, स्वच्छता, इंद्रियनिग्रह, देवपूजा, होम, संतोष, व चोरी न करणे, हे धर्म सर्व व्रतांचे ठिकाणीं ज्ञानावे. येथें व्याहृतिमंत्रें करून होम करावा. ज्ञान्यव्रताचा इतकाच विशेष जाणावा. ज्या देवतेचें उपोषणव्रत असेल त्या देवतेचा जप, ध्यान, कथाश्रवण, पूजा, तिच्या नामाचें श्रवणकीर्तन, इत्यादिक करावीं. उपोषणाचे दिवसीं अन्न पाहणें, अन्नाचा वास घेणें, तैलाभ्यंग, तांबूल, अंगाला उटी देणें, हीं वर्ज्य करावीं. सौभाग्यवती स्त्रियांला सौभाग्यव्रताचे ठायीं तैलाभ्यंग, तांबूल, इत्यादिक वर्ज्य नाहीत. उदक, मूल, फल, दूध, हविष्य, ब्राह्मणाची इच्छा, गुरूचें वचन, औषध, हीं आठ व्रतघ्न नाहीत. विस्मरणादिकानें व्रतभंग झाला असतां तीन दिवस उपोषण व खौर करून पुनः व्रत करावें. उपोषणाविषयीं अशक्त असल्यास खाजबद्दल एक ब्राह्मणास भोजन, अथवा तितकें द्रव्यदान, सहस्र गायत्री जप, किंवा बारा प्राणायाम हें प्रायश्चित्त करावें. पूर्वी व्रतलेलें व्रत करण्याविषयीं अशक्त असेल त्याचें तें प्रतिनिधिद्वारा करावें. पुत्र, स्त्री, पति, उपाध्याय, मित्र हे प्रतिनिधि जाणावे. पुत्रादिकांनीं पिता इत्यादिकांचे उद्देशानें व्रत केलें असतां त्या व्रताचें फल स्वतः त्या कर्मांलाही मिळतें. वारंवार उदक पिणें, एकवार तांबूल भक्षण करणें, दिवसा निद्रा व मैथुन करणें, यांचे योगानें उपोषणाचा नाश होतो. स्त्रियेचें स्मरण करणें, विषयाच्या गोष्टी सांगणें, क्रीडा करणें, कटाक्षांनीं पाहणें, एकांतस्थानीं गुप्त गोष्टी करणें, अमुक प्रकारें मी विषयांचा उपभोग करीन असा संकल्प करणें, अमुक विषयाचा मी उपभोग करीन असा निश्चयकरणें, आणि प्रत्यक्ष मैथुनकरणें, अशा आठ प्रकारच्या मैथुनांतून कोणतेंही आचरण करूं नये. प्राणसंकट आलें असतां तशावेळीं वारंवार उदक प्राशन केलें असतां दोष नाही. पखाली बगैरे चामड्याच्या पात्रांतील उदक, गरुडिखेरीज दुसरे कोणाचें दूध, मसुरा, ईडनिंबू व शिपीचा चुना, यांना अभिषेगण असें झणतात. हे व्रताच्या ठिकाणीं वर्ज्य करावे. अश्रुपात होणे (रडणे), क्रोध, इत्यादिकांचे योगानें व्रताचा तात्काल नाश होतो. व्रत केलें असून दुसऱ्याचे घरीं भोजन केलें असतां ज्याचें अन्न खरिं झाला त्या व्रताचें फळ मिळतें. तीळ, मूग, यावांचून शेंगेत उत्पन्न होणारी हरभरे बगैरे धान्ये, उडीद, मुळा, इत्यादिक, याला क्षारगण झणतात. हे पदार्थ व तशींच लवण, मध, मांसादिक हीं व्रताचे दिवसीं वर्ज्य करावीं. सांभो, देवभात, गहू हे व्रताला शुद्ध आहेत. साळीचे तांदूळ, जव मूग, तीळ, राळें,

वाटाणे, बैंगरे धान्ये; पांढरामुळा, सुरण, इयादि कंद; सैंधव व समुद्रापासून उत्पन्न होणारीं असीं लवणे; गाईचे दही, दूध व तूप, फणस, आंबा, नारळ, हरीतकी पिपळी, जिरे, सुंठ, चिंच, कोळें, रायआंबळे, आंबळे, साखर; हीं सर्वे अतैलपक हविष्ये होत. गायीचे ताक व ह्यशीचे तूप, हीं हविष्ये, असेही कोणीं झणतात. ज्या ठिकाणीं व्रताचा विधि सांगितला नाही तेथे पांच गुंजा सोऱ्याची किंवा रुप्याची प्रतिमा करून पूजा करावी. द्रव्य सांगितलें नसेल तर तुपाचा होम करावा. देवता सांगितली नसेल तर प्रजापति देवता घ्यावी. मंत्र सांगितला नसल्यास व्याहृतिमंत्र योजावा. ज्या ठिकाणीं होमाची संख्या सांगितली नसेल तेथे एकशेंआठ, अष्टावीस, किंवा आठ, यातून एक संख्या घ्यावी. उपोषण केल्यास व्रताचे सांगते करितां ब्राह्मणभोजन करावें. ज्या व्रताचे उद्यापन सांगितलें नाही आजवढल गोप्रदान किंवा सुवर्णदान करवि. किंवा ब्राह्मणाच्या वचनानेही व्रताची सांगता होते. परंतु सर्वत्र ठिकाणीं ब्राह्मणाचे वचन झाला दक्षिणा देऊन घ्यावें. ग्रहण केलेल्या व्रताचा आग केला असता चांडाला प्रमाणे दोषी होतो. विधवा स्त्रियांनीं व्रतादिकांचे दिवसीं चित्रावेचित्र रंगांची व तांबडीं वस्त्रे धारण करूं नयेत. पांढरींच धारण करावीं. स्त्रियांना सुतक, रजस्वलादोष, ज्वरादिकरोग, इत्यादि प्राप्त झालीं असतां उपोषणादिक शरीर संबंधीं नियम स्वतः करावे, आणि पूजा इत्यादिक दुसऱ्या कडून करावें. पूर्वीं आरंभिल्लें नाही, असे व्रत सुतकादिकांत करूं नये. काम्यकर्मांचे ठिकाणीं प्रतिनिधि चालत नाही. निख आणि नैमित्तिककर्म यांचे ठिकाणीं प्रतिनिधि चालतो. आरंभ झाल्या नंतर काम्यकर्मांचे ठिकाणींही प्रतिनिधि चालतो असे कोणीं ग्रंथकार झणतात. मंत्र, यजमान, देवता, व अभिकार्य, यांचे ठिकाणीं प्रतिनिधि चालत नाही कोणत्याही प्रसंगीं निषिद्ध पदार्थ प्रतिनिधिस्यानीं योजूं नये. एकाच वेळीं अनेक व्रतादि प्राप्त झालीं असतां विरुद्ध नाहींत असीं दान, होमादिक अनुक्रमाने करावीं. परस्पर विरुद्ध अशीं नक्तभोजन, उपोषणादिक असतील तर त्या पैकीं एक आपण करून दुसरीं पुत्र, स्त्री इत्यादिकांकडून करावीं.

जेथे चतुर्थां, अष्टमी इत्यादि दिवसीं दिवसा भोजन करण्याचा निषेध असून त्याच दिवसीं दुसऱ्या व्रताची पारणा प्राप्त शाली, तर तशा प्रसंगीं, पारणा विधिप्राप्त आहे यास्तव भोजनच करावें. वरील भोजनाचा निषेध सांगितला अतो प्रतिप्राप्त भोजनाविषयी आहे. याप्रमाणे रविवारादि दिवसीं संकष्टचतुर्थादि व्रत प्राप्त झाले असतां रात्रींच भोजन करावें. जेथे अष्टम्यादिकांचे ठायीं दिवसा भोजनाचा निषेध व रात्रीं रविवार प्रयुक्त भोजनाचा निषेध सांगितला तेथे प्राप्त असे उपोषणच करावें. आणि ज्या ठिकाणीं

पुत्रवान् अशा गृहस्थाश्रमीला संक्रांति इत्यादि उपवासाचाही निषेध सांगितला असून त्यादिवसी चतुर्दशी निमित्तक किंवा अष्टमीनिमित्तक दिवसा भोजनाचा निषेध प्राप्त झाला तर त्या ठिकाणी कांहीं अल्प उपहार करून उपवासाच करावा. चांद्रायण व्रतामध्ये एका दश्यादि उपोषणव्रत प्राप्त झाले असतां प्राससंख्येच्या नियमाने भोजनच करावे. याप्रमाणे कृत्वादि व्रताविषयीही जाणावे. याप्रमाणे एकादशीचे दिवसी एकादिवसाभाड (एकात्राड) करावयाचे व्रतांची पारणा आली असतां उदकाने पारणा करून उपोषण करावे. याप्रमाणे द्वादशीचे दिवसी मासोपवास व्रत, श्राद्ध, आणि प्रदोषव्रतसंबंधी पारणा प्राप्त होईल तर उदकाने पारणा करून उपोषण करावे. एकादशी इत्यादिकांचे ठायीं संक्रांत आली असतां पुत्रवान् गृहस्थाश्रमी यांनीं उपोषण न करितां उदक, मूले, फळे, दूध, यां पैकीं कांहीं भक्षण करावे. एक दिवसी दोन उपोषणे, दोन नक्तें, किंवा दोन एकभुक्तें प्राप्त होतील तर “अमुक उपवास व अमुक उपवास असीं दोन, तंत्राने करितो” याप्रमाणे संकल्प करून एकतंत्राने उपवास, पूजा व होम यांचें आचरण करावे. एक दिवसी उपवास व एकभुक्त असीं दोन व्रतें प्राप्त होऊन त्या दिवसी द्विधातिथि येईल तर गौणकालव्याप्ति घेऊन त्यां पैकीं एक पूर्वीच्या तिथीला व दुसरे बाकी राहिलेल्या तिथीला या प्रमाणे करावी. अखंडा तिथीचे ठिकाणीं एक पुत्रादिकांकडून करावे असे सांगितले. या प्रकारे करून काम्यकर्म नित्यकर्मांचें बाधक होतें इत्यादिक जीं वचने त्यांचे, योगाने काम्य, नियम, प्रबल, दुर्बल, बाध, अबाध, संभव, असंभव इत्यादि विचार करून करणे तें करावे. ॥ या प्रकारे करून सामान्यव्रतपरिभाषा झाली. उद्देश सहावा. ॥

प्रतिपदादि तिथींचा निर्णय.

(प्रतिपदा.)

शुक्ल पक्षांतील प्रतिपदा पूजा, व्रतादिकांविषयी घेणे ती अपराहकालव्यापिनी असून पूर्व तिथीने विद्ध असेल ती ध्यावी. सायान्हकालव्याप्ति असतांही पूर्वीचीच ध्यावी, असे माधवाचार्य ह्मणतात. तसें नसेल तर द्वितीयेने युक्त असेल ती ध्यावी. कृष्ण पक्षांतील कोणतीही प्रतिपदा द्वितीयेने युक्त असेल तीच ध्यावी. उपवासाविषयीं व्यावयाची असेल तर, शुक्ल व कृष्ण दोनही पक्षांचे ठिकाणीं पूर्व तिथीने विद्ध असेल तीच प्रतिपदा ध्यावी. अपराहकालव्यापिनी जी प्रतिपदा तिचे ठायीं करावयाचे ते उपवासादि व्रत साचा संकल्प प्रातःकाळीच करावा; संकल्पाचे वेळीं प्रतिपदादि तिथि नसली तथापि तेवेळीं प्रतिपदादि तिथीचा उच्चार करावा. अमावास्यादिक तिथीचा कसं नये. या प्रकारे करून शुद्ध द्वादशी उपोषणास योग्य, इत्यादिक स्थळीं एकादशी-

व्रतसंबंधी संकल्प, पूनादिक करणे, त्या प्रसंगी एकादशीचाच उच्चार करावा. द्वादशीचा करूनये. संध्या अभिहोत्र, इत्यादि जी दुसरीं कामें सांचा संकल्प करतेवेळीं त्या त्या कालाला व्यापणारी अशी द्वादशी इत्यादिकच उच्चारानी, असें मला वाटतें. संकल्प करणे तो सूर्योदयापूर्वी उषःकाली करावा. किंवा सूर्योदयानंतर तीन मुहूर्त पर्यंत जो प्रातःकाल त्यामध्ये दोन मुहूर्तांच्या आंत करावा. तिसरा मुहूर्त निषिद्ध आहे. ॥ याप्रमाणे प्रतिपदेचा निर्णय ज्ञाला. उद्देश सातवा. ॥

द्वितीयेचा निर्णय.

शुक्लपक्षांतील द्वितीया परविद्धा ध्यावी. कृष्णपक्षामध्ये, दिवसाचे दोन भाग करून पूर्वभागामध्ये प्रविष्ट असेल तर पूर्वीची ध्यावी. तशी नसेल तर कृष्णपक्षांतील द्वितीयाही परविद्धाच ध्यावी. ॥ या प्रकारें करून द्वितीयेचा निर्णय ज्ञाला. उद्देश आठवा. ॥

तृतीयेचा निर्णय.

रंभात्रताविषयी तृतीया पूर्वविद्धा ध्यावी. रंभात्रतावांचून दुसऱ्या व्रताविषयी साहा घटिका द्वितीयेने विद्ध जालेली अशी पूर्वीची टाकून दुसऱ्या दिवसी साहा घटिका व्याप्ति असेल ती ध्यावी. पूर्व दिवसी द्वितीयेचा वेध साहा घटिकाहून कमी असेल आणि दुसऱ्या दिवसी साहा घटिकाहून कमी व्याप्ति असेल तर पूर्वीचीच ध्यावी. पूर्व दिवसी साहा घटिका द्वितीयेचा वेध असून दुसऱ्या दिवसी साहा घटिकाहून कमी असली तथापि ती कमीहि ध्यावी. गौरीव्रताविषयी कलाकाष्ठादिपरिमित अल्पद्वितीयायुक्तही निषिद्ध होय. दुसऱ्या दिवसी स्वल्प असली तथापि तीच तृतीया ध्यावी. ज्या वेळीं दिनक्षयानें दुसऱ्या दिवसी चतुर्थीने युक्त अशी अल्पही तृतीया नसेल आणि पूर्व दिवसी द्वितीयेने विद्ध असेल तर द्वितीयेने विद्ध अशी तीच ध्यावी. जेव्हां दिनवृद्धीने पूर्वदिवसी साठ घटिका तृतीया असेल आणि दुसऱ्या दिवसी शेष उरलेली एक दोन घटिका असेल तेव्हां पूर्वीची शुद्ध अशी साठ घटिका तृतीया टाकून चतुर्थीयुक्त असेल तीच गौरीव्रताकरितां ध्यावी. ॥ याप्रमाणे तृतीयेचा निर्णय ज्ञाला. उद्देश नववा. ॥

चतुर्थीचा निर्णय.

गणेशव्रताखेरीज दुसऱ्या व्रताविषयी पंचमीयुक्त चतुर्थी ध्यावी. गौरीव्रत आणि विनायकव्रत याविषयी मध्यान्हकालव्यापिनी ध्यावी. दुसऱ्या दिवसीच मध्यान्हकालव्यापिनी असेल तर दुसऱ्या दिवसाची ध्यावी. दोन दिवसी मध्यान्हकालव्यापिनी

असल्यास, किंवा दोनही दिवसीं मध्यान्हकालव्यापिनी नसल्यास, अथवा दो-
दिवसीं सारखी किंवा कमी नास्ती एकदेशव्याप्ति असेल, तर पूर्व दिवसीं तृत
योग आहे व तो प्रशस्त आहे, या करितां पूर्वीचीच ध्यावी. नागव्रताविषयी :
ती पूर्वदिवसींच मध्यान्हकालव्यापिनी असल्यास तीच ध्यावी. दोन दिवसीं मध-
न्हकालव्यापिनी असेल, किंवा दोनही दिवसीं मध्यान्हकालव्यापिनी नसेल, किं
दोनही दिवसीं सारखी किंवा कमी नास्ती एकदेशव्याप्ति असेल तर पंच
युक्तच ध्यावी. संकष्टचतुर्थी तर चंद्रोदयव्यापिनी ध्यावी. दुसऱ्या दिवसीं चं-
दयास पौंचली असेल तर दुसऱ्या दिवसाचीच ध्यावी. दोन दिवसीं चंद्रोदय
पौंचली असेल तर तृतीयायुक्तच ध्यावी. दोन दिवस चंद्रोदयव्याप्ति नसेल
दुसऱ्या दिवसाचीच ध्यावी. ॥ या प्रकारें करून चतुर्थीचा निर्णय झाला. उद्देश
दाहावा. ॥

पंचमीचा निर्णय.

शुक्ल पक्षातील व कृष्ण पक्षातील पंचमी कोणत्याही कर्माविषयी ध्यावयाची :
चतुर्थीने विद्ध असेल ती ध्यावी. स्कंद व्रताविषयी पंचमी घेणे ती मात्र षष्ठियुक्त ध्याव
नागव्रताविषयी पंचमी षष्ठीने विद्ध असेल ती ध्यावी. दुसऱ्या दिवसीं साहा घटिकांपे
कमी पंचमी असून पूर्व दिवसीं साहा घटिकांहून कमी अशा चतुर्थीने विद्ध असेल त
चतुर्थीविद्ध असेल ती ध्यावी. चतुर्थीचा वेध सहा घटिकां पेक्षा अधिक असेल,
दुसऱ्या दिवसीं चार घटिका पंचमी असेल तर दुसऱ्या दिवसाची ध्यावी. ॥
प्रकारें करून पंचमीचा निर्णय झाला. उद्देश ११ ॥

षष्ठीचा निर्णय.

स्कंदव्रताविषयी पूर्वविद्धा षष्ठी ध्यावी. दुसऱ्या व्रताविषयी परविद्धा ध्यावी. पू-
दिवसीं बारा घटिकांहून कमी पंचमीचा वेध असतां पूर्व दिवसाचीही ध्यावी. षष्ठी
आणि सप्तमी या दिवसीं रविवाराचा योग आला असतां त्याला पद्मकयोग झाल
तात. ॥ या प्रकारें करून षष्ठीचा निर्णय झाला. उद्देश १२ ॥

सप्तमीचानिर्णय.

कोणत्याही कर्माला षष्ठियुक्त अशी सप्तमी ध्यावी. ज्यावेळीं पूर्व दिवसीं सूर्यास
पर्यंत षष्ठी असून दिवसास षष्ठीने विद्ध अशी सप्तमी लाभत नसेल तर दुसऱ्या दिवस
अष्टमीविद्धा असेल ती दुसऱ्या दिवसाचीच ध्यावी. या प्रमाणें दुसऱ्या तिथीच्या निर्णय
विषयीही जाणावें. ॥ याप्रमाणें सप्तमीचा निर्णय जाणावी. उद्देश १३ ॥

अष्टमीचा निर्णय.

व्रतमात्राविषयी शुद्धपक्षांतोळ अष्टमी दुसऱ्या दिवसाची घ्यावी. कृष्णपक्षांतोळ पूर्वाची घ्यावी. मिश्रित अशा शिवशक्तीच्या उत्सवाविषयी कृष्णपक्षांतोळही दुसरीच घ्यावी. शुद्धपक्षांतोळ बुध्याष्टमी प्रातःकालापासून अपराह्नपर्यंत ज्यादिवसी दोन घटिकाहि बुधवारयोग असेल ती घ्यावी; सायान्हकाली, चैत्रमाहिऱ्यांत, श्रावणादि चार माहिऱ्यांमध्ये व कृष्णपक्षाचे ठायीं ग्रेऊं नये. कोणी कृष्णपक्षांतोळ सर्व अष्टमींचे ठायीं कालभैरवाच्या निमित्ताने उपोषण करितात; त्याप्रसंगी, मार्गशीर्ष कृष्णपक्षांतोळ अष्टमीचेठायीं भैरवजयंती असल्यामुळे त्यादिवसाच्या निर्णयावरून मध्यान्हकालव्यापिनी घ्यावी. दोनदिवसी मध्यान्हकालव्यापिनी असल्यास पूर्वाचीच घ्यावी. कौस्तुभामध्ये प्रदोषकालव्यापिनी घ्यावी असे सांगितले आहे, याकरितां दोनदिवस प्रदोषकालव्यापिनी असल्यास, दोनही प्रकारचे वाक्यांचा परस्पर विरोध नसल्यामुळे दुसऱ्या दिवसाचीच घ्यावी. पूर्वदिवसीच प्रदोषकालव्यापि असेल आणि दुसऱ्यादिवसी मध्यान्हकाली व्यापि असेल तर बहुशिष्टाचाराच्या अनुरोधाने प्रदोषकालव्यापिनी पूर्वाचीच घ्यावी. जेथे "राविवार, अमावास्या आणि पौर्णिमा यांचेठायीं रात्रीं भोजनाचा निषेध, व चतुर्दशी आणि अष्टमी या दिवसी दिवसा भोजनाचा निषेध" या वचनाने दिवसा भोजनाचा निषेध मात्र पाळण्याविषयी सांगितले असून किंचित्ही व्रत सांगितले नाही. त्या ठिकाणी "निषेध तर निवृत्तिरूप असून कालमात्राची अपेक्षा करितो" या वचनाने भोजनकालव्यापिनी अष्टमी टाकून नवमीत किंवा सप्तमीत भोजन करावे असे मला वाटते. युक्तायुक्ताचा विचार विद्वानांनी करावा. ॥ याप्रकारे करून अष्टमीचा निर्णय झाला. उद्देश १४ ॥

नवमीचा निर्णय.

सर्वत्र ठिकाणी नवमी अष्टमीने विद्ध असेल तीच घ्यावी. ॥ याप्रकारे करून नवमीचा निर्णय झाला. उद्देश १५ ॥

दशमीचा निर्णय.

दशमीतर उपोषणादिकांविषयी नवमीयुक्तच घ्यावी. पूर्वविद्धा क्षणजे नवमीयुक्त लाभत नसल्यास परविद्धा क्षणजे एकादशीनेयुक्त असेल ती घ्यावी. ॥ याप्रकारे करून दशमीचा निर्णय झाला. उद्देश १६ ॥

एकादशीचा निर्णय.

एकादशीचे उपोषण दोन प्रकारचे आहे. एक भोजनाविषयीचा निषेध पाळणे,

व दुसरें व्रतात्मक उपोषण करणें. पहिल्याविषयीं पुत्रवान् गृहस्थाश्रमी इत्यादिकांना कृष्णपक्षामध्येही अधिकार आहे. व्रतात्मक उपोषण तर पुत्रवान् अशा गृहस्थाश्रमींनीं कृष्णपक्षाचे ठायीं करूं नये; तर मंत्रसहित संकल्प न करितां यथाशक्ति नियमधारणानें भोजन मात्र वर्ज्य करावें, या प्रमाणे तिथीचा क्षय असतां शुक्लपक्षांतील एकादशीविषयीं ही जाणावें. शयनी आणि बोधिनि यांजमघलि कृष्णपक्षाचे एकादशी विषयीं पुत्रवान् गृहस्थाश्रमींना सर्व प्रकारचा अधिकार आहे. विष्णूची सायुज्यता इच्छिणारे व आयुष्य, पुत्र यांतें इच्छिणारे, यांनीं कास्पव्रत दोनही पक्षांमध्ये करावें. याजविषयीं कोणताही निषेध नाही. वैष्णव व गृहस्थाश्रमी यांनीं कृष्ण एकादशीचे ठायीं नित्य उपोषण करावें. हें एकादशीव्रत शैव, वैष्णव, आणि सूर्याची उपासना करणारे जे सौरादिक त्या सर्वांना नित्य आहे. कारण तें न केलें असतां दोष सांगितला. तसेंच या पासून संपत्त्यादि फलप्राप्ति होते यास्तव ते कास्पहि होय. कित्याक ग्रंथकारांचें असे लक्षण आहे कीं, दोन घटिकादि परिमित दशमी असल्यास दशमीतच भोजन करावें. व सूर्योदयाच्या पूर्वीच प्राप्त असा जी शुद्धाधिकाधिकद्वादशी तिचे ठायीं तर एकसारखीं दोन उपोषणे करावीं. या प्रमाणे तिथिपालनहि सांगतात, परंतु ते युक्त नाही. आठ वर्षांनंतर ८० वर्षेपर्यंत एकादशीव्रताचा अधिकार आहे. शक्तिमान् असला त्याला ८० वर्षांनंतरहि अधिकार आहे. सौभाग्यवती स्त्रियांनीं पतीच्या किंवा पिता इत्यादिकांच्या आज्ञांचून उपवास, व्रतादिक आचरण केलीं असतां ते व्रत व्यर्थ होऊन पतीच्या आयुष्याचा क्षय व नरकप्राप्ति होते! अशक्त असतील खांनीं नक्त, हविष्यान्न, अनौदन, फल, तिल, दूध, उदक, तूप, पंचगव्य, वायू, हीं एकाहून दुसरें श्रेष्ठ या मानानें प्रशस्त आहेत; या करितां आपले शक्तितारतम्यानें यांतून कोणत्या तरी एका पक्षाचा स्वीकार करावा, परंतु एकादशीचा त्याग करूं नये. विस्मरणानें एकादशीचे दिवसीं उपोषण न केल्यास द्वादशीचे दिवसींहि व्रत करावें. द्वादशीचेहि दिवसीं न केलें तर यवमध्यचांद्रायण करावें. नास्तिकपणानें न केल्यास पिपीलिकामध्यचांद्रायण करावें. पति, पिता इत्यादिक व्रत करण्यास अशक्त असतां त्यांच्या उद्देशेकरून स्त्री, पुत्र, भगिनी, भ्राता, इत्यादिकांनीं एकादशीव्रत आचरण केल्यास शंभर यज्ञांचें पुण्य लागतें.

आतां व्रतदिवसाचा निर्णय.

या व्रताचे अधिकारी दोन प्रकारचे आहेत. वैष्णव आणि स्मार्त त्यामध्ये ज्याला वैष्णवी दीक्षा आहे इत्यादि लक्षणांनी युक्त ते वैष्णव, व त्याहून निराळे ते स्मार्त. या प्रकारे करून मोठाल्या ग्रंथांत सांगितलें आहे, तथापि परंपरागत प्रसिद्ध चालू

आलेले जे वैष्णव व स्मार्त धर्म, तेच वृद्ध मानितात, असें निर्णयसिंधूत सांगितले आहे त्याप्रमाणेच सर्व देशांत संपूर्णशिश्टांनी ग्रहण केलेला असा विचार चालतो. वेधहि दोन प्रकारचा आहे. अरुणोदयी दशमीवेध व सूर्योदयाचे ठायी दशमीवेध. सूर्योदयाच्या पूर्वीच्या चार घटिका तो अरुणोदय. सूर्योदय तर उघड आहे. त्यामध्ये ५६ घटिका नंतर एक पळमात्र दशमीचा प्रवेश जाला असेल तर तो अरुणोदयवेध. तो वैष्णवांविषयी घ्यावा. साठ घटिकांनी सूर्योदय झाल्यानंतर एक पळमात्र दशमी असेल तर तो सूर्योदयवेध. हा स्मार्तांविषयी घ्यावा. ज्योतिषशास्त्रवेद्यादिकांच्या वादाने वेधादिकां विषयी संदेह उत्पन्न होईल तर किंवा अनेक वाक्यांच्या विरोधाने ब्राह्मणांमध्ये वाद उत्पन्न होईल तर एकादशी टाकून द्वादशीचे दिवसी उपोषण करावें.

एकादशीचे भेद.

आतां एकादशी दोनप्रकारची आहे. विद्धा आणि शुद्धा. अरुणोदयवेधवती ती विद्धा. ती टाकून वैष्णवांनी द्वादशीस उपोषण करावें. अरुणोदयवेधरहित ती शुद्धा. ती चार प्रकारची आहे—एकादशीमात्राधिक्यवती, द्वादशीमात्राधिक्यवती, उभयाधिक्यवती, अनुभयाधिक्यवती; येथे आधिक्य ह्मणजे सूर्योदयानंतर तिथीचे असणें. आतां त्याची उदाहरणे.—दशमी घटिका ५५, एकादशी ६०१, द्वादशीचा क्षय ५८, ही एकादशीमात्राधिक्यवतीशुद्धा. यावरून वैष्णवांनी दुसऱ्या दिवसाची उपोषणास घ्यावी. स्मार्त गृहस्थांनी पूर्वे दिवसीची घ्यावी. दशमी ५५, एकादशी ५८, द्वादशी ६०१, ही शुद्धाद्वादशीमात्राधिक्यवती. याठिकाणी वैष्णवांनी द्वादशीचेठायी उपोषण करावें. स्मार्तांनी पूर्वे दिवसीची घ्यावी. आतां दशमी ५५, एकादशी ६०१, द्वादशी ५, ही शुद्धाउभयाधिक्यवती, याठिकाणी सर्व वैष्णव व स्मार्त यांणी उपोषणाकरितां पुढचीच घ्यावी. आतां दशमी ५५, एकादशी ५७, द्वादशी ५८, ही अनुभयाधिक्यवतीशुद्धा. याठिकाणी वैष्णव व स्मार्त यांणी उपोषणाकरितां पूर्वीचीच घ्यावी. ॥ याप्रमाणे संक्षेपें करून वैष्णवांचा निर्णय ज्ञाळा. ॥

आतां स्मार्तांचा निर्णय.

आतां सूर्योदयवेधरहित ती शुद्धा, व सूर्योदयवेधवती ती विद्धा. याप्रमाणे दोन प्रकारची, त्यांपैकी प्रत्येकाचे चारचार भेद आहेत. एकादशीमात्राधिक्यवती, उभयाधिक्यवती, द्वादशीमात्राधिक्यवती, अनुभयाधिक्यवती, याप्रमाणे आठ भेद होतात. याची उदाहरणे—दशमी ५८, एकादशी ६०१, द्वादशीचा क्षय ५८, ही शुद्धाएकादशीमात्राधिक्यवती; दशमी ४; एकादशी २, द्वादशी क्षय ५८, याप्रकारे विद्धा एकादशीमात्रा

धिक्यवती; यादोनही उदाहरणांवरून स्मार्त गृहस्थाश्रमी यांनीं उपोषण करितां पूर्वीची घ्यावी. संन्यासी, निष्काम गृहस्थाश्रमी, वानप्रस्थ अश्रमांत राहणारे, विधवा, आणि वैष्णव यांनीं पुढचीलाच उपोषण करावें. विष्णूची प्रति व्हावी असी इच्छा करण स्मार्त असतील त्यांनीं दोन उपोषणें करावीं असे किति एक ग्रंथकार झणतात. उभय धिक्यवती शुद्धा ती असी—दशमी ५८, एकादशी ६०।१, द्वादशी ४; उभय धिक्यवती विद्धा अशा प्रकारची—दशमी २, एकादशी ३, द्वादशी ४, या दोनही उदाहरणांचे योगाने सर्व स्मार्तांनीं आणि वैष्णवांनीं अर्वाशिष्ट राहिलेली दुसऱ्या दिवसाचीच उपोषणा करितां घ्यावी. द्वादशीमात्राधिक्यवती शुद्धा ती असी—दशम ५८, एकादशी ५९, द्वादशी ६०।१, ही शुद्धा असल्यामुळे स्मार्तांनीं एकादशीचे दिवसांचे उपोषण करावें, द्वादशीचे दिवसां कळू नये, असे माधवाचार्यांचें मत आहे हेमाद्रीचें मत तर सर्वांनीं पुढची द्वादशीच उपोषणाला घ्यावी असे आहे. मुमुक्षु स्मार्तांनीं पुढचीलाच उपोषण करावें, असे किति एक ग्रंथकार झणतात. द्वादशीमात्राधिक्यवती विद्धा ती असी—दशमी १, एकादशी क्षयाला पौर्णमासी ५८, द्वादशीची वृद्धि ६०।१, या प्रसंगीं एकादशी विद्धा असल्यामुळे स्मार्तांनीं द्वादशीचे दिवसांचे उपोषण करावें. त्या प्रमाणेच उभयाधिक्यवती व द्वादशीमात्राधिक्यवती यांचे ठायीं स्मार्तांनीं विद्धेचा त्याग करावा. इतर प्रसंगीं कळू नये. वैष्णवांनीं साहा प्रकारचीहि आधिक्यवती टाकून द्वादशीच उपोषणाकरितां घ्यावी. आतां अनुभयाधिक्यवती सिद्धा, ती असी—दशमी ५७, एकादशी ५८, द्वादशी ५९, या प्रसंगीं स्मार्तांनीं एकादशीचे दिवसांचे उपोषण करावें. द्वादशीस कळू नये. ही एकादशी विद्धा असल्यामुळे वैष्णवांनीं द्वादशीचे दिवसां उपोषण करावें. अनुभयाधिक्यवती विद्धा, ही असी—दशमी २, एकादशीचा क्षय ५६, द्वादशी ५५, या प्रसंगीं हि स्मार्तांनीं एकादशीचे दिवसां उपोषण करावें. वैष्णवांनीं द्वादशीचे दिवसां उपोषण करावें. या ठिकाणीं अनुभयाधिक्यवती जी विद्धा तिच्या शेवटील भेदाचे प्रसंगीं, पहिल्या दोन भेदां प्रमाणेच संन्यासी, मुमुक्षु आणि विधवा, यांनीं पुढलीलाच उपोषण करावें. विष्णु-प्रति इच्छिणारांनीं दोन उपोषणें करावीं असे तुल्ययुक्तीने वाटते. हल्लीं संपूर्ण शिष्ट लोक तर निष्कामव्रत व हेमाद्रीमत यांचा अनादर करून माधव मतानेंच साधारणपणें सर्व स्मार्त निर्णय सांगतात. दोन उपोषणें करावीं, किंवा शुद्धादिक द्वादशीचे दिवसां सर्वानां पुढील एक उपोषण करावें, असे कोठें सांगत नाहींत. या प्रमाणेच सर्व देशांमध्ये बहुधा माधवांनीं सांगितल्याप्रमाणेच प्रचार चालत आहे असे जाणावें. या प्रमाणे वैष्णवांचे १८ भेद, आणि स्मार्तांचे १८ भेद या सर्वांचा

निर्णय य उदाहरणांनीं गतार्थ झाला असें समजावें. यानून विशेष विस्तार पाहिजे असल्यास भोठ्या ग्रंथांतून पहावा. याविषयीं अठरा भेदांचीं निरनिराळीं उदाहरणें सांगावीं व त्यांचा निर्णय पृथक् पृथक् सांगावा तर अज्ञांला केवळ श्रीती मान उत्पन्न होईल, यास्तव त्या निर्णयाचा निराळा पट लिहून ठेविला आहे.

एकादशीचे वेध.

आतां मध्यरात्रीनंतर दशमी असेल तर कपालवेध, १२घटिका दशमी असल्यास छायावेध, १३घटिका असेल तर ग्रस्तवेध, १४घटिका दशमी असेल तर संपूर्णवेध, १५घटिका असल्यास अविवेध, १६घटिका असेल तर महावेध, १७घटिका असल्यास प्रलयवेध, १८घटिका असेल तर महाप्रलयवेध, १९घटिका असेल तर घोरवेध, ६०घटिका असेल तर राक्षसवेध, या प्रकारें करून नारदानें वेधचे भेद सांगितले आहेत. मध्वादिमतास अनुसरणारे जे कोणी आहेत त्यां पैकीं क्लियेकच थाला अनुसरतात. माध्वाचार्यादिक सर्व संमत असा १६घटिका वेध (महावेध) जाणावा. दशमी पंधरा घटिकांनीं एकादशीला दूषित करिते असें जे सांगितलें तें उपवासव्रताविषयीं होय. व्रताचीं अंगभूत जीं संकल्प, पूजादिक, त्या विषयीं दूषित एकादशी असली तरी सर्वथा त्यांचा त्याग करूं नये. कां तर प्रातःकालीं करावयाचीं जीं संकल्प, पूजादिक तीं मध्यान्हा नंतर करावीं असें जाणावें.

आतां व्रताचा प्रयोग.

उपवासाच्या पूर्वं दिवसीं प्रातःकालीं नित्यकर्म केल्या नंतर, “दशमी पासून तीन दिवस मी तुझें व्रत करितों, हे देव देवेश केशवा, तें निर्विघ्न कर.” या प्रमाणे संकल्प करून मध्यान्हीं एकभुक्त करावें; त्याचे नियम—कांस्यपात्रांत भोजन, मांस, मधुरा, दिवसा निद्रा, अति भोजन, अति उदकपान, पुनः भोजन, मैथुन, मद्य, अनृत भाषण, चणें, कोडू, शाका, परान्न, दूत, तैल, तिलपिष्ट, तांबूल, हीं वर्ज्य करावीं. एकभुक्त व्रताचे ठायीं काष्ठानें दांत घासावे. रात्री भूमीवर शयन करून एकादशीचे दिवसीं प्रातःकालीं वृक्षाच्या पानादिकानें दंतधावन करावें. काष्ठानें करूं नये. स्नानादि नित्यकर्म केल्या नंतर हातांत दर्भपत्रिक धारण करून उत्तर दिशेस मुख करून उदकानें भरलेंलें ताम्रपात्र हातांत घेऊन संकल्प करावा. तो अस “एकादश्यां निराहारा भूभूवाऽहमवरेऽहनि ॥ भोक्ष्यामिपुंडरीकाक्ष शरणं मे भवाच्युत” किंवा या मंत्रानें पुष्पाजली विष्णूला अर्पण करावी. अशक्त असेल त्याणें तर “एकादश्यां जलाहारो एकादश्यां क्षीर भक्षो एकादश्यां फलाहारो एकादश्यां नक्तभोक्ता” इत्यादि ऊहे करून

यथाशक्ति संकल्प करावा. शैवांनीं रुद्रगायत्रीनें संकल्प करावा. सूर्योपासकांनीं निखगायत्रीनें किंवा नाममंत्राने संकल्प करावा. हा संकल्प सूर्योदया नंतर दशमं असल्यास स्मार्तानीं एकादशीचे ठायीं रात्रीं करावा. मध्य रात्रीनंतर दशमी असेल तर सर्वत्रांनीं एकादशीचे दिवसीं माध्यान्हकाला नंतर करावा. संकल्प केल्या नंतर अष्टाक्षर मंत्राने तीन वेळे उदक मंत्रून ते प्राशन करावे. नंतर पुण्यांचा मंडप करून शामध्ये पुष्पे, गंध, धूप, दीप, नैवेद्य, काहीं उत्तम स्तोत्रे, नानाप्रकारचीं सुस्वर गीते, मनोहर वाद्ये, साष्टांग नमस्कार व उत्तम जयशुद्ध, यांनीं विधियुक्त विष्णूची पूजा करून रात्री जागरण करावे.

एकादशीचे ठायीं करावयाचे नियम.

पाखंडी याजवरावर संभाषण, स्पर्श, दर्शन हीं वर्ज्य करावीं- ब्रह्मचर्य, सत्यभाषण, दिवसा निद्रा करणे, हे एकादशीचे नियम होत. तसेच परिभाषेत सांगितले ते जाणावे. पाखंडी याचे दर्शन झाले तर सूर्याचे दर्शन घेतल्या नंतर शुद्ध होतो; त्याचा स्पर्श झाला असता स्नान करून सूर्याचे दर्शन घेतल्या नंतर शुद्ध होतो; त्याच्याशीं संभाषण झाल्यास तर ज्ञाता याणे अच्युताचे चिंतन करावे. याप्रमाणे प्रायश्चित्त जाणावे. उपोषणाचे दिवसीं श्राद्ध प्राप्त झाले असतां ते करून श्राद्धाल शेष राहिल ते एका पात्रावर वाटून त्या सर्व अन्नाचे अवघ्राण करावे, व ते पात्र गाई इत्यादिकांला द्यावे. कंद, मूल, फळे, इत्यादिक भक्षण करून गौणपक्षाने उपोषण करणारा असेल त्याणे तीं कंद, मूले, फळे, पितृस्थानीं बसलेल्या ब्राह्मणांच्या पात्रांत वाटून शेष राहतील तीं भक्षण करावीं. " हे राजा, जे वेळीं एकादशीचे ठायीं मृत झालेल्यांचा श्राद्ध दिवस येईल त्या प्रसंगीं तो दिवस टाकून द्वादशीचे दिवसीं श्राद्ध करावे " इत्यादी वचनें यथाचार वैष्णवपर जाणावीं. वैष्णवांना सोळा महालय करणे असल्यास त्यांनीं " एकादश्यधिकरणकं द्वादश्यधिकरण कंच महालयंतरेण करिष्ये " असा संकल्प करून द्वादशीचे दिवसीं दोन महालय करावे. काभ्य उपोषणाचे दिवसीं सूतक प्राप्त झाले असतां शारीरिक नियम स्वतः करून सूतक गेल्या नंतर पूजा, दान, ब्राह्मणभोजन, इत्यादिक करावे. *नियोपवासाचे दिवसीं सूतक प्राप्त होईल तर स्नान करून विष्णूला नमस्कार करावा आणि निरा हारादिक नियम आपण स्वतः करून पूजा इत्यादिक ब्राह्मणद्वारा करवावीं. दाने वगैरे करूं नयेत. सूतकसमाप्ती नंतर पुनः ते करण्याची आवश्यकता नाहीं. या प्रमाणे रजस्वलादि दोष प्राप्त झाले असतांही समजावे. द्वादशीचे दिवसीं प्रातः काळीं निध पूजा करून भगवताकारणे व्रतसमर्पण करावे; " अज्ञानतिमिरांधस्य व्रतेनानेन केशव, प्रसीद सुमुखो नाथ ज्ञानदृष्टिप्रदोभव "* दशमी इत्यादिक तीन दिव-

सांगितलेल्या नियमांचा भंग होईल, किंवा दिवसा निद्रा, अतिउदकपान, मिथ्या भाषण, घातून जें घडेल तेणेकरून जो नियम भंग होईल त्याच्या उद्देशे नारायणाचे अष्टाक्षरमंत्राचा एकशेआठ वेळ जप करावा. अल्प दोष असेलतर नामा तीनशे जप करावा. रजस्वला, चांडाळ, रजक, वाळंतीण, इत्यादिकांचे शब्द व्रतामध्ये हातील तर एकहजारआठ गायत्री जप करावा. नंतर नैवेद्य आणि तुलसी यांहीं मिश्रित गा अन्नानें पारणा करावी. पारणेचे भोजनामध्ये आंवेळे भक्षण केले असतां चांडादिकांशीं संभाषणादिक केल्याचा दोष दूर होतो. द्वादशीचें उलंघन केले असतां या दोष आहे या करितां द्वादशीमध्येच पारणा करावी. द्वादशी अल्प असेल तर योदया पासून मध्यान्हकालापर्यंतचीं सर्व कर्मे अपकर्षानें करावीं. अमिहोवाचा अपकर्ष करूं नये असें कितीएक ग्रंथकार लक्षणतास. 'रात्रीं श्राद्ध करूं नये' असा निबंध आहे यास्तव श्राद्धाचाहि अपकर्ष करूं नये. अति संकट, श्राद्ध, प्रदोषादिक व्रत अशा समयी तीर्थ घेऊन पारणा करावी. द्वादशी पुष्कळ असल्यास हरिवासर नांवाचाद्वादशीचा प्रथम पाद टाकून पारणा करावी. कलामावसुद्धां द्वादशी नसेल तर त्रयोदशीत पारणा करावी. माध्यान्हकाला नंतर द्वादशी असेल तर प्रातःकाला पासून साहा घटिकां मध्येच पारणा करावी, माध्यान्ह कालीं करूं नये, असे पुष्कळ ग्रंथकारांचें मत आहे. निरनिराळ्या कर्मांचे निरनिराळे काल आहेत यास्तव अपहारणह कालींच पारणां करावी, असेहि कित्येकांचे मत आहे. सर्व मासांचे ठायीं शुक्लपक्षांतील किंवा कृष्णपक्षांतील द्वादशीचे दिवसीं श्रवण नक्षत्राचा योग असल्यास सशक्तानें एकादशी आणि द्वादशी या दोनहि दिवसीं उपोषण करावें. अशक्त असेल त्याणे एकादशीचे दिवसीं फलाहार इत्यादिक गौणपक्ष स्वीकारून श्रवण द्वादशीला उपोषण करावें. विष्णुशृंगखल योग असेल तर एकादशीचे दिवसींच श्रवण द्वादशीचा उपवास करून श्रवणयोगविरहित अशा द्वादशीचे दिवसीं पारणा करावी. द्वादशी श्रवणापेक्षां कमी असेल तर द्वादशीचें उलंघन झालें असतां महादोष आहे या करितां श्रवणपुस्त द्वादशीमध्येच पारणा करावी. विष्णुशृंगखलयोगादे कांचा निर्णय भाद्रपद मासांतील श्रवणद्वादशी अर्ण्यां सांगण्यात येईल. दिवसा निद्रा, परान्धभोजन, दुसऱ्याने भोजन, मद्य, कांस्यपात्रांतभोजन, आमिष, तेल, हे आठ प्रकार द्वादशीचे दिवसीं वर्ज्य करावे. दूत, क्रोध, चर्ण, कौटू, उडोद, तिलापिष्ट, मसुरा, नेत्रांतअंजन घालणे, मिथ्याभाषण, लोभ, आयास, प्रयाण, भारवाहणे, अध्ययन, तांबूल, इत्यादिक वर्ज्य करावीं. हे सर्व नियम काव्य व्रताविषयीं अवश्य पाळावे. नियंत्रताविषयीं तर सशक्त मनुष्यानें विशेषेकरून नियम पाळावे. मुग्ध

नियमांविषयी अशक असल्यास अहोरात्र उपोषण करावे. इतिपानिग्रही होताना, श्रद्धायुक्त, विष्णुतमर, असा. एकादशीचे दिवसी उपोषण केल्याने यापासून निःसंशय मुक्त होतो. दुसऱ्याला भोजनकर, असे संगती अथवा भोजन करितो ते दोघाहे नरकामत जातात. एकादशीव्रताचे योगाने संपत्ति व विष्णूची सायुज्यताही प्राप्त होतात. याप्रकारे करून एकादशीव्रताचा निर्णय झाला. कार्यांतराचे ठिकाणी द्वादशीयुक्तच एकादशी ध्यावी. ॥ याप्रमाणे एकादशीचा निर्णय झाला. उद्देश १७ ॥

द्वादशीचा निर्णय.

द्वादशीतर एकादशीने विद्ध असेल ती ध्यावी. आतां आठ प्रकारच्या महाद्वादशी आहेत. या अशा—शुद्धादिक एकादशीने युक्त जी द्वादशी तिला उग्यालनी झणतात. शुद्धादिक द्वादशीच वाटते तिला वंजुली झणतात. सूर्योदयाला एकादशी, यानंतर क्षयाला पौर्णमासी द्वादशी, आणि दुसऱ्या दिवसी सूर्योदयी त्रयोदशी, याप्रमाणे एका अहोरात्राचे ठायी तीन तिथीला स्पर्श होतो झणून या द्वादशीला त्रिस्पर्श असे झणतात. अमावास्येची किंवा पौर्णिमेची ज्या प्रसंगी दिनवृद्धि होते तेव्हां पक्षवर्दिनी द्वादशी. पुष्यनक्षत्राने युक्त ती जया. श्रवणाने युक्त ती विजया. पुनर्वसूने युक्त ती जयंती. रोहिणीने युक्त ती पापनाशिनी. पापाचा क्षय व मुक्ति यांची इच्छा करणाऱ्यांनी आठ द्वादशीला उपोषण करावे. श्रवण नक्षत्राने युक्त जी द्वादशी ती एकादशीप्रमाणे नित्य आहे. या आठ द्वादशीतून कोणतीही द्वादशी व एकादशी या दोन्ही एकदिवसी प्राप्त झाल्यास एकत्राने उपवास कारावा. निरनिराळ्या दोनदिवसी असतां सशक्त मनुष्याने दोन उपोषणे करावी. जर दोन व्रते पूर्वी आरंभिलेली असून दोन उपोषणे करण्यास शक्ति नसेल तर द्वादशीचे उपोषण केल्याने दोन व्रतांचे पुण्य प्राप्त होतें. या उपोषणा विषयी श्रवणनक्षत्राचा योग दोन घटिका असल्यास तोही ध्यावा. उपोषण असल्यास पुण्य, पुनर्वसु व रोहिणी, ही नक्षत्रे सूर्योदयापासून अस्तमानपर्यंत जसी असतील तसी ध्यावी. पारणा करावयाची ती तर तिथि व नक्षत्र यांच्या संयोगी उपोषण असेल तर दोहोच्या अंती किंवा दोहोतून एकाच्या अंती करावी, असा सर्वमान्य निर्णय जाणावा. ॥ या प्रकारे करून द्वादशीचा निर्णय झाला. उद्देश १८ ॥

त्रयोदशीचा निर्णय.

त्रयोदशी, शुक्लपक्षातील पूर्वदिवसाची व कृष्णपक्षातील दुसऱ्या दिवसाची ध्यावी. शनिवाराने युक्त अशा कोणते तरी एका त्रयोदशीस आरंभ करून एक वर्ष पर्यंत प्रत्येक पक्षाचे ठायी किंवा शनिवारयुक्त चावीस शुक्ल त्रयोदशीचे ठायी साव-

रावयाचें जें प्रदोषकारी शिवपूजा नक्तभोजनात्मक व्रत, त्या व्रताविषयी सूर्यास्तानंतर सहा घटिका जो प्रदोषकाल त्यास व्यापणारी त्रयोदशी ध्यावी. दोन दिवस प्रदोषकालव्याप्ति असेल, किंवा दोनदिवस प्रदोषकारी सारखी एकदेशव्याप्ति असेल तर पुढची ध्यावी. दोनदिवस विषममानानें एकदेशव्याप्ति असेल, आणि देवपूजा, भोजन, हीं त्या एकदेशव्याप्तीमध्ये होत इतकी अधिक न मिळेल तर पूर्वीचीहि ध्यावी. तसें नसल्यास साम्य पक्षाप्रमाणें पुढचीच ध्यावी. दोनही दिवसीं सर्वथा व्याप्ति नसली तथापि पुढचीच ध्यावी. ॥ याप्रमाणें त्रयोदशीचा निर्णय ज्ञाला. उद्देश १९ ॥

चतुर्दशीचा निर्णय.

चतुर्दशीतर शुक्लपक्षातील दुसऱ्या दिवसाची व कृष्णपक्षातील पूर्व दिवसाची ध्यावी. प्रत्येक महिन्याचे कृष्ण चतुर्दशीचे दिवसीं काम्य असें शिवरात्रिव्रत करितात, त्याविषयी महाशिवरात्रीप्रमाणे मध्यरात्रव्यापिनी असेल तीच ध्यावी. दोनदिवसीं मध्यरात्रव्याप्ति असेल तर प्रदोषकालव्याप्ति अधिक आहे या करितां दुसऱ्या दिवसाची ध्यावी. प्रदोषव्याप्तीच्या अधिकःवास्तव किती एक प्रदोषमात्रव्यापिनी ग्रहण करितात. परंतु त्या प्रसंगीं मूळ विचार करावा. जेव्हां चतुर्दशीचे दिवसीं दिवसा भोजनचा निषेधच निस पाळला जातो तेव्हां भोजनकालव्यापिनी चतुर्दशी टाकून त्रयोदशीत किंवा पौर्णिमेत भोजन करावें. शिवरात्रिव्रत करणारांनीं तर चतुर्दशीतच पारणा करावी. चतुर्दशी, अष्टमी, यादिवसीं दिवसा भोजनाचा निषेध सांगितला तो या ठिकाणीं नाहीं. कारण, विधिप्रामाण्यविषयी निषेध प्रवृत्त होत नाहीं. ॥ या प्रमाणे चतुर्दशीचा निर्णय ज्ञाला. उद्देश २० ॥

पौर्णिमा व अमावास्या यांचा निर्णय.

सावित्रीव्रताखेरीज पौर्णिमा व अमावास्या दुसऱ्या दिवसीं असतील त्या ध्याव्या. श्रावणांतील व फाल्गुनांतील पौर्णिमा कुलधर्म इत्यादिक कर्माविषयी पूर्णविद्धा घेण्या विषयी सांगितलें, यावरून कितीएक ग्रंथकार कुलधर्माविषयीं सर्व पौर्णिमा पूर्वीचीच घेतात, परंतु साजबद्दल मूळ शोध करावा. चतुर्दशी १८ घटिकांहून कमी असेल तर “चतुर्दशी १८ घटिकांनीं पौर्णिमेला दूषित् करिये” या वचनावरून चतुर्दशीच्या तशा वेधाचा दोष नाहीं असें आहे, त्या पक्षां तशा प्रसंगीं कुलधर्माविषयीं पूर्व दिवसाचीच ध्यावी. परंतु १८ घटिकांपेक्षां अधिक चतुर्दशीचा वेध असेल तर पूर्वतिथीनें विद्ध असी पौर्णिमा घेऊं नये असें मला वाटतें. अमावास्याचे दिवसीं भौमवाराचा किंवा सौमवाराचा योग असेल तर स्नानदानादिकांविषयीं महा पुण्य

कारक आहे. या प्रमाणेच भानुसप्तमी, भौमयुक्त चतुर्थी जाणावी. सोमवाराने युक्त अशा अमावास्येचे दिवसी अश्वयुजादिरूप जे सोमवतीव्रत करितात, त्या विषयी अपराण्हकालपर्यंत दोन घटिका जरी अमावास्येचा योग असेल तथापि व्रत करावे दिवसाच्या शेवटील सहा घटिका जो सायान्हकाल त्याचे ठायी, आणि रात्री योग असल्यास कसं नये, असा शिष्टाचार आहे. संन्यासी यांणीं क्षौरादिक कर्माविषयी सूर्योदयकालीं त्रिमुहूर्तव्यापिनी पौष्णिमा घ्यावी. तिसऱ्या मुहूर्ताला स्पर्श नसेल तर चतुर्दशीयुक्त असेल ती घ्यावी. ॥ या प्रमाणे पौष्णिमेचा निर्णय झाला. उद्देशः ॥ २१ ॥

आतां इष्टिकाल.

पक्षाच्या शेवटले उपवासकाल, आणि पक्षाचे आद्य यजनकाल. अन्वाधान नामक उक्त कर्म त्याचे नांव उपवास. पर्वाचा जो चवथा अंश, आणि प्रतिपदेचे पहिले तीन अंश मिळून जो काल तो यागकाल जाणावा. तो प्रातःकाळीं पंडितांनीं सांगितला प्रतिपदेच्या चवथ्या चरणाचे ठायीं याग करूं नये असा नियम आहे. पर्वाचे दिवस अन्वाधान करून दुसऱ्या दिवसी याग करावा, अशा प्रकारच्या उक्तकालाची सहज प्राप्ति होते. या करितां पर्व व प्रतिपदा संपूर्ण असतील तर त्याज विषयी संपय नाही पर्व खंडित असल्यास पर्वापेक्षां प्रतिपदेच्या क्षयवृद्धीच्या घटिका मोजून क्षय असत निमे घटिका पर्वांत कमी कराव्या; व वृद्धी असतां पर्वांत मिळवाव्या. व त्याजवरून संधिकाल जाणून त्याचे योगाने अन्वाधानादि कालाचा निर्णय करावा. जेथे क्षयवृद्धि होत नाही, तेथे जो आहे तो स्पष्टच संधि आहे. संधि चार प्रकार—पूर्वाण्हसंधि, मध्याण्हसंधि, अपराण्हसंधि, आणि रात्रिसंधि. या प्रमाणे दिवसाचे दोन भाग करून सूर्योदया पासून दोन प्रहर पर्यंत जो काळ तो पूर्वाण्हकाल, व दिवसाचा पुढील अर्धा भाग तो अपराण्हकाल. पूर्वाण्हाची शेवटची एक घटिका व अपराण्हाची प्रथम एक घटिका, मिळून ज्या दोन घटिका संधिभूत होतात, तो माध्यण्ह संधि; याला कौस्तुभामध्ये अवर्तन असं दुसरें नांव आहे. एकपलमात्र असा जो दोहोंकडी संधि तोच माध्याण्हसंधि, दोन घटिकांचा तो कांहीं माध्यान्यसंधि नाही, अशा प्रकारच बहुत करून हल्लीं शिष्टाचार आहे. या करितां पूर्वी सांगितलेल्या रीतीनें ज्या प्रमा क्षय किंवा वृद्धि असेल त्या प्रमाणे घटिका कमी कराव्या किंवा मिळवाव्या, आं संधीचा निर्णय करावा. पर्व आणि प्रतिपदा यांचा संधि पूर्वाण्ही किंवा माध्याण्ह होईल तर ज्या दिवसी संधि होईल त्याच्या पूर्व दिवसी अन्वाधान करावे आणि संधि दिवसी याग करावा. अपराण्हकालीं किंवा रात्री जर संधि होईल तर संधिदिवस

अन्वाधान आणि त्याच्या दुसऱ्या दिवसां याग करावा. पाचें उदाहरण—पर्व १७ घटिका, प्रतिपदा ११ घटिका, प्रतिपदेचा क्षय ६ घटिका, त्या क्षयाचें अर्ध तीन घटिका पर्वान्त कमी केल्या, तेव्हां चवदा घटिकापरिमित संधि झाला; आतां हा तीस घटिकांच्या दिनमानानें पूर्वाण्हसंधि होतो. २८ घटिका दिनमान असेः तर माध्यान्हसंधि होतो. या उदाहरणांत संधिदिवसाचे ठायीं याग आणि त्याच्या पूर्वे दिवसां अन्वाधान या प्रमाणें करावीं. दुसरे उदाहरण—पर्व १४ घटिका, प्रतिपदा १९ घटिका; येथें वृद्धि ९ घटिका, त्या वृद्धीचें अर्ध अडीच घटिका, त्या पर्वान्त मिळविल्या तेव्हां साडे सोळा घटिकाप्रमाण संधि झाला. आतां हा तीस घटिकांच्या दिनमानानें अपराण्हसंधि होतो; या उदाहरणांत संधिदिवसाचे ठायीं अन्वाधान व दुसऱ्या दिवसां याग या प्रमाणें करावीं.

आतां सर्वांना बोध व्हावयाकरितां याचे आणखी भेद सांगतां.

सूर्योदया नंतर पूर्वाच्या उद्या घटिका शेष असतील त्या आणि प्रतिपदेच्या घटिका, सर्व एकत्र मिळवाव्या. नंतर त्या एकत्र केल्या सर्व घटिका दिनमानाहून कमी असतील तर पूर्वाण्हसंधि, दिनमानाशीं समान असल्यास माध्यान्हसंधि, आणि दिनमानाहून अधिक होतील तर अपराण्हसंधि, या प्रमाणें संधि जाणावे. या प्रमाणें सूर्योदया नंतर येणारे जे पर्व व प्रतिपदा त्यांच्या क्षयवृद्धीवरूनच संधि पाहतात. हाच आचार प्रस्तुत सर्वत्र शिष्टाचाराचे ठिकाणीं प्रसिद्ध आहे. कौस्तुभादि ग्रंथांमध्ये तर चतुर्दशीचे दिवसांतल्या उदयाच्यापूर्वी पर्वान्या गतघटिका, आणि उदया नंतर पृढ्या घटिका या एकत्र मिळवाव्या, या प्रमाणें प्रतिपदेच्या पूर्वादिवसाच्या घटिका व दुसऱ्या दिवसाच्या घटिका, या सर्व एकत्र मिळवाव्या, व पर्वान्या अपेक्षेनें प्रतिपदेची वृद्धि किंवा क्षय हीं जाणावीं. लग्ने ते असे—चतुर्दशी २२ घटिका, पर्व १७ घटिका, चतुर्दशीचे दिवसांतल्या पर्वघटिका ३८, पृढ्या दिवसांतल्या पर्वघटिका १७, ह्या सर्व एकत्र मिळवून ९९ झाल्या. पर्वदिवसांतल्या प्रतिपदेच्या घटिका ४३, पृढ्या दिवसांतल्या प्रतिपदेच्या घटिका ११, त्या सर्व एकत्र मिळवून ९४घटिका झाल्या. या उदाहरणा मध्ये प्रतिपदेचा क्षय एक घटिका, त्याचें अर्ध अर्धी घटिका, ती पर्वान्त कमी केली तेव्हां साडे सोळा घटिकाप्रमाण संधि झाला, लग्ने हा अपराण्हसंधि होतो. पूर्वाच्या मता प्रमाणें तर या उदाहरणांत पूर्वाण्हसंधि होतो. त्या प्रमाणेंच चतुर्दशी २४ घटिका, पर्व १७घटिका, गत घटिका ३६, येणाऱ्या घटिका मिळविल्या तेव्हां ९३ घटिका झाल्या. प्रतिपदा घटिका ११, गतघटिका आणि येणाऱ्या घटिका या एकत्र केल्या तेव्हां ९४

झाल्या. या उदाहरणांमध्ये पूर्वी सांगितलेल्या रीतीने क्षयाच्या उदाहरणांमध्ये वृद्धि एक घटिका, तिचे अर्ध अर्ध घटिका, ती मिळविली तेव्हां साडेसतरा घटिकाप्रमाण अपराण्हसंधि झाला. या प्रमाणे हा पूर्वीच्या मताचा, आणि ह्या मताचा वृद्धि, क्षय इत्यादि सर्वच विपरीत आहे या कारितां परस्पर अग्रंत विरोध झाला. ह्या मतांमध्ये दोन घटिकांहून अधिक वृद्धि किंवा क्षय संभवत नाही. 'दुसऱ्या दिवसी ह्या घटिका कभी किंवा अधिक या प्रमाणे बहुवचन आहे' ते असंगत होय, असे पुरुषार्थीचतामणीमध्ये दूषण दिलेले आढळते.

आतां पौर्णिमेविषयी विशेष निर्णय.

संगकालानंतर तेराव्या घटिकेस आरंभ करून अर्धा दिवसाच्यापूर्वी संधि असेल आणि पौर्णिमा तत्कालच असेल तर पौर्णिमेमध्ये संधिदिवसाच्याठायीच अन्वाधान करून याचवेळीं याग करावा. पौर्णिमेचे दिवसी अन्वाधान व याग करण्याविषयी सांगितले तो विकल्प आहे असे कितीएक ग्रंथकारांचे मत आहे. अमावास्येमध्ये निरनिराळे सर्वत्र प्रसंगीं दोन काल असतात. कोणतेहि वेळीं एककालीं ते कर्मास उपयोगी येत येत नाहीत. पौर्णिमेमध्ये किंवा अमावास्येमध्ये अपराण्हसंधि असेल तर प्रतिपदेचे चवथ्या चरणाचेठायीं याग केला असतां दोष नाही. अमावास्येमध्ये अपराण्हसंधि असतांहि प्रतिपदेचेठायीं सहा घटिकांहून अधिक इतकी द्वितीया प्रविष्ट असेल तर सा दिवसी चंद्रदर्शनाचा संभव आहे, व चंद्रदर्शनाचे दिवसी याग करण्याचा निषेध आहे, या कारितां बौधायन इत्यादिकांनीं चतुर्दशीमध्ये अन्वाधान करून अमावास्येतच इष्टि करावी. अमावास्येचे दिवसी सातघटिका प्रतिपदा नसेल तर चंद्रदर्शन असले तयापि बौधायनांनीं प्रतिपदेतच इष्टि करावी. आश्वलायन, आपस्तंब, इत्यादिकांला तर चंद्रदर्शनाचा निषेध नाही, याकारितां यांनीं प्रतिपदेतच इष्टि करावी. जेव्हां संधिदिवसाचे ठायीं इष्टि प्राप्त होईल तेव्हां ती प्रतिपदेतच समाप्त करावी, पूर्वांत तिची समाप्ति करूं नये. कारण पूर्वर्जांत यागाची समाप्ति झाली असतां पुनः याग करावा लागतो. याचप्रमाणे स्मार्ताभिसंबंधि पार्वणस्थालीपाकाचा निर्णय जाणावा. कित्येक ग्रंथकार तर असा विशेष सांगता कीं, स्मार्ताभि संबंधी स्थालीपाक प्रतिपदेतच समाप्त करावा असा नियम नसून पूर्वाण्हकालीच स्थालीपाक समाप्त करून संधिनंतर प्रतिपदेत ब्राह्मणभोजन मात्र करावे. कारण संधीच्या जवळचा जो प्रातःकाल त्यांतच स्थालीपाक करावा असे जयंतहि झणतो. श्रौतकर्मांमध्येहि प्रतिपदेमध्ये ब्राह्मणभोजन मात्र करावे, व इतर सर्व कर्भ पूर्वाण्हसंधीतच समाप्त करावे, या विषयी प्रतिपदेची गरज नाही, असे पुरुषार्थीचतामणींत सांगितले आहे. पौर्णिमेच्या इष्टिकालाविषयीचा कात्यायनांचा निर्णय, पूर्वी सर्वत्रास

साधारणपणे सांगितला तोच जाणावा, खानबदल निराळा विशेष निर्णय नाही, असे निर्णयासिंधु आदिकरून पुष्कळ ग्रंथकर्त्यांचे मत आहे. दुसरे ग्रंथकार तर, पूर्वाह्नसंधीमध्ये संधीच्या दिवसां अन्वाधान करावे, आणि दुसऱ्यादिवसां याग करावा, असा कात्यायनाला पौर्णिमेचा विशेष निर्णय सांगतात.

आतां अमावास्येविषयी कात्यायनांचा विशेष निर्णय.

अमावास्येविषयी दिवसाचे तीन भाग करावे. त्या पैकी पहिला भाग तो पूर्वाह्न, दुसरा भाग मध्याह्न, व तिसरा अपराह्न. त्यांमध्ये रात्रिसंधीचे ठायी प्रतिपदेच्या दिवसां चंद्रदर्शन असले तयापि कात्यायनांनींही इतरांप्रमाणेच संधिदिवसां पिंडपितृयज्ञ व अन्वाधान हीं करून दुसऱ्या दिवसां इष्टि करावी, असा निर्णय निर्विवाद आहे. पूर्वाह्न, आणि दिवसाचा दुसरा भाग जो मध्याह्न त्याचे ठायी संधि असतां संधीच्या पूर्वदिवसां अन्वाधान व पिंडपितृयज्ञ करून संधीचे दिवसां इष्टि करावी. आतां चतुर्दशीचे दिवसां अमावास्येचा दिनतृतीय भाग जो अपराह्नकाल त्याचे ठायी अमावास्येची पूर्वव्याप्ति असेल तर अमावास्येने युक्त अशा अपराह्नकाली निःसंशय पिंडपितृयज्ञ करावा. या प्रमाणे तिसरा भाग जो अपराह्नकाल याचा शेवटील भाग जो अपराह्नकालाचा एकदेश त्याचे ठायी अमावास्येची व्याप्ति असेल तर अमावास्येचा प्राप्त झाली असतां तीत पिंडपितृयज्ञ करावा, चतुर्दशीत करू नये, असा एक पक्ष; या प्रसंगां चंद्र अखंत क्षीण असतो या करितां चतुर्दशीच्या शेवटील भागांत पिंडपितृयज्ञ करावा हा दुसरा पक्ष. आतां अपराह्नसंधीचे ठिकाणी चार पक्ष. संधिदिवसाचे ठायीच दिवसाचा तिसरा भाग जो अपराह्नकाल त्याचे ठिकाणी अमावास्येची पूर्ण व्याप्ति असणे हा पहिला पक्ष, तो असा—चतुर्दशी २९ घटिका, अमावास्ये ३०, प्रतिपदा २९, दिनमान ३०, याठिकाणी संधिदिवसां अन्वाधान व पिंडपितृयज्ञ करावे, आणि दुसऱ्या दिवसां याग करावा. संधीच्या पूर्वदिवसांचे अपराह्नकाली अमावास्येची पूर्ण व्याप्ति असणे हा दुसरापक्ष, तो असा—चतुर्दशी २० घटिका, अमावास्ये २२ घ०, प्रतिपदा २४, दिनमान ३०, याठिकाणी संधिदिवसांच्या दुसऱ्या दिवसां सहाघटिकापरिमित जो प्रातःकाल त्याचे ठायी प्रतिपदेचे तीन चरणापर्यंत यज्ञकाल मिळतो या करितां संधिदिवसां अन्वाधान व पिंडपितृयज्ञ करावे, आणि प्रतिपदेचे दिवसां इष्टि करावी, असे कौस्तुभाचे मत आहे. “प्रतिपदेचे दिवसां अपराह्नकाली तीन मुहूर्तपर्यंत द्वितीय असेल, तर दुसऱ्या दिवसां चंद्रदर्शन होईल याकरितां चतुर्दशीचे

ठायीं अन्वाधान करावे" असे वचन आहे, यास्तव चतुर्दशीचे दिवसीं पिंडापितृयज्ञ व अन्वाधान हीं करावीं, आणि संधिदिवसीं इष्टी करावी, असे इतर ग्रंथांचें मत आहे. आतां आणखी दुसऱ्या पक्षाचें उदाहरण—चतुर्दशी १८ घ०, अमावास्या १८, प्रतिपदा १९, दिनमान २७, या ठिकाणीं प्रतिपदेच्या दिवसीं प्रातःकालीं, प्रतिपदेचे प्रथमचे तीन चरण जो यज्ञकाल तो या ठिकाणीं नाही यास्तव सर्वांच्यामते कात्यायनांनीं संधिदिवसींच इष्टी करावी, आणि पूर्वेदिवसीं अन्वाधान व पिंडापितृयज्ञ करावे. आतां दोन दिवसीं सारखी किंवा कमी जास्त एकदेशव्याप्ति असणे हा तिसरा पक्ष. तो असा—चतुर्दशी २५ घ०, अमावास्या २५, प्रतिपदा २४, दिनमान ३०, ही सारखी अपराण्हव्याप्ति, या विषयीं कौस्तुभाचें व इतरांचें मत यांचा, पूर्वी सांगितलेल्या रीतीनें दोन प्रकारचा निर्णय होतो. तसेंच—चतुर्दशी २५ घ०, अमावास्या २०, प्रतिपदा १७, दिनमान २७, ही देखील सारखी एकदेशव्याप्ति होय. या ठिकाणीं सर्वानुमते संधिदिवसींच कात्यायनांनीं इष्टी करावी, आणि पूर्वेदिवसीं पिंडापितृयज्ञ व अन्वाधान हीं करावीं. विषममार्नेकरून दोन दिवसीं एकदेशव्याप्ति असणे; चतुर्दशी २५ घ०, अमावास्या २३ घ०, प्रतिपदा २३, दिनमान ३०, या ठिकाणींही पूर्वी सांगितलेल्या दोन मतांनीं दोन प्रकारचा निर्णय जाणावा. जसे—चतुर्दशी २५ घ०, अमावास्या २२, प्रतिपदा १८, दिनमान ३०, ही देखील विषममार्नेकरून एकदेशव्याप्ति आहे. या प्रसंगींही सर्वांच्या मतानें संधिदिवसीं कात्यायनांनीं इष्टी करावी, आणि चतुर्दशीचे दिवसीं अन्वाधान व पिंडापितृयज्ञ करावा. किंवा जसे—चतुर्दशी २५ घटिका, अमावास्या २७, प्रतिपदा २९, दिनमान ३०, या ठिकाणीं संधिदिवसीं अन्वाधान व याग करून प्रतिपदेचे दिवसीं इष्टी करावी. संधिदिवसींच एकदेशव्याप्ति असणे हा चवथा पक्ष. तो असा—चतुर्दशी ३१, घटिका अमावास्या २६, प्रतिपदा २३, दिनमान ३०,—अथवा जसे—चतुर्दशी २८, अमावास्या २२, प्रतिपदा १७, दिनमान २७, या दोनही प्रसंगीं संधिदिवसींच पिंडापितृयज्ञ व अन्वाधान हीं करावीं, आणि दुसऱ्या दिवसीं प्रतिपदेचे ठायीं याग करावा. याचप्रमाणे कात्यायनमताचे ठायीं सर्वत्र उदाहरणांत चंद्रदर्शनाचा निषेध पाळण असंभवनीय, हणून किती एक प्रसंगीं चंद्रदर्शनाचा निषेध मानून पूर्व दिवसीं यागादिक करण्यास सांगितले व क्वचित् प्रसंगीं चंद्रदर्शनयुक्त दिवसींच यागादिक करण्यास सांगितले. याचप्रमाणे पिंडापितृयज्ञाविषयींही जाणावे. दर्शश्राद्धाविषयीं अमावास्याचा सर्व साधारण निर्णय पुढें निराळाच सांगण्यांत येईल.

आतां सामवेदींच्या इष्टीचा निर्णय.

या विषयीं पौर्णिमा सर्वसाधारणपक्षानें पूर्वी सांगितल्याप्रमाणेंच ध्यावी. अमा

वास्येचे दिवसीं तर रात्रिसंधि असतां चंद्रदर्शन असलें तथापि प्रातिपदेचे दिवसींच याग करावा. अपराण्हसंधि असल्यास प्रातःकाळच्या सहा घटिका परिमित अशा प्रातिपदेच्या पहिल्या तीन पादांपैकीं यज्ञकालाचा लाभ होईल तर चंद्रदर्शन असलें तथापि प्रनिपदेचे दिवसीं इष्ट करावी, आणि संधिदिवसीं अन्वाधान व पिंडपितृयज्ञ करावे. पूर्वी सांगितलेला यागकाल न मिळाल्यास, संधिदिवसीं याग करावा, व त्याच्या पूर्वदिवसीं चतुर्दशीचे ठायीं पिंडपितृयज्ञ व अन्वाधान करावे. या प्रमाणे सामवेदी यांनींहि चंद्रदर्शनाचा निषेध कात्यायनांप्रमाणे जसा संभवेत तसा पाळावा. या प्रकारें करून सामवेदी यांचा निर्णय सांगितला. ॥ या प्रमाणे यागकालाचा निर्णय ज्ञाला. उद्देश २२ ॥

आतां पिंडपितृयज्ञानाचा काल.

ज्या अहोरात्रीमध्ये अमवास्या व प्रतिपदा यांचा संधि होईल त्या दिवसाचे पांच भाग करावे. त्या पैकीं चवथा भाग तो अपराण्हकाल. त्या ठिकाणीं आश्वलायनांनीं पिंडपितृयज्ञ करावा. तो अपराण्हसंधि असल्यास अन्वाधानाचे दिवसीं होतो, मध्यान्ह किंवा पूर्वाण्हसंधि असल्यास यागाच्या दिवसीं यागानंतर अपराण्हकालीं होतो. जेव्हां दिवस आणि रात्र यांच्या संधीचेठायीं त्रियसंधि येईल तेव्हां अन्वाधानाच्या दिवसींच पिंडपितृयज्ञ करावा. या प्रमाणे आपस्तंब व हिरण्यकेशी यांच्या मताप्रमाणे चालणारे असतील त्यांनींहि संधिदिवसींच अपराण्हकालीं किंवा बरोबर दोन प्रहरीं पिंडपितृयज्ञ करावा. दिवसाचे पांच भाग करून चवथा भाग तो अपराण्हकाल, किंवा दिवसाचे नऊ भाग करून सातवा भाग तो अपराण्हकाल समजावा. सांख्यायन, कात्यायन, आणि सामवेदी, यांनीं अन्वाधानदिवसींच पिंडपितृयज्ञ करावा असें पूर्वीच सांगितलें आहे, तो पिंडपितृयज्ञ, दिवसाचे तीन भाग करून त्या पैकीं तिसरा भाग जो अपराण्हकाल त्या प्रसंगीं करावा. दर्शश्राद्ध व पिंडपितृयज्ञ हीं एकच दिवसीं प्राप्त होतील तर गृह्याग्नि धारण करणारे असे जे ऋग्वेदी यांनीं तीं अनुष्ठाने व्यतिपंगाने करावीं. व्यतिपंग लक्षणें बरोबर दोन्ही कर्म करावयाचीं. परं खंड असेल तर पूर्व दिवसीं नुसते दर्शश्राद्ध करून दुसऱ्या दिवसीं पिंडपितृयज्ञ करावा. जे अभिहोत्री असतील त्यांनीं मात्र पिंडपितृयज्ञ दक्षिणाग्नीचे ठिकाणीं करावणें दर्शश्राद्धा बरोबर करूं नये. संपूर्ण अमवास्या असल्यास अभिहोत्री यांनीं पुढें सांगितल्या प्रमाणे क्रमानें करावे.—प्रथम अन्वाधान, नंतर वैश्वदेव, नंतर पिंडपितृयज्ञ, आणि त्या नंतर दर्शश्राद्ध असीं करावीं. अभिहोत्री अशा जीवन्पितृकाने द्याच वेळीं किंवा

होमाच्या नंतर पिता इत्यादिक जी पितृवयी तिच्या उद्देशाने पिंडसहित किंवा पिंड रहित असा पिंडपितृयज्ञ करवा, किंवा पिंडपितृयज्ञाला आरंभ करूं नये. इष्टीचा लोप झाला असता पादकृच्छ्र प्रायश्चित्त करावे. दोन इष्टींचा लोप झाला असता अर्धकृच्छ्र. तीन इष्टींचा लोप झाल्यास त्याचे योगाने अभिनाश होतो, या करितां पुनः अभि- स्थापना करावी. पिंडपितृयज्ञाचा लोप होईल तर वैश्वानरोष्टिरूप प्रायश्चित्त करावे, किंवा इष्टिस्थानाचे ठायी "सप्तहोमारं होष्यामि" असा संकल्प करून त्या मंत्राने चार वेळ घृत घेऊन पूर्णाहुति करावी. ॥ या प्रमाणे पिंडपितृयज्ञानाचा निर्णय झाला. उद्देश २३ ॥

आतां श्राद्धाविषयीं अमावास्येचा निर्णय सांगतात.

दिवसाचे पांच भाग केले असतां चापैकीं चवथा भाग जो अपराण्हकाल, यास व्याप- णारी अमावास्यया दर्शश्राद्धाविषयीं ध्यावी. पूर्वदिवसींच किंवा दुसऱ्या दिवसींच अपराण्हकालीं पूर्णव्याप्ति किंवा एकदेशव्याप्ति असेल तर तीच ध्यावी. दोनहि दिवसीं अपराण्हकालीं कभिजास्ती मानाने एकदेशव्याप्ति असेल तर ज्या दिवसीं अधिक व्याप्ति असेल ती ध्यावी. दोन दिवसीं सारखी एकदेशव्याप्ति असल्यास, तिथिक्षय असतां पूर्वींची, व तीथींची वृद्धि असेल किंवा सारखी तिथि असेल तर दुसऱ्या दिवसाची ध्यावी. दोन दिवसीं समव्याप्ति असतां वृद्धि, क्षय, समतिथि, यांची उदाहरणे—चतुर्दशी १९, अमावास्यया २३, दिनमान ३०, याठिकाणीं दोनहि दिवसीं सारखी पांच घटिका एक देशव्याप्ति आहे, व चतुर्दशीहून चार घटिका अमावास्येची वृद्धि आहे याकरितां दुसऱ्या दिवसाची ध्यावी. तसेंच—चतुर्दशी २३ घ०, अमावास्यया १९, याठिकाणीं एक घटिका सारखी व्याप्ति आहे व चार घटिकांनीं तिथीचा क्षय आहे, याकरितां पूर्वींची ध्यावी. आतां चतुर्दशी २१ घ०, अमावास्यया २१, याठिकाणीं दोन दिवसीं तीन तीन घटिका सारखी व्याप्ति आहे, व तिथीची वृद्धि किंवा क्षय कांहींच नसून तिथि सम आहे म्हणून दुसऱ्या दिवसाची ध्यावी. दोन दिवसीं पूर्ण अपराण्हव्याप्ति असेल तर तिथीची वृद्धि आहे याकरितां दुसऱ्या दिवसाची ध्यावी. दोनहि दिवसीं अपराण्ह- कालीं व्याप्ति नसेल तेव्हां गृह्याभिमानांनीं सिनीवाळी संज्ञक चतुर्दशीने युक्त असी पूर्वींची ध्यावी. अभिविरहित असतील ग्रंथी, व श्रीताभिमानांनीं आणि स्त्रीशूद्रादिकांनीं कुहू संज्ञक प्र- तिपदेने युक्त असी दुसऱ्या दिवसाची ध्यावी, असा माधवाचार्याला मान्य जो दर्शनिय तोच बहुधा शिष्टांनीं सर्वत्र स्वीकारलेला आहे. पुरुषार्थचित्तमणीमध्ये तर सांभिक असे जे ऋग्भेदी व तैत्तिरीयशास्त्री यांनीं अपराण्हव्याप्ति नसली तथापि इष्टिदिवसाच्या पूर्वदिव- सींच दर्शश्राद्ध करावे. दोन दिवसीं संपूर्ण अपराण्हव्याप्ति असल्यास दुसऱ्या दिवसीं

च दर्शश्राद्ध करावें. दोन दिवसी एकदशे करून अपराण्हकालीं स्यासि अस्तव्यास प्रतिपदेच्या वृद्धीनें प्रतिपदेचे दिवसी इष्टि झाली असतां दुसऱ्या अमावास्येचे ठायींच दर्शश्राद्ध करावें. दुसऱ्या दिवसींच अपराण्हकालीं असेल तर प्रतिपदेचा क्षय झाला आहे याकरितां दर्शाच्या दिवसींच इष्टि प्राप्त झाल्यास ऋग्वेदीयांनीं तिसींशालीं व तैत्तिरीयशाखी यांनीं कुहू याप्रमाणे स्यावी. सामवेदी यांनीं विकल्पेंकरून दोनोह स्याव्या. जेव्हां पूर्वदिवसीं अपराण्हकालीं अधिक स्यासि व दुसऱ्या दिवसीं अल्प स्यासि असेल, तेव्हां सामवेदी यांनीं पूर्वींची, आणि तैत्तिरीयशाखी यांनीं दुसऱ्या दिवसाची स्यावी. दोनोह दिवसीं अपराण्हकालीं नसेल तर सामवेदी यांनीं पूर्वींची स्यावी, व तैत्तिरीयशाखी यांनीं दुसऱ्या दिवसाची स्यावी, असें सांगितलें. अमावास्येचे दिवसीं दर्शश्राद्ध व वर्षश्राद्ध, किंवा दर्श व मासिकश्राद्ध, अथवा दर्शश्राद्ध व उदककुंभश्राद्ध असीं दोन दोन आलीं तर देवताभेदेकरून दोन श्राद्धे करावीं. त्यामध्ये प्रथम मासिक किंवा वर्षश्राद्ध करून नंतर दुसऱ्या पाकानें दर्शश्राद्ध करावें. वैश्वदेव करणें तो, वर्षश्राद्धादिक करून जें श्राद्धशेष अल असेल त्याणें अथवा निराळा भात करून त्याणें दर्शश्राद्धाच्या पूर्वीं करावा. अग्निहोत्र्यानें वैश्वदेव, पिंडपितृयज्ञ, हीं करून नंतर वर्षश्राद्धादिक करावें. मौंजी न झालेला, ज्याची पत्नी मृत झाली आहे तो, व प्रवासी,यांनीं ही दर्शश्राद्ध करावें. दर्शश्राद्धाचा अतिक्रम होईल तर “न्युषुवाचं” या ऋग्वेदाचा शंभरवेळ जप करावा. याप्रकारें करून दर्शनिर्णय झाला. उद्देश ॥ २४ ॥

इष्टि आणि स्थालीपाक यांच्या आरंभाचा निर्णय.

इष्टि आणि स्थालीपाक यांचा आरंभ पौर्णिमेच्या दिवसीं करावा, अमावास्येच्या दिवसीं करूं नये. अग्निस्थापना करणें ती गृहप्रवेशनीय होम झाल्यानंतरच करावी. दर्शपौर्णिमासाचा आरंभ जर पौर्णिमेचे ठिकाणीं कर्तव्य असेल तर त्याविषयीं मलमास, पौषमास, शुक्रांचीं अस्तादिक, यांचा दोष नाही. पौर्णिमेचे दिवसीं आरंभ न होईल तर शुद्ध मासादिकांची प्रतीक्षा करावी असें किति एक ग्रंथकार सांगतात. सर्वदा शुद्ध कालींच आरंभ करावा असें दुसरे ग्रंथकार सांगतात. ॥ याप्रकारें इष्ट्यादि प्रारंभाचा निर्णय झाला. उद्देश ॥ २५ ॥

आतां विकृतींचा कालः

विकृति तीन प्रकारच्या आहेत—आग्रयण, चातुर्मास्ये इत्यादिक ज्या विकृति या नियम होत. जातेष्टि इत्यादिक ज्या या नैमित्तिक. सौरी इत्यादिक या काम्य. या विकृति पुरुषार्थाचीं कर्तव्ये होत. याप्रमाणें यज्ञाच्या अंगभूत ज्या विकृति याहि दोन

प्रकारच्या आहेत—निस, आणि भौतिक. ह्या विकृति तत्कालीं कराव्या, किंवा दोन दिवस कराव्या याविषयी विकल्प आहे. याप्रमाणे पूर्वदिवसी अथवा शुद्धपक्षांत दोन दिवस कराव्या किंवा ठिकाणी कराव्या, असा विकल्प आहे, त्यामध्ये पूर्वदिवसी कर्तव्य असून अपराह्णादि संधि असेल तर संधिदिवसी तत्काल किंवा दोन दिवसांचा काळ आहे जीस असे विकृती करून प्रकृतीचे अन्वाधान करावे. मध्यराह्णां अथवा पूर्वाह्णां असेल तर संधिदिवसी प्रकृते समाप्त करून तात्कालिक अशीच विकृति करावी. कृत्तिकांपासून विशाखापर्यंत जी चवदा नक्षत्रे जीस देवनक्षत्रे झणतात. आप्र-यण्णाचा विशेष निर्णय द्वितीयपरिच्छेदांमध्ये सांगितला. अन्वारांभणोय इष्टि चतुर्दशांचे दिवसी करावी. ॥ याप्रमाणे विकृतिसामान्यनिर्णयबाला. उद्देश ॥ २६ ॥

पशुयागाचा काल.

पशुयाग तर वर्षाऋतूमध्ये श्रावणी इत्यादिक जी चार पर्वे सांतून कोणत्यातरी एका पर्वणीचे ठायी दक्षिणायन दिवसी किंवा उत्तरायण दिवसी करावा. याविषयी खंडित पर्वे असेल तर विकृतीविषयी जी सामान्य निर्णय सांगितला तोच जाणावा. ॥ याप्रमाणे पशुयागाचा उद्देश झाला. २७ ॥

आतां चातुर्मास्यांचा काल.

चातुर्मास्यांच्या प्रयोगाचे चार पक्ष आहेत. ते असे—फाल्गुनी पौर्णिमा, किंवा चैत्री पौर्णिमा, यांतून कोणत्याही पौर्णिमेचे दिवसी वैश्वदेव पर्व करून आषाढी इत्यादिक पौर्णिमेचे दिवसी पर्वाला आरंभ करून चार चार महिन्यांनी पौर्णिमेचे दिवसी एकेक पर्व करावे, असे यावज्जाव अनुष्ठान करणे हा यावज्जावपक्ष; पूर्वी सांगितल्या रीतीने एक वर्षपर्यंत अनुष्ठान करून नंतर सवनेष्टि, पशुयाग, किंवा सोमयाग यांतून कोणतेही एक करून समाप्ति करणे तो सांख्यपक्ष; प्रथम दिवसी वैश्वदेव पर्व, चवथ्या दिवसी वरुणप्रयास पर्व, आठवा व नववा ह्या दिवसी साकमेध पर्व, बाराव्या दिवसी शुनारीरीय पर्व, असा हा द्वादशाहपक्ष; पांच दिवसपर्यंत करून पांचव्या दिवसी समाप्ति करणे तो यथाप्रयोगपक्ष. द्वादशाहपक्ष आणि यथाप्रयोगपक्ष यांचा आरंभ उत्तरायणांत शुद्धपक्षां व देवनक्षत्रां करून शुद्धपक्षांतच समाप्ति करावी असे पुष्कळ ग्रंथकार झणतात; अथवा ऋणपक्षांत समाप्ति करावी असेही कितीएक झणतात. बारा दिवसांचा पक्ष व पांच दिवसांचा पक्ष ह्या दोन पक्षांची समाप्ति सवनेष्टि इत्यादिकांतून एकाने केली तर ते दोन पक्ष एकवेळ करावे. तशी समाप्ति न केली तर दरएक वर्षी करवि. क्वचित् ग्रंथांत एक

दिवसाच्या पक्षाचाहि प्रयोग सांगिला आहे, तो प्रयोग, चैत्री इत्यादिक चार पौर्णिमेंतून काणव्या एका पौर्णिमेचे दिवसीं हातो. कश्चित् ग्रंथांत सात दिवसांचाहि पक्ष सांगितलेला आहे. तो असा: - दोन दिवस वैश्वदेव पर्व, तिसऱ्या दिवसीं परुणपंचमास पर्व, चवथ्या दिवसीं गृहमेधीया, पांचव्या दिवसीं महाइषीधि, साहाय्या दिवसीं पितृयज्ञादिक साकमेधपर्वाचा शेष, सातव्या दिवसीं शुनासारीय पर्व. या सात दिवसांच्या पक्षा विषयीं पांच दिवसांच्या पक्षाला सांगितलेल्या शुक्रपक्षादिक काळ ध्यावा. * याप्रकारे करून चातुर्मास्य कालाचा निर्णय झाला. उद्देश ॥ २८ ॥

काम्येष्टीचा काल.

काम्येष्टी, विकृतीला जो सामान्य निर्णय सांगितला त्याप्रमाणे पर्वदिवसीं कराव्या, अथवा शुक्रपक्षातील देवतानक्षत्रीं कराव्या. स्त्री प्रसूत झाली असतां जातेष्टी करावी; परंतु वीस दिवसपर्यंत कर्माचा प्रतिबंध करणारे जे जननाशौच ते गेल्यानंतर पर्वदिवसीं करावी. घर दग्ध होईल तर गृहदाहोष्टी करावी असे सांगितले आहे, यास्तव तसे निमित्त प्राप्त झाल्यानंतर गृहदाहोष्टि इत्यादिक नैमित्तिक इष्टि कर्तव्य असतील तर पर्वादिकांची गरज नाही. तसे निमित्त नसेल तर पर्वदिवसीं कराव्या. पक्षाच्या अगभूत ज्या नित्य इष्टि त्या यज्ञाबरोबरच कराव्या, याविषयीं निराळ्या कालाची गरज नाही. * होम करण्याची इत्ये दोषयुक्त झाली" इत्यादि दोषांच्या निमित्ताने प्राप्त झालेल्या ज्या यज्ञाच्या अगभूत इष्टि त्या आपल्या शिवष्टकृत्कर्माच्या नंतर व समाष्टि संबद्ध होण्यापूर्वी दोषस्मरण शाले असतां त्या वेळींच त्याच विधीच्या अनुरोधाने निर्वापादिक कराव्या. प्रायश्चित्ताच्या आहुतीनंतर दोषस्मरण होईल तर तो सर्व प्रयोग समाप्त करून पुनः अन्वाधानादिक विधीने कराव्या याप्रकारेकरून काम्य नैमित्तिकादि इष्टींचा निर्णय झाला. उद्देश ॥ २९ ॥

आधानाचा काल.

आधान पर्वदिवसीं आणि उक्त नक्षत्रीं करावे. याविषयीं पर्व घेजे ते संकल्पापासून पूर्णाहुतीपर्यंत सर्व प्रयोग त्या कालांत होई इतके ध्यावे. तितके घेण्यासारखे नसेल तर गार्हपत्याधानापासून आहवनीयाधानापर्यंत पुरेल इतके विद्यमान असेल ते ध्यावे. याप्रमाणे नक्षत्राचाहि निर्णय जाणावा. संकल्पादिक संपूर्ण कर्म होईल इतके पर्व दोन दिवसीं असेल तर ज्या दिवसीं सांगितलेल्या नक्षत्राचा योग असेल ते ग्रहण करावे. वसंतऋतु, पर्व, आणि सांगितलेली नक्षत्रे, या तिहींचा एककालीं योग येईल तर आते उत्तम. पर्व व नक्षत्र हीं असून ऋतु नसेल तर मध्यम. नुस्तें नक्षत्र किंवा नुस्तें पर्व हे अश्वय होय. कृत्तिका, रोहिणी, विशाखा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, मृग, उत्तराभा

द्रपदा असीं सात नक्षत्रे आश्वलायनसूत्रांत सांगितलीं आहेत. कृत्तिका, रोहिणी, उत्तरा, उत्तराषाढा, उतराभाद्रपदा, मृग, पुनर्वसू, पुष्य, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, हस्त, चित्रा, विशाखा, अनुराधा, श्रवण, ज्येष्ठा, रेवती, असीं सतरा नक्षत्रे दुसऱ्या सूत्रांत सांगितलीं आहेत. सोमपूर्वक आधान असेल तर, “ऋतु, नक्षत्रे यांचा विचार करूं नये” असे वचन आहे, यास्तव सोमकालाच्याच अनुरोधाने आधान केल्यास येथे निराळ्या कालाचा विचार करण्याची गरज नाही. “या प्रकारे करून आधानाचा काल सांगितला. उद्देश ३० ॥

आतां ग्रहणाचा निर्णय.

चंद्र, किंवा सूर्य यांचे ग्रहण डोळ्यांनी दिसत असेल तेथपर्यंत पुण्यकाल, याकरितां ग्रहण लागून ग्रस्त झाल्याने अन्यद्वीपीं ग्रहण असेल तथापि दिसण्यास योग्य नाही या करितां पुण्यकाल नाही. असेच ग्रहण लागून नंतर उदय होईल तर उदयाच्या पूर्वी पुण्यकाल नाही. अभ्र, इत्यादि अडचणीमुळे दिसण्याचा अंशभव असेल तर शास्त्रादिकांपासून स्पर्शकाल व मोक्षकाल हे जाणून ज्ञान, दान, इत्यादिक करावे. रविवारी सूर्यग्रहण व सोमवारी चंद्रग्रहण असे ग्रहण असेल तर ते चूडामणि ग्रहण, याचे ठिकाणी दानादिक केले असतां अनंत फल होते. ग्रहणाच्या स्पर्शकालीं ज्ञान; मध्ये होम, देवपूजा, श्राद्ध; सुटण्यास आरंभ झाल्यावर दान; निःशेष सुटल्यानंतर ज्ञान; याप्रमाणे क्रम जाणावा. ज्ञानाच्या उदकाविषयी तारतम्य — “उष्णोदकाहून शीतोदक पुण्यकारक, दुसऱ्याने दिलेल्या उदकाहून स्वतांचे उदक पुण्यकारक, वर उदक काढून ज्ञान करणे त्याहून उदकांत बुडी मारून ज्ञान करणे पुण्यकारक, त्याहून वाहते उदक पुण्यकारक, धाहत्याहून सरोवराचेजल पुण्यकारक, त्याहून नदीचे जल पुण्यकारक, याप्रमाणे तीर्थे, नदी, गंगा, समुद्र यांचे ज्ञान उत्तरोत्तर पुण्यकारक आहे.” ग्रहणांत वस्त्रासह ज्ञान करावे. वस्त्रासह ज्ञान करणे ते मुक्तिज्ञानपर असे कित्तीएक ग्रंथकार लणतात. मुक्तिज्ञान न केले असतां सुतकीपणा जात नाही. ग्रहणाचे ज्ञान अमंत्रण करावे. सुवासिनी स्त्रियांनी गळ्याखाली ज्ञान करावे. शिष्टांच्या स्त्रिया ग्रहणांत डोकीवरून ज्ञान करितात. सुधेर आणि सुतक यांमध्ये ग्रहणसंबंधी ज्ञान, दान, श्राद्धादिक आवश्यक करावे.

ग्रहणांतील रजस्वलेच्या नैमित्तिक स्नानाचा

विचार.

“स्त्री रजस्वला असेल आणि काहीं नैमित्तिक ज्ञान प्राप्त होईल तर, भांड्यांत

उदक घेऊन स्नान करून व्रत करावे.. वस्त्र पिळू नये, व दुसरे वस्त्र नेसू नये." तीन दिवस किंवा एक दिवस उपोषण करून ग्रहणाचे ज्ञान, दान इत्यादिक केले असता मोठे फल प्राप्त होते. एक दिवस उपोषण करणे असेल तर ग्रहणदिवसाच्या पूर्वे दिवसां उपोषण करावे, असे कोणी ग्रंथकार झणतात. ग्रहण संबंधी अहोरात्री उपोषण करावे, असे दुसरे ग्रंथकार झणतात. पुत्रवान् गृहस्थाश्रमी यांनी ग्रहण, संक्रांति, इत्यादिक दिवसां उपोषण करू नये. पुत्रवान् अशा शब्द करून. कन्यावान् असतील स्नांनीहि उपोषण करू नये. ग्रहणाचे ठिकाणी देव, पितर, यांचे तर्पण करावे, असे कोणी झणतात. " सर्व वर्णांला ग्रहणाचे सुतक आहे. " याकरितां ग्रहणकालीं स्पर्शी केलेलीं अर्शा जीं वस्त्रादिक त्यांची शुद्धि उदकाने धुवून करावी. धुण्यासारखी नसतील तर दर्भादिकाने उदकाचे प्राक्षण करून शुद्धि करावी.

दानाविषयीं पात्रापात्र विचार.

ग्रहणांत गाई, भूमि, सुवर्ण, धान्य, इत्यादिकांचे दान केले असतां मोठे फल आहे. तपश्चर्या, व विद्या या दोहोनीं संपन्न जो ब्राह्मण तो मुख्य दानपात्र, सत्पात्रीं दान केल्यानें मोठे पुण्य आहे. " चंद्रसूर्यांच्या ग्रहणकालीं सर्व उदक गंगेच्या समान, सर्व ब्राह्मण व्यासाच्या समान, सर्व दान भूमिदानाच्या समान " असे जे वचन ते सामान्य पुण्याच्या अभिप्रायाचे आहे. यास्तव "अब्राह्मणाचे ठिकाणीं दान समफल, ब्राह्मण त्रवाचे ठिकाणीं द्विगुणफल, श्रोत्रियाचे ठिकाणीं शंभर सहस्रपट, सत्पात्राचे ठिकाणीं अनंतफल," असे तारतम्य सांगितले. --मैत्री, वेदादिक, यांचा संस्कार ज्याला नाहीं, व जातीनें मात्र ब्राह्मण तो अब्राह्मण, त्याला दान केले तर सांगितले इतकेंच फल मिळते. गर्भाधानादि संस्कार झालेला, व वेद पाठ करणे, दुसऱ्यास शिकविणे, यांही जो हीन तो ब्राह्मणत्रुव, त्याला दान केले तर दुप्पट फल मिळते. वेद स्वतां पाठ करणे व दुसऱ्यास शिकविणे, यांही करून युक्त तो श्रोत्रिय, त्याला दान केले तर सहस्रपट फल मिळते. विद्या, उत्तम आचार, इत्यादिकांनीं युक्त तो सत्पात्र, त्याला दान केले तर अनंतफल; याप्रमाणे वाक्याचा अर्थ जाणावा. ग्रहणांत श्राद्ध करणे ते आमाले करून करावे, किंवा हिरण्य श्राद्ध करावे. संपत्तिमान् असेल तर पक्काले करून करावे, सूर्यग्रहणीं श्राद्ध करावयाचे ते तीर्थयात्रांश्राद्धाप्रमाणे घृतप्रधान अशा अन्नाने करावे. ग्रहणांत श्राद्धभोजन करणारा महादोषी होतो. संपत्तिमान् असेल त्यानें ग्रहणांत तुलादानादिक करावे.

ग्रहणांत मंत्रदीक्षा घेण्याचा प्रकार.

चंद्र आणि सूर्य यांच्या ग्रहणीं, तीर्थांचे ठिकाणीं, महापर्व इत्यादिकाळीं, मंत्राची दीक्षा

घेणे असेल तर महिना, नक्षत्र, इत्यादि शुद्धीची गरज नाही. मंत्रदीक्षा घेण्याचा प्रकार तंत्रग्रंथी पाहावा. दीक्षाशब्दाचे ग्रहण उपदेशाचे उपलक्षण करिते. "युगायुगाचे ठिकाणी दीक्षा होते आणि कल्पियुगी उपदेश होतो. चंद्रसूर्यग्रहण, सिद्धसेव शिवालय, इत्यादि स्थानी नुस्ता मंत्र मात्र सांगणे तो उपदेश होय. मंत्र घेण्याविषयी सूर्यग्रहणच मुख्य आहे. चंद्रग्रहणी मंत्रग्रहण केले असता दरिद्र इत्यादिक दोष प्राप्त होते असे कितीएक झणतात. "चंद्रसूर्याच्या ग्रहणी उपोषणपूर्वक ज्ञान करून स्पर्श कालापासून सुटे पर्यंत एकाग्रमाने मंत्राचा जप करावा, जपाचा दशांश होम करावा, होमाचा दशांश तर्पण करावे. होमाविषयी शक्ति नसेल तर होमसंख्येच्या चौपट जप करावा." मूल मंत्राचा उच्चार करून त्याच्या शेवटी द्वितीया विभक्त्यंत असा, मंत्रदेवतेच्या नामाचा उच्चार करून अमुक देवतेला मी तर्पण करितो असा उच्चार करून यथादिक घातलेले असे जे उदक त्याच्या अंजलींनी तर्पण, होमाच्या दशांशेकरून करावे. असा नमोत मूलमंत्र उच्चार करून अमुक देवतेला मी अभिषेक करितो, असे उच्चारून तर्पणाच्या उदकाने आपल्या मस्तकी अभिषेक करावा. याप्रमाणे मार्जन, तर्पणाच्या दशांश करावे. मार्जनाच्या दशांशेकरून ब्राह्मण भोजन करावे: याप्रकारेकरून जप, होम, तर्पण, मार्जन, आणि ब्राह्मणभोजन, हे पांच प्रकारचे पुरश्चरण होय. तर्पणादि करण्यास सामर्थ्य नसेल तर त्या त्या संख्येच्या चौपट जपच करावा. मंत्राचे पुरश्चरण करावयाचे ते स्पर्श होऊन उदय पावलेले आणि सुटल्यावांचून अस्त झालेले अशा ग्रहणी होत नाही. पुरश्चरण संबंधी उपवास पुत्रवान्मृहस्थाश्रमी यांनीही करावा. पुरश्चरण करील आणि त्याचे ज्ञानदानादि नैमित्तिक कर्माचा लोप होईल तर दोषप्रसंग प्राप्त होतो, यास्तव नैमित्तिक जे ज्ञानदानादिक ते स्त्री, पुत्र, इत्यादि प्रतिनिधी कडून करावे.

पुरश्चरणाचा विधि

स्पर्शकालाच्या पूर्वी ज्ञान करून "अमुकगोत्रोऽमुकशर्माहं राहुग्रस्ते दिवाकरे निशा करेवा अमुकदेवताया अमुकमंत्रसिद्धिकामो ग्रासादिमुक्तिपर्यंत अमुकमंत्रस्य जपखूप पुरश्चरणं करिष्ये" असा संकल्प करून आसनविधि, न्यास इत्यादिक स्पर्शाच्या पूर्वीच करून न ग्रहण लागल्यापासून सुटेपर्यंत मूलमंत्राचा जप करावा. नंतर दुसऱ्या दिवशी ज्ञानादिक निष्कर्ष करून, "अमुकमंत्रस्य कृतैतन्ग्रहणकालिकामुकसंख्याकपुरश्चरण जपसांगतार्थं तद्दशांशहोम, तद्दशांशतर्पण, तद्दशांशमार्जन तद्दशांशब्राह्मणभोजनानि

करिये, " असा संकल्प करून होमादिक किंवा व्याख्या त्याच्या चौपट, अथवा दुप्पट यांतून कोणत्या एका संख्येने जप करावा. ग्रहणकाली पुरश्चरणकाली आपल्या पुत्रादिकांला आपले ज्ञानादिक करण्याविषयी आज्ञा केल्यानंतर पुत्रादिकांने, "अमुक शर्मणोऽभुक्गोत्रस्यामुकग्रहणस्पर्शज्ञानजनितश्रेयःप्राप्त्यर्थं स्पर्शज्ञानं करिये, " असा संकल्प करून सार्ची ज्ञान, दान इत्यादिक कर्मे करावीं. पुरश्चरण न करणारे अशांनींही गुरूनें सांगितलेल्या अशा मंत्राचा आणि आपापल्या इष्टदेवतेच्या मंत्राचा जप आणि गायत्रीचा जप ग्रहणांत अवश्य करावा. न करतील तर मंत्राला मलीनपणा येतो. ग्रहणाच्या समयीं निद्रा केली तर रोग, मुलोत्सर्ग केला तर दरिद्र. शौचाला गेले तर रुग्ण होतो, मैथुन केले तर गांबडुकर, तैलाभ्यंग केला तर कुष्ठरोग, भोजन केले तर नरक इत्यादि दुष्ट फळे होतात. पूर्वी शिजवलेले अन्नावरून ग्रहण गेले असतां ते टाकावे. याप्रमाणे ग्रहणांतिल उदक प्राशन केले असतां पादकृच्छ्र प्रापश्चित करण्यास सांगितले आहे यास्तव ग्रहणसंबंधी उदकाहे टाकावे. कांजी, ताक, तूप, तेल यांत तळलेले पदार्थ व दूध, हे पूर्वी तयार केलेले सर्व पदार्थ ग्रहणानंतर घ्यावे. तूप, लोणची, गोरस, यांचे ठिकाणीं ग्रहणामध्ये दर्भ घालावे.

आतां ग्रहणाच्या वेधाचा विचार.

सूर्यग्रहणीं ग्रहणप्रहराच्या पूर्वी चार प्रहर वेध. चंद्रग्रहणीं ग्रहणप्रहराच्या पूर्वी तीन प्रहर वेध. तसेंच, दिवसाच्या पहिल्या प्रहरीं सूर्यग्रहण होईल तर पूर्वरात्रीच्या चार प्रहरांत भोजन करूं नये. दुसऱ्या प्रहरीं ग्रहण होईल तर पूर्वगात्रीच्या दुसऱ्या प्रहरापासून भोजन करूं नये. तसेंच पहिल्या प्रहरीं चंद्रग्रहण होईल तर दिवसाच्या दुसऱ्या प्रहरापासून भोजन करूं नये. रात्रीच्या दुसऱ्या प्रहरीं ग्रहण होईल तर दिवसाच्या तिसऱ्या प्रहरापासून भोजन करूं नये. बाल, वृद्ध, रोगी यांविषयीं दीडप्रहर किंवा सहा घटिका वेध. सशक्ताने वेधकालीं भोजन केले असतां तीन दिवस उपोषण करावे, हे प्रापश्चित. ग्रहणकालीं भोजन केले असतां प्राजापत्य प्रापश्चित करावे. ग्रहण लागून चंद्राचा उदय होईल तर चार प्रहर वेध, याकरितां दिवसा भोजन करूं नये. कोणी ग्रंथकार चंद्राचा पूर्ण ग्रास असेल तर चार प्रहर वेध, आणि एकदेशग्रास असेल तर तीन प्रहर वेध असें झणतात. ग्रहण असून अस्त होईल तर "ग्रहण असून चंद्र सूर्य अस्त पावतील तर दुसऱ्या दिवसीं उदयकालीं स्नान करून पुरुष शुद्ध होतो." एथे स्नान करून शुद्ध अशा वचनाने, शुद्ध पंडळाचे दर्शनकालीं जे स्नान त्याच्या पूर्वी शुद्धि नाही असे सांगितले, यास्तव उदक आणणे, स्वयंपाक करणे, इत्यादिक शुद्ध

दिवसाचा उदय होऊन ज्ञान केल्याच्या पूर्वी करू नये असे वाटते. सूर्यग्रहण ग्रस्तास्त किंवा ग्रस्तोदय असेल तर पुत्रवान् अशा गृहस्थाश्रमीला उपोषणाचा निषेध सांगी तला आहे यास्तव बारा घटिका वेध टाकून ग्रहणाच्या पूर्वी भोजन करावे असे कोणी झणतात. पुत्रवान् अशा गृहस्थाश्रमींनीही तशा ग्रहणी उपोषणच करावे, असे माधवाचेच मत शिष्टाचाराला मिळते असे योग्य आहे.

ग्रहण असतां नैमित्तिक कर्मांचा विचार.

सूर्यग्रहण ग्रस्तास्त असेल आणि चंद्रग्रहण ग्रस्तोदय असेल तर अभिहोत्र्याने अन्वाधान करून जलाने व्रत करावे, भोजन करू नये. चंद्रग्रहण ग्रस्तास्त असेल तर दुसऱ्या दिवशी संध्या, होम इत्यादि करण्याविषयी दोष नाही. अल्पवेळाने ग्रहण सुटेल असा शास्त्रेकरून सुटण्याचा निश्चय होईल तर सुटण्याच्या वेळनंतर ज्ञान करून होमादिक कर्म करावे. फार वेळाने सुटणारे असे असेल तर होमकालाचे उद्ध्वन होते याकरितां ग्रस्तोदयासारखे ग्रहणामध्येच संध्या, होम करून शास्त्रेकरून सुटण्याचा जो काळ असेल त्या काली ज्ञान करून ब्रह्मयज्ञ इत्यादिक नियम कर्म करावे, असे वाटते. अमावास्येचे दिवशी ग्रहणसंधी श्राद्ध केल्यानेच दर्शश्राद्ध, आणि संक्रांतिश्राद्धे, यांची सिद्धि होये. ग्रहणाच्या दिवशी पिता इत्यादिकांचे वार्षिक श्राद्ध आले असतां संभव असेल तर अन्नाने करावे. ब्राह्मणादिक न मिळाल्यामुळे असंभव असेल तर आमार्चे करून किंवा हिरण्यंकरून करावे.

अनिष्ट ग्रहणाची शांति व विंबदान.

आपल्या जन्मराशीपासून तृतीय, षष्ठ, एकादश, दशम, या राशींचे ठिकाणी ग्रहण शुभ होय. द्वितीय, सप्तम, नवम, पंचम या स्थानी मध्यम होय. आद्य, चतुर्थ, अष्टम, द्वादश या राशींचे ठिकाणी अशुभ होय. ज्याच्या जन्मराशी किंवा जन्मनक्षत्रीं ग्रहण होते त्यास विशेष अनिष्टकारक होते याकरितां त्याने गर्गादिकांनी सांगितलेली शांति करावी. अथवा विंबदान करावे. ते असे—चंद्रग्रहणी रुप्याचे चंद्रविंब, आणि सुवर्णाचे नागविंब करावे. सूर्यग्रहणी सुवर्णाचे सूर्यविंब, व नागविंब करून ते, तुषाने भरलेले असे त द्याचे पात अथवा कांस्यपात्र यांत ठेवून, तिल, वस्त्र, दक्षिणा, इतकी सामग्री तयार करून “ममजन्मराशिजन्मनक्षत्रस्थितामुकग्रहणसूचितसर्वानिष्टप्रशांतिपूर्वकं एकादशस्थानस्थितग्रहणसूचितशुभफलावाप्तये विंबदानं करिष्ये.” असा संकल्प करून चंद्र, सूर्य, राहु, यांचे ध्यान आणि नमस्कार करून नंतर, “तमोमयमहाभीम

सोमसूर्यविमर्देन ॥ हेमतारप्रदानेन ममशांतिप्रदोभव ॥ विधुंतुदनमस्तुभ्यं सिद्धिकानंदनाभ्युत
दानेनानेन नागस्य रक्षमविधजाद्रूपान्, " असा मंत्रोच्चार करून "इदं सौवर्णं राहुर्विंबं
नागं सौवर्णं राविर्विंबं राजतं चंद्रविंबं वा घृतपूर्णकाश्यपात्रनिहितं यथाशक्ति तिलवस्त्रदाक्षिणा
सहितं ग्रहणसूचितारिष्टविनाशार्थं शुभफलप्राप्त्यर्थं च तुभ्यमहं संप्रददे. " या दानवाक्यानें
पूर्वी पूजा केलेला असा जो ब्राह्मण आला दान करावें. असेच चतुर्थ इत्यादि अनिष्ट
स्थानीं ग्रहण असेल तर दान करावें, असे वाटतें. ज्याच्या जन्मराशी, जन्मनक्षत्र
इत्यादि स्थानीं ग्रहण असेल त्यानें राहून ग्रस्त असे सूर्यचंद्रांचे विष पाहूं नये. अन्य
श्लोकानींहि वस्त्र, उदक इत्यादि आड करून आंतून ग्रहण पाहावें; प्रत्यक्ष पाहूं नये.

मंगलं कार्याविपर्यां वर्जं असे ग्रहण संबंधीं दिवस.

पूर्णप्रास असे चंद्रग्रहण असेल तर मंगलकार्यांचे ठिकाणीं, द्वादशीपासून तृतीयेपर्यंत
सात दिवस टाकावे. पूर्णप्रास असे सूर्यग्रहण असेल तर एकादशीपासून चतुर्थीपर्यंत
नऊ दिवस टाकावे. संडित ग्रहण असेल तर चतुर्दशीपासून तीन दिवस टाकावे.
प्रासाचे चरण जसे कमजास्ती होतील त्या मानाने दिवसांचेहि कमजास्ती मान घेऊन,
असे ज्योतीष ग्रंथामध्ये सांगितले आहे. प्रस्तास्ते असेल तर पूर्वीचे तीन दिवस
टाकावे. अस्तोदय असेल तर पुढचे तीन दिवस टाकावे. पूर्ण प्रास असेल तर
सहा महिनेपर्यंत ज्या नक्षत्रीं ग्रहण असेल ते नक्षत्र वर्ज्य करावे. पादादिप्रास जसा
जसा होईल त्या त्या मानाने दोड महिना इत्यादि वर्ज्य करावे. संकल्प करून द्यावयास
काढलेले द्रव्य ग्रहणानंतर दिले असतां दुष्पट होते. ॥ याप्रकारे करून ग्रहणाचा निर्णय
शाला. उद्देश ३१ ॥

समुद्रस्नानाचा विचार.

पौर्णिमा, अमावास्या, इत्यादि पर्वणींचे दिवसीं समुद्रस्नान करावें. शुक्रवार आणि
मंगळवार या दिवसीं समुद्राचे स्नान करूं नये. " अश्वत्थ, व सागर, यांची सेवा
करावी. त्यांना कधींहि स्पर्श करूं नये, शनिवारी अश्वत्याला स्पर्श करावा व
पर्वणींचे दिवसीं समुद्राला स्पर्श करावा. सेतुबंधसंबंधीं जें समुद्राचे स्नान त्या
विषयी कोणताही निषेध नाहीं." समुद्रस्नानाचा प्रयोग दुसऱ्या ग्रंथी पहावा.
॥ या प्रकारे करून समुद्रस्नानाचा निर्णय शाला. उद्देश ३२ ॥

कोणकोणत्या तिथि, नक्षत्रे आणि वार, यांचे ठि कार्णी कोणकोणते पदार्थ वर्ज्य ते सांगतो.

तैलस्पर्श, काळें वस्त्र धारण करणे, आंबळकठीच्या काढ्यानें ज्ञान, कलह, तांब्याचे भांड्यांत भोजन करणे, हीं सप्तमीचे दिवसीं वर्ज्य करावीं. प्रतिपदा, षष्ठी, एकादशी या दिवसीं तैलाभ्यंग वर्ज्य. चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी या दिवसीं क्षीर वर्ज्य. तृतीया, अष्टमी, त्रयोदशी, या दिवसीं शूद्रादिकांनीं मांस वर्ज्य करावे. पंचमी, दशमी, पूर्णिमा या दिवसीं स्त्री वर्ज्य. रविवार, मंगळवार, बुधवार या दिवसीं क्रमेंकरून तैलाभ्यंग, इमशु, स्त्री, हीं वर्ज्य. चित्रा, हस्त, श्रवण या नक्षत्रां स्त्री वर्ज्य. विशाखा, प्रतिपदा या दिवसीं इमशु वर्ज्य. मघा, कृत्तिका, तीन उच्चरा, या नक्षत्रां स्त्री वर्ज्य. विलम्बक्षण तिलतर्पण हीं सप्तमीस वर्ज्य. अष्टमी, नवमी, दशमी, एकादशी, द्वादशी, त्रयोदशी, या दिवसीं क्रमेंकरून नारळ, भोपळा, पडवळ, पावट्या वगैरे, मसुरा, वांगी हीं वर्ज्य करावीं. "पूर्णिमा, अमावास्या, संक्रांति, चतुर्दशी, अष्टमी, या दिवसीं तैल, स्त्री, मांस हीं सेवन करील तर खाला चांडालजन्म होतें." पूर्णिमा, अमावास्या, संक्रांति, द्वादशी, श्राद्धदिवस, या दिवसीं वस्त्र पिळूं नये. रात्रीं माती, शेण, उदक, हीं आणूं नयेत. गोमूत्र प्रदोषकाळीं आणूं नये. अमावास्या इत्यादि पर्वणीचे दिवसीं शांतीकरितां अवश्य तिळांचा होम करावा. आपल्या रक्षणाकरितां दानादिक करावीं. पर्वणीचे दिवसीं अध्ययन करूं नये. शीव; आचमन, ब्रह्मचर्य हीं सेवन करावीं. प्रतिपदा, अमावास्या, षष्ठी, नवमी, श्राद्धदिवस, जन्मदिवस, व्रतदिवस, उपोषणादिवस, रविवार, माघ्यान्हजानसमय, इतक्या काळीं काष्ठानें दांत घासूं नये. "ज्या दिवसीं दंतकाष्ठें न मिळतील त्या दिवसीं आणि निषिद्ध दिवसीं उदकाचे बारा चूळ करून किंवा वृक्षाच्या पानांनीं मुखप्रक्षालन करावें." ह्या सर्व निषेधांविषयीं तिथी, नक्षत्रे इत्यादि घेणें तीं तत्काळव्यापी असतील तीं घ्यावी.

॥ याप्रकारें करून धर्मासिंधुसारांतील तिथ्यादिकांचा विधिनिषेध सांगितला उद्देश ॥३३॥
मीसांसाधर्मशास्त्रज्ञाःसुधियोनलसानुधाः ॥ कृतकार्याःप्राङ्निबंधैस्तदर्थनायमुद्यमः ॥१॥
मीमांसा, धर्मशास्त्र यांतें जाणणारे व बुद्धिमान, आलस्यराहित असे जे पंडित ते महाविद्वानांनीं केलेले पूर्वेचे ग्रंथ पाहून त्यांवरून कृतकार्य होतात, याकरितां माझा हा ग्रंथ करण्याचा उद्योग आंच्याकरितां नाही:

येपुनर्मंदमतपोलसाअज्ञाश्चनिर्णयं धर्मेवादेतुमिच्छंतिरचितस्तदपेक्षया ॥ २ ॥

निबंधोपधर्मसिंधुसारानामासुबोधनः अमुनाप्रोपतांश्रीमद्विठ्ठलभक्तवत्सलः ॥ ३ ॥

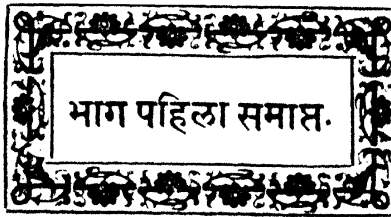
तर जे मंदबुद्धि, व्याळसी, अविद्वान असे असून धर्मानिषयीं निर्णय लावण्याची इच्छा करितात त्यांच्या करितां धर्मसिधूसार नांवाचा असा हा सुबोध ग्रंथ मी केला आहे- वा प्रर्थेकरून भक्तवत्सल असा श्रीमद्विठ्ठल संतुष्ट असो.

सर्वत्रमूलवचनानीहोश्यानिर्णयविचारश्च कौस्तुभनिर्णयसिधुश्रीमाधवकृतनिवृधेभ्यः ॥४॥

या ग्रंथाविषयींचीं सर्व मूलवचनें व यांचे विचार पाहाणें असतील तर कौस्तुभ, निर्णयसिधु, श्रीमाधव याणीं केलेले जे निबंध खंत पाहवे.

प्रेम्णासाद्भिर्ग्रंथःसेव्यःशब्दार्थतःसदोषोपि संशोध्यवापिहरिणासुदाममुनिसगुणपृथुक मुष्टिरिव ॥ ५ ॥

हा ग्रंथ क्वचित् रषलीं शब्दार्थानें सदोष असला तथापि विद्वानांनीं विचारपूर्वक शोधून ग्रहण करण्यास योग्य आहे. ज्याप्रमाणे सुदामा ब्राह्मणाचे पोहे कोंड्यानें पुक्त असतांही ते हरिनें कोंडा टाकून देऊन भक्षण केले. ॥ या प्रकारेंकरून अनंतो पाभ्यायांचा पुत्र काशेनाथोपाध्याय यामें रचिलेलाजो धर्मसिधूसार ग्रंथ आचा पहिला भाग समाप्त झाला.



॥ श्रीगणेशायनमः ॥

यत्कृपालेशमात्रेण मूकोपि धिषणापने ॥

तमहं परमात्मानं वंदे कामप्रदं प्रभुं ॥ १ ॥

अर्थ—ग्याच्या रूपालेशमात्रे कळून मूकहि बुद्धिमतेप्रत पावतो, असा जो परमात्मा सकलाभोष्टद प्रभु आते मी नमस्कार करितो.

श्रीपांडुरंगविक्रुधांतरंगनौमींदिरांमाधवमंदिरांच ॥

सनामनंतहितपामनंतगुदुंगारेष्टजननींवारिष्ठाप् ॥ १ ॥

ज्ञानी जे ग्याच्या अंतःकरणांत वास करणारा असा श्रीपांडुरंग, आणि माधव जो तोच आहे मंदिर जीचे असी लक्ष्मी, व साधूचे हित करणारा असा अनंतनामक श्रेष्ठ गुरू, आणि श्रेष्ठ असी माता या सर्वांला मी नमस्कार करितो.

काशीनाथाभिधेनात्रानंतोपाध्यायसूनुना ॥

सामान्यनिर्णयप्रोष्यविशेषेणविनिर्णयः ॥ २ ॥

अनंतोपाध्यायांचा पुत्र असा मी काशिनाथ, प्रथम परिच्छेदांत तिथि इत्यादीकांचा सामान्य निर्णय सांगून आतां या दुसऱ्या परिच्छेदांत विशेष निर्णय सांगतो.

संगृह्यनेधर्मसिंधुसाराख्येकालगोचरे ॥

ग्रंथेप्रस्फुटबोधापुनरुक्तिर्नदूषणम् ॥ ३ ॥

सर्वांला यथार्थ बोध होण्याकरितां कालगोचर अशा ह्या धर्मसिंधुसारनामक ग्रंथामध्ये कोठे स्थलविशेषीं पुनरुक्ति येईल तर तो दोष असें मानूं नये.

प्रथम परिच्छेदांत मासादिकांचा विशेष सांगितल्यावांचून सामान्यकळून तिथि इत्यादी कांचा निर्णय सांगितला आहे. परंतु तितक्यानें निर्वाह होत नाही, झणून आतां या दुसऱ्या परिच्छेदांत चैत्रादिक वारा महिन्यांत कोणत्या तिथिचा कसा निर्णय आणि कोणकोणत्या तिथीला कोणकोणतीं कृत्ये करावी, यांचा सर्व विशेष निर्णय, व प्रतिपदादिक ज्या तिथि यांचे ठिकाणीं विहित वार्धाककृत्ये कोणकोणतीं करावी, हे सांगतो.

दक्षिण देशांतील लोक बहुधा शुद्ध प्रतिपदेपासून अमावास्येपर्यंत महिना ग्रहण करितात यास्तव त्याचाच आश्रयाने निर्णय सांगतो. या परिच्छेदांत कचित्तुस्यलीं प्रथम परिच्छेदांतील विषय आला आहे तो त्या त्या विशेषाच्या दृष्टीकरणार्थ लिहिला आहे.

यास्तव तो पुनश्चक्रिरूप दोष आहे असे लोकांनी समजून नये. वैशसंक्रांतीच्या पूर्वीच्या दहा व पुढच्या दहा, एकूण वीस घटिका पुण्यकाळ. संक्रांति मध्यरात्रीच्या पूर्वी झाली असता पूर्वदिवसाचे उत्तरार्ध पुण्यकाळ जाणावा. मध्यरात्रीनंतर संक्रांति होईल तर दुसऱ्या दिवसाचे पूर्वार्ध पुण्यकाळ. बरोबर मध्यरात्रीसंक्रांति होईल तर पूर्वदिवस आणि पुढचा दिवस असे दोन दिवस पुण्यकाळ.

आतां तिथिनिर्णय सांगतां.

चैत्रशुद्ध प्रतिपदेच्या दिवसी संवत्सराचा आरंभ होतो, साविषयी प्रतिपदा सूर्योदय कार्त्ती असेल ती ध्यावी. दोन दिवसी सूर्योदयकार्त्ती असेल किंवा दोन्ही दिवसी सूर्योदयकार्त्ती नसेल तर पूर्वदिवसाची ध्यावी. चैत्रमास हा अधिकमास आला असेल तर नूतन वर्षाला आरंभ झाला झणून तैलाभ्यंग करणें, व संकरुपादिकांत नव्या वर्षाचा नामोच्चार करणें, हीं मलमास प्रतिपदेच्या दिवसांचि करावीं. प्रत्येकानें आपापल्या गृहाचे ठिकाणीं ध्वजारोपण, निंबपत्रांचे भक्षण, संवत्सरफळाचे श्रवण, नवरात्राचा आरंभ आणि नवरात्रसंबंधी उत्सव, इत्यादिकांच्या निमित्तानें तैलाभ्यंग करणें हीं सर्व शुद्धमास प्रतिपदेच्या दिवसांचि करावीं. नवीन वर्षाला आरंभ होतो या निमित्तानें तैलाभ्यंग करणें तोहि शुद्धमासाच्या प्रतिपदेच्या दिवसांचि करावा, असें मयूखांत सांगितलें आहे. ह्या चैत्रशुद्ध प्रतिपदेच्या दिवसी तैलाभ्यंग करणें हें नियम आहे, आणि तो न केला असतां दोष आहे. ह्याच प्रतिपदेच्या दिवसी देवीच्या नवरात्राचा प्रारंभ करावा. ह्या नवरात्राविषयी प्रतिपदा घेणें ती द्वितीयेनें युक्त असीं मुहूर्तमात्र असेल तथापि ती ध्यावी. एथें मुहूर्ताचें परिमाण असे—“दिवसाचा किंवा रात्रीचा कोणताहि पंधरावा जो भाग आला मुहूर्त असें झणतात. ” याप्रमाणें सर्व ठिकाणीं मुहूर्त परिमाण जाणावें. ह्या देवी नवरात्राचा पारणादिक विशेष निर्णय शारद नवरात्रा प्रमाणें समजावा. ह्याच दिवसी प्रसादान करावें. साविषयी मंत्र—“प्रपेयं सर्वसामान्या भूतेभ्यःप्रतिपादिता॥अस्याः प्रदानात् पितरश्चतुर्व्यंतुहि पितामहाः” ॥ “या मंत्रेकरून चार महिने पथंत यथेच्छ प्राणिमात्रास पाणपोई घालूनजलदान करावें, तेणेंकरून त्याचे पितर तृप्त होतात.” चार महिने पथंत पाणपोई घालण्यास ज्याला शक्ति नसेल त्यानें दररोज ब्राह्मणाच्या गृहीं उदक कुंभ द्यावा. त्याचा मंत्र—“एष धर्मघटो दत्तो ब्रह्मविष्णु शिवात्मकः ॥ अस्य प्रदानात् सकला मय संतु भनोरथाः” ॥ हीच प्रतिपदा करुपादिहि आहे. याप्रमाणें वैशाखशुद्ध तृतीया, फाल्गुन कृष्ण तृतीया, चैत्रांतील शुद्ध पंचमी, माघशुद्ध त्रयोदशी, कार्तिकशुद्ध सप्तमी, आणि मार्गशीर्षशुद्ध नवमी ह्याहि तिथि करुपादि आहेत असें जाणावें. ह्या करुपादि तिथींचि दिवसी श्राद्ध केलें असतां पितरांची तृप्ति होते. चैत्रशुद्ध

प्रतिपदा ही मत्स्यखंडती असे कोणी झणतात. चैत्रमासांत, दही, दूध, तूप, आणि मध यांचा अंग करून दंपतीपूजनात्मक असे गौरीचे व्रत करावे. चैत्रशुद्ध द्वितीयेचे दिवसी प्रदोष काली नालेंदूचे पूजन इत्यादिक चंद्रव्रत करावे. आषाढ द्वितीयेचे दिवसी दवण्याने गौरीशिवाची पूजा करावी. चैत्रशुद्ध तृतीयेचे दिवसी शिवसहित गौरीचे पूजन करून आंदोलनव्रत एक महिनापर्यंत करावे. ह्या व्रताविषयी तृतीया सुवर्तमान असेल तथापि दुसऱ्या दिवसाची ध्यावी, द्वितीयायुक्त घेऊं नये. चतुर्थीयुक्त असून वैधृति इत्यादिक योग असेल तथापि द्वितीयायुक्त घेण्याविषयी मोठा निषेध आहे यास्तव तीच ध्यावी. ह्या तृतीयेचे दिवसी रामचंद्राच्या द्योतोत्सवाचा आरंभ करून एक महिनापर्यंत दररोज पूजा करून आंदोलन करावे. याप्रमाणे इतर देवांचेहि आंदोलनोत्सव करावे. ही तृतीया मन्वादिदि आहे, याकरितां एथेच मन्वादि तिथींचा निर्णय सांगतो. चैत्रशुद्ध तृतीया, चैत्री पौर्णिमा, ज्येष्ठी पौर्णिमा, आषाढशुद्ध दशमी व पौर्णिमा, श्रावणकृष्ण अष्टमी, भाद्रपदशुद्ध तृतीया, आश्विनशुद्ध नवमी, कार्तिकशुद्ध द्वादशी व पौर्णिमा, पौष शुद्ध एकादशी, माघशुद्ध सप्तमी, आणि फाल्गुनांतील पौर्णिमा व अमावास्या, याप्रमाणे चवदा तिथि मन्वादि जाणाव्या. ह्या मन्वादि तिथि शुद्धपक्षांतील असतील तर, दैव कर्म आणि पित्र्यकर्म यांविषयी पूर्वाण्हकालव्यापिनी ध्याव्या: दिवसाचे दोन भाग करून पहिला भाग तो पूर्वाण्हकाल. श्राद्धादिक करणे ते पूर्वाण्हकालीच करावे. देवसंबंधी किंवा मनुष्य संबंधी काहीं अडचण येऊन पूर्वाण्हकाली श्राद्धादिक करण्यास न सांपडेल तर अपराण्ह व्यापिनी ध्याव्या. दिवसाच्या पूर्वाह्निकाली किंवा अपराण्हि. श्राद्धादिक करावे दिवसाच्या उत्तरार्द्धाच्या मध्यान्हभागांत करूं नये असे तात्पर्य. कृष्णपक्षांतील मन्वादि तिथि, दैव, पित्र्य कर्म यांविषयी घेणे असतील तर ह्या दिवसाचे पांच भाग करून चवथा भाग जो अपराण्हकाल तत्कालव्यापिनी ध्याव्या. मन्वादि तिथींचे ठिकाणी आणि ढक श्राद्ध करावे. ह्या तिथींचे दिवसी श्राद्धे केल्याने दोन सहस्र वर्षपर्यंत पितरांची तृप्ति होते. मन्वादि तिथींचे ठिकाणी श्राद्ध नियम आहे. हे श्राद्ध न केलें असतां 'त्वं भुवःप्रतिमानं०' ह्या ऋचेचा शंभर वेळ जप उदकांत उभें राहून करावा, हें प्रायश्चित्त आहे. अर्थाच १६ श्राद्धेहि नियम आहेत. तीं घणवति श्राद्धे अर्थाः— अमावास्यांचीं १२, युगादि ४, मन्वादि १४, संक्रांतींचीं १२, वैधृति १२, व्यतीपात १२, प्रतिपदेपासून अमावास्यापर्यंत दररोज याप्रमाणे महालय १५, अष्टका ५, अन्वष्टका ५, पूर्वेंद्यु ५, याप्रमाणे ९६ श्राद्धे जाणावीं.

दशावतारजयंत्या.

ज्या तिथीचे दिवसीं जो अवतार झाला असा जन्मतिथीला जयंती असें झणतात. चैत्र शुद्ध तृतीयेचे दिवसीं अपराण्हकालीं मत्स्यावतार झाला, याकरितां चैत्रशुद्ध तृतीया ही मत्स्यजयंती, याप्रमाणें सर्वांच्या जयंती जाणाव्या. वैशाख पौर्णिमेच्या दिवसीं सायंकाळीं कूर्मावतार झाला. भाद्रपदशुद्ध तृतीयेचे दिवसीं अपराण्हकालीं वराहावतार झाला. वैशाख शुद्ध चतुर्दशीचे दिवसीं सायंकाळीं नारासिंहावतार झाला. भाद्रपदशुद्ध द्वादशीचे दिवसीं मध्यान्हकालीं वामनावतार झाला. वैशाखशुद्ध तृतीयेचे दिवसीं मध्यान्हकालीं परशुरामावतार झाला, तो प्रदोषकालीं झाला असें पुष्कळ ग्रंथकार झणतात. चैत्रशुद्ध नवमीचे दिवसीं दाशरथि रामाचा अवतार झाला. श्रावणकृष्ण अष्टमीचे दिवसीं मध्यरात्रीस श्रीकृष्णावतार झाला. आश्विनशुद्ध दशमीचे दिवसीं सायंकाळीं वीद्धावतार झाला. श्रावणशुद्ध षष्ठीचे दिवसीं सायंकाळीं कल्कीचा अवतार झाला. याप्रमाणें ज्या ज्या कालीं जो जो अवतार झाला असेल त्या कालीं त्या व्याप्ति पाहून जयंतीतिथींचा निर्णय करावा. ह्यांमध्ये मत्स्य, कूर्म, वराह, बुद्ध, आणि कल्की यांच्या अवतारांविषयीं आपाढादिक दुसरे मास, एका दशी इत्यादिक दुसऱ्या तिथीं, आणि प्रातःकालादिक दुसरे काल, असे दुसऱ्या वचनांच्या प्रमाणावरून कालभेद सांगितले आहेत, यापेक्षां कल्पभेदेकरून त्यांची व्यवस्था करावी, आणि ज्यांणीं जो पक्ष स्वीकारिला असेल तदनुसार त्या त्या भक्तांनीं त्या त्या दिवसीं उपोषणें करावीं. ह्या जयंतींमध्ये श्रीरामजयंती, कृष्णजयंती, आणि नृसिंहजयंती ह्या मात्र नित्य आहेत, याकरितां त्या दिवसीं सर्वांनीं उपोषण करावें. मध्यान्हकालव्यापिनी अशा चैत्रशुद्ध चतुर्थीचे दिवसीं लाडू इत्यादिकांनीं गणपतीची पूजा करून दवणा वाहावा, तर्पेकरून विर्माचा नाश होऊन सकल मनोरथ सफळ होतात. चैत्रशुद्ध पंचमीचे दिवसीं अनंतादिक नागांची पूजा करून दूधनुपाचा नैवेद्य समर्पण करावा. ह्याच पंचमीचे दिवसीं लक्ष्मीची पूजा करावी, ह्याच दिवसीं उच्चैःश्रवा इत्यादिकांचे पूजासुप ह्यत्रत करावें. ह्या सर्व व्रतांविषयीं पंचमी, सामान्य निर्णय सांगितला आहे याप्रमाणें ध्यावी व पुढेंहि असेंच समजावें. जेथें विशेष निर्णय सांगितला नाही तेथें प्रथम परिच्छेदांत सांगितलेला तोंच निर्णय घ्यावा. षष्ठीचे दिवसीं षडाननाला दवणा वाहावा, सप्तमीचे दिवसीं सूर्याला, नवमीचे दिवसीं देवीला, पौर्णिमेचे दिवसीं सर्व देवांला दवणा वाहावा, असा ग्रंथांतरां विस्तार सांगितला आहे. चैत्रशुद्ध अष्टमीचे दिवसीं भवानीदेवीचा अवतार झाला, याविषयीं अष्टमी, नवमीयुक्त असेल ती ध्यावी. ह्या अष्टमीचे दिवसीं पुनर्वसु नक्षत्र असेल तर अशोकवृक्षाच्या आठ कळ्या भक्षण कराव्या. कळ्याभक्षणाचा मंत्र— “ त्वामशोक नराभीष्टं मधुमाससमुद्भव ॥ पिबामि शोकसंतप्तो मामशोकं सदा कुर्व” ॥ ह्या दिव

शीं “ चैत्रमास, शुक्लपक्षातील अष्टमी, पुनर्वसु नक्षत्र, बुधवार, असा योग असेल तर प्रातःकाली यथाविधि स्नान केले असतां वाजपेय यज्ञाचे फळ मिळते.” चैत्रशुक्ल नवमी हिला रामनवमी असें ह्मणतात. ह्या नवमीचे दिवसीं पुनर्वसु नक्षत्र, मध्यान्ह समय, कर्कळभ, मेषांचा सूर्य, उर्ध्वेचे पांच ग्रह असा योग असतां श्रीरामाचा अवतार झाला. उपोषण करणे ते मध्यान्हकालव्यापिनी नवमीचे दिवसीं करावे. पूर्वादिवसींच मध्यान्हकालव्याप्ति असेल तर तीच ध्यावी. दोन दिवसीं मध्यान्ह व्याप्ति असेल अथवा दोन दिवसीं मध्यान्हव्याप्ति नसेल तर अष्टमीविद्ध घेऊं नये असा निषेध आहे याकरितां दुसऱ्या दिवसाची ध्यावी. जरी पूर्व दिवसीं संपूर्ण मध्यान्हकालव्याप्ति असेल तथापि ती टाकून दुसऱ्या दिवसीं मध्यान्हकाली एकदेशव्याप्ति असेल ती ध्यावी. कोणी ग्रंथकार, अष्टमीने, विद्ध असून मध्यान्हकालव्यापिनी, आणि पुनर्वसु नक्षत्रेकरून युक्त असी असेल तथापि ती टाकून दुसऱ्या दिवसीं सहा घटिका नवमी असेल तीच सर्वांनीं उपोषणाविषयीं ध्यावी, आणि जर दशमीचा क्षय होऊन पारणेच्या दिवसीं स्मार्तांचे एकादशीव्रत प्राप्त होईल तर स्मार्तांनीं अष्टमीविद्ध असी उपोषणाविषयीं ध्यावी. वैष्णवांनीं सहा घटिकांनीं युक्त असी दुसऱ्या दिवसाचीच उपोषणाळा ध्यावी, शूद्रनवमी न मिळेल, किंवा दुसऱ्या दिवसीं सहा घटिकांहून नवमी कमी असेल, तर सर्वांनीं अष्टमीविद्ध असेल तीच उपोषणाविषयीं ध्यावी असें ह्मणतात. हे नवमीचे व्रत नियम आणि काव्य असें दोन प्रकारचे आहे.

अतां या व्रताचा प्रयोग सांगतो.

अष्टमीचे दिवसीं उपाध्याय याची पूजा करून “ श्रीरामप्रतिमादानं करिष्ये उवाचै नोत्तम ॥ तत्राचार्यो भव प्रीतः श्रीरामासि त्वमेव मे, ” या मंत्रेकरून त्याची प्रार्थना करून नंतर, “ नवम्या अंगभूतेन एकभक्तेन राघव ॥ इक्ष्वाकुवंशतिलक प्रीतीभव भवा प्रिय, ” या मंत्रेकरून एकभुक्ताचा संकल्प करून उपाध्यायासह हविष्यान्न भोजन करावे. तेथे पूजेकरितां मंडप व वेदी करून नवमीचे दिवसीं प्रातःकाली, “ उपोष्य नवमीत्वद्य यमिष्वष्टसु राघव ॥ तेन प्रीतो भव त्वं मे संसारात् त्वाहि मां हरे ” या मंत्रेकरून उपोषणाचा संकल्प करून नंतर, “ इमां स्वर्गमयीं राम प्रतिमां त्वां प्रयत्नतः ॥ श्रीरामप्रीतये दास्ये रामभक्ताय धीमते, ” या मंत्रेकरून प्रतिमादानाचा संकल्प करावा. मग, “ श्रीरामनवमीव्रतांगभूतां, पौंडशोपचारैः श्रीरामपूजां करिष्ये, ” असा संकल्प करून वेदीवर सर्वतोभद्रमंडल घालून त्या मंडलावर कलशाची स्थापना करून मग त्या कलशावर पूर्णपत्र ठेवून त्याच्या सर्भोवार वस्त्राचे वेश्ण करावे. नंतर पूर्ण

पात्राभ्ये, अन्युत्तरणाविधीने प्रतिमेचे ठिकाणी श्रीरामाची स्थापना करून पुढवसू-
क्ताच्या सोळा ऋचांनी पूजा करून पुष्पपूजा झाल्यानंतर, “ रामस्य जननी चासि रामा-
त्मकमिदं जगत् ॥ अतस्त्वां पूजयिष्यामि लोकमातर्नमोस्तु ते, ” ह्या मंत्राने कौसल्येचे
पूजन करून “ ओंनमो दशरथाय ” या मंत्रेकरून दशरथाची पूजा करावी. सर्व पूजा
समाप्त झाल्यावर मध्यान्हकाली फल, पुष्प, गंध इत्यादि उदकात घालून ते उदक
शोळांत घालून शोळाने अर्घ्य द्यावे. अर्घ्याचा मंत्र— “ दशाननवधार्थाय धर्मसंस्थापना
यच ॥ दानवानां विनाशाय दैत्यानां निधनायच ॥ परित्राणाय साधूनां जातो रामः स्वयं
हरिः ॥ गृहाणार्घ्यं मया दत्ते भ्रातृभिः सहितोऽनघ ” याप्रमाणे अर्घ्य द्यावे. रात्री
जागरण करून प्रातःकाली नित्यपूजा करून मग मूलमंत्राने पायसाच्या अष्टोत्तरशत
आहुति हवन करून पूजेचे विसर्जन करून उपाध्यायाला प्रतिमेचे दान करावे. दानाचा
मंत्र— “ इमां स्वर्गमयीं राम प्रतिमां समलंकृतां ॥ शुचिवस्त्रयुगच्छानां रामोऽहं राष्ट्रवाय
ते ॥ श्रीरामप्रीतये दास्ये तुष्टो भवतु राघवः ” याप्रमाणे दान करून प्रार्थना करावी.
प्रार्थनेचा मंत्र— “ तव प्रसादं स्वीकृत्य क्रियते पारणा मया ॥ व्रतेननेन संतुष्टः स्वामिन्
भक्तिं प्रयच्छ मे ” याप्रमाणे प्रार्थना झाल्यानंतर नवमीच्या अंती पारणा करावी.
हे व्रत मलमासांत करू नये. याप्रमाणे जन्माष्टम्यादिक व्रते सुद्धा मलमासांत करू
नयेत. याच नवमीचे दिवसी देवीनवरात्राची समाप्ति करावी, व त्याच्या समाप्तीचा
निर्णय आश्विन मासांतील नवरात्राच्या नवमी प्रमाणे जाणावा.

श्रीकृष्णाचा आंदोलनोत्सव.

(श्रैवाचारणे.)

चैत्रशुक्ल एकादशीचे दिवसी श्रीकृष्णाचा आंदोलनोत्सव करावा. “ काल संबंधी
पातकांचा नाश करणारा जो कृष्ण तो दोलारूढ शाला, असे जे पाहतात ते सह
सशः आपराधांपासून मुक्त होतात. आंदोलन केलें असतां ते करणांरांची कोटिशः
जन्मांची पातके दूर होऊन ते वैकुंठाचे ठिकाणी देवांला पूज्य होसात विष्णूसह क्रीडा
करितात, ” असा ह्या आंदोलन उत्सवाचा महिमा आहे. चैत्रशुक्ल द्वादशीचे दिवसी
विष्णूचा दमनोत्सव करावा. हा पारणेचे दिवसी करावा. कारण, “ पारणेच्या
दिवसी एक षटिकासुद्धा द्वादशी न मिळेल तर, पवित्र दमनोत्सवाविषयी त्रयोदशी
प्यावी, ” असे वचन आहे. शिवाचा दमनोत्सव तर चतुर्दशीचे दिवसी करावा.

या दमनोत्सवाचा प्रयोग.

सप्तोषणाच्या दिवसी नित्यपूजा करून जेथे दवणा मिळतो तेथे जाऊन दवणा

विकत प्यावा. नंतर गंध, पुष्प, धूप इत्यादिकानें पूजा करून ' श्रीरुष्णपूजेकारितां तुला नेतां ' अशी त्याची प्रार्थना करून नमस्कार करावा. दुसऱ्या देवताविषयी न्याय-याचा असल्यास जी देवता असेल तिचा उच्चार करावा. पुढें दक्षणा घरीं आणून पंचगव्यानें आणि उदकानें प्रक्षालन करून देवाच्या पुढें ठेवावा. नंतर त्या द्रव्याचे ठिकाणीं अशोक, काल, वसंत, काम, ह्या देवतांची, किंवा कामाची गंधादिकाने पूजा करावी. " नमोस्तु पुष्पवाणाय जगदाह्लादकारिणे ॥ मन्मथाय जगन्नेत्रे रतिप्रतिप्रियाय ते, " ह्या मंत्रेंकरून कामाचें आवाहन करावें. नंतर " काम भस्मसमुद्भूत रतिवाप्यपरिष्कृत ॥ ऋषिगंधर्वदेवादिविमोहक नमोस्तु ते, " या मंत्रेंकरून द्रवण्याची प्रार्थना करावी. " ओकामाय नमः " ह्या मंत्रेंकरून परिवारयुक्त अशा कामरूपी द्रवण्याला गंधादिक उपचार अर्पण करावे. तदनंतर रात्री देवाची पूजा करून अधिवासन करावें. तो प्रकार असा— देवाच्या अग्रभागीं सर्वतोभद्रमंडळ घालून त्याच्यावर कलशस्थापना करून त्या कलशावर धौतवस्त्रानें आच्छादित असा द्रवणा वांबूच्यापात्रांत ठेवावा. नंतर " पूजार्थं देवदेवस्य विष्णोर्लक्ष्मीपतेः प्रभो ॥ दमन त्वमिहागच्छ सन्निध्यं कुरु ते नमः " ह्या मंत्रानें दमनक देवतेचें आवाहन करून पूर्वादिक आठ दिशांचें ठिकाणीं पुढे सांगतो ह्या आठ मंत्रेंकरून पूजा करावी. " ह्रीं कामदेवाय नमो ह्रीं रस्यै नमः १, ह्रीं भस्मशरीराय नमो ह्रीं रस्यै नमः २, ह्रीं आनंदाय नमो ह्रीं रस्यै नमः ३, ह्रीं मन्मथाय नमो ह्रीं रस्यै नमः ४, ह्रीं वसंतसत्ताय नमो ह्रीं रस्यै नमः ५, ह्रीं स्मराय नमो ह्रीं रस्यै नमः ६, ह्रीं इक्ष्वापाय नमो ह्रीं रस्यै नमः ७, ह्रीं पुष्पवाणास्त्राय नमो ह्रीं रस्यै नमः ८, " अशी पूजा करून नंतर, " तःपुरुषायाविसद्वे कामदेवाय धीमहि ॥ तन्नोऽनंगः प्रचोदयात् " ॥ ह्या मंत्रानें द्रवण्याला अष्टोत्तरशत (१०८) वेळा अभिमंत्रण करून गंधादिकांनीं पूजा करावी. नंतर " ह्रीं नमः " ह्या मंत्रेंकरून पुष्पांजलि अर्पण करून " नमोस्तु पुष्पवाणाय ० " ह्या पूर्वी सांगितलेल्या मंत्रानें नमस्कार करावा. नंतर " क्षीरोदीधिमहानागश्यावावस्थितविग्रह ॥ तात-स्त्वां पूजयेष्यामि सन्निधी भव ते मम, " ह्या मंत्रेंकरून देवाची प्रार्थना करून पुष्पांजलि द्यावी. आणि त्या एकादशीचे दिवशीं रात्री जागरण करावें. नंतर सकाळीं निज पूजा करून पुनः देवाची पूजा करून दुर्गा, गंध, अक्षता यांहीं युक्त अशी द्रवण्याची मंजरी घेऊन मूलमंत्र पठण करून " देवदेव जगन्नाय वांचितार्थप्रदायक ॥ इत्थ्यान् पूर्य मे विष्णो कामान् कामेश्वरीप्रिय ॥ इदं दमनकं देव गृहाण मदनुग्रहात् ॥ इमां सां-स्तरीं पूजां भगवन्परिपूर्य ॥ " असे हे मंत्र झणून पुनः मूलमंत्राचा जप करून देवाला द्रव-

णा अर्पण करावा. मग सुशोभित दिलेल असा दवणा वाढवा. नंतर अंगदेवतांना दवणा वाहून प्रार्थना करावी. प्रार्थनेचे मंत्र—“ मणिचिद्रुममालाभिर्मंदारकुसुमादिभिः ॥ इयं सांवत्सरी पूजा तवास्तु गरुडध्वज ॥ वनमालां यथा देव कौस्तुभं संततं हृदि ॥ तद्ददाम नकीं मालां पूजां च हृदये वह ॥ जानताऽजानता वापि न कृतं यत्तवाचर्चनं ॥ तत्सर्व- पूर्णतां यातु त्वत्प्रसादाद्रमापते ॥ जितं ते पुंदरीकाक्ष नमस्ते विश्वभावन ॥ इषीकेश नम- स्तेस्तु महापुरुषपूर्वज ॥ मंत्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं सुरेश्वर ॥ यत्पूजितं मया देव परिपूर्णं तदस्तु मे ॥ ॥ ह्या मंत्रांनीं प्रार्थना करून झाल्यानंतर गंधादि पंचोपचारांनीं देवाची पूजा करून अर्ची करावी. नंतर ब्राह्मणांला दवणा देऊन शेष आपण ग्रहण करून सुद्धत् आम्हांसहवर्तमान पारणा करावी. मंत्रदीक्षा ज्यांना नसेल त्यांनीं नाममंत्रे- करून दवणा देवाला वाहावा. ह्या दमनक उत्सवाचा गौण काल श्रावणमासापर्यंत आहे, व हा मलमासांत करूं नये. गुरुशुक्रांचे अस्तादिक असेल तथापि करावा. या प्रमाणे दमनारोपणाचा विधि सांगितला. ह्याच द्वादशीला उद्देशून भारतातील वचन सांगतात. “चैत्रशुद्ध द्वादशीचे दिवसी अहोरात्र विष्णुचे स्मरण केले असतां पुंदरीक यज्ञाचे फळ मिळून विष्णुलोकाला जातो. ”

अनंग पूजन व्रत व दमनक पूजना विषयीं सर्व साधारण निर्णय.

चैत्रशुद्ध त्रयोदशीचे दिवसीं अनंगपूजनरूप व्रत करावे. त्या व्रताविषयीं त्रयोदशी द्वादशीनें विद्व असेल ती ध्यावी. चैत्रशुद्ध चतुर्दशीचे दिवसीं नृसिंहाचा दौलोटसव करावा. ह्याच चतुर्दशीचे दिवसीं शिव, एकवीरा देवी, आणि भैरव यांची दवण्यानें पूजा करावी ह्या दमनकपूजनाविषयीं चतुर्दशी, पूर्व तिथीनें विद्व असी अपराण्हकाऽव्यापिनी ध्यावी. संपूर्ण अपराण्हकालव्याप्ति नसेल तथापि अपराण्हाला स्पर्श करणारी असी पूर्व दिवसाची ध्यावी. सर्वथा अपराण्हकालीं स्पर्श सुद्धां नसेल तर दुसऱ्या दिवसाची ध्यावी. चैत्री पौर्णिमा सामान्य निर्णयकरून दुसऱ्या दिवसाची ध्यावी. पूर्वी सांगितलेल्या या त्या तिथीचे दिवसीं दमनकपूजा न केली असतां ह्याच पौर्णिमेचे दिवसीं सर्व देवांची दवण्यानें पूजा करावी. चित्रा नक्षत्रानें युक्त अशा चैत्री पौर्णिमेचे दिवसीं चित्रवस्त्राचे दान सौभाग्यदा- यक आहे. रवि, बृहस्पति व शनिवार, यांही युक्त अशा चैत्री पौर्णिमेचे दिवसीं खान, श्राद्धदिक केलीं असतां अश्वमेधाचे पुण्य प्राप्त होतें. चैत्रशुद्ध एकादशी, पौर्णिमा, अथवा

मेघसंक्रांति, यांतून कोणत्याही दिवसी वैशाखस्नानाचा आरंभ करावा. याचे मंत्र—
**वैशाखं सकलं मास मेघसंक्रमणे रवेः॥प्रातः स्नानियमः स्नास्ये प्रियतां मधुसूदनः॥मधु-
 हंतुः प्रसादेन ब्राह्मणानामनुग्रहात् ॥ निर्विघ्नमस्तु मे पुण्यं वैशाखस्नानमन्वहं ॥** माघवे
 मेघमे भानौ मुरारे मधुसूदन ॥ प्रातः स्नानेन मे नाथ फलदो भव पापहन. ” या मंत्रे
 करून स्नानाचा आरंभ करावा व हविष्यान्नभक्षण, ब्रह्मचर्य इत्यादि नियम पाळावे. संपूर्ण
 मासपर्यंत स्नान करण्यास शक्तिसेल सध्ने शेवटीं त्रयोदशीपासून तीन दिवस स्नान करावे
 ही पौर्णिमा मन्वादे आहे, हे पूर्वी सांगितले आहे. चैत्रकृष्णत्रयोदशी शततारका नक्षत्राने
 युक्त असल्यास तिला वारुणी असें लग्णतात. हिचे ठिकाणीं स्नान, दान केल्यानें ग्रह-
 णादि पर्वणीप्रमाणें फल देणारी आहे. शनिवारयोग असेल तर महावारुणी. शुभयोग,
 शनिवार आणि शततारका नक्षत्र, इतक्यांचा योग असेल तर महामहावारुणी. वारुणी
 योगाविपर्ययी कृष्ण प्रतिपदेपासून पौर्णिमेपर्यंत पौर्णिमांत मास व अमांत मासेकरून फाल्गु
 न कृष्ण त्रयोदशी घ्यावी असें जाणावे. चैत्रकृष्ण चतुर्दशीचे दिवसी भौमवारयोग अस-
 ल्यास शिवसन्निध्य गंगेमध्ये स्नान केले असतां पिशाचपीडा दूर होते. ॥ या प्रकारे करून
 अनंतोपाध्याय यांचा पुत्र काशीनथोपाध्याय यांणी रचिलेल्या धर्मसिंधुसार ग्रंथांतिल चैत्र
 मासांतिल कृष्णांचा निर्णय ज्ञात.”

आतां वैशाख मास.

वैशाख मासांतिल वृषभसंक्रांतीच्या पूर्वीच्या सोळा घटिका पुण्यकाळ. रात्रीं संक्रां
 ति झाली असतां पुण्यकाळ पूर्वी सांगितल्याप्रमाणें जाणावा. या मासांत प्रातः स्ना
 न. तिलयुक्त उदकानें पितृतर्पण, धर्मकुंभाचें दान इत्यादिक करावी. या मासांत गंध,
 पुष्प, माळा, पन्ही, केळीं, इत्यादिकेंकरून ब्राह्मणांची वसेतपूजा करावी. वैशाख किंवा
 अष्टौ यांतून ज्या मासांत ऊष्ण फार होता त्या मासांत प्रातःकार्त्वी नित्यपूजा करून
 गंधोदकानें पूर्ण अशा पात्राचे ठिकाणीं विष्णूची स्थापना करून पंचोपचारांनीं पूजा
 करावी. तेथेंच उदकानें सूर्यास्तपर्यंत मूर्ति ठेवून नंतर रात्रीं स्वस्थानीं स्थापना
 करून पंचोपचारांनीं पूजा करावी. मग त्या तीर्थादकानें गृहांतिल सर्व मनुष्यांवर व
 आपणावर प्रोक्षण करावें. हे कृत्य द्वादशीचे दिवसी दिवसास करूं नये. रात्रीं काहीं
 वेळ उदकांत मूर्ति ठेवून तेथेंच पूजा करून नंतर स्वस्थानीं नेऊन ठेवावी. या मासा
 त कृष्णश्वेत तुलसींनीं त्रिकाल विष्णूची पूजा करावी, तेणेंकरून मुक्ति मिळते. सकाळीं
 स्नान करून अश्वत्थाली उदक घालावें व प्रदक्षिणा कराव्या, तेणेंकरून अनेक कुळांचे

सारण होतें. गाईचे अंग खाजिवले असता याप्रमाणेच फल जाणावें: या मासांत एकभूक्त, नक्त, अयाचित् हीं व्रतें धारण केलीं असतां तीं इच्छित फल देणारीं होतात. या मासांत पाणपोई घालणें, देवावर उदकाची गळती बांधणें, पंखा, छत्री, उपानह, चंदनादिक, यांचें दान केलें असतां महाफल होतें. जेव्हां वैशाख हा अधिकमास होतो तेव्हां व्रताच्या समाप्तीचा निषेध सांगितला आहे यास्तव दोन महिनेपर्यंत वैशाख न, हविष्पान्नभोजन इत्यादि नियम जे असतील ते तसेच पाळावे. चांद्रायणादि कांची समाप्ति मळमासांतहि होते.

अक्षय्य तृतीया.

वैशाखशुद्ध तृतीयेचे दिवसी गंगास्नान, यवांचा होम, यवदान, यवभक्षण यांतून कोणतेहि केले असतां सर्व पापाचा नाश होतो. "वैशाखमासांतलि शुद्ध तृतीयेचे दिवसी कृष्णाच्या अंगाला चंदन लावला असतां अती वैकुंठाला जातो. " या तृतीयेला अक्षय्यतृतीया असी संज्ञा आहे. ह्या अक्षय्यतृतीयेचे दिवसी जप, होम, पितृतर्पण, दान इयादिक जें कांहीं करावें तें सर्व अक्षय्य होतें. ही तृतीया रोहिणी नक्षत्र व बुधवार यांचा योग असेल तर महापुण्यकारक. ह्या तृतीयेचे दिवसी जप, होम, इयादिक कस्य कारणे असेल तर त्याचा निर्णय, पुत्रे सांगण्यांत येतील अशा ज्या युगादि तिथि यांचे निर्णयाप्रमाणे जाणावा. ही तृतीया कृतयुगाची आदि आहे. या दिवसी युगादि श्राद्ध अपिडक करावें. श्राद्ध न केलें तर तिलतर्पण तरी करावें. शुक्लपक्षांतील युगादितिथींचें कस्य पूर्वाह्नकार्त्वी करावें. पूर्वाह्नी न झाल्यास अपराह्न कार्त्वीहि करावें. कृष्णपक्षांतील युगादितिथींचें कस्य अपराह्नकार्त्वी करावें, इयादिक मन्वदितिथिप्रकरणांत सांगितलेला निर्णय जाणावा. ही तृतीया, दिवसाचे दोन भाग कळून त्यांतील पूर्वार्धाच्या एकदेशाला व्यापून राहणारी अशी सहा घटिकांहून अधिक व्याप्ति दोन दिवसी असेल तर दुसऱ्या दिवसीची ध्यावी. आणि सहा घटिकांहून कमी असेल तर पूर्वार्धाची ध्यावी. "मन्वदि, युगादि, चंद्रसूयांचें ग्रहण, व्यतीपात, आणि वैचूते, दांसांकी जें कस्य तें तत्कालव्यापिनी तिथींत करावें," ह्या वचने कळून साकल्पव्याप्तिवचनांचा अपवाद आहे यास्तव श्राद्धादिक कारणे तें तृतीयैतच्च करावें. पुत्रार्थचिंतामणीमध्ये सर सातवा, आठवा, आणि नववा या मुहूर्ताला क्रमाने गार्धर्व, कुतुप, आणि रौहिण, अशा संज्ञा आहेत, व हे मुहूर्त युगादि श्राद्धांचे काल आहेत, या कारितां शुक्लपक्षां मध्यम दिनमानानें तेराव्या घटकेपासून पंधराव्या घटकेपर्यंत ज्या तीन घटिका सामर्थ्ये ज्या दिवसी व्रतीयेची व्याप्ति असेल त्या दिवसी श्राद्ध करावें.

वृष्णपक्षां सोळाव्या घटकेपासून तीन घटिकांमध्ये श्राद्ध करावें. दोन दिवसीं तसी तीन घटिकांची न्यासिअसेल किंवा नसेल तर शुक्लपक्षां दुसऱ्या दिवसाची करावी. जर दुसऱ्या दिवसीं तेरा घटिकांच्या पूर्वी संस्रो आणि पूर्व दिवसीं तेराव्या घटके पासून तीन घटिकांमध्ये न्यासि असेल किंवा त्या तीन घटिकांत एकदेशन्यासि असेल तर कर्मकालाचीं शास्त्रे अनेक आहेत या करितां पूर्वीचोच घ्यावी असे सांगितले, व हेच मत योग्य आहे असे वाटते.

उदककुंभ दानाचा प्रकार.

द्या तृतीयेचे दिवसीं देवतांचे उद्देशाने आणि पितरांचे उद्देशाने उदककुंभ दान करावें. त्याचा संकल्प—श्रीपरमेश्वरप्रीतिद्वारा ॥ उदककुंभदानकल्पोक्तफलावाप्त्यर्थं ब्राह्मणाय उदककुंभदान करिष्ये, ” या प्रमाणे संकल्प करून सूत्राचे वेष्टन केलेला, व गंध, फल, यव, इत्यादिकांनीं युक्त अशा कलशाचे पंचोपचार पूजन करून नंतर ब्राह्मणाची पूजा करावी. नंतर “एष धर्मघटो दत्तो ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः ॥ अस्य प्रदानात्सकला मम सन्तु मनोरथाः” ॥ या मंत्राकरून दान करावे. पितरांच्या उद्देशे करून देजे असेल तर “पितृणामक्षय्यनृप्यर्थं कुंभदान करिष्ये,” असा संकल्प करून पूर्वी प्रमाणे कुंभ ब्राह्मण यांची पूजा करून उदककुंभांत गंध, तेल, फळे इत्यादि टाकून दान करावे. दानाचा मंत्र—“एष धर्मघटो दत्तो ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः ॥ अस्य प्रदानात् तृप्यंतु पितरोपि पितामहाः ॥ गंधोदकतिथीमंथं सालं कुंभकल्पान्वितं ॥ पितृभ्यः संप्रदास्यामि ह्यक्षय्यमुपनिष्ठुत, ” असा मंत्र ह्मणून कुंभदान करावें. युगादितियांचे दिवसीं समुद्रज्वान केले असता महाफल प्राप्त होते. वैशाख हा अधिक मास असेल तर युगादिश्राद्ध, अधिक व शुद्ध द्या दोहोताहे करावें. युगादि तियांचे दिवसीं उपोषण केले असतां मोठे फल प्राप्त होते. युगादि आणि मन्वादि या दिवसीं रात्री भोजन केले असतां “अभिस्ववृष्टं०” या मंत्राचा जप करावा. युगादिश्राद्धाचा लोप झाला असतां, “युगादिश्राद्धलोपजन्यप्रसवायपरिहारार्थं ऋग्विधानोक्तप्रायश्चित्तं करिष्ये,” असा संकल्प करून “नयस्पशाम” द्या ऋचेचा शंभरवेळ जप करावा. हा निर्णय सर्व युगादि तियांचे ठिकाणीं नाणावा. या प्रमाणे अक्षय्यनृतियांचा निर्णय समाप्त झाला.

परशुराम जयंती.

हीच तृतीया परशुरामजयंती हायि. ही तृतीया रात्रीच्या प्रथम पहरि न्यापिनी असेल

सारण होतें. गार्हचे अंग खाजिवले असता याप्रमाणेंच फल जाणवें: या मासांत एकभूक्त, नक्त, अयाचित् हीं व्रतें धारण केलीं असतां तीं इच्छित फल देणारीं होतात. या मासांत पाणपेई घालणें, देवावर उदकाची गळती बांधणें, पंखा, छत्री, उपानह, चंदनादिक, यांचें दान केलें असतां महाफल होतें. जेव्हां वैशाख हा अधिकमास होतो तेव्हां व्रताच्या समाप्तीचा निषेध सांगितला आहे यास्तव दोन महिनेपर्यंत वैशाखच न, हविष्यान्नभोजन इत्यादि नियम जे असतील ते तसेच पाळावे. चांद्रायणादि कांची समाप्ति मलमासांतहि होते.

अक्षय्य तृतीया.

वैशाखशुद्ध तृतीयेचे दिवसी गंगास्नान, यवांचा होम, यवदान, यवभक्षण यांतून कोणतेहि केले असतां सर्व पापाचा नाश होतो. "वैशाखमासांतलि शुद्ध तृतीयेचे दिवसी कृष्णाच्या अंगाला चंदन लावला असतां अती वैकुंठाला जातो. " या तृतीयेला अक्षय्यतृतीया असी संज्ञा आहे. ह्या अक्षय्यतृतीयेचे दिवसी जप, होम, पितृतर्पण, दान इयादिक जें काहीं करावें तें सर्व अक्षय्य होतें. ही तृतीया रोहिणी नक्षत्र व बुधवार यांचा योग असेल तर महापुण्यकारक. ह्या तृतीयेचे दिवसी जप, होम, इयादिक कस्य करणें असेल तर त्याचा निर्णय, पुढें सांगण्यांत येतील अशा ज्या युगादि तिथि यांचे निर्णयाप्रमाणें जाणावा. ही तृतीया कृतयुगाची आदि आहे. या दिवसी युगादि श्राद्ध अर्पिडक करावें. श्राद्ध न केलें तर तिलतर्पण तरी करावें. शुक्लपक्षांतील युगादितिथींचें कस्य पूर्वाण्हकालीं करावें. पूर्वाण्हीं न झाल्यास अपराण्ह कालींहि करावें. कृष्णपक्षांतील युगादितिथींचें कस्य अपराण्हकालीं करावें, इयादिक मन्वदितिथिप्रकरणांत सांगितलेला निर्णय जाणावा. ही तृतीया, दिवसाचे दोन भाग करून त्यांतली पूर्वार्धाच्या एकदेशाला व्यापून राहणारी अशी सहा घटिकांहून अधिक व्याप्ति दोन दिवसी असेल तर दुसऱ्या दिवसीची घ्यावी. आणि सहा घटिकांहून कमी असेल तर पूर्वाची घ्यावी. " मन्वदि, युगादि, चंद्रसूर्यांचे ग्रहण, व्यतीपात, आणि वैश्वते, यांसांची जें कस्य तें तत्कालव्यापिनी तिथींत करावें, " ह्या वचनें करून साकल्पव्यभिव्रवांचा अपवाद आहे यास्तव श्राद्धादिक करणें ते तृतीयैतच करावें. पुत्रवार्थचिंतामणीमध्ये सर सातवा, आठवा, आणि नववा या मुहूर्ताला क्रमानें गार्धर्व, कुमुप, आणि रौहिण, अशा संज्ञा आहेत, व हे मुहूर्त युगादि श्राद्धांचे काल आहेत, या कारितां शुक्लपक्षां मध्यम दिनमानानें तेराव्या घटकेपासून पंधराव्या घटकेपर्यंत ज्या तीन घटिकां समाप्तें ज्या दिवसीं व्रतयेची व्याप्ति असेल त्या दिवसी श्राद्ध करावें.

कृष्णपक्षां सोळाव्या घटकेपासून तीन घटिकांमध्ये श्राद्ध करावे. दोन दिवसां तसी तीन घटिकांची व्याप्तिअसेल किंवा नसेल तर शुक्रपक्षां दुसऱ्या दिवसाचो करावी. जर दुसऱ्या दिवसां तेरा घटिकांच्या पूर्वी संजो आणि पूर्व दिवसां तेराव्या घटके पासून तीन घटिकांमध्ये व्याप्ति असेल किंवा त्या तीन घटिकांत एकदेशव्याप्ति असेल तर कर्मकालाचीं शास्त्रे अनेक आहेत या करितां पूर्वीचीच ध्यावी असे सांगितलें, व हेंच मत योग्य आहे असें वाटते.

उदककुंभ दानाचा प्रकार.

द्या तृतीयेचे दिवसां देवतांचे उद्देशाने आणि पितरांचे उद्देशाने उदककुंभ दान करावे. याचा संकल्प—श्रीपरमेश्वरप्रीतिद्वारा ॥ उदककुंभदानकल्पोक्तफलावाप्त्यर्थं ब्राह्मणाय उदककुंभदान करिव्ये, ” या प्रमाणे संकल्प करून सूत्राचे वेष्टन केल्या, व गंध, फळ, यव, इत्यादिकांनीं युक्त अशा कलशाचे पंचोपचार पूजन करून नंतर ब्राह्मणाची पूजा करावी. नंतर “एष धर्मघटो दत्तो ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः ॥ अस्य प्रदानात्सकलय मम संतु मनोरथाः” ॥ या मंत्राकरून दान करावे. पितरांच्या उद्देशे करून देणे असेल तर “पितृणामक्षय्यतृप्त्यर्थं कुंभदान करिव्ये,” असा संकल्प करून पूर्वी प्रमाणे कुंभ ब्राह्मण यांची पूजा करून उदककुंभांत गंध, तेल, फळे इत्यादि टाकून दान करावे. दानाचा मंत्र—“एष धर्मघटो दत्तो ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः ॥ अस्य प्रदानात् तृप्त्यंतु पितरोगेपि पितामहाः ॥ गंधोदकतिथैर्मिश्रं सान्नं कुंभफलाग्नितं ॥ पितृभ्यः संप्रदास्यामि ह्यक्षय्यमपनिष्ठतु, ” असा मंत्र जपून कुंभदान करावे. युगादितिथींचे दिवसां समुद्रस्नान केले असता महाफल प्राप्त होते. पेशास हा अधिक मास असेल तर युगादिश्राद्ध, अधिक व शुद्ध ह्या दोहोताहे करावे. युगादि तिथींचे दिवसां उपोषण केले असतां मोठें फळ प्राप्त होते. युगादि आणि मन्वादि या दिवसां रात्री भोजन केले असतां “अभिस्वष्टि०” या मन्वाचा जप करावा. युगादिश्राद्धाचा लोप झाला असतां, “युगादिश्राद्धलोपजन्यप्रसवापपिहारार्थं ऋग्विधानोक्तप्रायश्चित्तं करिव्ये,” असा संकल्प करून “नयस्यदाता” ह्या ऋचेचा शंभरवेळ जप करावा. हा निर्णय सर्व युगादि तिथींचे ठिकाणीं जाणावा. या प्रमाणे अक्षय्यतृतीयेचा निर्णय समाप्त झाला.

परशुराम जयंती.

होच तृतीया परशुरामजयंती होय. हो तृतीया रात्रीच्या प्रथम पक्षां व्यापिनी असेल

ती ध्यावी. पूर्वदिनर्तीच प्रथम प्रहरी व्याप्ति असेल तर पूर्व दिवसाची ध्यावी. दोन दिवसी रात्रीच्या प्रथम प्रहरी सारखी एकदेशव्याप्ति किंवा कमजास्ती एकदेशव्याप्ति असेल तर दुसऱ्या दिवसाची ध्यावी. या तृतीयेचे दिवसी प्रदोषकाळीं परशुरामाची पूजा करून अर्घ्य द्यावें. त्याचा मंत्र—“तमदात्रिसुतो वरि क्षत्रियांतरकर प्रभो ॥ गृह्यणाद्य मया दत्तं रूपया परमेश्वर ” ॥ वैशाखशुद्ध सप्तमीचे दिवसी गंगेचा अवतार होतो याकरितां त्या दिवसी गंगापूजा करावें. त्या गंगापूजनाविषयी मध्यान्हकालव्यापिनी सप्तः ध्यावी. दोन दिवसी मध्याकालव्याप्ति असेल तर पूर्व दिवसाची ध्यावी. “वैशाखमास द्वादशीचे दिवसी मधुसूदनाची पूजा करावी, तेणेंकरून आग्निष्टोमफल मिळतें व सोमलंकाची प्राप्ति होते.” वैशाखशुद्ध चतुर्दशी ही नृसिंहजयंती होय, ती सूर्यास्तकालव्यापिनी ध्यावी. दोन दिवसी सूर्यास्तकाल व्यापिनी असेल किंवा नसेल तर दुसऱ्या दिवसाचीच ध्यावी. स्वातीनक्षत्र, शनिवार इत्यादिक योग असेल तर फार उत्तम जाणावी.

नृसिंहजयंतीव्रताचा प्रयोग.

प्रयोदशीचे दिवसी एकभुक्त होतसाता चतुर्दशीचे दिवसी मध्यान्हकालीं तीळ आणिते आंबळे वाटून ते अंगास लावून स्नान करून “उपोष्येऽहं नारसिंह भुक्तमुक्तिफलप्रद शरणं त्वां प्रपन्नोऽस्मि भक्ति मे नृहरे दिश,” या मंत्रानें व्रताचा संकल्प करून उपध्यायाला वृत्ति देऊन सायंकाळीं धान्यपराशीवर उदकयुक्त कलश ठेवून त्याजवर पूर्णपात ठेवावें. नंतर त्यांत सुवर्णप्रतिमा ठेवून तिचे ठिकाणीं देवाचे अवाहन करून षोडशोपरांनीं देवाची पूजा करून अर्घ्य द्यावें. त्याचा मंत्र—“परिवाणाय साधूनां जातो विष्णोर्नृसरी ॥ गृहाणार्घ्यं मया दत्तं सलक्ष्मीर्नृहरीः स्वयं.” नंतर रात्री जागरण करून प्रातः कालीं देवाची पूजा करून विसर्जन करावें. नंतर ती प्रतिमा गोप्रदानपूर्वक उपध्यायाला द्यावी. त्याचा मंत्र—“नृसिंहाच्युत गोविंश्च लक्ष्मीकांत जगत्पते ॥ अनेनार्चाप्रदानेन सफला स्पृमनोरथाः ” ॥ या मंत्रेंकरून प्रतिमेचें दान केल्यावर देवाची प्रार्थना करावी. प्रातःनेचे मंत्र—“वदंश ये नरा जाता ये जनिष्यति चापरे ॥ तांत्वमुद्धर देवेश दुःसहाद्द्र सागरान् ॥ पातकार्णवमस्य व्याधिदुःखांबुवारिधिः ॥ नीचैश्च परिभूतस्य महादुःखागवस मे ॥ कराबलवनं देहि शेषशायिन् जगत्पते ॥ श्रीनृसिंहरमाकांत भक्तानां भयनाशन क्षीरांबुधिनिवास त्वं चक्रराणे जनार्दन ॥ व्रतेनानेन देवेश भुक्तिमुक्तिप्रदोभव नंतर ब्राह्मणासहवर्तमान तिथीच्या अंती पारणा करावी. तीन प्रहरापेक्षां अधिक चतुर्दशी असेल तर पूर्वाह्णीच पारणा करावी. पौर्णिमेचे दिवसी शिजलेल्या अन्नासह उदकं

दान करावें, तेणेंकरून गोदानाचें फल मिळतें. सुवर्ण आणि तिल यांहीं युक्त अशा वारा उदकुंभांचें दान करावें, तेणेंकरून ब्रह्महत्यापातकापासून मुक्ति होते. ह्या पौर्णिमेचे दिवशीं विधियुक्तरुष्णाजिनाचें दान केलें असतां पृथ्वीदानाचें फल मिळतें. सुवर्ण, यध, तिळ तूप यांहीं युक्त अशा रुष्णाजिनाच्यादानें करून सर्वपापाचा नाश हांतो. ह्या पौर्णिमेचे दिवशीं तिलस्नान, तिलहोम, तिलपात्रदान, तिळांच्या तैलेंकरून दीपदान, तिळ करून पितृतर्पण, मधुयुक्ततिलदान हीं केलीं असतां महाफल मिळतें. तिळपात्राच्या दानाचा मंत्र—“तिला वै सोमदैवत्याः सुरैः सृष्टास्तु गोसवोऽस्वर्गप्रदाः स्वतंत्रा अतेमां रक्षतु नियशः” वैशाख शुद्ध द्वादशी किंवा पौर्णिमा ह्या दिवशीं वैशाखस्नानाचें उद्यापन करावें, एका दशा किंवा पौर्णिमा या दिवशीं उपोषण करून कलशाचें स्थापन करावें. नंतर कलशाचे ठिकाणीं सुवर्णप्रतिमेवर लक्ष्मीसह विष्णूची पूजा करून रात्री जागरण करावें. पय्य प्रातःकालीं ग्रहांची पूजा करून पायस, किंवा तीळ, तूप यांहींकरून “प्रतद्विष्णु०” अथवा “इंद्रविष्णु०” या मंत्रेंकरून अष्टोत्तर शत होम करावा. कर्मसांगता व्हावी एतदर्थ गोप्रदान, पादुका, उपानह, छत्री, पंखा, उदककुंभ, शय्या इत्यादिकांचीं दानें करावीं. पूर्वी सांगितलेलीं करण्यास सामर्थ्य नसेल तर तिळमिश्रादि अन्नानें दहा ब्राह्मणांस भोजन द्यावें. ह्या पौर्णिमेपासून ज्येष्ठ शुक्र एकादशीपर्यंत उदकांत विष्णुमूर्ति टोऊन तिची पूजा इत्यादिक उत्सव करावा. वैशाखअमावास्याच्या भावुका असं नांव आहे. व त्याच्या पुढच्या दिवस कमिसेजक आहे यास्तव हे दोन दिवस शुभकार्या निरर्थक वर्ज्य करावे. ॥ या प्रकारें करून अनंतोपायध्यांचा पुन काशिनाथोपाध्याय याणें रचिलेल्या धर्मसिंघुसार ग्रंथांतिल वैशाख मासांत कर्णवयाच्या कृपांचा निर्णय शाश्वत. ॥

आतां ज्येष्ठमासांतिल कृत्यें.

मिथुन संक्रांतीच्या पुढच्या सोळा घटिका पुष्यकाल. रात्री मिथुनसंक्रांती शाली असतां पुष्यकाल पूर्वी सांगितल्याप्रमाणें जाणाना. ज्येष्ठमासांत ब्रह्मदेवाची पिठाची मूर्ति करून वस्त्रादिक उपचारांनीं पूजा करावी, तेणेंकरून सूर्याच्याकडीं प्राप्ति होते. ह्या मासांत जलधेनुचें दान करावें. ज्येष्ठ शुक्रप्रतिपदेचे दिवशीं करवीरव्रत करावें. ज्येष्ठ शुक्र तृतीयेचे दिवशीं रंभाव्रत करावें. ह्या रंभाव्रताविषयीं तृतीया पूर्वतिथीनें विद्व असेल ती ध्यावी, जेथें पूर्व तिथीनें विद्व तिथि घेव्याविषयीं सांगितली असेल तेथें सूर्या स्ताच्या पूर्वी चार घटिकांपेक्षां अधिक असेल ती ध्यावी, चार घटिकांहून कमी असेल ती घेऊं नये. त्यांमध्ये जर दुसऱ्या दिवशीं सूर्यास्तपर्यंत पूर्वतिथीनें विद्व असी तिथि असेल तर, पूर्वविद्व घेव्याविषयीं जरी; प्रमाणवचन आहे तथापि पूर्वतिथीनें विद्व असी असेल ती टाकून अखंड व शुद्ध आहे याकरितां दुसऱ्या दिवसाचीच ध्यावी आणि जेव्हां प्राद्य असी पूर्वविद्व तिथि पूर्वदिवसां चार घटिकांहून कमी असे.

आणि दुसऱ्या दिवशीं अस्तमानाच्या पूर्वी तिथि संपेळ तेव्हांहे दुसऱ्या दिवसाचीच ध्यावी. याप्रमाणे सर्वत्र जाणावे. पंचाभिसाधन करणारे पुरुष किंवा स्त्रिया यांनी रंभाव्रताचे दिवशीं सुवर्णाची प्रतिमा करून तिचे ठिकाणीं भवानीदेवीची पूजा करून जसा होमाचा विधि सांगितला आहे त्याप्रमाणे होमादिक करून समलोक अशा ब्राह्मणाला सर्व सामग्रीनें युक्त अशा गृहाचे दान करावे, व दंपतीला भोजन घालावे. याहून विशेष विधि आहे तो दुसऱ्या व्रतग्रंथांत पाहावा. ज्येष्ठ शुद्ध चतुर्थीचे दिवशीं उमादेवीचा आवतार झाला. त्या दिवशीं उमापूजनरूप व्रत करावे. ह्या शुद्ध अष्टमीचे दिवशीं शुद्धदेवीची पूजा करावी. नवमीचे दिवशीं उपोषण करून पूजा करावी.

दशहरा व्रत.

ज्येष्ठ शुद्ध दशमीचे दिवशीं गंगेचा अवतार झाला, व या दशमीला दशहरा असे नांव आहे. ह्या दशमीविषयीं दहा योग सांगितले आहेत. ते असे:— “ ज्येष्ठमास; शुक्लपक्ष, दशमी तिथि, बुधवार, हस्तनक्षत्र, व्यतीपात, गरकरण, आनंदयोग, कन्या राशीचा चंद्र, वृषभीचा रवि, याप्रकारे हे गराख्य कारण आहे. बुधवार व हस्तनक्षत्र यांचा योग तो आनंदयोग. ह्या दहा योगांमध्ये दशमी आणि व्यतीपात हे दोन योग मुख्य आहेत, याकारितां दहा योगांतून कितीएक योगांनीं युक्त असो दशमी ज्या दिवशीं पूर्वाह्नकालीं मिळेल त्या दिवशीं दशहराव्रत करावे. दोन दिवशीं पूर्वाह्नकालीं तशी दशमी असेल तर पूर्वी सांगितलेल्या योगांतून ज्या दिवशीं वहुत योग मिळतील ती ध्यावी. ज्येष्ठ हा अधिक मास असेल तर, “ चारही युगांमध्ये दशहरा तिथीचे ठिकाणीं मागचे कर्म पुढे जाणे नाही, ” असे हेमाद्रीमध्ये ऋष्यशृंगाचे वचन आहे याकारितां अधिक मासांतच दशहराव्रत करावे, शुद्ध ज्येष्ठांत करूं नये. ह्या व्रताचे दिवशीं काशींत राहणारे लोकांनीं दशाश्वमेध तीर्थांत स्नान करून गंगापूजन करावे. अन्य देशांत राहणारांनीं आपल्या जवळ जी नदी असेल तींत स्नान करून गंगापूजनादिक करावे.

आतां दशहराव्रताचा विधि सांगतो.

देश, काल यांचा उच्चार केल्यावर, “ मर्मैतज्जन्मजन्मांतरसमुद्भूत त्रिविधकायिक चतुर्विध वाचिक त्रिविधमानसेति स्कांदोक्तं दशविधपापानिरासत्रयस्त्रिंशच्छतपिंडुद्वाराव्रतल्लोकावाप्तयादिकलप्राप्त्यर्थं ज्येष्ठमाससितपक्षदशमीबुधवारहस्तताराकार्गुरकरणव्यतीपातानंदयो

यास्यचंद्रवृषभ्यसूयोति दशयोगपर्वण्यस्यं महानद्यां स्नानं तीर्थपूजनंप्रतिमायं. नाह्वी

जां तिलादिदानं मूलमंत्रजपमाज्यहोमंच यथाशक्ति करिष्ये," असा संकल्प करून जसा ज्ञानविधि सांगितला आहे त्याप्रमाणे दहा वेळ स्नान करून उदकांत स्थित होताता। पुढे सांगावयाचे आहे ते स्तोत्र दहा वेळ किंवा एक वेळ पठण करून वस्त्रपरिधानापासून पितृतर्पणपर्यंत नियम कर्म करून तीर्थाचे ठिकाणी पूजा करून तुपाचे युक्त असे दहा पसे काळे तीळ ओंजळीने तीर्थात टाकून गुळमिश्र असे दहा पिटाचे पिंड तीर्थात टाकावे. नंतर गंगेच्या तटाकी तांब्याचा किंवा मातीचा कलश स्थापून त्याच्यावर सुवर्णादिकाची प्रतिमा ठेवून त्या प्रतिमेवर गंगेचे आवाहन करावे. त्याचा मंत्र— " नमो भगवत्यै दशरूपहरायै गंगायै नारायण्यै देव्यै शिवायै दक्षायै अमृतायै विष्णुरूपिण्यै नंदि-यै ते नमोनमः, " हा मंत्र स्त्रिया इत्यादिकांविषयी सर्व साधारण आहे. द्विजमात्राविषयी आवाहनाचा मंत्र वीस अक्षरांचा. तो असा,— "धोनम शिवायै नारायण्यै दशरूपयै गंगायै स्वाहा." याप्रमाणे गंगेचे आवाहन करून नारायण, रुद्र, ब्रह्मा, सूर्य, भार्गव, हिमाचल, यांचे नाममंत्राने त्याच कलशावर आवाहन करून पूर्वोक्त मूलमंत्राचा उच्चार करून "श्रीगंगायै नागायणरुद्रब्रह्मसूर्यभार्गवशिवहिमवत्सहितायै आसनं समर्पयामि." असे वाक्य झपून आसनादिक उपचारेकरून पूजा करावी. दहा प्रकारच्या पुण्यांनी पूजा करून दशांग धूप दाखवून दहा प्रकारचा नैवेद्य अर्पण केल्यानंतर तांबूल दक्षिणा देऊन दहा फळे समर्पण करावी. दहा दीप लावून पूजा समाप्त करावी. दर एकास सोळा सोळा मुठी याप्रमाणे दहा ब्राह्मणांला दक्षिणेसह तिळांचे दान करावे. याप्रमाणे यथाचेहि दान करावे. नंतर दहा किंवा एक गोपदान करावे. सुवर्णाचे किंवा रूपाचे, अथवा पिटाचे मण्य, कांठप, वेडूक करून त्याची पूजा करून तीर्थात टाकावे. याप्रमाणे दीप प्रवाहात सोडावे. जप, होम करण्याची इच्छा असल्या तर पूर्वोक्त मुळमंत्राचा पांच सहस्र जप, व त्याच्या दशांश (१००) होम करावा. अथवा. जसे सामर्थ्य असले त्याप्रमाणे जप, होम करावे—होमाचा संकल्पः— "दशरुद्राव्रतांगत्वेन होमं कल्पिये" असा संकल्प करून स्थंडिलाचे ठिकाणी अग्नीची स्थापना करून अन्वाधान करावे. ते असेः— " चक्षुषी आग्नेनेत्यने श्रीगंगायमुक्तसंख्ययाज्येन नारायणादि पद्मेदेवता एकैक. पाज्याहुःया शेषेणस्त्रिष्टुतं," याप्रमाणे अन्वाधान शाल्यावर प्रोक्षणी इत्यादिक सहा पात्रे मांडून आज्यसंस्कार करून अन्वाधाना प्रमाणे होम करावा. दहा ब्राह्मण व दहा सुवा सिनी यांला भोजन घ्यायचे.

प्रतिपदेपासून स्नानादिक पूनेपर्यंत विधि करावा असें कोणी ग्रंथकार लक्षणतात. गंग्ग
 स्तोत्र लक्षणावयार्चे तैः— “ ब्रह्मोवाच ॥ नमः शिवायै गंगायै शिवदायै नमोनमः ॥ नमस्ते
 रुद्ररूपिण्यै शांकर्यै ते नमोनमः ॥ नमस्ते विश्वरूपिण्यै ब्रह्ममूर्त्यै नमोनमः ॥ सर्वदेवस्वरू
 पिण्यै नमो भेषजमूर्त्ये ॥ सर्वस्य सर्वव्याधोनां भिषक्श्रेष्ठ्यै नमोस्तु ते ॥ स्थाणुजंगमसंभूत
 विपहंश्र्यै नमोनमः ॥ भोगोपभोगदायिन्यै भोगवत्यै नमोनमः ॥ मंदाकिन्यै नमस्तेस्तु
 स्वर्गदायै नमोनमः ॥ नमस्त्रलोक्यभूषायै जगद्धात्र्यै नमोनमः ॥ नमस्त्रिशुक्लसंस्थायै ते
 जोवत्यै नमोनमः ॥ नंदायै लिंगधारिण्यै नारायण्यै नमोनमः ॥ नमस्ते विश्वमुख्यायै रैवत्यै ते नमो
 नमः ॥ वृद्ध्यै ते नमस्तेस्तु लंकधात्र्यै नमोनमः ॥ नमस्ते विश्वमित्रायै नंदिन्यै ते नमो
 नमः ॥ पृथ्व्यै शिवामृतायै च सुवप्रायै नमोनमः ॥ शांतार्यै च वरिष्ठायै वरदायै नमोनमः ॥
 उन्नायै सुखदोग्रायै संजीविन्यै नमोनमः ॥ ब्रह्मिष्ठायै ब्रह्मदायै दुरितघ्न्यै नमोनमः ॥
 प्रणतार्तप्रभंजिन्यै जगन्माले नमोस्तुते ॥ सर्वापत्प्रतिपक्षायै मंगलायै नमोनमः ॥ शरणाग-
 तदीनार्तपरित्राणपरायणे ॥ सर्वस्यार्तहरेदेवि नारायणि नमोस्तुते ॥ निर्दोषायै दुर्गहंश्र्यै
 दक्षायै ते नमोनमः ॥ परात्परतरेतुभ्यं नमस्ते मोक्षदे सदा ॥ गंगे ममाग्रतो भूया गंगे
 मे देवि पृष्ठतः ॥ गंगे मे पार्श्वेरेरिहिल्वीय गंगेस्तु मे स्थितिः ॥ आदौ त्वमंते मध्येच
 सर्वं त्वं गांग ते शिवे ॥ त्वमेव मूलप्रकृतिस्त्वं हि नारायणः परः ॥ गंगे त्वं परमात्माश्च
 शिवस्तुभ्यं नमः शिवे ॥ य इदं पठति स्तोत्रं भक्त्या नित्यं नरोपि यः ॥ शृणुयान् श्रद्धया
 पुक्तः कायवाक्चिंतनसंभवे ॥ दशधा संस्थितैर्दीपैः सैरेव प्रमुच्यते ॥ सर्वाकामानवाप्नोति
 प्रेक्ष्य ब्रह्मणि लीयते ॥ ज्येष्ठमासि सिते पक्षे दशमी हस्तसंयुता ॥ तस्यां दशम्यामेतच्च
 स्तोत्रं गंगाजले स्थितः ॥ यः पठेदशकृत्वस्तु दरिद्री वापि चाक्षमः ॥ सोपि तत्फलमाप्नोति
 गंगां संपूज्य यत्नतः ॥ अदत्तानामुपादानं हिंसा धैवविधानतः ॥ परदारोपसेवाच कायिकं
 त्रिविधं स्मृतं ॥ पारुष्यमननं चैव पंशूच्य चापि सर्वशः ॥ असंखद्वप्रत्यपश्च वाङ्मयस्या
 चूर्तुर्विधं ॥ परद्रव्येष्वभिध्यानं मनसानिष्टचितनं ॥ धितयाभीनर्वशं च मानस त्रिविधं स्मृतं ॥
 एतानि दश पापानि हर त्वं मम जान्हवि ॥ दशपापहरा यस्मान्ममादशहरा स्मृता ।
 त्रयस्त्रिंशच्छतं पूर्वान् पितृन्थ पितामहान् ॥ उन्धरथेव संसारामंत्रणानेन पूजिता ॥ नमो
 भगवत्यै दशपापहरायै गंगायै नारायण्यै रैवत्यै शिवायै दक्षायै अमृतायै विश्वरूपिण्यै नंदिन्यै
 ते नमोनमः ॥ सितमकरनिष्पण्णां शुभ्रवर्णां त्रिनेत्रां करधृतकल्शोद्यस्तोत्रलाभस्यभीष्टां ॥
 विधिहरिहररूपांसिंदुकोटीरजुष्टां कलितसितदुकूल्यं जान्हवीं तां नमामि ॥ आदावादिविता-
 महस्य निगमव्यापारपात्रे जलं पश्चात्पक्षगशायिनो भगवतः पादोदकं पावनं ॥ भूयः शंभु-
 जटाविभूषणमणिर्जन्होर्हर्षेरियं देवी कल्मघनाशिनी भगवती भर्गीरथीदृश्यते ॥ गंगा

गंगेति यो ब्रूयाद्योजनानां शतैरपि ॥ मुच्यते सर्वे पापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ॥ ” ह्यास्तोत्राने स्तुति करून होम शाळ्यानंतर प्रतिमेची उत्तरपूजा करून प्रतिमेचे विसर्जन करावे. नंतर मूल मंत्रेकरून आचार्याला प्रतिमेचे दान करावे. या प्रमाणे दशहरा विधि समाप्त झाला.

ज्येष्ठशुद्ध एकादशी, हिला निर्जला असें म्हणतात. ह्या एकादशीला दररोजच्या आचमनादिकाचे उदकाखेरीज उदकपान वर्ज्य करून उपोषण केले असता वारा एकादशीच्या उपोषणाचे फल प्राप्त होते. द्वादशीचे दिवसां “निर्जलांशोपितं द्वादशीव्रतांगत्वेन सहिरण्यसशर्करोदकुंभदानं करिष्ये,” असा संकल्प करून, “देवदेव इषिकेशसंसारार्णवतारक ॥ उदकुंभप्रदानेन यास्यामिपरमार्गते.” ह्यामंत्रेकरून शर्करायुक्त, सहिरण्य असा उदकुंभ द्यावा. ज्येष्ठशुद्ध द्वादशीचे दिवसां अहोरात्र असी त्रिविक्रमची पूजा केली असता गवामयन नामक यज्ञाचे फल मिळते. ज्येष्ठ पौर्णिमेचे दिवसां तिलाचे दान केले असता अश्वमेधाचे फल मिळते. ज्येष्ठानंतराग्नेय युक्त अशा ज्येष्ठा पौर्णिमेचे दिवसां छत्र, उपानह यांचे दान केले असता भराधिपत्य प्राप्त होते. ज्येष्ठ पौर्णिमेचे दिवसां विष्णुत्रिराविप्रत करवा. ह्या व्रताविपर्यां पुढच्या तिथीने विद्ध असेल ती पौर्णिमा ध्यावी.

वटसावित्रीव्रत.

ह्या वटसावित्रीव्रताचे षट्कार्णा त्रयोदशीपासून तीन दिवस उपोषण करावे. उपोषणा विपर्यां अशक्त असेल तर त्रयोदशीस भक्त, चतुर्दशीस अयाचित, आणि पौर्णिमेस उपोषण याप्रमाणे करावे. ह्या व्रताविपर्यां तीन दिवस घेणे ते पौर्णिमेच्या निर्णयानुसारं करून जसे तीन दिवस येतील तसे त्रयोदशीपासून तीन दिवस घ्यावे. ह्या व्रताविपर्यां पौर्णिमा, सूर्यास्ताच्या पूर्वी साहा घटिकाहून अधिक ध्यावीना असा चतुर्दशीने विद्ध असेल ती ध्यावी. सूर्यास्ताच्या पूर्वी साहा घटिकाहून कमी असेल तर दुसऱ्या दिवसाची ध्यावी. सावित्री व्रताच्या उपोषणाविपर्यां, चतुर्दशीच्या अठरा घटिकांनी विद्ध जरी पौर्णिमा आहे तसाचि ती ध्यावी असे सांगितले आहे; यास्तव “चतुर्दशी अठरा घटिकांनीं षट्ठच्या तिथीला टुपिन करिष्ये,” असे जें वचन तें सावित्रीव्रतावांचून अन्यव्रताविपर्यां जाणावे. उपोषण विरहित केवळ पूजामात्र करणे, असे जें सावित्रीव्रत बहुधा सर्वत्र श्रिया करितात त्याच्या व्रतदानाविपर्यां चतुर्दशीचा अठरा घटिका बेध आहे, उपोषणाविपर्यां नाही असा निर्णय सिद्धमध्ये लिहिलेला जौ माधवाचा अभिप्राय साच्या अनुष्ठानाने अठरा घटिका चतुर्दशी

असेल तर दुसऱ्या दिवसाचीच पूजाव्रताविषयी ध्यावी, उपोषणव्रताविषयी घेणे पूर्वीची ध्यावी असें मला वाटते. ह्या व्रताची पारणा करावयाची ती पूर्णिमेच्या अं करावी. ह्या व्रताविषयी रजस्वला इत्यादि दोष प्राप्त होईल तर, पूजादिक ब्राह्मणाकडू करवावी, उपोषण इत्यादिक आपण करावे, असे स्त्रीव्रताचे विशेष प्रथम परिच्छेद सांगितले आहेत ते जाणावे. ह्या व्रताचा पूजा, उद्यापन इत्यादिक विधि व्रतग्रंथीं प्रति आहे तो पाहावा. ह्या ज्येष्ठ पौर्णिमेचे दिवसी ज्येष्ठा नक्षत्रीं वृहस्पति व चंद्र, रोहि नक्षत्रीं रवि इतके एककार्णी आले असतां तो महाज्येष्ठायोग होतो, या दिवसीं सा दानादि करावे. ही पौर्णिमा मन्वादि आहे याकरितां हिचे ठिकाणीं अपिडक श्रा करावे. ह्याचा निर्णय चैत्रमासांत सांगितला आहे. या मासांत ब्राह्मणांला चंदन, पंख उदकुंभ इत्यादिकांचीं दाने करावी. तेणें करून त्रिविक्रमाचा संतोष होतो. ॥ या प्रक करून अनंतोपाध्यायांचा पुत्र काशीनाथोपाध्याय याणे रचिलेल्या धर्मसिंधुसार ग्रंथांती ज्येष्ठमासांत करावयाच्या कथांचा निर्णय ज्ञाला. उद्देश समाप्त. ॥

आंतां आपाढ मासांतिल कृत्ये.

आषाढ मासी जी कर्कसंक्रांति तिला दक्षिणायन असें नांव आहे, याकरितां संक्रांतीपासून दक्षिणायनाला आरंभ होतो. कर्कसंक्रांतीच्या पूर्वीच्या तीस घटिका पुण्यकाळ, त्यांमध्ये संक्रांतीचे जवळच्या घटिका अतिपुण्यकारक जाणाव्या. रा मधरात्रीच्या पूर्वी किंवा नंतर संक्रांति होईल तथापि पूर्व दिवसीं पुण्यकाळ. त्यामध्ये मध्यान्हकालाच्या पुढें पुण्यतमकाळ. सूर्योदयानंतर दोन घटिकांच्या पूर्वी संक्रां होईल तर दुसऱ्या दिवसींच पुण्यकाळ. ज्योतिषग्रंथामध्ये तर, सूर्योदयाच्या पूर्वी ती घटिका जो संध्याकाळ या वेळीं कर्कसंक्रांति होईल तर दुसऱ्या दिवसींच पुण्यकाळ असें सांगितले. ह्या संक्रांतीचे दिवसीं दान, उपोषण इत्यादिक करणें तें प्रथम परिच्छेदांत सांगितल्याप्रमाणें करावे. कर्क, कन्या, धनु, कुंभ ह्या संक्रांतींचा रवि अस्त केशच्छेद इत्यादि करू नये. आषाढ मासांत एक मासपर्यंत एकभुक्त व्रत करावे, तेणे करून धन, धान्य, पुत्र यांची प्राप्ति होते. या मासांत उपानह, छवी, लवण, आंक्र यांचीं दाने करावी, तेणेंकरून वामनाचा संतोष होतो. पुण्य नक्षत्रांनीं युक्त किं नुस्ती अशा आषाढशुक्ल द्वितीयेचे दिवसीं श्रीरामाचा रथोत्सव करावा. आषा शुक्ल पक्षांतिल दशमी, आणि पौर्णिमा ह्या मन्वादि आहेत, व त्यांचा निर्णय पृ (चैत्रांत) सांगितला आहे.

आपाढशुद्ध एकादशीचे दिवसीं विष्णूचा शयनोत्सव करावा.

एकादशीचे दिवसीं सर्व उपचारांनी युक्त अशा मंचकावर, शंखादि चार आयुधांनी संपन्न व लक्ष्मी ज्याची चरण सेवा करित आहे अशी श्रीविष्णूची मूर्ति निजपून त्या मूर्तीची नानाविध उपचारांनी पूजा करावी. नंतर “सुप्ते त्वयि जगन्नाथे जगत्सुप्तं भवेद्दिदं ॥ विबुद्धे त्वयिबुद्धयेत तत्सर्वं सचराचरं ॥” असा मंत्र हणून प्रार्थना करावी. नंतर उपोषण करून जागरण करावे व द्वादशीचे दिवसीं पुनः पूजा करून त्रयोदशीचे दिवसीं गीत, नृत्य, वाद्ये, इत्यादिक अर्पण करावे. याप्रमाणे हे तीन दिवसांचे व्रत आहे. स्मार्त आणि वैष्णव यांनी आपापल्या एकादशीच्या व्रतदिवसीं शयनीव्रताला आरंभ करावा. तो असा:— रात्री शयनोत्सव करावा व दिवसा प्रबोधोत्सव करावा. द्वादशीचे ठिकाणी पारणेच्या दिवसीं शयनोत्सव व प्रबोधोत्सव करावे, असे फोणी हणतात. याविषयी जसा देशाचार असेल त्या प्रमाणे करावे. हा उत्सव मूलमासांत करूं नये. अनुराधांचा योग नसेल अशा द्वादशींत पारणा करावी. त्यामध्ये अनुराधानक्षत्राच्या प्रथम चरणाचाच योग वर्ज्य करावा. जेव्हा द्वादशी अल्प असेल आणि वर्ज्य नक्षत्राचा भाग द्वादशीचे उदयन करून राहत असेल तेव्हा निषेध मानल्यावांचून द्वादशींतच पारणा करावी, असे कौस्तुभांत सांगितले आहे. संग्रह कालाचा भाग टाकून प्रातःकाली किंवा मध्यान्हकाली भोजन करावे, असे पुढुपार्थविनामणीमध्ये सांगितले आहे.

चातुर्मास्यव्रताचा आरंभ.

द्वादशीचे दिवसीं पारणा केल्यानंतर सायंकाळी पूजा करून चातुर्मास्यव्रताचा संकल्प करावा, असे कौस्तुभांत सांगितले आहे. एकादशीचे दिवसांचे चातुर्मास्यव्रताचा संकल्प करावा, असे निर्णयसिद्धत आहे. चातुर्मास्यव्रताचा नवीन आरंभ, गुरुशुक्रार्थे आस्तादिक, आशीच इत्यादिक निषिद्धकाल असतां करूं नये, दुसऱ्या वर्षाचा आरंभ असेल तर अस्तादिक व आशीचादिक असती तरी हातो. चातुर्मास्यव्रत शैव, सौर (सूर्योपासक) इत्यादिक यांनीही करावे.

हे व्रत ग्रहण करण्याचा प्रकार.

आई, जुई इत्यादिक पुण्यांनी भगवंताची पूजा करून नंतर “सुप्ते त्वयि जगन्नाथे जग

त्सुमं भवेदिह॥विवुद्धे त्वयि बुधैत प्रसन्नो मे भवाच्युत” यामंत्राने प्रार्थना करून पु
 उभे राहून हात जोडून, “ चतुरो वार्षिकान् मासान् देवस्थोत्थापनावधि ॥ श्राव
 वर्जये शाकं दाधि भाद्रपदे तथा ॥ दुग्धमाश्वयुजे मासि कार्तिके द्विदलं तथा ॥ इमं का
 प्ये नियमं निर्विघ्नं कुरुमेऽच्युत ॥ इदं व्रतं मयादेव गृहीतं पुरतस्तव ॥ निर्विघ्नं सिद्धि मा
 यातु प्रसादात्ते रमापते ॥ गृहीतेस्मिन् व्रते देव पंचत्वं यदि मे भवेत् ॥ तदा भवतु संपू
 प्रसादात्ते रमापत्ते” ॥ या मंत्रांनी प्रार्थना करावी, नंतर शंत्वाने देवाला अर्घ्य द्यावे
 श्रावणांत शाका वर्ज्य करणे, भाद्रपदांत दही वर्ज्य करणे, आश्विनांत दूध, कार्तिकांत
 द्विदल धान्ये वर्ज्य, हीं व्रते नियम आहेत. हविष्यभक्षण इत्यादि दुसरीं व्रते करण्याचे
 इच्छा असेल तर “श्रावणे वर्जये शाकं” ह्या श्लोकस्थानी “हविष्यान्नं भक्षयिष्ये देवा
 प्रीतये तव,” असा उच्चार करावा. शाकव्रत आणि दुसरे व्रत असीं एकदम करणे
 असतील तर तो श्लोक लपून दुसऱ्या व्रताचा मंत्र लपणावा. याप्रमाणे गूळ वर्ज्य
 करणे, धारणा पारणा करणे, इत्यादि व्रतांचे ठिकाणी तसतसा ऊह करावा. ते
 असाः—“वर्जयिष्ये गुडं देव मधुरस्वरासिद्धये ॥ वर्जयिष्ये तैलमहं सुंदरांगत्वसिद्धये
 योग्याभ्यासी भविष्याभि प्राप्तुं ब्रह्मपदंपरं॥ मौनव्रतीभविष्यामि रवाज्ञापालनसिद्धये ॥एक
 तरोपवासीच प्राप्तुं ब्रह्मपुरं परं,” याप्रमाणे ऊह कराना, निषिद्ध पदार्थ वर्ज्य
 करणे असतील तर “वृताकादिनिषिद्धानि हरे सर्वाणि वर्जये,” असा ऊह करावा.

चातुर्मास्यांत निषिद्ध पदार्थ कोणते ते.

शिंपीचा व इतर हाडांचा चुना; मंटेचे व पत्ताळीचे उदक; ईडलिंबू; महा
 जुंग; वैश्वदेव न शालेला असे अन्न; विष्णूचा अर्पण केले नाही असे अन्न; करप
 लेले अन्न; मसुरा; मांस; हे आठ प्रकारचे आभिष वर्ज्य करावे. पांढरे पावटे;
 काळा बाल; घेंवडा; चवळी; लोणची; वांगी; कालिंगड; पुष्कळ वीयांचे फळ; निर्वाज
 फळ (केळे वगैरे) तांबडा मुळा; पांढरा मुळा; कोहळा; उंस; नवीन असीं बेरे व
 आंबळे; धिच; मंचकादिकावर शयन; ऋतुकालावांचून स्त्रीसेवन; पराज; मध; पड
 बळ; उडीद; कुळीय; पांढऱ्या मोहऱ्या; हीं वर्ज्य करावी. वांगी, बेलफळे, उंबरा
 चीफळे, कालिंगड, करपलेले अन्न; हीं वैष्णवांनी सर्व मासांत वर्ज्य करावी. ग्रंथां-
 तरीं गार्ई, महिषी, शेळी यांहून अन्य दूध; शिळे अन्न, ब्राह्मणा पासून विकत घेत-
 लेले रस; भूमिसंबंधी लवण, तांद्याचे भांड्यांतले गार्ईचे दूध इत्यादि; सांचीव उदक”
 केवळ आपणासाठी . परिपक्व केलेले अन्न, इत्यादिक आमिषगण सांगितला आहे.

चातुर्मास्यामध्ये हविष्यान्नभक्षण केले असता पापभागी होत नाही. हविष्ये कोणती ती सांगतो—तांदूळ, मूग, यव, तिल, कांग, राळे, इत्यादि; वाटाणे; सांबे; गहू; पांढरा मुळा, सुगण इत्यादि कंद; सेंदव व सामुद्र ही लवणे; गाईचे दही, दूध, तूप; फणस; आंबा, नारळ; हरीतकी; पिपळी; जिरे; सुठ; चिच; केळी; आंबळे; राषआंबळे; साखर; ही सर्व तेलांत न तळलेली हविष्ये जाण्याची. गाईचे ताक, व ह्यशीचे तूप हीहि कचित् हविष्यांत सांगितली आहेत.

आतां काम्यव्रते सांगतो.

गूळ वर्ग केल्याने स्वर मंजूळ होतो. तेल वर्ग केले असता शरीर सुंदर होते. योगाभ्यास केला असता ब्रह्मपद प्राप्त होते. तांदूळ वर्ग केले असता नानाविध भोग प्राप्त होतात व कंठ मंजूळ होतो. घृताचा त्याग केला असता तनु मृदु होते. झाकांचा त्याग केला असता पक्कानभोक्ता होतो. पादाभ्याग वर्ग केला असता शरीर सुगंधी होते. दही, दूध, तूप यांचा त्याग केल्याने विष्णुलोक प्राप्त होतो. घालीमध्ये पक केलेल्या अन्नाचा त्याग केल्याने वंशवृद्धि होते. भूमीवर दर्भ हातून खांबर निरा केल्याने भगवद्भक्त होतो. भूमीवर भोजन केले असता राज्याधिकार मिळतो. मध, मांस यांचा त्याग केल्याने तो पुरुष मननशील होतो. एक दिवस उपोषण, आणि दुसऱ्या दिवसी भोजन असे व्रत केल्याने ब्रह्मलोकप्राप्ति. नस्ये, केश हे धारण केल्याने प्रथम गंगा स्नान फल. मौनव्रत करून आज्ञा अस्त्रलित चालते. विष्णूला नमस्कार केल्याने गोदानफल. विष्णूच्या चरणस्पर्श करून कृतकृत्यता. देवाच्या देवळांत सहासंमार्जन केल्याने राज्याधिकार मिळतो. विष्णूला शंभर प्रदक्षिणा केल्या असता विष्णुलोक प्राप्त होतो. एकभुक्त केल्याने अग्निहोत्रफलः अयाचिताने वापी, कूप, धर्मशाळा इत्यादि कांचे उत्सर्गाचे फल मिळते. दिवसाच्या सहाव्या भागांत भोजन केल्याने चिरकाल स्वर्ग प्राप्त होतो. पानांवर भोजन केल्याने कुहलत्रां वास केल्याचे फळ मिळते. शिळेर भोजन केल्याने प्रयागां स्नान केल्याचे फळ मिळते. याप्रमाणे चार महिन्यांनी साध्य अशा व्रतांचा संकल्प एकादशी किंवा द्वादशी यांतून एका दिवसी करून श्रावण मासांतल विशेष व्रताचा संकल्प याच दिवसी करावा. तो असाः—
“अहं शाकं वर्जयिष्ये श्रावणे मासि माधव.” एषं शाकशब्देकरून लोकप्रसिद्ध फले; मूले, पुष्पे, पत्रे, अंकुर, कांड, साली इत्यादि स्वरूपाच्या शाका वर्ग कराव्या, केवळ कौशोबरी, इत्यादिक वर्ग कराव्या असे नाही. सुठ, हळद, जिरे इत्यादिक पदार्थ सुद्धा वर्ग करावे. तसेच त्या दिवसामध्ये उत्पन्न झालेल्या व पूर्वी उत्पन्न झाल्या

असून उन्हांत सुखवून ठेवलेल्या सर्व शाका वर्ज्य कराव्या. यानंतर पूर्वी सांगितलेल्या चातुर्मास्यव्रतांच्या समाप्तीचे दिवसीं दाने करावयाची ती कार्तिकी पौर्णिमेचे प्रकरणीं सविस्तर सांगूं.

तप्तमुद्रा धारण

शयनी आणि बोधिनी ह्या एकादशीचे दिवसीं तप्तमुद्रा धारण करण्याविषयीं रामा र्चनचंद्रिका ग्रंथीं सांगितले आहे. ज्यापेक्षां तप्तमुद्रा धारण करण्याविषयीं प्रशंसापर असीं विधिवाक्ये, आणि निषेधकारक असीं निंदावचनें बहुत मिळतात, त्यापेक्षां त्या सर्व वचनांची व्यवस्था शिष्टाचारानुरूप करावी. ज्यांच्या कुळामध्ये बाप, आज्ञा, इत्यादिकांनीं तप्तमुद्राधारणादिक धर्म आचरला असेल त्यांनीं साप्रमाणेंच आचरण करावा. आणि ज्यांच्या कुळामध्ये पूर्वी कोणी कधीहि आचरण केला नसेल त्यांनीं शास्त्रांत दोष सांगितला आहे यास्तव केवळ आपल्याच बुद्धिकौशल्यानें तप्तमुद्राधारणादिक धर्म आचरण करूं नये, हें तात्पर्य जाणावें.

वामनपूजा.

आषाढ शुक्ल द्वादशीचे दिवसीं वामनाची पूजा करावी, तेणेंकरून नरमेघपद्माचें फल मिळतें. पूर्वाषाढा नक्षत्रानें युक्त अशा पौर्णिमेच्या दिवसीं अन्न, पन्ही इत्यादिकांचें दान केल्यानें अक्षय्य असी अन्नादिकाची प्राप्ति होते. ह्याच पौर्णिमेच्या दिवसीं श्रीशिवाने शयनोत्सव करावा व त्या उत्सवाविषयीं पौर्णिमा प्रदोषकालव्यापिनी ध्यावी.

कोकिलाव्रत.

ह्याच पौर्णिमेच्या दिवसीं कोकिलाव्रत करावें. त्या कोकिलाव्रताविषयीं “स्नानं करिष्ये नियता ब्रह्मचर्ये स्थिता सती ॥ भोक्ष्यामि नक्तं भूक्ष्यां करिष्ये प्राणिनां दयां ॥” असा मासपर्यंत व्रताचा संकल्प करून. कोकिलारूपिणी शिवा देवीचें दररोज पूजन करून नक्तभोजन करावें. ज्या वर्षी अधिकमास आषाढ होतो त्याच वर्षीमध्ये शुद्ध आषाढमासांत व्रत करावें असा जो सर्वत्र आचार आहे तो निर्मूल आहे. आषाढ, किंवा श्रावण या मासांत पौर्णिमा, चतुर्दशी किंवा अष्टमी यांतून कोणत्याहि एक दिवसीं शिवाचें पवित्रारोपण करावें. ह्या पौर्णिमेचे दिवसीं यतींनीं क्षीर करून चार महिनें एकत्र राहण्याचा संकल्प करून व्यासपूजा करावी, असें सांगितले आहे. ह्या लक्षां विषयीं पौर्णिमा सूर्योदयापासून साहा घटिका असी असेल ती ध्यावी: “चातुर्मास्या मध्ये यतीनें क्षीर करूं नये, व चार महिनें अथवा दोन महिनें वेढीं एकाच स्थलीं

राहावे. ”

संन्यासी यांच्या चातुर्मास्य स्थितीचा विधि.

यतींनीं प्रथम क्षीर करून वारा मृत्तिकाध्वानें व प्राणापाम इत्यादिक विधि हे करून व्यासपूजा करावी. तो विधि संक्षेपानें सांगतो:—देशकालादिकांचा उच्चार करून “चा-तुर्मास्यवाससंकल्पं कर्तुं श्रीकृष्णव्यासभाष्यकाराणां सपरिवाराणां पूजन करिष्ये ” असा संकल्प करून मध्यमार्गी श्रीकृष्णाचें आवाहन करून त्याचें पूर्वं दिशेकडून प्रदक्षिणवृत्तीनें वासुदेव, संकषेण, प्रभुम्भ, अनिरुद्ध, यांचें आवाहन करून श्रीकृष्णादि पांच देवतांच्या दक्षिण प्रदेशीं व्यासाचें आवाहन करावें. नंतर त्याच्या पूर्वेकडून प्रदक्षिण वृत्तीनें सुमंतु जैमिनि, वैशंपायन, पैल यांचें आवाहन करावें. आणि श्रीकृष्णादि देवतांच्या डाव्या बाजूस भाष्यकार श्रीशंकराचार्यांचें आवाहन करावें. नंतर त्याच्या पूर्वी दिशेपासून प्रदक्षिण वृत्तीनें पद्मपाद, विश्वरूप, ओटक, हस्तामलक ह्या आचार्यांचें आवाहन करून नंतर श्रीकृष्णादि पांच देवतांमध्ये—श्रीकृष्णाच्या दोन बाजूस ब्रह्मा, आणि रुद्र; पूर्वादिक चार दिशांचे ठिकाणीं सनक, सनंदन, सनातन, सनःकुमार यांचें आवाहन करावें. श्रीकृष्णादि पांच देवतांच्या अग्रमार्गीं गुरु, परमगुरु परभेष्टिगुरु, ब्रह्मा, वसिष्ठ, शक्ति पराशर, व्यास, शुक, गौडपाद, गोविंदपाद, शंकराचार्य, आणखी इतर ब्रह्मनिष्ठ या सर्वांचे आवाहन करून श्रीकृष्णादि देवतांच्या आग्नेयप्रदेशीं गणपति, ईशान्यप्रदेशीं क्षेत्रपाल, वायव्यप्रदेशीं दुर्गा, नैऋत्यप्रदेशीं सरस्वती, आणि पूर्वपासून आठ दिशांचे ठिकाणीं इंद्रादिक आठ दिकुपाळ, याप्रमाणें ह्या सर्व देवतांचें आवाहन करून पूजा करावी. नंतर नागव्यासाच्या अष्टाक्षरमंत्रेंकरून श्रीकृष्ण पूजा करावी. इतरांची ओंकारादि नमोत अशा नाममंत्रांनीं पूजा करावी. पूजा झाल्यानंतर प्रतिबंध नसेल तर, “चतुर्गे वार्षिकान् मासान् इह वसामि ” याप्रमाणें मनांत संकल्प करून “अहंतावन्नित्यस्यापि सर्व भूतहिताय वै ॥ प्रथेण प्रावृथि प्राणिमंकुलं वन्यं दृश्यते ॥ अतन्नेपामर्हिसाथं पक्षान वै श्रुतिन्तंश्रयान् ॥ स्थास्यामश्चतुर्गे मासान्त्रेवासति वार्षिक, ” असा वाचिक संकल्प करावा. तदनंतर यतीला गृहस्थानीं प्रत्युत्तर द्यावे. “सुखेकरून आपण एथें राहा, तेणेंकरून आझी धन्य होऊं, आणि आझी तुमची गृहस्था यथाशक्ति आनंदानें करूं. ” असें झटल्यावर वृद्धानुक्रमेकरून यतींनीं यतीला व गृहस्थानीं यतीला नमस्कार करावे. हा विधि पौर्णिमेचे दिवसां न होईल तर द्वादशीचे दिवसां करावा. आपाटकृष्ण द्वितीयेचे दिवसां अशुभशयन नामक व्रत करावें. ह्या व्रताचे ठिकाणीं लक्ष्मीपुक्त विष्णु-

ची मंचकावर पूजा करून प्रार्थना करावी. "पत्नीमर्त्याविद्योगंच भर्ता भार्यासमुद्भवांभासु
वंति यथा दुःखं दंपत्यानि तद्युक्तुः" इत्यादिक मंत्रांनी प्रार्थना करून नंतर चंद्राला अ-
र्घ्य देऊन नक्तभोजन करावे. याप्रमाणे चार महिनेपर्यंत कृष्णद्वितीया तिथीचे दिवसां
पूजा करून सपत्नीक अशा ब्राह्मणाला शय्या दान करून ती प्रतिमा सर्वसामग्रीसह दान
करावी. हे व्रत केले असता अक्षय असे दांपत्यसुख, पुत्र, धन, गृहस्थाश्रम, इत्यादि-
कांचा अवियोग, इत्यादि सप्तजन्मपर्यंत प्राप्त होतात. चंद्रोदयी पूजा करावी असे सांगि-
ले आहे यास्तव ह्या व्रताविषयी चंद्रोदयव्यापिनी तिथि ध्यावी. दोन दिवसां चंद्रोद-
यव्यापिनी असेल अथवा नसेल तर दुसऱ्या दिवसाचीच ध्यावी. ॥ याप्रकारे करून अन्
तोपाध्याय यांचा पुत्र काशीनाथोपाध्याय याणे रचिलेल्या धर्मसिंधूसार ग्रंथांतील आघाटमा-
सांत करावयाच्या कृत्यांचा निर्णय झाला. उद्देश समाप्त. ॥

आतां श्रावणमासांत कोणकोणतीं कृत्ये करावयाचीं तीं सांगतां.

सिंह संक्रातीच्या पूर्वीच्या सोळा घटिका पुण्यकाळ. रात्री संक्रांति होईल तर पूर्वी
सांगितल्याप्रमाणे पुण्यकाळ जाणावा. या मासांत एकभक्तव्रत, नक्तव्रत, आणि शिव
व विष्णु इत्यादिकांवर अभिषेक हीं करावीं. सिंह राशीला सूर्य असतां ज्याची गाई
बिते त्याने व्याहृति मंत्रांनी तुपांत भिजवलेल्या अशा मोहऱ्यांचा दहासहस्र होम करून
ती व्यालेलीगाय ब्राह्मणाला द्यावी. याप्रमाणे मध्यरात्री गाई उंच स्वराने ओरडली
असतांही मृत्युंजय मंत्रेकरून होमादिरूप शांति करावी. याप्रमाणे श्रावण मासांत दिव
सा घोडी प्रसवली असतां निषेध आहे. " माघमास, व बुधवार, या दिवसां क्षैप्त;
श्रावण मासांत दिवसा घोडी; आणि सिंहसंक्रांतीत गाई; ह्या प्रसूत होतील तर त्या
आपल्या यजमानाला मृत्यु देणाऱ्या होतात " असे बचन आहेत यास्तव त्यांचे ठिकाणीहि
शांति करावी. तो प्रकार शांतिचे ग्रंथ आहे त्यांतून पहावा " श्रावण मासांत यथा-
विधि सोमवार व्रत करावे. सशक्त असेल त्याने उपोषण करावे, अथावा रात्री भोजन
करावे. " याचप्रमाणे श्रावण मासांत मंगळवारी गौरीची पूजा करावी. श्रावण
शुद्ध चतुर्थी मध्याह्नकालव्यापिनी असून पूर्व तिथीने युक्त असा ध्यावी. श्रावणशुद्ध
पंचमी हिला नागपंचमी असें लणतात. ही पंचमी सूर्योदयकाली साहा घटिका असून
षष्टीने विद्ध असेल ती ध्यावी. दुसऱ्या दिवसां पंचमी साहा घटिकापेक्षां कमी असेल
आणि पूर्व दिवसां साहा घटिकांहून कमी अशा चतुर्थीने विद्ध असेल तर पूर्व दिवसां

चीच घ्यावी. पूर्वादिवसीं साहा घटिकापेक्षा अधिक असा चतुर्थीचा वेध नसेल तर चार घटिका असली तरी दुसऱ्या दिवसाचीच घ्यावी. दुसऱ्या दिवसीं होण घटिकां असेल तर ती घेऊ नये, असे मला वाटते. या पंचमीचे दिवसीं मातीचे नागें करून त्याचे पूजन करावे. अथवा भितीवर रंगादिकाने काढून पूजा करावी, याप्रमाणे नसा आचार असेल तदनुसार करावे. श्रावण शुद्धद्वादशीचे दिवसीं, " मासकृतस्य शाकक र्जनव्रतस्य सांगतार्यं ब्राह्मणाय शाकदानं करिष्ये ". असा संकल्प करून ब्राह्मणाची पूजा करावी. नंतर " उपायनाभिदं देव व्रतसंपूर्णं हेतवे ॥ शाकंतु द्विजवर्याय सहि रण्यं ददाम्यहं " इत्यादिक मंत्रेकरून पक किंवा हिरवी असी भाजी द्यावी. तदनं तर " दधि भाद्रपदे मासे वर्जयिष्ये सदा हरे " असा दधिव्रताचा संकल्प करावा. या व्रतामध्ये दही मात्र वर्ज्य करावे. ताक, तूप इत्यादिकांचा निषेध नाही.

विष्णु इत्यादिकांला पौर्वतीं घालावयाचीं.

यानंतर पारणेच्या दिवसीं द्वादशीमध्ये विष्णुला पौर्वते घालावे. पारणेच्या दिवसीं द्वादशी नसेल तर त्रयोदशीमध्ये पारणासमयी, त्यावेळीं न होईल तर श्रावण नक्षत्र, किंवा पौर्णिमा या दिवसीं पौर्वते घालावे. चतुर्दशी, अष्टमी किंवा पौर्णिमा पातून कोण त्याहि दिवसीं शिवाची पौर्वती करावी. याप्रमाणे देवी, गणपती, दुर्गा इत्यादिकांच्या पोवत्याविषयीं चतुर्दशी, चतुर्थी, तृतीया, नवमी इत्यादिक तिथि जसा कुलाचार असेल त्याप्रमाणे घ्याव्या. या त्या तिथीचे दिवसीं न होतील तर सर्व देवांची श्रावण पौर्णिमेचे दिवसीं पोवती करावी. पौर्णिमेचे दिवसीं न होतील तर कार्तिक पौर्णिमेपर्यंत करावी, हा गौणकाल जाणावा. "ही पौर्वती न केली असता वर्षपर्यंत केलेली पुत्रा व्यर्थ होऊन शोबटीं तो अधोगतीला जातो " असे वचन आहे. यास्तव ही नियम आहेत लक्षणून अवश्य करावी. गौणकालींही न केली असता "या कालीं सावधान हस्तिता मंत्राचा दहासहस्र जप, अथवा श्लोत्रपाठ करावा " असे वचन आहे. याकरितां दहासहस्र या देवतेच्या मूलमंत्रा चा जप करावा हे प्रायश्चिन करावे. पूर्वादिवसीं अधिवासन करून दुसऱ्या दिवसीं पौर्वते घालावे. दोन दिवसांचा संभव नसेल तर एकाच दिवसीं पूर्वी अधिवासन करून नंतर पौर्वते घालावे.

आतां संक्षेपेंकरून या पौर्वत्यांचा प्रयोग सांगतां.

कापसाचे सूत काढून त्याची नवसुती करून या नवसुतीचे एकशे आठ फेऱ्यांचे व सुतीच्या गुडघ्यापर्यंत पोचे इतके लांब, व चौबीस मंत्र्यांनी युक्त असे जें पौर्वते ते

उत्तम— चौपन्न फेऱ्यांचें असून मांड्यांपर्यंत व बारा ग्रंथींनी युक्त तें मध्यम—सत्तावीस फेऱ्यांचें असून नामीपर्यंत व आठ ग्रंथींनी युक्त तें कनिष्ठ, याप्रमाणें पोवतें करून नंतर नवसुतीचे एकशेवीस फेरे, किंवा सत्तर फेरे असे घेऊन पायांपर्यंत लोंबणारी व एकशें आठ किंवा चौवीस अशा ग्रंथींनी युक्त, याप्रमाणें वनमाला करावी. मग नव सुतीचे बारा फेऱ्यांचें व बारा ग्रंथींनी युक्त असे गंधपवित्र करावें. नवसुतीचे सत्ता वीस फेऱ्यांचें गुह्यपवित्रक करावें, व तिसुतीने अंगदेवतांचीं पौवतीं करावीं. शिवाचीं पौवतीं लिंगाचा विस्तार असेरु तदनुसार करावीं. याप्रमाणें पौवतीं करून पंचग व्यानें खांवर प्रोक्षण करून ओंकारानें खांचें प्रक्षालन करावें व मूलमंत्रानें एकशेंआठ बेळ अभिमंत्रण करून त्या ग्रंथीला कुंकुमानें सुशोभित करून सर्व पौवतीं बांबूच्यापात्रांत ठेवून खांवर वस्त्र आच्छादन घालून देवाच्या पुढें ठेवावीं, आणि प्रार्थना करावी. ती असीः— “ क्रियालोपविधानार्थं यत्त्वयाविहितंप्रभो ॥ मयैतत्क्रियतेदेव तव तुष्ट्यै पवित्रकं ॥ नमे विप्रो भवेदेव कुरु नाथ दयां मयि ॥ सर्वथा सर्वदा विष्णो मम त्वं परमा गतिः ” असी प्रार्थना करून अधिवासन करावें. तें असेः—देशकालांचा उच्चार शाल्यावर “ संवत्सरपूजाफलावाप्त्यर्थं अमुक देवताप्रोत्थं अधिवासनविधिपूर्वकं पवित्रा रोपणं करिष्ये ” असा संकल्प करून देवाच्या पुढें सर्वतोभद्र मंडलावर उदकानें पूर्ण असा कलश ठेवून त्या कलशावर बांबूचें पात्र ठेवून खांत तीं पौवतीं ठेवावींः नंतर खांचें ठिकाणीं “ संवत्सरस्य यागस्य पवित्रीकरणाय भोः ॥ विष्णुलोकात् पवित्राद्य आगच्छेह नमोस्तु ते ” या मंत्रेंकरून आणि मूलमंत्रानें आवाहन करून तिसुतीचे ठिकाणीं ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र यांचें व नवसुतीचे ठिकाणीं ओंकार, सोम, वन्हि, ब्रह्मा, नागेश, सूर्य, शिव, विश्वेदेव यांचें उत्तम, मध्यम, आणि कनिष्ठ अशा पौवत्याचे ठिकाणीं ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, व सत्व, रज, तम यांचें आवाहन करून वनमालेवर प्रकृतीचें आवाहन करून मूलमंत्रानें गंधादिक उपचारांनीं पूजा करावी. नंतर पूर्वी तयार केलेलें, वीतभर व बारा ग्रंथींनी युक्त असे गंधपवित्र हातीं घेऊन “ विष्णुतज्ञोद्भवं रम्यं सर्व पातकनाशनं ॥ सर्वकामप्रदं देव तवांगे धारयाम्यहं ” ह्या मूलसंपुटित मंत्रेंकरून देवाच्या पायांवर अर्पण करावें. देवाच्या हाताला बांधावें असेंहि कोणी झणतात. तदनंतर गंधादिपंचोपचारांनीं देवाची पूजा करून प्रार्थना करावी. प्रार्थनेचे मंत्र “ आमं त्रितोसि देवेश पुराणपुरुषोत्तम ॥ प्रातस्त्वां पूजयिष्यामि सन्निध्यं कुरु केशव ॥ क्षीरो दधिमहानागशय्यावस्थितविग्रह ॥ प्रातस्त्वां पूजयिष्यामि सन्निधौ भव ते नमः ॥ ” या प्रमाणें प्रार्थना शक्यावर साष्टांग नमस्कार करून पुष्पांजलि समर्पण करावी. याप्र

बाजे अधिवासन समाप्त झाले. एवढे सर्वत्र मूलमंत्र, गुरूने उपादेष्ट असेल तो तंत्रिक, अथवा वैदिक, किंवा देवगायत्रीरूप घ्यावा.

तदनंतर सत्कथाभ्रवण इत्यादि जागरणाने रात्र दबडून प्रातःकाली, तत्काल अधिवासन करणे असेल तर गाईच्या दोहनकाली 'पवित्रारोपणागभूतं देवपूजनं पवित्रपूजनं च करिष्ये' असा संकल्प करून देवाची व पोवऱ्यांची फळादिक नैवेद्यापर्यंत गंधादिक उपचारांनी पूजा करून गंध, दूर्वा, अक्षता, यांहीं युक्त असे कनिष्ठपोवते घेऊन 'देव देव नमस्तुभ्यं गृहाणेदं पवित्रकं ॥ पवित्रिकरणार्थाय वर्षपूजाफलप्रदं ॥ पवित्रकं कुडुध्याद्यन्मया दुष्कृतं कृतं ॥ शुद्धोभवाभ्यहं देव त्वत्प्रसादात्सुरेश्वर ॥ ' ह्या मूलसंपुटित मंत्राने ते पोवते समर्पण करून मध्यम, उत्तम पोवती आणि वनमाला हीं सर्व पूर्वाक्त मंत्रेकरून समर्पण करावी. अंगदेवताला नाममंत्रेकरून समर्पण करून महाभैवेद्य अर्पण करून आरती करावी आणि प्रार्थना करावी. साप्रार्थनेचे मंत्रः—'मणिविद्मममालाभिर्मदारकुसुमादिभिः ॥ इयं सांबःसरी पूजा तवास्तु गरुडध्वज ॥ वनमाला यथा देव कौस्तुभं सततं हृदि ॥ तद्वत्पवित्रतंतुस्त्रयंपूजांच हृदये वह ॥ जानताऽजानता वापि यत्कृतं न तवाचनं ॥ केनाचिद्विप्रदोषेण परिपूर्णं तदस्तु मे ॥ मंत्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं सुरेश्वर ॥ यत्पूजितं मया देव परिपूर्णं तदस्तु मे ॥ अपराधसहस्राणि क्लिपंतेऽहमिदं मया ॥ दासोऽहमिति मां मत्वाक्षमस्व परमेश्वर ॥ ' ॥ शिव, गणपति इत्यादिक देवांचीं पोवती असतील तर 'गरुडध्वज' इत्यादिकस्थानी 'वृषवाहन' असा ऊह करावा. 'वनमाला' ह्या श्लोकाचा लोप जाणावा. देवांचीं पोवती असतील तर 'देवदेव सुरेश्वर' इत्यादिस्थानी 'देविदेवि सुरेश्वरि' इत्यादिक स्त्रीप्रत्ययांत पदांचा ऊह करावा, व इतर सर्व समान जाणावे. तदनंतर गुरूची पूजा करून पोवते बाजे व इतर ब्राह्मण, सुवासिनी यांना दुसरीं पोवती देऊन नंतर सर्व कुटुंबासह आपण पोवती घारण करावी. त्यानंतर ब्राह्मणासह भोजन करून त्रिरात्रपर्यंत ब्रह्मचर्यादि नियम धारण करीत होःसाता देवाला पोवती वाहावी. मग देवावरचीं पोवती उतरून स्नानादिक उपचारांनी पूजा करावी. याप्रमाणे तीन रात्रि गेल्यावर देवाची पूजा करून देवावरील पोवती काढावी. शिव इत्यादिक देवतांचे पोव साविषयां चतुर्दशी पूर्वे तिर्यगे विद्ध असो घ्यावा. याप्रमाणे पौर्णिमा, साहा घटिका सायान्हकालव्यापिनी पूर्वविद्धाच घ्यावी. अष्टमी इत्यादिक दुसऱ्या तिथि पोवसाविषयां घेणे त्या प्रथम परिच्छेदांत सामान्य तिथिनिर्णय सांगितला आहे साप्रमाणे घ्याव्या. याप्रमाणे पोवसांचा विधि संपूर्ण झाला.

यानंतर उपाकर्माचा काल सागतो.

ऋग्वेदी यांना श्रावण शुद्ध पक्षांत उपाकर्मानिषर्षी श्रावणनक्षत्र, पंचमी, आणि हस्तनक्षत्र असे तीन काल सांगितले. त्या मध्ये श्रावण नक्षत्र हा मुख्य काळ आहे. श्रावण न मिळेल तर पंचमी, हस्त हे ध्यावे. तसेच कालतत्त्वविवेचन ग्रंथांत संग्रह कारिकेमध्ये सांगतात—“ग्रहण, संक्रांति यांहींकरून दूषित नव्हत असीं पौर्णिमा व श्रावण नक्षत्र यांचे ठिकाणीं क्रमें करून यजुर्वेदी, आणि ऋग्वेदी यांनीं उपाकर्म करावें. कदाचित् श्रावणाचा संभव नसेल तर त्याच शुक्लपक्षांत हस्तनक्षत्रयुक्त पंचमीचे दिवसीं अथवा केवळ हस्तनक्षत्रीं, किंवा केवळ पंचमीचे दिवसीं उपाकर्म करावें.” दोन दिवसीं श्रावण नक्षत्र असेल क्षणजे पूर्वदिवसाच्या सूर्योदयापासून आरंभ करून दुसऱ्या दिवसीं सूर्योदयानंतर सहा घटिकांपर्यंत श्रावण आहे अशा समयीं धनिष्ठा योग प्रशस्त आहे. यास्तव दुसऱ्या दिवसींच उपाकर्म करावें. जर सहा घटिकांहून कमी असेल तर संपूर्णव्याप्ति आहे या करितां पूर्व दिवसींच करावें. जर पूर्वदिवसीं सूर्योदयकालीं श्रावण नसेल आणि दुसऱ्या दिवसीं सूर्योदयानंतर चार घटिका श्रावण असेल तर उत्तरापादावेधाचा निषेध आहे यास्तव दुसऱ्या दिवसींच करावें. —जर दुसऱ्या दिवसीं श्रावण चार घटिकांहून कमी असेल व पूर्वदिवसीं उत्तरापादांनीं श्रावण विद्ध असेल तेव्हां पंचमी इत्यादिक काल ग्रहण करावे. पंचमी, हस्त हे दोन काळ तर सूर्योदयापासून सहा घटिकांपर्यंत व्याप्ति असेल तो मुख्य होय. सूर्योदयापासून सहा घटिकांपर्यंत न मिळेल तर पूर्वविद्ध सुद्धां ध्यावा. असाच भाद्रपदशुद्ध पक्षांतहि श्रावण, पंचमी, हस्तनक्षत्र ह्या तीन काळांचा निर्णय जाणावा. हे उपाकर्म ऋग्वेदी यांनीं पृषाण्कालांत करावें.

आतां यजुर्वेदी यांच्या विषयीं निर्णय.

ऋग्वेदी यांला जसा श्रावण मुख्य काल आहे त्या प्रमाणें सर्व यजुर्वेदी यांला श्रावण पौर्णिमा हा उपाकर्मानिषर्षी मुख्य काल आहे. पौर्णिमा ही जर खंडित असेल व जेव्हां पौर्णिमा पूर्व दिवसीं सूर्योदयापासून दोन घटिकांनंतर प्रवृत्त होईल आणि दुसऱ्या दिवसीं बारा घटिका व्याप्ति असेल तेव्हां सर्व यजुर्वेदी यांनीं दुसऱ्या दिवसाचीच ध्यावी. जेव्हां शुद्धाधिक्येकरून दोनहि दिवसीं सूर्योदयव्यापिनी असेल तेव्हां सर्व यजुर्वेदी यांनीं पूर्वदिवसाचीच ध्यावी. जेव्हां पूर्वदिवसीं सूर्योदयापासून दोन घटिकांनंतर पौर्णिमा प्रवृत्त होईल, आणि दुसऱ्या दिवसीं चार सहा घटिका किंवा याहून

अधिक व्यापिणी असून बारा घटिकांहून कमी असेल त्या प्रसंगी तैत्तिरीयशास्त्री यांनी दुसऱ्या दिवसाची ध्यावी. तैत्तिरीयशास्त्राच्या तैत्तिक यजुर्वेदी यांनी पूर्व दिवसाची ध्यावी. जेव्हा पूर्वदिवसी सूर्योदयापासून दोन घटिकांनंतर पीणिमा प्रकृत होईल आणि दुसऱ्या दिवसी चार घटिकांहून कमी असेल किंवा क्षयाच्या योगाने सर्वथा नसेल तेव्हा सर्व यजुर्वेदी यांनी पूर्व दिवसाचीच ध्यावी. हिरण्यकेशी तैत्तिरीयशास्त्री यांला श्रावणी पौणिमा हा मुख्य काल आहे, तो न मिळेल तर श्रावणातील हस्त नक्षत्र ध्यावे. श्रावण शुद्ध पंचमी तर आ आ सूत्रांमध्ये सांगितली नाही साकारितां हिरण्यकेशी तैत्तिरीयशास्त्री यांनी ती घेऊं नये. हेच दोन काळ भारपद मासांताहे त्यांला उक्त आहेत. हा विशेष हे खंडित असतील तर पूर्वी सांगितल्याप्रमाणे निर्णय जाणावा. हस्तनक्षत्राहे सूर्योदयापासून संगवकालाला स्पर्श करणारे असे असेल ते ध्यावे. संगवकालाला स्पर्श करणारे नसेल तर पूर्वविद्ध असेल तेच ध्यावे. आपस्तंबीला श्रावणी पौणिमा ही मुख्य आहे ती न मिळेल तर भारपदमासांताल पौणिमा ध्यावी, हा विशेष जाणावा. जीधानाला श्रावणी पौणिमा मुख्य आहे, आपेक्षा काहीं एक दोषाने ती न मिळेल तर आ पाटी पौणिमा ध्यावी, हा विशेष जाणावा. हे पूर्वी सांगितलेले काळ खंडित असतील तर पूर्वी सांगितल्याप्रमाणेच निर्णय जाणावा.

आतां काण्वमाध्यंदिनादिकांविषयीं निर्णय.

काण्व, माध्यंदिन इत्यादिक जे कात्यायन त्यांला श्रावणयुक्त श्रावणी पौणिमा, अथवा केवळ श्रावणी पौणिमा, हस्तयुक्त पंचमी अथवा केवळ पंचमी हे मुख्य काळ होत; पास्तंब यांनी केवळ श्रावण नक्षत्री, आणि केवळ हस्तनक्षत्री उपाकर्म करूं नये. श्रावण मासामध्ये काहीं विघ्न किंवा दोष असल्यास भारपद मासांतोळ पौणिमा व पंचमी या दिवसी करावे. खंडित तिथि असेल आणि बारा घटिकांहून अधिक असेल तर दुसऱ्या दिवसाची ध्यावी. बारा घटिकांहून कमी असेल तर पूर्व दिवसाची ध्यावी, इत्यादिक पूर्वी सांगितलेला तोच निर्णय जाणावा.

सामवेदीयांचा उपाकर्मविषयीं मुख्यकाल,

सामवेदी यांचा, भारपदशुद्धपक्षातील हस्तनक्षत्र हा उपाकर्माचा मुख्य काल आहे. संक्रांति इत्यादिक दोषाने हस्तनक्षत्री ते न होईल तर श्रावणमासांतोळ हस्तनक्षत्र ध्यावे असे निर्णयसिंधु सांगतो. दुसरे ग्रंथकार तर, भारपद मासांतोळ हस्तनक्षत्री काहीं दोष संभवेत तर श्रावणी पौणिमेचे ठिकाणी उपाकर्म करून भारपदांतोळ हस्तनक्षत्र

घर्यत अव्ययन करू नये, आनंतर अव्ययन करावे, असें झणतात. हस्तनक्षत्र खंडित असेल व दोन दिवसी अपराण्हकाली संपूर्णव्याप्ति असेल अथवा दोन दिवसी अपराण्ही एकदेशस्पर्श असेल तर दुसऱ्या दिवसीच उपाकर्म करावे. पूर्व दिवसीच अपराण्हकाली संपूर्णव्याप्ति असेल तर, सर्वत्र ठिकाणी सामवेदी यांना अपराण्हकाल हाच उपाकर्माचा काल, असें वचन आहे यास्तव यांनी पूर्व दिवसीच उपाकर्म करावे. पूर्व दिवसीच अपराण्ही एकदेशस्पर्श असेल, अथवा दोनही दिवसी अपराण्ही स्पर्श नसेल तर दुसऱ्या दिवसीच उपाकर्म करावे. व्या सामवेदी यांना प्रातःकाल व संगवकाल हे उपाकर्माचे काल सांगितले यांनी पूर्व दिवसी अपराण्हकाली व्याप्ति असेल ती टाकून दुसऱ्या दिवसी संगवकालानंतर जे हस्तनक्षत्र असेल ते घ्यावे, असे जे ते, सिंहस्थ सूर्य असतां उपाकर्म करणे सांगितले ते श्रावणमासांत सिंहस्थ सूर्य असून हस्त किंवा पौर्णिमा येतील तर त्या दिवसी उपाकर्म करावे, कर्कस्थरावि असेल तर करू नये. असी सामवेदी यांना श्रावणमासातील हस्त व पौर्णिमा यांची व्यवस्था सांगितली याविषयी जाणावे. अन्यशाखी जे यांना सिंहस्थरावीचा विधि किंवा निषेध नाही.

सर्वशाखी यांजविषयी उपाकर्माचा साधारण निर्णय.

अथर्वणवेदी यांनी श्रावणी पौर्णिमेला अथवा भाद्रपदी पौर्णिमेला उपाकर्म करावे. खंडा तिथि असेल तर उदयापासून संगवकाल व्यापिनी तिथि असेल ती घ्यावी. श्रावण व भाद्रपद या मासातील आपापच्या मृद्धसूत्रामध्ये जे जे काल सांगितले त्या त्या कालांचे ठिकाणी ग्रहण, संक्रांति, आशौच इत्यादि दोष प्राप्त होतील आणि सर्वथा कर्माचा लोप होईल तर सर्वशाखी यांनी दुसऱ्या शाखांमध्ये सांगितलेले काल अवश्य घ्यावे. आमध्ये आपस्तंब, बीधायन, आणि सामवेदी यांना श्रावण व भाद्रपद यांतील पंचमी, पौर्णिमा व्हाहे साधारणपणे करून घेणे प्राप्त होतील तर नर्मदेच्या उत्तर प्रदेशी सिंहस्थ सूर्य असतां पंचमी इत्यादिक काळ घ्यावे. कर्काचा सूर्य असेल तर नर्मदेच्या दक्षिणभागी श्रावणातील पंचमी इत्यादिक काळ घ्यावे, असी व्यवस्था कौस्तुभांत सांगितली आहे, त्यापेक्षा सर्वथा कर्मलोप होत असेल तर “सिंहाचा सूर्य” “कर्काचा सूर्य” इत्यादिक जी पूर्वी व्यवस्था सांगितली ती वरून ऋग्वेदी यांनीहि पौर्णिमासुद्धा घ्यावी असें मला वाटते. सर्वशाखी यांनी मुख्य काल जो श्रावणमास त्याचे ठिकाणी पर्जन्यवृष्टि न झाल्यामुळे भात इत्यादिक वनस्पति उत्पन्न झाल्या नसतील तर, किंवा आशौचदिक असेल तर भाद्रपदमासातील श्रावणादिक जे काल यांचे ठिकाणी उपाकर्म करावे.

वनस्पति उत्पन्न झाल्या नसतील तथापि श्रावणमासति करावे, असे कर्कादिकांचे मत आहे: सर्वशास्त्री यांच्या गृह्यसूत्रांमध्ये निर्णयित जे उपाकर्मांचे मुख्य दिवस सांगितले ते दिवसी ग्रहण किंवा संक्रांति असेल तर संक्रांतिरहित असे पंचमी आदिकरून काल घ्यावे. ग्रहण व संक्रांति यांचा योग उपाकर्मांसंबंधी जे अहोरात्र याचे ठिकाणी—झणजे वेणाच्या मध्यरात्रीच्या पूर्वी दोन प्रहर, गेलेल्या मध्यरात्रीनंतर दोन प्रहर, आणि वर्तमान दिव साचे चार प्रहर ह्या आठ प्रहरांत असेल, आणि श्रवण नक्षत्र, पीथिमा इत्यादिक तिथी लक्षाच्या स्पर्श नसेल तथापि उपाकर्मांला दूषक होतो. कोणी प्रयकार पूर्वी सांगितलेल्या आठ प्रहरांहून अन्यस्थलांहि ग्रहणसंक्रांतीचा योग असून प्राद्य अर्ती श्रवणादि नक्षत्रे, पौर्णिमादि तिथि यांना तो स्पर्श करणारा असेल तर तोहि उपाकर्मांदूषक होतो, असे झणतात. नूतन मीनी झालेण्याचे प्रथम उपाकर्म गुह्यशुक्रांचे अस्तादिक, मलमासादिक आणि सिंहस्य गुरु यांचे ठिकाणी करूं नये. दुसरें, तिसरें हीं उपाकर्म अस्तादिकांताहे करावीं. मलमासांत तर दुसरें, तिसरेंहि उपाकर्म करूं नये. प्रथम उपाकर्म करणें तें पुण्याहवाचन, नांदीश्राद्ध इत्यादि करून करावे. नवीन मीनी झालेण्याचे उपाकर्म करणें असून श्रावणमासातील पंचमी, हस्त, श्रवण इत्यादिक कार्त्ती गुह्यशुक्रांच्या अस्तादिकांमुळे त्या कार्त्ती न होईल तर भाद्रपद मासातील पंचमी, श्रवण इत्यादिक काळ घ्यावे. “मीनी, यज्ञोपवीत, नूतन दंड, कृष्णाजिन, कटिसूत्र, आणि नूतन वस्त्रे हीं, ब्रह्मचारी यानें धारण करावीं.” याप्रमाणें ब्रह्मचाऱ्याविषयी विशेष प्रतिबंधी जाणावा. उपाकर्म व उत्सर्जन हीं कर्म ब्रह्मचारी, सोढमुंज झालेले, गृहस्थ, वानप्रस्थ या सर्वांनीं करावीं. उत्सर्जनाचा काल येथें सांगत नाहीं. कारण “अथवा उपाकर्मांच्या दिवसी करावे,” या वचनाप्रमाणें सर्वशिष्टांचा आचार उपाकर्मांच्या दिवसीच उत्सर्जनकर्म करण्याचा असल्यामुळे यांच्या निर्णयाचा उपयोग नाहीं. जर उत्सर्जन व उपाकर्म हीं इतर ब्राह्मणासह वर्तमान करणें असतील तर लौकिकांमिचे ठिकाणी करावीं. जेव्हां एकाकी करील तेव्हां आपल्या गृहस्थीवर करावीं. कात्यायनांनीं लौकिकांमिवर न करितां अन्वाधान केलेला जो अग्नि याचे ठिकाणी उपाकर्म करावे, ऋकशास्त्री इत्यादिक आपण चतुरवत्ती असून बहुत चतुरवत्तीसह वर्तमान उपाकर्म करणारा असेल व यांत एक जामदग्नि इत्यादिक पंचावत्ती असेल तर चतुरवत्ती जे यांनींहि पंचावत्त कर्म करण्याविषयी वैकल्पिक वचन आहे व तसे केले असतां यांच्या कर्मांला वैगुण्य येत नाहीं यास्तव पंचावत्तीच्या अनुरोधाने पंचावत्तच कर्म करावे. उत्सर्जन व उपाकर्म हीं कर्म न केलीं असतां दोष आहे यास्तव प्रतिबंधी करावीं. हीं उत्सर्जनापाकर्म न केलीं असतां प्रमापयकृच्छ्र, किंवा उपीषण करावे असे प्रायश्चित्त

निर्मयसिध्द्व्या एखाद्या पुस्तकांत मिळते, सर्व पुस्तकांत मिळत नाही. उपाकर्मे न उत्सर्जन ह्या दोहोमध्येहि ऋषिमुजन करवाक ऋषि इत्यादिकांचे तर्पण करणे ते उत्सर्जन नांतच करावे. विवाह शांत्यानंतर उपाकर्मांचे ठिकाणी तिलतर्पणविषयी दोष नाही. उत्सर्जनाचे ठिकाणी संकल्प करवावाचा याचा विशेष:- "अभितानां उदसां अप्यायन द्वारा श्रीपरमेश्वरप्रदियर्थ उपाकर्मदिनेभवोत्सर्जनाख्यं कर्म करिष्ये." उपाकर्मांचे ठिकाणी तर "अभितानां अभ्येष्टमाणांनाच उदसां यातयामता निरासेनाप्यायनद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रदियर्थ" असा विशेष आहे. वाक्तीचा सर्व विशेषप्रयोग आपापल्या गृहसूत्रा प्रमाणे जाणावा. ह्या उत्सर्जनोपाकर्माविषयी नदीचा ह्जांदोष नाही. ब्रह्मादिक सर्व देव व ऋषि इत्यादिक यांचे जलचे ठिकाणी सान्निध्य आहे आपेक्षां नदीच्या उदकाने ज्ञान केले अन्नतां सर्व दोषांचा क्षय होतो. ऋषींचे पूजन ज्या स्थानी केले तेथील उदकाने ज्ञान व याचे प्राधान्य केले असतां सर्व मनोऽप प्राप्त होतत. यामुळे सर्व शाखांचा साधारण निर्णय प्रभास झाला.

आतां रक्षाबंधन,

सूर्योदयापासून सहा घटिकांपेक्षां अधिकव्यापिनी क कन्याणी रहित अशा ह्याचे आकाशी पौर्णिमेच्या दिवसी अपराह्नी अथवा प्रदोषकालीं रक्षाबंधन करावे. दुसऱ्या दिवसीं सूर्योदयकालीं पौर्णिमा सहा घटिकांहून कमी असेल तर पूर्व दिवसीं कल्याणी रहित जो प्रदोषादिक काल याचे ठिकाणी करावे. हे रक्षाबंधन ग्रहण व संक्रांति ह्या दिवसीं करावे. याचा मंत्र:- "येन बद्धो बली राजा दानवेद्रो महाकलः॥ तेन त्वामभिवध्नामि रक्षमाचलमाचल" ह्या मंत्राने रक्षाबंधन करावे. ह्याच पौर्णिमेचे दिवसीं हयग्रीवावतार झाला. श्रावणी पौर्णिमा कुलधर्मादि कुर्याला साहा घष्टिका सायान्हकालव्यापिनी व पूर्व तिथीं विद्ध असी असेल ती ध्यावी. पूर्व दिवसीं सायान्हकालीं सहा घटिकांहून कमी असेल तर दुसऱ्या दिवसाची ध्यावी. ह्याच पौर्णिमेचे दिवसीं रात्रीं आश्वलायनांनीं श्रवणाकर्म, व सर्पबलि हीं दोन कर्मे करावीं. तैत्तिरीयशाखी यांनीं केवल सर्पबलिच करावा. कात्यायन आणि सामवेदी यांनीं श्रवणाकर्म, सर्पबलि हीं दोनहि करावीं. श्रवणाकर्म, सर्पबलि, आश्वपुत्री कर्म, प्रसवरोहण इत्यादिक पाकसंस्था त्या त्या कालीं न केव्हा असतां प्राजापत्य प्रायश्चित्त करावे: अन्य कालीं त्या करूं नयेत. श्रवणाकर्म इत्यादिक सात संस्था, स्त्री रजस्वला असली तथापि कराव्या. प्रथमारंभ असेल तर मात्र करूं नयेत. ह्या श्रवणाकर्माविषयी पौर्णिमा घेणे ती सूर्यास्तापासून आरंभ करून सर्व कर्म

पौर्णमासी होईल इतकी व्याप्ति पूर्व दिवसांच मिकेल तर पूर्व दिवसाचीच ध्यावी. इतोन दिवसां तसी व्याप्ति असेल किंवा नसेल तर दुसऱ्या दिवसाचीच ध्यावी. श्रावणा कर्पाचा प्रयोग आषाढच्या सूत्रप्रंथी आहे तो पाहावा. श्रावणकृष्ण चतुर्थीला आरंभ करून प्रत्येक कृष्ण चतुर्थीचे दिवसां पावउत्तीघपर्यंत, अथवा एकविस वर्षपर्यंत, किंवा एक वर्षपर्यंत असे संकष्टचतुर्थीचे व्रत करावे. अशक्त असेल तर प्रतिवर्षी श्रावणकृष्ण चतुर्थीचे दिवसांच करावे. ह्या व्रताविषयी चंद्रोदयव्याप्तौने चतुर्थीचा निर्णय प्रथम परिच्छेदांत सांगितला आहे. ह्या व्रताचा उद्यापनासहवर्त्तमान प्रयोग कौस्तुभादि ग्रंथांत पाहावा.

आतां जन्माष्टमीनिर्णय.

अष्टमी दोन प्रकारची—एक शुद्धा आणि दुसरी विद्धा. दिवसा किंवा रात्री सप्तमीचे योगाने विरहित असी ज्या दिवसां जितकी असेल त्या दिवसां तितकी ती शुद्धा होय. दिवसा किंवा रात्री सप्तमीचे योगाने युक्त असी ज्या अहोरात्रांत जितकी असेल त्या दिवसां तितकी ती विद्धा होय. ती पुनः दोन प्रकारची—एक रोहिणीनक्षत्राने युक्त, आणि दुसरी रोहिणीनक्षत्राने विरहित. या मध्ये रोहिणीयोगाने विरहित अशी जी नुस्ती अष्टमी तिचे भेद उदाहरणाने सांगतोः—उदाहरण, सप्तमी घटिका १९, पळे १९, अष्टमी १८१९ ही शुद्ध आहे व येथे दुसऱ्या कोटीचा संभव नाही, या करितां हिच्याविषयी संशय नाही. उदाहरण, सप्तमी घ० २, अष्टमी घ० १९, ही विद्धा आहे या पक्षां दुसऱ्या दिवसां सर्वथा नसल्या कारणाने एथे दुसऱ्या कोटीचा संभव नाही या करितां हिच्याविषयीहि संशय नाही. जेव्हां दोन दिवसां नुस्ती अष्टमी असते तेव्हां चार पक्ष संभवतात. ते असेः— १ पूर्वदिवसांच निशीथव्यापिनी, २ दुसऱ्या दिवसांच निशीथव्यापिनी, ३ दोनहि दिवसां निशीथव्यापिनी, ४ दोनहि दिवसां निशीथव्याप्ति नसणे. रात्रीचे जे अर्ध झाला निशीथ असे झणतात. स्थूलमानेकरून तर आठवा मुहूर्त तो निशीथ काळ. पूर्वदिवसांच निशीथव्यापिनी आहे. उदाहरण—सप्तमी घ० ४०, अष्टमी घ० ४२. ह्या पक्षां सप्तमीने युक्त असी पूर्वविद्धा तीच अष्टमी उपोषणाला ध्यावी. अथवा दुसरे उदाहरण—अष्टमी घ० ६०४ ही शुद्धाधिक आहे तथापि पूर्वदिवसाचीच ध्यावी. दुसऱ्या दिवसांच निशीथव्यापिनी असणे—उदाहरण सप्तमी घ० ४७, अष्टमी घ० ४६, ह्या पक्षां दुसऱ्या दिवसाचीच अष्टमी उपोषणाला ध्यावी. दोन दिवसां निशीथकाली व्याप्ति असणे—उदाहरण—सप्तमी ४२, अष्टमी ४६ ह्या पक्षां हि दुसऱ्या दिवसाचीच अष्टमी ध्यावी. दोन दिवसां निशीथव्याप्ति नसणे. उदाहरण—सप्तमी ४७, अष्टमी ४९ ह्या हि पक्षां दुसऱ्या दिवसाचीच अष्टमी ध्यावी.

येथें सर्वत्र ठिकाणी सप्तमीयुक्त असेल तर रात्रीच्या पूर्वार्धाच्या समाप्तिकाली एक कला मात्र जरी अष्टमी असली तरी निशीथव्याप्ति मानावी. नवमीयुक्त असेल तर रात्रीच्या उत्तरार्धाचा जो प्रथम भाग त्या भागांत एक कलामात्र जरी अष्टमी असली तरी दुसऱ्या दिवसी निशीथव्याप्ति जाणावी. सप्तमीच्या दिवसी उत्तरभागांतच अष्टमी असेल आणि नवमीयुक्त दिवसी पहिल्या भागांतच अष्टमी असेल तर निशीथव्याप्ति नाही असे मानावें. या प्रमाणें पुढें सांगावयाचे जे रोहिणीयुक्त भेद त्यांचे ठिकाणीहि असेच जाणावें. रोहिणीयुक्त अष्टमीचे ठिकाणीहि पूर्वदिवसींच निशीथकाली अष्टमी व रोहिणी यांचा योग असावा. दुसऱ्या दिवसींच निशीथकाली योग असणें, दोन दिवसी निशीथकाली योग असणें, या प्रमाणे तीन पक्ष होतात. पूर्वदिवसींच निशीथकाली अष्टमी रोहिणीचा योग असणें. त्याचें उदाहरण—सप्तमी ४०घ०, त्या दिवसी कृत्तिका ३९, अष्टमी ४६, त्या दिवसी रोहिणी ३६, या पक्षां पूर्वविद्धाच अष्टमी उपोषणाला घ्यावी. दुसऱ्या दिवसींच निशीथकाली रोहिणी अष्टमीचा योग असणें. उदाहरण—सप्तमी ४२ त्या दिवसी कृत्तिका ९०, अष्टमी ४७, रोहिणी ४६ या पक्षां दुसऱ्या दिवसाचीच अष्टमी घ्यावी. दोन दिवसी निशीथकाली अष्टमीरोहिणीचा योग असणें. उदाहरण—सप्तमी ४२, कृत्तिका ४३, अष्टमी ४७, रोहिणी ४८ या पक्षां दुसऱ्या दिवसाचीच अष्टमी घ्यावी. या नंतर रोहिणीयुक्त अष्टमीचे ठिकाणीच दोनही दिवसी निशीथकाली रोहिणी योग नाही असे बहुधा संभवतें.

दुसऱ्या दिवसींच निशीथकालव्यापिनी अष्टमी आणि दुसऱ्या दिवसींच निशीथकाली हून अन्यत्र काली रोहिणीयुक्त अष्टमी असा एक पक्ष—उदाहरणः—सप्तमी ४७, अष्टमी ९०, अष्टमीच्या दिवसी कृत्तिका ४६ ह्या पक्षां दुसऱ्या दिवसाचीच अष्टमी घ्यावी. ह्याच्या समानयुक्तीने पूर्वदिवसींच निशीथकालव्यापिनी अष्टमी, आणि पूर्वदिवसींच निशीथकाली हून अन्यत्रकाली रोहिणीयुक्त अष्टमी, अशा पक्षांहि पूर्वदिवसाचीच घ्यावी. दोनही दिवसी निशीथकाली हून अन्यत्रकाली रोहिणीयुक्त अष्टमी, आणि दुसऱ्या दिवसींच निशीथकालव्यापिनी, असा हा दुसरा पक्ष—उदाहरणः—सप्तमी ४८, त्या दिवसी कृत्तिका ३०, अष्टमी ४८, रोहिणी २९ ह्या पक्षांहि दुसऱ्या दिवसाचीच घ्यावी. दोन दिवसी निशीथकाली हून अन्यत्रकाली रोहिणीयुक्त अष्टमी, आणि पूर्वदिवसींच निशीथकालव्यापिनी असा हा तिसरा पक्ष—उदाहरणः—सप्तमी २९, कृत्तिका ४८, अष्टमी, २०, रोहिणी ४३; ह्या पक्षांहि दुसऱ्या दिवसाचीच घ्यावी. दोन दिवसी सारखा रोहिणीयोग असेल तथापि पूर्व दिवसी सप्तमीने विद्ध आहे यास्तव पूर्वदिवसाचीच घ्यावी. उदाहरणः—

अष्टमी ६०।४, कृत्तिका ९० ह्या पक्षां दोन अहोरात्रामध्ये रोहिणीयोग जरी सारखा आहे तथापि पूर्वदिवसाची शुद्ध असून पूर्णव्याप्ति आहे याकरिता पूर्वदिवसाचीच ध्यावी. दोनही दिवसां निशीथकालव्यापिनी अष्टमी आणि दुसऱ्या दिवसांच निशीथकालाहून अन्यत्र कार्त्तिकी रोहिणीयुक्त अष्टमी, असा हा चवथा पक्ष—उदाहरण—सप्तमी ४३ अष्टमी ४१, कृत्तिका ४६ ह्या पक्षां दुसऱ्या दिवसाचीच अष्टमी ध्यावी. या प्रमाणे दोनही दिवसां निशीथकालव्यापिनी अष्टमी आणि पूर्वदिवसांच निशीथकालाहून अन्यत्र कार्त्तिकी रोहिणीयुक्त अष्टमी, असा हा पांचवा पक्ष—उदाहरण—सप्तमी ४१, ह्या दिवसां रोहिणी ४३, अष्टमी ४७, ह्या पक्षां पूर्वदिवसाचीच अष्टमी उपोषणाला ध्यावी. दोनही दिवसां निशीथकालव्यापिनी अष्टमी, आणि दोन दिवसां निशीथकालाहून अन्यत्र कार्त्तिकी रोहिणीयुक्त अष्टमी, असा हा सहावा पक्ष—उदाहरण—सप्तमी ४२ कृत्तिका ४८, अष्टमी ४८, रोहिणी ४२ पक्षां दुसऱ्या दिवसाचीच ध्यावी. दोनही दिवसां निशीथकाल व्यापिनी नाही, आणि पूर्वदिवसांच निशीथकालाहून अन्यत्र कार्त्तिकी रोहिणीयुक्त अष्टमी, असा हा सातवा पक्ष—उदाहरण—सप्तमी ४८, ह्या दिवसां रोहिणी ५८, अष्टमी ४२ ह्या पक्षां दुसऱ्या दिवसाचीच अष्टमी ध्यावी. ह्याच पक्षां दुसऱ्या दिवसांच, किंवा दोन दिवसां निशीथकालाहून अन्यत्र कार्त्तिकी अष्टमीरोहिणींचा योग असला तथापि दुसऱ्या दिवसाचीच ध्यावी, असे कौमुतिक न्यायेंकरून सिद्ध होतें. पूर्व दिवसांच निशीथकालव्यापिनी अष्टमी, आणि दुसऱ्या दिवसांच निशीथकालाहून अन्यत्र कार्त्तिकी रोहिणीयुक्त अष्टमी, असा हा शोबटचा पक्ष—उदाहरण—सप्तमी ३०, अष्टमी २६, ह्या दिवसां कृत्तिका ९१, अथवा अष्टमी ६०।४, अष्टमीच्या शेषदिवसां कृत्तिका १; रोहिणीचा योग अरूप असेल तथापि तो प्रशस्त आहे, याकरितां दोन घटिका जरी दुसऱ्या दिवसां असेल तथापि तीच घेण्यास योग्य असल्यामुळे पूर्वदिवसां प्राप्त झालेली जी निशीथकालव्याप्ति तिचा घेण्याविषयी आदर नाही. यास्तव ह्या दोनही उदाहरणांमध्ये दुसऱ्या दिवसाचीच अष्टमी ध्यावी. पूर्वी सांगितलेल्या सर्व पक्षांचे ठिकाणीं जर दुसऱ्या दिवसां दोन घटिकांहून कमी अष्टमी आहे तर ती ग्रहण करूं नये, तर पूर्व दिवसाचीच ध्यावी, असें पुरुषार्थचिंतामणीत सांगितलें आहे. दुसऱ्या दिवसांच निशीथकालव्यापिनी अष्टमी, आणि पूर्वदिवसांच निशीथकालाहून अन्यत्र कार्त्तिकी रोहिणी युक्त अष्टमी असणें उदाहरण—सप्तमी ४८, रोहिणी ९९, अष्टमी ४८ विद्धा अष्टमी असतां निशीथकालानंतर रोहिणीयोग निरूपयोग आहे, यास्तव ह्या पक्षां अष्टमी दुसऱ्या दिवसाचीच ध्यावी. येथें विस्तारेंकरून बहुत पक्ष जें सांगितलें त्यांच्या निर्णयाचा संग्रह

संक्षेपानें पुरुषार्थचिंतामणीत आहे. शुद्धसम, शुद्धन्यून, अथवा विद्धसम, विद्धन्यून आणि केवळ अष्टमी यांचे ठिकाणी संशयच नाही. शुद्धाधिक असी केवळ अष्टमी पूर्व दिवसाचीच घ्यावी. विद्धाधिक असी पूर्वदिवसांचे निशीथकालव्याप्ति असेल तर पूर्वादि साचीच घ्यावी. दोन दिवसांनी निशीथकालव्याप्ति असेल किंवा नसेल तर दुसऱ्या दिवसाचीच घ्यावी.

आतां रोहिणी असता, जर शुद्धसम अथवा शुद्धन्यून अष्टमी असून अल्प जरी रोहिणीयोग असेल तर संशय नाही. शुद्धाधिक अष्टमी असून पूर्व दिवसांनी किंवा दोनही दिवसांनी रोहिणीयोग असेल तर पूर्व दिवसाचीच घ्यावी. शुद्धाधिक अष्टमी असून दुसऱ्या दिवसांचे रोहिणीयोग असेल तर दोन घटिका असली तथापि दुसऱ्या दिवसाचीच घ्यावी. शुद्धाधिक अष्टमी असून पूर्व दिवसांचे निशीथ कालाच्या पूर्वी किंवा निशीथकाली रोहिणीयोग असेल तर पूर्व दिवसाचीच घ्यावी. दोनही दिवसांनी, अथवा दुसऱ्या दिवसांचे निशीथकाली किंवा निशीथकाल सोडून रोहिणीयोग असेल तर दुसऱ्या दिवसाचीच घ्यावी, असा संक्षेपकरून निर्णयाचा संग्रह सांगितला. याप्रमाणे कौस्तुभादिक जे नवीन ग्रंथ त्यांनी ग्रहण केलेले अशा माधवमताच्या अनुरोधानें जन्माष्टमीचा निर्णय सांगितला. एथे कोणी ग्रंथकार, केवळ अष्टमी तीच जन्माष्टमी, व तीच जन्माष्टमी रोहिणीयुक्त झाली असता तिचेच नांव जयंती असें मानून जयंती आणि अष्टमी या उभयतांचें एक व्रत सांगतात. दुसरे ग्रंथकार तर, जन्माष्टमीव्रत व जयंतीव्रत हीं निरनिराळीं आहेत आपेक्षां रोहिणीयोग नसेल तर जयंतीव्रताचा लोप करून जन्माष्टमीचेच व्रत करावे. “ ज्यावर्षी जयंती नामक योग असेल तेव्हां जन्माष्टमी जयंतीचे ठिकाणी अंतर्भूत होते” असें वचन आहे याकारितां जयंतीचे दिवसांनी निशीथनामक जो कर्मकाल तत्कालीं जरी अष्टमी नसली तथापि साधारण वचनांनीं प्राप्त झालेली असी कर्मकालाची व्याप्ति घेऊन दोनही व्रते जयंतीच्या दिवसांचे तंत्रेंकरून करावी, दोनही व्रते निव्व असून काम्य आहेत व न केलीं असतां महादोष असून केलीं असतां महाफल आहे यास्तव दोनही करावी, निव्वव्रताचा लोप होईल तर दोष प्राप्त आहे यास्तव निशीथकालव्यापिनी असी पूर्व दिवसाची जी अष्टमी तिचेठिकाणीं जन्माष्टमीचे व्रत करून जयंतीचे दिवसांनी पारणा करूं नये, असें ह्मणतात. निर्णयसिंधूमध्ये तर पूर्वी सांगितल्या रीतीनें माधवमताचें उपपादन करून हेमाद्रीच्या मते जन्माष्टमीचे व्रत मात्र निव्व आहे व जयंतीचे व्रत निव्व असतां हि तें कलियुगांत लुप्त झालें ह्मणून कोणी करीत नाही, असें सांगून आपल्या मते ज्या वर्षी पूर्व दिवसांचे निशीथकाली अष्टमी असून दुसऱ्या दिवसांचे निशीथका

खाहून अन्यत्र कालीं जयंती' नामक योग असेल तर आणि दोनही व्रतें निस्य असल्या मुळें न केलीं असतां दोष आहे यास्तव त्या वर्षीं दोन उपोषणें करावीं. " जयंतीचे ठिकाणीं जन्माष्टमीचा अंतर्भाव होतो. " असें जें वचन तें मूर्खाला फसविण्याकरितां आहे, असें प्रतिपादन केले आहे. मला तर, कौस्तुभादिक नवीन ग्रंथांमध्ये ग्रहण केलेले जें माधवमत त्यांच्या रीतीनें जयंतीचा अंतर्भाव करून जन्माष्टमीचेच व्रत करावें, हेंच योग्य असें वाटते. ह्या व्रताचे ठिकाणीं बुधवार व सोमवार यांचा योग येईल तर तो प्राशस्त्यबोधक आहे, रोहिणीयोगासारखा निर्णयाला योग्य नाही.

यानंतर दुसऱ्या दिवसीं भोजनरूप जी पारणा करणें ती व्रताचें अंग झणून सांगितली आहे यास्तव त्या पारणेच्या कालाचा निर्णय सांगतो:—केवल तिथीचें उपोषण असेल तर तिथीच्या अंती पारणा करावी. नक्षत्रयुक्त तिथीचें उपोषण असेल तर नक्षत्र व तिथि या दोहोंच्या अंती पारणा करावी.—जर तिथि आणि नक्षत्र यांतून कोणत्याहि एकाचा अंत दिवसा मिळेल व दोहोंचा अंत रात्री मिळेल तेव्हां दिवसासच दोहोंतून एकाच्या अंती पारणा करावी. जेव्हां दोहोंतून एकाचाहि अंत दिवसास नसेल तेव्हां मध्यरात्रीच्या पूर्वी दोहोंतून एकाच्या अंती, किंवा दोहोंच्या अंती पारणा करावी. जेव्हां मध्यरात्रीच्या जवळ पूर्वेकालीं दोहोंतून एकाचा अंत होईल किंवा दोहोंचा अंत होईल तेव्हां मध्यरात्रीचे ठिकाणींहि पारणा करावी. भोजनाचा संभव नसेल तर पारणा होण्या करितां फलादिक भक्षण करावीं. कोणी ग्रंथकार, पूर्वी सांगितलेल्या निशीथकालीं पारणा करूं नये, तर उपोषणापासून तिसऱ्या दिवसीं दिवसा पारणा करावी, असें झणतात तें योग्य नाही. अशक्त असेल तर, त्यानें दोहोंतून एकाचप्रि अंत नसला तथापि उत्सवाच्या अंती प्रातःकालींच देवपूजा, विसरजन, इत्यादिक करून पारणा करावी.

आतां संक्षेपेंकरून व्रताचा विधि सांगतो.

प्रातःकालीं स्नानसंध्यादि निस्यकर्म करून पूर्व दिशेच्या संमुख होतसाता देश काळ इत्यादिक यांचा उच्चार करून त्या त्या कालीं सप्तमी इत्यादिक तिथि असली तथापि प्रधानभूत अशा अष्टमीचाच उच्चार करून " श्रीकृष्णप्रेतत्यर्थं जन्माष्टमीव्रतं करिष्ये," असा संकल्प करावा. जयंतीचा योग असेल तर "जन्माष्टमीव्रतं जयंतीव्रतंच तंत्रेण करिष्ये," असा दोहों व्रतांचा एक तंत्रानें संकल्प करावा. तांद्याच्या भांड्यांत उदक घेऊन "वासुदेवं समुद्दिश्य सर्वपापप्रशांतये ॥ उपवासं करिष्यामि कृष्णाष्टम्यां नभस्यहं." अशक्त असेल तर "उपवासं करिष्यामि" येथें "फलानि भक्षयिष्यामि" इत्यादिक उद्ग करावा. "आतन्ममरणं यावद्यन्वया दुष्कृतं कृतं ॥ नःप्राणाशय गोविंद प्रसीद

पुरुषोत्तम" ह्या दोहों मंत्रांचा उच्चार करून पात्रांतले उदक भूमीवर सोडावे. तदनंतर तुषर्णाच्या, रुप्याच्या, किंवा मृत्तिकेच्या, अथवा मितीवर लिखित केलेल्या, याप्रमाणे नसा कुलाचार असेल तशा मूर्ति कराव्या. या अशाः—मंचकावर देवकीने शयन केलेले असून तिचे स्तनपान करीत आहे अशी श्रीकृष्णाची मूर्ति करावी. जयंतीयोग असेल तर देवकीची दुसरी एक मूर्ति करावी व तिच्या मांडीवर स्थित अशी दुसरी श्रीकृष्णमूर्ति ठेवून मंचकस्य देवकीची चरणसेवा करणारी अशी लक्ष्मीची मूर्ति ठेवावी. नंतर भित इत्यादिकांवर खड्डधारी वसुदेव, नंद, गोप, गोपी इत्यादिक मूर्ति लिहून दुसऱ्या ठिकाणी मंचकावर प्रसूत कन्येसह यशोदेची मूर्ति स्थापावी. नंतर दुसऱ्या स्थानी वसुदेव, देवकी, नंद, यशोदा, श्रीकृष्ण, राम, चंडिका, अशा सात मूर्तीची स्थापना करावी. इतक्या मूर्ति करण्याविषयी शक्ति नसेल तर वसुदेवापासून चंडिकेपर्यंत सात, अथवा नसा आचार किंवा शक्ति असेल तशा करून बाकीच्या सर्वांचे जसे तसे ध्यान करावे, असे मला वाटते. निशीयकालाच्या जवळच्या कार्त्तिकेच्या अक्षय्यास "श्रीकृष्ण प्रीत्यर्थ सपरिवारश्रीकृष्णपूजां करिष्ये " असा संकल्प करून न्यास, शंखपूजा इत्यादिक नियमाप्रमाणे करून देवताध्यान करावे. याचा मंत्र— " पर्यंकस्यां किन्नरा वैर्युर्ता ध्यायेत्तु देवकीं ॥ श्रीकृष्णं बालकं ध्यायेत्पर्यंके स्तनपायिनं ॥ श्रीवत्सवक्षसं शान्तं नीलोत्पलदलच्छविं ॥ संवाहयंतीं देवक्याः पादौ ध्यायेच्च तां श्रियं ॥ " असे ध्यान करून " देवक्यै नमः " ह्या नाममंत्राने देवकीचे आवाहन करून मूलमंत्राने किंवा पुरुषसूक्ताच्या ऋचेने " श्रीकृष्णाय नमः श्रीकृष्णं आवाहयामि, " असे आवाहन करून लक्ष्मीचे आवाहन करून " देवक्यै वसुदेवाय यशोदायै नंदाय कृष्णाय रामाय चंडिकायै, " अशा नाममंत्राने आवाहन करावे. नंतर लिखित देवतांचे " सकलपरिवारदेवताभ्यो नमः " असे आवाहन करून मूलमंत्राने किंवा पुरुषसूक्तऋचेने " अत्रावाहित देवक्यादिपरिवारदेवतासहित श्रीकृष्णाय नमः " असे ह्मणून आसन, पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, अभ्यंगस्नान हीं समर्पण करून पंचामृतस्नान झाल्यानंतर चंदने करून अनुलेपन करावे. नंतर शुद्धोदकाने अभिषेक करून वस्त्र, यज्ञोपवीत, गंध, पुष्प धूप, दीप इत्यादिक उपचार अर्पण करावे. याचे मंत्र— " विश्वेश्वराय विश्वाय तथा विश्वोद्भवाय च ॥ विश्वस्य पतये तुभ्यं गोविंदाय नमोनमः ॥ यज्ञेश्वराय देवाय तथा यज्ञोद्भवाय च ॥ यज्ञानां पतये नाथ गोविंदाय नमोनमः ॥ " मूलमंत्रयुक्त ह्या मंत्रांनी वस्त्रादिक उपचार अर्पण करावे. " जगन्नाथ नमस्तुभ्यं संसारभयनाशन ॥ जगदीश्वराय देवाय भूतानां पतये नमः ॥ " ह्या मंत्रेकरून नैवेद्य द्यावा. मूलमंत्रादिकांची सर्व ठिकाणी

योजना करावी. तांबूलापासून नमस्कार, प्रदक्षिणा, पुष्पांजलिपर्यंत पूजा करावी. अथवा उद्यापनप्रकरणीं सांगितलेष्वपि विधीकरून करावी. ती असी, — पूर्वी सांगितल्याप्रमाणे ध्यान, आवाहन, इत्यादि करून पुढें सांगितो असी पूजा करावी. ती असी:—“ देवा ब्रह्मा ह्यपोयेन स्वरूपं न विदुस्तव ॥ अतस्त्वापुजयिष्यामि मातुस्तसंगवासिनं ॥ पुरुष एवेह मासनं ॥ अबतारसहस्राणि करोषि मधुसूदन ॥ न ते संख्यावताराणां कश्चिज्जाना तितश्चतः ॥ एतावानस्येतिषाद्यं ॥ जातः कंसवधार्थाय भूभारोत्तारणायच ॥ देवानांच हितार्थाय धर्मसंस्थापनायच ॥ कौरवाणां विनाशाय पांडवानां हितायच ॥ गृहाणा- र्थं मया दत्तं देवक्या सहितो हरे ॥ त्रिपादू० अर्घ्यं ॥ सुरासुरनरेशाय क्षीराब्धि शयनायच ॥ रुष्णाय वासुदेवाय ददाभ्याचमनं शुभं ॥ तस्मा० आचमनीयं ॥ नारा यण नमस्तेस्तु नरकार्णवतारक ॥ गंगोदकं समानीतं ज्ञानार्थं प्रतिगृह्यतां ॥ यत्पु- रूषे० ज्ञानं ॥ धयोदधिघृतक्षीरशर्कराज्ञानमुत्तमं ॥ तृप्स्यथं देवदेवेश गह्यतां देव कीसुत ॥ पंचामृतं ॥ शुद्धोदकज्ञानमाचमनं ॥ क्षीमंच पट्टसूत्राद्यं मयानीतां शुक्लं शुभं ॥ गृह्यतां देवदेवेश मया दत्तं सुरोत्तम ॥ तंयज्ञं० वस्त्रं ॥ नमःरुष्णाय देवाय शंखचक्रधरायच ॥ ब्रह्मसूत्रं जगन्नाथ गृहाण परमेश्वर ॥ तस्माद्य० यज्ञोपवीतं ॥ नानागंधसमायुक्तं चंदनं चारुचर्चितं ॥ कुंकुमाक्ताक्षतैर्युक्तं गृह्यतां परमेश्वर ॥ त स्माद्य० गंधं० ॥ पुष्पाणि यानि दिव्यानि पारिजातोद्भवानिच ॥ मालतीकेसरा दीनि पूजार्थं प्रतिगृह्यतां ॥ तस्माद्य० पुष्पाणि ॥ अर्थागपूजा ॥ श्रीरुष्णाय नमः पादौ पूजयामि ॥ संकर्षणाय नमः गुल्फौ० कालात्मने० जानूनीपू० विश्वकर्मणेन० जंघेपू० विश्वनेत्राय० कटीपू० विश्वकर्त्रे० मेढूपू० पद्मनाभाय० नाभिपू० परमात्मने० हृदयपू० श्रीकंठायन० कंठपू० सर्वास्त्रधारिणे० बाहूपू० वाचस्पतये० मुखेपू० केशवाय० लला टपू० सर्वात्मने० शिरःपू० विश्वरूपिणे नारायणाय० सर्वांगं पूजयामि ॥ वनस्पतिरसो० पत्पुरुषं० धूपं० त्वं उयोतिः सर्वदेवानां तेजस्त्वं तेजसांपरं ॥ आत्मज्योतिर्नमस्तुभ्यं ह्यपो- यं प्रतिगृह्यतां ॥ ब्राह्मणो० दीपं० नानागंधसमायुक्तं भक्ष्यभोज्यं चतुर्विधं ॥ नैवेद्यार्थं मया दत्तं गृहाण परमेश्वर ॥ चंद्र० नैवेद्यं० आचमनं करोद्धर्तनं ॥ तांबूलं च सकर्पूरं पुगीफलसमन्वितं ॥ मुखवासकरंभ्यं प्रीतिदं प्रतिगृह्यतां ॥ तांबूलं ॥ सौवर्णं राजतं तांब्रं नानारत्नसमन्वितं ॥ कर्म साह्रुण्यसिद्धयर्थं दक्षिणा प्रतिगृह्यतां ॥ दक्षिणां ॥ रंभाफलं नारिकेलं तथैवात्रफलानिच ॥ पूजितोसि सुरश्रेष्ठ गृह्यतां कंससूदन ॥ फलानि ॥ नाम्या आसी० नीरांजनं० ॥ यानिकानि० सप्तास्या० प्रदक्षिणां० यज्ञेन० पुष्पांजलि ॥ नमस्का रानू० अपराधसं० प्रार्थना ॥ ” याप्रमाणे सर्व उपचारांनी पूजा करून तिची समाप्ति

ज्ञान्यानंतर बारा अंगुळें विस्तृत, रुप्याचा, किंवा भिती इत्यादिकांवर लिखित असून रोहिणीयुक्त चंद्र करून, “सोमेश्वराय सोमाय तथा सोमोद्भवाय च ॥ सोमस्य पतये निखं तुभ्यं सोमाय वै नमः” ह्या मंत्रानें पूजा करावी. नंतर पुष्प, कुश, चंदन, यांसह उदक शंखानें घेऊन, “क्षीरोदार्षवसंभूत अत्रिगोत्रसमुद्भव ॥ गृहाणार्घ्यं शशांकेश रोहिणीसहितो मम ॥ ज्योत्स्नापते नमस्तुभ्यं ज्योतिषां पतये नमः ॥ नमस्ते रोहिणीकांत अर्घ्यं नः प्रतिगृह्यतां, ” ह्या दोन मंत्रांनीं चंद्राला अर्घ्य द्यावें. तदनंतर श्रीकृष्णाला अर्घ्य द्यावें. त्याचा मंत्रः— “जातः कंसवधार्थाय भूमारोत्तारणाय च ॥ पांडवानां हिता र्थाय धर्मसंस्थापनाय च ॥ कौरवाणां विनाशाय दैत्यानां निघनाय च ॥ गृहाणार्घ्यं मया दत्तं देवक्यासहितो हरे, ” असें अर्घ्य देऊन प्रार्थना करावी. प्रार्थनेचे मंत्रः— “त्रा हि मां सर्वलोकेश हरे संसारसागरात् ॥ त्राहि मां सर्वपापघ्न दुःखशोकार्णवात्प्रभो ॥ सर्व लोकेश्वर त्राहि पतितं मां भवार्णवे ॥ त्राहि मां सर्वदुःखघ्न रोगशोकार्णवाद्धरे ॥ दुर्गतां त्रायसे विष्णो ये स्मरंति सकृन् सकृन् ॥ त्राहि मां देवदेवेश त्वत्तो नान्यो स्थि रक्षिता ॥ यद्वा कचन कौमारे योवने यच्च वार्द्धके ॥ तत्पुण्यं वृद्धिमायात्तु पापं दह हलायुध ॥ ”

आतां पूजा झाल्यानंतरचें कृत्य.

अभिपुराण “या प्रमाणें पूजा करून पुरुषसूक्तांनीं, व विष्णुसूक्तांनीं व नानाविध स्तोत्रांनीं स्तुति करावी; आणि गीत, वाद्यें, उत्तम चित्रविचित्र कथा, भजन, नृत्य, प्राचीन असे पुराणसंबंधीं इतिहास, देशभार्षेतील स्तुति इत्यादिकेंकरून जागर करावा. येथें पहिल्यानें सूक्त सांगून शेवटीं पुराणकथा सांगितल्या, यास्तव कथेच्या ठिकाणीं विचित्रपणा, देशभाषा व काव्य इत्यादिकांनीं केलेला जाणावा. वैदिकमंत्रयुक्त व स्तुतियुक्त असून पुराणसंबंधीं इतिहासांनीं मिश्रित व गायन व नृत्य यांहीं युक्त आणि देशभाषा संबंधीं कविता झणून कथा करून जागर करणें तो ब्राह्मण, क्षत्रिय, आणि वैश्य या तीन वर्णांनीं करावा. असा पूर्वोक्त जागर शूद्रादिकांनीं करूं नये. दुसऱ्या प्रमाण वचनानें तर वैदिकमंत्र, पुराण, स्तुति यांहीं रहित, गायनादियुक्त असा साधारण जागर चारदि वर्णांनीं करावा.

गोकुलांतील जन्मलीला इत्यादिक श्रवण केल्यानंतर “दहीं, दूध, घृत, उदक यांहीं करून गोपालांनीं परस्परांवर सिंचन व लेपन केलें.” अशा भागवताच्या वचनानें तसा विधि प्राप्त होतो यास्तव वैष्णवांनीं दहीं, दूध, ताक यांचें सिंचन परस्परांवर करावें.

महाराष्ट्र देशामध्ये हल्लीं हा उत्सव "गोपालकाला" या नावाने चालतो असे मळा वाटते. हे सर्व कौस्तुभग्रंथी श्रीमान् अनंत देव यांनीं स्पष्ट करून दाखविले आहे, आ पेक्षा मनवर दोषारोप करूं नये. पूजा, जागर इत्यादिकेकरून युक्त असा व्रताचा उत्सव सर्वांला सारखा आहे, यास्तव अशा प्रकारचा कथायुक्त जागर इतर रामनवमी, एकादशी इत्यादिक उत्सवांतही करावा. कारण महाराष्ट्र देशांतिल लोकांमध्ये आचारहि तसाच आहे, प्रेमळ असे जे भगवद्भक्त आहेत ते "उत्सव पर्वणीचे दिवसीं करावे, किंवा दररोज करावे" अशा या न्यायाला अनुसरून पूर्वी सांगितल्याप्रमाणे कथा, जागर, उत्सव हे दररोज करतात, असे मळा वाटते. या प्रमाणे उत्सव करून नंतर नवमीचे दिवसीं भोजन, दाक्षिणा इत्यादिकेकरून ब्राह्मणांचा संतोष करून पूर्वी सांगितलेला जो पारणे चा निर्णीतकाल त्या कार्ळी भोजन करावे. एक वर्षपर्यंत करावयाचे असे हे जयंतोव्रत आहे याचा आरंभ श्रावणकृष्ण अष्टमीचे दिवसीं करून दरएक मासाला कृष्णाष्टमीचे ठिकाणीं पूर्वी सांगितल्या विधीनें पूजादिक करावी. अशा प्रकारचा वर्षसाध्य प्रयोग पुराणांतरीं सांगितला आहे. ह्या व्रताच्या उद्घापनाचा विधि अन्य ग्रंथीं आहे तो पहा वा. याप्रमाणे जन्माष्टमीचा निर्णय झाला.

दर्भ कधीं आणावे.

"शुचिर्भूत होऊन श्रावण अमावास्येचे दिवसीं दर्भ आणावे. ते दर्भ ताने राहतात, व ब्रह्मकर्मीला पुनः पुनः तेच तेच दर्भ ध्यावे." कोणी ग्रंथकार भाद्रपद अमावास्येचे दिवसीं दर्भ आणावे असे झणतात. कुश, लव्हा, यव, दुर्वा, बाळा, कुंदक, गहूं, मात, मोळ, बल्वज हे दहा प्रकारचे दर्भ जाणावे. दर्भ तोडण्याचा मंत्र "विरंचिना सहोत्पन्न परमेष्टिनिसर्गज ॥ नुद सर्वाणिपापानि दर्भ स्वस्ति करो भव" या प्रमाणे मंत्र झणून पूर्वदिशा किंवा उत्तरदिशा हिच्या संमुख होताता "हुंकट्" असा मंत्र झणून एकवार असे दर्भ तोडून आणावे. ब्राह्मणाने चार दर्भांचे, क्षत्रियाने तीन दर्भांचे, वैश्याने दोन दर्भांचे याप्रमाणे पवित्रके धारण करावी. अथवा सर्वांनीं दोन दोन दर्भांची पवित्रके धारण करावी. पवित्रकाला ग्रंथि देणे तो वैकल्पिक आहे. ॥ याप्रकारे करून आनंतोपाध्याय यांचा पुत्र काशीनाथोपाध्याय याणे रचिलेल्या धर्मसिंधुसार ग्रंथांतिल श्रावण मासांत करावयाचे कृष्णांचा निर्णय झाला.॥

आतां भाद्रपदमासांतिल कृत्ये.

कन्यासंक्रांतीच्या पुढच्या सोळा घटिका पुण्यकाळ. भाद्रपद मासाचे ठिकाणीं एक

अन्न खाणें असें व्रत करावें, तेणेंकरून धन, आरोग्य इत्यादिक फळ प्राप्त होतें. या मासाचे ठिकाणीं इषाकेशाचा संतोष होण्याकरितां पायस, गुडभिन्नित भात, लवण इत्यादिकांचें दान करावें.

हरितालिका व्रत.

भाद्रपदशुद्ध तृतीयेचे दिवसीं हरितालिका व्रत करावें. त्या हरितालिका व्रताविषयी तृतीया दुसऱ्या दिवसीं दोन घटिका किंवा व्याहून कमी असली तथापि दुसऱ्या दिवसाची ध्यावी. जेव्हां क्षयामुळे दुसऱ्या दिवसीं नसेल तेव्हां द्वितीयेनें युक्त असीं पूर्वं दिवसाचीहि ध्यावी. जेव्हां ऋद्धियुक्त अशी तृतीया असेल तेव्हां पूर्वदिवसीं साठ घटिका असली तथापि ती टाकून दुसऱ्या दिवसीं अन्न असली तथापि चतुर्थीचा योग प्रशस्त आहे या करितां चतुर्थीयुक्तच ध्यावी. ह्या व्रताचे ठिकाणीं स्त्रियांनीं पार्वती आणि शिव यांची पूजा करून उपोषण करावें. हें हरितालिकासंबंधीं उपोषण स्त्रियांला निम्न आहे. या व्रताचे ठिकाणीं “मंदारमालाकुलितालकायै कपालमालाकितशेखराय ॥ दिव्यांबरायैचादिगंबराय नमःशिवायैचनमःशिवाय ” इत्यादिक पूजामंत्र जाणावे.

गणेशचतुर्थी.

भाद्रपद शुद्ध चतुर्थी हिला गणेशचतुर्थी असें झणतात, हिचेठिकाणीं सिद्धिविनायकाचें व्रत करावें. या व्रताविषयीं चतुर्थी मध्यान्हकालव्यापिनी ध्यावी. दोन दिवसीं संपूर्ण मध्यान्हकालीं व्याप्ति असेल किंवा दोनहि दिवसीं मध्यान्हकालीं व्याप्ति नसेल, तर पूर्वं दिवसाची ध्यावी. दोन दिवसीं सारखी एकदेशव्याप्ति अथवा कमजास्ती एकदेशव्याप्ति अशी असेल तथापि पूर्वदिवसाचीच ध्यावी. कमी जास्त व्याप्तीचे ठिकाणीं अधिकव्यापिनी असेल तर दुसऱ्या दिवसाची ध्यावी, असें कोणी ग्रंथकार झणतात. पूर्वदिवसीं सर्वथा मध्यान्हकालीं स्पर्श नसेल आणि दुसऱ्या दिवसींच मध्यान्हकालीं स्पर्श करणारी असेल तरच दुसऱ्या दिवसाची ध्यावी. पूर्वदिवसीं एकदेश मध्यान्हव्यापिनी व दुसऱ्या दिवसीं संपूर्ण मध्यान्हव्यापिनी असीं असेल तेव्हांहि दुसऱ्या दिवसाचीच ध्यावी. याप्रमाणें अन्य मासामध्येहि निर्णय जाणावा. ही चतुर्थी रविवार व भौमवार यांचा योग असतां प्रशस्त आहे. ह्या चतुर्थीचे दिवसीं चंद्रदर्शन झालें असतां मिथ्या दोषारोप होतो, परंतु चतुर्थीमध्ये उदय पावलेल्या चंद्राचें दर्शन पंचमीमध्ये होईल व तो दिवस विनायकव्रताचा असेल तथापि दोष नाहीं. पूर्वदिवसीं सायान्हकालाला आरंभ करून राहणारी जी चतुर्थी तिचे ठिकाणीं विनायकव्रत नसेल तथापि पूर्वदिवसींच चंद्रदर्शनविषयीं दोष असें

सिद्ध होते. चतुर्थीचे ठिकाणी उदय पावलेल्या चंद्राचे दर्शन घेऊं नये, ह्या पक्षां तर बाकी राहिलेली जी दाहा बारा घटिका चतुर्थी या दिवसीहि चंद्रदर्शनाचा निषेध येईल. हल्लीं लोक तर दोहोंतून एका पक्षाचा स्वीकार करून विनायकत्रताचे दिवसीच चंद्राला पहात नाहीत, परंतु उदयकाली किंवा दर्शनकाली चतुर्थी आहे किंवा नाही हे पाहून ह्या नियमाप्रमाणे चालतात असे नाही. चंद्रदर्शन झाले तर आचा दोष जाण्याकरितां, "सिंहःप्रसेनमवधीरिसिंहो जाववता हतः ॥ सुकुमारक मारोदीस्तव शेष स्पमंतकाः ॥" ह्या भेत्ताचा जप करावा. विनायकत्रताचे ठिकाणी मृत्तिका इत्यादिकांची मूर्ति करून प्राण-प्रतिष्ठापूर्वक सोळा उपचारांनीं विनायकाची पूजा करावी, व एका मोदकाचा नैवेद्य दाखवून नंतर गंधासह एकवीस दुर्वा घेऊन मग "गणाधिपाय; उमापुत्राय, अघनाशनाय, विनायकाय, ईशपुत्राय, सर्वसिद्धिदाय, एकदंताय; इभक्त्राय, मूषकवाहनाय, कुमारगुरवे, असीं दाहा नावे आंतून एकेक नावाने दोन दोन दुर्वा समर्पण करून बाकी राहिलेली एक दुर्वा दाहा नावांचा उच्चार करून अर्पण करावी. दाहा मोदक ब्राह्मणास देऊन दाहा आपण भक्षण करावे, याप्रमाणे व्रताचा संक्षेप जाणावा.

ऋषिपंचमी.

भाद्रपदशुद्ध पंचमी, हिला ऋषिपंचमी असें ह्मणतात. ही मध्यान्हकालव्यापिनी असेल ती ध्यावी. दोन दिवसीं मध्यान्हकालव्याप्ति असेल किंवा नसेल तर पूर्वदिवसाचीच ध्यावी ह्या ऋषिपंचमीचे दिवसीं ऋषींची पूजा करून नांगरलेली नाही अशा भूमीत उत्पन्न झालेल्या शाकांचा आहार करावा. "भाद्रपद शुद्धपक्षांतील षष्ठीचे दिवसीं प्रातःस्नान, सूर्यपूजा, व पंचगव्याचे प्राशन हीं केलीं असतां अश्वमेधाच्या फलाहून अधिक फल मिळते. ही सूर्यषष्ठी समर्पनें युक्त असेल ती ध्यावी. ह्याच षष्ठीचे दिवसीं कार्तिकस्वामीचे दर्शन ध्यावे, तेणें करून ब्रह्महत्यादि पापांचा नाश होतो.

दुर्वापूजनव्रत.

भाद्रपद शुद्ध पक्षांतील जी अष्टमी तिला दुर्वाष्टमी असें ह्मणतात. ही पूर्व दिवसाची असेल ती ध्यावी. ही अष्टमी ज्येष्ठा, मूळनक्षत्र यांहीं युक्त असेल ती घेऊं नये. ज्येष्ठा मूळराहित न मिळेल तर तद्युक्तहि ध्यावी. हे दुर्वापूजनव्रत कन्यागंत रवि, अगस्त्योदय, यांचे ठिकाणीं करूं नये, व हे स्त्रियांला नित्य आहे. ह्या अष्टमीचे दिवसीं ज्येष्ठा देवीचे पूजनरूप व्रत करावयाचे तें केवळ अष्टमीचे दिवसीं किंवा केवळ ज्येष्ठा नक्षत्रीं करावे, सामध्ये दक्षिण देशांतील लोक केवळ ज्येष्ठानक्षत्राचे ठिकाणींच करितात. अनुराधानक्षत्रीं

आवाहन, ज्येष्ठानक्षत्री पूजा, आणि मूलनक्षत्री विसर्जन असे हे व्रत तीन दिवसांचे आहे. आवाहन व विसर्जन यांचे दिवसांचा निर्णय करणे तो पूजेच्या दिवसाचा निर्णय असेल या अनुगोधाने करावा. जेव्हां पूर्व दिवसी मध्यान्हकालाला आरंभ करून राहाणाऱ्या ज्येष्ठा दुसऱ्या दिवसी मध्यान्हकाली किंवा मध्यान्हकालाच्यापूर्वी समाप्त होतील, तेव्हां पूर्व दिवसीच पूजा करावी. जेव्हां पूर्वदिवसी मध्यान्हकालानंतर ज्येष्ठांला आरंभ होऊन दुसऱ्या दिवसी मध्यान्हकाली समाप्त होतील तेव्हां अष्टमीच्या योगाने पूर्वदिवसाची किंवा दुसऱ्या दिवसाची ध्यावी. दोन दिवसी अष्टमीचा योग असेल तर पूर्व दिवसाचीच ध्यावी. जेव्हां पूर्व दिवसी मध्यान्हकालास आरंभ करून किंवा मध्यान्हकाला नंतर प्राप्त होणाऱ्या ज्येष्ठा, दुसऱ्या दिवसी मध्यान्हकालानंतर अपराह्नकालाला स्पर्श करतील तेव्हां अष्टमीचा योग नसला तथापि दुसऱ्या दिवसाचीच ध्यावी.

भाद्रपदशुक्लपक्षातील एकादशीचे दिवसी किंवा द्वादशीचे दिवसी पारणा शान्त्यानंतर विष्णूचा परिवर्तनोत्सव करावा. त्याविषयी "श्रवणाच्या मध्यभागाचे ठिकाणी परिवर्तिका (एका कुशीहून दुसऱ्या कुशीस होणे) पावतो " असे वचन आहे, यास्तव श्रवणाचे तीन भग करून मध्यम भागाचा योग एकादशीचे ठिकाणी असेल तर एकादशीचे ठिकाणी करावा, द्वादशीचे दिवसी असेल तर द्वादशीचे दिवसी करावा. दोनाहे दिवसी नक्षत्र योग नसेल तर द्वादशीचे दिवसीच करावा, इत्यादिक व्यवस्था जाणावी. संध्याकाली विष्णूची पूजा करून " वामुदेव जगन्नाथ प्राप्तेयं द्वादशी तव ॥ पार्श्वेन परिवर्तस्व मुखं स्वपिहि माधव " इति मंत्रेकरून प्रार्थना करावी.

आतां श्रवणद्वादशीचे व्रत.

ज्या दिवसी दोन घटिका इत्यादिक अल्प, द्वादशीचा व श्रवणाचा योग असेल त्या दिवसी उपोषण करावे. उत्तराषाढांनी विद्ध अशा श्रवणाच्या निषेधाविषयी जीं वचने आहेत तीं निर्मूल जाणावीं. जेव्हां पूर्वदिवसी एकादशी विद्ध असून दुसऱ्या दिवसी द्वादशी शेष असेल व दोनाहे दिवसी श्रवणयोग असेल तेव्हां पूर्वदिवसी एकादशी, द्वादशी, आणि श्रवण असा जो तिघांचा योग खालाच विष्णुशृंगलयोग असे नाम आहे व तो योग आहे याकरितां पूर्वदिवसाचीच उपोषणाला ध्यावी.—याचे उदाहरणः—एकादशी १८, उत्तराषाढा १, द्वादशी २०, श्रवण १२, अथवा उदाहरणः—एकादशी १८, उत्तराषाढा २९, द्वादशी १०, श्रवण १८, या दुसऱ्या उदाहरणीं एकादशीला श्रवणाचा योग जरी नाही तथापि श्रवणयुक्त द्वादशीच्या स्पर्शमात्रानेच विष्णुशृंगलयोग होतो. हा दोनाहे प्रकारचा योग दिवसासच ग्रहण करावा, रात्री घेऊं नये, असे पुरुषार्थचिंतामणीत आहे.

रात्रीमध्ये मध्यरात्रीनंतरहि योग ग्रहण करावा, असे निर्णयसिध्दत आहे. रात्रीच्या पहिल्या ग्रहरापर्यंत तिथीचे ठिकाणी श्रवणयोग असेल तर ध्यावा, दुसऱ्या इत्यादिक ग्रहरी असल्यास घेऊ नये. एथे शेवटला पक्षच योग्य आहे असे मला वाटते. एथे विष्णुशृंगलयोगाचे ठिकाणी एकादशी व द्वादशी असीं दोन व्रतांची उपोषणे तंत्रेकरून एकादशीचे दिवसीच करून द्वादशीचे ठिकाणी, पुढे सांगावयाचा जो पारणानिर्णय आल्या अनुरोधाने पारणा करावी. जेव्हां पूर्वी सांगितलेला विष्णुशृंगल योग नसेल तेव्हां जर शुद्धाधिक द्वादशी असून दोनहि दिवसी श्रवणयोग असेल व पूर्वदिवसी उदयकाली श्रवण नसेल तेव्हां दुसऱ्या दिवसाचीच ध्यावी. जेव्हां दोन दिवसी सूर्योदयकाली द्वादशीचे ठिकाणी श्रवणयोग असेल तेव्हांपूर्वदिवसाचीच ध्यावी. विद्वाधिक द्वादशी असेल तथापि दुसऱ्या दिवसीच सूर्योदयकाली किंवा सूर्योदयानंतर श्रवणयोग असेल तर दुसऱ्या दिवसाचीच ध्यावी, हे निर्विवाद आहे. दोन दिवसी श्रवणयोग असेल व विष्णुशृंगल योग असेल तर पूर्वदिवसाची ध्यावी. तसे नसेल तर दुसऱ्या दिवसाची ध्यावी, असे जाणावे. याप्रमाणे जेव्हां एकादशी आणि श्रवणद्वादशी या उभयतांची एकदाच उपोषणे प्राप्त होतील तेव्हां दोनहि व्रते निस आहेत यास्तव सशक्ताने दोनहि उपोषणे करावी. दोनहि व्रतांची देवता एक आहे याकरिता पारणेचा लोप झाला असता दोष नाही. दोन उपोषणे करण्याला जो अशक्त असेल त्याने एकादशीव्रताचा संकल्प करण्याच्या पूर्वी आपल्या सामर्थ्याचा निश्चय करून एकादशीचे दिवसी फलादिकांचा आहार करून द्वादशीचे दिवसी निरशन उपोषण करावे. “श्रवणनक्षत्राने युक्त अशा द्वादशीचे दिवसी जो मनुष्य उपोषण करितो त्याला एकादशीसंबंधी पुण्य प्राप्त होते, यांत संशय नाही” असे नारदाचे वचन आहे यास्तव एकादशीव्रताचा लोप होत नाही. आणि “जर श्रवणाने युक्त द्वादशी असेल तर त्या दिवसी वैष्णव व स्मार्त या सर्वांनी उपोषण करावे व एकादशीचा त्याग करावा” असे माधवाचेहि वचन आहे. या माधवाच्या वचनांत ‘एकादशीचा त्याग’ असे पद आहे ते फलाहाराचा बोध करिते, भोजनाचा बोध करित नाही. दोन उपोषणे करण्याची शक्ति आहे अशा भ्रमाने एकादशीव्रताचा संकल्प करील व संकल्पानंतर दुसरे उपोषण करण्याचे सामर्थ्य नाही असे निश्चित वाटेल तर त्याने एकादशीचे दिवसी उपोषण करून द्वादशीचे दिवसी विष्णुपूजन करून पारणा करावी. एथे व्रताचे अंगभूत पूजन करून उपवासाविषयी अशक्त असेल त्याने, “उपवासप्रतिनिधिरूपं विष्णुपूजनं करिष्ये” असा संकल्प करून पुनः पूजा करावी. हा

द्वादशीचे दिवसी श्रवणाचा योग नसेल आणि एकादशीचे दिवसी श्रवणाचा योग असेल तर एकादशीचे दिवसीच श्रवणद्वादशीचें व्रत करावें. विद्वैकादशीचे दिवसी श्रवणयोग असेल तर ज्यांचें या दिवसी एकादशीव्रत येईल त्यांची तंत्रेकरून दोन उपोषणांची सिद्धि होते. श्रवणद्वादशीव्रत ग्रहण केलेंले असे जे ज्ञानीं दोन दिवस उपोषणें करावीं. दोन उपोषणांविषयीं अशक्त असतील ज्ञानीं पूर्वदिवसीं फलाहार, व दुसऱ्या दिवसीं निरशन करावें, असें मला कळतें.

आतां या व्रताची पारणा.

द्वादशी व श्रवण या दोहोंच्या अंतीं पारणा करावी, हा मुख्य पक्ष. दोहोंतून कोणत्याहि एकाच्या अंतीं पारणा करावी, हा गौण पक्ष. त्यामध्ये विष्णुशृंगल योग नसेल तर त्रयोदशीचे दिवसीं दोहोंच्या अंतीं पारणा करावी. विष्णुशृंगल योग असेल तर पूर्व दिवसीं एकतंत्रानें ज्यानें दोन उपोषणें केलीं असतील, आणि दुसऱ्या दिवसीं श्रवणनक्षत्रापेक्षां द्वादशी अधिक असेल तर श्रवणाचें उल्लंघन करून द्वादशीचे ठिकाणीं पारणा करावी. जर द्वादशीपेक्षां पारणेच्या दिवसीं श्रवण अधिक असतील तर एकादशीव्रताच्या पारणेचे ठिकाणीं द्वादशीचें उल्लंघन झालें असतां दोष होय असें वचन आहे याकरितां द्वादशीमध्येच पारणा करावी, दोहोंतून एकाचा अंत झाला पाहिजे असें नाहीं. कदाचित् संभव असेल तर वीस घटिकांपासून चाळीस घटिकांपर्यंत तो श्रवणाचा मध्यभाग तो टाकून पारणा करावी. याविषयींचें उदाहरण;—एकादशी ३०, उत्तराषाढा २९, द्वादशी २९, श्रवण २९, या उदाहरणीं पूर्व दिवसीं तंत्रे करून दोन उपोषणें करून दुसऱ्या दिवसीं श्रवणाच्या मध्यभागांतील बाकी राहिलेल्या नऊ घटिका टाकून द्वादशीचे ठिकाणीं, शिवटचा असा वीस घटिका नो श्रवणभाग याचे ठिकाणीं पारणा करावी. याप्रमाणें पूर्वीं सांगितलेल्या उदाहरणींच एकादशी दहाघटिका, द्वादशी आठ घटिका, किंवा द्वादशी पंधरा घटिका, श्रवण चाळीस घटिका असें असेल तर श्रवणाचा मध्यभाग टाकला असतां द्वादशीचें उल्लंघन होतें, तेव्हां संगवकालें टाकून सहा घटिकांपर्यंत, किंवा सातवा मुहूर्त इत्यादिक कालीं श्रवणनक्षत्राच्या मध्यभागांतच भोजन करावें. या मध्यम भागाचा त्याग करणें तो भाद्रपदांतील श्रवण द्वादशी व्रताविषयींच करावा. माघ, फाल्गुन मासांतील कृष्णपक्षसंबंधी नीं श्रवणद्वादशीव्रतें त्यांचे पारणेचे ठिकाणीं हा त्याग करूं नये. कारण, इतर मासांतील जें श्रवण नक्षत्र त्याच्या भागाचे ठिकाणीं विष्णूचें परिवर्तन नाहीं. जे श्रवणाचा मध्यभाग मात्र वर्ज्य केव्हां

निषेध पाळण्यासारखे मानून विष्णुशृंगल योग नसला तरीही श्रवणाचा मध्यभाग मात्र टाकून भोजन करितात ते, निस जे श्रवणद्वादशीत त्यांच्या माहात्म्याविषयी अज्ञानी या करितां श्रांतच होत. हा सर्वही निर्णय अन्यमासांतील ज्या श्रवणद्वादशी सांचे व्रताचे ठिकाणीहि जाणावा. श्रवणद्वादशीव्रताचे दिवसी दोन नद्यांचा संगम असेल तेथे स्नान करून कलशावर जनार्दननामक विष्णूचें पूजन करून वस्त्र, यज्ञोपवीत, उपानह, छत्री इत्यादिक अर्पण करून उपोषण करावें. नंतर पारणेच्या दिवसी दहिभातानें युक्त, वस्त्रानें वेष्टित केले ला, आणि उदकानें पूर्ण अशा कलशाचें दान करावें. तसेंच परिवारासह पूजा केलेला असी जी विष्णुप्रतिमा तिचेहि छत्री इत्यादिक उपचारांसहित दान करावें. दानाचा मंत्रः—
 “नमो नमस्ते गोविंद बुधश्रवणसंज्ञक ॥ अधौघसंक्षयं कृत्वा सर्वसौख्यप्रदो भव.”

आतां वामनजयंती.

भाद्रपद शुद्ध पक्षांतील श्रवणयुक्त द्वादशीचे दिवसी मध्यान्हकाली वामनाचा अवतार झाला, यास्तव मध्यान्हकालव्यापिनी असी द्वादशी मध्यान्हकाली किंवा साहून दुसऱ्या काली श्रवणयुक्त असेल ती घ्यावी. दोन दिवसी श्रवणाचा योग असेल तर पूर्वदिवसाचीच घ्यावी. सर्वथा द्वादशीचे दिवसी श्रवणयोग नसेल आणि एकादशीचे दिवसी श्रवणयोग असेल तर मध्यान्हकालव्यापिनी असी जरी द्वादशी आहे तथापि ती टाकून एकादशीचे ठिकाणीच व्रत करावें. शुद्धएकादशीचे ठिकाणी श्रवणयोग नसेल तर दशमीने विद्ध जी श्रवणयुक्त एकादशी तिचे ठिकाणी करावें. जेव्हां पूर्वदिवसाचीच मध्यान्हकालव्यापिनी असी द्वादशी असेल व दुसऱ्या दिवशी मध्यान्हकालाहून अन्यत्रकाली श्रवणयुक्त असेल तेव्हां पूर्वदिवसाचीच घ्यावी. दोनहि तिथींचे ठिकाणी श्रवणयोग नसेल तर मध्यान्हकालव्यापिनी द्वादशीचे ठिकाणीच व्रत करावें. दोन दिवसी मध्यान्हकालव्यापिनी असेल किंवा दोनहि दिवसी नसेल तर एकादशीने युक्त असेल तीच घ्यावी. पारणा करणे ती पूर्वी सांगितल्या रीतीने दोहोंच्या अंती किंवा दोहोंतून एकाच्या अंती करावी. ह्या व्रताचे ठिकाणी मध्यान्हकाली नदीचा संगम असेल तेथे स्नान करून सुवर्णमय वामनाचें पूजन करून सुवर्णपात्रानें अर्घ्य द्यावें. पूजेचा मंत्र—“देवेश्वराय देवाय देवसंभूतिकारिणे ॥ प्रभवे सर्वदेवानां वामनाय नमोनमः” ॥ यानंतर अर्घ्याचा मंत्र—“नमस्ते पद्मनाभाय नमस्ते जलशायिने तुभ्यमर्घ्यं प्रयच्छामि बालवामनरूपिणे ॥ नमः शार्ङ्गधनुर्वाणपाणये वामनाय ॥ यत्नभुक्फलदात्रेच वामनाय नमोनमः” ॥ याप्रमाणे अर्घ्य देऊन नंतर दुसऱ्या दिवसी ब्राह्मणाला परिवारासह वामनाचें दान करावें. दानाचा मंत्र—“वामनः

प्रतिगृह्णाति वामनोऽहं ददामि ते ॥ वामनं सर्वतोभद्रं द्विजाय प्रतिपादये. ” याप्रमाणे दान केल्यावर द्याच द्वादशीचे ठिकाणी रात्री देवपूजा करावी. रात्री पूजेचा संभव नसेल तर दिवसाचीच करावी. पूजा झाल्यानंतर दधिव्रत निवेदन करून दधि दान करावे व दुग्धव्रताचा संकल्प करावा. द्या पयोव्रताचे ठिकाणी दुधा पासून होणारे जे क्षीर इत्यादिक पदार्थ ते व दुधामध्ये शिजविलेले अन्न हीं वर्ज्य करावीं. दुधापासून होणारे दही इत्यादिक वर्ज्य करूं नये. याप्रमाणे दधिव्रताचे ठिकाणी ताक इत्यादिक वर्ज्य करूं नये. प्रसूत झालेल्या गाईंचे दहा दिवसांमधील दूध, आणि संधिनी इत्यादिक गाईंचे दूध यांचा जेथे निषेध सांगितला तेथे दुधापासून होणारीं दही, ताक इत्यादिक सर्व वर्ज्य करावीं.

आतां भाद्रपदशुद्ध चतुर्दशीचे दिवसीं अनंतव्रत करा- वयाचें तें सांगतां.

भाद्रपदशुद्ध चतुर्दशीचे दिवसीं अनंतव्रत करावे. त्या व्रताविषयीं सूर्योदयकालीं सहा घटिकाव्यापिनी चतुर्दशी असेल ती ध्यावी, हा मुख्य पक्ष. सहा घटिका नसेल तर चार घटिका ध्यावी, हा गौण पक्ष. चार घटिकांहून कमी असेल तर पूर्वदिवसाचीच ध्यावी. दोन दिवसीं सूर्योदयव्याप्ति असेल तर पूर्वदिवसीं पूर्णव्याप्ति आहे याकरितां पूर्वदिवसाचीच ध्यावी. द्या व्रताविषयीं पूर्वाह्नकाल हा मुख्य कर्मकाल होय. तो न मिळेल तर मध्याह्नकालहि ध्यावा. द्या व्रताचे ठिकाणीं सुवर्णप्रतिमेचंठिकाणीं, किंवा चवदा ग्रंथींनीं युक्त जो दौरेक त्याचे ठिकाणीं अनंताची पूजा करणे इत्यादिक पूजाविधि, व त्याचा उद्यापनविधि हे कौस्तुभादि ग्रंथीं पहावे. पूजा केलेल्या दोरकाचा नाश होईल तर गुरूला वरून त्याचे आज्ञेनें यथाशक्ति कृच्छ्रादिक प्रायश्चित्त करून बारा अक्षरांचा जो वासुदेवमंत्र तेणेंकरून घृतानें १०८ आहुति हवन करून केशवादिक जे चोवीस नाम मंत्र त्यांहींकरून एकेकवेळ हवन करून होमशेष समाप्त करून नवीन दोरकाचीं पूर्वाप्रमाणें पूजादिक करावीं.

अगस्त्यपूजन.

सूर्याची नृषभसंक्रांति झाल्यानंतर सातव्या दिवसीं अगस्त्य अस्ताला पावतो, व सिंहसंक्रांति झाल्यानंतर एकविसाव्या दिवसीं अगस्त्य उदय पावतो. कन्या संक्रांतीच्या पूर्वी सात दिवसांमध्ये अगस्त्याचें पूजन व लाला अर्घ्यप्रदान इत्यादिक करावे, भाद्रपद पौर्णि

मेचे दिवसीं प्रपितामहापासून पुढचे तीन जे पिता, पितामह, प्रपितामह, सपत्नीक व वसु-
रुद्रादिस्वरूप. तसेच मातामह, मातुःपितामह, मातुःप्रपितामह असे सपत्नीक यांच्या
उद्देशेकरून श्राद्ध करावे. हे श्राद्ध पार्वणरूप आहे याकरितां अपराण्हकालीं पुरुरा
ईवदेवयुक्त असे सपिंडक करावे. कोणी ग्रंथकार तर प्रपितामहाची जी वयी तिच्याच
उद्देशेकरून नांदीश्राद्धविधीनें सत्यवसुदेवयुक्त श्राद्ध करावे, व ह्या श्राद्धाचेठिकाणीं माता
महादिकांचा उच्चार करूं नये, असें ह्मणतात. हे प्रोष्ठपदी श्राद्ध, सरुत् महालयपक्षाचे
ठिकाणीं आणि सर्व कृष्णपक्षव्यापि महालयपक्षाचे ठिकाणीं आवश्यक आहे. पंचमी
इत्यादिक जे महालयपक्ष त्यांचे ठिकाणीं कृताकृत असें आहे.

आतां महालयाचा निर्णय.

द्रव्यादिकानें जो समर्थ असेल त्यानें भाद्रपदकृष्ण पक्षामध्ये प्रतिपदेला आरंभ करून
अमावास्येपर्यंत, तिथीची वृद्धि असेल तर सोळा महालय करावे. वृद्धि व क्षय नसतील
तर पंधराच महालय करावे. तिथीचा क्षय असे तर चवदाच करावे. अशक्त असेल
त्यानें तर पंचमीपासून अमावास्येपर्यंत, षष्ठीपासून अमावास्येपर्यंत, अथवा अष्टमीपासून,
किंवा दशमीपासून, व एकादशीपासून अमावास्येपर्यंत तिथींचे ठिकाणीं करावे. याहि
पक्षांविषयीं असमर्थ असेल त्यानें निषिद्ध नाहीं अशा कोणत्याहि एक दिवसीं महा-
लय करावा. प्रतिपदेपासून अमावास्येपर्यंत जो पक्ष सांगितला त्यामध्ये चतुर्दशी
वर्ज्य करूं नये. पंचमीपासून अमावास्येपर्यंत इत्यादिक जे पांच पक्ष सांगितले
त्यांमध्ये चतुर्दशी वर्ज्य करून अन्य तिथींचे ठिकाणीं महालय करावे. एकवार जो
महालय करणें त्या पक्षांहि चतुर्दशी वर्ज्य करावी. एकवार जो महालय करणें त्या
विषयीं प्रतिपदा, षष्ठी, एकादशी, चतुर्दशी, शुक्रवार, जन्मनक्षत्र, जन्मनक्षत्रापासून
दहावे व एकुणिसावे नक्षत्र, रोहिणी, मघा, रेवती, या प्रमाणे वर्ज्य करावी. क्वचित्
ग्रंथी त्रयोदशी, सप्तमी, रविवार, आणि भौमवार हेहि वर्ज्य सांगितले आहेत. “पंधरा
दिवस पर्यंत महालय करण्याविषयीं जो अशक्त असेल त्यानें कोणत्या एका निषिद्ध दिव-
सांहि यथाविधि पिंडदान करावे.” इत्यादिक वचनें आहेत यास्तव पिस्याचे मृततिथींचे
दिवसीं एकवार महालय करणें असेल तर त्याविषयीं प्रतिपदा इत्यादिक निषेध नाहीं.
मृततिथींचे दिवसीं असंभव असेल तर निषिद्ध जे तिथि इत्यादिक दिवस ते वर्ज्य करून
अन्य दिवसीं महालय करावा. त्या मध्येहि द्वादशी, अमावास्या, अष्टमी, भरणी, द्यति-
पात या दिवसीं मृत्तिथि नसली तथापि सरुतमहालयाचे ठिकाणीं कोणतीहि तिथि

इत्यादिकांचा निषेध नाही. सन्यासी जे सांचा महालय अपराण्हकालव्यापिनी जो दशा तिचे ठिकाणीच करावा, दुसऱ्या तिथीला करूं नये. जो चतुर्दशीचे दिवस मृत झाला साचाहि महालय चतुर्दशीचे दिवसीं करूं नये. कारण "शस्त्राने जो झाला साचेच श्राद्ध चतुर्दशीचे दिवसीं करावे" असा जो सर्वांशी बालेष्ट नियम करून प्रतिवार्षिक श्राद्धावाचून इतर श्राद्धांचा निषेध आहे. या प्रमाणे जो पौर्णिमेचे दिवसीं मृत झाला साचाहि महालय पौर्णिमेचे दिवसीं करूं नये. कारण कृष्णपक्ष नाही या कारणाने पौर्णिमेचे ठिकाणी महालयाची प्राप्ति नाही, व साकित् चतुर्दशीचे दिवसीं मृत झालेला व पौर्णिमेचे दिवसीं मृत झालेला, यांचे महालय द्वादश अमावास्या इत्यादिक तिथींचे दिवसीं करावे. ह्या महालयाचे ठिकाणी कन्यागत हा प्राशस्त्रसंपादक आहे, निमित्तभूत नाही. कारण "पूर्वी, मध्ये, अथवा अंती अज्या कोणत्याहि दिवसीं कन्यागत सूर्य होईल तो सर्व पक्ष षोडश श्राद्धाला पूज्य होतो इत्यादिक स्मृति आहे. अमावास्येपर्यंत तिथीचे ठिकाणी असंभव असेल तर आश्वि शुक्ल पंचमीपर्यंत जी कोणती तिथि मिळेल त्या तिथीचे ठिकाणी महालय करावा. आश्विनशुक्ल पंचमीपर्यंत केला नसेल तर ज्यावत्कालपर्यंत वृश्चिक संक्रांति होईल तात्कालपर्यंत, व्यतीपात, द्वादशी इत्यादिक पर्वणीचे दिवसीं करावा. मृत दिवसीं आणि महालयाचे दिवसीं श्राद्ध पकालेकरूनच करावे, अमानाने करूं नये. महालय, गया श्राद्ध आणि मातापितरांचा मृतदिवस ह्यांचे ठिकाणी, विवाह केला असेल तथापि स्नान यथाविधि पिंडदान करावे

पक्षश्राद्धाविषयी.

प्रतिपदेपासून अमावास्येपर्यंत जो प्रत्ययी महालय करावयाचा त्याचे ठिकाणी पितृगण ध्यावयाचे ते,—पिता इत्यादि तीन त्रयी (पितृत्रयी, मात्रतृयी, आणि मातामहत्रयी सपत्नीक), पत्नी इत्यादिक एकोद्विष्ट पितृगण (पत्नी, पुत्रादिक, पितृव्य मातुल, भ्राता; हे सपत्नीक; पितृभगिनी, आत्मभगिनी ह्या सभर्तृक, ससुत; श्वशुर; गुरु;)यांसह सर्वपितरांच्या उद्देशेकरून तो करावा. दुसरा पक्ष— सपत्नीक असी पितृत्रयी, आणि सपत्नीक असी मातामहत्रयी अशा सहा देवतांच्या मात्र उद्देशेकरून करावा. अथवा तिसरा पक्ष— पितृत्रयी (सपत्नीक), आणि मातामहत्रयी (सपत्नीक) ह्या सहा देवता, आणि स्त्री इत्यादिक एकोद्विष्टगण यांच्या उद्देशेकरून प्रत्यही महालय करावा. याप्रमाणे

तीन पक्ष सांगितले. याप्रमाणे पंचमी इत्यादिक जे पक्ष त्यांचे ठिकाणीहि पूर्वाप्रमाणेच घ्यावे. एकवार महालय करणे असेल तर सर्व पितरांच्या उद्देशेकरून महालय करावा. ह्या महालयाचे ठिकाणी देवतांचा संकल्प—“पितृ, पितामह, प्रपितामहानां, मातृ तत्सपत्नी पितामही तत्सपत्नी प्रपितामही तत्सपत्नीनां यद्वा ऽस्मत्सापत्नमातुरिति पृथंगुद्देशः॥ मातामह, मातृपितामह, मातृप्रपितामहानां सपत्नीकानां यथानामगोत्राणां वस्वादिरूपाणां पार्वणाविधिना पत्न्याः पुत्रस्य कन्यायाः पितृव्यस्य मातुलस्य भ्रातुः पितृष्वसुमातृष्वसुरात्म-भगिन्याः पितृव्यपुत्रस्य जामातुर्भगिनेयस्य श्वशुरस्य :श्वश्राः आचार्यस्पोषाध्यायस्य गुरोः सख्युः शिष्यस्य एतेषां यथानामगोत्ररूपाणां पुरुषविषये सपत्नीकानां स्त्रीविषये सभर्तृक-सापत्नानामेकोद्दिष्टविधिना महालयापरपक्षश्राद्धमथवा सरूनमहालयापरपक्षश्राद्धं सदैवं सद्यः करिष्ये.” ह्या पूर्वी सांगितलेल्या पितरांमध्ये जे कोणी जिवंत असतील त्यांना सोडून इतरांचा उच्चार करावा. मातामहादिक जे त्यांच्या स्त्रिया जिवंत असतील तर “सपत्नीक” ह्यांचा आणि पति जिवंत असतील तर स्त्रियांचे ठिकाणी ‘सभर्तृक’ ह्या ठिकांचा उच्चार करूं नये. ‘महालय, गयाश्राद्ध, नांदीश्राद्ध आणि अन्वष्टकाश्राद्ध यांचे ठिकाणी नऊ देवतांचे (पितृत्रयी, मातृत्रयी, आणि मातामहत्रयी सपत्नीक यांचे) उद्देशेकरून श्राद्ध करावे. इतर श्राद्धे सहा देवतांच्या (पितृत्रयी सपत्नीक व मातामहत्रयी सपत्नीक यांच्या) उद्देशेकरून करावे, असे सांगतात. अन्वष्टका, नांदीश्राद्ध प्रतिसाव-त्सरिक श्राद्ध, महालय, आणि गयाश्राद्ध इतक्यांचे ठिकाणी, सपिंडी करण्याच्या पूर्वी मातेचे श्राद्ध वेगळे करावे, अन्य ठिकाणी पतीसहवर्तमान करावे, इत्यादिक स्मृतीच्या अनुरोधाने तीनच पार्वणे घेण्याविषयी सांगितले आहे. कोणी ग्रंथकार तर, मातामहत्रयी (आपल्या मातेची —माता, इत्यादिकत्रयी) पृथक् उच्चारून द्वादश, देवतात्मक चार पार्वणे सांगतात. ह्याच देवता (पितृगण) गयाश्राद्ध, तीर्थ श्राद्ध, आणि निखतर्पण, यांचे ठिकाणी घ्याव्या. महालयाचे ठिकाणी धरिलोचनसंज्ञक विश्वेदेव घ्यावे. ह्या महालयाचे ठिकाणी संभव असेल तर देवस्थानी दोन, आणि प्रत्येक त्रयीचे ठिकाणी तीन तीन मिळून तीन त्रयींचे ठिकाणी नऊ, पत्न्यादिक जो एकोद्दिष्टगण त्याचे ठिकाणी दरएक देवतास्थानी एकेक, या प्रमाणे ब्राह्मण सांगावे. इतके सांगण्याला शक्ति नसेल तर देवस्थानी एक, दरएक त्रयीचे ठिकाणी एक, याप्रमाणे तीन त्रयींचे ठिकाणी तीन, आणि सर्व एकोद्दिष्टगणस्थानी एक, याप्रमाणे सांगावे. देवस्थानी दोन ब्राह्मण सांगितले असतील तर दरएक त्रयीचे ठिकाणी तीन तीन सांगावे

देवस्थानीं दोन, आणि दरएक त्रयीचेठिकाणीं एक, अथवा दरएक त्रयीचे ठिकाणीं तीन तीन आणि देवस्थानीं एक, असें विषममान करूं नये. याप्रमाणें सर्वत्र अमावास्या इत्यादिक श्राद्धांचे ठिकाणींही जाणावें. अति असामर्थ्य असेल तर दोन त्रयींचे ठिकाणीं एकहि ब्राह्मण योजावा. महालयाचे ठिकाणीं शेवटीं महाविष्णुस्थानीं अवश्य ब्राह्मण सांगावा, असा विशेष कौस्तुभांत सांगितला आहे. ज्याची माता जिवंत असेल त्याने सापत्न मातेचे एकोद्दिष्ट श्राद्ध करावें. पार्वणश्राद्ध करूं नये. ज्याच्या सापत्नमाता बहुत असतील त्यानें सर्व मातांच्या उद्देशेंकरून ब्राह्मण एकच सांगावा व पिंडहि एकच द्यावा, अर्घ्यपात्रें माल पृथक् पृथक् करावीं. अथवा आपल्या जननीसहवर्तमान अनेक माता असतील तर आपल्या जननीसहवर्तमान सर्व मातांच्या उद्देशेंकरून एक ब्राह्मण, एक पिंड, एक अर्घ्य, याप्रमाणें पार्वणश्राद्धच करावें, सापत्न मातांचें पृथक् एकोद्दिष्ट करूं नये. अथवा सर्व सापत्न मातांचें पृथक्च एकोद्दिष्ट करावें. महालयाचे ठिकाणीं त्रयीकरितां अग्नौकरण अवश्य आहे, एकोद्दिष्टगणाकरितां कृताकृत (करावें न करावें) असें आहे. करणपक्षीं एकोद्दिष्टगणाकरितां अग्नौकरणाचें अन्न निराळ्या पात्रावर घ्यावें. महालयाचे ठिकाणीं सर्व त्रयीकरितां, आणि एकोद्दिष्टाकरितां एकवेळ छिन्न केलेला असा दर्भ एकच घ्यावा. दर्शादिकाचे ठिकाणीं तर दरएक त्रयीला दर्भ निर निराळाच घ्यावा. बाकीचा श्राद्धप्रयोग, आणि बहुत माता असतां अभ्यजनादिकाविषयीं मंत्राचा ऊह श्राद्धसागरीं व आपापल्या शाखांचे सांगितलेल्या प्रयोगग्रंथीं जाणावा. सकृन्महालयाचे ठिकाणीं श्राद्धाचें अंगभूत जें तिलतर्पण तें दुसऱ्या दिवसांचे सर्व पितरांच्या उद्देशेंकरून प्रातःसंध्येच्या पूर्वीच, किंवा प्रातःसंध्येचा नंतर ब्रह्मयज्ञांग तर्पणा हून निराळेंच करावें. प्रतिपदादिक आणि पंचम्यादिक जे पूर्वी सांगितलेले पक्ष त्यांचे ठिकाणीं ब्राह्मणांचें विसर्जन शाल्यानंतरच श्राद्धामध्ये पूजा केलेल्या पितरांच्या उद्देशेंकरून तर्पण करावें. स्त्री रजस्वला असतां सकृन्महालय करूं नये. कारण, सकृन्महालयाला दुसरे काल आहेत. अमावास्येचे दिवसीं स्त्री रजस्वला झाली असेल तर आश्विनशुक्ल पंचमीपर्यंत गौणकार्त्वी महालय करावा. प्रतिपदादिक जे इतर पक्ष त्यांचे ठिकाणीं प्रारंभदिवसीं पाकाला आरंभ होण्याच्या पूर्वी स्त्री रजस्वला होईल तर एकाच्या पुढचा दुसरा अशा पक्षांचा स्वीकार करावा. पाकाला आरंभ शाल्यानंतर रजस्वला होईल तर तिला दुसऱ्या घरांत ठेवून महालय करावा. याप्रमाणें विधवेनें कर्तव्य जें श्राद्ध त्याविषयींही जाणावें. ह्या महालयाचे ठिकाणीं अपुत्र असी विधवा

श्राद्ध करणारी असेल तर तिणें, "मम भर्तृतात्पितृपितामहानां, भर्तृमातृपितामहीप्रपितामहीनां, मम पितृपितामहप्रपितामहानां, मम मातृपितामहीप्रपितामहीनां मम मातामहमातृपितामहमातृप्रपितामहानां, मम मातामहीमातृपितामहीमातृप्रपितामहीनां तृण्यर्थं सकृन्महालयपरपक्षश्राद्धं करिष्ये," असा आपण संकल्प करून ब्राह्मणाकडून अग्नौकरणादिसहित सर्व अविच्छिन्न प्रयोग करावा. ब्राह्मणानें, "अमुकनाभ्या यजमानाया भर्तृ तत्पितृपितामह," इत्यादिक उच्चार करून प्रयोग करावा. सामर्थ्य नसेल तर भर्तृव्रयी, स्वपितृव्रयी, स्वमातृव्रयी, स्वमातामहव्रयी सपत्नीक, याप्रमाणें चार व्रयींच्या उद्देशेकरून महालय करावा. अति सामर्थ्य नसेल तर स्वभर्तृव्रयी, स्वपितृव्रयी, याप्रमाणें दोन व्रयींच्या उद्देशेकरून करावा.

"पिता संन्यासी, किंवा पतित असेल तर नांदीश्राद्ध आणि तीर्थश्राद्ध यांचे ठिकाणी ज्या पितृदेवतांला पिता देतो त्या देवतांला पुत्रानें द्यावें." "मुंडन, पिंडदान, मृताचे कर्म हीं सर्व जीवत्पितृक व गर्भिणीपति यांनीं न करावीं," इत्यादिक प्रमाणें आहेत, या स्तव पिता संन्यासी, किंवा पातियादिकानें युक्त असेल तर, जिवंत आहे पिता ज्याचा अशा पुत्रानेंहि पित्याचे जे पिता इत्यादिक सर्व पितर यांच्या उद्देशेकरून महालय पिंडदानावांचून सांकल्पविधि करून करावा. जर पिंडदान इत्यादिक विस्तार करण्याला शक्ति नसेल तर यानेंहि सांकल्पविधि करावा. सांकल्पविधीचे ठिकाणीं अर्घ्यदान, समंवक आवाहन, अग्नौकरण, पिंडदान, विकिरदान, "स्वधां वाचयिष्ये ओं स्वधोऽभ्यतां," इत्यादि स्वधावाचनप्रयोग, इतकीं वर्ज्य करावीं. बहुत ब्राह्मण न मिळतील तर देवस्थानीं शाल-ग्रामादिक देवमूर्तीची स्थापना करून श्राद्ध करावें. एकहिं ब्राह्मण न मिळेल तर दर्भांचा बट्ट करून श्राद्ध करावें. जर पिता व माता हीं मृत झालीं असतील तर प्रथम वर्षीं महालय करावा किंवा न करावा. मलमासाचे ठिकाणीं महालय करूं नये. अपरपक्षां प्रति-सांवत्सरिक श्राद्ध प्राप्त झालें असेल तर मृततिथीचे ठिकाणीं प्रतिसांवत्सरिक श्राद्ध करून दुसऱ्या तिथीचे ठिकाणीं सकृन्महालय करावा. प्रतिपदा इत्यादिक अमावस्येपर्यंत इत्यादिक जे पक्ष सांमर्थ्ये मृततिथीचे ठिकाणीं प्रतिसांवत्सरिक करून दुसऱ्या पाकानें महालय करावा. जर अमावास्येच्या दिवसीं प्रतिसांवत्सरिक आणि सकृन्महालय अशीं दोन प्राप्त होतील तर पूर्वीं प्रतिसांवत्सरिक करून नंतर महालय करावा. व सांनंतर दर्शश्राद्ध करावें, याप्रमाणें तीन पाकभेदे करून करावीं. केवल महालय प्राप्त होईल तर पूर्वीं महालय, नंतर दर्श करावा. मृततिथीचे दिवसीं जो सकृन्महालय करणें याविषयीं तिथिनिर्णय, अप-गण्ट्कालीं जी व्याप्ति असेल तदनुसार दर्शाप्रमाणें घ्यावा असें वाटतें. या अपरपक्षां भर-

णीनक्षत्राचे दिवसीं श्राद्ध केल्याने गयेचे ठिकाणीं श्राद्ध केल्याचे फल मिळते. तें भरणी श्राद्ध पिंडरहित, षट्दैवत (पितृत्रयी सपत्नीक व मातामहत्रयी सपत्नीक) सांकरूपविधीने करावें. त्या भरणीश्राद्धाला देव धूलोचन किंवा पुष्करवार्ध्व ध्यावे. भरणीश्राद्ध हें काव्य आहे याकरिता गयाश्राद्धाच्या फलाची इच्छा करणारा यानें प्रतिवर्षीं करावें. पिता इत्यादिकांचे मरणानंतर प्रथम वर्षींच कितीएक लोक भरणीश्राद्ध करितात, दुसऱ्या इत्यादिक वर्षीं करित नाहीं, याविषयीं मूळविचार करावा. मला तर, "जावत्कालपर्यंत वर्ष पुरें हेई तावत्काल पर्यंत दैवकर्म व पितृकर्म हीं करूं नये," इत्यादिक वचनेंकरून दर्शादिक सर्व श्राद्धांचा निषेध सांगितला यास्तववर्ष पुरें झाल्या नंतरच पितृत्वप्राप्ति होते, याकरितां दुसऱ्या इत्यादिक वर्षींच करण्याला योग्य आहे असें वाटते. पिता, माता यांवांचूनहि जो जो कोणी मृत होतो त्याचें त्याचें प्रथम वर्षीं जें भरणीश्राद्ध करितात, याविषयींहि कोठें मूळ दिसत नाहीं. गयाश्राद्धाचें फळ मिळण्याकरितां केवळ लोकाचाराला अनुसरून करणे असेल तर मृतादिक जी एक त्रयी तिच्याच उद्देशेकरून देवांसहवर्तमान करावें. ह्याचे ठिकाणीं पिंडदान करण्याचा जो आचार आहे तोहि विचारणीय आहे.

ह्या अपरपक्षामध्ये सप्तमी, अष्टमी, आणि नवमी या तीन दिवसीं, "माघ्यावर्षश्राद्धं कर्तुं पूर्वेषुःश्राद्धं करिष्ये, माघ्यावर्षश्राद्धं करिष्ये, अश्वयुज्यश्राद्धं करिष्ये, असा क्रमकरून संकल्प करून सर्वे अष्टकाश्राद्धांचा विधि आश्वलायनांनीं करावा. हें अष्टकाविकृति रूप श्राद्ध आश्वलायनांनीं एकाष्टकाकरण पक्षांचे ठिकाणींहि करावें. इतरशास्त्री जे त्यांनीं तर अष्टकारूपच करावें. पंचाष्टकाकरणपक्षां, "अष्टकाश्राद्धं करिष्ये," असा संकल्प करून करावें. एकाष्टकापक्षां तर करूं नये. नवमीचे दिवसीं अश्वयुज्यश्राद्ध नवदैवत (पितृत्रयी, मातृत्रयी, मातामहत्रयी, सपत्नीक) सर्वशास्त्री जे त्यांनीं अष्टमीचे दिवसीं अष्टकाश्राद्ध न करण्यापक्षांहि गृह्यामींचे ठिकाणीं जसा विधी सांगितला आहे तदनुसार करावें; कारण, ह्या नवमीचे दिवसीं अश्वयुज्यश्राद्ध हें मुख्य आहे. ह्यांचा गृह्यामि सिद्ध नसेल त्यांनीं तर, ज्यांची माता पूर्वीं मृत झाली असेल व पिता पश्चात् मृत झाला असेल त्यांनीं ह्यणजे मृतमातापितृकांनीं पाणिहोमादिविधि करून नवदैवत्य श्राद्ध करावें. पिता निवंत असून माता मृत झालेली असा व मौंजी न झालेला त्यानेंहि मातृत्रयीच्या मान उद्देशेकरून एकपार्वणरूप पुष्करवार्ध्व देवांशीं सहित सपिंडक श्राद्ध करावें. आपली माता निवंत असेल तर मृत जी सापन्न माता त्या त्रयीच्या उद्देशेकरून करावें. स्वकीय माता व सापन्न माता ह्या दोघी मृत झाल्या असतील तर द्विवचनाच्या प्रयोगानें, आणि सापन्न माता बहुत असतां मातेसह बहुवचनाच्या प्रयोगानें एका ब्राह्मणाचे ठिकाणीं एकच सण, व अर्घ्य, पिंड हेहि एकेकच द्यावे. पितामही व प्रपिता,

मही ह्या दोहोंचे ठिकाणी दोन ब्राह्मण व दोन पिंड, असें हें पार्वण आवश्यक आहे. कोणी ग्रंथकार, माता बहुत असतील तर ब्राह्मण, व पिंड हे निरनिराळे असावे, असा भेद सांगतात. स्वकीय माता व सापन्न माता ह्या जिवंत असतील तर गृह्याग्नीर्षे नो रहित स्याने व ज्याचा पिता मृत झाला असेल त्यानेंहि करूं नये. कारण, अन्वष्टक्य श्राद्धांचे ठिकाणी मातृयजन हेंच मुख्य आहे, यास्तव कितीएक ग्रंथकारांनी ह्या अन्वष्टक्य श्राद्धांचे ठिकाणी मातृपार्वणच प्रथम सांगितले असें वाटते. पूर्वी पिता मृत झाला असेल आणि नंतर माता मृत झाली असेल तथापि ज्यांनी गृह्याग्नि धारण केला असेल त्यांनी नित्य आहे यास्तव ह्या नवमीचे दिवसी अन्वष्टक्य श्राद्ध अवश्य करावें. इतरांला, पश्चात् माता मृत झाली असतां अवश्यक नाही. कितीएक जन नवमीचे दिवसी पूर्वी मृत झालेल्या मातेचें श्राद्ध, “पति मृत शान्यावर लुप्त होते,” ह्या वचनाचे प्रमाणाचा आश्रय करून पिता मृत शान्यानंतर करित नाहीत. भर्त्याच्या पूर्वी, किंवा भर्त्या बरोबर सती जाऊन मृत झालेल्या अशा मातामही (मातेची माता) भगिनी, कन्या, मावशा, आत, इत्यादिक आणि पुत्ररहित अशा पिता, माता, इत्यादि कुळांमध्ये उत्पन्न झालेल्या ज्या सर्व सीमायवती स्त्रिया त्यांचे ह्या नवमीचे दिवसी श्राद्ध करावें. पतीच्या पूर्वी मृत झालेल्या त्यांचे श्राद्ध, त्यांचे पति मृत शान्यानंतर करूं नये. यास्तवच या नवमीला अविधवानवमी असें नाम आहे, व साक्षरितां पत्नीचेहि नवमीचे दिवसी श्राद्ध करावें. ह्या अविधवानवमीश्राद्धाचा महालयाप्रमाणे जो वृश्चिकदर्शन होई तोपर्यंत गौण काल आहे. याप्रमाणे प्रतिपदेचे दिवसी दौहित्रानें कर्तव्य जें मातामहश्राद्ध त्याचाहि काल वृश्चिकदर्शनपर्यंत आहे असे कालतरविवेचन ग्रंथांत आहे. या अविधवानवमी श्राद्धाचे दिवसी आणि सुवासिनींच्या प्रतिसावरसरिक श्राद्धाचे दिवसी सुवासिनीभोजन घालावें. कारण, “पतीच्या पूर्वी मृत झालेली, किंवा पतीसह सती जाऊन मृत झालेली अशांच्या स्थानीं लज्जे त्यांच्या श्राद्धाचे ठिकाणी ब्राह्मणासहवर्तमान सुवासिनी सांगवी, ”इत्यादिक मार्कंडेयाचें वचन आहे. ह्या नवमीश्राद्धाचे ठिकाणी पिंडदान, ज्याचा पिता जिवंत असेल तो, व गर्भिणीपति त्यांनींहि करावें. नवमीश्राद्धाचा संभव नसेल तर, “ममान्वष्टक्याकरणजनितप्रत्यवायपरिहारार्यं शतवारं मेभिर्बुभिःसुमना०” इति मंत्रजपं करिष्ये,” असा संकल्प करून त्या मंत्राचा जप करावा. अन्वष्टक्यश्राद्धाचे ठिकाणी सामवेदी जे त्यांनीं पितृपार्वणच (पितृत्रयी) करावें, सातपार्वण, व मातामहपार्वण हीं करूं नयेत, असें निर्णयसिंधु सांगतो.

ह्या अपरपक्षाभयें अपराहकाली असणाऱ्या द्वादशीचे दिवसी सन्यासी यांचा महालय कराना. सामध्ये वैष्णव, अपराहकालन्मापिनी अशी द्वादशी, एकादशीच्या त्रतादि-

वर्षीं असेल तर अरूप जरी द्वादशी आहे तथापि ह्या दिवशीं किंवा शुद्ध त्रयोदशीचे दिवशीं एकादशीच्या पारणादिवशींच संन्यासिदेवस्य (संन्यासी ज्याची देवता) असें श्राद्धे करितात. मला तर अशा प्रसंगीं वैष्णवांनीं संन्यासी यांचा महालय अमावास्याचे दिवस करावा, असें घाटते.

ह्या अपरपक्षांत मघायुक्त त्रयोदशी किंवा केवळ त्रयोदशी ह्या दिवशीं श्राद्ध करावें नित्य आहे. केवळ मघानक्षत्रीं शुद्धां श्राद्ध करावें. ह्या मघा श्राद्धाचे विधीविषयीं अनेक ग्रंथांचे ठिकाणीं पुष्कळ प्रकारचे पक्ष सांगितले आहेत. अपुत्रवान अथवा पुत्रवान असा गृहस्थाश्रमी यानें सपत्नीक अर्सी पितृपार्वण, व मातामहपार्वण यांहींकरून युक्त आणुलता, आता, मामा, आत, मावशी, भागिनी, श्वशुर इत्यादिक नीं पार्वणीं यांहींकरून युक्त असें सांकल्पविधीकरून अपिडक श्राद्ध करावें. अथवा पितृत्रयी, व मातृत्रयी आणि महालायाप्रमाणे चुलता इत्यादिक एकोद्दिष्टगण या सर्वांच्या उद्देशेंकरून सांकल्प धर्मे श्राद्ध करावें. किंवा दर्शासारखें सहा दैवतांचे उद्देशेंकरून अपिडक श्राद्ध करावें अथवा निष्काम अशा पुत्रवंतानें श्राद्धविधि करून श्राद्ध करूं नये, तर केवळ पितृत्रयी, मातृत्रयी यांच्या उद्देशानें, किंवा पितृत्रयी, मातृत्रयी आणि चुलता इत्यादिक एकोद्दिष्टगण यांच्या उद्देशानें, “एतेषां तृप्यर्थं ब्राह्मणभोजनं करिष्ये,” असा संकल्प करून, “पितृरूपिणे ब्राह्मणाय गंधं समर्पयामि,” असा उच्चार करून गंधादि पंचोपचार समर्पण करून “ब्रह्मार्पणं०” इत्यादि मंत्र पठण करून, “अनेन ब्राह्मणभोजनेन पित्रादिरूप परमेश्वरः प्रीयतां,” असें ह्मणून अन्नदानाचें उदक सोडावें. नंतर क्षीर इत्यादिक मधु-अन्नानें ब्राह्मणांला भोजन देऊन दक्षिणादिकांनीं संतोष करावा. आणि आपण भोजन करावें, इतकाच विधि करावा. अपुत्रवान व सकाम यांनीं पिंडदानरहित अशा श्राद्धविधीनें श्राद्ध केलें असतां दोष प्राप्त होत नाही. काचित् ग्रंथां अपुत्रवंतांनीं पिंडदान करीत असें आहे. याप्रमाणें सांगितलेल्या पक्षातून कोणताएक पक्ष स्वीकारून मघ त्रयोदशीचे दिवशीं श्राद्ध अवश्य करावें. कारण, न केलें असतां दोष सांगितला आहे यास्तव तें नित्य आहे. हस्तनक्षत्रीं सूर्य आला असतां मघायुक्त नी त्रयोदशी तिला गच्छाया असें नांव आहे. तिचे ठिकाणीं श्राद्ध केलें असतां महाफल मिळते. ह्या त्रयोदशीचे दिवशीं महालय, व युगादि तिथि हीं येतील तर, “मघात्रयोदशीमहालययुगादि श्राद्धानि तंत्रेण करिष्ये,” असा संकल्प करून तंत्रेकरून श्राद्ध करावें. दर्शश्राद्धेकरून नित्यश्राद्धासारखी कोणत्याही श्राद्धाची प्रसंगसिद्धि होत नाही. याविषयीं असें घाटकीं, अंगरूप कर्म एक असून प्रधानकर्माचा भेद असणें यला तंत्र असें ह्मणतात. :-

पेशा विश्वेदेव, पाक इत्यादिक जीं अंगें तीं सर्वांचीं एक असून ब्राह्मण, अर्ध्व पिंड इत्यादिक प्रधान कर्म निराळां करावीं. प्रसंगसिद्धस्थलाचे ठिकाणीं तर प्रधानकर्म सुद्धां निराळां होत नाहीं. त्रयोदशीश्राद्ध हें अपरपक्षीयश्राद्ध आहे याकारितां एथें देव धूरि लोचन संज्ञक ध्यावे असें श्राद्धसागरीं सांगितलें आहे. एकत्र रहाणारे असे भाते यांनींहि मघात्रयोदशीश्राद्ध निरानिराळां करावें, असें निर्णयासिंधु, कौस्तुभ इत्यादि ग्रंथां आहे. विभक्त असतील तथापि सर्वांनीं बरोबरच करावें, असें श्राद्धसागरांत सांगितलें आहे.

पिता, पितामह. आणि प्रपितामह या तिघांतून कोणीहि शस्त्र, विष, अग्नि उदक इत्यादिक, अथवा शृंगयुक्त (पश्वादिक), व्याघ्र, सर्प, इत्यादिक या निमित्तांनीं दुर्मरणें करून मृत झाला असतां याचें श्राद्ध ह्या चतुर्दशीचे दिवसीं एकोद्दिष्टविधि करून करावें. पिता, पितामह, हे शस्त्रादिकानें मृत होतील तर दोन एकोद्दिष्टें करावीं. पिता, पितामह, आणि प्रपितामह हे तीनहि शस्त्रादिकानें मृत झाले असतील तर पार्ष्णच करावें. कोणी ग्रंथकार तीन एकोद्दिष्टें करावीं, असें ह्यणतात. सहगमनाचे ठिकाणीं विधिप्राप्त असें अग्नीमर्घ्ये मरण झालें असतां, आणि प्रयागादिकीं विधिप्राप्त अशा जलसमाधीनें मरण झालें असतां चतुर्दशीचे दिवसीं श्राद्ध करूं नये. युद्ध व प्रायोपवेशन (दर्भ हांतरून उपोषणें करून मरणें) हीं जरी विधिप्राप्त आहेत तथापि यांहीकरून मृत झाला असतां चतुर्दशीश्राद्ध करावें. शस्त्रादिकानें मृत झालेले असून अपुत्रवान् असे चुलता, भाता इत्यादिक यांचेहि ह्या चतुर्दशीचे दिवसीं एकोद्दिष्ट श्राद्ध करावें. हें श्राद्ध धूरिलोचनसंज्ञक जे देव तत्सहित करावें. ह्या श्राद्धाचे ठिकाणीं संबंध, गोत्र, नाम इत्यादिकांचा उच्चार करून, “अमुकनिमित्तेन मृतस्य चतुर्दशी निमित्त मेकोद्दिष्टं श्राद्धं सदैवं सपिंडं करिष्ये,” असा संकल्प करून दरएक एकोद्दिष्ट एक अर्ध्व, एक पवित्रक, आणि एक पिंड यांहीकरून युक्त असें करावें. पिता इत्यादिक, आणि आता इत्यादिक हे शस्त्रानें मृत झाले असतील तर पाक इत्यादिक निराळां करून महालयाप्रमाणें एकतंत्रानेंच दोन एकोद्दिष्टें करावीं. या प्रमाणेंच चतुर्दशीचे दिवसीं एकोद्दिष्ट करून पिता इत्यादिक जे सर्व पितृगण यांच्या उद्देशेंकरून सःसमहालयदुस्तया त्रिधाचे ठिकाणीं अवश्य करावा. शस्त्रादिकानें मृत झालेले जे माता, पिता यांचा मृत दिवस जर ह्या चतुर्दशीचे दिवसीं येईल तर चतुर्दशीनिमित्त एकोद्दिष्ट श्राद्ध करून पुनः त्याच दिवसीं मृतादित्रयीच्या उद्देशेंकरून सांवत्सरिक श्राद्ध पार्वणविधीनें करावें, असें श्राद्धसागरग्रंथां सांगितलें आहे. कौस्तुभादि ग्रंथां तर, सांवत्सरिकाचा पार्वणविधि केल्यानेंच चतुर्दशीश्राद्धाची सिद्धि होते, निराळां करूं नये, असें सांगितलें आहे. दुस

न्या कोणत्याहि दिवसीं सकृन्महालय करावा. ह्या चतुर्दशीचे दिवसीं चतुर्दशीश्राद्धाला काहीं एक विघ्न येईल तर ह्याच पक्षां अथवा पुढच्या पक्षां, दुसऱ्या कोणत्याहि दिवसीं तें चतुर्दशीश्राद्ध पार्वणविधि करूनच करावें, एकोदशे करूं नये. ह्या एकोदशे श्राद्धाला अपराण्हकालव्यापिनीच चतुर्दशी ध्यावी, इतर एकोदशे तिथीसारखी मध्यान्हकाल व्यापिनी घेऊं नये, असें कौस्तुभांत आहे.

गजच्छाया पर्वणि.

हस्तनक्षत्रीं सूर्य असून अमावास्येचे दिवसीं चांद्र हस्तनक्षत्र असेल तर त्या अमावास्येला गजच्छाया असी संज्ञा आहे, याकरितां तिचे ठिकाणीं श्राद्ध, दान, इत्यादिक करावें. याप्रमाणें अमावास्येचे दिवसीं गजच्छायापर्वणी सांगितली. मुंज झालेली नाही अशा दौहितानें (कन्यापुत्रानें) सुद्धां आश्विन शुक्लप्रतिपदेचे दिवसीं सपत्नीक मातामहाचें (आईच्या नावाचें), मातुल असला तथापि पार्वणश्राद्ध अवश्य करावें. आजी असेल तर केवळ मातामहत्रयानेंच करावें. हें मातामहश्राद्ध ज्याचा पिता जिवंत असेल त्यानेंच करावें. हें पिंडसहित किंवा पिंडरहित करावें ह्या श्राद्धाला 'पुंरुवरार्द्रवसंज्ञक' विश्वेदेव ध्यावे. 'धूरिलोचन' ध्यावे, असेंहि कोणी लणतात. ही प्रतिपदा मातामहश्राद्धाला अपराण्हव्यापिनी ध्यावी असें बहुत ग्रंथकार लणतात. संगवकालव्यापिनी ध्यावी असेंहि कोणी लणतात. ह्या मातामहश्राद्धाला जोपर्यंत वृश्चिकदर्शन होई तावत्पर्यंत गौणकाल आहे असें कालतत्त्वविवेचन ग्रंथी सांगितले आहे. याप्रमाणें महालय इत्यादिकांचा निर्णय समाप्त झाला.॥

कपिलाषष्ठीचा निर्णय.

भाद्रपदरूपण पक्षांतील षष्ठीचे दिवसीं मंगळवार, व्यतिपात, रोहिणी, ह्या सर्वांचा योग आला असतां त्या षष्ठीला कपिलाषष्ठी असें लणतात. ह्या षष्ठीचे दिवसीं हस्तनक्षत्रींचा सूर्य असेल तर अतिमहाफल मिळते. हा कपिलाषष्ठीचा योग सूर्यपूर्व आहे याकरितां दिवसासच ध्यावा, रात्रीं घेऊं नये असें मला वाटते. "ह्या कपिलाषष्ठीचे दिवसीं होम; दान इत्यादिक जें कोले तें सर्व कोटिगुण होते. " ह्या कपिलाषष्ठीचे दिवसीं श्राद्ध करावें असें विशेषवचन मिळत नाही, तथापि अलभ्य योगाचे ठिकाणीं श्राद्ध करण्याविषयीं विधि आहे याकरितां दर्शश्राद्धासारखें षट्दैवत (पितृत्रयी सपत्नीक, मातामहत्रयी सपत्नीक) श्राद्ध करावें.

आतां येथें संक्षेपानें कपिलाषष्ठीचा व्रतविधि सांगतो.

सूर्यन्या उदेशानें उपनासाचा संकल्प करून देवदाफ, भाला, केशर, वैजची, मनशी.

पद्मकाष्ठ, तंडुल इतके पदार्थ, मधु व गार्ईचे तूप यांत वाटून दुषामध्ये कुव लून त्याचा कक्क करून तो सर्व अंगाला लावून ज्ञान करावे. याविषयी मंत्रः—
 “ अपस्त्वमसि देवेश ज्योतिषांपतिरेवच ॥ पापं नाशय मे देव वाङ्मनःकायकर्मजं, ”
 या मंत्राने ज्ञान करून नंतर पंचगव्याने ज्ञान करावे. त्या नंतर पंच पल्लवांनी (अश्व त्य, उंबर, वड, आंबा; पायरी) मार्जन करून मृत्तिकाज्ञान करावे. मग तर्पण इत्यादिक निसाविधि करून वरुणाची पूजा करावी. नंतर सर्वतोभद्र मंडल करून त्याचे मध्यभागी कलश ठेवून त्याच्यावर तंडुलयुक्त पूर्णपात्र ठेवून तांदुळ इत्यादिकांचे ठिकाणी कमळ लिहून त्या कमळाच्या आठ पत्रांचे ठिकाणी पूर्वादि दिशेपासून क्रमाने सूर्य, तपन, स्वर्णरेत सा, रवि, आदित्य, दिवाकर, प्रभाकर, आणि सूर्य, या आठ देवतांचे आवाहन करून मध्यभागी सुवर्णरथाचे ठिकाणी सूर्याचे आवाहन करून त्याच्या पुढे अरुणाचे आवाहन करावे. नंतर कण्हेर, रुई इत्यादिक पुष्पांनी व धूपदीपादिकांनी पूजा करावी. नंतर दिक्पाल इत्यादिक देवतांचे पूजन करून बारा अर्घ्ये सूर्याला द्यावी. सविस्तर पूजेचा विधि, व बारा अर्घ्यांचे मंत्र कौस्तुभांत पाहावे. सूर्याच्या पुढे हात जोडून प्रार्थना करावी. प्रार्थनेचा मंत्र— “ प्रभाकर नमस्तुभ्यं संसारान्मां समुद्धर ॥ भुक्तिमुक्ति प्रदो यस्मात् तस्मात् शांतिं प्रयच्छ मे ॥ नमोनमस्ते वरद ऋक्सा मयजुषां पते ॥ नमोस्तु विश्वरूपाय विश्वधात्रे नमोस्तुते, ” असी प्रार्थना करून “ उदुखं० ” इत्यादिक सूर्यसूक्तांचा जप करून रात्री जागरण करावे. नंतर प्रातः काली “ आरुण्येन० ” या मंत्राने रुईच्या समिधा, चरु (भात,) तूप, तिल, या इत्यांचा दर एकाचा एकशें आठ या प्रमाणे होम करून घंटादिक सर्व अलंकारांनी युक्त अशा कपिला गार्ईची मंत्रांनी पूजा करून ती ब्राह्मणाला द्यावी. गार्ईच्या पूजेचे मंत्र कौस्तुभांत सांगितले आहेत. गार्ईच्या दानाचा मंत्र— “ नमस्ते कपिले देवि सर्वपापप्रणाशिनि ॥ संसारार्णवमग्नं मां गोमातस्त्रातुमर्हसि ” ॥ “ वस्त्रयुगच्छनां, ” इत्यादिक विशेषणें झणून, ‘ इमां गां तुभ्यमहं संपददे, ’ असें झणून गार्ई द्यावी, नंतर सुवर्णदक्षिणा द्यावी. तदनंतर त्या ब्राह्मणाला रथ व सूर्यमूर्ति यांचे दान करावे. दानमंत्र— “ दिव्यमूर्तिर्जगच्चतुर्द्धादशात्मादिवाकरः ॥ कपिलासाहितो देवो मम मुक्तिं प्रयच्छतु ॥ यथा त्वं कपिले पुण्यासर्वलोकस्यपावनी ॥ प्रदत्ता सहसूर्येण मम मुक्तिप्रदा भव ” ॥ त्या नंतर कपिलेची प्रार्थना, इत्यादिक विस्तार कौस्तुभांत सांगितला आहे. अथवा उपोषण, जागरण, होम, इत्यादिक विधि केव्हावांचून कपिलाघष्ठीचे दिव सींच ज्ञान, रथादिकांचे पूजन, कपिला गार्ईचे दान इत्यादिक करावे. या प्रमाणे संतोषे करून कपिलाघष्ठीव्रताचा विधि समाप्त झाला. ॥ या प्रकारे करून अनंतोपाध्या

यांचा पुत्र कशीनाथोपाध्याय याणें रचिलेल्या धर्मसिद्धीसार ग्रंथातील भाद्रपदमासांत कराव याचे कथांचा निर्णय झाला.॥

आतां आश्विनमासांतील कृत्ये.

तुळा संक्रांति आणि मेषसंक्रांति यांना विषुव अशी संज्ञा आहे. त्या विषुवसंक्रांतीच्या पूर्वीच्या १५ व पुढच्या १५ घटिका पुण्यकाल जाणावा. याहून विशेष निर्णय पूर्वी (प्रथम परिच्छेदांत) सांगितला आहेच.

देवीनवरात्र.

आश्विनशुक्लपक्षांतील प्रतिपदेचे दिवसीं देवीच्या नवरात्राचा आरंभ करावा. आश्विन शुद्ध प्रतिपदेला आरंभ करून महानवमी पर्यंत करावयाचे जें (पूजां इत्यादिक) कर्म झाला नवरात्र असें ह्मणतात. त्या नवरात्र कर्मांचे ठिकाणी पूजा हेंच प्रधान कर्म आहे. उपोषण इत्यादिक व स्तोत्र, जपादिक हें अंग आहे. तसेंच जसा कुलाचार असेल त्याप्रमाणे उपोषण, एकभुक्त, नक्त, अयाचित् यांतून एकाद्या व्रतासहित आणि जसा कुलाचार असेल त्याप्रमाणे सप्तशती, लक्ष्मीहृदयादिक स्तोत्रें, जप, याहीं करून युक्त असें प्रतिपदे पासून नवमीपर्यंत पूजानामक जें कर्म करणें झाला, पूजाप्रधान असें वचन आहे, याकरितांच नवरात्र असें ह्मणावें. कितीएक कुळांमध्ये जप, उपोषण इत्यादिक नियम मुळींच नसतात, परंतु कोणत्याहि कुलाचे ठिकाणी नवरात्र कर्मांत पूजा नाही असें कोठेहि दिसत नाही. ज्याच्या कुळामध्ये मुळीं नवरात्रच करण्याचा आचार नाही तेथें पूजा इत्यादिकांचाहि अभाव असेल तो असो. तो नवरात्राचा आरंभ सूर्योदयानंतर सहा घटिकाव्यापिनी अशा प्रतिपदेचे दिवसीं करावा. सूर्योदयानंतर सहा घटिकाव्यापिनी नसेल तर चार घटिका व्यापिनीमध्येहि करावा. काचित् ग्रंथां दोन घटिका व्यापिनीमध्येहि करावा असें आहे, परंतु सर्वथा अमानास्येनें युक्त जी प्रतिपदा तिचे ठिकाणी आरंभ करूं नये, असें बहुत ग्रंथांचें संमत आहे. सूर्योदयानंतर दोन घटिकांहून कमी असी व्याप्ति असेल अथवा सूर्योदयाला स्पर्श नसेलतर अमानास्यायुक्ताहि ध्यावी. जर पूर्व दिवसीं साठघटिका प्रतिपदा असून दुसऱ्या दिवसीं चारघटिका किंवा कांहीं अधिक असी वाढती असेल तर पूर्ण आहे याकरितां पूर्व दिवसाचीच ध्यावी. द्वितीयेच्या वेधाचा निषेध आहे तथापि तो ह्या दोन पक्षांचे ठिकाणीच योजावा. पुरुषार्थ चिंतामणीमध्ये तर पूर्व दिवसीं आठ घटिकां नंतर अथवा दहा घटिकां नंतर प्रतिपदा लागेल व दुसऱ्या दिवसीं चार घटिका किंवा कांहींसी अधिक प्रतिपदा असेल तेव्हां दुसऱ्या

दिवसाची क्षयगामी असल्या कारणाने ती निषिद्ध आहे यास्तव अमावास्येने युक्त आहे तथापि पूर्वेदिवसाचीच ध्यावी, असे सांगितले. खाविषयी सूर्योदयानंतर दहा घटिकांमध्ये प्रारंभ करावा. दहा घटिकांमध्ये न झाला तर मध्यान्हकाली अभिजिन्मुहूर्ताचे ठिकाणी प्रारंभ करावा, अपराह्नांत करूं नये. याप्रमाणे प्रतिपदेच्या पहिल्या सोळा घटिकांचा निषेध, आणि चित्रा व वैधृति योग यांचा निषेध हे दोनही निषेध, पूर्वी सांगितलेल्या कालाच्या अनुरोधाने संभव असेल तर पाळावे. केवळ निषेध सांगितला इतक्यामुळे प्रारंभाचा काल जो पूर्वाह्नकाल, किंवा प्रतिपदा तिथि यांचे उल्लंघन करूं नये.

ह्या नवरात्रकर्माचे ठिकाणी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, आणि शूद्र ह्या चारही वर्णांला अधिकार आहे. तसेच श्लेच्छादिक यांलाहि अधिकार आहे. त्यामध्ये ब्राह्मणाने जप, होम, अन्नाचा बलि, नैवेद्य यांहीकरून सात्विक पूजा करावी. कारण, "मांसरहित नैवेद्यांनी, ब्राह्मणाने मद्य अर्पण केले असता ब्राह्मण्यापासूनच भ्रष्ट होतो, मद्य प्राशन करण्याला, देण्याला अयोग्य आहे," इत्यादिक निषेध आहे यास्तव मांस, मद्य इत्यादिके करून युक्त जी राजसपूजा तिचे विषयी ब्राह्मणाला अधिकार नाही, कारण मद्यपान केले असता मरणांत प्रायश्चित्त करण्यास सांगितले आहे, व स्पर्श झाला असता तो अवयव तोडावा असे वचन आहे यास्तव अल्प प्रायश्चित्ताने दोषाचा नाश होत नसून पातित्य प्राप्त होते. याप्रमाणे सर्व प्राचीन व अर्वाचीन ग्रंथकार निश्चयाने लिहितात. जे अखंत नवीन असे भास्कररायप्रभृति ग्रंथकार तेहि सप्तशतीटीका इत्यादिक ग्रंथी, प्राचीन ग्रंथांला अनुसरून असेच प्रतिपादन करितात, आणि सभेमध्येहि हेंच मत सांगतात व आचरण तर दुसऱ्या प्रकारचे करितात; तेव्हां आपण जसे दुर्दैवाने ब्राह्मण्यापासून भ्रष्ट झालो तसा दुसरा न होवो अशा भूतदयेकरून, किंवा आपला भ्रष्टपणा आच्छादित व्हावा या हेतूने, अथवा दुसरे जे कलियुगातील ब्राह्मण, त्यांला अधिकार नाही ह्या दृष्टीने ते तसे करितात, यांतील खरेपणा कोणता तो आली जाणत नाही. क्षत्रिय व वैश्य याला मांसादिकांनी युक्त असी जपहोमसहित जी राजसपूजा तीविषयीहि अधिकार आहे, तोहि अधिकार केवळ कामनिक आहे, नित्य नाही. निष्काम अशा क्षत्रियादिकांनी सात्विक पूजा केली असता अतिशयकरून मोक्षादि फल मिळते. याप्रमाणे शूद्रादिकांलाहि मिळते. शूद्रादिकांनी मंत्रहीन, जपादिकाने रहित, मांसादिक द्रव्यांनी युक्त असी तामसपूजाहि करावी. शूद्राने सप्तशती इत्यादिकांचा पाठ, होम यांही युक्त असी सात्विक पूजा ब्राह्मणाकडून करवावी. क्षत्रिया व शूद्र इत्यादिकांला स्वतःपुराण संबंधी मंत्रांचा पाठ करण्याविषयीहि अधिकार नाही, याकरिताच, "शूद्र सुत पावेल,"

ह्या वाक्याचे ठिकाणी भाष्यामध्ये स्त्रिया व शूद्र यांला श्रवणेंकरूनच ऋळ आहे, पाठानें नाहीं, असे सांगितले. यावरून स्त्रिया व शूद्र यांनी गीता, विष्णुसहस्रनाम यांचा पाठ केला असतां दोष प्राप्त होतो असेच जाणावें. कितीएक ग्रंथांमध्ये स्त्रिया, व शूद्र यांनी स्वतांही पुराणसंबंधी मंत्र ह्मणून पूजा करावी असे सांगितले आहे. जप, होम इत्यादिक करणें तें ब्राह्मणाकडून करावें. श्लेच्छ इत्यादिकांला तर ब्राह्मणाकडूनहि जप, होम, मंत्रयुक्त पूजा करण्याला अधिकार नाहीं. तर त्या श्लेच्छांनी ते ते उपचार देवीच्या उद्देशानें घनकरून समर्पण करावे.

आतां नवरात्राचे गौणपक्ष.

तृतीयेपासून नवमीपर्यंत सात रात्री पर्यंत नवरात्र करावें. अथवा पंचमीपासून नवमीपर्यंत पांच रात्री नवरात्र करावें. किंवा सप्तमीपासून नवमीपर्यंत तीन रात्री करावें अथवा अष्टमीपासून नवमीपर्यंत दोन रात्री करावें. एक दिवस करणें असेल तर केवळ अष्टमीचे दिवसी किंवा केवळ नवमीचे दिवसी करावें. ह्या सर्व पक्षांची व्यवस्था आपा पल्या कुलाचा जसा आचार असेल त्याप्रमाणें किंवा काहींएक प्रतिबंधादिकानें पहिल्या पहिल्या पक्षाचा संभव नसेल त्याप्रमाणें जाण्यावी. त्यामध्ये तृतीया, व पंचमी यांचा निर्णय प्रतिपदेप्रमाणें करावा. सप्तमी इत्यादिकांचा निर्णय सांगेन. नऊ रात्रि, सात रात्रि इत्यादिक जे पूर्वी पक्ष सांगितले त्यांचे ठिकाणी दिनक्षय, किंवा दिनवृद्धि यांच्या योगानें दिवसांमध्ये कमी जास्ती दिवस झाले असतां पूजा इत्यादिकांची आवृत्ति करावी. किती-एक जन तर, दिनक्षय झाला असतां पूजा चंडीपाठ हे आठ आठ करितात. हे देवी-पूजनरूप नवरात्र कर्म, न केलें असतां, दोष सांगितला आहे, व केलें असतां फल सांगितले आहे यास्तव नियम व कामानिक असे दोन प्रकारचे आहे.

नवरात्रामध्ये घटस्थापना करावयाची ती.

ह्या नवरात्रामध्ये घटस्थापना करणें; प्रातः काली, मध्यान्हकाली आणि प्रदोषकाली याप्रमाणें तीन वेळ, दोन वेळ, किंवा एक वेळ असे आपापल्या कुलदेवतेचें पूजन करणें सप्तशती इत्यादिकांचा जप; अखंड दीप; आपल्या आचाराप्रमाणें माळा बांधणें; उपोषण नक्त, एकभुक्त इत्यादिक नियम धारण करणें; सुवासिनीला भोजन देणें; कुमारीचें भोजन पूजन इत्यादिक करणें; आणि शैवटच्या दिवसी सप्तशती इत्यादिक स्तोत्रांच्या मंत्रांचा जप होम इत्यादिक करणें; याप्रमाणें हीं कृत्ये सांगितली आहेत. ह्यांमध्ये कितीएक कुलाचे ठिकाणी घटस्थापनादिक दोन किंवा तीनच करितात; सर्व करित नाहींत. काचित्

ठिकाणीं घटस्थापनेवाचून कितीएक करितात. काचिन् ठिकाणीं सर्वच करितात. याप्रमाणें हीं सर्व करावीं किंवा त्यांतून कितीएक करावीं, ह्याची व्यवस्था जसा कुलाचार असेल त्याप्रमाणें जाणावी. कुलपरंपरेने जें प्राप्त झालें असेल त्याहून अधिक, शक्ति असली तथापि करूं नये, असा शिष्टांचा आचार आहे. फलाच्या इच्छेनें नवसलेले असें उपोषण इत्यादिक, कुलाचार नसला तथापि करतात. हें कलशस्थापन रात्रीचे ठिकाणीं करूं नये. कलशस्थापनाकरितां शुद्ध अशा मृत्तिकेनें वेदी करून पंचपल्लव, दूर्वा, फले, तांत्रूल, कुंकुम, धूप, दीप इत्यादिक साहाय्य मिळवावे.

आतां संक्षेपानें नवरात्राच्या आरंभाचा प्रयोग सांगतो.

प्रतिपदेचे दिवसी प्रातःकालीं अभ्यंग स्नान करून केशर, चंदन इत्यादिकांनीं टिळक लावून हातामध्ये पवित्रक धारण केलेला होताना स्त्रियेसहवर्तमान असा दहा घटिकापरि मित कालीं किंवा अभिजिन्मुहूर्ताचे ठिकाणीं देशकालांचे कीर्तन करून “ मम सहकुटुंबस्यामुकदेवताप्रीतिद्वारा सर्वापच्छांतिपूर्वक दीर्घायुर्धनपुत्रादिवृद्धिशत्रुजयकोतिलाभप्रमुखचतुर्विधपुरुषार्थसिद्धयर्थं अद्यप्रभृति महानवमीपर्यंतं प्रयहं त्रिकालमेककालंवाऽपुकुदेवता पूजा मुपवासनकैकभक्तान्यतमानियमसहितामखंडदीपप्रज्वालनं कुमारीपूजनचंडीसप्तशतीपाठं सुवासिन्यादिभोजनभिक्षादि दावत्कुलाचारप्राप्तमनूष्य एवमादिरूपं शारदनवरात्रोत्सवाख्यं कर्म करिष्ये. देवतापूजांगत्वेन घटस्थापनंच करिष्ये, तदादौनिर्विघ्नतासिद्धयर्थं गणपतिपूजनं पुण्याहवाचनं चंडीसप्तशतीजपाद्यर्थं ब्राह्मणवरणंच करिष्ये. ” या प्रमाणें संकल्प करून गणपतिपूजन, पुण्याहवाचन, आणि चंडीसप्तशतीपाठाकरितां ब्राह्मणवरणं हीं करावीं. घटस्थापन असेल तर “ महीद्यौः० ” या मंत्रानें भूमीला स्पर्श करून त्या भूमीचे ठिकाणीं अंकूर रुजण्याकरितां शुद्ध असी मृत्तिका घालावी, नंतर “ भौषधयः स० ” या मंत्रानें त्या मृत्तिकेवर यव इत्यादिक पेटावे. नंतर “ आकलशेषु० ” या मंत्रानें कलश ठेऊन “ इमेमेगो ” या मंत्रानें उदकेंकरून कलश भरावा. मग “ गंधद्वारां० ” या मंत्रानें गंध कलशांत घालावे. “ या भौषधीः० ” या मंत्रानें सर्वोषधी कलशांत घालाव्या. “ कांडान्कांडान्० ” या मंत्रानें दुर्वा कलशांत घालाव्या. “ आश्वत्थेव० ” या मंत्रानें पंचपल्लव कलशांत घालावे. “ स्थोनापृथिवि० ” या मंत्रानें सप्तमृत्तिका कलशांत टाकाव्या. “ याः फलिनी० ” या मंत्रानें फल, “ सहिरत्नानि० ” या मंत्रानें पंचरत्ने कलशांत टाकावीं. “ हिरण्यरूप ” या मंत्रानें हिरण्य कलशांत टाकावे. “ युवासुवासाः० ” या मंत्रानें कलशाला सूत्राचे वेत्रन दावे. “ पूर्णादावि० ” या मंत्रानें कलशावर पूर्णपात्र ठेऊन “ तत्त्वायामि० ”

या मंत्राने वरुणाची पूजा करून त्या कलशावर पूर्णपात्राचे ठिकाणी कुलदेवतेच्या प्रतिमेची स्थापना करून पूजा करावी. अथवा जेथे जे देवीचे स्थान असेल तेथेच स्थापना करून पूजा करावी. ती असी,—“जयंती मंगला काली भद्रकाळी कपालिनी ॥ दुर्गा क्षमा शिवा घात्री स्वाहा स्वधा नमोस्तु ते ॥ आगच्छ वरदे देवि दैत्यदर्पनिषूदनि ॥ पूजां गृहाण सुमुखि नमस्ते शंकरपिये ॥” ह्या मंत्रांनी व पुरुषसूक्त आणि श्रीसूक्त ह्यांच्या प्रथम ऋचांनी आवाहन करून “जयंती मंगला काली०” या मंत्राने आणि सूक्तांच्या ऋचांनी आसनादिक सोळा उपचारांनी पूजा करावी. नंतर “सर्वमंगल मांगल्ये०” इत्यादिक मंत्रांनी प्रार्थना करून, दररोज बलिदान करणे असेल तर उडीद मिश्रित भाताचा, किंवा कुप्मांडाचा बलि द्यावा. अथवा शेवटी बलिदान करावे किंवा करू नये. नंतर “अखंडदीपकं देव्याः प्रीतये नवरात्रकं ॥ उज्ज्वालये अहोरात्रमेकचित्तो धृतव्रतः” या मंत्राने अखंड दीप स्थापावा.

आतां चंडीपाठाचा विधि.

ब्राह्मणाने आचमन प्राणायाम करून “यजमानेन वृतीहं चंडीसप्तशतीपाठं नारायण हृदयलक्ष्मिहृदयपाठंवा करिष्ये,” असा संकल्प करून आसनादिक विधि करून पिठावर दुसऱ्याकडून लिहिलेले असे पुस्तक स्थापन करून “नारायणाला नमस्कार करून” असे वचन आहे या करितां “ओंनारायणाय नमः, नरोत्तमाय नमः, देव्यै सरस्वत्यै नमः व्यासाय नमः” या प्रमाणे नमस्कार करून ओंकाराचा उच्चार करून सर्व पाठ श्राव्या नंतर ओंकाराचा उच्चार करावा. पुस्तक वाचण्याचे नियम सांगतात. हातांत पुस्तक धरू नये. आपण स्वतां किंवा ब्राह्मणावांचून अन्य जातीने लिहिलेले पुस्तक व्यर्थ. “अध्याय समाप्त श्राव्यावर विराम करावा, मध्ये कदापि विराम करू नये. मध्ये विराम केला असतां अध्याय इत्यादिक पुनः पठण करावा.” ग्रंथाचा अर्थ जाणत होताता स्पष्टाक्षर, फार त्वरा रहित व अति मांड रहित आणि रस, भाव, स्वर यांहीं युक्त असे पुस्तक वाचावे. धर्म, अर्थ, काम यांचे फल इच्छिणाराने सर्वकाळ पाठ करावा; कारण, ज्यांचे मन स्थिर अशा मनुष्यांनीं माझे हे माहात्म्य पठन करावे, व सर्वकाल भक्ती करून श्रवणहि करावे,” इत्यादिक वचन आहे. कांहीं निमित्तप्राप्त झाले असताहि पाठ करावा. “सर्व शांतिकर्म, तसेच दुष्ट स्वप्न, व उग्र अशा ग्रहपीडा हीं प्राप्त असतां माझे माहात्म्य श्रवण करावे. तसेच, अरण्यांत किंवा शून्य स्थानीं वणव्यानें वेष्टितं होईल, अथवा चोरांनीं शून्य स्थलीं ग्रस्त केला किंवा शत्रूंनीं अकस्मात् धरला,” इत्यादिक संकटांच्या उद्देशेकरून, “उग्र अशा सर्व पीडांचे ठिकाणीं माझे माहात्म्य स्मरण करावे. अथवा वेदनेनें पीडित होःसाता

मनुष्य मार्गें हें माहात्म्य स्मरण करील तर संकटापासून मुक्त होईल, ” असें सांगितले आहे. अशुभसूचक उपद्रवाच्या नाशाकरितां तीन पाठ करावे. ग्रहपीडेच्या नाशार्थ पांच. महाभयनाशार्थ सात. शांतीकरितां व वाजपेय नामक यज्ञफलाची प्राप्ति होण्याकरितां नऊ. राजा वश होण्याकरितां अकरा. शत्रूचा नाश होण्याकरितां बारा. स्त्रीपुरुष वश होण्याकरितां चवदा. सुख, लक्ष्मी यांच्या प्राप्ती करितां पंधरा. पुत्र, नातू, धान्य यांच्या प्राप्ती करितां सोळा. राजभयाच्या नाशार्थ सतरा. उच्चाटनाकरितां अठरा. वन संबंधीं भयाच्या नाशार्थ वीस. बंधनापासून सुटण्याकरितां पंचवीस. महारोग, कुलाचा उच्छेद, आयुर्नाश, शत्रुवृद्धि, व्याधिवृद्धि, तीन प्रकारचे उत्पात, इत्यादिक महासंकटाच्या नाशाकरितां, व राज्याच्या वृद्धिकारितां शत चंडी करावी. एक सहस्र पाठ केले असतां शंभर अश्वमेधांचें फल, सर्व मनोरथप्राप्ति, आणि मोक्ष हीं प्राप्त होतात, असें बाराहीतंत्रांत सांगितले आहे. सर्वत्र कामानेक पाठाचे ठिकाणीं पूर्वीं संकल्प करून पूजा, व शेवटीं बलिदान हीं करावीं. ह्या नवरात्र कर्मांमध्ये आचार असेल तर वेदपारायण सुद्धां करावे, त्या वेदपारायणाचा विधि बौधायन सूत्रांत सांगितलेला कौस्तुभांत सांगितला आहे.

आतां कुमारीपूजेचा विधि सांगतो.

“ एक वर्षाच्या वयाची कन्या पूजेला वर्ज्य करावी. ” दोन वर्षांच्या वयाची कन्या तिजपासून दहा वर्षांपर्यंत वयाच्या कुमारीचीं क्रमानें नामें सांगतात— दोन वर्षांची ती कुमारिका, तीन वर्षांची ती त्रिमूर्ति, चारवर्षांची ती कन्याणी, पांच वर्षांची रोहिणी, सहा वर्षांची काली, सात वर्षांची चंडिका, आठ वर्षांची शंभवी, नऊ वर्षांची दुर्गा, दहा वर्षांची भद्रा, याप्रमाणें नऊ कन्यांचीं नऊ नामें जाणावीं. ह्या कुमारीचे निरनिराळे पूजांमंत्र, फलांचे विशेष, आणि त्या कुमारींचीं लक्षणें हीं सर्व दुसऱ्या ग्रंथांत पाहावीं. ब्राह्मणानें ब्राह्मणी कुमारी पुजावी, याप्रमाणें आपल्या वर्णातील कुमारी प्रशस्त जाणावी. क्वचित् ग्रंथीं कामनेच्या भेदानें विजातीय सुद्धां सांगावी असें सांगितले आहे. दररोज एकेक अधिक, किंवा दररोज एक असी कुमारी पुजावी. कुमारीचे पूजेचा मंत्र— “ मंत्राक्षरमयीं लक्ष्मीं मातृणारूपधारिणीं ॥ नवदुर्गात्मिकां साक्षात्कन्या मावाहयाम्यहं ॥ जगत्पूज्ये जगद्वंद्ये सर्वशक्तिस्वरूपिणि ॥ पूजां गृहाण कौमारी जगन्मातर्नमोस्तुते, ” या मंत्रेंकरून पादप्रक्षालनपूर्वक वस्त्र, कुंकुम, गंध, धूप, दीप, भोजन यांहीं करून पूजा करावी, याप्रमाणें संक्षेप सांगितला. जसी कुमारीपूजा दररोज एकेक अधिक, याप्रमाणें पूजा, चांडिपाठ हेहि दररोज एकेक अधिक असेहि करावे.

क्वचित् ग्रंथी भवानीसहस्रनामाचोहि पाठ करावा असे आहे. हा शरदतु संवधी नव रात्राचा उत्सव मलमासाचे ठिकाणी करूं नये. गुरुशुक्रांच्या अस्तादिकांचे ठिकाणी तर होतो. नवीनच आरंभ असेल तर अस्तादिकांत करूं नये. मृताशौच व जनना शौच यांचे ठिकाणी घटस्थापना इत्यादिक सर्व विधि ब्राह्मणाकडून करावा. कोणी ग्रंथकार तर आरंभ झाल्यानंतर मध्ये आशीच प्राप्त झाले असता आपण आरंभलेले पूजा इत्यादिक रूढ करावे, असे सांगतात. आशीचामध्ये पूजा, देवतेला स्पर्श इत्यादिक केले असता ते लोकांमध्ये निंदास्पद होते याकरिता शिष्टजन ते दुसऱ्याकडूनच करावे तात. दुसरे कोणी तर, गौणपक्षांने नवरात्राचे विधि तृतीयेपासून, पंचमीपासून, आणि सप्तमीपासून इत्यादिक सांगितले आहेत, यास्तव प्रतिपदेचे दिवसी आशीच आले असता तृतीया इत्यादिक गौणपक्षाचा आश्रय करितात, ह्मणजे तृतीया इत्यादिकां दिवसांपासून नवरात्राला आरंभ करितात, आणि सर्वथा लोप होत असेल तरच ब्राह्मणाकडून करावतात. ह्या नवरात्राचे ठिकाणी उपोषण इत्यादिक शरीर संवधी नियम आपण करावे. या प्रमाणे रजस्वला स्त्री असेल तिणें सुद्धा उपोषण इत्यादिक आपण करून पूजा इत्यादिक दुसऱ्याकडून करावे: ह्या नवरात्रामध्ये सौभाग्यवती स्त्रियांनी उपोषणाचे दिवसी सुगंध द्रव्ये, तांबूल इत्यादिकांचा स्वीकार केला असता दोषनाहीं, असे ह्मणतात.

उपांगललिताव्रत.

आश्विन शुद्ध पंचमीचे दिवसी उपांगललिता देवीचें व्रत करावे. ह्या व्रताविषयी पंचमी अपराह्णकालव्यापिनी ध्यावी. कारण, उपांगललितेची पूजा अपराह्णकालीच करावी असे सांगितले आहे. जर दोन दिवसी संपूर्ण अपराह्णकालव्याप्ति असेल, अथवा दोन दिवसी सारखी किंवा कमी जास्ती अपराह्णकाली एकदेशव्याप्ति असेल तर युग्मवाक्य आहे याकरिता पूर्व दिवसाचीच ध्यावी. दुसऱ्या दिवसीच अपराह्णकाली व्याप्ति असेल तर दुसऱ्या दिवसाचीच ध्यावी. कोणी ग्रंथकार तर रात्रिव्यापिनी घेतात; व पूजा इत्यादिक रात्राचे ठिकाणीच, करितात त्याविषयी मूळ विचार करावा. ह्या उपांगललिताव्रताचा पूजा इत्यादिक विधि अन्यग्रंथी प्रसिद्ध आहे; याकरितां एथें सांगत नाहीं.

सरस्वतीपूजन.

आश्विनशुद्ध पक्षामध्ये मूळ नक्षत्रीं पुस्तकांचे ठिकाणी सरस्वतीचें आवाहन करून पूजा करावी. कारण, 'मूलाचे ठिकाणी सरस्वतीचें आवाहन, पूर्वाषाढांचे ठिकाणी पूजा, उत्तरा

नक्षत्री बलिदान, व्यापि श्रवण नक्षत्री विसर्जन, व्याप्रमाणे करावी असे वचन आहे. व्या विषयी, “ दररोज पूजा करावी, ” असे द्वादश्यामलांत वचन आहे, यास्तव, मूल नक्षत्री “ आवाहनं तदंगभूतं पूजनंच करिष्ये ” इत्यादिक संकल्प करून आवाहन व पूजन हीं करावी. पूर्वाषाढा नक्षत्री, “पूजनं करिष्ये,” असा संकल्प करून आवाहनरहित नुस्ती पूजाच करावी. उत्तरा नक्षत्री “ बलिदानं तदंगभूतां पूजांच करिष्ये, ” असा संकल्प करून बलिदान, पूजा हीं करावी. श्रवणनक्षत्री, “ विसर्जनं कर्तुं तदंग भूतां पूजां करिष्ये, ” असा संकल्प करून पूजा करावी, व यानंतर विसर्जन करावे, याप्रमाणे क्रम जाणावा. त्यामध्ये सरस्वतीचे आवाहन करावयाचे ते, सूर्यास्ताच्या पूर्वी सहा घटिका असा जो मूळाचा प्रथम चरण त्याचे ठिकाणी करावे. सूर्यास्ताच्या पूर्वी सहा घटिकांहून कमी मूळाचा चरण असेल किंवा रात्री प्रथम चरण असेल तर रात्रीचा धेण्याविषयी विशेष वचन नाही याकरितां दुसरा, तिसरा, इत्यादिक चरणीं दुसऱ्या दिवसांचे आवाहन करावे. याप्रमाणे पूर्वाषाढादिक नक्षत्रे पूजा इत्यादिकांला दिवसव्यापिनी असतील तींच घ्यावी. विसर्जन करणे ते तर, श्रवणाचा पहिला भाग रात्रीमध्ये गेला असला तत्रापि विशेष वचन आहे याकरितां त्याचे ठिकाणीच करावे. ते विसर्जन रात्रीच्या पहिल्या प्रहरा पर्यंतच करावे असे वाटते.

पत्रिकापूजन.

यानंतर सप्तमी, अष्टमी व नवमी ह्या तीन दिवसांचे ठिकाणी पत्रिकापूजन करावे. पत्रिकापूजनाविषयी सप्तमी इत्यादिक तीन तिथि, सूर्योदयी दोन घटिका असल्या तरी त्या घ्याव्या. या पत्रिकापूजनांचे ठिकाणी अधिवासन करणे इत्यादिक प्रयोगांचा विरतार कौस्तुभादिक ग्रंथी पाहावा. सप्तमी पासून तीन रात्रि असे जे नवरात्रकर्म करितात त्या विषयी सप्तमी, सूर्योदयानंतर दोन घटिकांहून अधिकव्यापिनी असेल ती घ्यावी. सूर्योदयानंतर दोन घटिकांपेक्षा कमी असेल तर पूर्व दिवसाची घ्यावी.

महाष्टमी.

आश्विनशुद्ध अष्टमी तिळा महा अष्टमी असे ज्ञणतात. ही अष्टमी सूर्योदयी एका घटिका असली तथापि नवमीयुक्त घ्यावी. फार थोडी अशा सप्तमीने युक्त असेल ती सर्वथा टाकावी. जेव्हां पूर्व दिवसी सप्तमीने युक्त असून दुसऱ्या दिवसी सूर्योदयकाली सर्वथा नसेल किंवा एका घटिकेपेक्षा कमी असेल तेव्हां पूर्व दिवसाची, सप्तमीने विद्ध असली तथापि ती सप्तमीयुक्त घ्यावी. ही अष्टमी, मंगळवाराचा योग असेल तर अति

प्रशस्त होय. जेव्हां पूर्व दिवशी साठ घटिका अष्टमी असून दुसऱ्या दिवशी दान तान घटिका शेष अष्टमी असेल तेव्हां नवमीने युक्त असली तत्रापि दुसऱ्या दिवसाची टाकून संपूर्ण तिथि आहे याकारितां पूर्व दिवसाचीच ध्यावी. याप्रमाणे नवमीचा क्षय होऊन दशमीच्या दिवशी सूर्योदयानंतर अर्ध्याहे शेष नसेल तर नवमीने युक्त असा सूर्योदय-कालव्यापिनी अष्टमी टाकून सप्तमीने युक्त असेल तीच अष्टमी ध्यावी. पुत्रवान् असतील खांनीं अष्टमीचे दिवशी उपोषण करूं नये. उपोषण करण्याचा कुञ्जचार असेल तर कांहीं फलाहार करून उपोषण करावें: महानवमी तर बलिदानाचाचून इतर कर्तव्ये र्ही पूजा, उपोषण इत्यादिक साविषयी अष्टमीने विद्द असेल ती ध्यावी. जर ती नवमी, अष्टमीच्या दिवशी सायंकाळी सहा घटिका असेल तर त्या दिवसाचीच ध्यावी. सहा घटिकांहून कमी असेल तर दुसऱ्या दिवसाचीच ध्यावी. नवमीचे दिवशी कर्तव्य जें महा बलिदान साविषयी नवमी, दशमीने विद्द असेल ती ध्यावी. जेव्हां शुद्धाधिक नवमी असेल तेव्हां संपूर्ण तिथि आहे याकारितां बलिदानसुद्धां पूर्व दिवसांच करावें. पूजा करणें ती अष्टमी व नवमी यांचे संधीचे ठिकाणी करावी. अष्टमी व नवमी ह्या दोन तिथि निरनिराळ्या असतील तर, दिवसा किंवा रात्री अष्टमीची शेवटची घटिका एक व नवमीची पहिली घटिका एक, ह्या दोन घटिकांमध्ये पूजा करावी. जेव्हां अष्टमी व नवमी यांचा योग मध्याह्नकाळी किंवा अपराह्नकाळी असेल तेव्हां अष्टमीची पूजा आणि नवमीची पूजा ह्या दोनही एकाच दिवशी प्राप्त होतात. यास्तव, “अष्टमीनवमी पूजा व खांच्या संधिसंबंधी पूजा ह्या एकतंत्राने कारितां,” असा संकल्प करून तंत्रेकरून पूजा करावी. जर शुद्धाधिक अष्टमी असेल तर पूर्व दिवशी अष्टमीसंबंधी पूजा. दुसऱ्या दिवशी संधिपूजा आणि एकतंत्राने, नवमीसंबंधी पूजा याप्रमाणे पूजा करावी. ह्या नवरात्रामध्ये स्वतां पूजा करण्याविषयी अशक्त असेल तर दुसऱ्याकडून करावी, सोळा उपचारांनीं विस्तृत असा पूजा करण्यास असमर्थ असेल तर गंधादिक पंचोपचाराने पूजा करावी. नवमीचे ठिकाणी पूजा करून होम करावा. कोणी ग्रंथकार अष्टमीचे ठिकाणीच होम करावा असें लक्षणतात. दुसरे कोणी ग्रंथकार तर अष्टमीचे ठिकाणी होमाचा आरंभ करून नवमीमध्ये होम समाप्त करावा. तो होम अरुणोदयकाळी आरंभून सायंकाळपर्यंत अष्टमी व नवमी यांचे संत्रामध्ये करावा. अष्टमी व नवमी यांचा संधि रात्रीमध्ये असेल तर, रात्री होमादिक करणें अयोग्य आहे. याकारितां नवमीचे ठिकाणीच होमाचा आरंभ व समाप्ति करावी, असें लक्षणतात. याविषयी जज्ञा ज्याचा कुलाचार असेल त्या प्रमाणे व्यवस्था जाणावी. तो होम नवार्णव मंत्राने करावा. अथवा “जयंती मंगला

काली०" या श्लोकमंत्राने करावा. किंवा "नमो देव्यै महादेव्यै." ह्या श्लोककरून करावा अथवा सप्तशतीच्या श्लोकांनी, अथवा कवच, अर्गला, आणि कालक हीं तीन जीं रहस्ये त्यांचे श्लोकांनीं युक्त, असे सप्तशतीस्तोत्राचे जे सातशे मंत्र त्यांहींकरून करावा. सप्तशतीच्या मंत्रांचा विभाग (कोठपासून किती मंत्र तो) दुसऱ्या ग्रंथीं पाहावा. या होमाविषयींहि अनेक प्रकार आहेत त्यांची व्यवस्था जसा कुळाचार असेल त्याप्रमाणे जाणावी. होमाचीं द्रव्ये—घृतयुक्त व पांढऱ्या तिळांनीं युक्त असे पायस घ्यावे. अथवा नुस्ते तिळांनींच होम करावा. क्वचित् अन्य ग्रंथीं पळताचीं पुष्पे, दूर्वा, मोहऱ्या, भाताच्या डाढ्या, सुगारी, यव, नारळ, रक्तवंदनाचे तुकडे, नाना प्रकारचीं फळे हे पदार्थ पायसांतीं मिश्रित करावे असे सांगितले आहे. होम करणे तो जपाच्या दशांश करावा. नृसिंह, भैरव इत्यादिक देवतांच्या मंत्रांचा होम करण्याविषयीं कुळाचार असेल तर तोहि करावा. याविषयीं ग्रहमखासह विस्तारपूर्वक होमाचा प्रयोग कौस्तुभग्रंथीं सांगितल आहे तो पाहावा.

आतां बलिदान सांगतो.

ब्राह्मणाने बलिदान करणे तें उडीद इत्यादिकांनीं मिश्रित अशा अन्नकरून करावे अथवा कूपडांकरून करावे. किंवा तुपाचे अथवा यवांचे पीठ इत्यादिकांचे सिंह, व्याघ्र, मनुष्य, मेघ इत्यादिक करून त्यांच्या खड्डांने मारावे. ब्राह्मणाने पशूच्या मांसाचे किंवा मद्यादिकांचे बलिदान केले अतःतां तो ब्राह्मणपापासून भ्रष्ट होतो. सकाम असे जे क्षत्रिय इत्यादिक त्यांनीं, सिंह, व्याघ्र, मनुष्य, भेंडा, डुकर, हरिण; पक्षी, मत्स्य, मुंगूस, घोरपड, इत्यादिक प्राण्यांचा व आपल्या शरीरांतील रुधिर इत्यादिकांचा बलि द्यावा, कृष्णसार मृगाचा बलि क्षत्रियादिकांनीं सुद्धां देऊं नये. या बलिदानाविषयीं मंत्र कोणते इत्यादिक प्रकार निर्णयसिंधूत सांगितला आहे तो पाहावा. ह्या नवरात्राचे ठिकार्थी शतचंडी, सप्तचंडी यांचा प्रयोग कौस्तुभ इत्यादि ग्रंथीं पाहावा. जननाशीच किंवा मृताशीच असेल तथापि नवमीचे दिवसीं होम, व घट, देवता इत्यादिकांचे उत्थापन करणे तें ब्राह्मणाकरून करवून आपण पारणा करून आशीच गेल्यानंतर ब्राह्मणभोजन, दक्षिणा इत्यादिक करावे. याप्रमाणे रजस्वला जी तिणेंहि पारणाकालीं पारणा करून शुद्धि झाल्यानंतर दान इत्यादिक करावे. विधवेनें तर, रजोदोषकालीं, भोजन करूं नये असा निषेध सांगितला आहे, यास्तव पारणा करणे तीहि शुद्धि झाल्यानंतरच करावी. याप्रमाणे दुसऱ्या व्रतांविषयींहि जाणावे: राजांनीं प्रतिपदेपासून अष्टमीपर्यंत सर्व लोहादि शस्त्रांची स्थापना करावी, व छत्र, चामर इत्यादिक राजचिन्हें; हत्ती, घोडे इत्यादिक; धनुष्य इत्यादिक

शस्त्रे; नगरा, दुंदुभि इत्यादिक नाचे या सर्वांचे पूजन, होम इत्यादिक करावे. जे लोक घोडे पाळतात ते राजे नसेल तयापि त्यांनी स्वाती नक्षत्राने युक्त अशा प्रतिपदेचे दिवसी किंवा द्वितीयेचे दिवसी आरंभ करून नवमीपर्यंत वाजिनाराजन कर्म (घोड्यांचे पूजन करून आरती करणे ते) करावे. यामध्ये उच्चैःश्रव्याची पूजा व रवेतपूजा प्रतिमेचे ठिकाणी कराव्या. घोड्यांची प्रत्यक्ष पूजा व आरती करावी. ह्या दोनहि कर्मांचे ठिकाणी त्यांच्या पूजेचे मंत्र व होम इत्यादिकांचे मंत्र, आणि यांचा विस्तारपूर्वक सर्व प्रयोग हे सर्व कौस्तुभांत सांगितले आहे. हल्लीं घोडे पाळणारे प्राकृत जन तर विजयादशमीचे दिवसीं घोड्यांच्या खान घालून व पुष्पांच्या माळांनीं खाला शृंगारून अश्वशाळेमध्ये नेऊन बांधतात. त्या विषयी, "गंधर्वं कुरुजातस्त्वं माभूयाः कुलदूषकः ॥ ब्रह्मणःसत्यवाक्येन सोमस्य वरुणस्यच ॥ प्रभावाच्चदुताशस्य बर्धय त्वं तुरंगमान् ॥ रिपून् विजित्य समरे सह भर्त्रा सुखी भव," या मंत्रांनीं केवळ अश्वीची पूजा करण्या विषयीहि योग्य आहे.

पारणा व देवतांचे विसर्जन यांचा काल,

देवतांचे विसर्जन करणे ते दशमीचे दिवसीं करावे जर दोन दिवसीं दशमी असेल तर पूर्व दिवसाची जी दशमी तिचे ठिकाणी श्रवणनक्षत्राच्या शेषटच्या पादाचा योग असेल तर त्या कार्तीच विसर्जन करावे. पूर्वदिवसीं दशमीचे ठिकाणी श्रवणाच्या अंश पादाचा योग नसेल तर दुसऱ्या दिवसाचे दशमीचे ठिकाणीच करावे. दुसऱ्या दिवसीं दशमी नसेल तर पूर्व दिवसाच्या दशमीचे दिवसीं नक्षत्रयोग असो किंवा नसो तथापि करावे. नक्षत्रयोगाच्या अनुरोधाने करावयाचे जे विसर्जन ते अपराण्हकार्तीहि होतें. नक्षत्रयोगाच्या अनुरोधाने करणे नसेल तर प्रातःकार्तीच करावे. यामध्ये मृत्तिका इत्यादिकांची प्रतिमा असेल तर तिचे विसर्जनकरून उदक इत्यादिकांत ती टाकावी. परं परागत पूजलेली जी धातुची मूर्ति तिचे घटादिक स्थानापासून "उत्तिष्ठ०" इत्यादिक मंत्रांनीं उत्थापन मात्र करावे; विसर्जन करूं नये. ज्या दिवसीं देवतेचे विसर्जन झाले त्याच दिवसीं, पूर्वी धारण केलेले नियम सोडावे हे योग्य आहे, याकरितां विसर्जन झाल्या नंतर त्याच दिवसीं पारणा करावी. दुसरे ग्रंथकार तर दशमीचे ठिकाणी विसर्जनाचा विधि युक्त आहे तथापि नवमीचे ठिकाणीच पारणा करावी; कारण, "नवमीचे ठिकाणी पारणा करावी आणि दशमीचे दिवसीं अभिषेक करून मूर्तीचे विसर्जन करावे," इत्यादिक वचन आहे असें क्षणतात. याविषयीं असी व्यवस्था, पूर्व दिवसीं स्वल्प अष्टमी युक्त नवमी, दुसऱ्या दिवसीं पारणा होईल इतकी नवमीयुक्त दशमी आणि तिसऱ्या दिवसीं श्रवणनक्षत्रयुक्त असी विसर्जनास योग्य दशमी, तेथे अष्टमीचे व नवमीचे असीं दोन उणे

पूर्वे प्रथम दिवसीं येतात यास्तव अवशिष्ट राहिलेल्या नवमीमध्ये पारणा करून शेष राहिलेल्या दशमीचे ठिकाणी विसर्जन करावे. जेव्हा शेष राहिलेल्या नवमीचे दिवसींच श्रवणयुक्त असी विसर्जनास योग्य दशमी असेल तेव्हा विसर्जन करून नंतर पारणा करावी. जेव्हा पूर्वे दिवसीं साठ घटिका अष्टमी, दुसऱ्या दिवसीं अष्टमीशेषयुक्त असी नवमी, आणि तिसऱ्या दिवसीं नवमीशेषयुक्त दशमी असेल तेव्हा नवमीयुक्त अशा दशमीचे ठिकाणीच विसर्जन करून नंतर पारणा करावी. जेव्हा पूर्वे दिवसीं साठ घटिका नवमी, दुसऱ्या दिवसीं नवमीशेषयुक्त असी दशमी असेल तेव्हाही नवमीयुक्त दशमीचे ठिकाणीच विसर्जन व पारणा करावी. जेव्हा अष्टमी, नवमी आणि दशमी ह्या तीनही तिथि सूर्योदयापासून अस्तमानपर्यंत अशा अखंड असून त्या त्या काला पर्याप्त असतील तेव्हा दक्षिण देशांतील लोकांचा आचार, नवमीचे ठिकाणीच पारणा करण्याचा आहे यास्तव नवमीचे ठिकाणीच पारणा व विसर्जन हीं करावीं. दशमीचे ठिकाणीच पारणा करण्याचा ज्यांचा आचार असेल त्यांनीं पारणा व विसर्जन हीं दोनही दशमीमध्येच करावीं.

विजयादशमीचा निर्णय.

ती विजयादशमी दुसऱ्या दिवसींच अपराण्हकालव्यापिनी असेल तर दुसऱ्या दिवसाचीच ध्यावी. जर दोन दिवसीं अपराण्हकालव्याप्ति असेल व दोनही दिवसीं श्रवणयोग असेल किंवा नसेल तत्रापि पूर्वे दिवसाचीच ध्यावी. याप्रमाणे दोन दिवसीं अपराण्हकालव्याप्ति नसेल तथापि व श्रवणयोग असेल किंवा नसेल तत्रापि पूर्वे दिवसाचीच ध्यावी. दोन दिवसीं अपराण्हकालव्याप्ति असेल किंवा नसेल आणि दोन दिवसांतून कोणत्याही एका दिवसीं श्रवणयोग असेल तर ज्या दिवसीं श्रवणयोग असेल तीच ध्यावी. दोन दिवसीं अपराण्हकालीं एकदेशव्याप्ति असतांही याप्रमाणेंच निर्णय जाणावा. जेव्हा पूर्वे दिवसींच अपराण्हकालव्याप्ति असेल व दुसऱ्या दिवसीं श्रवणयोग नसेल तेव्हाही पूर्वे दिवसाचीच ध्यावी. जेव्हा पूर्वे दिवसींच अपराण्हकालव्यापिनी असेल व दुसऱ्या दिवसीं सहा घटिका किंवा कांहीं अधिक व्यापिनी असून अपराण्हकालाच्या पूर्वीच समाप्त होत असेल आणि दुसऱ्या दिवसींच श्रवणयोग युक्त असेल तर दुसऱ्या दिवसाचीच ध्यावी. कारण, अपराण्हकालीं दशमी नसली तथापि, “ज्या तिथीला घेऊन सूर्य उदय पावतो ती तिथी संपूर्ण जाणावी,” इत्यादिक साक्यबोधक वचनेंकरून. उदयकालीं व्यापिनी असून श्रवणयुक्त असी अव्य दशमी असली तथापि ती कर्मकालीं घेण्याविषयी सांगितले आहे. निर्णयासिंधूमध्ये तर

दुसऱ्या दिवसीं अपराह्णकालीं श्रवण असेल तरच दुसऱ्या दिवसाची ध्यावी, अपराह्णकालाच्या पूर्वीच श्रवण संपले तर पूर्व दिवसाचीच ध्यावी, असे सांगितले आहे, व हें योग्यहि आहे. जेव्हां दुसऱ्या दिवसींच अपराह्णकालव्याप्ति असेल आणि पूर्व दिवसींच अपराह्णकालानंतर सायान्हकाल इत्यादिक कालीं श्रवणयोग असेल तेव्हां तर दुसऱ्या दिवसाचीच ध्यावी, असे मला वाटते. ह्या विजयादशमीचे दिवसीं अपराजितापूजन, शमीपूजन, सीमोह्लघन, देशांतरीं गमन करण्याचें प्रस्थान इत्यादिक कृत्ये करावी. अपराजिता देवीच्या पूजेचा प्रकार— अपराह्णकालीं ग्रामापासून ईशान्यदिशेचे ठिकाणी जाऊन स्वच्छस्थळीं भूमि सारवून चंदन इत्यादिकानें अष्टदल काढून, “ मम सकुटुंबस्य क्षेमसिद्धयर्थं अपराजितापूजनं करिष्ये, ” असा संकल्प करून अष्टदलाच्या मध्यभागीं “ अपराजितायै नमः ” या नाममंत्रानें अपराजितेचें आवाहन करून तिच्या दक्षिण प्रदेशीं “ क्रियाशक्त्यै नमः ” ह्या मंत्रानें जया देवीचें आवाहन करावें. नंतर वामभागीं “ उमायै नमः ” या मंत्रानें विजया देवीचें आवाहन करून, “ अपराजितायै नमः, जयायै नमः, विजयायै नमः ” ह्या नाममंत्रानीं षोडशोपचारपूजा करून प्रार्थना करावी. प्रार्थनेचा मंत्र— “ इमां पूजां मया देवि यथाशक्ति निवेदितां ॥ रक्षार्थं समादाय ब्रज स्वस्थानमुत्तमं. ” राजानें संकल्प करणें असेल तर “ यात्रायां विजयसिद्धयर्थं, ” असा विशेष जाणावा. पूजा, नमस्कार शाल्यानंतर, “ हारेणतु विचित्रेण भास्वत्कनकमेखला ॥ अपराजिता भद्ररता करोतु विजयं मम, ” इत्यादिक मंत्रानीं विजयाची प्रार्थना करून पूर्वी सांगितल्या प्रमाणें विसर्जन करावें. याप्रमाणें संक्षेप सांगितला. तदनंतर सर्व जनांनीं ग्रामापासून बाहेर जाऊन ईशान्यदिशेचे ठिकाणीं राहणारा जो शमीवृक्ष त्याची पूजा करावी. सीमोह्लघन करणें तें शमीपूजनाच्या पूर्वी किंवा नंतर करावें. राजा असेल तर त्यानें घोड्यावर बसून उपाध्याय, प्रधान यां सहवर्तमान शमीवृक्षाचे मूळाजवळ जाऊन घोड्यावरून खालीं उतरून पुण्याहवाचन करून शमीचें पूजन करावें. नंतर कार्याचे उद्देश प्रधानासह बोलत हात्साता प्रदक्षिणा करावी. शमीपूजेचा प्रकार— “ मम दुष्कृतामंगलादिनिरासार्थं क्षेमार्थं यात्रायाविजयार्थं च शमीपूजां करिष्ये, ” शमी न मिळेल तर, “ अश्मंतकवृक्षपूजां करिष्ये, ” असा संकल्प करावा. राजा असेल तर त्यानें शमीवृक्षाचे मूळाचे ठिकाणीं दिक्पाल व वास्तुदेवता यांची पूजा करावी. ‘ अमंगलानां शमनीं शमनीं दुष्कृतस्य च ॥ दुःखप्रणाशिनीं धन्यां प्रपदेहं शमीं शुभां, ’ या मंत्रेंकरून शमीची पूजा करावी पूजा शाल्यानंतर, “ शमी शमयते पापं शमी लोहित कंटका ॥ धरित्र्यर्जुनबाणानां रामस्य प्रियवादीनीं ॥ करिष्यमाणयात्रायां यथाकाळ

सुखं मया ॥ तत्र निर्विघ्नकर्त्री त्वं भव श्रीरामपूजिते," ह्या मंत्रेकरून शमीची प्रार्थना करावी. अश्मंतकाचे पूजन केलें असेल तर ॥ "अश्मंतक महावृक्ष महादोषनिवारण ॥ इष्टानां दर्शनं देहि शत्रूणांच विनाशनं," ह्या मंत्रेकरून अश्मंतकाची प्रार्थना करावी. राजानें शत्रूची मूर्ति करून ती शस्त्रानें छेदावी. प्राकृत जन शमीवृक्षाच्या खांद्या तोडून आणतात ते निर्मूल आहे. "शमीवृक्षाच्या मुळांतील ओली मृत्तिका अक्षतांसह घेऊन ती वाजत गाजत आपल्या घरी आणावी. सौभाग्यवती स्त्रियांनीं मंगल आरती केली होत्साता, नंतर आपण आपल्या इष्टमित्रांसहवर्तमान भूषण, वस्त्रे इत्यादिक धारण करावी. " ह्या विजयादशमीचे दिवसीं अन्य देशी जाणारे असतील त्यांनीं चंद्र इत्यादिक अनुकूल नसेल तथापि विजय मुहूर्ताचे ठिकाणीं प्रयाण करावें. या प्रयाणाविषयीं विजयमुहूर्त दोन प्रकारचा आहे. पहिला प्रकार— सायं कालीं किंचित् संधिकाल टाकून किंचित् नक्षत्रे दिसायला लागतात असा जो काल तो विजयकाल, तो सर्व कार्ये व अर्थ सफल करणारा आहे. दुसरा प्रकार—सूर्योदयापासून अकरावा जो मुहूर्त याला विजय असें झणतात, या विजयकालीं आपल्या जयाची इच्छा करणारे अशा सर्वांनीं प्रयाण करावें. या दोहोंतून कोणत्या एका दशमीयुक्त मुहूर्तावर प्रस्थान करावें एकादशीयुक्त मुहूर्तावर करूं नये. " आश्विनशुद्ध दशमी, तिला विजया अशी संज्ञा असून ती सर्व शुभकार्यां विषयीं शुभ आहे. प्रयाणाविषयीं तर विशेषकरून शुभ होय. श्रवणयुक्त असेल तर अतिप्रशस्त, " असे ज्योतिष ग्रंथाचें वचन आहे, याकरितां विशेष मासांची अपेक्षा न करितां होणारी अर्सी दुसरीं कुर्ये ह्या विजया दशमीचे दिवसीं चंद्र इत्यादिक अनुकूल नसेल तथापि करावी. —विशेषमासामध्ये करावयाचीं अर्सी जीं चूडाकर्म, विष्णु इत्यादिक देवतांची प्रतिष्ठा इत्यादिक कुर्ये तीं करूं नयेत. राजांच्या पट्टाभिषेकाविषयीं नवमीनें विद्व असी दशमी श्रवणयुक्त असेल तथापि पेऊं नये, तर दुसऱ्या दिवसीं सूर्योदयव्यापिनी असेल तीच ध्यावी.

कार्तिकस्नानाचा निर्णय.

आश्विनशुद्ध दशमी, एकादशी, किंवा पौर्णिमा यांतून कोणत्याहि दिवसीं कार्तिकस्नानाला आरंभ करावा. पहाटे दोन घटिका रात्र शेष राहिल्यानंतर उठून तीर्थ इत्यादिकांचे ठिकाणीं जाऊन दररोज एक महिनापर्यंत कार्तिकस्नान करावें. याचा प्रकार—विष्णूचें स्मरण करून देशकालांचा उच्चार केल्यानंतर, " नमः कमलनाभाय नमस्ते जलशायिने ॥ नमस्तेस्तु हृषीकेश गृहाणार्धं नमोस्तुते," या मंत्रेकरून अर्ध देऊन, " कार्ति-

केऽहं करिष्यामिं प्रातःस्नानं जनार्दन ॥ प्रीत्यर्थं तव देवेश दामोदर मयासह ॥ ध्यात्वा
 ऽहं त्वांच देवेश जलेस्मिन् ज्ञातुमुद्यतः ॥ तव प्रसादात्पापं मे दामोदर विनश्यतु, ” ह्या
 मंत्रांनीं स्नान करून पुनः दोन वेळ अर्घ्य द्यावें, त्याचा मंत्र — “ निघ्नैवैभित्तिकेरुष्ण
 कार्तिके पापनाशने ॥ गृहाणार्घ्यमयादत्तराधयासहितो हरे ॥ व्रतितः कार्तिके मासि स्नातस्य
 विधिवन्मम ॥ गृहाणार्घ्यं मया दत्तं राधया सहितो हरे. ” कुरूक्षेत्र, गंगा, पुष्कर इत्या-
 दिक विशेषतीर्थांचे ठिकाणीं विशेष फलें जाणावीं. या नंतर दुसराहि विशेष प्रकार
 सांगतां.—“सर्व कार्तिक मासपर्यंत निघ्न स्नान करणारा, जितेंद्रिय, जय करणारा, हवि
 ष्यान्नभोजन करणारा, व तपश्चर्येचे क्लेश सहन करणारा, असा जो तो सर्व पापां
 पासून मुक्त होतो.” “भागीरथी, विष्णु, शिव, आणि सूर्य यांचें स्मरण करून जलांत
 प्रवेश करावा, व नाभिप्रमाण उदकांत उभा रहात होतासाता व्रत धारण करणारा जो
 स्नानें यथाविधि स्नान करावें. हे कार्तिकस्नान करणें तें, प्रातःस्नान व प्रातःसंध्या हीं
 करून नंतर करावें; कारण प्रातःस्नान व प्रातःसंध्या हीं केल्यावांचून इतर कर्म कर-
 ण्याला अधिकार नाही. जरी प्रातःसंध्येची समाप्ति सूर्योदयकालीं होते असें आहे तत्रापि
 याविषयीं विशेष वचन आहे यास्तव उदयाच्या पूर्वी प्रातःसंध्या समाप्त करून कार्तिक
 स्नान करावें, असें निर्णयसिंधूत सांगितलें आहे. इतर ग्रंथांत याप्रमाणें आढळत
 नाही. एक महिन्यापर्यंत स्नान करण्याला सामर्थ्य नसेल तर तीन दिवसां स्नान करावें.
 कार्तिकमाससंबंधीं असां इतर जीं व्रतें खांचाहि प्रारंभ ह्याच दिवसां करावा. तीं व्रतें
 असीं,—“ जो कार्तिकमासांत लक्षसंख्याक तुलसीपत्रांनीं हरीचें पूजन करितो त्याला हे
 मुनिश्रेष्ठा, दर एक पत्रापत्राचे ठिकाणीं मौक्तिक समर्पण केल्याचें फळ मिळतें. तुल-
 सीच्या मंत्रांनीं हरि, हर यांचें पूजन केलें असतां मुक्तिफल मिळतें. तुलसीची
 लावणी, पालन, स्पर्श हीं केल्यानें पापांचा क्षय होतो. तुलसीच्या छायेमध्ये श्राद्ध केलें
 असतां पितरांची तृप्ति होते. तुलसींनीं शोभायमान अशा तीर्थरूपी गृहाचे ठिकाणीं
 पमाचे दूत येत नाहीत, ” इत्यादिक तुलसीचें माहात्म्य सांगितलें आहे. याप्रमाणें आवळी-
 चेंहि माहात्म्य सांगितलें आहे. “कार्तिक मासांत आवळीच्या वृक्षाखालीं चित्वाच्यानीं
 हरीचा संतोष करावा; ह्यजे चित्वाच्या नैवेद्य समर्पण करावा, व भक्तीनें ब्राह्मणांला
 भोजन देऊन स्वकीय बांधवांसहवर्तमान आपण भोजन करावें. आवळीच्या छायेचे ठिकाणीं
 श्राद्ध केलें असतां आणि आवळीच्या पत्रांनीं व फळांनीं हरीची पूजा केली असतां
 महाफल मिळतें; कारण आवळीचे ठिकाणीं देव, ऋषि, सर्व यज्ञ, आणि सर्व तीर्थ हीं
 रहातात ” असें वचन आहे; ह्या कार्तिक मासामध्ये हरिजागराचा विधि करावा. “कार्तिक
 मासांत आरुणोदयकालीं जो दामोदराच्या पुढें जागरण (कीर्तनादिकानें) करितो त्याला

हे षडा मना, सहस्रगौदानाचें फळ मिळते. शिव, विष्णु यांचे देवालयंत जागर करावा. शिव, विष्णु यांचीं देवलये नसतील तर इतर सर्व देवालयांचे ठिकाणीहि हरिजागर करावा. किंवा आश्वयूष्याच्या मूलांचे ठिकाणी अथवा तुलसीच्या वनाचे ठिकाणीहि जागर करावा. विष्णूच्या नवळ जो विष्णूच्या कथांचें गायन करितो त्याला सहस्रगौदान केल्याचें फळ मिळते. वार्ये वाजविणारा जो त्यालाहि वाजपेय यज्ञाचें फळ मिळते. नृत्य करणारा (हरिजागरांत) त्याला सर्व तीर्थांमध्ये स्नान केल्याचें फळ मिळते. हरिजागर करणारे त्याला द्रव्य दिलें असतां सर्व पुण्य मिळते. पूजा, दर्शन इत्यादिक केलें असतां हरिजागराचें षष्ठांश पुण्य मिळते." असें कौस्तुभांत सांगितलें आहे. देवालयादिक नसेल तर, ब्राह्मण, विष्णूभक्त, पिंपळ, किंवा वटवृक्ष यांची सेवा करावी असें कौस्तुभांतच सांगितलें आहे. कार्तिकमासांत कमलें, तुलसी, जाई, चमेली, अगस्तिपुष्पें हीं प्रशस्त आहेत; याकरितां या पुष्पांनीं विष्णूची पूजा करावी, व दीपदानहि करावें कार्तिक मासांत एक महिन्यापर्यंत उपोषण, वानप्रस्थ (तपाच्या उद्देशानें वनांत राहणारे), संन्यासी आणि विधवा यांनीं करावें, गृहस्थाश्रमी जे त्यांनीं करूं नये. कार्तिकमासांत व्रतधारण केलें असेल त्यानें रुच्छू, अतिरुच्छू, अथवा प्राजापय, करावें. किंवा एकरात्र, त्रिरात्र असें कार्तिकव्रत करावें अथवा दुधाचा आहार, शाकाहार, फलाहार सांतून कोणतोंहि करावें. अथवा पवांचे अन्नाचा आहार करावा.

कार्तिक मासांतील वर्ज्य पदार्थ.

कार्तिकमासामध्ये कांदा, लसण, हिंग, भुईकोड, गाजरें, मुठा, पांढरा भोपळा, शेव ग्याचा पाला आणि शेगा, वांगें, कूपमांड, डोरली वांगें, कलिगण, कवठ, तेल, लोणचीं दोन वेळ शिजवलेलें अन्न, शिळें अन्न, करपलेलें अन्न, हे पदार्थ वर्ज्य करावे. उडीद, मसुरा, हरभरे, कुठिय, पावटा, पांढरा पावटा, चवळी, काळा वाल, घेवडा, आणि तूर इत्यादिक द्विदल धान्ये वर्ज्य करावीं, सप्तमीचे दिवसीं आवळे, तिल हे वर्ज्य करावे. अष्टमीचे दिवसीं नारळ, रविवारीं आवळे हे पदार्थ सर्वदा वर्ज्य करावे.

कोणत्या व्रताच्या समाप्तीचे दिवसीं कोणतीं दानें करावीं.

कांस्यपात्रांत भोजन वर्ज्य केलेल्या व्रताचे ठिकाणीं तुपांनें भरलेलें कांस्यपात्र द्यावें. वाचूः साग केला असेल तर तूप, क्षीर, साखर, यांचें दान समाप्तीचे दिवसीं करावें.

तेल सोडले असता खाजवदल तिळांचे दान करावे. कार्तिकमासांत भोजनकार्ळी मीन धरणारा त्याने तिळांसहवर्तमान घंटादान करावे. इतर मासांत भोजनकार्ळी मीन धारण केलें असेल तर सुवर्ण, उडीद याहीं युक्त असे तीस कोहळे द्यावे. कार्तिकमासी काश्यपाजांत भोजन केलें असतां कोटक भक्षण केलेअसें होतें. फलें वर्ज्य केलीं असतां जींफले वर्ज्यकेलीं असतील त्यांचें दान करावे.रस वर्ज्य केले असल्यास त्यात्या रसांचें दान करावे.धान्ये वर्ज्य केलीं असल्यास तीं तीं धान्ये द्यावीं.अथवा सर्व व्रतांचे ठिकाणीं गोदान करावे. “ सर्व दानें एकीकडे आणि दीपदान एकीकडे, ह्यजे सर्व दानांमध्ये दीप दान उत्तम आहे, याकरितां कार्तिकमासांत दीपदानाच्या पुण्याचा सोळावा अंश सुद्धां इतर दानें पावत नाहींत. ” इतकीं व्रतें होण्याचा संभव नसेल किंवा चातुर्मास्य व्रतांचा संभव नसेल तर कार्तिक मासांत कांहीं अल्प तरी अवश्य व्रत करावे. कारण ज्यांचा कार्तिकमास व्रतावांचून गेला त्यांना ह्या लोकीं लेशमात्र पुण्य मिळत नसून ते मूढबुद्धि व दुकरासारखे येतावे, असें वचन आहे. जी श्री, शालग्राम इत्यादिक देवांच्या पुढें रांगोळी इत्यादिक घालून स्वस्तिकें, सर्वतोभद्र इत्यादिक मंडळें घालते तिला स्वर्गादिक फळ मिळून सप्त जन्मपर्यंत वैधव्य प्राप्त होत नाहीं. कार्तिकमासामध्ये पुराण, इतिहास (भारत इत्यादिक) यांच्या श्रवणाचा आरंभ, व समाप्ति हीं करावीं.

पुराणश्रवणाचा विधि.

“पुराण वाचणारा ब्राह्मण असावा. इतर वर्णांचा असूं नये. ब्राह्मण श्रोता पुढें बसवून ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आणि शूद्र ह्या चार वर्णांला पुराणश्रवण करावे. पुराण वाचणारानें श्लोकवाचणें व ग्रंथाचा अर्थ सांगणें तो, विशेषेंकरून स्पष्ट,सावकाश, शांतवृत्ती नें, असें वाचावे व अर्थ सांगावा. आणि ज्यामध्ये असो, पदें, कला, स्वर, रस, भाव हीं यथायोग्य असावीं. याप्रमाणें हे राजा, पुराण वाचणारानें ग्रंथाचा अर्थ ब्राह्मणादिक सर्व जातींला सांगावा.याप्रमाणें जो ब्राह्मण पुराण वाचतो त्याला व्यास असें ह्मणतात. असीं पुराणें समाप्त झाल्यानंतर वाचकाची यथाशीक वस्त्रें,अलंकार इत्यादिकेंकरून पूजा करावी. ज्याने वाचकाची पूजा केली त्याला सर्व देव प्रसन्न होतात. हे राजा, ज्याच्या श्राद्धाचे ठिकाणीं भक्तिपुरःसर वाचक ब्राह्मण भोजन करितो, त्याचे पितर शंभर वर्षेपर्यंत तृप्त होतात: ”ज्याला पुत्रकामना असेल त्याने कार्तिकस्नानकार्ळी, काशीखंडांत सांगितलेलें जें अभिलाषाष्टक स्तोत्र त्याचा पाठ करावा. ह्याच दिवसी दुग्धव्रत समाप्त करून दुधाचें दान करावे, आणि द्विदल व्रताचा संकल्प करावा. ह्या द्विदल धान्यामध्ये उत्पत्तिकार्यां ज्यांचें द्विदल दिसतें तीं वर्ज्य करावीं, असें कोणी ग्रंथकार ह्मणतात. ~दुसरे

ग्रंथकार तर, अशा लक्षणोविषयीं लक्षणजे उत्पत्तिकालीं ज्यांचें द्विदल दिसतें तीं वर्ज्य करावीं याविषयीं प्रमाणभूत वचन नाहीं याकरितां स्वरूपेकरून ज्यांचें द्विदल दिसतें तीं ध्याये वर्ज्य करावीं, दुसरीं वर्ज्य करूं नयेत, व पत्र, पुष्पे इत्यादिकाहि वर्ज्य नाहीत असें लक्षणतात. याप्रमाणें इतर तांबूलभक्षण न करणें, इमश्रु न करणें इत्यादिकाहि व्रते जाणावीं. ह्या कार्तिक मासामध्ये आकाशदिवा लावावा, त्याचा प्रकार—सूर्यास्तसमयीं आपल्या गृहापासून जवळ पुरुषप्रमाण (साडेतीन हात) यज्ञास योग्य असें काष्ठ भूमीत पुरून त्या काष्ठाचे शिरोभागीं अष्टदल इत्यादिक आकारानें केलेले असें जें दीपाचें यंत्र त्याचे मध्यभागीं मुख्य दिवा लावून त्याच्या सभोंवार आठ दिशांला आठ दिवे लावावे, आणि देवाला अर्पण करावा. त्याचा मंत्र—“दामोदराय नमोस तुलायां दोलयासह ॥ प्रदीपं ते प्रयच्छामि नमोनंताय वेधसे,” ह्या मंत्रेकरून दिवा लावावा. याप्रमाणें मासपर्यंत आकाशदिवा लावला असतां महासंपत्ति प्राप्त होते.

कोजागरव्रत.

आश्विन पौर्णिमेचे दिवसीं कोजागरव्रत करावें. त्या व्रताविषयीं पौर्णिमा घेणें ती पूर्वे दिवसींच निशीथव्यापिनी असेल तर पूर्वे दिवसाचीं घ्यावी. जर दुसऱ्या दिवसींच किंवा दोनहि दिवसीं निशीथ व्यापिनी असेल, अथवा दोनहि दिवसीं निशीथकाळीं स्पर्श नसेल तर दुसऱ्या दिवसाचींच घ्यावी. कोणी ग्रंथकार, पूर्वदिवसींच निशीथव्यापिनी, व दुसऱ्या दिवसीं प्रदोषव्यापिनीच असी असेल तेव्हां दुसऱ्या दिवसाचीं घ्यावी, असें लक्षणतात. ह्या कोजागरव्रताचे ठिकाणीं लक्ष्मी व इंद्र यांची पूजा करून जागरण व द्यूत करावें. याविषयीं पद्मासनावर वसलेली असी जी लक्ष्मी, तिचें ध्यान करून अस्त-ताच्या राशीचे ठिकाणीं “ओं लक्ष्म्यै नमः” या मंत्रानें आवाहनादिक षोडशोपचारानीं पूजा करावी, आणि “ मनस्ते सर्वदेवानां वरदासि हरिप्रिये ॥ या गतिस्वप्नपन्नानां सा मे भूयास्त्वदर्चनात्,” यामंत्रेकरून नमस्कार करावा. नंतर, “चतुर्दंतसमारूढो वज्रपाणिः पुरंदरः ॥ शचीपतिश्च ध्यातव्यो नानाभरणभूषितः” या मंत्रेकरून इंद्राचें ध्यान करून अक्षतांची राशि इत्यादिक ठिकाणीं “इंद्राय नमः” या मंत्रेकरून पूजा करून, “विचित्रै रावतस्थाय भास्वत्कुलिशपाणये ॥ पौलोभ्यालिंगितांगाय सहस्राक्षाय ते नमः” या मंत्रेकरून पुष्पांजलि देऊन नमस्कार करावा. “नारळांतील उदक प्राशन करून द्यूत आरंभावें. वर देणारी असी लक्ष्मी मध्यरात्रीं गृहाचे ठिकाणीं येऊन पाहते व कोण जागरण करीत आहे, द्यूत करून जो जागरण करितो त्याला मी द्रव्य देईन असें भाषण करिते.” नारळ, पोहे इत्यादिक पदार्थ देव, पितर यांला देऊन बांधवांसह आपण भक्षण

करावे. ह्याच पौर्णिमेचे दिवसी आश्वलायनशास्त्री यांनी आश्वयुजी कर्म करावे. परं दोन प्रकारचे असेल तर पूर्वाह्नसंधीचे ठिकाणी शेषपर्व असेल त्याचे ठिकाणी पूर्वी प्रकृतिदृष्टि करून नंतर आश्वयुजी कर्म करावे. अपराह्नसंधीचे ठिकाणी ही विकृति करून प्रकृतिदृष्टीचे अन्वाधान करावे. त्याचा प्रयोग इतर ठिकाणी पाहावा.

आग्रयणाचा काल.

आश्विन व कार्तिक या मासांत पौर्णिमा किंवा अमावास्या यांचे ठिकाणी आग्रयण करावे अथवा पूर्वी सांगितलेल्या मासामध्ये शुक्लपक्षातील कृत्तिकापासून विशालोपर्यंत जी चवदा नक्षत्रे त्यांचे ठिकाणी किंवा शुक्लपक्षातील रेवती नक्षत्राचे ठिकाणी व्रीह्याग्रयण करावे. याप्रमाणे श्रावण व भाद्रपद या मासांत पूर्वी सांगितलेल्या पर्वदिवसी अथवा नक्षत्रांचे ठिकाणी सावे यांचे आग्रयण करावे. चैत्र व वैशाख मासामध्ये पर्वा-दिकांचे ठिकाणी यवांचे आग्रयण करावे. व्यामध्ये पौर्णिमापर्व असेल तर संगवकालाच्या पूर्वसंधीचे ठिकाणी पूर्व दिवसी आग्रयण करून प्रकृतिदृष्टीचे अन्वाधान करावे. मध्यान्हकालाच्या पुढे संधि असेल तर संधिदिवसी आग्रयण करून प्रकृतिदृष्टीचे अन्वाधान करावे. मध्यान्हकाली अथवा संगवकालाच्या नंतर व मध्यान्ह्याच्या पूर्वी संधि असेल तर संधिदिवसी आग्रयणोष्टि करून प्रकृतिदृष्टि तत्काली करावी. अमावास्या पर्व असेल तर पूर्वाह्नकाली किंवा अपराह्नकाली संधि असल्यास यथाकाली दर्शोष्टि करून प्रतिपदे-मध्ये आग्रयणोष्टि करावी. याप्रमाणे नक्षत्राग्रयणाच्या पर्क्षांहे पौर्णिमेष्टीच्या पूर्वी, आणि अमावास्येष्टीच्या नंतर जसे होईल त्याप्रमाणे आग्रयण करावे, याविषयी दीपिकेमध्ये “दर्शोष्टीच्या नंतर, आणि पौर्णिमा इष्टीच्या पूर्वी आग्रयण करावे असे सांगितले आहे.” नरी “अथो पूर्वाह्नपर्वक्षये”. असा आरंभ आहे, याकरिता पूर्वाह्नसंधीचे ठिकाणी पर्वक्षयकाली हा क्रम जाणावा; असे हेमाद्रीच्या सिद्धांताला मिळणारे दीपिकामत आहे, तथापि कसाही संधि असला तरी याप्रमाणेच क्रम होतो, असा कौस्तुभाच्या सिद्धांताला मिळणारा एथील सिद्धांत जाणावा. ह्या पर्क्षां ‘अथो’ हे पद चकारार्थी योजावे, आणि ‘पूर्वाह्नसंधीचे व पर्वक्षयाचे ठिकाणी’ असा अर्थ करावा. याप्रमाणे कृष्ण पक्षाचे ठिकाणी होत नाही असे सिद्ध झाले. अमावास्यापर्वचे ठिकाणी आग्रयण करावे झणून सांगितले त्यापेक्षां अखंड अमावास्येचे दिवसी व्यर्थत्वाची आपत्ति येणार याकरिता हे दीपिकाकाराचे मत योग्य नाही, असे गृह्याभिसागराचे मत आहे ते प्रशस्त नाही असे मला वाटते. कारण, खंडपर्व असतां प्रकृतीच्या नंतर अन्य विकृति प्रतिपदेचे ठिकाणी केव्या तथापि पर्वचे ठिकाणी केव्यासारखे जसे फळ येते तसे अखंड अमावास्या असली

तथापि प्रतिपदेचे ठिकाणी करावयाचे जे आग्रयण झाला अमावास्यापूर्वाचे चरु, मिळ-
व्याच्या समतीचा संभव आहे. खंड अमावास्या असता अमावास्यापूर्वाचे विकानेकरून
सार्थकता होण्याचा संभव आहे, याप्रमाणे सिद्धांत जाणावा. श्रावण इत्यादिक मासांचे
ठिकाणी श्यामाकांचे (सांग्यांचे) आग्रयण न केले तर शरदृतूचे ठिकाणी व्रीहीच्या आग्र-
यणाने समान तंत्र करावे. याविषयी स्मार्तग्रीचे ठिकाणी, “व्रीह्याग्रयणं श्यामाका-
ग्रयणंच तंत्रेण करिष्ये,” असा संकल्प करून इंद्राग्नि व विश्वेदेव या देवतांकरितां
सुपांत आठ मुठी तांदूळ घेऊन दुसऱ्या सुपांत आठ मुठी श्यामाक “सोमाय०” ह्या
नाममंत्राने घेऊन पुनः पाहिल्या सुपामध्ये द्यावाष्टिवी देवतांसाठीं तांदूळ घ्यावे. या
प्रमाणे होमाचे ठिकाणीहि विश्वेदेवहोम श्वाभ्यानंतर सोमदेवताक जो श्यामाकचरु घ्याचा
होम करून मग द्यावाष्टिवी देवतांचा होम करावा. आश्विन पौर्णिचे दिवसी
अपराह इत्यादिक संधीचे ठिकाणी आग्रयण करणे असेल तर आश्वयुजीकर्मसह
समान तंत्रेकरून आग्रयण करावे. तसेच जुन्या तांदुळांचा चरु, नव्या तांदुळांचा चरु,
आणि नवा असा श्यामाकचरु, असे तीन चरु तीन पात्रांचे ठिकाणी पृथक् पृथक् करावे.
पौर्णिमेच्या दिवसी पूर्वाह्न इत्यादिक संधि असेल तर संधिदिवसी प्रकृतियाग केल्यानंतर
आश्वयुजीकर्म करून पूर्वे दिवसी किंवा संधिदिवसी प्रकृतियागाच्या पूर्वी आग्रयण करावे.
याप्रमाणे दोन कर्मांचा निरनिराळा काल आहे याकरितां दोन कर्मे एकतंत्राने करू
नयेत. श्यामाकांचा चरु न मिळेल तर श्यामाकतृणाची मुष्टि करून ती खुवापावाच्या
उत्तर प्रदेशी हातरून त्याचेवर सुचिपात्र ठेवावे, इतके केल्याने श्यामाकाग्रयणाची
सिद्धि होते, असे वृत्तिकार नारायण ल्हाणतो. यवांचे आग्रयण करावे किंवा करू नये.
व्रीह्याग्रयणाचा वसंतऋतुपर्यंत गौणकाल आहे. यवाग्रयणाचा वर्षाऋतुपर्यंत गौणकाल
आहे. आपत्तिकालावांचून गौणकाली आग्रयण करील तर मुख्य कालाचे उलंघन
झाले त्याचे प्रायश्चित्त पूर्वी करून नंतर आग्रयण करावे. आपत्तिकाल असता गौण
काली करील तर प्रायश्चित्त करू नये. गौणकालाचेहि उलंघन होईल तर वैश्वानरे
ष्टिरूप प्रायश्चित्त करून राहिलेले आग्रयण करावे. स्मार्तग्रीचे ठिकाणी वैश्वानर देवता
ज्याची आहे असा स्थालीपाक (चरु) ग्रहण करावा. कारण, “अग्निहोत्रो याचे जे पुरो-
डाश तेच स्मार्ताग्निहोत्राचे चरु” असे वचन आहे. प्रथम आग्रयण करावयाचे ते शरद-
तूंत करावे. ते ज्या ऋतूंत न झाले तर विभ्रष्ट इष्टि, किंवा तद्देवताक स्थालीपाक करून पुढे
येणारा जो मुख्य काल त्या काली पहिले आग्रयण करावे. गौणकाली पहिले आग्रयण
होत नाही. ज्यांचा पूर्वी आरंभ केलेला नाही असे दर्शपौर्णमास, आग्रयण इत्यादिक यांचे
प्रायश्चित्त करण्याविषयी विकल्प आहे, ल्हाणजे प्रायश्चित्त करावे किंवा न करावे असे आहे.

पाकरिता विभ्रष्ट इष्टि सुद्धा वैकल्पिक जाणावी, झणजे करावी किंवा न करावी. आग्रयण केन्यावांचून कोणतेही नवे उत्पन्न झालेले धान्य भक्षण करूं नये. " आग्रयण केन्यावांचून जर कोणी मनुष्य नवे धान्यभक्षण करील तर त्याने वैश्वानर देवतेसाठी चरू करावा, अथवा पूर्णाहुति करावी. किंवा "समिद्धराया०" ह्या मंत्राचा शंभर वेळ जप करावा, " असे आहे.

आतां आग्रयणाचे गौण प्रकार.

ज्याला निराळे आग्रयण करण्याविषयी सामर्थ्य नसेल त्याने प्रकृतीष्टीर्षी समान तंत्र असा आग्रयणाचा प्रयोग करावा. सामर्थ्ये पौर्णिमेष्टीच्या बरोबर एकतंत्राने आग्रयण करणे असेल तर पूर्वी आग्रयणाचे प्रधानकर्म करून नंतर प्रकृति इष्टीचे प्रधान कर्म करावे. दशेष्टीच्या बरोबर एकतंत्राने करणे असेल तर पूर्वी दशेष्टीचे प्रधान कर्म करून नंतर आग्रयणाचे प्रधान कर्म करावे. दुसरी पूर्वीची व पुढची सर्व अंगभूत कर्मे आग्रयण विकृतिसंबंधी असतील तांच करावी, इष्टिसंबंधी करूं नयेत; कारण, कर्माविरोध असेल तर विकृतितंत्र करावे, असा सिद्धांत आहे. ह्याचा संभव नसेल तर नवे असे श्यामाक, त्राहि आणि यव यांचा पुरोडाश करून दर्शवर्णमास स्थालीपाक करावे. अथवा नवे त्राहि इत्यादिक घेऊन त्यांहीं करून अभिहोत्रसंबंधी होम करावा. किंवा नवीन धान्ये अभिहोत्राच्या गाईकडून खाववून नंतर तिच्या दुधाचा अभिहोत्राचे ठिकाणी होम करावा. अथवा नवीन अन्नाचे ब्राह्मणांला भोजन द्यावे. हे आग्रयण मलमासांत करूं नये. गुरु शुक्रांच्या अस्तकालीहि करूं नये, असे कोणी ग्रंथकार झणतात. जुने धान्य न मिळेल तर मलमासादिकांत करावे. ह्याच पौर्णिमेचे दिवसी ज्येष्ठ पुत्र किंवा ज्येष्ठ कन्या यांला नीराननविधि करणे तो प्रतिपदेने विद्ध अशा पौर्णिमेचे दिवसी करावा.

करकचतुर्थी.

आश्विनकृष्ण पक्षातील जी चतुर्थी तिला करकचतुर्थी असें झणतात. ती चतुर्थी चंद्रोदयव्यापिनी असेल ती घ्यावी. जर दोन दिवसी चंद्रोदयव्यापि, अव्यापि इत्यादिक असेल तर संकष्टचतुर्थी प्रमाणे निर्णय जाणावा.

मथुरा देशांत राहणारे जनानीं आश्विनकृष्ण अष्टमीचे दिवसी राधाकुंडांत स्नान करावे. त्या स्नानाविषयी अष्टमी अरुणोदयव्यापिनी घ्यावी. अरुणोदयव्यापिनी नसल्यास सूर्योदय व्यापिनी घ्यावी.

गोवत्स द्वादशी.

आश्विन कृष्णपक्षांतली जी द्वादशी तिला गोवत्सद्वादशी असें झणतात. ती मद्योष

कालव्यापिनी ध्यावी. दोन दिवसीं प्रदोषकालव्यापिनी नसेल तर दुसऱ्या दिवसाचीच ध्यावी; कारण, सायंकाल हा तिचा गौण काल असून त्या कार्त्तिकी तिची व्याप्ति आहे. दोन दिवसीं प्रदोषकालव्यापिनी असेल तर पूर्वदिवसाची ध्यावी, असें पुष्कळ ग्रंथकार झणतात. दुसऱ्या दिवसाची ध्यावी, असें कितीएक ग्रंथकार झणतात. ह्या द्वादशीचे दिवसीं वत्सतुल्यवर्ष असून सवत्स व दूध देणारी अशा गार्ईचे पूजन करून तिच्या पायांचे ठिकाणी तांब्याच्या पात्रानें अर्घ्य द्यावें. अर्घ्याचा मंत्र—“क्षीरोदारणवसंभूते सुरा सुरनमस्कृते ॥ सर्वदेवमये मातर्गृहाणार्घ्यं नमोस्तुते. ” तदनंतर उडीद इत्यादि धान्यांचे षडे गार्ईला भक्षणार्थ देऊन प्रार्थना करावी. प्रार्थनेचा मंत्र—“ सर्वदेवमये देवि सर्व देवैरलंकृते ॥ मातर्ममाभिलषितं सफलं कुरु नंदिनी ” ह्या गोवत्सद्वादशीचे दिवसीं तेलान्त तळलेले, स्थालींत शिजवलेले, गार्ईचे दुध, गार्ईचे घृत, गार्ईचे दही, आणि ताक हे पदार्थ वर्य करावे. नक्तत्रत, उडीदमिश्रित अन्नाचे भोजन, भूमांचे ठिकाणी शयन, ब्रह्मचर्य, हेहि नियम पाळावे. ह्याच द्वादशीला आरंभ करून पांच दिवसपर्यंत पूर्वरात्रीचे ठिकाणी नीराजनविधि करावा असें नारद सांगतात. “देव, ब्राह्मण, गार्ई, घोडे, ज्येष्ठ, श्रेष्ठ, कनिष्ठ, या सर्वांला माता अदिकरून सर्व स्त्रियांनी दिवे ओवाळावे.” अपमृत्यूचा, नाश व्हावा एतदर्थ त्रयोदशीचे दिवसीं यमासाठीं प्रदोषकालीं घरापासून बाहेर दिवा लावावा. ह्याच त्रयोदशीला आरंभ करून गोत्रिरात्र व्रत करावें. याचा प्रयोग कौस्तुभात पहावा.

नरकचतुर्दशी.

चंद्रोदयव्यापिनी अशा आश्विनरुद्र चतुर्दशीचे दिवसीं नरकाला भिणारे यांनी तिलतेलाचा अभ्यंग करून स्नान करावें. या विषयी रात्रीच्या शेवटच्या प्रहरापासून आरंभ करून अरुणोदयापर्यंत, तेथून चंद्रोदयापर्यंत, तेथून सूर्योदयापर्यंत, या प्रमाणें तीन कालांमध्ये पहिला पहिला गौण व पुढचा पुढचा श्रेष्ठ आदि याकरितां चंद्रोदया नंतरचा तो मुख्य काल, प्रातःकाल तो गौणकाल जाणावा. सामर्थ्ये पूर्वे दिवसींच चंद्रोदय व्याप्ति असेल तर पूर्वे दिवसाची करावी. दुसऱ्या दिवसींच चंद्रोदय व्यापिनी असेल तर दुसऱ्या दिवसाची ध्यावी. ह्या चंद्रोदयव्याप्तिपर्क्षी त्या दिवसीं सूर्यास्तादि कार्त्तिकी कारणविषयी सांगितलेले असे उक्तादान (कोलीय दाखवणें,) दोपदान इत्यादिक तें, चंद्रोदयकालीं चतुर्दशी नसली तत्राधि करावें. दोन दिवसीं चंद्रोदयव्याप्ति असेल तर पूर्वे दिवसाची ध्यावी. दोन दिवसीं चंद्रोदयव्याप्ति नसेल तर तीन पक्ष संभवतात. पूर्वे दिवसीं चंद्रोदयानंतर उषःकालाला व सूर्योदयाला व्यापून राहणारी चतु

देशी ती दुसऱ्या दिवशी चंद्रोदयाच्या पूर्वी समाप्त झाली. या विषयी उदाहरण;—त्रयोदशी घ० ५८, पळे ९०, चतुर्दशी घ० ९७, ह्या पदिका पक्षां, चतुर्दशीने युक्त अशा उषःकालाच्या एकदेशाचे ठिकाणी अभ्यंगस्नान करावे. या नंतर पूर्व दिवशी चतुर्दशी केवळ सूर्योदयाला मात्र व्यापून राहणारी, आणि दुसऱ्या दिवशी चंद्रोदयाच्या पूर्वी समाप्त झाली. अथवा सूर्योदयाला स्पर्श नाही तेव्हां चतुर्दशीचा क्षय आहे; उदाहरण;—त्रयोदशी घ० ५९, पळे ९२, चतुर्दशी घ० ९७, अथवा दुसरे उदाहरण;—त्रयोदशी घ० २, या दिवशी चतुर्दशी घ० ९४, ह्या दोन पक्षांचे ठिकाणी दुसऱ्या दिवशी चंद्रोदयकाली स्नान करावे; कारण, चतुर्थ प्रहर इत्यादिक जो स्नानाचा गौणकाल त्या काली चतुर्दशीची व्याप्ति आहे. ह्या दोन पक्षां कितीएक ग्रंथकार, अरुणोदयाच्या पूर्वी सुद्धा चतुर्दशीमध्येच स्नान करावे, असें झणतात. दुसरे ग्रंथकार तर, अरुणोदयानंतर चंद्रोदय इत्यादिक जो काळ तो अमावास्येने युक्त असेल तथापि त्याचे ठिकाणी स्नान करावे, असें झणतात. चतुर्दशीचा क्षय असेल तर, पूर्व दिवशी त्रयोदशीचे ठिकाणी चंद्रोदयकाली स्नान करावे असे जे कितीएक ग्रंथकार झणतात ते योग्य नाही. ह्या अभ्यंगस्नाना विषयी विशेष प्रकार—“ सीतालोष्ठसमा युक्त सकंटकदलान्वित ॥ हर पापमपामार्गं भ्राम्यमाणः पुनः पुनः ” ह्या मंत्रेकरून नांगराने उकळून काढलेले असे मातीचे टेंकूळ; आघाटा, दुधीण भोपळी, टाकळा यांच्या फांद्या स्नानामध्ये तीन वेळ आपल्या आंगावरून फिरवाव्या. अभ्यंगस्नान केल्या नंतर गंधादिकाचा टिळक लावून मग कार्तिकस्नान करावे. पूर्वी सांगितलेल्या मुख्य कालांचे ठिकाणी स्नान न झाले तर सूर्योदयानंतर गौणकालामध्येहि करावे. संप्यासी इत्यादिकांनी सुद्धा अवश्य अभ्यंग करून स्नान करावे. कार्तिक स्नान केल्या नंतर यमतर्पण करावे. ते असे,—“ यमाय नमः यमं तर्पयामि ” असें झणून दक्षिण दिशेला संमुख हेत्साता तिलयुक्त तीन अंजलि सव्याने अथवा अपतव्याने देवतीर्थेकरून किंवा पितृतीर्थेकरून द्याव्या. याप्रमाणे पुढे सांगावयाचे आहेत त्याहि मंत्रांनी पूर्वी सांगितल्याप्रमाणे तर्पण करावे. ते मंत्र—“ धर्मराजाय० धर्मराजं तर्पयामि ॥ मृत्यवे नमः मृत्युं तर्पयामि ॥ अंतकायनमः अंतकं तर्पयामि वैवस्वताय नमः वैवस्वतं तर्पयामि कालाय नमः कालं तर्पयामि ॥ सर्वभूतक्षयाय नमः सर्वभूतक्षयं तर्पयामि औदुंबराय नमः औदुंबरं तर्पयामि ॥ दध्नाय नमः दध्नंत० नीलाय० नीलं त० ॥ परमेष्ठिने० परमेष्ठिनं त० वृकोदराय० वृकोदरं त० ॥ चित्राय० चित्रं त० ॥ चित्रगुप्ताय० चित्रगुप्तं त० ” ह्याचा पिता जिंभत असेल झाने यवानी देवतीर्थे करून सव्याने तर्पण करावे. “ तद

नंतर प्रदोषकाली सुशोभित असे दिवे देवालय, मठ, तट, कोट, बाग, मार्ग, गोडा, अश्वशाला, हत्तिशाला, यांचे ठिकाणी लावावे. या प्रमाणे तीनही दिवस लावावे. "तूळराशीला सूर्य गेल्यानंतर चतुर्दशी व अमावास्या ह्या दोन दिवसी प्रदोषकाली पुरुषांनी हातामध्ये कोलीत, चुडी ही घेऊन पितरांला मार्ग दाखवावा. त्याचा मंत्र— " अग्निदग्धाश्च ये जीवा येऽपदग्धाः कुले मम ॥ उज्ज्वलज्ज्योतिषा दग्धास्ते यांति परमां गतिं ॥ यमलोकं परित्यज्य आगता ये महालये ॥ उज्ज्वलज्ज्योतिषा वर्त्म प्रपश्यंतु व्रजंतु वे. " ह्या चतुर्दशीचे दिवसी नक्तभोजन केले असतां महाफल आहे.

लक्ष्मीपूजन.

या नंतर आश्विन अमावास्येचे दिवसी प्रातःकाली तैलाम्यंग करून ज्ञान करावे, प्रदोषकाली दिवे लावावे, व लक्ष्मीचे पूजन इत्यादिक करावे. याविषयी सूर्योदयाला व्यापून सूर्यास्तानंतर एक घटिकेपेक्षा अधिक असी रात्रिव्यापिनी अमावास्या असेल तर संशय नाही. ह्या अमावास्येचे दिवसी प्रातःकाली तैलाम्यंग करून ज्ञान करावे. नंतर देव पूजा. इत्यादिक करून अपराण्हकाली पार्वणश्राद्ध करावे, व प्रदोषकाली दिवे लावणे; उल्कादर्शन, लक्ष्मीपूजन हीं कसे करून भोजन करावे. ह्या अमावास्येचे दिवसी बाल, वृद्ध, रोगी यांवांचून इतरांनी दिवसा भोजन करूं नये, रात्री भोजन करावे असा वचन प्रयुक्त विशेष जाणावा. तसेच दुसऱ्या दिवसीच प्रदोषव्याप्ति असेल किंवा दोन दिवसी प्रदोष व्याप्ति असेल तर दुसऱ्या दिवसाची ध्यावी, पूर्व दिवसीच प्रदोषव्याप्ति असेल तर लक्ष्मीपूजन इत्यादिकांविषयी पूर्व दिवसाची ध्यावी. अभ्यंगस्नान इत्यादिकांविषयी दुसऱ्या दिवसाची ध्यावी. याप्रमाणे दोन दिवसी प्रदोषव्यापिनी नसली तथापि पूर्वीप्रमाणेच ध्यावी. पुरुषार्थचिंतामणीमध्ये तर पूर्व दिवसीच प्रदोषव्यापिनी आहे. असा पक्ष असेल तर दुसऱ्या दिवसी तीन प्रहरापेक्षा अधिक असी अमावास्या असतां अमावास्ये हून प्रतिपदा वाटती असल्यास लक्ष्मीपूजनादिक सुद्धा दुसऱ्या दिवसीच करावे, असे सांगितले. ह्या मताने दोन दिवसी प्रदोषव्यापिनी नाही असा पक्ष असतांही दुसऱ्या दिवसी अमावास्या साडेतीन प्रहरापेक्षा अधिकव्यापिनी आहे याकरितां दुसऱ्या दिवसाचीच घेण्याविषयी योग्य असे वाटते. चतुर्दशी, अमावास्या आणि प्रतिपदा ह्या तीन दिवसांला द्वीपावलि असे नांव आहे, व ह्या तीन दिवसांमध्ये ज्या दिवसी स्वातीनक्षत्राचा योग असेल तो दिवस अतिउत्तम असे समजावे. अमावास्येचे दिवसी मध्यरात्रीच्या नंतर, नगरांतील स्त्रियांनी आपापल्या गृहसंबंधी आंगण्यांतून अलक्ष्मीला घालवावी. ॥ या प्रकारे करून अनंतोपाध्याय यांचा पत्र काशीनाथोपाध्याय यांचे रचिलेल्या धर्मसिंधु

सार ग्रंथातील द्वितीय परिच्छेदातील आश्विनमासांत करावयाचे कृत्यांचा निर्णय झाला.

कार्तिकमासांतील कृत्ये.

वृश्चिक संक्रांतीच्या पूर्वांच्या सोळा घटिका पुण्यकाळ जाणावा. बाकी निर्णय पूर्वी सांगितल्याप्रमाणे.

बलिप्रतिपदा.

यानंतर कार्तिकशुक्ल पक्षांतिल प्रतिपदेचे कृत्य सांगतां. ह्या प्रतिपदेचे दिवसीं तैलाभ्यंग अवश्य करावा. याप्रमाणे चतुर्दशी इत्यादि तीन दिवसीं, तैलाभ्यंग इत्यादिक उत्सवन केला असतां नरकप्राप्ति होते इत्यादिक दोषश्रवण आहे, आणि तो उत्सव केला असतां लक्ष्मीची प्राप्ति होऊन अलक्ष्मीचा नाश होतो इत्यादिक फलाचे श्रवण आहे याकरितां हा उत्सव नियम व काम्य असा दोन प्रकारचा आहे. ह्या प्रतिपदेचे दिवसीं बलिदेखाची पूजा, दोपोत्सव. गोक्रीडा, गोवर्धनपूजा, मार्गपालीबंधन, नृणाची दोरी ओढणे, नवीं वस्त्रादिक धारण करणे इत्यादिक उत्सव, द्यूत करणे, स्त्रियांनीं ओवाळणे, मंगलमालिका इत्यादिक कृत्ये करावीं. त्यामध्ये जर उदयाला व्यापून वीस घटिका प्रतिपदा असेल तर त्या दिवसीं चंद्रदर्शन नाही याकरितां चंद्रदर्शनयुक्त जी द्वितीया तिच्या वेधाचा निषेध त्या दिवसीं प्राप्त होत नाही यास्तव सर्व कृत्ये दुसऱ्या दिवसाच्या प्रतिपदेचे ठिकाणीच होतात. इष्टीच्या निर्णयप्रकरणीं प्रतिपदेचे दिवसीं सहा घटिका द्वितियेचा प्रवेश असल्यानें चंद्रदर्शन होतें झणून जें सांगितलें तें सूक्ष्म दृष्टीच्या अभिप्रायानें सांगितलें. ह्या स्थलीं तर स्थूलदर्शन तेंच निषेधास कारण आहे व तें चंद्रदर्शन बारा घटिका द्वितीया प्रविष्ट झाली असेल तरच होतें त्यापेक्षां विरोध नाही असें वाटतें. जर सूर्योदया पासून प्रतिपदा आठ मुहूर्त आहे, नववा मुहूर्त नाही, तर बलिपूजा, गोक्रीडा, गोवर्धन पूजा मार्गपालीबंधन, बष्टिकाकर्षण, हीं कृत्ये पूर्वतिथीनें विद्ध अशा प्रतिपदेचे ठिकाणीं करावीं. तैलाभ्यंग, नवीन वस्त्रादिकांचें धारण, द्यूत, स्त्रियांनीं दिवे ओवाळणे, मंगलमालिका इत्यादिक कृत्ये सूर्योदयकालीं दोन घटिका व्याप्ति असली तत्रापि तिचे ठिकाणींच करावीं. बलिपूजा इत्यादिक कृत्ये कांहींएक निमित्तानें पूर्वतिथीनें विद्ध अशा प्रतिपदेचे दिवसीं न होतील तर पुढच्या तिथीनें विद्ध अशा प्रतिपदेचे ठिकाणीं करावीं, परंतु कर्मांचा त्याग करूं नये, व दुसऱ्या तिथीचे ठिकाणीं करूं नये. जसें बौधायनीय शास्त्री इत्यादिकांनीं आपापल्या सूत्रांत सांगितल्याप्रमाणे अनुष्ठान न झाल्यास आपस्तंबीय इत्यादिक सूत्रांत सांगितल्याप्रमाणे अनुष्ठान करावें, परंतु कर्मांचा लोप किंवा अन्यशास्त्रेचें ग्रहण करूं नये, साप्रमाणे हेहि करावें, असें माघवाच्या ग्रंथांत

आहे. त्या प्रतिपदेचे दिवसीं राजानें पांच प्रकारच्या रंगांनीं, दोन मुजानीं युक्त असी बलीची मूर्ते काढून पूजा करावी. इतर लोकांनीं पांढऱ्या तांदुळांनीं मूर्ते करून पूजा करावी. पूजेचा मंत्र—“बलिराज नमस्तुभ्यं विरोचनसुत प्रभो ॥ भविष्येद्रसुराराते पूजेयं प्रतिगृह्यतां.” बलीच्या उद्देशेकरून जें कोणतेहि दान केले असतां तें अक्षय्य विष्णूची प्रीति करणारे होतें. “ह्या प्रतिपदेचे दिवसीं जो जशा हर्षदैन्यरूप भावानें राहतो त्याचे सर्व वर्ष तसें जातें.” ह्मणजे दैन्यपणानें राहिल तर सर्व वर्षभर दैन्यपण प्राप्त होतें, व हर्षानें राहिल तर सर्व वर्षभर हर्ष प्राप्त होतो असें तात्पर्य. “ह्या प्रतिपदेचे दिवसीं प्रातःकालीं सर्व मनुष्यांनीं द्यूतकर्म करावें, व त्या द्यूतामध्ये ज्याचा जय होतो त्याचा वर्षपर्यंत जय होतो. सत्पात्र ब्राह्मणांसहवर्तमान पक्षाचाचें भोजन करावें. बाले-राज्याचे दिवसीं दिवे लावले असतां लक्ष्मी सार्वकाल स्थिर राहते. दिवे लावून ओवाळावें असा विधि आहे याकरितां ह्या प्रतिपदेला दिपावली असें नांव आहे. हे केशवा, बलि-राज्याचे दिवसीं ज्यांनीं दीपांची पंक्ति लाविली नाहीं, त्यांचे गृहाचे ठिकाणीं दिवे कसे प्रज्वलित होतील?” ह्या प्रतिपदेचे दिवसीं लक्ष्मीची पूजा व कुचेराची पूजा करावी. “लक्ष्मीर्यां लोकपालानां धेनुरूपेण संस्थिता ॥ घृतं वहति यज्ञार्थं मम पापं व्यपोहतु ॥ अग्रतः संतु मे गावो गावो मे संतु प्रष्टतः ॥ गावो मे हृदये संतु गवां मध्ये वसाम्यहं,” ह्या मंत्रांनीं सवत्सर्गार्थी व वृषभांची पूजा करून पुष्पांच्या माला इत्यादिक घालून त्यांला भूषित करावें, व त्या दिवसीं गर्गिचे दूध काढणें व बैलांवर भार घालणें इत्यादिक करूं नये.

गोवर्धनपूजेचा विधी.

मुख्य गोवर्धनपर्वत ज्याला जवळ असेल त्यांनीं त्याचीच पूजा करावी. तो जवळ नसेल तर गोमयाचा किंवा अन्नराशीचा गोवर्धन पर्वत करून त्या गोवर्धनासहित गोपालाची पूजा करावी. त्या पूजेविषयीं, “श्रीकृष्णप्रोत्थं गोवर्धनपूजनं गोपालपूजनात्मकं महोत्सवं करिष्ये,” असा संकल्प करून “बलिराजो द्वारपालो भवानद्य भवप्रभो ॥ निजवाक्यार्थनार्थाय सगोवर्धन गोपते,” ह्या मंत्रेंकरून गोवर्धनयुक्त गोपालाचें आवाहन करून स्थापना करावी. तदनंतर, “गोपालमूर्ते विश्वेश शक्रोत्सव विभेदक ॥ गोवर्धनकञ्छ्वज पूजां मे हर गोपते ॥ गोवर्धनधराधार गोकुलव्राण कारक ॥ विष्णुबाहुकतच्छाया गवां कोटिप्रदो भव,” ह्या मंत्रांनीं श्रीगोपाल व गोवर्धन यांची षोडशोपचारेंकरून पूजा करावी त्या पूजेमध्ये जसी संपत्ति असेल त्याप्रमाणें महानैवेद्य (अन्नाचा पर्वत) द्यावा. अनंतर त्याच्या अंगवेंकरून प्रत्यक्ष गर्गिचे ठिकाणीं किंवा मृत्तिकेची गर्गि करून तिचे

ठिकाणी गोपूजा पूर्वी सांगितलेल्या मंत्रांनी करून “आगावो अग्नाप्रैते वदंतु ह्य ऋचांना घरांत सिद्ध केलेल्या चरूचा होम करावा. ब्राह्मणांला अन्न, आणि गायी यांचें दान करावें. आणि गाईला तृण घालावें, व पर्वताला बालेदान करावें. तदनंतर बरोबर गाई घेऊन सांच्यासह गरई, ब्राह्मण, होम, अग्नि, पर्वत यांला प्रदक्षिणा करावी.

मार्गपाली बंधन.

यानंतर अपराण्हकालीं मार्गपालीबंधन करावें, तें असें,—जसा ज्याचा आचार असेल तदनुसार कुशांचा किंवा मोळाचा मोठा दोर करून तो दोर पूर्वदिशेचे ठिकाणीं मार्गा वर उंच खांबाला व वृक्षाला बांधून, “मार्गपालिनमस्तु सर्वलोकसुखप्रदे ॥ विधेयैः पुत्रदाराद्यैः पुनरोहि व्रतस्यमे,” ह्या मंत्रेंकरून नमस्कार करून प्रार्थना करावी आणि त्या दोराच्या खालून जो मार्ग, त्या मार्गांनैं गाई, हत्ती, घोडे इत्यादिकांसहवर्तमान ब्राह्मण, राजा इत्यादिकांनीं गमन करावें. या प्रमाणें मोळ इत्यादिक तृणांचा मोठा दोर करून त्या दोराला एकीकडे राजपुत्रांनीं धरावें, व दुसरीकडे हीनजाति असतील सांणीं धरून तो दोर जयपरिक्षा पाहण्याकरितां आपापल्याकडे ओढावा. ह्या ओढण्यामध्ये हीन जातीचा जय झाला असतां राजाचा जय आहे असें समजावें. ह्या प्रतिपदेचे दिवसीं प्रातःकालीं दूत कर्म करावें. या प्रमाणें स्त्रियांनीं दिवे ओवाळावयाचे तेहि प्रातःकालींच ओवाळावे. रात्रीचे ठिकाणीं गायन, वाद्ये इत्यादिक उत्सव करावा. “ब्राह्मण, आस, बांधव यांला नवीं वस्त्रे देऊन सांचा पूजासत्कार करावा.

यमद्वितीया (भाऊबीज.)

“पूर्वीं यमुनेनें आपल्या गृहीं यमाला सत्कारपूर्वक बोलावून खाला भोजन दिलें याकरितां हे युधिष्ठिरा, लोकांमध्ये या द्वितीयला यमद्वितीया असें लणतात.” ह्या द्वितीयेचे दिवसीं आपल्या घरीं भोजन करूं नये. तर महाप्रयत्न कारणें होईल तथापि तसें करून भगिनीच्या हातून भोजन करावें, तेणेंकरून धन, धान्य, सुख यांची प्राप्ति होते. वस्त्रें, अलंकार, यांहींकरून सर्व बाहिर्णांची पूजा करावी. आपणाला बहीण नसल्यास भिन्नादिकांच्या बाहिणी असतील त्याच ‘आपल्या’ असी कल्पना करून सांची पूजा करावी. भगिनीनें हि आत्म्याचें पूजन करावें, तेणेंकरून अवैधव्य, भाय्याला चिरकाल आयुष्य असें फळ मिळतें. तसें न केलें असतां सप्तजन्मपर्यंत भायाचा नाश होतो. ही यमद्वितीया पूर्व दिवसींच अपराण्हकालव्यापिनी असेल तर पूर्व दिवसाची ध्यावी. दोन दिवसीं अपराण्हव्यापिनी असेल किंवा नसेल इत्यादिक दुसऱ्या पक्षांचे ठिकाणीं दुसऱ्या दिवसाचीच ध्यावी. ह्या द्वितीयेचे दिवसीं यमुनास्नान; अपराण्हकालीं चित्रगुप्त; यमदूत यांसहित यमाचें पूजन;

यमाला अर्घ्यदान हीं करावीं. मीमवारयुक्त कार्तिकशुद्ध षष्ठीचे दिवसीं अग्नीची पूजा करून अभिप्रीत्यर्थ ब्राह्मण भोजन करावें.

गोपाष्टमी.

कार्तिकशुद्ध पक्षातील जी अष्टमी तिला गोपाष्टमी असें ह्मणतात. ह्या अष्टमीचे दिवसीं गोपूजा, गाईला प्रदक्षिणा करणे, आणि गाईच्या बरोबर रानांत जाणे इत्यादि कसे करावीं; तेणेकरून इष्टमनोरथ प्राप्त होतात. कार्तिक शुद्ध नवमीचे दिवसीं मथुरेला प्रदक्षिणा करावी. ही नवमी युगादि आहे. ह्या पूर्वाह्नकालव्यापिनी नवमीचे दिवसीं पिंड-रहित श्राद्ध करावें. या विषयीं विशेषप्रकार वैशाखप्रकरणीं सांगितला आहे.

भीष्मपंचकव्रत.

एकादशीपासून पांच दिवस भीष्मपंचकव्रत करावें. ते भीष्मपंचक व्रत, शुद्ध एकादशीचे दिवसीं आरंभून चतुर्दशीनें विद्ध नसून सूर्योदयव्यापिनी अशा पौर्णिमेचे ठिकाणीं समाप्ति करावें. जर शुद्ध एकादशीचे दिवसीं आरंभ केला असतां क्षयाच्या योगानें दिवस कमी होऊन पौर्णिमेचे ठिकाणीं पांच दिवसांच्या व्रताची समाप्ति घडत नसेल तर विद्ध एकादशीचे दिवसींहि आरंभ करावा. शुद्ध एकादशीचे दिवसींहि आरंभ केला असतां दिनवृद्धीच्या योगानें प्रतिपदेनें विद्ध अशा पौर्णिमेचे ठिकाणीं समाप्ति येईल तर सहा दिवस होतील आणि व्रत तर पांच दिवसांचें आहे याकरितां चतुर्दशीनें विद्ध अशा पौर्णिमेच्या दिवसींहि समाप्ति करावी. ह्या व्रताचा प्रयोग कौस्तुभादिक ग्रंथीं पाहावा. कार्तिक मासामध्ये एकादशी इत्यादिक पर्वणांचे ठिकाणीं चंद्रवळ व जारावळ पाहून शिव व विष्णु यांच्या मंत्रांची दीक्षा ग्रहण करावी. कारण, “कार्तिक मासांत मंत्रदीक्षा ग्रहण केली असतां ती दीक्षा जन्मापासून सोडाविणारी, ह्मणजे मुक्ति देणारी होते,” असें नारदाचें वचन आहे. तसेंच ह्या कार्तिक मासांत तुलसीच्या काष्ठाची माला धारण करावी असें स्कंदपुराणांतील द्वारकामाहात्म्याचे ठिकाणीं व वेणुधर्माचे ठिकाणीं सांगितलें आहे. “तुलसीच्या काष्ठाची माला केशवाला अर्पण करून नंतर ती माला जो मनुष्य भक्तिपूर्वक धारण करितो त्याचें पातक निश्चयेंकरून जाहत नाहीं.” मालेच्या प्रार्थनेचा मंत्र—“तुलसीकाष्ठसंभूते माले कृष्णजनप्रिये ॥ विभ मं त्वामहं कठे कुरु मां कृष्णवल्गुभं,” “ह्या मंत्रेकरून मालेची प्रार्थना करून कृष्णाच्या तंठाचे ठिकाणीं अर्पण केलेली माला, कार्तिक मासामध्ये यथाविधि जो धारण करितो तो वेणुपदाळा नातो,” असें निर्णयसिंधूत स्पष्ट सांगितलें आहे. जें निर्णयसिंधूमध्येच माला धारणाच्या प्रकरणाच्या शेवटीं सर्व पुस्तकांचे ठिकाणीं नरी मिलत नाहीं तथापि याविषयीं

मूळ विचार करावा' असे वाक्य एकाद्या निर्णयसिध्दच्या पुस्तकांत आढळते. याचे तात्पर्य, मालाधारणाविषयी जीं विधवाक्ये आहेत ती प्रमाणभूत नाहींत अशा विषयी नाहीं. कारण, निर्णयसिध्दकार आपणच स्कंदपुराणांतील विष्णुधर्मांमध्ये अहिलेलीं वाक्ये सांगून आपणच तीं वाक्ये अप्रमाण असे ह्मणतील तर मोठा हानिप्रसंग येईल, आणि "रुद्राक्षांच्या आकारप्रमाणे केलेले असे जे तुलसीकाष्ठाचे मणि त्याची माल करून ती गळ्यांत धारण करून पूजेला आरंभ करावा, तुलसीकाष्ठांच्या मालेनें भूषित होताता पितर किंवा देव यांची पूजा इत्यादिक करील तर ते कर्म कोटिगुणित होते," असीं पद्मपुराणांमध्ये पातालखंडीं एकुणऐशिव्या अध्यायाचे ठिकाणीं प्रत्यक्ष मिळणारीं जीं वचनें त्यांच्याशीं विरोध येईल. तर आषाढमासप्रकरणीं आषाढ शुद्ध पक्षांतील द्वादशीविषयी अनुराधायोगरहित द्वादशीचे ठिकाणीं पारणा करावी असे सांगून याविषयी प्रमाण भूत असीं, "आभाकासितपक्षेषु, यैत्राद्यपादे स्वपितीह विष्णुः" इत्यादिक भविष्यपुराणांतील विष्णुधर्मग्रंथाचीं वाक्ये लिहून असे शोबटीं हे निर्मूल आहे असे सांगितले, तसे त्याच्या दुसऱ्या प्रकरणाविषयीहि जाणावें. माधवादिक मूल ग्रंथांमध्ये ते वचन मिळत नाहीं असेच निर्णयसिध्दच्या परिभाषेचे तात्पर्य, अप्रमाणाविषयी तात्पर्य नाहीं. अप्रमाणाविषयी मानले असतां भाद्रपदमास व कार्तिकमास यांचे ठिकाणीं त्याच वाक्याला अनुसरून जो पारणानिर्णय लिहिला त्याची संगति होणार नाहीं. व कौस्तुभादिक जे सर्व नवीन ग्रंथ त्यांमध्ये त्याच वाक्याला अनुसरून जो निर्णय सांगितला त्याचीहि संगति होणार नाहीं. आणि सर्व शिष्ट त्या वाक्याला अनुसरून त्याप्रमाणेच जी पारणा करितात त्यालाहि प्रमाण नाहीं असे होईल, यास्तव त्याप्रमाणे एथेहि जाणावें. येणे करून, माधवादिक ग्रंथांमध्ये मिळत नाहीं यास्तव हे अप्रमाण असे जे हटले ते खंडित झाले; कारण माधवादिकांनीं लिहिलेलीं वाक्ये व आचार प्रमाणभूत नाहींत असे बहुत आहेत. जेथे 'यानि' 'यनु' अशा स्वरूपेकरून यत्पदाचा उपक्रम दाखविल्यावांचून 'तीं निर्मूल आहेत, इत्यादिक रीतीनें दूषित होतात. जसे श्रवणद्वादशीप्रकरणीं श्रवणाला उत्तराषाढाचे वेधाच्या निषेधाचीं वाक्ये जीं सांगितलीं तेथे त्यांचे अप्रमाणाविषयीच सर्वथा तात्पर्य असे सूक्ष्मबुद्धि जाणोत. एथे शंका—माधवादिक ग्रंथांमध्ये मिळत नाहीं या कुरितां निर्मूल असे नाहीं, तर काष्ठमाला धारणाचा निषेध करणारीं असीं बाधक वाक्ये मिळतात यास्तव निर्मूल, असे ह्मणतील तर तीं कोणतीं वाक्ये? सामान्ये करून काष्ठमाला धारणाचा निषेध करणारीं मिळतात तीं, किंवा विशेषेकरून तुलसीकाष्ठमालेचा निषेध करणारीं मिळतात तीं? प्रथम पक्षा विषयी, समाधान—सामान्ये करून काष्ठमाला धारणाचा निषेध करणारीं जीं वाक्ये त्यांचा बाध; विशेषरूप

अं तुलसी, आवळी यांच्या काष्ठांची माला धारण करण्याविषयी सांगणारीं वाक्यें त्यांहीं करून स्पष्ट होती. दुसऱ्या पक्षाविषयी समाधान—जसे यज्ञामध्ये षोडशी या पात्राचें ग्रहण वैकल्पिक ह्मणजे ग्रहण करावें किंवा न करावें तसा विविनिषेधरूपानें तुलसीकाष्ठ माला धारणाचा विकल्प आहे असें जाण, तो विकल्प वैष्णव आणि अवैष्णव या भेदानें व्यवस्थित होईल. कारण, मूलवचनांमध्ये त्रिष्णु इत्यादिक पदें भिळतात यास्तव निर्मूल असें होत नाहीं, या कृतितांच् हीं वाक्यें माधवादिकांनीं लिहिलीं नाहींत त्यांचा अभिप्राय हरिवासर्याच्या लक्षणाचें जें वचन त्याचे ठिकाणीं पुरुषार्थचिंतामणीमध्ये वैष्णव जे त्यांनीं च हरिवासर अवश्य पाळावा असें सांगितलें आहे यास्तव यांचें ग्रहण जरी न केलें तथापि त्रितक्यानें माधवादिकांला कमीपणा येत नाहीं, अशा रीतीनें जाणण्याला शक्य आहे. याप्रमाणें आवळीच्या काष्ठाची माला धारण करण्याचा विधि जाणावा. रामार्चनचंद्रिका इत्यादिक ग्रंथांमध्ये तुलसीच्या काष्ठांची माला करून त्या मालेनें जप करावा अशा प्रकारचीं, “तुलसीच्या काष्ठांचे मणि करून त्यांची जपमाळा करावी,” इत्यादिक विधि वाक्यें स्पष्ट आहेत, व अर्मा दुसऱ्या ग्रंथांमध्येहि बहुत भिळतात. तसेंच प्रयोग पारिजातांत आन्धिकामध्ये पूजाप्रकरणीं सांगितलें आहे, तें असें,— पूर्वी अग्नौ दक, गंध, पुष्पे, अक्षता इत्यादिक पूजासामग्री मिळवून हात पाय धुवून जसी शक्ति असेल तदनुसार पितांबर इत्यादिक शुद्ध वस्त्र धारण करून अलंकार धारण करित होताता मोत्यें, पोवळीं, कमलाक्ष, तुलसीच्या काष्ठांचे मणि ह्यांच्या माळा कंठाचे ठिकाणीं धारण करून पूजा आरंभावी. या प्रमाणें सर्व देशांतील वैष्णवांमध्ये तुलसीच्या काष्ठांची माला धारण करून जप करण्याचा संप्रदायहि भिळतो. स्यापेक्षां, भस्म इत्यादिकांचे धारणाचा द्वेष करणारे जे वैष्णव त्यांच्या द्वेषानें शैवमार्गाचा आग्रह धरणारे शैव मात्र तुलसीकाष्ठ मालेचा द्वेष करितत, याप्रमाणें निर्णय झाला. याहून विशेष विस्तार करण्याचें प्रयोजन नाहीं.

आवळीवृक्षाच्या मुलाचे ठिकाणीं देवपू- जेचा विधि.

“सर्वपापक्षयद्वारा श्रीदामोदरप्रोत्यर्थ धात्रीमूले श्रीदामोदरपूजां करिष्ये,” असा संकल्प करून पुरुषसूक्तानें षोडशोपचार पूजा करून, गंध, पुष्प, फल यांहींयुक्त अर्घ्य द्यावें. अर्घ्याचा मंत्र,—“अर्घ्यं गृहाण भगवन् सर्वकामप्रदो भव ॥ अक्षया संततिर्मस्तु दामोदर नमोस्तु ते.” वदनंतर “अपराधसहस्राणि०” यामंत्रानें प्रार्थना करून आवळी वृक्षाची कुंकुम, गंध, इत्यादिकांनीं पूजा करून मग पुष्पांनीं पूजा करावी. पुष्पपूजेचे

मंत्र;—“घात्र्यै नमः शश्विन० मेघायै०, प्रकृत्यै०, विष्णुगर्भ्यै०, महालक्ष्म्यै०, रमायै०, कमलायै०, इंद्रिरायै०, लोकमात्रे०, कल्याण्यै०, कमनीयायै०, सावित्र्यै०, जगद्धात्र्यै०, गायत्र्यै०, सुधृत्यै०, अव्यक्तायै०, विश्वरूपायै०, सुखूपायै०, अग्निभवायै०” याप्रमाणे पूजा झाल्यानंतर आवळीवृक्षाचे मूलाचे ठिकाणी सव्याने तर्पण करावे. तर्पणाचा मंत्र;— “पितापितामहश्चान्ये अपुत्रा येच गोत्रिणः ॥ ते पिबंतु मया दत्तं घात्रीमूलेऽक्षयं पयः ॥ आब्रह्मस्तं वपर्यंतं०” असे तर्पण करून नंतर, “दामोदरनिवासायै घात्र्यै देव्यै नमोस्तुते ॥ सुत्रेणाग्नेन बध्नामि सर्वदेविनिवाहिनीं,” ह्या मंत्राने आवळीवृक्षाला सभोवार सूत्राचे वेष्टन करावे. आणि “घात्र्यै नमः” यामंत्राने पूर्वादिक चार दिशांचे ठिकाणी बलि देऊन आठ दीप लावावे, व आठ प्रदक्षिणा करून नमस्कार करावा, आणि प्रार्थना करावी.— प्रार्थना व नमस्कार यांचे मंत्र;—“घात्रिदेवि नमस्तुभ्यं सर्वपापक्षयंकरि ॥ पुत्रान्देहिमहा प्राज्ञे यशो देहि बलंच मे ॥ प्राज्ञां मेघांच सौभाग्यं विष्णुभार्ग्वेच आश्वतीं ॥ नीरोगं कुष्ठं मां नित्यं निष्पापं कुष्ठं सर्वदा. ” यानंतर घृतपूर्ण व सुवर्णयुक्त अशा कांस्यपात्राचे दान करावे या प्रमाणे सक्षेपाने पूजाप्रयोग सांगितला.

कार्तिकशुक्ल द्वादशीचे दिवसीं रेवतीनक्षत्रयोगाने रहित अशा द्वादशीचे ठिकाणी पारणा करावी. सर्व नक्षत्र टारुण्यास अशक्य असेल तर चवथा पाद वर्ज्य करावा, इत्यादिक विशेष प्रकार श्रवणनिर्णयप्रकरणी सांगितला आहे तो पहावा.

प्रबोधोत्सव व तुलसीविवाह.

प्रबोधोत्सव कार्तिकशुक्ल एकादशीचे दिवसीं करावा, असे किलेक ग्रंथांत सांगितले आहे. रामार्चनचंद्रिका इत्यादिक ग्रंथां द्वादशीचे दिवसीं करावा असे सांगितले आहे. उत्थापनाच्या मंत्रामध्ये द्वादशी तिथीचा उच्चार केला आहे, याकरिता द्वादशीचे दिवसींच करावा हे योग्य. त्यांमध्येही द्वादशी, व रेवतीचा शेवटचा पाद यांचा योग रात्रीच्या प्रथम भागी असल्यास चांगला. तसा नसेल तर त्याच रात्रीचे ठिकाणी रेवती नक्षत्राचा मात्र योग असेल तर तोही प्रशस्त. रेवती नक्षत्राचाही योग नसल्यास रात्रीच्या प्रथम भागी केवळ द्वादशी असेल तर तीही प्रशस्त होय. याप्रमाणे केवळ रेवतीनक्षत्र तीही प्रशस्त जाणावे. द्वादशी व रेवती हीं दोनही रात्रीं नसतील तर दिवसासच द्वादशी मध्ये करावा असे कौस्तुभांत आहे, तथापि “पारणेच्या दिवसीं पूर्वारात्रीं” असे वचन आहे याकरिता पारणेच्या दिवसीं रात्रीच्या पूर्वभागी द्वादशी नसली तथापि त्रयोदशी मध्येच पारणादिवसीं प्रबोधोत्सव करण्याचा देशाचार आहे. याप्रमाणे तुलसीविवाह हा नवमी, दशमी आणि एकादशी या तीन दिवसांचे ठिकाणी करावा, अथवा एकादशी

पासून पौर्णिमेपर्यंत कोणत्याही दिवशी, किंवा कार्तिकशुद्ध पक्षातील विवाहनक्षत्रांचे ठिकाणी करावा. असे तुलसीच्या विवाहाचे अनेक काल सांगितले आहेत तथापि पारणादिवशी प्रबोधोत्सवकर्मासहवर्तमान एकतंत्रानेच सर्वत्र कारितात, तोही पारणेच्या दिवशी पूर्ण रात्री करावा. प्रबोधोत्सवाहून निराळा करावयाचा असेल तर दुसऱ्या कार्ती करावा. स्याविषयी पुण्याहवाचन, चांदीश्राद्ध, विवाहहोम इत्यादिक अंगभूत कर्मांसहित तुलसी-विवाहाचा प्रयोग कौस्तुभादिक ग्रंथां पाहावा. संक्षेपाने प्रबोधोत्सवासहवर्तमान एकतंत्राने करण्याचा शिष्टाचार आहे त्याला अनुसरून प्रयोग लिहितो. देशकालांचा उच्चार करून “श्रीदामोदरप्रसिद्ध प्रबोधोत्सवं संक्षेपतस्तुलसीविवाहविधिच तंत्रेण करिष्ये, तदंगतया पुरुषसूक्तेनाविधिना षोडशोपचारिस्तंत्रेण श्रीमहाविष्णुपूजां तुलसीपूजांच करिष्ये,” असा संकल्प करून न्यास इत्यादिक करून श्रीविष्णु व तुलसी यांचे ध्यान करून, “सहस्रशीर्षा०” ह्या मंत्राने श्रीमहाविष्णु व तुलसी यांचे आवाहन करून “पुरुष-एवेदं०” “श्रीमहाविष्णवे दामोदराय श्रीदेव्यै तुलस्यैच नमः” इत्यादिक मंत्रांनी आसन इत्यादिका पासून स्नानापर्यंत पूजा झाल्यानंतर मंगल वाद्ये वाजवून सुवासिनी-कडून, किंवा आपण नागवल्लीच्या पानांनी सुगंधितेल व हळद लावून उष्णोदकाने मंगलस्नान विष्णु व तुलसी यांना घालून पंचामृतस्नान अर्पण करून शुद्धोदकाने अभिषेक करावा. नंतर वस्त्र, यज्ञोपवीत, चंदन अर्पण करून तुलसीला हळद, कुंकुम, कंठसूत्र असे मंगल अलंकार समर्पण करून मंत्रपुष्पापर्यंत पूजा समाप्त करून घंटा इत्यादिक वाद्यांचा गजर करून देवाला जागृत करावे. जागृत करण्याचे मंत्र—“इदंविष्णु०” “योजागार०” हा मंत्र तर आचाराने प्राप्त आहे. “ब्रह्मेद्रुद्राभिकुचेरसूर्यसोमादि भिर्वदितवंदनीयः ॥ बुध्यस्व देवेश जगन्निवास मंत्रप्रभावेन सुखेन देव ॥ इयंच द्वादशी देव प्रबोधार्थं निर्मिता ॥ त्वयैव सर्व लोकानां हितार्थं शेषशायिना ॥ उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गोविंद त्यज निद्रां जगत्पते ॥ त्वयि सुप्ते जगत्सुप्तमुत्थिते चोत्थितं जगत्.” याप्रमाणे जागृत करून “चरणं पवित्रं०” “गता मेघा वियञ्चव निर्मलं निर्मला दिशः ॥ शारदानेच पुष्पाणि गृहाण मम केशव,” इत्यादिक मंत्र लक्षण पुष्पांजलि द्यावी. यानंतर आचाराप्रमाणे तुलसीच्या संमुख श्रीकृष्णमूर्ती करून मध्ये अंतःपठ करून मंगलाष्टकाचे श्लोक पठण करून अंतःपठ दूर करावा. नंतर मूर्ति व तुलसी यांच्यावर अक्षता टाकून दामोदराच्या हातावर तुलसीचे दान करावे. दानाचा मंत्र— “देवीं कनकसंपत्नां कनका-भरणैर्युतां ॥ दास्यामि विष्णवे तुभ्यं ब्रह्मलोकजिगीषया ॥ मया संवर्द्धिता ययाशक्यपलं-कृतां इमां तुलसीदेवीं दामोदराय श्रीधराय वराय तुभ्यमहं संप्रददे,” ह्या मंत्रांनी दान

पूजेने लक्ष्मीची प्राप्ति हे फल. दूबांच्या लक्ष्मूजेने अरिष्टाचा नाश. चंपकपुष्पांच्या लक्षपूजेने आयुष्य वृद्धि. अळशीच्या पुष्पांच्या पूजेने विद्या. तुळसीच्या लक्षपूजेने विष्णु प्रसाद. गहू, तांदूळ इत्यादिक शुद्ध धान्यांच्या लक्षपूजेने दुःखनाश. याप्रमाणे सर्व प्रकारच्या पुष्पांच्या लक्षपूजांनी सर्व मनोरथसिद्धि होते. असे लक्षवार्तीचे व्रत सुद्धा तीन मासपर्यंत करून उत्तरोत्तर प्रशस्त अशा कार्तिक, माघ, किंवा वैशाख या मासांत समाप्त करावे. याप्रमाणे धारणापारणा व्रताचे उद्यापनहि पौर्णिमेचे दिवसींच करावे. मासपर्यंत उपोषण इत्यादिक जी कार्तिकमासव्रते त्यांची समाप्ति द्वादशीचे दिवसींच करावी. द्वादशीचे दिवसीं न झाल्यास पौर्णिमेचे दिवसीं करावी, याप्रमाणे आषाढ शुद्ध एकादशी इत्यादिक दिवसीं गोपद्मव्रताचा आरंभ करून दररोज तेहेतीस गोपद्वे घालून गंधपुष्पांनी त्यांची पूजा करून अर्घ्ये, नमस्कार, प्रदक्षिणा तेहेतीस तेहेतीस करून कार्तिकशुद्ध द्वादशीचे दिवसीं तेहेतीस अपूर्वाचे वापन द्यावे. याप्रमाणे पांच वर्षपर्यंत गोपद्मव्रत करून नंतर उद्यापन करावे. लक्षप्रदक्षिणा इत्यादिक व्रतांपासून गोपद्मव्रतापर्यंत उद्यापनाचे विधि कौस्तुभग्रंथी पाहवे. कार्तिक पौर्णिमेच्या दिवसीं कृत्तिकानक्षत्राचा योग असेल तर महापुण्य आहे. रोहिणीचा योग असेल तर तिला महाकार्तिकी असे नाम आहे. कृत्तिकानक्षत्राने युक्त अशा कार्तिक पौर्णिमेचे दिवसीं कार्तिकस्वामीचे जो दर्शन करितो तो सात जन्मपर्यंत धनाढ्य, वेदपारंग, ब्राह्मण असा होईल. विशाखानक्षत्रीं सूर्य असून ज्या दिवसीं चंद्रनक्षत्र कृत्तिका येईल त्या दिवसीं पद्मकयोग होतो. हा पद्मकयोग पुष्कर तीर्थाचे ठिकाणी अतिपुण्यकारक आहे.

त्रिपुरी पौर्णिमा.

ह्या पौर्णिमेचे दिवसींच त्रिपुरादिवे लावावे. कार्तिक मासांत पौर्णिमेचे दिवसीं काम्य वृषोत्सर्ग करावा, व तो अतिपुण्यकारक होतो. या प्रमाणे हत्ती, घोडे, रथ, घृत, धेनु इत्यादिक जी महादाने तीहि प्रशस्त होत. वृषोत्सर्ग करण्याविषयीं अश्विनी पौर्णिमा चंद्रग्रहण, सूर्यग्रहण, कर्कसंक्रांति, मकरसंक्रांति, तुलासंक्रांति, मेषसंक्रांति, असे दुसरे काल सांगितले आहेत. दुसऱ्या ग्रंथीं माघी, चैत्री, वैशाखी, फाल्गुनी, आषाढी ह्या पौर्णिमा व रेवतीनक्षत्र, वैधृति, व्यतिपात, युगादि, मन्वादि, सूर्यसंक्रांति, पित्याचा क्षय दिवस, अष्टकाश्राद्धांचे दिवस हेहि काम्यवृषोत्सर्गाचे काल सांगितले आहेत. या विषयीं अतिविस्तृत व शाखापरत्वे निरनिराळा असा वृषोत्सर्गाचा प्रयोग कौस्तुभग्रंथीं पाहावा.

कालाष्टमी.

कार्तिक कृष्णपक्षांतील जी अष्टमी तिला कालाष्टमी असें झणतात. पौर्णिमांत मास या पक्षानें मार्गशीर्षांतील ही कृष्णाष्टमी होते. ती ही अष्टमी मध्यान्हकालव्यापिनी ध्यावी. दोन दिवस मध्यान्हकालव्याप्ति असल्यास पूर्वदिवसाचीच ध्यावी असें निर्णय सिंधुमध्ये आहे. प्रदोषव्यापिनी ध्यावी असें कौस्तुभांत सांगितलें आहे. दोन दिवस प्रदोषव्यापिनी असेल किंवा प्रदोषकाली एकदशव्याप्ति असेल तर, दुसऱ्या दिवसाचीच ध्यावी. जेव्हां पूर्वदिवसी प्रदोषव्यापिनीच असून दुसऱ्या दिवसी मध्यान्हकालव्यापिनीच असेल तेव्हां बहुशिष्टाचाराच्या अनुरोधास्तव प्रदोषकालव्याप्तिनेच निर्णय करावा, मध्यान्हकालव्याप्तिनें करूं नये असें वाटते. ह्या अष्टमीचे दिवसी कालभैरवाची पूजा करून तीन अर्धे द्यावीं, व उपोषण, जागरण इत्यादिक करावें. ॥ या प्रकारें करून अनंतोपाध्याय यांचा पुत्र काशीनाथोपाध्याय याणें रचिलेल्या धर्मासिंधुतार ग्रंथांतील कार्तिक मासांत करावयाचे कृथांचा निर्णय झाला.

मार्गशीर्षमासांतील कृत्यें.

धनुःसंक्रांतीच्या पुढच्या सोळा घटिका पुण्यकाळ. इतर निर्णय पूर्वी सांगितला आहे.

नागपूजा.

मार्गशीर्षशुद्ध पंचमीचे दिवसी नागपूजा करावी. ती नागपूजा दक्षिण देशांतील लोकांत प्रतिद्ध आहे. ही पंचमी षष्ठीयुक्त ध्यावी इत्यादिक विशेष निर्णय प्रथम परिच्छेदांत सांगितला आहे.

चंपाषष्ठी.

मार्गशीर्षशुक्लांतील षष्ठीला महाराष्ट्रामध्ये चंपाषष्ठी झणतात. ही दोन दिवस असेल तर रविवार, भौमवार, शततारका, वैधृति यांतून अधिकांचा योग असा उया दिवसी येईल ती सहा घटिका व्यापिनी असी पूर्व दिवसाची किंवा दुसऱ्या दिवसाची ध्यावी. दोनही दिवसी पूर्वी सांगितलेला योग नसेल तर सहा घटिका व्यापिनी असी दुसऱ्या दिवसाचीच ध्यावी. हिलाच स्कंदषष्ठी असें नाम आहे. ती पूर्व दिवसाची ध्यावी. यानंतर सप्तमीचे दिवसी सूर्यव्रत करावें, त्याचा विधि कौस्तुभांत सांगितला आहे. मृग-नक्षत्रानें युक्त अशा मार्गशीर्ष पौर्णिमेचे दिवसी लवणाचें दान केलें असतां सुख-रूप प्राप्त होतें.

दत्तजयंति.

मार्गशीर्ष पौर्णिमेचे दिवसी दत्तत्रेयाचा अवतार झाला, ही पौर्णिमा प्रदोषव्यापिनी ध्यावी. मार्गशीर्षशुद्ध चतुर्दशी किंवा पौर्णिमा या दिवसी प्रदोषकाली आश्वलायनशाखी जे त्यांनी प्रत्यवरोहण नामक कर्म करावें. त्या प्रत्यवरोहणाविषयी कर्म कालव्यापिनी तिथि ध्यावी. प्रत्यवरोहणाचा प्रयोग प्रयोगरत्न (नारायणभट्टी), कौस्तुभ इत्यादिक ग्रंथी पाहावा. मार्गशीर्षादिक जे चार मास त्यांच्या कृष्णपक्षांच्या अष्टमीचे दिवसी अष्टकाश्राद्धे, त्यांच्या पूर्वीच्या सप्तमीचे ठिकाणी पूर्वेद्युःश्राद्धे, आणि त्यांच्या पुढच्या नवमीचे दिवसी अन्वष्टक्य श्राद्धे, याप्रमाणे श्राद्धे करावीं. याप्रमाणे भाद्रपदकृष्ण पक्षाचे ठिकाणीहि अष्टकादिक श्राद्धे करावीं असा पांच अष्टकाश्राद्धांचा पक्ष आश्वलायनांहून जे इतर शाखी त्यांनी करावा; आश्वलायन जे त्यांनी तर मार्गशीर्षादिक चार अष्टकाश्राद्धांचा पक्षच करावा. भाद्रपद कृष्णाष्टमीचे दिवसी तर “माघ्यावर्षश्राद्धं करिष्ये,” असा संकल्प करून सर्व कर्म अष्टकाश्राद्धाप्रमाणेच करावें. सप्तमीचे दिवसी तर, “माघ्यावर्षश्राद्धं कर्तुं पूर्वेद्युःश्राद्धं करिष्ये” असा संकल्प करावा. नवमीचे दिवसी तर, “अन्वष्टकाश्राद्धं करिष्ये,” असा संकल्प करणे हा विशेष सांगितला. याप्रमाणे भाद्रपदकृष्ण पक्षांतिल जे अष्टमीचे श्राद्धे त्याच माघ्यावर्ष असी संज्ञा आहे, याकरितां आश्वलायन जे त्यांनी चार अष्टकापक्ष करावा. अन्यशाखी जे त्यांनी पौषादिक तीन अष्टकापक्षाहि करावा. याप्रमाणे जर सर्व अष्टकाश्राद्धे करण्याला समर्थ नसेल तर त्याने एकच अष्टकाश्राद्ध करावें. तेहि माघी पौर्णिमेनंतर कृष्णपक्षांतिल सप्तमी, अष्टमी व नवमी अशा तीन दिवसांचे ठिकाणी करावें. तीन दिवस श्राद्ध करण्याला समर्थ नसेल तर त्याने माघकृष्णपक्षां अष्टमीश्राद्धच करावें. त्या अष्टकाश्राद्धाविषयी अष्टमी घेणे ती अपराण्हकालव्यापिनी ध्यावी, दोन दिवस अपराण्हकालव्यापिनी असेल किंवा नसेल तर दर्शश्राद्धाप्रमाणे निर्णय जाणावा. अष्टमी ज्या दिवसी होईल त्याच्या पूर्व दिवसी पूर्वेद्युःश्राद्ध, आणि अष्टमीच्या दुसऱ्या दिवसी अन्वष्टक्य श्राद्ध याप्रमाणे श्राद्धे करावीं. सप्तमी व नवमीचे दिवसी अपराण्हकालव्यापिनीचे कारण नाहीं. एक दिवसहि अष्टका श्राद्ध करण्याला समर्थ नसेल तर त्याने गौणपक्ष स्वीकारावे, ते असे;— “वैलाला तृण घालावें, अमीकडून शुष्क तृणाचे दहन करावें, गुरू पासून सांग वेदाचे अध्ययन केलेले त्याला उदकुंभ द्यावा, अथवा श्राद्धांचे मंत्र पठण करावे.” क्वचित् ग्रंथी उपोषण करावें असेहि सांगितले आहे. याप्रमाणे श्रवणाकर्म इत्यादिक ज्या पाकसंस्था त्यांचा लोप होईल तर दरएक पाकपन्नाला प्राजापत्यकृच्छ्राय-

श्वित्त करावें असें आहे. मलमासांत अष्टका श्राद्धे करून नयेत असें नारायणाचे वृत्तींत आहे. अष्टकादिक तीन श्राद्धांचा प्रयोग कौस्तुभ, प्रयोगरत्न इत्यादिक ग्रंथांनी पाहावा. ह्या अष्टमी श्राद्धाचे ठिकाणी कामकालसंज्ञक विश्वेदेव ध्यावे. सममी व नवमी या श्राद्धांचे ठिकाणी पुरुरवार्वसंज्ञक ध्यावे. अग्निहोत्री असेल तर त्यानें पूर्वेद्युःश्राद्धाचा अंगभूत होम, अष्टकाश्राद्धाचा अंगभूत होम, आणि अन्वष्टकाचा अग्नौकरणहोम व तीन दिवस हवीचें श्रवण, हीं दक्षिणाग्नीचे ठिकाणीं करावीं. बाकीचें कर्म गृह्याग्नीप्रमाणें करावें. अष्टकाश्राद्धाचा लोप होईल तर प्राजापत्य, किंवा उपोषण हें प्रायश्चित्त करावें. अन्वष्टक्यश्राद्धाचा लोप झाल्यास त्या दिवसी, “एभियुभिः सुमना०” या मंत्राचा शंभर वेळ जप करावा.

मार्गशीर्षापासून बारा मासांचे ठिकाणीं दरएक रविवारीं काभ्य असें सूर्याचें व्रत करावें. त्या व्रताचे दिवसीं कोणते पदार्थ भक्षण करावे ते,—मार्गशीर्षांत तीन तुळसी-पत्रे, पौषांत तीन पल्ले घृत, माघमासांत तीन मुठी तीळ, फाल्गुनांत तीन पल्ले दही, चैत्रांत तीन पल्ले दूध, वैशाखांत गोमय, ज्येष्ठांत तीन अंजाले उदक, आषाढमासीं तीन मिरचा, श्रावणांत तीन पल्ले भाजलेल्या सातूचें पीठ, भाद्रपदांत गोमूत्र, आश्विनांत साखर, कार्तिकांत शुद्ध हवि याप्रमाणें भक्षण करावे. ॥ या प्रकारें करून अनंतोपाध्यायांचा पुत्र काशीनाथोपाध्याय याणें रचिलेल्या धर्मसिंधूसार नामक ग्रंथांतिल मार्गशीर्ष मासांत करावयाचे कृत्यांचा निर्णय झाला.॥

आतां पौष मासांतिल कृत्ये.

मकरसंक्रांति दिवसा झाली असतां पुढच्या चाळीस घटिका पुण्यकाळ. एक घटिका किंवा काही अधिक दिवस शेष राहिला असून मकरसंक्रांति होईल तर संक्रांतीच्या नवळचा जो पूर्वकाल त्या कार्त्तिके दिवसासच ज्ञान, दान, श्राद्ध, भोजन इत्यादि करावीं. कारण, रात्री श्राद्ध, दान इत्यादिकांचा निषेध आहे, व स्वल्प दिवसाच्या भागांत ज्ञान, श्राद्ध, आपलें भोजन इत्यादिक होण्यास अशक्य आहे, आणि संक्रांतीच्या रात्री भोजनाचा निषेध आहे व पुत्रवाग्दृहस्थाश्रमी याला उपोषणाचाहि निषेध आहे. तस्मात् अशा प्रसंगी दुसऱ्या दिवसाचा पुण्यकाळ बाधित करून मकरसंक्रांतीच्या पूर्वभागांत पुण्यकाल जाणावा. रात्रीमध्ये रात्रीच्या पूर्वभागी किंवा उत्तर भागी अथवा निशीथकाली मकरसंक्रांत होईल तर पुढचा दिवस पुण्यकाल, त्यामध्ये पुढच्या दिवसाचें पूर्वाह्न विशेष पुण्यकाळ, त्यामध्ये सूर्योदयानंतर पांच घटिका अतिशय पुण्यकाल जाणावा. याप्रमाणें रात्री संक्रांति झाली असतां अन्यस्थलींहि असेच समजावें. जेथे पूर्व दिवसाचें उत्तराह्न

पुण्यकाल असें असेल तेथे दिवसाच्या अंती पांच घटिका विशेष पुण्यकाळ. जेथे पुढच्या दिवसाचे पूर्वाह्न पुण्यकाळ असें असेल तेथे सूर्योदयानंतर पांच घटिका अतिशय पुण्यकाळ असतांही मकरादिक सहा संक्रांतींचे ठिकाणी संक्रांतीच्या जवळच्या अशा पुढच्या घटिका अतिशय पुण्यकारक होत. कर्कादिक सहा संक्रांतींचे ठिकाणी संक्रांतीच्या जवळच्या अशा पूर्वीच्या घटिका अतिशय पुण्यकारक होत, असें जाणावे. कारण, “संक्रांतीच्या जवळच्या ज्या ज्या घटिका, त्या त्या अतिशय पुण्यकारक सांगितल्या,” असें वचन आहे. मुहूर्तींचितामणि इत्यादिक ग्रंथीं तर सूर्यास्तानंतर तीन घटिका संध्याकाल सांगितला त्या कालीं मकर संक्रांति झाली असतां दुसऱ्या दिवसाचा पुण्यकाळ बाधित करून पूर्वाह्नपूर्वी पुण्यकाल सांगितला, परंतु हे सर्व धर्मशास्त्रग्रंथांमध्ये मिळत नाही. ‘शुक्लपक्षा मध्ये सप्तमीचे दिवसी कोणतीही सूर्यसंक्रांति होईल तर ती ग्रहणापेक्षा अधिक होय.” ह्या संक्रांतीचे ठिकाणी कुर्ये—“सूर्यसंक्रांति झाली असतां जो मनुष्य स्नान करित नाही, तो सात जन्मपर्यंत रोगी होत्साता निर्धन होतो,” असें वचन आहे. या करितां सर्व मनुष्यमात्रांला स्नान नित्य आहे. याप्रमाणे अधिकारी असेल त्याला श्राद्ध जें तेंहि नित्य आहे. तें श्राद्ध पिंडराहित करावे. —“संक्रांतीचे दिवसी देवपितरांच्या उद्देशानें दाय्यांनीं जीं दानें केलीं तीं पुनः सूर्य जन्मजन्माचे ठिकाणीं देतो.” अयन संक्रांतिनिमित्त तीन दिवस उपोषण करावे. अथवा ज्या अहोरात्रांत संक्रांति झाली त्या अहोरात्राचे ठिकाणीं किंवा पुण्यकालयुक्त अहोरात्राचे ठिकाणीं उपोषण करून पूर्वी सांगितलेल्या पुण्यकालीं स्नानदानादिक करावे. हे उपोषण अपत्ययुक्त जो गृहस्थाश्रमी सानें करूं नये. ‘हे राजा, तिळांची धेनु करून उत्तरायणाचे ठिकाणीं (मकरसंक्रांतीचे दिवसीं) द्यावी. तिळांच्या तेलाला उत्तम दिवे शिवाल्यांत लावावे. तिळ व तांदूळ यांहींकरून शिवाची पूजा करावी: मकरसंक्रांतीचे दिवसीं आंगाला तिळ लावून तिलोदकानें स्नान करावे, तिळांचें दान करावे, व तिळहोम करावा, व तिळ भक्षण करावे. ह्या मकरसंक्रांतीचे दिवसीं श्वेत तिळांनीं देवादिकांचें तर्पण, व कृष्ण तिळांनीं पितरांचें तर्पण करावे. ह्या संक्रांतीच्या दिवसीं महादेवावर घृताचा अभिषेक केला असतां महाफल प्राप्त होतें. ह्या संक्रांतीचे दिवसीं सुवर्णयुक्त तिळ, ताम्रपात्रांत घालून त्याचें दान करावे, त्याचा प्रयोग सांगेन. ह्या संक्रांतीचे दिवसीं पुढें सांगतों याप्रमाणें शिवपूजारूपत्रत करावे. तें असें,—पूर्वाह्नपूर्वी उपोषण करून संक्रांतीचे दिवसीं तिलोद्वर्तन, तिलस्नान, तिलतर्पण हीं करून गाईच्या घृतानें शिवाला मर्दन करून शुद्ध उदकानें प्रक्षालन करून नंतर वस्त्रादिक उपचारांनीं पूजा करावी. नंतर सुवर्ण, हिरा, नीळ, माणिक, मोती असीं पंचरत्नें किंवा

आठ मासे सुवर्ण शिवाला समर्पण करून सुवर्णासहित तिळांचे दिवे, तळि व तांदूळ यांहीं पूजा करून घृतकंचल समर्पण करून चांदवा, चामर समर्पण करून ब्राह्मणाला सुवर्णयुक्त तिळ देऊन तिळांचा होम करावा. नंतर ब्राह्मण, 'संन्यासी, यांला भोजन घालून दक्षिणा देऊन, नंतर तिळांसहित पंचगव्य प्राशन करून पारणा करावी. ह्या दिवसी वस्त्रदान केलें असतां महाफल मिळते. " तिलपूर्वक वृषभाचें दान केलें असतां रोगापासून मुक्त होतो." ह्या संक्रांतीचे दिवसी सूर्याला दुधाचा अभिषेक करावा, तेणें करून सूर्यलोक प्राप्त होतो. मेष, तुळा, मकर, आणि कर्क ह्या संक्रांति दिवसा होतील तर त्या दिवसी, त्याच्या पूर्वरात्री, आणि येणाऱ्या रात्रीं असा (वारा प्रहर) अनध्याय. पूर्वी सांगितलेल्या संक्रांति रात्रीं होतील तर त्या रात्रीं, त्याच्या पूर्व दिवसी, आणि पुढें येणाऱ्या दिवसी अनध्याय. याप्रमाणें पक्षिणी (हणजे बारा प्रहर) अनध्याय जाणावा. ही मकरसंक्रांति रात्रीं होईल तर ग्रहणाप्रमाणें रात्रीमध्येच स्नान, दान करावें, असा पक्ष कितीएक ग्रंथकारांनीं लिहिला आहे, परंतु तो सर्व शिष्टांला मान्य नाही. अयनसंक्रांतीचा दिवस आणि त्याच्या पुढचा कर्मिस्तंभक दिवस हे दोन दिवस शुभकार्याला वर्ज्य करावे, हणजे ह्या दोन दिवसीं कोणतें शुभकार्य करूं नये. त्यामध्ये अर्द्धरात्रीच्या पूर्वी अयनसंक्रांति होईल तर तो संक्रांति दिवस व त्याच्या पुढचा दिवस हे वर्ज्य करावे. निशीथकालीं किंवा निशीथकालानंतर संक्रांति होईल तर पुढचा दिवस व त्याच्या पुढचा दिवस हे वर्ज्य करावे, असें वाटते. याप्रमाणें ग्रहणाचे ठिकाणींहि हा करिदिवसाचा निर्णय जाणावा.

पौषशुक्ल अष्टमीचे दिवसीं बुधवारयोग असेल तर स्नान, जप, होम, तर्पण, आणि ब्राह्मणभोजन हीं करावीं. ह्या अष्टमीचे दिवसीं भरणीनक्षत्राचा योग असल्यास तो योग महापुण्यकारक होय असें कोणी ग्रंथकार हणतात. रोहिणी, आर्द्रा यांचा योग असतां महापुण्यकारक असें दुसरे ग्रंथकार हणतात. पौषशुक्लपक्षांतील एकादशी तिथि मन्वादि होय, तिचा निर्णय पूर्वी सांगितला आहे.

आतां माघस्नान.

माघस्नानाचा आरंभ करणें तो पौषशुक्लपक्षांतील एकादशी, पौर्णिमा, किंवा अमावास्या या दिवसीं करावा, व माघमासांत द्वादशी, पौर्णिमा इत्यादिक दिवसीं समाप्ति करावी. अथवा मकर संक्रांतीपासून कुंभ संक्रांतीपर्यंत माघस्नान करावें. यानंतर स्नानाचा काल; — अरुणोदयाला आरंभ करून प्रातःकालपर्यंत स्नानकाल जाणावा. 'नक्षत्रें दिसत आहेत तावपर्यंत स्नान करावें तें उत्तम. नक्षत्रें लुप्त झाल्यानंतर करावें तें मध्यम. हे राजा, सूर्याचा उदय झाल्यानंतर करावें तें हीन होय." "सूर्याचा

किंचित् उदय झाला असता माघ मासांत उदके असी बोलतात कीं, ब्रह्महत्या करणारा, सुरापान करणारा असे कोणी पातकी असतील त्यांला आह्मी पावन करतो.” ह्या माघ-ज्ञानाविषयी अधिकारी “ब्रह्मचारी, गृहस्थाश्रमी, वानप्रस्थ, संन्यासी, बाल, वृद्ध, तरुण असे पुरुष, स्त्रिया, नपुंसक हे सर्व जाणावे.” यानंतर उदकाच्या तारतम्येकरून ज्ञानाचे फल सांगते—“मकर संक्रांतीला सूर्य असतां गृहाचे ठिकाणीं उष्णोदकाने जें स्नान करावें तें पडब्दफल देणारें होतें.” विहीर इत्यादिकां स्नान केलें असतां द्वादशाब्दाचे फल देणारें होतें. तडागाचे ठिकाणीं स्नान केलें असतां द्वादशाब्दाचे द्विगुणित फल. नदीचे ठिकाणीं द्वादशाब्दाचे चौपट फल. महानदीचे ठिकाणीं शतगुणित फल. दोन महानदींच्या संगमां व्याख्या चतुर्गुणित फल. गंगेचे ठिकाणीं सहस्रगुणित फल. गंगा व यमुना यांच्या संगमाचे ठिकाणीं ह्याच्या शतगुणित फल जाणावे. कोणत्याहि ठिकाणीं स्नानाकालीं प्रयागाचे स्मरण करावें. हें माघज्ञान समुद्राचे ठिकाणींही केलें असतां अतिउत्तम होय.

माघस्नानाचा विधि.

“हे माघवा देवा, ह्या तीर्थाचे उदकाचे ठिकाणीं संपूर्ण माघमासपर्यंत निरुपमा स्नान करीन असा मनामध्ये संकल्प करून स्नानाकरितां एक तीर्थ योजून, “दुःख दारिद्र्य नाशाय श्रीविष्णोस्तोषणाय च ॥ प्रातःस्नानं करोम्यद्य माघे पापविनाशनं ॥ मकरस्ये रवौ माघे गोविंदाच्युत माघव ॥ स्नानेनानेन मे देव यथोक्तफलदो भव,” हे मंत्र लघून मीनयुक्त होत्सता स्नान करावें. दररोज स्नान झाल्यानंतर सूर्याला अर्घ्य द्यावें. अर्घ्याचा मंत्र—“सवित्रे प्रसवित्रेच परंधाम जले मम ॥ त्वत्तेजसा परिभ्रष्टं पापं यातु सहस्रधा.” याप्रमाणें अर्घ्य दिल्यानंतर पितृतर्पण इत्यादिक निरुपमा करून माघवाची पूजा करावी. “माघमासाचे ठिकाणीं भूमिशयन, तिळयुक्त घृताचा होम, हविष्यपदार्थांचें भक्षण, आणि ब्रह्मचर्य हीं महाफलदायक होत. ह्या माघमासांत काष्ठें, उर्णावस्त्रें, उपानह, तैल, घृत, गाद्या, लेपें, सुवर्ण, आणि अन्न यांचीं दानें महाफल देणारीं होत. “ हे स्त्रिये; स्नान केला असेल अथवा स्नानविरहित असेल त्यानेंही अग्नीचें सेवन करूं नये, होमाकरितां अग्नीचें सेवन करावें, शीतनिवारणार्थं कधींही करूं नये.” “दररोज शर्करायुक्त तिळ द्यावे.” ते असे,—तीन भाग तीळ, चवथा भाग साखर याप्रमाणें द्यावे. ह्या माघमासांत तैलाभ्यंग वर्य्य करावा. “माघमासाचे ठिकाणीं उषःकालीं (पंचावन्न घटिकापरिमित कालीं) स्नान करून दांपत्याचें पूजन करावें. माघमासांत सर्वथा मुळा वर्य्य करावा, कारण तो मद्याप्रमाणें निषिद्ध आहे. पितर व देव यांलाहि

मुळा अर्पण करूं नये. ज्या वर्षी माघमास मलमास होतो त्या वर्षी मलमासांत काश्यत्र तांच्या समाप्तीचा निषेध असल्यामुळे माघस्नान व तत्संबंधी नियम दोन महिनेपर्यंत करावे. मासपर्यंत उपोषण, चांद्रायण इत्यादिक व्रतें तर मलमासांतच समाप्त करावीं असें सांगितलें आहे. हे माघस्नान नियम व काश्य असें दोन प्रकारचे आहेत. संपूर्ण मासपर्यंत स्नान करण्याला असमर्थ असेल तर त्यानें तीन दिवस किंवा एक दिवस स्नान करावें. त्यामध्ये पहिले तीन दिवस स्नान करावें असें कोणीं म्हणतात. त्रयोदशपिसून तीन दिवस करावें असें बहुसंमत आहे. पौष पौर्णिमेच्या नंतर ज्या अष्टमी, सप्तमी आणि नवमी तिथीं त्यांचे ठिकाणीं कर्तव्य जीं अष्टकादिक श्राद्धें तीं पूर्वीं सांगितलींच आहेत. पौष अमावास्येचे दिवसीं अर्धोदययोग होतो, तो असा;—“पौष, माघ मासांतील अमावास्येचे दिवसीं रविवार, व्यतीपात, श्रवणनक्षत्र यांचा योग असेल तर तो ‘अर्द्धोदय’ म्हणतात, व तो कोटिसूर्यग्रहणाशीं नुसल्य आहे.” “यांत कांहीं योग कमी असल्यास ‘महोदय’ होतो असा चवथा पाद कोणी पठण करितात. पौष व माघ यांच्या मधली अमावास्या असा अर्थ कोणी दुसरे ग्रंथकार करितात. अमांत मासांत पौषी अमावास्या, आणि पौर्णिमांत मासांत माघी अमावास्या असा अर्थ दुसरे ग्रंथकार करितात. एकंदरीत पौषपौर्णिमेच्या नंतरची अमावास्या असा अर्थ समजावा. “हा अर्द्धोदययोग दिवसासच प्रशस्त आहे, रात्रीं नाही. अर्द्धोदय आला असतां सर्व उदक गंगेप्रमाणें पवित्र, व सर्व ब्राह्मण ब्रह्मदेवासारखे शुद्ध होत. ह्याकालीं अल्प जें कांहीं दान करावें तें मेरुपर्वताप्रमाणें मोठें होतें.”

पात्रदानाचा प्रयोग.

देशकालांचा उच्चार करून, “समुद्रमेखलायाः पृथ्व्याः सभ्यदानफलकामो ऽहमर्द्धोदय विहितामन्नदानं करिष्ये,” असा संकल्प करून सारवलेल्या शुद्ध भूमीवर धुतलेल्या तांदुळांचें अष्टदल करून चौसष्ट, चाळीस, किंवा पंचवीस पळे वजनाचें, कांस्यपात्र घेऊन त्या अष्टदलावर अग्न्युत्तारणपूर्वक त्याची स्थापना करावी. वजनाचें मान—आठ गुंजांचा एक मासा, चाळीस मास्यांचा एक कर्ष, चार कर्षांचें एक पळ. अमरासिंहाच्या मतानें तर ऐशी गुंजांचा एक कर्ष, चार कर्षांचें एक पळ. कांस्यपात्रांमध्ये क्षीर घालून तिचे ठिकाणीं अष्टदल काढून त्याच्या कार्णिकेचे ठिकाणीं एक, अर्धा किंवा पाव कर्ष यांतून कोणत्याहि परिमाणाचें सुवर्णाचें लिंग ठेऊन कांस्यपात्राचे ठिकाणीं ब्रह्मा, पायसाचे ठिकाणीं विष्णु, आणि लिंगाचे ठिकाणीं शिव यांची अधिकारानुरूप वैदिक किंवा नाम-मंत्रांनीं आवाहनादिक उपचारें करून पूजा करावी. त्यानंतर वस्त्रादिकांनीं ब्राह्मणाची

पूजा करून त्या कांस्यपात्राचें दान करावें. दानाचा मंत्र—“सुवर्णपायसामंत्रं यस्मादे तत् प्रथीमयं ॥ आबधोस्तारकं यस्मात्तद्गृहाण द्विजेत्तम ॥ अमुकगोत्रायामुकशर्मणे तुभ्यं इदं सुवर्णलिंगपायसयुक्तममंत्रं समुद्रमेखलापृथ्वीदानफलकामोहं संप्रददे न मम” असें लक्षण ब्राह्मणाच्या हस्तावर उदक घालावें, व ब्राह्मणानें “दवस्यत्वा ०” ह्या मंत्रानें दान घ्यावें. दानानें “दानस्य संपूर्णतार्थमिमां दक्षिणां संप्रददे” असें वाक्य लक्षण यथाशक्ति सुवर्ण द्यावें. हेमाद्रि इत्यादिक ग्रंथकारांनीं सांगितलेल्या असा दुसऱ्या प्रकारचा, या व्रताचा प्रयोग आहे. तो असा;—ब्रह्मा, विष्णु, शिव यांहीं युक्त असे तिळांचे तीन पर्वत, तीन शय्या व तीन गाई या सर्वांचें दान करून होम इत्यादिक करावें. हा प्रयोग कौस्तुभप्रंथी पाहावा. ॥ याप्रकारें करून अनंतोपाध्यायांचा पुत्र काशीनाथोपाध्याय याणें रचिलेल्या धर्मसिधुसार ग्रंथातील पौषमासांत करावयाचे कृत्यांचा निर्णय झाल्या. ॥

माघमासांतिल कृत्ये.

कुंभसंक्रांतीच्या पूर्वीच्या सोळा घटिका पुण्यकाळ.—त्रिवेणीचे ठिकाणीं ज्ञानाचा महिमा — माघमासामध्ये त्रिवेणीचे ठिकाणीं ज्ञानाचा महिमा — “हे युधिष्ठिरा, माघमासामध्ये गंगा व यमुना यांच्या संगमाचे ठिकाणीं जे ज्ञान करितात त्याला करूपक्री टिशातानंतरही पुनः जन्म होत नाही. ज्या कोणत्याही स्थलीं गंगेचे ज्ञान कुरुक्षेत्रासमान होतें. कुरुक्षेत्राच्या दशगुणित विंध्यपर्वतस्थलीं, त्याच्या शतगुणित काशीचे ठिकाणीं, काशीच्या शतगुणित गंगा व यमुना यांचे संगमाचे ठिकाणीं, त्याच्या सहस्रगुणित माघ मासीं पश्चिमवाहिनीचें फल, याप्रमाणें ज्ञानाचें फळ जाणावें.”

माघमासांतिल तिलपात्रदानाचा प्रयोग.

माघमासांत तिलपात्राचें दान करणें फार उत्तम होय. त्याचा प्रयोग;—“सोळा-पळे वजनाचे ताम्रपात्रांत तीळ घालून सुवर्णयुक्त किंवा यथाशक्ति ब्राह्मणाला दान करावें.” दानाचा संकल्प;—“वाङ्मनःकायज त्रिविध पापनाशपूर्वक ब्रह्मलोकप्राप्ति कामस्तिलपात्रदानं करिष्ये” असा संकल्प करून पूर्वेक्त वजनाच्या ताम्रपात्रांत प्रस्थ परिमित तीळ घालून त्यांत तोळाभर किंवा यथाशक्ति सुवर्ण घालून ब्राह्मणाची पूजा करून तिलपात्राचें दान करावें. दानाचा मंत्र—“देवदेव जगन्नाथ वाञ्छितार्थाफलप्रद ॥ तिलपात्रं प्रदास्यामि तवांगे संस्थितो ह्यहं” धान्याच्या मापाचें परिमाण—चार मुष्टींचा एक कुडव, चार कुडवांचा एक प्रस्थ, चार प्रस्थांचा एक आटक, आठ आटकांचा एक शोण, दोन शोणांचा एक शूर्प, दीड शूर्पाची एक खारी, ह्या रीतीने—किंवा चार सुव.

णांचे एक पळ, चार पळांचा एक कुडव, चार कुडवांचा एक प्रस्थ, चार प्रस्तांचा एक आढक, चार आढकांचा एक हाग, चार शोणाचीं एक खारी' ह्या रीतीनें प्रस्थमानाचें स्वरूप समजावें, अथवा स्वर्गराहेत असे तिल द्वात्रिंशत्पात्रांत घालून " तिलाः पुण्याः पवित्राश्च सर्वपापहराः स्मृताः ॥ शुद्धाश्चैव तथा कृष्णा त्रिष्णुगात्रसमुद्भवाः ॥ यानि कानिच पापानि ब्रह्महत्यासमानिच ॥ तिलगात्रप्रदानेन तानि नश्यंतु मे सदा ॥ इदं तिलपात्रं यथा शक्तिं दक्षिणासहितं यमदैवतं ब्रह्मलोकप्राप्तिकामस्तुभ्यमहं संप्रददे " या मंत्रानीं तिल पात्राचें सुवर्णसहितं दान करावे. आतां तुळसीपात्राच्या दानाचा मंत्रः— "सुवर्णतुळसी दानात्ब्रह्मणः कायसंभवात् ॥ पापं प्रथममायतु सर्वे संतु मनोरथाः " शालग्रामदानाच मंत्र— " शालग्रामशिखा पुण्या भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी ॥ शालग्रामप्रदानेन मम संतु मनो रथाः ॥ चक्रांकितसमायुक्तशालग्रामशिखा शुभा ॥ दानेनैव भवेत्तस्या उभयोर्वाञ्छितंफलं " या मंत्रानीं शालग्रामाचें दान करावें.

आतां प्रयागाचे ठिकाणीं वेणीदानाचा विधि.

प्रयागाचे ठिकाणीं सर्वांनीं क्षीर करावें. दहा महिन्यांनंतर पुरुष तीर्थांला जाईल तर स्त्रियेनें प्रायश्चित्ताव्यतिरिक्त क्षीर करावें. प्रयागाचे ठिकाणीं तर बारा कोशावरून दहा महिन्यांच्या पूर्वींदि आलेल्यानें क्षीर करावें. पहिलीच यात्रा असेल तर ज्याचा पिता जिवं आहे तो, गर्भिणीपति, चौलकर्म झालेले असे बाल, व सौभाग्यवती स्त्रिया या सर्वांनींदि प्रयागाचे ठिकाणीं केशवपन करावें, हा विशेषवेधि जाणावा. कोणी ग्रंथकार तर सौभाग्यवती स्त्रियांनीं सर्व केश धरून दोन अंगुळें छेदावे असें झणतात. त्याचा प्रयोगः—वेणी घातलेली अशा स्त्रियेनें मांगलिक वेध धारण करून पतीला नमस्कार करावा. नंतर पतीची आज्ञा घेऊन सर्व केशांचें वपन किंवा दोन अंगुळें केशांचें छेदन करून स्नान करून त्रिपणांचा पूजा करावी, अथवा पतीकडून पूजा करावी. पूजा झाल्यानंतर छिन केलेली वेणी बांबूच्या पात्रांत घालून तें पात्र अंजलीचे ठिकाणीं धरून त्या छिन वेणीवर सोन्याची वेणी, व मोती हीं ठेऊन, " वेण्यां वेणी-प्रदानेन मम पापं व्यरोहतु ॥ जन्म-तरेष्वपि सदा सौभाग्यं मम वर्धतां " हा मंत्र झणून तें पात्र त्रिवेणीचे ठिकाणीं टाकावें. नंतर ब्राह्मणांनीं "सुमंगलारियं वधूः०" या मंत्राचा पाठ करावा. नंतर ब्राह्मण, सुवासिनी, पांढरा वस्त्रें, दक्षिणा इत्यादिक देऊन आंचा संतोष करावा.

त्रिवेणीचे ठिकाणीं जलसमाधीचा विधि.

११ गंगा व यमुना ह्या नदी जेथे एकत्र झाल्या तेथे जे स्नान करितात ते स्वर्गलोक

काला जातात, व जे जन धीर होताते देहाचे विसर्जन हाणजे जळसमाधि करितात ते मोक्षाला जातात ” असी जी श्रुति ती माघमासाविषयी आहे. कारण, “ माघमासाचे ठिकाणी जो तनूचे विसर्जन करितो त्याला निःसंशय मुक्ति मिळते. ” असे ब्रह्मपुराणाचे वचन आहे. इतर महिन्यांत जळसमाधि केल्याने स्वर्गप्राप्ति होते. प्रयागी यथा-शक्ति सर्व प्रायश्चित्त करून आपली क्रिया करणारा कोणी नसल्यास आपण आपली जिवंतपणीच श्राद्धे, सपिंडीपर्यंत क्रिया ही सर्व करून गोदानादिक करावे. नंतर उपोषण करून पारणेच्या दिवशी फलप्राप्तीचा उल्लेख ज्यांत आहे असा संकल्प करून विष्णूचे ध्यान करून त्रिवेणीचे ठिकाणी प्रवेश करावा. जिवंत श्राद्धांचा प्रयोग कौस्तुभ ग्रंथी पाहावा. माघमासाला उद्देशून “तिलस्नायी, तिलोद्वर्ती, तिलहोमी, तिलोदकी, तिलभुक्, तिलदाता हे सहा तिल पापाचा नाश करणारे होत ” असे जे वाक्य याचे ठिकाणी ‘तिलस्नायी’ या पदेकरून तिलयुक्त उदकाने स्नान करावे. ‘तिलहोमी’ या पदेकरून अयुतलक्ष तिलांचा होम इत्यादिकरूप ग्रहयज्ञाहे करावा. ‘तिलोदकी’ या पदेकरून तिलयुक्त उदकाने देवपूजा, तर्पण, संध्या इत्यादिक करून तिलोदक प्राशन करावे असा अर्थ होतो. होम सांगितला तो तीन प्रकारचा “पहिला दहा सहस्र होम, दुसरा लक्ष संख्याक होम, तिसरा कोटिसंख्याक होम. तो सर्व मनोरथ फल देणारा होतो.” लक्ष होम इत्यादिकांचा कुंडमंडपविधियुक्त प्रयोग कौस्तुभ, मयूख इत्यादिक ग्रंथी पाहावा

ढुंढिराजव्रत.

माघशुक्ल चतुर्थीचे दिवसी गणपतीच्या उद्देशेकरून नक्तव्रत, पूजा, तिलांचे लाडू इत्यादि करून त्यांचा नैवेद्य, व तिलभक्षण हीं करावी. यात्रिपर्यी चतुर्थी प्रदोषव्यापिनी ध्यावी. ह्याच चतुर्थीचे दिवसी कुंदाच्या पुष्पांनीं शिवाची पूजा करून उपोषण किंवा नक्तभोजन करावे, तेणेंकरून लक्ष्मी प्राप्त होते. ह्या चतुर्थीचे दिवसी जें विनायकाचें व्रत त्याचा निर्णय भाद्रपदशुक्ल चतुर्थीसारखा जाणावा.

वसंतपंचमी.

माघशुक्ल पक्षांतील जी पंचमी तिला वसंतपंचमी असें हाणतात. ह्या पंचमीचे दिवसी वसंताच्या उत्सवाचा आरंभ करावा. ह्या पंचमीचे दिवसी राति, व काम यांची पूजा करावी. ही पंचमी पूर्वाण्हकालव्यापिनी असेल तर दुसऱ्या दिवसाची व तसें नसेल तर पूर्व दिवसाचीच ध्यावी.

रथसप्तमी.

माघशुक्लपक्षांतील सप्तमीला रथसप्तमी म्हणतात. ती अरुणोदयव्यापिनी ध्यावी. दोन दिवसीं अरुणोदयव्याप्ते असल्यास पूर्व दिवसाची ध्यावी. जेव्हां एक घटिका किंवा कांहीं अधिक इतकी मात्र षष्ठी असेल आणि सप्तमी क्षयाच्या योगानें अरुणोदयाच्या पूर्वी समाप्त होत असेल तेव्हां षष्ठीयुक्त ध्यावी. त्यांत षष्ठीचे ठिकाणीं सप्तमीचे क्षयाच्या घटिका उल्लंघून अरुणोदयकालीं स्नान करावें. ह्या व्रताचे ठिकाणीं षष्ठीचे दिवसीं एक वेळ भोजन करून सप्तमीचे दिवसीं अरुणोदयकालीं स्नान करावें.—स्नानाचे मंत्रः—यदा जन्मकृतं पापं मया जन्मसु जन्मसु ॥ तन्मे रोगंच शोकंच माकरी हंतु सप्तमी ॥ एतज्जन्म-कृतं पापं यच्च जन्मांतराजितं ॥ मनोवाक्कायजं यच्च ज्ञाताज्ञातेच ये पुनः ॥ इति सप्तविधं पापं स्नानान्मे सप्तसप्तिके ॥ सप्त व्याधिसमायुक्तं हर माकरि सप्तमि.” याप्रमाणें स्नान करून सूर्याला अर्घ्य द्यावें. अर्घ्याचा मंत्रः—“सप्तसप्तैवह प्रीत सप्तलोकप्रदीपन ॥ सप्तमीसहितो देव गृहाणार्घ्यं दिवाकर.” ही सप्तमी मन्वादि आहे. ही शुक्लपक्षांतील मन्वादि आहे या करितां पूर्वाण्हकालव्यापिनी ध्यावी असें सांगितलें आहे.

भीष्माष्टमी.

माघशुक्लपक्षांतील अष्टमीला भीष्माष्टमी म्हणतात. ह्या दिवसीं भीष्माचे उद्देशे करून श्राद्ध करितात ते संततियुक्त होतात. तें श्राद्ध कामनिक आहे व तर्पण तर नित्य आहे. भीष्माच्या उद्देशानें तर्पण केलें असतां एक वर्षपर्यंत केलेल्या पातकाचा नाश होतो. कारण “न केलें असतां पुण्याचा नाश होतो” असे वचन आहे. तर्पणाचा मंत्र—वैयाघ्रपद्मगोत्राय सांक्ष्यप्रवराण्यच ॥ गंगापुत्राय भीष्माय आजन्मब्रह्मचारिणे ॥ अपुत्राय जलं ददाति नमो भीष्माय वर्मणे ॥ भीष्मः शंतनवो वीरः सयवादी जितंश्रियः ॥ अभिराङ्गिरवाप्तोतु पुत्रपौत्रोचितां क्रियां.” याप्रमाणें अपसव्यानें तर्पण करून आचमन करावें व अर्घ्य द्यावें. अर्घ्याचा मंत्र—वसूनामवताराय शंतनोराःमजायच ॥ अर्घ्यं ददामि भीष्माय आत्राल्यब्रह्मचारिणे.” जीवतिपृक्काला ह्या तर्पणाविषयीं अधिकार नाही असें कौस्तुभांत आहे, व त्याला अधिकार आहे असेंहि पुष्कळ ग्रंथकार म्हणतात. या विषयीं अष्टमी मध्यान्हकालव्यापिनी ध्यावी. कारण, ह्या अष्टमीचे दिवसीं श्राद्ध इत्यादिक करावयाचें तें एकोदशे करण्याविषयीं सांगितलें आहे, व त्याचा काळ मध्यान्ह आहे.

माघशुक्लद्वादशीचे दिवसीं तिलांची उत्पत्ति झाली याकरितां ह्या द्वादशीचे दिवसीं उपोषण करून तिलयुक्त उदकानें स्नान, तिलकरून विष्णूची पूजा, तिलनैवेद्य, तिळां

व्या तेजाचा दीप, तिलहोम, तिलदान, तिलभक्षण हीं करावीं.

माघीपौर्णिमेचे कृत्य.

ही दुसऱ्या दिवसाची व्याधी. माघीपौर्णिमेचे दिवसीं अन्नदान द्यावे, व ब्राह्मण दांपत्याला भोजन घालून वस्त्रे, अलंकार, यांहांकरून भूषित करावे. कांबळ, कृष्णाजिन, दाबडी वस्त्रे, रुवाचे चोळणे, आंगरखे, चर्मीजोडा, पलंगपोस, हीं सर्व 'माधव संतुष्ट असी' अशा वचनेंकरून द्यावीं. यानंतर 'कृतस्य माघस्नानस्य सांगतार्थं उद्यापनं करिष्ये' असा संकल्प करून नंतर "सवित्रे प्रसवित्रेच परंधाम जले मम ॥ त्वत्तेजसा परिभ्रष्टं पापं यत्तु सहस्रधा ॥ दिवाकर जगन्नाथ प्रभाकर नमोस्तु ते ॥ परिपूर्ण करिष्ये ऽहं माघस्नानं तदाज्ञया," ह्या मंत्रांनींही संकल्प करावा. याप्रमाणें चतुर्दशीचे दिवसीं संकल्प, उपोवण, अधिवासन आणि माधवाची पूजा हीं करून पौर्णिमेचे दिवसीं तिल, सरुघृत, या द्रव्यांचा दरएकाचा एकशें आठ, याप्रमाणें होम करून तिल, साखर ज्यांत घातली आहेत अशा तीस मोदकांचें वायन द्यावे. वायनाच्या दानाचे मंत्र—'सवितः प्रसवस्त्वंहि परंधाम जलेमम त्वत्तेजसा परिभ्रष्टं पापं यत्तु सहस्रधा ॥ दिवाकर जगन्नाथ प्रभाकर नमोस्तु ते परिपूर्णं कुरुष्वेह माघस्नानमुषःपते.' तदनंतर दांपत्याला बारिक वस्त्रे व सप्त धान्ये देऊन इतर ब्राह्मण व दांपत्य यांला घडसभोजन द्यावे. त्याचा मंत्र—'सूर्योमे प्रीयतां देवो विष्णुमुतिर्नरंजनः' याप्रमाणें माघस्नान करणारा, संन्यासी, आणि रणांगणांत शत्रूच्या समोर मृत झालेला हे सर्व सूर्यदेवाचा भेद करून जातात.

चार अष्टकाश्राद्धे करण्याला जो अशक्त असेल त्यानें माघकृष्ण अष्टमीचे दिवसीं एक अष्टकाश्राद्ध, पूर्वशुःश्राद्ध व अन्वष्टक्यश्राद्ध यांहीं युक्त करावे. ह्मणजे सप्तमीचे दिवसीं पूर्वशुःश्राद्ध, अष्टमीचे दिवसीं अष्टकाश्राद्ध आणि नवमीचे दिवसीं अन्वष्टक्य श्राद्ध या प्रमाणें तीन दिवस तीन श्राद्धे करावीं. तीन दिवस श्राद्धे करण्याला असमर्थ असेल तर अष्टमीचे दिवसीं एकच अष्टकाश्राद्ध करावे.

आतां शिवरात्रीचा निर्णय.

माघकृष्ण पक्षांतली चतुर्दशीला शिवरात्रि ह्मणतात. ती निशीथव्यापिनी व्याधी. रात्रीचा जो आठवां मुहूर्त त्याचें नांव निशीथ. त्यामध्ये दुसऱ्या दिवसींच निशीथ व्यापिनी असेल तर दुसऱ्या दिवसाची आणि पूर्व दिवसीं निशीथव्यापिनी असेल तर पूर्वदिवसाची व्याधी. दोनही दिवसीं निशीथव्यापिनी नसेल तथापि दुसऱ्या दिवसाचीच व्याधी, दोन दिवसीं निशीथकालीं संपूर्णव्याप्ति किंवा एकदशव्याप्ति असी अस-

व्यास पूर्व दिवसाची ध्यात्री, असे हेमाद्रीच्या अभिप्रायाप्रमाणे कौस्तुभांत आहे. दुसऱ्या दिवसाचीच ध्यात्री असे माधव, निर्णयसिंधु, पुरुषार्थचिंतामणी इत्यादिक बहुत ग्रंथकार ह्मणतात. दुसऱ्या दिवसीं निशीथकालीं एकदेशव्याप्ति असेल आणि पूर्व दिवसीं निशीथकालीं संपूर्णव्याप्ति असेल तर पूर्व दिवसाचीच ध्यात्री. पूर्व दिवसीं निशीथकालीं एकदेशव्याप्ति असेल, व दुसऱ्या दिवसीं निशीथकालीं संपूर्णव्याप्ति असेल तर दुसऱ्या दिवसाचीच ध्यात्री. ह्या शिवरात्रित्रताचे दिवसीं रविवार, मंगळवार, व शिवयोग यांचा योग असल्यास अति उत्तम.

या त्रताच्या पारणेचा निर्णय.

तीन प्रहरांच्या पूर्वी चतुर्दशी संपेल तर चतुर्दशीच्या अंती पारणा करावी, आणि तीन प्रहरांपेक्षा अधिक चतुर्दशी असेल तर प्रातःकालीं चतुर्दशीमध्येच पारणा करावी असे माधवादिक ग्रंथकार ह्मणतात. निर्णयसिंधूमध्ये तर तीन प्रहरांच्या पूर्वी चतुर्दशी समाप्त होईल तथापि चतुर्दशीमध्येच पारणा करावी, चतुर्दशीच्या शेवटीं कधीहि करूं नये. कारण, "हे पार्वति, चतुर्दशीचे ठिकाणीं उपोषण करून चतुर्दशीमध्ये पारणा करणे हा योग लक्षावधि पुण्यानीं हि मिळण्याचा संशय आहे, व त्या पारणेचे ठिकाणीं एकेक शिताचे फल सांगण्याविषयी मी समर्थ नाही," इत्यादिक वचनें करून चतुर्दशीमध्ये पारणा केली असतां पुण्याच्या अतिशयाचे वचन आहे असे सांगितले. याविषयीं असी व्यवस्था जाणावी — जेव्हां आपले नियमकस्य, पारणा हीं होत इतकी चतुर्दशी नसेल तेव्हा, अथवा ज्यांचे दशादिक श्राद्ध चतुर्दशीच्या शेषदिवसीं येईल त्यांनीं चतुर्दशीच्या अंती पारणा करावी. कारण, द्वादशीप्रमाणे ह्या चतुर्दशीचे दिवसीं नियम कर्माचा अपकर्ष (पुढचे कर्म आदीं करणे) करण्याविषयी वचन नाही, व तिथीच्या अंती पारणा करावी अशाविषयीं वाक्ये असल्यामुळे, संकटविषयीं जलपारणा करावी असे सांगणारीं जीं वाक्ये त्यांची ह्या चतुर्दशीत्रताचे ठिकाणीं प्रवृत्त नाहीं. नियमकस्य व पारणा हीं सर्व होतौल इतकी चतुर्दशी असेल आणि श्राद्ध दिवस नसेल तर चतुर्दशी तिथीमध्येच पारणा करावी.

शिवरात्रित्रताचा प्रयोग.

ज्योदशीचे दिवसीं एकभुक्त राहून चतुर्दशीचे दिवसीं नियम कर्म करून प्रातःकालीं मंत्र ह्मणून संकल्प करावा. संकल्पाचे मंत्र — "शिवरात्रित्रतं ह्येतन् करिष्येऽहं महाफलं ॥ निर्विघ्नमस्तु मेवात्र त्वत्प्रसादाज्जगत्पते ॥ चतुर्दश्यां निराहारो भूत्वाहमपरेऽहनि ॥ भोक्ष्येऽहं भुक्तिमुक्तयर्थं शरणं मे भवेश्वर." ब्राह्मण असेल तर त्यानें "रात्रीं प्रपद्ये जननीं ०"

ह्या दोन मंत्रक्रवाहे पठण करून उदक सोडावे. यानंतर सायान्हकालीं काळी तीळ आंगाला लावून न्जान करून भस्माचा त्रिपुंड्र व रुद्राक्ष धारण करित होत्साता प्रदोष-कालीं शिवाच्या देवालयांत जाऊन हस्त पाद प्रक्षालन करून आचमन करावे. नंतर देश काल यांचा उच्चार करून “शिवरात्रौ प्रथमयामपूजां करिष्ये ” असा संकल्प, चार प्रहरांच्या चार पूजा करणें असतील तर करावा. एक वेळच पूजा करणें असेल तर, “श्रीशिवप्रोत्यर्थं शिवरात्रौ श्रीशिवपूजां करिष्ये” असा संकल्प करावा. त्यामध्ये प्रथम सामान्येकरून पूजेचा विधि सांगतो — दरएक प्रहराचे ठिकाणीं पूजेचा विशेष प्रकार तर पुढें सांगेन. “अस्य श्रीशिवपंचाक्षरमंत्रस्य वामदेवऋषिः ॥ अनुष्टुप् छंदः ॥ श्रीसदाशिवो देवता न्यासे पूजने जपेच विनियोगः ॥ वामदेवऋषये नमः शिरसि ॥ अनुष्टुप्छंदसे नमो मुखे ॥ श्रीसदाशिवदैवतायै नमः हृदि ॥ ओं नं तत्पुरुषाय नमः हृदये ॥ ओं मं अघोराय नमः पादयोः ॥ ओं शि सद्योजाताय नमः गुह्ये ॥ ओं वां वामदेवाय नमः मूर्ध्नि ॥ ओं यं ईशानाय नमः मुखे ॥ ओं ओं हृदयाय नमः ॥ ओं नं शिरसे स्वाहा ॥ ओं मं शिखायै वषट् ॥ ओं शिं कवचाय हुं ॥ ओं वां नेत्रत्रयाय वौषट् ॥ ओं यं अस्त्राय फट्.” याप्रमाणें न्यास करून कलशाची पूजा करावी. नंतर “ध्यायेन्नित्यं महेशं रजतगिरिनिभं चारुचंद्रावतंसं रत्नाकल्पोज्ज्वलांगं परशुमृगवराभीतिहस्तं प्रसन्नं ॥ पद्मासीनं समंतात्स्तुत ममरगणैर्व्याघ्रकृत्ति वसानं विश्वाद्यं विश्ववद्यं निखिलभयहरं पंचवक्त्रं त्रिनेत्रं,” या मंत्रानें ध्यान करून प्राणप्रतिष्ठा करावी. नंतर स्थापना करून लिंगाला स्पर्श करित होत्साता, “ओं, भूः पुरुषं सांवसदाशिवमावाहयामि ॥ ओं भुवः पुरुषं सांव ॥ ओं स्वः पुरुषं सांव ॥ ओं भूर्भुवः स्वः पुरुषं सांव ॥ याप्रमाणें मंत्र झणून आवाहन करावे. नंतर हातांत पुष्पें घेऊन “स्वामिन्सर्वजगन्नाथ यावत्पूजावसानकं ॥ तावत्त्वं प्रीतिभावेन लिंगेऽस्मिन्सन्निधौ भव” या मंत्रेकरून पुष्पांजलि समर्पण करावी. स्थावरलिंग व पुर्वीं अर्चासंस्कार केलेले चरलिंग ह्यांचे ठिकाणीं प्राणप्रतिष्ठेपासून आवाहनपर्यंत विधि करूं नये. “ओं सद्यो जातं प्रपद्यामि सद्यो जातायवै नमो नमः ओं नमः शिवाय श्रीसांवसदाशिवाय नमः आसनं समर्पयामि.” स्त्रिया, शूद्र हे पूजा करणारे असतील तर “ओं नमः शिवाय” असा जो पंचाक्षरमंत्र त्याचे स्थानीं ! “श्रीशिवाय नमः” नमः शब्द उच्चार्य शिवटीं अशा मंत्रानें पूजा करावी. “ओं भवे भवे नातिभवे भवस्वमां ओं नमः शिवाय श्रीसांवसदाशिवाय नमः पादं समर्पयामि ॥ ओं भवोद्भवाय नमः ओं नमः शिवाय श्रीसांवसदाशिवाय ० अर्धं ॥ ओं वामदेवाय नमः ओं नमः शिवाय श्रीसांव आचमनं ॥ ओं ज्येष्ठाय नमः ओं नमः शिवाय श्रीसांव ० न्जानं ॥” तदनंतर मूलमंत्रानें व “आप्यायस्व ०” इत्यादिक

मंत्रांनी पंचामृताचें स्नान घालून "आपोहिष्ठा०" ह्या तीन ऋचांनी शुद्ध उदकानें, लिंग धुवन रुद्राची एकादशिनी किंवा एक अवर्तन, व पुरुषसूक्त झणून चंदन, कापूर, केशर याहीं सुगंधीत अशा उदकानें अभिषेक करावा. नंतर "ओं नमः शिवाय" ह्या मंत्रानें स्नान घातल्यानंतर आचमन देऊन अक्षतायुक्त उदकानें तर्पण करावें. तें असें— "ओं भवं देवं तर्पयामि १ ॥ ओं शर्वं देवं त० २ ॥ ओं ईशानं देवं त० ३ ॥ ओं पशुपतिं देवं त० ४ ॥ ओं उप्रं देवं त० ५ ॥ ओं रुद्रं देवं त० ६ ॥ ओं भूमिं देवं त० ७ ॥ ओं महान्तं देवं त० ८ ॥ भवस्य देवस्य पत्नीं तर्पयामि ॥ शर्वस्य देवस्य पत्नीं तर्पयामि ॥ ईशानस्य देवस्य पत्नीं तर्प० ॥ पशुपतेर्देवस्य पत्नीं त० ॥ उप्रस्य देवस्य पत्नीं ॥ रुद्रस्य देवस्य पत्नीं ॥ भूमिस्य देवस्य पत्नीं ॥ महतो देवस्य पत्नीं त० ८ ॥ ओं ज्येष्ठाय नमः ओं नमः शिवाय श्री सां० वस्त्र ० ॥ नंतर "ओं नमः शिवाय" ह्या मूलमंत्रानें आचमन द्यावें. नंतर "ओं रुद्राय नमः ओं नमः शिवाय श्री सांब० यज्ञो पवीतं स०" नंतर मूलमंत्रानें आचमन द्यावें. तदनंतर "ओं कालाय नमः ओं नमः शिवाय श्री सां० चंदन० ॥ ओं कलधिकरणाय नमः ओं नमः शिवाय श्री सां० अक्षतान्० ॥ ओं बलविकरणाय नमः ओं नमः शिवाय श्री सां० पुष्पाणि० ॥ याप्रमाणें पुष्प पर्यंत पूजा झाल्यानंतर सहस्र किंवा एकशे आठ अर्सां बिल्वपत्रें, शिवाच्या सहस्रनामांनी किंवा मूलमंत्रानें समर्पण करावी. नंतर "ओं बलाय नमः ओं नमः शिवाय श्रीसांब० धूपं स० ॥ ओं बलप्रमथनाय नमः ओं नमः शिवाय श्रीसांब० दीपं० ॥ ओं सर्वभूतदमनाय नमः ओं नमः शिवाय श्रीसांब० नैवेद्यं० " नंतर मूलमंत्रानें आचमन, फलें हीं अर्पण करावी. नंतर "ओं मनोन्मनाय नमः ओं नमः शिवाय श्रीसांब० तांबूलं स० " नंतर मूलमंत्रानें व वेदमंत्र याहीं करून आरती करावी. नंतर "ईशानः सर्वविद्यानां ओं नमः शिवाय श्रीसांब० मंत्रपुष्पं०" याप्रमाणें मंत्रपुष्पापर्यंत पूजा झाल्यानंतर "भवाय देवाय नमः ॥ शर्वाय देवाय नमः" इत्यादिक आठ आणि "भवस्य देवस्य पत्न्यै नमः" असे आठ, याप्रमाणे नमस्कार करून "शिवाय नमः, रुद्राय नमः, पशुपतये०, नीलकंठाय० महेश्वराय० हरिकेशाय० विरूपाक्षाय० पिनाकिने० त्रिपुरांतकाय० शंभवे० शूलिने० महादेवाय०" अशा बारा नामांनी बारा पुष्पांजलि समर्पण करून मूलमंत्रानें प्रदक्षिणा व नमस्कार करून मूलमंत्राचा १०८ जप करून प्रार्थना करून "अनेन पूजनेन सांब० सदाशिवः प्रीयतां" असें झणून पूजा निवेदन करावी.

शिवाची प्रहरपूजा.

यानंतर चार प्रहरांच्या चार पूजांचा विशेष प्रकार पाहिल्या प्रहरीं—मूलमंत्राचा उच्चार करून "श्रीशिवायासन्नं समर्पयामि" असें झणून "शिव" या नामानें सर्व उपचार समर्पण

करावे. दुसऱ्या प्रहरा—“ शिवरात्री द्वितीययामपूजां करिष्ये ” असा संकल्प करून “श्रीशंकराय आसनं समर्पयामि ” असे शंकरनामाने उपचार समर्पण करावे. नंतर “ महानिशिपूजां करिष्ये ” असा संकल्प करून पूर्वाप्रमाणे पूजा करावी. तिसऱ्या प्रहरा “ तृतीययामपूजां करिष्ये ” असा संकल्प करून “ श्रीमहेश्वराय आसनं समर्पयामि ” असे ह्मणून आसनादिक पूजा करावी. याप्रमाणेच चवथ्या प्रहरा—“ चतुर्थयामपूजां करिष्ये ” असा संकल्प करून “ श्रीरुद्राय आसनं समर्पयामि ” असे ह्मणून पूर्वाप्रमाणे पूजा करावी. दर एक प्रहरा तैलाभ्यंग, पंचामृत, उष्णोदक, शुद्धोदक, गंधोदक, अभिषेक हीं करावी. यज्ञोपवीत समर्पण केल्यानंतर गोरचन, कस्तूरी, केशर, कापूर, अगुरुचंदन यांही मिश्रित अशा अनुलेपाने लिंग लिपावे. पंचवीस पळे वजन असें सर्व अनुलेपन, याप्रमाणे अनुलेपाचे प्रमाण समजावे, अथवा यथाशक्ति घ्यावे. धोतरा, कण्हेर यांच्या पुष्पांनी व विल्वपत्रांनी पूजा करणे आतउत्तम होय. पुष्पे नसतील तर साळीचे तांदूळ व गहू, यव यांही करून पूजा करावी. नैवेद्य समर्पण केल्यानंतर तांबूल, मुखवास, हे समर्पण करावे. पानवेलीचीं पाने, सुपारी, शिंपी इत्यादिकांचा चुना हे तीन पदार्थ मिळून तांबूल होय. हेच तांबूल खोबरे, वेलची, कंकोळ या पदार्थांनी युक्त केले अमतां खाल्या मुखवास असे ह्मणावे. ह्या पदार्थांतून एकादा पदार्थ न मिळेल तर त्या त्या पदार्थांचे स्मरण करावे याप्रमाणे सर्व पूजा झाल्यानंतर प्रार्थना करावी. प्रार्थनेचा मंत्र—“निखं नैमित्तिकं काम्यं यत्कृतंतु मया शिव ॥ तत्सर्वं परमेशान मया तुभ्यं समर्पितं.” याप्रमाणे प्रार्थना केल्यावर अर्घ्य द्यावे. अर्घ्याचा मंत्र—“ शिवरात्रिव्रतं देव पूजाजपपरायणः ॥ करोमिविधिवद्दत्तं गृहाणार्घ्यं नमोस्तु ते. ” याप्रमाणे चार प्रहरांचे ठिकाणीं निरनिराळीं अर्घ्ये द्यावयाचीं त्यांचा प्रकार कौस्तुभांत पाहावा. खानंतर प्रातःकालीं स्नान करून पुनः शिवाची पूजा करून पूर्वी सांगितलेलीं तीं बारा नांवे त्यांही करून बारा, अथवा शक्ति नसेल तर एक ब्राह्मणाची पूजा करून तिल, व पक्काने यांही पूर्ण असे बारा किंवा एक कलश देऊन व्रत देवाला अर्पण करावे. अर्पणाचा मंत्र—“यन्मयाद्य कृतं पुण्यं तद्ब्रह्मस्य निवेदितं ॥ त्वत्प्रसादान्महादेव व्रतमद्य समर्पितं ॥ प्रसन्नोभव मे श्रीमन्सद्गतिः प्रतिपाद्यतां ॥ त्वदाले-
कनमात्रेण पवित्रोस्मि न संशयः ” खानंतर ब्राह्मणाला भोजन घालून पूर्वी निर्णय करून सांगितलेल्या कालीं आपल्या आप्त लोकांसहवर्तमान पारणा करावी. पारणेच्या समयीं प्रार्थनेचा मंत्र—“ संसारक्लेशदग्धस्य व्रतेनानेन शंकर ॥ प्रसीदसुमुखो नाथ ज्ञानदृष्टिप्रदो भव. ” याप्रमाणे शिवरात्रिव्रताचा विधि समाप्त झाला.

मृत्तिकेच्या लिंगाचे ठिकाणीं शिवपूजा करावयाचा विधि.

‘‘ओं हरायनमः’’ ह्या मंत्रेंकरून मृत्तिका घेऊन ती चांगली शोधून ती उदक

घालून चांगली मळून त्याचा गोळा करून "ओं महेश्वराय नमः" ह्या मंत्राने लिंग करावे. ते लिंग ऐशी गुंजाप्रमाण जो कर्ष त्याहून अधिक परिमाणाचे, अंगुष्ठप्रमाण किंवा अधिक मोठे असे करावे, याहून लहान करू नये. मृत्तिकेच्या लिंगाचे ठिकाणी पंचसूत्राची कृति न केली तथापि दोष नाही, याकारितां 'सात वेळ काव्यामध्ये घालून वजन केले असतां दरएक वेळेस कांहीं तरी अधिक वजन येते, कमी होत नाही असे जें लिंग त्याला बागलिंग ह्मणावे, बाकीचीं लिंगे तीं नार्मद जाणावीं." याप्रमाणें सांगितलेल्या लक्षणानें युक्त असें बागलिंग मिळणें फार दुर्लभ आहे व सुवर्ण इत्यादि कांचें लिंग करावे तर त्याचे ठिकाणीं पंचसूत्राची जी कृति करण्याविषयीं सांगितली ती अति श्रमसाध्य आहे यास्तव सर्वांमध्ये मृत्तिकेचें लिंग श्रेष्ठ होय. कारण, "द्वयपारयुगांत पाण्याचें लिंग उत्तम, कठीमध्ये मृत्तिकेचें लिंग उत्तम" असें वचन आहे. तदनंतर "ओं शूलपाणये नमः शिव इह प्रतिष्ठितो भव" ह्या यंत्रानें धिल्वपत्रयुक्त अशा पूजापीठाचे ठिकाणीं लिंगाची स्थापना करावी. व "ध्यायेन्नियं महेशं०" ह्या मंत्रानें ध्यान करून "ओंपिनाकध्रुवे नमः श्रोतांश्च शिव इहागच्छ इह प्रतिष्ठ इह सन्निहितो भव" असें ह्मणून आवाहन करावे. ह्या पूजेचे ठिकाणीं द्विजांनीं मूळमंत्रहि ग्रहण करावा. यानंतर "ओंनमःशिवाय" ह्या मूळमंत्रानें पाद्य, अर्घ्य, आचमन हे उपचार देऊन "पशुपतये नमः" ह्या मंत्रानें व मूळमंत्रानें स्नान, वस्त्र, यज्ञोपवीत, गंध, पुष्प, धूम, दीप, नैवेद्य, फल, तांबूल, आरती, यंत्रपुष्पांजलि इतके उपचार अर्पण केल्यानंतर "शर्वाय क्षितिमूर्तये नमः" ह्या मंत्रानें पूर्वे दिशेचे ठिकाणीं पूजा करावी. "भवाय जलमूर्तये नमः" ह्या मंत्रानें ईशान्य, "रुद्रायाधिमूर्तये नमः" ह्या मंत्रानें उत्तर, "उग्राय वायुमूर्तये नमः" ह्या मंत्रानें वायव्य, "भीमायाकाशमूर्तये०" ह्या मंत्रानें पश्चिम, "पशुरतये यजमानमूर्तये०" ह्या मंत्रानें नैऋति, "महादेवाय सोममूर्तये०" ह्या मंत्रानें दक्षिण व "ईशानाय सूर्यमू०" ह्या मंत्रानें अग्नेय दिशेचे ठिकाणीं, पूजा करून नंतर स्तुति व नमस्कार करून "महादेवाय नमः" ह्या मंत्रानें विसर्जन करावे. याप्रमाणें संक्षेपानें पूजाविधि जाणावा. याहून विस्तार पुरुषार्थचिंतामण्णोमध्ये पहावा. पूर्वी सांगितलेली पूजा शिवरात्रीचे दिवशीं, मृत्तिकेच्या लिंगाचे ठिकाणीं हि करावी. मृत्तिकेच्या लिंगाचा उदापनविधि कौस्तुभ इत्यादिक ग्रंथीं पहावा.

लिंगाच्या विशेषानें फलाचा निर्णय.

हिन्याच्या लिंगाच्या फूजनानें आयुष्यवृद्धि होते. मोखांच्यानें रोगनाश, वैदूर्यमण्याच्यानें शत्रुनाश, माणिकाच्यानें लक्ष्मीप्राप्ति, पुष्परानमण्याच्या लिंगानें सुखप्राप्ति, नीळ-

मण्याच्याने पश, पाचरत्नाच्याने पुष्टि, स्फटिकाच्याने सर्वमनोरथप्राप्ति, रुप्याच्याने राज्य व पितृमुक्ति, सुवर्णाच्याने सखलोकप्राप्ति, तांब्याच्याने पुष्टि व आयुष्य, पितळेच्याने संतोष, कांस्याच्या लिंगाने कीर्ति, लोखंडाच्याने शत्रुनाश, शिशाच्याने आयुष्यवृद्धि; दुसऱ्या ग्रंथकारांच्या मताने सुवर्णाच्या लिंगाने ऋगमुक्ति, व स्थिर लक्ष्मी, गंधाच्याने सौभाग्य, हस्तिदंताच्याने सेनेचे आधिपत्य, तांदूळ इत्यादिक धान्याचे पिठाच्या लिंगाने पुष्टि, सुख, रोगनाश इत्यादिक, उडीदांचे पिठाचे लिंगाने स्त्रीप्राप्ति, नवनीताच्या लिंगाने सुख, गोमयाच्याने रोगनाश, गुळाच्याने अन्न इत्यादिक, वेळूचे अंकुराचे लिंग पूजिल्याने वंश वृद्धि होते. असाच दुसऱ्या ग्रंथां विस्तार सांगितला आहे. याप्रमाणे लिंगाच्या संख्या विशेषेकरून फलाचा विशेष कौस्तुभांत पहावा.

शिवनिर्माल्यादिकांचा निर्णय.

शिवाचा निर्माल्य ग्रहण करावा किंवा नाही याचा निर्णय तृतीय परिच्छेदांत पहावा. मासशिवरात्रीचा निर्णय प्रथम परिच्छेदांत आहे. शिवरात्रिव्रताचे उद्यापनाचा विधि कौस्तुभ इत्यादिक ग्रंथां पहावा. मासशिवरात्रिचे व्रताचे उद्यापनाचे कौस्तुभांत स्पष्ट सांगितले आहे. माघअमावास्या ही युगादि आहे. याकरिता अपराह्नकालव्यापिनी अशा ह्या अमावास्येचे दिवसी अपिंडक श्राद्ध करावे, व ते युगादिश्राद्ध दर्शश्राद्धाबरोबर एकतंत्राने करावे. माघअमावास्येचे दिवसी शततारकानक्षत्राचा योग असेल तर तो भाति पुण्यकाल व त्या पुण्यकाली श्राद्ध केले असता अत्यंत पितरांचो तृप्ति होते. धान-छानक्षत्राचा योग असेल तर तिळयुक्त अन्नाने श्राद्ध करावे, तेणेकरून दाहा सहस्र वर्षेपर्यंत पितरांची तृप्ति होते. ॥ या प्रकारेकरून अनंतोपाध्यायांचा पुत्र काशीनाथोपाध्याय याणे रचिलेल्या धर्मसिंधुसार ग्रंथांतोळ माघमासांत करावयाचे कथांचा निर्णय झाला.

आतां फाल्गुन मास.

मीनसंक्रांतीच्या पुढच्या सोळाघटिका पुण्यकाल. रात्री संक्रांति होईल तर त्याचा निर्णय पूर्वी सांगितला आहे. गोविंदाचा संतोष होण्यासाठी फाल्गुन मासांत गाई, तांदूळ, वस्त्रे यांची दाने करावी. यानंतर, फाल्गुनशुक्ल प्रतिपदेपासून बारा दिवसपर्यंत पयोव्रत करावे, व ते श्रीमद्भागवतांत सांगितले आहे. त्याचा प्रयोग त्यांत सांगितल्याप्रमाणे जाणावा.

होलिका,

फाल्गुनी पौर्णिमा ही मन्वादि आहे. ती पूर्वाह्नकालव्यापिनी ध्यावी. ह्या पौर्णिमेलाच होलिका असें झणतात. ती होलिकापौर्णिमा प्रदोषव्यापिनी असून कन्याणीविर

हित असी घ्यावी. दोन दिवस प्रदोषव्यापिनी असेल अथवा दुसऱ्या दिवसीं प्रदोष-
 कालीं एकदेशव्याप्ति असेल तर पूर्व दिवसीं कल्याणीदोष आहे याकरितां दुसऱ्या दिव-
 साचीच घ्यावी. दुसऱ्या दिवसीं प्रदोषकालीं स्पर्श नसेल आणि पूर्व दिवसीं प्रदोष-
 कालीं कल्याणी असून जर पौर्णिमा दुसऱ्या दिवसीं साडेतीन प्रहर किंवा साहून अधिक
 असेल आणि त्याच्या पुढच्या दिवसीं प्रतिपदा वाढती तिथी असेल तर प्रदोषव्यापिनी
 प्रतिपदेचे ठिकाणीं होलिका करावी. जर पूर्वी सांगितलेल्या प्रसंगीं प्रतिपदा तिथीचा
 क्षय असेल तर पूर्व दिवसीं कल्याणीच्या पुच्छाचे ठिकाणीं किंवा कल्याणीचे मुखमात्र
 टाकून कल्याणीमध्येच होलिका प्रदीप्त करावी. दुसऱ्या दिवसीं प्रदोषकालीं पौर्णिमेचा
 स्पर्श नसेल व पूर्व दिवसीं जर मध्यरात्रीच्या पूर्वी कल्याणी समाप्त होईल तर कल्याणी
 संपल्यानंतरच होलिका प्रदीप्त करावी. जर मध्यरात्रीच्या नंतर कल्याणी संपेल तर कल्या-
 णीचे मुखमात्र टाकून कल्याणीमध्येच होलिका प्रदीप्त करावी. प्रदोषकालीं कल्याणीचे मुख
 असेल तर कल्याणीच्या नंतर, किंवा प्रदोषकालानंतर होळी प्रदीप्त करावी. जर दोनहि
 दिवसीं प्रदोषकालीं पौर्णिमेचा स्पर्श नसेल तर पूर्व दिवसींच भद्रापुच्छांत प्रदीप्त करावी.
 कल्याणीचे पुच्छ नसेल तर कल्याणीमध्येच प्रदोषकालानंतरच होळी प्रदीप्त करावी.
 कारण, रात्रीमध्ये पूर्व रात्रीची कल्याणी घ्यावी असे वचन आहे. परंतु पूर्वदिवसाच्या
 प्रदोष इत्यादिक कालीं चतुर्दशीचे ठिकाणीं किंवा दुसऱ्या दिवसीं सायान्ह इत्यादिककालीं
 होळी प्रदीप्त करूं नये. दिवसा होळी प्रदीप्त करणें हें सर्व ग्रंथांशीं विरुद्ध आहे. हें होळी
 चे पूजन, श्रवणाकर्मादिकांप्रमाणे भोजन करून करितात, आणि तसें करणें योग्यहि
 आहे. जे कितीएक लोक होळीची पूजा करून नंतर भोजन करितात त्यांला नियम-
 करून भोजनाला किंवा पूजेला शास्त्रोक्त काळ मिळत नाहीं. ही होळीची पूजा चंद्र-
 ग्रहण असेल तर वेधामध्येहि करावी. ग्रहण अस्तोदय असून दुसऱ्या दिवसीं प्रदोष-
 कालीं पौर्णिमा असेल तर ग्रहणामध्येच पूजा करावी. प्रदोषकालीं पौर्णिमा नसेल तर
 पूर्वादिवसीं पूजा करावी.

आतां कल्याणीचे मुख आणि पुच्छ यांचें लक्षण सांगतो.

पौर्णिमेचे ठिकाणीं कल्याणीच्या तिसऱ्या पादाच्या शेवटच्या ज्या तीन घटिका हें
 कल्याणीचे पुच्छ होय, आणि चवथ्या पादाच्या पहिल्या ज्या पांच घटिका हें मुख
 होय. तसेंच मध्यम माननें साठ घटिका पौर्णिमा असतां पौर्णिमेच्या आरंभा नंतर
 साडे एकोणीस घटिका गेल्या नंतर ज्या तीन घटिका तें पुच्छ होय, व साडे बंधीस

घटिका गेल्या नंतर ज्या पांच घटिका तें मुल होय. जर चौसष्ट घटिका पौर्णिमा असेल तर पौर्णिमेच्या एकवीस घटिका गेल्या नंतर पुच्छ व चौवीस घटिका गेल्या नंतर मुल. या प्रमाणें तिथीच्या दुसऱ्या माना विषयीहिं मुल व पुच्छ यांचा निर्णय जाणावा.

आतां होळीच्या पूजेचा विधि.

देशकालांचा उच्चार करून “सकटुं वस्य मम हुंढाराक्षसीप्रोत्थर्यं तत्पीडापरिहारार्थं होलिकापूजनमहं करिष्ये” असा संकल्प करून सुकीं काष्ठें व गोवेंच्या यांची राशि करून ती राशि अग्नीनें पेटवून त्याच्यावर “अस्माभिर्भयसंब्रस्तेःकृतात्वं होलिकेयतःअतस्त्वां पूजयिष्यामि भूते भूतिप्रदा भव,” ह्या पूजेच्या मंत्रानें, “श्रीहोलिकायै नमः होलिकां आवाहयामि , ” असें आवाहन करून “होलिकायै नमः” ह्या नाममंत्रानें आसन, पाद्य इत्यादिक सोळा उपचार समर्पण करून “सा अग्नीला तीन प्रदक्षिणा करून ज्यांचें जसें मत असेल तदनुसार निःशंकपणानें लोकांनीं गायन, हास्य, आपल्या इच्छेनुकूल आलाप करावे. ” ज्योतिर्विब्रंध ग्रंथांत— “शुद्ध पंचमी पासून वद्य पंचमीपर्यंत ज्या पंधरा तिथी त्यांमध्ये दहा तिथी उत्तम व असंख्य पुण्यकारक होत, व त्या तिथींचे ठिकाणीं काष्ठें, गोवेंच्या यांची चोरी करावी, आणि चांडाल, बाळंतीण यांच्या घरांतून बालांकडून अग्नि आणवून पौर्णिमेच्या दिवसीं गांवाच्या बाहेर किंवा मध्ये तीं काष्ठें दहन करावीं. राजानें बाद्यांचा गजरे करवून नंतर स्नान करून शुद्ध होऊन पुण्याहवाचन करून बहुत दानें द्यावीं, व होळी प्रदीप्त करावी. नंतर दूध व घृत यांहींकरून ती सर्व होळी विश्ववून नारळ, महाळुंगे वांटावीं. तसेंच लोकांनीं गायनें, वाद्यें, नृत्यें यांहीं करून आनंदानें ती रात्र घालवावी. व लिंग, भग यांहीं युक्त असे बीभत्स शब्द बोलून अग्नीला तीन प्रदक्षिणा कराव्या. सा बीभत्स शब्दांनीं पापरूपिणी ती हुंढाराक्षसी नृप्त होते. ” याप्रमाणें रात्री मध्ये होळीचा उत्सव करून प्रातःकालीं प्रतिपदेचे दिवसीं चांडालाला स्पर्श करून स्नान करावें, “तेणेंकरून सांला कोणतें पातक, मानसीं व्यथा, व्याधि हीं होत नाहींत.” निय कथें करून पितर, देव यांचें तर्पण करून सर्व अरिष्टांचा नाश होण्या करितां होळीच्या विभूतीला नमस्कार करावा.— नमस्काराचा मंत्र— “वेदितासि सुरेंद्रेण ब्रह्मणा शंकरेण च ॥ अतस्त्वं पाहि नो देवि भूते भूति प्रदा भव. ” होळीचा दिवस, आणि त्याच्या पुढचा करि दिवस हे शुभकार्याला वर्ज्य करावे. कारण, “होळीचा दिवस, ग्रहण दिवस, भावुकादिवस (वैशाख अमा- वास्या,) अयनसंक्रांतींचे दिवस दोन, आणि प्रेतदहनाचा दिवस, व ह्यांचे करिदि-

बस हे सर्व शुभ कर्मांला वर्ज्य करावे ” असे वचन आहे. ग्रहणदिवस, अयनादिवस व प्रेतदाहदिवस यांचे ठिकाणी मध्यरात्रीच्या विभागाने पूर्वदिवस व करिदिवस यांचा निर्णय समजावा. “ फाल्गुनी पौर्णिमेचे दिवसी पुरुषोत्तम जो गोविंद त्याला हिंदुळ्यामध्ये बसवून क्षोपा काढाव्या आणि त्याचे दर्शन घ्यावे. तेणेकरून वैकुंठाला जातो. ”

वसंतरंभोत्सव.

फाल्गुनकृष्ण प्रतिपदेचे दिवसी वसंताच्या आरंभाचा उत्सव करावा. त्या उत्सवाः विषयी प्रतिपदा सूर्योदयव्यापिनी ध्यावी. दोन दिवस सूर्योदयव्यापिनी असल्यास पूर्व दिवसाची ध्यावी. ह्या प्रतिपदेचे दिवसी तैलाभ्यंग करावा. ह्या प्रतिपदेचे दिवसी आंब्याचा म्हरू भक्षण करावा. त्याच्या भक्षणाचा विधि असा,—गोमयाने सारवलेल्या अंगणामध्ये आसन घालून त्याजवर पांढरे वस्त्र घालून त्याजवर पूर्वाभिमुख बसावे. नंतर सुवासिनीकडून चंदनाचा तिलक, आरती करवून चंदन युक्त असा आंब्याचा म्हरू भक्षण करावा. भक्षणाचा मंत्र—“चूतमद्यं वसंतस्य माकंदकुसुमं तव ॥ सचंदनं पिबाम्यद्य सर्वकामार्थसिद्धये.”

फाल्गुनकृष्णपक्षातील द्वितीयेचे दिवसी देश, गांव, खेडी यांच्या अधिपतीने विस्तृत असी जागा पाहून तेथे मोठे छत इत्यादिक देऊन जागा सुशोभित करावी, व तेथे उत्तम आसन मांडून त्याजवर त्या गांवाच्या अधिपतीने बसून नगरवासी, व देशवासी, अशा सर्व आपल्या लोकांवर शेंदूर, गुलाल, चंदन, बुका इत्यादिक टाकून त्याला तांबूल इत्यादिक देऊन नृत्य, गायन, विनोद इत्यादिक करून मोठा उत्सव करावा. हल्लीं प्राकृत लोक तर कृष्ण पंचमीपर्यंत हा उत्सव करितात. याप्रमाणे होळीचा उत्सव समाप्त झाला.

फाल्गुन अमावास्या ही मन्वादि तिथि आहे. ती अपराह्नकालव्यापिनी ध्यावी. ॥ या प्रकारेकरून अनंतोपाध्याय ह्यांचा पुत्र काशीनाथोपाध्याय याणे रचिलेल्या धर्मसिंधुसार ग्रंथांतील फाल्गुनमासातील कृत्यांचा निर्णय झाला.

आतां दोन परिच्छेदांतील बाकी राहिलेले किरकोळ निर्णय सांगतो.

बारा मासांमध्येहि व्यतीपात इत्यादिक जे योग त्या योगांचा व भरणी इत्यादिक जी नक्षत्रे त्यांचा श्राद्धाविषयी निर्णय अपराह्नकालव्यापिनी दर्शाप्रमाणे जाणावा. व्यतीपात इत्यादिक योग व भरण्यादिक नक्षत्रे यांचे ठिकाणी उपोषण इत्यादिक करण्याचा विशेष

आचार नाही, या कारितां याचा निर्णय सांगितला नाही. यानंतर चंद्र संवत्सरांची नावे सांगतां—‘ प्रभव, विभव, शुक्ल, प्रमोद, प्रजापति, अंगिरा, श्रीमुख, भाव, युवा, धाता, ईश्वर, बहुधान्य, प्रमाथी, विक्रम, वृष, चित्रमानु, सुमानु, तारण, पाथिव, व्यय, सर्वजित, सर्वधारी, विरोधी, विकृति, खर, नंदन, विजय, जय, मन्मथ, दुर्मुख, हेमलंबी, विलंबी, विकारी, शार्वरी, ध्रुव, शुभकृत, शोभकृत, क्रोधी, विश्वावसु, पराभव, प्लवंग कौलक, सौम्य, साधारण, विरोधकृत, परिधावी, प्रमादी, आनंद, राक्षस, अनल, पिंगल, कालयुक्त, सिद्धार्थी, रौद्र, दुर्मति, दुंदुभि, रुंधरोद्गारी, रक्ताक्षी, क्रोधन आणि क्षय.’ याप्रमाणे साठ चंद्र संवत्सरांची नावे होत. सूर्याच्या संक्रांतीचा जसा पुण्यकाल पूर्वी सांगितला त्याप्रमाणे नक्षत्राच्या संक्रांतीचाहि, पुढच्या व मागच्या सोळा सोळा घटिका पुण्याकाल जाणावा.

आतां चंद्र, मंगळ इत्यादि ग्रहांच्या संक्रांतीचा पुण्यकाल सांगतां.

चंद्राच्या संक्रांतीचा पूर्वीची व पुढची एक घटिका आणि तेरा पळे पुण्यकाल. मंगळाच्या संक्रांतीचा चार घटिका एक पळ पुण्यकाल. बुधाच्या संक्रांतीचा तीन घटिका चवदा पळे पुण्यकाल. बृहस्पतीच्या संक्रांतीचा चार घटिका सततीस पळे पुण्यकाल. शुक्राच्या संक्रांतीचा चार घटिका एक पळ पुण्यकाल. शनीच्या संक्रांतीचा सोळा घटिका सात पळे पुण्यकाल. ह्या सर्व पुण्यकालांच्या घटिका मागच्या व पुढच्या याप्रमाणे जाणाव्या. सूर्यावांचून इतर ग्रहांच्या संक्रांति रात्रीचे ठिकाणी झाल्या असतां रात्रीचे ठिकाणीच पुण्यकाल. कारण, सूर्यसंक्रांती सारखा दिवसा पुण्यकाल घेण्या विषयी वचन नाही. चंद्र इत्यादि ग्रहांच्या संक्रांतीचे दिवसी ज्ञान करणे ते काम्य आहे, नित्य नाही.

सूर्य इत्यादिक ग्रहांपासून पीडेच्या नाशार्थ औषध युक्त उदकानें स्नानें.

मंजिष्ठ, गजमद, केशर, आणि रक्तचंदन हीं औषधें उदकानें भरलेल्या तांब्याच्या पात्रांत टाकून स्नान करावें, तेणेंकरून सूर्यपीडा दूर होते. वाळा, शिरस, केशर, रक्तचंदन हीं उदकांत घालून त्या उदकानें शंखें करून स्नान करावें, तेणेंकरून चंद्रपीडा दूर होते. खैर, देवदार, तिळ, आवळकटी, हीं रुप्याच्या पात्रांत घालून, त्यांत उदक घालून त्यानें स्नान करावें, झणजे मंगळाची पीडा दूर होते. संगमाचे उदक घेऊन ते मृत्तिकेच्या

पात्रांत घालावे; नंतर यांत गजमद घालून याचे ज्ञान केल्याने बुधाची पीडा दूर होते. उंबराचे फळ, बेलफळ, वडाचे फळ, आवळकटी हीं सुवर्णाच्या पात्रांत घालून यांत उदक घालावे, व याचे ज्ञान केल्याने बृहस्पति संबंधी पीडा दूर होते. गोरोचन, गजमद, बडीशोप, शतावरी, हीं रुप्याच्या पात्रांत घालून यांत उदक घालून याचे ज्ञान करावे, तेणे करून शुक्राची पीडा दूर होते. तिल, उडीद, कांग, गंध, पुष्प यांहीं युक्त अशा लोखंडाच्या पात्रांतिल उदकानें ज्ञान करावे, अणजे शनिसंबंधी पीडा दूर होते. गुगुळ, हिंग, हरताळ, मनशीळ, हीं व उदक महिषाच्या शिगांत घालून याचे ज्ञान केलें असतां राहुरत पीडा दूर होते. डुकरानें उकारलेली असी पर्वाच्या शिखरावरची मृत्तिका, व मेंढीचे दूध हीं खड्गपात्रांत घालून व यांत उदक घालून याचे ज्ञान करावे, तेणेकरून केतुसंबंधी पीडा दूर होते.

आतां नवग्रहांचीं दानें सांगतां.

सूर्याचीं दानें—माषिक, गहू, गाई, तांबडें वस्त्र, गूळ, सुवर्ण, तांबें, रक्तचंदन, कमल.
चंद्राचीं दानें—तांदूळ (वंशपात्रांत घालून,) कापूर, मोती, श्वेतवस्त्र, घृतानें भरलेला कुंभ, वृषभ.

मंगळाचीं दानें—पोवळें, गहू, मसुरा, तांबडा बैल, गूळ, सुवर्ण, तांबडें वस्त्र, तांबें.
बुधाचीं दानें—निळें वस्त्र, सुवर्ण, कांस्यपात्र, मूग, पाचमणि, दासी, हस्तिदंत, पुष्पें.
बृहस्पतीचीं दानें—पुष्परामणि, हळद, साखर, घोडा, पिबळें धान्य, पिबळें वस्त्र, लवण, सुवर्ण.

शुक्राचीं दानें—चित्रविचित्र वस्त्र, पांढरा घोडा, गाई, वज्रमणि (हिरा,) सुवर्ण; रपें, गंध, तांदूळ.

शनीचीं दानें—नीळमणि, उडीद, तेल, तिळ, कुळिय, झैस, लोखंड, कृष्णवर्ण गाई.

राहूचीं दानें—गोमेदमणि, घोडा, निळें वस्त्र, कांबळें, तेल, तिळ, लोखंड.

केतूचीं दानें—वैडूर्यमणि, तेल, तिळ, कांबळें, कस्तूरी, मेंढा, वस्त्र. शनीच्या पीडेचा नाश होण्याकरितां शनिवारी तैलाभ्यंग व तेलानें दान करावें.

आतां शनीचें व्रत.

लोखंडाची शनीची मूर्ति करून लोखंडाची किंवा मृत्तिकेची घागर तेलानें पूर्ण असी घेऊन यांत ती मूर्ति ठेवून काळीं दोन वरें किंवा कांबळें यांहीं वेष्टित करून काळीं पुष्पें व सुगंध पुष्पें, तिलमिश्रित अर्धें, तिळाची खिचडी इत्यादिक अर्धें यांहीं करून या मूर्तीची पूजा करून कृष्णवर्ण अशा ब्राह्मणाला, किंवा तसा न मिळेल तर दुसऱ्या

ब्राह्मणाळा “ शंनोदेवीः० ” ह्या मंत्राने ह्या मूर्तीचे दान करावे. शूद्र इत्यादिक दान करणारा असेल तर झाले “ यः पुनर्नष्टराज्याय नलाय परितोषितः ॥ स्वप्ने ददौ निजं राज्यं सने सौरिः प्रसीदन् ॥ नमोऽर्कपुत्राय शनैश्वराय नीहारवर्णाजनमेचकाय ॥ शुभा रहस्यं भवकामदस्त्वं फलप्रदो मे भव सूर्यपुत्र, ” इत्यादिक मंत्रांनी दान करावे. याप्रमाणे व्रत दरशनीवारीं असे एक वर्ष पर्यंत करावे व दररोज “ कोणस्थः पिंगलो बभ्रुः रुष्णो रौद्रोतको यमः ॥ सौरी शनैश्वरो मंदः पिप्पलादेन संस्तुतः ” ह्या मंत्राचा पाठ करावा. यानंतर शानिस्तोत्र सांगतो,— “ पिप्पलाद उवाच ॥ नमस्ते कोणस्थाय पिंगलाय नमोस्तु ते नमस्ते बभ्रुरूपाय रुष्णायच नमोस्तु ते ॥ नमस्ते रौद्रदेहाय नमस्ते चातकायच ॥ नमस्ते यमसंज्ञाय नमस्ते सौरये विभो ॥ नमस्ते मंदसंज्ञाय शनैश्वर नमोस्तु ते ॥ प्रसादं कुरु देवेश दीनस्य प्रणतस्यच, ” ह्या स्तोत्राचा दररोज पाठ करून शनीची स्तुति करावी, तेणे करून साडेसात वर्षे (साडेसाती) जी शनीची पीडा ती दूर होते.

राविवारीं सूर्याची पूजा, उपोषण, सूर्याच्या मंत्राचा जप असी सूर्याची आराधना केली असता सर्व रोग दूर होतात. “ ऱ्ही ऱ्ही सः सूर्याय, ” या प्रमाणे सूर्याचा षडक्षर मंत्र जाणावा. ॥ या प्रमाणे धर्मसिध्दुसार ग्रंथातील किरकोळ निर्णय झाले. ॥

प्रथमपरिच्छेदांत सामान्येकरून निर्णय सांगितला, व ह्या दुसऱ्या परिच्छेदांत विशेषे करून निर्णय सांगितला आहे.

(या पुढे प्रथम परिच्छेदाचे अखेरी प्रमाणेच ग्रंथ करण्याचे प्रयोजन बगैरे सांगितले आहे.)



॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

श्रीपांडुरंगमकलंककलानिघानकाताननयदनुघानमनमुघान ॥

श्रीवत्सकौस्तुभरमोल्लसितोरसंतवंदपदाब्जभृतनंददुदारसंतं ॥ १ ॥

निष्कलंक चंद्रासारखें रमणीय आहे मुल ज्याचें, ज्याला अज्ञानी जे खानींहि नमन केलें असतां निरर्थक होत नाहीं, श्रीवत्स, कौस्तुभ, आणि लक्ष्मी यांहींकरून सुशोभित आहे वक्षस्थळ ज्याचें, चरणकमलाचे आश्रयानें उदार आणि आनंद पावणारे आहेत महासाधु ज्याचे ठिकाणीं असा जो श्रीपांडुरंग झाला नमस्कार करितों.

(यानंतर पूर्वोक्त भागांप्रमाणेंच स्विमणी, पांडुरंगादि दैवतांस नमस्कार करून ग्रंथरचनेचा प्रकार व त्याचें प्रयोजन सांगितलें आहे.)

उत्तवाधर्माब्धिसारेस्मिर्निर्णयंकालगोचरं परिच्छेदेप्रथमजेद्वितीयेच्यथाक्रमं ॥ ६ ॥

ह्या धर्माब्धिसार ग्रंथाच्या पहिल्या व दुसऱ्या परिच्छेदांत क्रमानें कालसंबंधी निर्णय सांगितला.

अथगर्भाधानादिसंस्कारान्धर्मान्गृह्यादिसंमतान् ॥ वक्ष्येसंक्षेपतःसंतोऽनुगृह्णंतुदयालवः ॥ ७ ॥

अनंतर गृह्यसुत्रादिकांला संमत असे गर्भाधान इत्यादिक संस्कार व आचारादि धर्म, संक्षेपेंकरून सांगतों यास दयाळू असे सत्पुरुष अनुग्रह करोत.

अनंतोपाध्यायांचा पुत्र जो मी काशीनाथ ह्या ग्रंथामध्ये जे निर्णय सांगतों ते विद्वानांनीं शोधून पाहावे.

आतां प्रथम गर्भाधानसंस्कार सांगतों.

ग्रामध्ये गर्भाधानाला उपयोगी असण्यामुळे प्रथम रजोदर्शनाचे ठिकाणीं वाईट असे जे मासादिक त्यांचा निर्णय सांगतों;—चैत्र, ज्येष्ठ, आषाढ, भाद्रपद, कार्तिक, पौष हे मास दुष्ट होत. प्रतिपदा, रिक्तातिथि, अष्टमी, षष्ठी, द्वादशी, पौर्णिमा ह्या तिथींचे ठिकाणीं प्रथम रजोदर्शन निंद्य होय. तसेच रविवार, मंगळवार, शनिवार, हे वार निंद्य होत. भरणी, कृत्तिका, आर्द्रा, आश्लेषा, मघा, पूर्वा, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा, विशाखा, ज्येष्ठा, विष्कंभ, गंड, अतिगंड, शूल, व्याघात, वज्र, परिघाचें पूर्वार्ध, व्यतीपात, वैधृति, भद्रा, ग्रहण, रात्रि, संधिकाल, अपराह्नकाल, निद्रावस्था, जीर्णवस्त्र, तांबडेंवस्त्र, निळेंवस्त्र, तऱ्हेतऱ्हेच्या रंगाचेंवस्त्र, नमपणा, दुसऱ्याचें गृह, परग्राम यांचे ठिकाणीं प्रथमरजोदर्शन निंद्य होय. ते रजोदर्शन अल्प, अधिक, व रंगानें निळें इत्यादिक असले तर दुष्टफल होय. केर-

सुणी, काष्ठे, वृण, अभि, आणि सूप हे पदार्थ हातांत घेतले असून बावेळीं पहिल्याने रजोदर्शन होईल तर ती स्त्री नारिणी होते. वस्त्राचे ठिकाणीं रुधिरविंदुं विषम असतील तर ते पुत्रफल देणारे, व सम असल्यास कन्याफल देणारे होतात.

प्रथम रजोदर्शनाचा विधि.

तांदुळांचे आसन करून आवर छिपेला बसवून पति व पुत्र यांहीं युक्त अशा स्त्रियांनीं हळद, कुंकू, गंध, पुण्यांची वेणी, तांबूल, इत्यादिक उपचार या छिपेला देऊन दिवे ओंवाळून दिवे, आरसे इत्यादिकांनीं सुशोभित केलेल्या अशा गृहांत या छिपेला बसवावे, आणि सुवासिनीला गंध, हळद, कुंकू, इत्यादिक व लवण, मूग, इत्यादिक द्यावी.

सार्वकालिक रजोदर्शनाचे साधारण नियम.

तीन रात्रीपर्यंत कोणाला स्पर्श करूं नये. तैलाभ्यंग, डोळ्यांत कानळ घालणे, ज्ञान, दिवसा निद्रा, अभिस्पर्श, दांत घांसणे, मांसभक्षण, सूर्य इत्यादिकांचे दर्शन, सूमीचे ठिकाणीं रेवा, काढणे, हीं वर्ज्य करावीं. भूमीवर निद्रा करावी. ओंजळीने, तांब्याच्या किंवा लोखंडाच्या पात्रांने उदक प्राशन करूं नये. जी स्त्री अल्पपात्रांने उदक प्राशन करिते तिला पुत्र खुजा होतो. नखें छेदून टाकलीं असतां कुनखी पुत्र होतो. पानांने उदकादिक प्राशन केलें असतां पुत्र उन्मत्त होतो. दुसरा, तिसरा इत्यादिक ऋतु प्राप्त झाले असतां या रजोदर्शनावस्थेमध्ये, प्रवास; गंध, पुण्यांच्या वेण्या इत्यादिकांचे धारण; तांबूल, गोरस यांचे भक्षण; पाट, चवरांग इत्यादिकांवर बसणे; हीं वर्ज्य करावीं. मातीच्या किंवा लोखंडाच्या पात्रांत अथवा भूमीवर भोजन करावे. ग्रहण इत्यादि निमित्तानें ज्ञान अवश्य प्राप्त होईल तर उदकांत बुडी मारून ज्ञान करूं नये. तर दुसऱ्या पात्रांत उदक घेऊन या उदकानें ज्ञान करावे. वस्त्र पिळूं नये, व दुसरे वस्त्राहे नेंसूं नये. याप्रमाणें सुतक इत्यादि निमित्तानें ज्ञान प्राप्त झालें असतांही असाच निर्णय जाणावा. एका गोत्रांतल्या किंवा सोदर बहिणी अशा दोन ब्राह्मणी रजस्वला स्त्रियांचा परस्पर स्पर्श होईल तर पूर्वी सांगितल्या रीतीनें या वेळींच काममात्रेंकरून शुद्ध होतात. जाणून स्पर्श झाला असतां एक रात्रीपर्यंत उपोषण करावे. गोत्र इत्यादिक संबंध नसून न जाणून स्पर्श झाला असेल तर त्या दिवसां ज्ञान करावे, भोजन करूं नये. जाणून स्पर्श झाला असल्यास शुद्धि होईपर्यंत भोजन करूं नये. भोजन केलें असेल तर शुद्धि झाल्यानंतर जितके दिवस भोजन केलें तितके दिवस उपोषण करावे. उपोषण करण्याचा सामर्थ्य नसेल तर याच्या ऐवजीं ब्राह्मणभोजन इत्यादिक करावे. सर्वत्र

ठिकाणीं शुद्धि झाल्यानंतर पंचगव्य प्राशन करावें. एक शूद्रस्त्री व दुसरी ब्राह्मणस्त्री या रजस्वला परस्पर स्पर्श करतील तर शुद्धि होईपर्यंत उपोषण करून शुद्धि झाल्यानंतर ब्राह्मणी स्त्रियेने कृच्छ्र प्रायश्चित्त करावें. शूद्रस्त्रीने तर पादकृच्छ्र मात्र प्रायश्चित्त करावें. रजस्वलेला किंवा बाळंतिणीला चांडालाचा स्पर्श झाला असेल तर त्या रजस्वलेने किंवा बाळंतिणीने शुद्धि होईपर्यंत उपोषित राहून अतिकृच्छ्र प्रायश्चित्त करावें. न जाणून स्पर्श झाला असतां प्राजापत्य प्रायश्चित्त करावें. काठी इत्यादिकांच्या परंपरेने चांडालादिकांचा स्पर्श झाला असल्यास नुस्तें स्नान मात्र करावें. भोजन करीत असतां चांडालाचा स्पर्श झाल्यास प्राजापत्य प्रायश्चित्त करून बारा ब्राह्मणांला भोजन घालावें. मिताक्षरा ग्रंथांत तर, पतित, अंज्यज, चांडाल यांचा जाणून स्पर्श झाला असतां शुद्धि होईपर्यंत उपोषित राहून शुद्धीनंतर, पहिल्या दिवशीं स्पर्श झाला असल्यास तीन दिवस उपोषण, दुसऱ्या दिवशीं स्पर्श झाला असल्यास दोन दिवस उपोषण, तिसऱ्या दिवशीं स्पर्श झाला असेल तर एक दिवस उपोषण, याप्रमाणें उपोषणें करावीं. न जाणून स्पर्श झाला असेल तर शुद्धि होईपर्यंत उपोषित मात्र असावें. याप्रमाणें ग्राम संबंधी असे कोंबडा, डुकर, कुतरा यांचा व कावळे, घोवी, इत्यादिकांचा स्पर्श झाला असतां हि हाच निर्णय जाणावा. पूर्वीं सांगितल्याप्रमाणें उपोषणें करण्याला सामर्थ्य नसेल तर स्नान करून नक्षत्रदर्शनपर्यंत भोजन करूं नये. भोजन करीत असतां कुतरा, चांडाल इत्यादिकांचा स्पर्श होईल तर शुद्धि होईपर्यंत उपोषण करून सहा रात्रीपर्यंत गोमूत्रांत शिजवलेले यव भक्षण करावे. सामर्थ्य नसल्यास सुवर्णदान किंवा ब्राह्मणभोजन करावें. उच्छिष्ट अशा दोघी रजस्वला परस्पर स्पर्श करतील किंवा उच्छिष्ट आशा चांडालाचा रजस्वलेला स्पर्श होईल तर कृच्छ्र प्रायश्चित्त करावें, तेणेंकरून शुद्धि होते, रजरवलेला उच्छिष्ट अशा ब्राह्मणाचा स्पर्श होईल तर तिणें तीन दिवस उपोषण करावें. भोजन झाल्यानंतर आचमन केल्यावांचून राहिल्यास किंवा मूत्रपुरीषादि झाल्यानंतर हस्त, पाद यांचे प्रक्षालन करून आचमन न केल्यास एक दिवस उपोषण करावें, असें सांगितलें आहे. उच्छिष्ट अशा शूद्राचा स्पर्श झाला असतां पूर्वीपेक्षा अधिक प्रायश्चित्त घेतावें. रजस्वलेला सुतकी इत्यभेदिक अशुद्ध मनुष्याचा स्पर्श झाला असतां तिणें शुद्धि होईपर्यंत भोजन करूं नये, केल्यास कृच्छ्र प्रायश्चित्त करावें. पांचनखांचे पशु, द्विशफ, एकशफ असे पशु, व पक्षी यांचा स्पर्श झाला असतां शुद्धि होईपर्यंत भोजन करूं नये. कुतरा कोव्हा, गाढव यांनीं रजस्वलेला दंश केला असतां शुद्धि होईपर्यंत भोजन करूं नये. व शुद्धि झाल्यानंतर पांच रात्रि उपोषण करावें. नाभीच्या वर दंश केला असल्यास दाहा, व मस्तकाला दंश केला असल्यास वीस रात्रि उपोषण करावें.

रजस्वला भोजन करित असतां दुसऱ्या रजस्वलेला पाहील तर शुद्धि होईपर्यंत भोजन करूं नये. चांडाळाला पाहील तर तीन उपोषणेहि करावी. जाणून चांडाळाला पाहील तर प्राजापत्य प्रायश्चित्त करावें. रजस्वलेला प्रेताचा किंवा बाळंतिणीचा स्पर्श झाला असतां शुद्धि होईपर्यंत भोजन करूं नये. शुद्धि झाल्यानंतर तीन रात्री उपोषण करावें, व भोजन केलें असतां कृच्छ्र प्रायश्चित्त करावें. सर्वत्र ब्रह्मकूर्च विधिकरून पंचगव्य प्राशन करण्या विषयी सांगितलेंच आहे. सुतकी जे व्यांचा स्पर्श झाला असतां स्नानाच्या पूर्वी रजस्वला झाल्यास चवथ्या दिवस पर्यंत भोजन करूं नये. चवथ्या दिवसपर्यंत उपोषित राहाण्यास सामर्थ्य नसेल तर तत्कार्लं स्नान करून भोजन करावें. याप्रमाणें बांधव मृत झाल्याचें समजलें असतां स्नानाच्या पूर्वी रजोदर्शन झालें असतांहि असाच निर्णय जाणावा. तसेंच रजस्वला झाल्यानंतर बंधु मृत झाल्याचें समजेल तर सशक्त असल्यास शुद्धि होई पर्यंत भोजन करूं नये. अशक्त असेल तर स्नान करून भोजन करावें. अस्पृश्याने स्पर्श केला असतां सर्व स्थली अशक्त असेल तिणें स्नान केल्यानंतर भोजन करावें. शुद्धि झाल्यानंतर उपोषणाचा प्रतिनिधि करावा असें कोणी ग्रंथकार झणतात.

रजस्वलेच्या पहिल्या दिवसाचा निर्णय सांगतो.

रात्रीचे तीन भाग करावे, व रात्रीच्या पहिल्या दोन भागांत रजस्वला झाल्यास पहिला दिवस असें समजावें. तिसऱ्या भागांत रजस्वला झाल्यास पुढचा दिवस तो पहिला दिवस असें समजावें. अथवा मध्यरात्रीच्या पूर्वीचा दिवस तो पहिला दिवस. मध्यरात्रीच्या नंतर जो पुढचा दिवस तो पहिला दिवस. याप्रमाणें सुवेर, सुतक यांच्या विषयीहि असाच निर्णय जाणावा. बहुधा जी स्त्री एका महिन्यानें रजस्वला होते ती सतरा दिवसांच्या आंत पुनः रजस्वला होईल तर तिची स्नानेकरून शुद्धि जाणावी. अठराव्या दिवसी झाल्यास एक रात्र, एकुणिसाव्या दिवसी झाल्यास दोन रात्रि, विसाव्या दिवसापासून तीन रात्रि विटाळ धरावा. जी स्त्री बहुधा पंधरा पंधरा दिवसांनीं रजस्वला होते ती दहा दिवसांच्या आंत पुन्हा रजस्वला होईल तर तिची स्नानेकरून शुद्धि जाणावी. अकराव्या दिवसी रजस्वला झाल्यास एक दिवस, बाराव्या दिवसी दोन रात्रि, व तेराव्या दिवसापासून तीन रात्रि विटाळ धरावा: “ज्या स्त्रियांला रोगाच्या योगानें दररोज रजोदर्शन होतें त्यांना विटाळ नाही. मात्र रजाचा स्त्राव बंद होईपर्यंत पाक करण्याविषयी व दैवपितरांच्या कर्माविषयी अधिकार नाही. रोगसंबंधी रजाचा स्त्राव असूनहि माससंबंधी रजाचा स्त्राव होतोच आपेक्षां व्याविषयी सावध होस्ताती अ

त्रिपेने तीन रात्रीपर्यंत विटाळ धरावा. जो स्त्री गर्भिणी असून प्रसूत होण्याच्या पूर्वी रोगाच्या योगाने रजस्वला होते तिणे तीन दिवसच विटाळ धरावा. प्रसूत झाल्यानंतर एक महिना होण्याच्या पूर्वी रजस्वला झाल्यास नुस्ते खान माळ करावे. पुरा महिना होऊन झाल्यास तीन रात्री विटाळ धरावा. उच्छिष्ट असी स्त्री असून जर रजस्वला होईल तर शुद्ध झाल्यानंतर तीन दिवस उपोषण, अधरो, च्छिष्ट असतां एक दिवस उपोषण करावे. रजस्वला झाली असून दोषाचे ज्ञान न झाल्यामुळे घरांत व्यवहार करील तर तिणे स्पर्श केलेले असे गोरस, मातीची मांडी, उदक इत्यादिक पदार्थ टाकू नयेत; कारण सुतकासारखा समजल्या वेळेला आरंभ करूनच दोष आहे. विटाळ धरणे तो तर ज्या दिवसी ज्ञान झाले त्या दिवसापासून तीन दिवस धरावा असे कोणी ग्रंथकार झणतात. दुसरे ग्रंथकार तर दुसऱ्या इत्यादिक दिवसी रजाचे ज्ञान झाले असतां सुतकाप्रमाणे बाकी राहिलेल्या दिवसांनीच शुद्धि होते असे झणतात. याप्रमाणे तीन दिवस विटाळ धरून चवथ्या दिवसी साठवेळ मृत्तिका लावून मळ प्रक्षालन करून दांत घासून सहा घटिकां नंतर खान करावे. सूर्योदयाच्या पूर्वी खान करणे हा अनाचार होय. रजाचा खाव बंद झाला असतां चवथ्या दिवसी भय्यांची सेवा इत्यादिकां विषयी शुद्धि होते. पांचव्या दिवसी देवपितरांच्या कर्माविषयी शुद्धि होते. जर कितीएक दिवस पर्यंत रजाचा खाव होत असेल तर तो बंद होईपर्यंत दैवकर्म व पित्र्यकर्म यांविषयी शुद्धि नाही. रोगाने खाव होत असेल तर त्या विषयी पूर्वी सांगितले आहे. कितीएक ग्रंथकार तर चवथ्या दिवसी दशैष्ट इत्यादिक श्रोतकर्म करावी असे झणतात. दुसरे ग्रंथकार तर इतर दिवसांहून चवथ्याच दिवस अनुकूल येईल तर त्याच दिवसी गर्भादान, दुष्टरजोदर्शनशांति हीं करावी, महासंकट असेल तर श्रीसूक्ताचा होम, व अभिषेक पूर्वी करून मीजी इत्यादिक कर्महि चवथ्या दिवसी करावे असे झणतात. चवथ्या दिवसी अधिकाराचा जो हा निर्णय सांगितला तो सर्वथा खाव बंद असेल तरच जाणावा.

जर ज्वर इत्यादिक रोगांनी रजस्वला आतुर झाल्यामुळे चवथ्या दिवसी खान करण्याला असमर्थ असेल तर तिला दुसऱ्या स्त्रीने किंवा पुरुषाने दहावेळ स्पर्श करून प्रतिस्पर्शास खान करून आचमन करावे. दरएक खानाचेवेळीं आतुराकडून दुसरे वस्त्र धारण करावे. शेवटी स्पर्श केलेलीं जीं सर्व वस्त्रे त्यांचा त्याग करावा, आणि शेवटी ओले वस्त्रादिक मधीं घेऊन शुद्धवस्त्र धारण केल्यानंतर पुण्याहवाचन व ब्राह्मणभोजन हीं केलीं असतां शुद्धि होते. याप्रमाणे इतर सर्वांहि अतुरांची शुद्धि करावी. याप्रमाणे शुद्धि झाल्यानंतर शुभदिवसी दुष्टरजोदर्शनप्रसूत असी खानकाने सांगितलेली भुवनेश्वरी शांति किंवा अन्य

ग्रंथांमध्ये सांगितलेली शांति करून गर्भादान करावे. सूर्यग्रहणामध्ये रजोदर्शन झाले असता सूर्याबिंब व त्या दिवसी जें नक्षत्र असेल त्याची प्रतिमा ही दोन सुवर्णाची करून राहूची प्रतिमा शिंश्याची करावी. नंतर सर्वांची पूजा करून रुईच्या समिधानीं सूर्याच्या उद्देशानें होम, पळसाच्या समिधानीं नक्षत्रस्वामीच्या उद्देशानें व दुर्वासमिधानीं राहूच्या उद्देशानें होम, याप्रमाणें होम करून घृत, चरु, तिळ यांचाहि होम करावा. चंद्रग्रहण असून, रजोदर्शन होईल तर रुप्याचें चंद्रबिंब, व पळसाच्या समिधा इतका विशेष जाणावा. ग्रहण, व्यतीपात इत्यादिक पुष्कळ दोष ज्या दिवसी असतील त्या दिवसी प्रथम रजो दर्शन होईल तर दुसऱ्या इत्यादि रजोदर्शनांचे वेळीं शांति करून गर्भाधान करावे. गर्भा धानाविषयीं गुरु, शुक्र यांचें अस्त; अधिकमास इत्यादिकांचा दोष नाही. जर पहिल्या रजोदर्शनाचे वेळीं शांति केली नाही आणि दुसऱ्या इत्यादिक रजोदर्शनांचे वेळीं गुरुशुक्रांचें अस्त इत्यादिक दोष प्राप्त होतील तर ते अस्तादि दोष गेल्यानंतर गर्भाधान करावे; कारण निमित्त प्राप्त होतांच जेथें तत्प्रयुक्त अनुष्ठान करितात तो मुख्य काळ असल्यामुळें त्याविषयीं अस्तादिक दोष नाही. मुख्य कालाचें उल्लंघन होईल तर अस्तादिक दोष आहे च, अशा सामान्य निर्णयावरून ऋतुशांति अस्तादिकांत करूं नये, व शांति करूं नये ह्यावरून गर्भाधानहि करूं नये असें मला वाटतें. शांति करणें ती सप्रहमखच करावी. शांतीचे ठिकाणीं भुवनेश्वरी प्रधानदेवता, इंद्र व इंद्राणी ह्या पार्श्वदेवता, याप्रमाणें तीनहि कलशांचे ठिकाणीं तीन प्रतिमा स्थापन कराव्या. रुई इत्यादिकांच्या समिधा, चरु, घृत हीं ग्रहांचीं द्रव्ये; दूर्वा, तिलमिश्र असे गहू, पायस, आणि घृत हीं चार द्रव्ये प्रधानदेवतेचीं; पार्श्वदेवतांचींहि हींच द्रव्ये जाणावीं. पायस शिजवावयाचें तें स्थंडिलसंबंधी अग्नी वरच शिजवावे, घरांत शिजविलेले घेऊं नये. ग्रहांच्या होमाकरितां चरु घेणें तो घरांत (पाकामोबर) सिद्ध केलेला घ्यावा. पात्रांचें स्थापन करावयाचें त्यावेळीं पायस शिजविण्या करितां एक स्थाली व घरांत सिद्ध झालेल्या चरुचा संस्कार करण्याकरितां दुसरी एक स्थाली, याप्रमाणें दोन स्थालीपात्रें स्थापन करावीं. घृताचा होम करणारे बहुत असल्यास खुवापात्रें बहुत स्थापन करावीं. घृतासहवर्तमान तीन होमद्रव्ये, व घरांत सिद्ध केलेला चरु या चार द्रव्यांचा अभिसंस्कार करावा. खुवा इत्यादिक पात्रांचा संस्कार झाल्या नंतर गृहासिद्ध चरु, तेथें स्थापन केलेल्या चरुस्थालीमध्ये धालून अग्नीवर ठेवून शिजव्याप्रमाणें करून आज्यसंस्कारापासून दर्भांच्या आसादनपर्यंत कर्म करावे. तदनंतर पात्रांचे ठिकाणीं आज्यसंस्कार करणें व तें पायस खालीं ठेवणें एथपर्यंत कर्म करावे. अग्नीधान व द्रव्यांचा आग यांचे ठिकाणीं प्रधानदेवतेचा उच्चार करणें तो 'भुवनेश्वरी' ह्या उद्दानें करावा, किंवा सवितृपदानें करावा; कारण, गायत्री मंत्रानें होम सांगितला

आहे. आज्यभाग शाल्यानंतर यजमानानें जसे अन्वाधान केलें असेल तसा त्यागाचा उच्चार करावा. तो असा— "प्रतिदैवतं अष्टाविंशत्याहुतिपर्याप्तमर्कादिजातीयसमिच्चर्वा-
ज्यात्मकं हविस्त्रयं सूर्याय सोमाय भौमाय बुधाय बृहस्पतये शुक्राय शनये राहवे केतवे
नमम ॥ अष्टाष्टसंख्यापर्याप्तं हविस्त्रयं तत्तदधिदेवताप्रत्याधिदेवताभ्योनमम चतुश्चतुःसंख्याप
र्याप्तं तद्धविस्त्रयं विनायकादिभ्यः क्रतुसंरक्षकक्रतुसाद्रुप्यदेवताभ्यो नमम ॥ अष्टोत्तरशतसंख्या
हुतिपर्याप्तं दूर्वातिलमिश्रगोधुमपायसाज्येतिहविस्चतुष्टयं भुवनेश्वर्यै नमम ॥ अथवा सवित्रे
नमम ॥ अष्टाविंशतिसंख्यापर्याप्तं तच्चतुष्टयीमद्रैद्राणीभ्यां नमम," याप्रमाणें त्याग करावा.
ऋतुकालीं फार दोष असतील तर भुवनेश्वरीचा होम १००८ करावा, व इंद्र आणि इंद्राणी
यांचा होम १०८ करावा. इंद्र व इंद्राणी यांचा हा होम केला किवा न केला तरी चालेल.
होमाच्या अंती नवग्रह इत्यादिकांला बलि, व भुवनेश्वरी इत्यादिकांला बलि देऊन अभिषेक
करावा, याप्रमाणें संक्षेप जाणावा. याखेरीज मंत्रसहित विस्तारपूर्वक प्रयोग आपापल्या
शाखानुसार जाणावा. "संकल्प, पुण्याहवाचन, ब्राह्मणवरण, भूतांचें निःसारण, पंचग-
व्यानीं भूमांची शुद्धि करणें, प्रधानदेवतेची पूजा, अग्नीची स्थापना, सूर्यादिक नवग्रहांची
स्थापना करून पूजा करणें, देवतांचें अन्वाधान, पात्रासादन, होमांचीं ऋषे सिद्ध करणें,
जसा क्रम असेल तदनुसार होम व त्याग करणें, याप्रमाणें पूर्वीचीं जीं अंगभूत कर्में त्यांचा
क्रम असा जाणावा. पूजा, स्विष्टकृत, प्रायश्चित्तादि होमशेष, बलिदान, पूर्णाहुति पूर्णपात्र-
निनयन, परिस्तरणविसर्जन इत्यादिक, अग्निपूजा, अभिषेक, "मानस्तोके०" या मंत्रानें
विभूतिधारण, देवतेची पूजा व विसर्जन, श्रेयोग्रहण, दक्षिणा इत्यादिक देणें, कर्म ईश्वराला सम-
र्पण करणें, याप्रमाणें होमापासून पुढच्या अंगभूत कर्मांचा क्रम जाणावा. बहुधा असीं स्मार्त-
कर्मांची स्थिति आहे." याप्रमाणें मदनरत्नानें व बौधायनानें सांगितलेली शांति, कौरुभात
पहावी. रजोदर्शनाच्या पूर्वी स्त्रियेशीं गमन केलें असतां ब्रह्महत्यादोष लागतो असें आहे या
करितां किंचित् प्रायश्चित्त करावें असें मला वाटतें. ऋतुकालीं स्त्रीगमन अवश्य करावें, न
केल्यास भ्रूणहत्या (गर्भहत्या) दोष लागतो. मनांत कामेच्छा असून द्वेषादिकानें स्त्रीप्रत गमन
न करणारास हा दोष लागतो. विरक्त असेल तर त्याला कोणताहि दोष नाही, असें श्रीम-
द्भागवतांत (एकादशस्कंधीं) "लोकैव्यवाया०" ह्या श्लोकाच्या टीकेत स्पष्ट आहे. रजोदर्शन
शाल्यादिवसापासून सोळा दिवस पर्यंत ऋतुकाल जाणावा, त्यामध्ये पहिले चार दिवस,
अकरावा दिवस, व तेरावा दिवस यांचे ठिकाणीं गमन वर्ज्य करावें. बाकी राहिलेले
जे दहा दिवस त्यांमध्ये पुत्राची इच्छा करणारानें समदिवसी, आणि कन्येची इच्छा
करणारानें विषमदिवसी गमन करावें, आमध्यैहि पुढच्या पुढच्या रात्रि प्रशस्त

होत. एका रात्रीमध्ये एकवेळच गमन करावे, एकवार गमन करणे तेंहि सर्व सम. रात्रीचे ठिकाणी अवश्य करावे असे कोणी ग्रंथकार लक्षणतात. इतर काली काहींएक प्रतिबंधादिकाने गमन न होईल तर श्राद्धदिवस, एकादशी दिवस या कालीहि गमन करावे, असे कोणी ग्रंथकार लक्षणतात. स्त्रियांच्या कामाचा नाश करणारा पापी होईल असा वर स्मरण करीत होस्तता स्त्रियेच्या इच्छेने ऋतुकालाव्यतिरिक्तहि गमन करील तथापि दोषी होत नाही; तर ब्रह्मचर्याचा नाश मात्र होतो. “जो ऋतुकाली स्त्रियेचे ठिकाणी गमन करितो, आणि ऋतुकालाव्यतिरिक्त कदापि गमन करीत नाही, तो जिवंत आहेपर्यंत ब्रह्मचारी असे ऋषींनी सांगितले आहे.” अष्टमी, चतुर्दशी, पौर्णिमा अमवास्या, सूर्यसंक्रांति, वैधृति, व्यतीपात, परिघाचे पूर्वार्ध, कल्याणी, संधिकाल, मातापितरांचा मृतदिवस, श्राद्धदिवस, श्राद्धाच्या पूर्वीचा दिवस, जन्मनक्षत्र आणि दिवसा इतक्या काली स्त्रीगमन वर्ज्य करावे.

आतां गर्भाधानाचा काल.

चतुर्थी, षष्ठी, चतुर्दशी, अष्टमी, पौर्णिमा, अमवास्या ह्या तिथि वर्ज्य करून बाकी तिथि गर्भाधानाला ग्रहण कराव्या. सोमवार, बुधवार, गुरुवार, शुक्रवार हे वार गर्भाधानाला शुभ होत. मूळ, मघा, रेवती, ज्येष्ठा हीं नक्षत्रे वर्ज्य करावीं. भरणी, कृत्तिका अर्द्धा, आश्लेषा, तीन पूर्वा (पूर्वा, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा,) विशाखा हीं मध्यम होत. बाकी राहिली तीं शुभ जाणावीं. सर्व कार्यांचे ठिकाणी गोचरी चंद्रवळ अवश्य असोवें. तें असें,—“अन्नलाभ, धननाश, सुख, रोग, कार्यनाश, धनलाभ, स्त्रीलाभ, मृत्यु राजभय, सुख, धनलाभ, धननाश याप्रमाणें चंद्र, आपल्या जन्मराशीपासून वारा स्थानांवर असतां क्रमेकरून फळ देतो. शुक्लपक्षामध्ये दुसरा, पांचवा, नववा चंद्र शुभ होय. ज्याला अनेक स्त्रिया असून त्या स्त्रियांला ऋतुदर्शन एकसमयी होईल तर त्याने गर्भाधान विवाहाच्या क्रमानें किंवा ऋतुदर्शनाच्या क्रमानें करावें. ऋतुकालीहि गमन न केलें असतां दोषाचा अपवाद सांगतो—“व्याधिष्ठ, बंधनांत सांपडलेला, किंवा प्रवासंत गेलेला, पूर्वदिवसी,” अशा समयी ऋतुकाली स्त्रीगमन न केल्या विषयी दोष नाही.—आणि “वृद्धा, वंध्या (वांश) दुराचरणी, मृतबंध्या, रजोदर्शनविरहित, कन्या प्रसवणारी, आणि ऋषुपुत्रा आशा स्त्रीशी गमन न केलें असतां दोषी होत नाहीं.

हममध्ये पाहिल्या ऋतूचे ठिकाणी गमन करणे तें गृह्याभोक्त्र गर्भादान संबंधी होम करून करावें. दुसऱ्या इत्यादिक ऋतूचे ठिकाणी गमन करणे त्याविषयी होम इत्यादिक

नाहीं, ज्याच्या सूत्रात होम करण्याविषयां सांगितले नाही, त्यांनी होम न करितां मंत्रांचा पाठ मात्र पहिल्या गमनाविषयी करावा. अर्धाधानी अग्निहोत्री व अनाहिताग्नि यांचा गृह्याग्नि सिद्ध असेल तर त्यावरच गर्भादानहोम करावा. बारा दिवसपर्यंत गृह्याग्नीचा नाश झाला असल्यास “अयाश्वा०” ह्या मंत्राने आज्याच्या आहुतीने प्रायश्चित्त करावे. अग्नीचा नाश होऊन बारा दिवसांपेक्षां ज्यास्त दिवस होतील तर पूर्वी प्रायश्चित्त करून नंतर पुनः संधानविधीने अग्नि उत्पन्न करून त्या अग्नीवर गर्भाधानहोम करावा. प्रायश्चित्त करणें तें दरवर्षात प्राजापत्यकृच्छ्र करावे. त्याविषयी असा संकल्प करावा. “मम गृह्याग्निविच्छेददिनादारभ्यैतावन्तं कालं गृह्याग्निविच्छेदजनितदोषपरिहारद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं गृह्याग्निविच्छेददिनादारभ्यैतावदब्दपर्यंतं प्रत्यब्दं एकैककृच्छ्रान् यथाशक्तितत्प्रत्यान्मायगोनेष्कप्यभू तरजतनिष्कनिष्कार्धनिष्कपादानिष्कपादार्धान्यतमद्रव्यदानेनाहमाचरिष्ये तथा एतावदिनेषु गृह्याग्निविच्छेदेन लुप्तसायंप्रातरौपासनहोमद्रव्यं लुप्तदर्शपौर्णमासस्थलीपाकादिर्कर्मपर्याप्तरीत्या ज्यद्रव्यंच तन्निष्कयंवादातुमहमुत्सृजे.” कृच्छ्रांच्या स्थानीं दुसरा प्रत्याघ्न्य करणें असेल तर तसा उच्चार करावा. ऐशी गुंजांचा निष्कपाद, हा चौपट केला झणजे एक निष्क होतो. याप्रमाणें संकल्प करून, “विच्छिद्य गृह्याग्नेः पुनःसंधानं करिष्ये,” असा संकल्प करून आपापल्या सूत्राप्रमाणें गृह्याग्नि सिद्ध करावा. सर्वाधानी जो त्यानेंहि असाच पुनः संधानविधीने गृह्याग्नि उत्पन्न करून त्या अग्नीवर गर्भाधान, पुंसवन इत्यादिकांचा होम करावा. सर्वाधानी जो त्याने कृच्छ्रांचा संकल्प, व होमादिक द्रव्याच्या दानाचा संकल्प हे करूं नयेत. तर, “गर्भाधानहोमं कर्तुं गृह्यपुनःसंधानं करिष्ये,” असाच संकल्प करावा, व गर्भादान ज्ञाव्यानंतर अग्नीचा त्याग करावा. अर्धाधानी जे त्यांचेहि दोन पक्ष आहेत. पहिला पक्ष — गृह्याग्नीवर सायंकालीं व प्रातःकालीं होम व स्थालीपाक करावे. दुसरा पक्ष—केवळ गृह्याग्नीचें रक्षण मात्र करावे, सावर होमादिक करूं नये. पहिल्या पक्षां पूर्वी सांगितल्याप्रमाणें होमादिकांचे द्रव्याचें दान करावे. होमादिक न करणें ह्या पक्षां प्रायश्चित्त मात्र करावे, होमादिकांचे द्रव्याचें दान करूं नये. दोन ज्याला स्त्रिया आहेत त्याच्या दोन अग्नींचा संसर्ग होण्याच्या पूर्वी दोन अग्नि नष्ट होतील तर दोहोंचा नाश ज्या दिवसां झाला त्या दिवसापासून वर्षे मोजून त्याप्रमाणें दोहोंचें निरानिराळें कृच्छ्र प्रायश्चित्त, व निरानिराळें होमाच्या द्रव्याचें दान. आणि स्थालीपाकाच्या द्रव्याचें दान हीं सर्व करून दोन पुनःसंधाने करून दोन अग्नि उत्पन्न करावे. नंतर त्या दोन अग्नींचा संसर्ग करून त्या संसर्गाग्नीवर गर्भाधान प्रयुक्त होम करावा. दोन अग्नींचा संसर्ग करण्याच्या पूर्वी दोहोंतून एक अग्नि नष्ट झाला असतां त्याचें प्रायश्चित्त, व त्याच्या होमाच्या द्रव्याचें दान हीं मात्र करावीं, स्थालीपाकाच्या द्रव्याचें दान करूं नये. दुसरी स्त्री

जवळ नसेल तर ज्या स्त्रियेचें गर्भाधान करावयाचें तिच्या अग्नीचा नाश झाल्याचें प्राय-
श्चित्त इत्यादिक करून पुनःसंधानविधीनें अभि उत्पन्न करून आबर गर्भाधानहोम करावा.
स्थालीपाकाचा आरंभ न झाला असेल तर सर्वत्र पुनःसंधानकार्त्वीं स्थालीपाक इत्यादि
कांच्या द्रव्यानें दान कृताकृत (करावें न करावें) असें आहे. याप्रमाणें यथायोग्य गृह्याभि
सिद्ध करून, “ममास्यां भार्यायां संस्कारातिशयद्वाराऽस्यां जनिष्यमाणसर्वगर्भाणां बीजगर्भ
समुद्भवैर्नोनिवर्हणद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रोत्थं गर्भाधानाख्यं कर्म करिष्ये, तदंगत्वेन स्वस्तिवाचनं”
इत्यादिक संकल्प करून पुण्याहवाचन, मातृकापूजन, आणि नांदीश्राद्ध इत्यादिक करून
जसें ज्याचें गृह्यसूत्र असेल तदनुसार गर्भाधानसंस्कार करावा. ह्या गर्भाधानसंस्काराची
देवता ब्रह्मा आहे याकरितां पुण्याहवाचनाच्या शेवटीं, “कर्मांगदेवता ब्रह्मा प्रीयतां”
असा उच्चार करावा. अभि सिद्ध करावयाचा त्या कार्त्वीं कर्तव्य जें अंगभूत पुण्याहवा-
चन त्याचे ठिकाणीं, “अभिसूर्यप्रजापतयः प्रीयतां” असा उच्चार करावा. स्थालीपा
काच्या आरंभकार्त्वीं “अभिःप्रीयतां” असा उच्चार करावा. याप्रमाणें इतर कर्मांचे
ठिकाणीं उच्चार करावयाचा तो दुसऱ्या ग्रंथांत पाहावा.

नांदीश्राद्धाचा निर्णय.

गौरी इत्यादि ज्या मातृकादेवता यांचें पूजन करणें तें नांदीश्राद्धाचें अंग होय. ज्या
कर्मांचे ठिकाणी, नांदीश्राद्ध करित नाहीं तेथें मातृकादेवतांचें पूजनहि करूं नये. नांदी
श्राद्धांत प्रथम मातृपार्वण, आ नंतर पितृपार्वण, तदनंतर सपत्नीक मातामहपार्वण
या प्रमाणें तीन पार्वणें ज्यामध्ये आहेत तें नांदीश्राद्ध होय. माता जीवंत असेल
आणि सापत्नमाता मृत झाली असेल तथापि मातृपार्वण नाहीं. याप्रमाणें मातामही
जीवंत असेल आणि मातामहीची सवत मृत असेल तथापि मातामह इत्यादिकांला सप
त्नीकपणा नाहीं. या प्रमाणें दर्शादिक श्राद्धाविषयींहि माता जीवंत असेल आणि
सापत्नमाता मृत झाली असेल तथापि पित्रादिक त्रयीला सपत्नीकत्व नाहीं. ह्या नांदी-
श्राद्धांत ‘स्वधा’ ह्या शब्दस्थानीं ‘स्वाहा’ शब्द उच्चारवा, व सव्यानेंच सर्व कर्म
करावी. दरएक पार्वणाचे ठिकाणीं व देवपार्वणाचे ठिकाणीं दोन दोन ब्राह्मण
सांगावे. विवाहादि मंगलकार्यांचें अंगभूत नांदीश्राद्ध असेलतर कुशस्थानीं दूर्वा घ्याव्या.
यज्ञादिक कर्मांचें अंगभूत नांदीश्राद्ध असेल तर मूलरहित दर्भ घ्यावे. दूर्वा व दर्भ हे
दोन दोनच घ्यावे. नांदीश्राद्धकर्त्ता उत्तराभिमुख असावा, ब्राह्मण पूर्वाभिमुख असावे.
अथवा कर्ता पूर्वाभिमुख, ब्राह्मण उत्तराभिमुख असावे. पूर्वाह काल असावा. सर्व
कर्म प्रदक्षिण करावें. आधानाचें अंगभूत नांदीश्राद्ध अपराहकार्त्वीं करावें. पुत्रज-

मन्निमित्तक नांदीश्राद्ध रात्रीहि करावें. या प्रमाणें विश्वेदेव संबंधी ब्राह्मणासह आठ ब्राह्मण सांगावे. तितकें सामर्थ्य नसल्यास चार सांगावे. नांदीश्राद्धांत सत्यवसु संज्ञक देव ध्यावे. सोमयाग, गर्भाधान, पुंसवन, सीमंतोत्थन, आधान, इत्यादि कर्मांचें अंगभूत जें नांदीश्राद्ध सांत ऋगुदक्ष संज्ञक देव ध्यावे. गर्भाधान इत्यादिक संस्कार; विहीर, देवाची अर्चा इत्यादिक पूर्तकर्म; पूर्वी न केल्लीं असीं आधान (अग्निस्थापन) इत्यादि कर्म; संन्यास घेणें; काभ्यवृषोत्सर्ग; गृहप्रवेश; तीर्थ यात्रा; श्रवणाकर्म, सर्पबलि, आश्वयुजीकर्म, आग्रयण इत्यादिक ज्या पाकसंस्था यांचा प्रथमार्भ; ह्या कृशांच्या आरंभी नांदीश्राद्ध अवश्य करावें. सोमयागादिखिराहित पुनराधान, वारंवार करावयाचें कर्म, आणि अष्टका इत्यादिक श्राद्धकर्म यांमध्ये नांदीश्राद्ध करूं नये. गर्भाधान, पुंसवन, सीमंतोत्थन, चौल, मौंजी, आणि विवाह हे संस्कार खेरीज करून इतर संस्कार व श्रवणाकर्मादिक कर्म यांचे ठिकाणीं नांदीश्राद्ध कृताकृत. जात कर्मांचें अंगभूत जें नांदीश्राद्ध तें, व पुत्रजन्मसंबंधी नांदीश्राद्ध हीं निरनिराळीं करावीं. जन्मसमयींच जातकर्मसंस्कार करणें असेल तर, “ पुत्रजन्मनिमित्तकं जातकर्मांगंच वृद्धि श्राद्धं तंत्रेण करिष्ये, ” असा संकल्प करून एकवारच नांदीश्राद्ध करावें. नामकरणा बरोबर जातकर्म करणें असेल तर पुत्रजन्मसंबंधीं नांदीश्राद्ध जन्मसमयींच हिरण्यानें करून कर्मांचें अंगभूत नांदीश्राद्ध नामकर्मकालीं करावें. जन्मकालीं तें न केले असतां नाम कर्म कालींच, “ पुत्रजन्मनिमित्तकं जातकर्मनामकर्मांगंच नांदीश्राद्धं तंत्रेण करिष्ये, ” असा संकल्प करून एकच करावें. याप्रमाणें चौल इत्यादिक कर्मांसहवर्तमान जातकर्मादिक संस्कार करावयाचे असतील तर, “ पुत्रजन्मनिमित्तकं चौलांतसंस्कारांगंच नांदी श्राद्धं तंत्रेण करिष्ये, ” असा संकल्प करावा. तसेंच बरोबरच करावयाचे असे चौला दिक संस्कार व इतर कर्म यांमध्ये नांदीश्राद्ध एकवेळच करावें, दरएक कर्मांत निराळे करूं नये. याप्रमाणें जुळे जे सांचे एककालीं संस्कार करणें साविषयींहि असाच निर्णय जाणावा. ऋकशाखी व कात्यायन यांनीं “ पितृपितामहप्रपितामहाः ” असा पितृपूर्वक उच्चार करावा. अन्यशाखी जे सांनीं तर, “ प्रपितामहपितामहपितरसे नांदीमुखाः ” असा प्रपितामहपूर्वक उच्चार करावा. मातृपार्वणामध्ये नांदीमुख ह्या शब्दाचे ठिकाणीं “ ङीष् ” प्रत्यय वैकल्पिक आहे याकरितां “ नांदीमुखः ” असा, किंवा “ नांदीमुखाः ” असा याप्रमाणें दोन पक्ष उच्चाराविषयीं होतात, यांतून कोणताहि एक ध्यावा. “ नख आणि मुख एतदंत प्रातिपदिक कोणाची संज्ञा असेल तर सापुढें ङीष् होत नाहीं, टाप्सु होतो, ” असा जो निषेकसांगितला त्याची ह्या स्थलीं प्राप्ति नाहीं, कारण संज्ञा अनादि आहे असें पुढघार्थचिंतामणीकार लक्षणतात.

आतां जीवतपितृक असा नांदीश्राद्ध करणारा असेल तर त्याविषयीं निर्णय.

माता, पितामही, प्रपितामही, ह्या तीन मिळून एक वर्ग; पिता, पितामह, प्रपितामह, हे तीन मिळून एक वर्ग; मातामह, मातुःपितामह, मातुःप्रपितामह, हे सप्तर्क तीन मिळून एक वर्ग; याप्रमाणें वर्ग आहेत, यांमध्ये "वर्गांतोल पहिला जिवंत असेल तर तो सर्व वर्ग टाकावा," असा न्याय आहे, याकरितां ज्याचा पिता जिवंत असेल त्यानें आपल्या अपत्याचे संस्कारांमध्ये मातृपार्वण व मातामहपार्वण ह्या दोन पार्वणांनीं युक्त असें नांदीश्राद्ध करावें. माता जिवंत असेल तर मातामहपार्वणयुक्तच नांदीश्राद्ध करावें. मातामह जिवंत असेल तर मातृपार्वणयुक्तच नांदीश्राद्ध करावें. नुस्तें एक मातृपार्वणच असेल तर नांदीश्राद्धाचे ठिकाणीं विश्वेदेव करूं नयेत. तीन वर्गांतोल पहिले तीन माता, पिता, मातामह, हे जिवंत असतील तर सुतसंस्कारांमध्ये नांदीश्राद्धाचा लोपच करावा हें योग्य होय. दुसरा विवाह, अम्पाधान, पुत्रेष्टि, आणि सोमयाग इत्यादिक आपल्या संस्कारकर्मांत "आपला पिता ज्या पितरांला पार्वणें देतो त्याच पितरांला पुत्रानें द्यावी." तसेच ज्याची माता व मातामह हे मृत असून पिता जिवंत असेल त्यानें पिता ज्यांचा उच्चार करितो त्यांचाच उच्चार आपल्या संस्कारांतील नांदीश्राद्धसमयीं करावा. तो असा,— "पितुर्मातृपितामहीप्रपितामहः, पितुःपितृपितामहप्रपितामहाः, पितुर्मातामहमातृपितामहमातृप्रपितामहाः," इतकाच उच्चार करून पार्वणत्रयांच्या उद्देशानें नांदीश्राद्ध करावें, आपल्या मातृपार्वणाचा व मातामहपार्वणाचा उद्देश करूं नये. पिता आणि पितामह हे जिवंत असतील तर आपल्या संस्कारामध्ये पितामहाच्या मातृपार्वणाचा उच्चार करावा. तो असा,— "पिता महस्य मातृपितामहीप्रपितामहः," इत्यादिक याप्रमाणें प्रपितामह जिवंत असतांही असीच योजना करावी. पित्याची माता इत्यादिक जिवंत असेल तर त्या पार्वणाचा लोपच करावा. तसेच "ज्या पितरांला पिता पार्वणें देतो त्याच पितरांला पुत्रानें द्यावी" असा जो पक्ष सांगितला त्याची व्यवस्था व वर्गाचा पहिला जिवंत असेल तर त्या पार्वणाचा लोप करावा अशी द्वारलोपपक्षाची व्यवस्था, आपले संस्कार व आपल्या अपत्याचे संस्कार या भेदेंकरून व्यवस्थित जाणावी; ह्मणजे आपल्या संस्कारामध्ये पित्याचीं पार्वणें घ्यावी, व पुत्राचे संस्कारामध्ये आपलीं पार्वणें घ्यावी हें तात्पर्य. कोणी ग्रंथकार तर, पूर्वी सांगितलेल्या दोन पक्षांचा विकल्प इच्छामाप्त आहे, व्यवस्थायुक्त नाहीं असें ह्मणतात. असेच ज्याचा पिता मृत झाला असून माता व मातामह हे जिवंत असतील त्याचे

नांदीश्राद्धाची सिद्धि एका पितृपार्वणानेच होते असे जाणावे. सीडमुज संस्कार करणारा स्वतःबटु जरी असेल तथापि समावर्तनाचे अंगभूत नांदीश्राद्ध पित्याने करावे, पिता नसेल तर ज्येष्ठभ्राता इत्यादिकाने करावे असे कोणी ग्रंथकार लणतात. पित्याने पुत्राच्या समावर्तनकाली नांदीश्राद्ध करणे ते आपल्या पितरांच्या उद्देशाने करावे. पिता जीवित्तृक (जिवंत आहे पिता ज्याचा तो) असेल तर पुत्राचा संस्कार आहे याकरिता तेथे द्वारलोपपक्ष योग्य आहे असे वाटते. बटूचा पिता प्रवात इत्यादिक कारणाने जवळ नसेल तर बटूचा भ्राता इत्यादिक याने बटूच्या पित्याच्या पार्वणानी नांदीश्राद्ध करावे. याचा उच्चार असा, — “माणवकस्य पितुर्मृतपितामहीप्रपितामहाः,” इत्यादिक उच्चार करावा. मृतपितृक बटूच्या समावर्तनामध्ये चुलता, भ्राता इत्यादिकानी बटूच्या पार्वणानी नांदीश्राद्ध करावे. याचा उच्चार असा, — “अस्य माणवकस्य मातृपितामहीप्रपितामहाः,” चुलता, भ्राता इत्यादिक नसतील तर स्वता बटूनेच आपल्या पितरांच्या उद्देशाने नांदीश्राद्ध करावे. याप्रमाणे ज्याचा पिता जिवंत आहे अशा बटूनेहि पिता जवळ नसता व भ्राता नसता पित्याच्या पितरांच्या उद्देशाने स्वताच याने नांदीश्राद्ध करावे, कारण मौंजी शाली आहे या कारणाने, बटूला कर्माचा अधिकार आहे याप्रमाणे विवाहांतहि निर्णय जाणावा. मृतपितृकाचे चौल, मौंजी इत्यादिक संस्कार करणे ते चुलता, मातुळ इत्यादिक कारणे असतील तर ज्याचा संस्कार करावयाचा त्याच्या पार्वणानी नांदीश्राद्ध करावे. याचा उच्चार असा — “अस्य संस्कार्यस्य पितृपितामहप्रपितामहाः,” इत्यादिक उच्चार करावा. पिता जिवंत असून जवळ नसल्या कारणाने मातुळ इत्यादिक संस्कार करणारा असेल तर ज्याचे संस्कार करावयाचे त्याच्या पित्याचे जे माता पिता इत्यादिक, त्यांच्या उद्देशेकरून नांदीश्राद्ध करावे, बटूचे माता इत्यादिक मृत झाले असतील तथापि त्यांच्या उद्देशाने करूं नये. याप्रमाणे नांदीश्राद्धाच्या पार्वणाचा संक्षेपाने निर्णय सांगितलो.

नांदीश्राद्धामध्ये पिंडदान.

नांदीश्राद्धामध्ये पिंडदान करणे ते जसा कुलाचार असेल त्या प्रमाणे कृताकृत आहे. पिंडार्थे दही, मध, बोरें, द्राक्षें, आवळे हे पदार्थ घालावे. दाक्षिणा देणे ती द्राक्षें, आवळे हे द्यावे. प्रथमांत विभक्तीने संकल्प करावा. सर्वत्र उच्चारांत संबंध, नाम, गोत्र हीं वर्ज्य करावीं. आई, चमेली, मोगरी, केतकी यांणि कमलें यांची माला ब्राह्मणांला द्यावी, तांबड्या फुलांची माला देऊं नये. केशर, चंदन इत्यादिकाने अलंकृत सर्व जन असावे. नांदीश्राद्धाला आरंभ झाल्यानंतर वैश्वदेव करणे तो दुसरा भात

करून सामिक निरभिक असे सर्व शाखी यांनी करावा. दोन दोन ब्राह्मणांला एकदम निमंत्रण करावें, त्याचा उच्चार असा,—“भवद्भ्यां क्षणः क्रियतां ओं तथा, प्रामुतां भवेत्ती, प्रामुवाव.” “शंनोदेवी०” ह्या मंत्रानें अभिमंत्रण करून यवच टाकावे. “यबोसि सोमदे वयो गोसवे देवनिर्मितः ॥ प्रलवद्विः प्रतः पुष्ट्वा नांदीमुखान् पितृनिमांहोकोनप्राणयाहिनः स्वाहानमः,” असा मंत्र पित्र्यकर्मचे ठिकाणीं योजावा. गंध इत्यादिक उपचार दोन दोन वेळ द्यावे. ब्राह्मणांचे हस्तांचे ठिकाणीं होम करणें तो, “अग्रवे कव्यवाहनाय स्वाहा, सौमाय पितृमते स्वाहा,” ह्या मंत्रानें करावा. ह्या नांदीश्राद्धामध्ये अपसव्य करूं नये, तिळ घेजं नयेत, व पितृतीर्थानें दान करूं नये. पावमानी ऋचा, शंबवीऋचा, शकुनिसुक्त, आणि स्वस्तिसूक्त हीं सुक्तां ब्राह्मणांकडून श्रवण करवावीं. “मधुवाता०” ह्या तीन ऋचांच्या स्थानीं “उपास्मै गायता०” ह्या पांच ऋचा, व “अक्षन्मीमदंत०” ही ऋचा अशा ह्यणाव्या. नृसिप्रश्नाच्या स्थानीं “संपन्नं” असा उच्चार करावा. दैवकर्मचे ठिकाणीं “रुचितं” असा प्रश्न करावा. पूर्वं दिशेला अग्नें केलेल्या अशा दर्भांचे ठिकाणीं किंवा दूर्वांचे ठिकाणीं एकाला दोन दोन असे पिंड द्यावे. ‘अक्षय्यं’ ह्या स्थानीं “नांदीमुखाःपितरः प्रीयतां” असा उच्चार करावा. स्वधावाचन स्थानीं “नांदीमुखान् पितृन् वाचयिष्ये,” इत्यादिक उच्चार करावा, स्वधाशब्दाचा उच्चार करूं नये. नंतर “समूषुवाजिनं०” ह्या मंत्रानें ब्राह्मणांचें विसर्जन करावें. कोणी ग्रंथकार, नांदीश्राद्धाचे शेवटीं ऋग्वेदी यांनीं वैश्वदेव करावा असें ह्यणतात. ह्या नांदीश्राद्धाचे ठिकाणीं श्राद्धसंबंधी तर्पण करूं नये. ह्या नांदीश्राद्धामध्ये अग्निहोती यानें पिंडदान करावें. पित्र्याचे माता इत्यादिक जे तीन वर्ग त्यांच्या उद्देशानें नांदीश्राद्ध असेल तर त्यामध्ये, “पितृमार्तामहीचैव तथैवप्रापि तामही,” इत्यादिक श्लोक पाठ करावा. द्वारलोपपक्ष असेल तर ज्या पार्वणाचा लोप असेल त्या पार्वणसंबंधी जो श्लोक त्याच्या एकदेशाचा लोप करावा. केवळ मातृपार्वणयुक्त नांदीश्राद्ध असल्यास देवांचें कारण नाही. एथें “एता भवंतु सुप्रताः” असा ऊहं करावा. सांकल्पविधीनें संक्षिप्त नांदीश्राद्धाचा प्रयोग प्रयोगरत्न इत्यादिक ग्रंथी पाहावा. याप्रमाणें नांदीश्राद्धाचा निर्णय समाप्त झाला.

गर्भाधानसंस्कार.

याप्रमाणें पुण्याहवाचन व ऋतुदक्षसंबंधक देवसहित असें गर्भाधानाचें अंगभूत नांदीश्राद्ध करून जसी ज्याची शाखा असेल त्या प्रमाणें त्यानें गर्भाधानसंस्कार करावा. आश्वलायनशाखी जे आनीं गृह्यामीचे ठिकाणीं प्रजापत्य ऋचा होम करून विष्णु देवतेला सहा, प्रजापातेदेवतेला एक अशा घृताच्या आहुतींनीं होम करून जप, अग्नीचे

उपस्थान, नाकांत दुर्वाचा रस पिळणें इत्यादिक करावें. “प्रती होत्साता तीन बोटांनां येनीला स्पर्श करून “विष्णुर्योनि०” या सूक्ताचा जप करावा, यानंतर गर्भाधान करावें, तेणेंकरून खर्चात सुपुत्र होतो.” याप्रमाणें “नेजमेष०” इत्यादिक मंत्राचाहि जप करावा. सर्वथां होम करण्याचा संभव नसेल तर उजव्या नासिकेंत अश्वगंधेचा रस-“उदीर्धातः०” ह्या मंत्रानें पिळून नंतर स्त्रीचे ठिकाणीं गमन करावें. याप्रमाणें गर्भा धानसंस्कार केल्याखेरीज स्त्रीगमन केलें व त्यापासून गर्भ राहिला असतां त्याचें प्रायाश्चित्त गोप्रदान करून पुंसवन करावें.

यानंतर मैथुनांतीं कर्तव्य विधि.

“ऋतुकालीं गमन केलें असतां गर्भधारणाचा संभव आहे या कारितां मैथुन करणा- रानें मैथुनांतीं स्नान करावें. ऋतुकालावांचून अन्यकालीं गमन करील तर मूत्रपुरीषा प्रमाणें शौच ह्मणजे हातपाय धुवावे” याप्रमाणें सांगितल्या रीतीनें हात व पाय इत्या- दिक धुवून आचमन करावें. आचमनावांचून मूत्रपुरीष यांचा उत्सर्ग करील तर, “जर अभ्यंग, किंवा इमश्रुकर्म अथवा मैथुन करून आचमन न कारितां मूत्रपुरीष यांचा उत्सर्ग करील तर तो एक अहोरात्रेंकरून शुद्ध होतो” असें वचन आहे यास्तव त्यानें एक अहोरात्र उपवास करावा. मैथुनानंतर स्त्रियांनीं स्नान करूं नये. कारण, “पलंगा- वरून उठलेली स्त्री शुद्ध होय, पुरुष शुद्ध नाही” असें वचन आहे. याप्रमाणें गर्भा धान इत्यादिकांच्या उपयोगी असा निर्णय समाप्त झाला.

संततिप्रतिबंधनाशार्थ नारायणबलि.

याप्रमाणें गर्भाधान केलें असतांही जर गर्भाची उत्पत्ति न होईल अथवा मुलें होऊन पृत होतील तर संततीचा प्रतिबंधक जो पिशाच त्याचा उपद्रव दूर होण्याकरितां नारा- यणबलि व नागबलि हे विधि करावे. त्यामध्यें नारायणबलि कारणें तो शुक्लपक्षातील एकादशी, पंचमी किंवा श्रवणनक्षत्र या दिवसीं करावा; कारण, याहून दुसरे काल सांगि तलेले मिळत नाहींत. त्या नारायणबलीचा प्रयोग परिशिष्ट व स्मृत्यर्थसार यांच्या अनु- रोधानें कौस्तुभांत सांगितला आहे. तो असा,—शुक्लपक्षांतील एकादशीचे दिवसीं नदीच्या तीरी, देवालय इत्यादिक पवित्रस्थानीं नारायणबलि करावा. तिथि, वार इत्या- दिकांचा उच्चार केल्यानंतर, “मदीयकुलाभिवृद्धिप्रतिबंधकप्रेतस्य प्रेतस्वानिवृत्त्यर्थं नारायण बालें करिष्ये” असा संकल्प करून यथाविधि दोन कुंभांची स्थापना करून त्या दोन कळशांवर सुवर्ण इत्यादिकांच्या दोन प्रतिमा ठेऊन सांच्यावर विष्णु, वैवस्वत, यम यांचें आवाहन करून पुढेसूक्तानें विष्णुची व “यमाय स्तोमं” ह्या मंत्रानें यमाची

असी षोडशोपचारपूजा करावी. एथे कोणी पांच कलशांचे ठिकाणी ब्रह्मा, विष्णु, शिव, यम आणि प्रेत यांची पूजा करितात. कलशाच्या पूर्वभागी रेखा करून दक्षिणदिशेला अग्ने केलेले अशा दर्भावर “शुधंतां विष्णुरूपी प्रेतः” असे ह्मणून दहा जागी, उत्तरकडून आरंभ करून दक्षिणसंस्थ असे उदक देऊन मध, तूप, आणि तिळ यांहीं युक्त असे दहा पिंड “काश्यपगोत्र देवदत्त प्रेत विष्णुदैवत अयं ते पिंडः” असा उच्चार करून दक्षिणदिशेला संमुख होताता अपसव्य करून व डावा गुटगा खाली करून पितृतीर्थाने पिंड द्यावा. गंधादिकांनीं पुजा करून पिंडांचे प्रवाहण पर्यंत कर्म करून विसर्जन करावें. त्याच रात्रीमध्ये “श्वः करिष्यमाणश्राद्धे क्षणः क्रियतां” असा उच्चार करून एक, तीन, अथवा पांच ब्राह्मणांला आमंत्रण करून उपोषित होताता जागरण करावें. नंतर दुसऱ्या दिवसीं मध्यान्हकालीं विष्णुची पूजा करून विष्णुरूपी जो प्रेत त्याच्या, किंवा विष्णु, ब्रह्मा, शिव, यम, प्रेत यांच्या उद्देशेकरून एकोद्दिष्टविधीनें पादप्रक्षालनापासून तृप्तिप्रश्नपर्यंत कर्म करून रेखाकरणापासून उदकदाना पर्यंत मंत्ररहित कर्म करून “विष्णवे ब्रह्मणे शिवाय सपरिवारयमाय ” असा उच्चार करून चार पिंड नामंवांनीं देऊन विष्णुरूप प्रेतांचे ध्यान करीत होताता “काश्यपगोत्र देवदत्त विष्णुरूप प्रेत अयं ते पिंडः ” असे ह्मणून पांचवा पिंड देऊन पूजा इत्यादि पिंड प्रवाहणांत कर्म करून ब्राह्मणांनीं आचमन केल्यानंतर त्यांला दक्षिणा इत्यादिक देऊन त्यांचा संतोष करावा. नंतर त्या ब्राह्मणांतून एका गुणवान् अशा ब्राह्मणाला प्रेताच्या बुद्धीनें वस्त्रे, अलंकार इत्यादिक देऊन ब्राह्मणांला सांगावें कीं, तुम्ही प्रेताला तिलोदकाची अंजलि द्यावी. मग त्या ब्राह्मणाने हातांत दर्भाचें पावित्रक धारण करून तिळ, दर्भ, तुळसी, यांहीं युक्त असी तिलांजलि घेउन “प्रेताय काश्यपगोत्राय विष्णुरूपिणे अयं तिलांजलिः” असे ह्मणून द्यावी. नंतर ब्राह्मणांकडून बोलवावें, तें असे— “अनेन नारायणबलि कर्मणा भगवान् विष्णुरिमं देवदत्तं प्रेतं शुद्धमपापमहं करोतु. ” तदनंतर विसर्जन करून स्नान करून भोजन करावें. निर्णयसिधु मध्ये तर पांच कुंभांचे ठिकाणीं विष्णु, ब्रह्मा, शिव, यम, प्रेत ह्या पांच देवतांची पूजा करावी. सुवर्ण, रूपें, तांत्रे लोखंड यांच्या चार प्रतिमा, व प्रेत दर्भमय करावा. अग्नीची स्थापना करून सावर चरु शिजवून पुरुषसूक्ताच्या सोळा ऋचांनीं नारायणाच्या उद्देशाने हवन करून दहा पिंड दिल्यानंतर पुरुषसूक्ताने अभि-मंत्रित अशा शालोदकेकरून दरएक ऋचेनें प्रेतांचे तर्पण करावें. विष्णु इत्यादिक चार देवतांला बलि द्यावा. दुसऱ्या दिवसीं “एकोद्दिष्टविधिनाश्राद्धपंचकं करिष्ये” असा संकल्प करून पांच ब्राह्मणांची पाद्यादिक पूजा करून पिंडदानपर्यंत कर्म झाल्यानंतर तर्पण करावें; असा विशेषविधि सांगितला आहे. शेष राहिले तें पूर्वीप्रमाणे करावें.

आतां नागबलीचा विधि सांगतो.

नागबलि करणें तो अमावास्या, पौर्णिमा, पंचमी अथवा आश्लेषायुक्त नवमी यांतून कोणत्याहि दिवसीं करावा. तो असा, — ब्राह्मणांच्या सभेला प्रदक्षिणा करून नमस्कार करावा. नंतर त्या सभेच्या पुढें, १ गाई व १ बैल यांची किंमत ठेवून प्रार्थना करावी, ती अशी — “स्त्रियेसहवर्तमान अशा ह्या माझ्या जन्मामध्ये अथवा पूर्वजन्मामध्ये झालेला जो सर्पवधाचा दोष त्याचा परिहार व्हावा एतदर्थ तुम्ही मला प्रायश्चित्त सांगावें. तुम्ही सर्व, धर्माचा विचार करणारे आहां इत्यादिक” अशी प्रार्थना केल्यानंतर “ब्राह्मणांनीं पूर्वांग व उत्तरांग यांहीं युक्त व अमुक प्रत्याम्नायद्वारे असें चवदा कृच्छ्रांचें पूर्वांत रांगसहित प्रायश्चित्त घेतल्यानें तुम्ही शुद्धि होईल असें सांगावें.” याप्रमाणें सांगितल्यानंतर यजमानानें देश, काल यांचा उच्चार करून “पर्षदुपदिष्टं चतुर्दशकृच्छ्रप्रायश्चित्तं अमुकप्रत्याम्नायेनाहमाचरिष्ये,” असा संकल्प करून क्षीर इत्यादिक विधिपूर्वक प्रायश्चित्त करावें. क्षीर न केलें असतां दुग्ध असा (२८) कृच्छ्रांचा प्रत्याम्नाय करावा. नंतर सर्पवधाचा दोष दूर होण्याकरितां लोहदंडाचे दान करावें. तें असें, “सर्पवधदोषपरिहारार्थमिमं लोहदंडं सदक्षिणं तुभ्यमहं संप्रददे.” याप्रमाणें दान करून नंतर गुरूची आज्ञा घेऊन गहूं, तांदुळ, किंवा तीळ यांतून कोणत्याहि पिठाचा सर्प करून तो सुपाव ठेवावा. नंतर त्या सर्पाची प्रार्थना करावी. प्रार्थनेचा मंत्र, — “ऐह पूर्वमृतः सर्प अस्मिन्पिष्टे समाविश ॥ संस्कारार्थमहं भक्त्या प्रार्थयामि समाहितः” नंतर आवाहन इत्यादिक सोळा उपचारांनीं त्या सर्पाची पूजा करून नमस्कार करावा व त्याला बलि द्यावा. तो असा, — “भो सर्प इमं बलि गृहाण ममाभ्युदयं कुरु,” याप्रमाणें बलि देऊन हात पाय धुवून आचमन करावें. नंतर देशकाल यांचा उच्चार करून संकल्प करावा. तो असा, — “सभार्यस्य ममेहजन्मजन्मांतरेवा ज्ञानादज्ञानाद्वा जातसर्पवधोऽयदोषपरिहारार्थं सर्पसंस्कारकर्म करिष्ये,” असा संकल्प करून स्थंडिलाचे ठिकाणीं अग्नीची स्थापना करून ध्यान करून अन्वाधानाचा संकल्प करावा. तो असा, — “अस्मिन्सर्पसंस्कारहोमकर्मणी देवतापरिग्रहार्थमन्वाधानं करिष्ये चक्षुषी आज्येनेत्यंते अग्नी अग्नि वायुं सूर्यं आज्येन सर्प-मुत्ते प्रजापतिमाज्येन आज्यशेषेण सर्पं सद्यो यक्ष्ये,” असा संकल्प अन्वाधान केल्या नंतर, दोन सामिधा अग्नीचे ठिकाणीं हवन केल्या नंतर अग्नीच्या आग्नेय दिशेचे ठिकाणीं भूमि प्रोक्षण करून तेथें चिता करावी. नंतर अग्नि व चिता यांला परिस्रूम हन (एक प्रकारचा उदकसंस्कार) करून आग्नेय दिशेला अग्नें करून दर्भाची परिस्ररणें घालावी. नंतर पर्युक्षण [उदकसंस्कार] करून सहा पात्रें मांडून चक्षुषीहोम

पर्यंत कर्म करून सर्पाला चितेवर ठेवावा, नंतर उदक व कर्ण यांला स्पर्श करून अग्निमध्ये होम करावा. तो असा,— “ भूः स्वाहा अग्नये इदं न मम, ” इत्यादिक तीन व्याहृतिमंत्रांनी तीन घृताच्या आहुतींनी होम करून नंतर समस्त व्याहृतिमंत्रांनी चवथी आहुति सर्पाच्या मुखाचे ठिकाणी द्यावी. बाकी राहिलेले घृतशेष लुवा पात्रांत घेऊन सर्पावर घालावे. एथे स्विष्टकृतादिक होमशेष नाही. च्यमस पात्रांत उदक घेऊन त्या उदकाने, समस्त व्याहृतिमंत्र झणून हाताने तो सर्प धुवावा. नंतर तो चितेवर ठेवून खाला अग्नि द्यावा, अग्नि देण्याचा मंत्र,— “ अग्ने रक्षाणो वसिष्ठोऽग्निर्गो यत्री ॥ सर्पायाम्निदाने विनियोगः ॥ अग्ने रक्षाणो अंहस० ऋक्, ” याप्रमाणे अग्नि दिल्या नंतर त्या सर्पाची प्रार्थना करावी, प्रार्थनेचे मंत्र,— “ नमोऽस्तु सर्पेभ्यो ये केच पृथिवी मनु ॥ ये अंतर्गिषे ये दिवि तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ॥ ये दारोचने दिवो येवा सूर्यस्य राशिमधु ॥ येषामप्सु सदस्कृतं तेभ्यः० ॥ या इषको यातुधानानां येवा ननस्पतिरनु ॥ येवा वटेषु शेरते तेभ्यः० ॥ त्राहि त्राहि महामोगिन् सर्पोपद्रवदुःखतः ॥ संततिं देहि मे पुण्यां निर्दुष्टां दीर्घदेहिनीं ॥ प्रपन्नं पाहि मां भक्त्या कृपालो दीनवत्सल ॥ ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि कृतः सर्पवधो मया ॥ जन्मांतरे तथैतस्मिन् मत्पूर्वैरथवा विभो ॥ तत्पापं नाशय क्षिप्रमप राधं क्षमस्व मे, ” असी सर्पाची प्रार्थना करून नंतर स्नान करावे. त्या नंतर दूध व तूप घेऊन व्याहृतिमंत्रांनी अग्नीचे प्रोक्षण करून सर्प दग्ध झाल्या नंतर उदकाने अग्नि विश्वावा. “ सर्पांचे सर्व संस्कारकर्म सव्यानेच करावे. अस्थींचे संचयन करू नये, व स्नान करून आचमन करून घरी जावे. ” स्त्रियेसहवर्तमान कर्त्याने त्रिरात्र आशीच धरून ब्रह्मचर्य धारण करावे. चवथ्या दिवशी वस्त्रांसहित स्नान करून तूप, क्षीर, त इतर भक्ष्य पदार्थ याही करून आठ ब्राह्मणांला भोजन घालावे. ते असे— “ सर्पस्वरूपिणे ब्राह्मणाय इदं ते पाद्यं ॥ अनंतस्वरूपिणे० शेषस्वरूपिणे० कपिलस्वरूपिणे० ॥ नागस्वरूपिणे० कालिकस्वरूपिणे० शंखपालस्वरूपिणे० भूधरस्वरूपिणे० ” या प्रमाणे आठ ब्राह्मणांला पाद्य देऊन नंतर आपले पाय धुवून आचमन करावे. नंतर आसन द्यावे. ते असे,— “ सर्पस्वरूपिणे ब्राह्मणाय इदमासनं आस्यतां. ” याप्रमाणे अर्न सादिक जे सात खालाहि आसन द्यावे. तदनंतर क्षण द्यावा. तो असा,— “ सर्पस्थानेक्षणः क्रियतां इत्यादि ओं तथा प्रामोतु भवान् प्रामुवानि ” “ भो सर्परूप इदं ते गंधं. ” या प्रमाणे अनंतादिक जे खालाहि क्षण, गंध द्यावे. याप्रमाणे पुष्प, धूप, दीप, वस्त्र इत्यादिक उपचार देऊन पात्रे मांडून खंवर सर्व पदार्थ वाटून पात्रे प्रोक्षण करून अन्नअर्पण करावे. ते असे,— “ सर्पाय इदमन्नं परिविष्टं परिविष्टमाणं च दत्तं च दास्यमानं चातृषेरमृतं पेण स्वाहा संपद्यतां नमम. ” याप्रमाणे अनंतादिक जे खालाहि अलाचे निवेदन

करावें. नंतर ब्राह्मणभोजन करून आचमन केल्यावर बलिदान करावें. तें असें, —
 “ भो सर्व अयं ते बालेः इत्यादि.” याप्रमाणें नाममंत्रांनी बलिदान करावें, व त्या पिंडांची ब्रह्मादिक उपचारांनी पूजा करावी. हेंहि सर्व कर्म सव्यानेच करावें. नंतर ब्राह्मणांला विडा, दक्षिणा इत्यादिक देऊन आचार्यांची पूजा करावी, आणि कलशाचे ठिकाणीं सुवर्णाच्या नागाची स्थापना करून आवाहनादिक सोळा उपचारांनीं पूजा करून प्रार्थना करावी. प्रार्थनेचे मंत्र “ ब्रह्मलोकेच ये सर्पाः शेषनागपुरोगमाः ॥ नमोस्तु तेभ्यः सुप्रिताः प्रसन्नाः संतु ते सदा ॥ विष्णुलोकेच ये सर्पा वसुकिप्रमुखाश्च ये ॥ नमोस्तु ते ॥ रुद्रलोकेच ये सर्पास्तक्षकप्रमुखास्तथा ॥ नमोस्तु ॥ खांडवस्य तथा दाहे स्वर्गं येच समाश्रिताः ॥ नमोस्तु ॥ सर्पसत्रेच ये सर्पा आस्तिकेनच रक्षिताः ॥ नमोस्तु ॥ मलये चैव ये सर्पाः कर्कोटप्रमुखाश्च ये ॥ नमोस्तु ॥ धर्मलोकेच ये सर्पा वैतरण्या समाश्रिताः ॥ नमोस्तु ॥ ये सर्पाः पार्वतीयेषु दरीसंधेषु संस्थिताः ॥ नमोस्तु ॥ ग्रामे वा यदि वारुष्ये ये सर्पाः प्रचरंतिहे ॥ नमो ॥ पृथिव्यांचैव ये सर्पा ये सर्पा बलिसंस्थिताः ॥ नमो ॥ रसातलेच ये सर्पा अनंताद्या महांबलाः ॥ नमो ॥” याप्रमाणें प्रार्थना केल्यानंतर देश कालांचें संकीर्तन करून कलशावर स्थापित केलेल्या नागाचें दान करण्याचा संकल्प करून दान करावें. तें असें, — “कृतस्य कर्मणः सांगतार्थं इमं हैमनागं सकलशं सवस्त्रंसदक्षिणं तुभ्य महं संप्रददे नमम ॥ अनेन स्वर्णनागदानेन अनंतादयो नागदेवताः प्रीयंतां.” याप्रमाणें दान करून आचार्यांला गाईचें दान करून कर्म समाप्त करावें. तें असें, — “यस्यस्मृश्याच ॥ मया कृतं सर्पसंस्काराख्यकर्म तद्भवतां विप्राणां वचनात्परमेश्वरप्रसादात् सर्वं परिपूर्णं मस्तु,” याप्रमाणें कर्म समाप्तीचे वाक्याचा उच्चार केल्या नंतर ब्राह्मणांनीं “तथास्तु” असें बोलवें. मग ब्राह्मणांचा संतोष करावा, व कर्माच्या सांगते करितां ब्राह्मणांला भोजन द्यावें—“ह्या विधीनें सर्पांचा संस्कार केल्या असता निरोगी होऊंसाता त्वरित उत्तम संतति पावतो.” अशांनेंही पुत्रोत्पत्ति न होईल तर, कर्मविपाक ग्रंथांमध्ये सांगितल्या प्रमाणें हरिवंशग्रंथाचें श्रवण इत्यादिक विधि करावा. तो विधि — पडवद (सहा वर्षे,) चतुरवद [चार वर्षे,] त्र्यवद (तीन वर्षे,) सार्धवद [दीडवर्षे] अथवा अब्द (एकवर्षे) असें प्रायश्चित्त करून नंतर करावा.

आतां कृच्छ्रांचीं लक्षणें सांगतां.

तीस कृच्छ्र ह्मणजे एक अब्द; एककृच्छ्र बारा दिवसांनीं साध्य होतो. ती असा, — पहिल्या दिवसीं मध्यान्हकालीं एकावेळ हविष्यान्नाचे सवीस ग्रास भक्षण करावे, दुसऱ्या दिवसीं नक्त करावें, व त्रामध्ये वेवीस ग्रास भक्षण करावे, तिसऱ्या दिवसीं कोणाजवळ

पाचना केल्यावांचून जें अन्न मिळेल त्याचे चोवीस ग्रास भक्षण करावे, आणि चवथ्या दिवसी उपोषण करावे, याला पादकृच्छ्र ह्मणतात. हा तिप्पट केला ह्मणजे तो प्राजापयकृच्छ्र होतो. पहिल्या दिवसी दोन प्रहरीं एकवेळ भोजन, दुसऱ्या दिवसी नक्तभोजन, तिसरा व चवथा या दोन दिवसी अयाचित भोजन, पांचवा व सहावा या दोन दिवसी उपोषण, याला अर्धकृच्छ्र असें ह्मणतात. अथवा तीन दिवस अयाचित भोजन, तीन दिवस उपोषण, यालाहि अर्धकृच्छ्र असें ह्मणतात. पहिल्या दिवसी एकवेळ दोन प्रहरीं भोजन, दुसऱ्या दिवसी अयाचित, तिसऱ्या दिवसी उपोषण; याप्रमाणें तिप्पट केल्यानें पादोनकृच्छ्र होतो. ज्या नवव्या दिवसांत भोजन करण्याचा प्रसंग येतो तेथें ग्रास नियम सोडून हातांत राहिल इतक्या अन्नाचें भोजन करणें त्याला अतिकृच्छ्र असें ह्मणतात. प्राण मात्र वांचतांल इतक्यापुरतें अथवा एकग्रासपरिमित दूध एकवीस दिवसपर्यंत पिणें याला कृच्छ्रातिकृच्छ्र असें ह्मणतात. एक दिवस कुशोदकमिश्र पंचगव्य पिउन एक दिवस उपोषण करणें असा हा दोन रात्रींनीं होणारा, याला सांतपनकृच्छ्र असें ह्मणतात. पहिल्या दिवसी गोमूत्रप्राशन, दुसऱ्या दिवसी गोमय, तिसऱ्या दिवसी दूध, चवथ्या दिवसी दही, पांचव्या दिवसी तूप, सहाव्या दिवसी कुशोदक, सातव्या दिवसी उपोषण, याप्रमाणें सात दिवसांनीं होणारा, याला महासांतपन ह्मणतात. तीन दिवसपर्यंत नुस्तें पंचगव्य प्राशन करावें, याला यतिसांतपन ह्मणतात. पहिले तीन दिवसपर्यंत ऊष्ण दूध प्यावें, चवथ्या दिवसापासून तीन दिवस ऊष्ण तूप प्यावें, सातव्या दिवसापासून तीन दिवस ऊष्णोदक प्यावें, व नंतर तीन दिवस उपोषण करावें, याला तप्तकृच्छ्र असें ह्मणतात. दूध, तूप, व उदक हीं पूर्वीं सांगितल्याप्रमाणें थंड करून प्राशन केलीं असतां त्याला शीतकृच्छ्र असें ह्मणतात. अथवा तापवलेलीं अशीं दूध, तूप, उदक यांतून दररोज एकेक प्राशन करावें, व चवथ्या दिवसी उपोषण करावें, असा हा चार दिवसांनीं होणारा, याला तप्तकृच्छ्र असें ह्मणतात. बारा दिवसपर्यंत उपोषण करावें त्याला पराकृच्छ्र असें ह्मणतात. शुक्लपक्षामध्ये प्रतिपदा इत्यादिक तिथींचे ठिकाणीं भोराच्या अंज्याप्रमाण असा एकेक ग्रास दररोज वाढवीत आणून पूर्णिमेचे दिवसी पंधरा ग्रास भक्षण करावे. तिथीचा क्षय असल्यास चवदा ग्रास, तिथीची वृद्धि असल्यास सोळा ग्रास होतात. याप्रमाणें कृष्णपक्षांत दररोज एकेक ग्रास कमी करावा व अमवास्थेचे दिवसी उपोषण करावें, याप्रमाणें एक महिन्यानें होणारें, याला यवमध्यचांद्रायण असें ह्मणतात. कृष्णपक्षामध्ये प्रतिपदेचे दिवसी चवदा ग्रास भक्षण करून द्वितीयेपासून एकेक कमी करावा व अमावास्थेचे

दिवसीं उपोषण करून शुक्लपक्षामध्ये दररोज एकेक ग्रासाची वृद्धि करावी, याप्रमाणें कृष्णपक्षापासून आरंभ करून शुक्लपक्षां समाप्त करणें, याला पिपीलिकामध्यचांद्रायण असें लक्षणतात. कृच्छ्रांचांद्रायण इत्यादिकांमध्ये तीन वेळ ज्ञान करणें, ग्रासांचें अभि-
संत्रण करणें इत्यादिक विधियुक्त प्रयोग प्रायश्चित्तग्रंथीं पाहावा. अतिकृच्छ्र इत्यादि-
कांचें लक्षण येथें प्रासंगिक सांगितलें आहे. अब्दांची संख्या करणें तीं तर प्राजापत्य-
कृच्छ्रांवरूनच करावी.

आतां कृच्छ्रांचे प्रतिनिधि सांगतां.

आमध्यें प्राजापत्याचे प्रतिनिधि—दहा सहस्र गायत्रीमंत्राचा जप करावा. गायत्रीमंत्रानें एक हजार तिळांचा होम करावा. क्वचित् ग्रंथीं व्याहृतिमंत्रानें एक हजार तिलहोम करावा असें सांगितलें आहे. दोनशें प्राणायाम करावे. बारा ब्राह्मणाला भोजन द्यावें. तीर्थांचे ठिकाणीं ज्ञान करून केश वाळत तेथपर्यंत थांबून पुनः ज्ञान करावें, असीं बारा ज्ञानें करावीं. वेदाच्या संहितेचें पारायण करावें. चार कोशांपर्यंत तीर्थयात्रा करावी. बारा हजार नमस्कार घालावे. एकशें वर्त्तस प्राणायाम करून अहोरात्र उपोषित होतःसाता पूर्वे दिशेला संमुख उभें राहावें. गोमूत्राबरोबर यव, जव भक्षण केले असतां एक दिवसांत कृच्छ्र होतो. कोणीएक ग्रंथकार रुद्राच्या एकादाशिनीचा जप केल्याने कृच्छ्र होतो असें सांगतो. पावकेष्टि करावी. पावमानेष्टि करावी. सहा उपोषणें हे प्रत्येक प्राजापत्याचे प्रतिनिधि होत. एका ब्राह्मणाला भोजन देणें, हा उपोषणाचा प्रतिनिधि होय. अति असामर्थ्य असेल तर एक हजार गायत्रीमंत्राचा जप करावा, अथवा बारा प्राणायाम करावे असें स्मृत्यर्थसारग्रंथीं सांगितलें आहे. “जर प्राजापत्यकृच्छ्र करण्यास अशक्त असेल तर त्यानें पुष्कळ दूध देणारी असीं गाई द्यावी. गाई नसेल तर निष्कपरिमित, अर्धनिष्क अथवा निष्काचा चतुर्थांश द्रव्य द्यावें” ऐशी गुंजा क्षणजे एक कर्प होतो. चार कर्प क्षणजे एक निष्क होतो. निष्क; अर्धा निष्क, किंवा निष्काचा चतुर्थांश यांतून कोणत्याहि प्रमा-
णानें सुवर्ण किंवा रूपें असीं गाईची किंमत द्यावी. अति अशक्त असेल त्यानें निष्काचा आठवा हिंसा रूपें किंवा तितक्या किमतीचें धान्य इत्यादिक द्यावें. अतिकृच्छ्राचे स्थानीं दोन गाई द्याव्या. सांतपनाचे स्थानीं दोन गाई. पराक व तप्तकृच्छ्र यांचे स्थानीं तीन तीन गाई द्याव्या. कृच्छ्रातिकृच्छ्रांचे स्थानीं चार किंवा तीन गाई द्याव्या. चांद्रायणाचे स्थानीं आठ, पांच, चार अथवा तीन अशा गाई द्याव्या. मासपर्यंत उदक प्राशन करणें, जव भक्षण करणें व मासपर्यंत उपोषणें करणें, यांचे स्थानीं पांच पांच गाई द्याव्या. मासपर्यंत गोमूत्राबरोबर यव भक्षण करणे ह्या व्रताचे स्थानीं सहा गाई द्याव्या.

आतां प्रायश्चित्ताचा प्रयोग

ब्रह्मासहवर्तमान खान करून, सशक्त असेल तर ओलें वस्त्र धारण केला होत्साता ब्राह्मणांच्या सभेपुढें एक गाई व बैल यांचा प्रतिनिधि असा निष्क इत्यादि परिमित ब्रह्म दंड ठेवून साष्टांग नमस्कार करून सभेला प्रदक्षिणा करून ब्राह्मणांची प्रार्थना करावी. प्रार्थनेचे मंत्र, — “सर्वे धर्मविवेक्तारो गोप्तारः सकला द्विजाः ॥ मम देहस्य संशुद्धिं कुर्वंतु द्विजसत्तमाः ॥ मया कृतं महाघोरं ज्ञातमज्ञातकिल्बिषं ॥ प्रसादःक्रियतां मद्यं शुभानुज्ञां प्रयच्छथ ॥ पूज्यैः कृतपवित्रोहं भवेयं द्विजसत्तमाः” “मामनुगृहंतु भवंत इति वदेत्” अर्थ — याप्रमाणें ब्राह्मणांची प्रार्थना केल्यावर, तुम्ही मजवर अनुग्रह करा, असें बोलावें. “विप्रैः किं ते कार्यं मिथ्या मावादीःसत्यमेव वदेतिपृष्टःस्वपापं ख्यापयेत्” अर्थ — कोणतें तुझें कार्य आहे ? खोटें बोलूं नको, खरेंच बोल, असे ब्राह्मणांनीं विचारिलें होत्साता त्यानें आपलें पाप सांगावें; तें असें, — “मया ममपत्न्या वा इहजन्मनिजन्मांतरेवा अनपत्यत्वमृता पत्यत्वादिनिदानभूतबालघात विप्ररत्नापहारादि दुरितं कृतं तस्य नाशाय करिष्यमाणे हरिवंशश्रवणमदौ कर्मविपाकोक्ते विधाने ऽधिकारार्थं दीर्घायुष्मत्पुत्रादिसंततिप्राप्तये प्रायश्चित्तमुपदिशतु भवंतः” अर्थ — मी किंवा माझ्या पत्नीनें, ह्या जन्मीं अथवा अन्यजन्मीं वांशपणा, मृतवांशपणा यांला कारणभूत असें बालहत्या, ब्राह्मणाच्या रत्नांचा अपहार इत्यादिक पातक केलें त्याचा नाश व्हावा याकरितां करावयाचें असें कर्मविपाकांत सांगितलेलें जें हरिवंशग्रंथांचें श्रवण इत्यादिक विधि त्याचा अधिकार प्राप्त होऊन दीर्घायु असी पुत्र इत्यादिक संतति प्राप्त होण्याकरितां प्रायश्चित्त तुम्ही मला सांगावें) असी प्रार्थना केल्यानंतर त्या ब्राह्मणांनीं, पाप्यानें पूजा केलेला असा जो अनुवादक त्याच्या जवळ, “षडब्दत्र्यब्दसार्धाब्दान्यतमप्रायश्चित्तेन पूर्वोत्तरांगसहितेनःचरितेन तव शुद्धिर्भविष्यति तेनत्वं कृतार्थो भविष्यसि” (अर्थ — सहा अब्द, तीन अब्द, दहा अब्द यांतून कोण- तेंहि प्रायश्चित्त पूर्वोत्तरांगसहित असें घेतल्यानें तुझी शुद्धि होऊन तूं कृतकार्य होशील) असें बोलावें. अनुवादकानें पापी याच्याजवळ सांगावें. तदनंतर प्रायश्चित्तकर्त्तानें “ओं” (वरें आहे) असें झणून अनुवादकानें सांगितले त्याचा अंगीकार करावा, व सभेचें विसर्जन करून देशकालांचा उच्चार करून संकल्प करावा. तो असा, — “सभार्यस्य ममैत ज्जन्मजन्मांतराजितानपत्यत्वादिनिदानभूतबालघात विप्ररत्नापहारादिजन्मदुरितसमूलनाश कर्मविपाकोक्तेविधानाधिकारसिद्धिद्वारा दीर्घायुष्मद्बहुपुत्रादिसंततिप्राप्तये षडब्दं त्र्यब्दं सार्धाब्दं वा प्रायश्चित्तं पूर्वोत्तरांगसहितममुकप्रत्याम्नायेनाहमाचरिष्ये,” असा संकल्प करून दोन प्रहरां क्षौर करून खान करावें. नंतर वनस्पतीची प्रार्थना करावी. प्रार्थनामंत्र, —

“आयुर्वेळं यशो वचैः प्रजाः पशुवसानेच ॥ ब्रह्मप्रज्ञांच मेधांच त्वं नो देहि वनस्पते, ” याप्रमाणे प्रार्थना करून विहित काष्ठाने दंतधावन करावे. तदनंतर दहा ज्ञाने करावी. सां मध्ये प्रथम भस्मेकरून ज्ञान करावे; ते असे,—(भस्म हातीं घेऊन) “ईशानाय नमः” या मंत्राने मस्तकाला भस्म लावावे. “तत्पुरुषाय नमः” या मंत्राने मुताला “अघोराय नमः” याने हृदयाला, “वामदेवाय नमः” ह्या मंत्राने गुह्यस्थानी, “सद्योजाताय नमः” या मंत्राने पायांला, प्रणवमंत्राने सर्व अंगांला भस्म लावावे. अथवा ईशानादि पदांनी युक्त जे मंत्र यादीं करून भस्म लावावे. नंतर ज्ञान करून आचमन करावे.

आतां गोमयस्नान.

गोमय घेऊन प्रणवमंत्राने गोमयाचा दाक्षिणभाग चार दिशांचे ठिकाणीं टाकावा, व उत्तरभाग तीर्थांत टाकून बाकी राहिलेले गोमय “मानस्तोके०” या मंत्राने अभिमंत्रण करून “गंधद्वारां०” या मंत्राने गोमय सर्व शरीराला लावावे. नंतर “हिरण्यशृंगां !” ह्या दोन मंत्रांनी तीर्थाची प्रार्थना करून “याःप्रवत०” ह्या मंत्राने तीर्थांला स्पर्श करून ज्ञान करून दोन वेळ आचमन करावे.

आतां मृत्तिकास्नान.

“अश्वक्रांते रथक्रांते विष्णुक्रांते वसुंधरे ॥ शिरसा धारयिष्यामि रक्षस्व मां पदे पदे” ह्या मंत्राने मृत्तिकेचे अभिमंत्रण करून, “उद्भुतासि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना ॥ मृत्तिके हर मे पापं यन्मया दुष्कृतं कृतं” या मंत्राने मृत्तिका घेऊन “नमोमंत्रस्य०” या मंत्राने सूर्याला दाखवावी. नंतर “गंधद्वारां०” ह्या मंत्राने, किंवा “स्योनाश्रयिणी०” ह्या मंत्राने अथवा “इदंविष्णु०” ह्या मंत्राने मस्तकादि सर्व अंगांला मृत्तिका लावून ज्ञान करून दोन वेळ आचमन करावे.

उदकाचे स्नान.

“आपो अस्मान्०” हा मंत्र लहून सूर्याच्या समोर उभा राहात होत्साता, “इदं-विष्णु०” या मंत्राचा जप करून उदकाच्या प्रवाहाभिमुख बुडी मारावी. तदनंतर पंच-गव्य व कुशोदक यांचीं निरनिराळीं ज्ञाने करून ज्ञानसंबंधी तर्पण इत्यादिक करावे. नंतर विष्णुश्राद्ध व पूर्वांगसंबंधी गोप्रदान हीं करून अग्नीची स्थापना करून पंचगव्यांचा होम, व्याहृतिमंत्रांनी १०८ अथवा २८ असा घृताचा होम करून, “व्रतं ग्रहीष्ये,” (व्रत घेतों) असी ब्राह्मणांची प्रार्थना करून बाकी उरलेले पंचगव्य प्रणवमंत्राने पाशन करावे.

मुख्य प्रायश्चिताचे कट्टू संकल्पाप्रमाणे करून व्याहृतिमंत्राने घृताचा होम, विष्णु-

आह, आणि गाईचे दान ही पूर्वीप्रमाणे करावी. घृताचा होम व पंचगव्याचा होम यांचे ठिकाणी इध्मास्थापना इत्यादिक त्यालीपाकाचा विधि नको असे कोणी ग्रंथकार लणतात. व्याहृतिमंत्रेकरून जो घृताचा होम जाचे ठिकाणी पापाचा नाश करणारा महा विष्णु देवता असे कोणी ग्रंथकार लणतात.

पंचगव्याचा विधि.

तांब्याचे पात्र किंवा पळसाचा ऋण वेऊन त्यांत पुढे सांगिल्याप्रमाणे पदार्थ घालावे. ते असे,—तांबड्या वर्णाच्या गाईचे गौमूत्र आठ मासे गायत्रीमंत्राने घालावे. श्वेत गाईचे गोमय सोळा मासे “गंधद्वारा०” या मंत्राने घालावे. पिवळ्या वर्णाच्या गाईचे दूध बारा मासे “आप्यायस्व०” ह्या मंत्राने घालावे. निळ्या गाईचे दही दहा मासे “दाधि कावण०” ह्या मंत्राने घालावे. काळ्या गाईचे तूप आठ मासे “तेजोसिशुकुमसि०” ह्या मंत्राने घालावे, व “देवस्यत्वा०” ह्या मंत्राने चार मासे कुशोदक घालून प्राणवमंत्राने ढवळावे. एथे पांच गुज्रांचा मासा धरावा. असे पंचगव्य करून साग्र असे सात दर्भ घेऊन त्यांहीकरून त्या पंचगव्याचा होम करावा. त्याचे अन्वाधान असे—“श्राव-
ताति पृथ्वीं. इदंविष्णुरिति विष्णु मानस्तोकेति रुद्रं शत्रोदेवोत्पःब्रह्मजज्ञानामिति ब्रह्मा
णं वा अग्नि सोमंच नाग्ना गायत्र्या सूर्यं प्रजापतेनःवेति समस्तव्याहृतिभिर्वा प्रजापतिं प्रण-
वेन प्रजापतिं अग्निं श्विष्टकृतंच नाग्नेयेताः पंचगव्येन अग्निं वायुं सूर्यं प्रजापतिंचेतिवा महा
विष्णुं वाग्नेनाष्टाविंशतिसंख्याहुतिभिः०” याप्रमाणे अन्वाधान करून तदनुसार होम करावा,
स्त्रिया, शूद्र यांनी होम करू नये. कोणी ग्रंथकार ब्राह्मणाकडून होम करवावा असे लण-
तात. स्त्रिया व शूद्र यांनी पंचगव्य प्राशन करावे किंवा न करावे असा महार्णव ग्रंथांत विकल्प
आहे. स्त्रिया व शूद्र यांनी ब्राह्मणांकडून पंचगव्य करवून मंत्रविरहित ते पंचगव्य प्राशन
करावे असे स्मृत्यनुसार ग्रंथांत आहे. हा प्रायश्चित्ताचा विधि रुच्छाहून कमी असा जी
प्रायश्चित्ते त्यांचे ठिकाणी करू नये, रुच्छ इत्यादिक जी सर्व प्रायश्चित्ते त्यांचे ठिकाणी
करावा.

हरिवंश ग्रंथश्रवण

याप्रमाणे रुच्छादिक प्रायश्चित्त करून सूर्यारुणसंवाद व महार्णव इत्यादिक जे कर्म
विपाकग्रंथ, आमध्ये सांगितले जे हरिवंश इत्यादिक ग्रंथांचे श्रवणादिक कर्म ते करावे.
हरिवंशादिक ग्रंथ श्रवण करणे तो चांगला दिवस पाहून त्या दिवसां देशकालांचा उच्चार
करून संकल्प करावा. तो असा—“अनेकजन्माजितानपत्यमृततापस्यत्वादिनिदानभूत

बालघातनिक्षेपहरणविप्ररक्षापहरणादिजन्यदुरितसमूलनाशद्वारा दीर्घायुष्मत्बहुपुत्रादिमंताति प्राप्तिकामो हरिवंशं श्रोष्यामि” असा एकटा श्रवण करणारा असेल तर, स्त्रीपुरुष दोघे श्रवण करणारी असल्यास “श्रोष्यावः” असा संकल्प करून गणेशपूजन, पुण्याहवाचन, नांदीश्राद्ध, वविनायकशांति इतकीं करून हरिवंशश्रवणाकरितां ब्राह्मण वराक.तो असा,— “हरिवंशश्रवणार्थं श्रावयितारं त्वां वृणे” याप्रमाणे ब्राह्मणाला वरून त्याची वस्त्र, अलंकार यांहीकरून पूजा करावी, व ग्रंथ वाचणाराला प्रतिदिवसीं पायस इत्यादिकानें भोजन घालावें. दंपतींनीं दररोज “त्वायंतां०” इत्यादिक वेदमंत्रांनीं व “सुरास्वा०” इत्यादिक पौराणमंत्रांनीं स्नान करून अलंकारयुक्त होऊन एकाप्रतेनें ग्रंथ श्रवण करीत होताते तैल, तांबूल, क्षौर, मैथुन, पलंगावर निद्रा करणे, इतके प्रकार ग्रंथाची समाप्ति होई ताव त्पर्यंत वर्ज्य करावे, आणि हविष्यान्न भोजन करावें. शेवटीं ग्रंथ वाचणाराला गाई, व शास्त्रीय मानानें तीन तोळे किंवा एक तोळा असी सुवर्ण दक्षिणा देऊन “प्रत्यबरोह०” या मंत्रानें तिळ व घृत यांचा हजार हजार होम करून शंभर ब्राह्मण किंवा चौवीस दंपती यांला खिरीचें भोजन घालावें. या प्रमाणें हरिवंशग्रंथाचे श्रवणाचा प्रयोग समाप्त झाला.

आतां दुसरे विधि.

“सोन्याचा बालक करून पाळण्या सहित खावें दान करावें. अथवा बैलाचें दान करावें. किंवा ब्राह्मणाचा विवाह करावा. महासद्राचा जप, किंवा शिवावर कमळांची लाखोली वहावी. सोन्याची सवत्स गाई करून तिचें दान करावें. अथवा प्रत्यक्ष सवत्स गाईचें यथाविधि दान करावें. किंवा घृतानें भरलेल्या कुंभाचें दान करावें. याप्रमाणें संक्षेपानें हें सांगितलें.” अथवा दररोज पार्थिवलिंगाची पूजा करून अभिलाषाष्टकस्तोत्राचा जप एक वर्षपर्यंत करावा. अभिलाषाष्टकस्तोत्र कौस्तुभांत सांगितलें आहे, तें पहावें. इतकेंहि करून संतति न होईल तर दत्तपुत्र ध्यावा.

दत्तकाविषयीं ग्राह्या ग्राह्य विचारः

ब्राह्मणांनीं दत्तक घेणें तो आपल्या सख्या बंधूचा पुत्र हा मुख्य असल्यामुळें तोच ध्यावा. तसा न मिळेल तर जो कोणी आपल्या गोत्राचा सपिंड असेल तो, अथवा सापत्यबंधूचा पुत्र ध्यावा. सांतला नसेल तर भिन्नगोत्रांतला असून सपिंड असा मातुल्लकुळांतला, किंवा पिताच्या भागिनी इत्यादिकांच्या कुळांतला ध्यावा. तसा न मिळेल तर असपिंड समानगोत्र असा ध्यावा. असपिंडसमानगोत्र असाहि न मिळेल तर, असपिंड असून निराख्या गोत्रांतलाहि ध्यावा. आपल्या गोत्रांतले नसून सपिंड असे

जे त्यांमध्ये बहिणीचा पुत्र व आपल्या कन्येचा पुत्र हे दत्तक घेऊं नयेत. याप्रमाणें विदग्धसंबंध होतो या योगानें पुत्र असें मनांत आणण्याला अयोग्य असा मानुळ तोहि घेऊं नये, व याकरितांच सगोत्र असून सपिंड असे जे त्यांतील आपला भाऊ किंवा चुलता हे घेऊं नयेत. ब्राह्मण इत्यादिक वर्णांनीं आपापल्या वर्णांतलाच घ्यावा. त्या मध्येहि देशभेदप्रयुक्त गुर्जरत्व, आंध्रत्व इत्यादिकेंकरून समान जातीचाच घ्यावा. कोणताहि दत्तक घेणें तो भ्रातृसहित असेल तोच घ्यावा. त्यांमध्येहि वडील पुत्र घेऊं न देऊं नये. शूद्रानें कन्येचा पुत्र, व बहिणीचा पुत्र हेहि दत्तक घ्यावे. याविषयीं मूळवचन,—“सोदर बंधूंमध्ये एकाला जर पुत्र असेल तर त्या पुत्रेंकरून सर्व बंधु पुत्रवान् होतात असें मनु सांगतो.” ह्या वचनेंकरून “पुत्ररहिताला स्वर्गलोक नाही” “उत्पन्न झालेला ब्राह्मण तीन ऋणांनीं (देव ऋषि पितृ ऋणांनीं) युक्त असतो” इत्यादिक शास्त्रानें सांगितलेला असा जो चुलत्यास अपुत्रत्वप्रयुक्त दोष त्याची निवृत्ति, विधिपूर्वक न घेतलेल्या सोदरबंधूच्या पुत्रानें होते, झणून भात्याचा पुत्र पुत्राप्रमाणेंच आहे यास्तव घेण्याला योग्य जे दत्तपुत्र त्यांमध्ये हा मुख्य आहे असें जाणावें, कारण मुख्य नसेल तर त्या स्थानीं त्यासारखा दुसरा योजावा, असा न्याय आहे. विधिपूर्वक घेतल्यावांचून ह्याच वाक्यावरून तो बंधूचा पुत्र आपला पुत्र होतो असें मानूं नये. पुत्र होतो असें मानलें तर औरस, दत्तक इत्यादिक जे बारा प्रकारचे पुत्र त्यांसारखा ह्या सोदर बंधूच्या पुत्राला स्त्रियेच्या पूर्वीच द्रव्य घेणें, पिंड देणें हे अधिकार प्राप्त झाल्यानें स्त्री, कन्या, आई, बाप, भाते, भ्रातृपुत्र, गोत्रज, आणि बंधु, पूर्वीच्या अभावीं पुढेचा असा जो क्रम सांगितला त्या वाक्यांत भात्यानंतर भ्रात्याच्या पुत्राचें जें ग्रहण केलें त्याची संगति होणार नाही. यावरून पत्नीच्या पूर्वी मला पिंड देणें व माझे द्रव्य घेणें याविषयीं कोणी अधिकारी असावा अशा इच्छेनें विधिपूर्वक घेतलेला तोच तसा अधिकारी होतो, एखादीं होत नाही. तसी इच्छा नसेल तर पितरांचे ऋणाचें दूरीकरण इत्यादिक परलोकसंबंधी कृत्याकरितां दत्तपुत्र घेऊं नये; कारण भात्याच्या पुत्रेंकरूनच पितृऋणाचे दूरीकरणाची सिद्धि होते, असें ह्या वचनाचें तात्पर्य जाणावें. कितीएक देशांत वैदिकविधी वांचूनहि पुत्र देणारा व घेणारा यांची संमति, व राजपुरुष इत्यादिकांची संमति इत्यादिक लौकिकव्यवहारानें, अथवा केवळ मींजी इत्यादिक संस्कार केल्यानें सगोत्र असून सपिंड असा जो पुत्र झाला आपला पुत्र असें मानून सर्व व्यवहार चालतो, असा आचार दृष्टीस पडतो, परंतु याविषयीं प्रमाण मिळत नाही. “एका पुरुषाच्या पुष्कळ स्त्रिया असून त्यांमध्ये एका स्त्रियेला पुत्र असेल तर त्या एका पुत्रानें त्या सर्व स्त्रिया पुत्रवती होतात असें मनु सांगतो” असें जें वचन तें तर सवतीचा पुत्र जरी विधिपूर्वक घेतलेला

नसेल तथापि आलाहि पुत्रत्व व पिंड देणे इत्यादिकांविषयी अधिकार उत्पन्न करणारे आहे, यावरून असे सिद्ध होते कीं एका सवतीला पुत्र असेल तर दुसऱ्या सवतीनें दत्त पुत्र घेऊं नये. “कन्येचा पुत्र, बहिणीचा पुत्र हे शूद्रांनीं दत्तक घ्यावे; ब्राह्मण, क्षत्रिय व वैश्य यांनीं बहिणीचा पुत्र व कन्येचा पुत्र हे कधीहि दत्तक घेऊं नयेत.” “एक पुत्र असेल तर तो निश्चयें दत्तक देऊं नये व घेऊंहि नये असे आहे, आणि ज्येष्ठ पुत्रहि दत्तक देऊं नये.” ह्या स्थलीं ज्याला औरस पुत्र अनेक असतील त्यानें दत्तपुत्र द्यावा असा विधि प्राप्त होतो; तथापि पूर्वी दत्तक पुत्र घेतला आणि त्यानंतर औरस पुत्र शाला अशा प्रकारच्या अनेकपुत्रवानाने एक दत्तक किंवा औरस पुत्र देऊं नये. पति विद्यमान आहे अशा स्त्रियेनें पतीची आज्ञा घेऊन पुत्र घ्यावा व द्यावा. पतीची आज्ञा नसेल तर घेऊं नये व देऊं नये. याप्रमाणें विधवास्त्रीनेंहि ‘तू दत्तक पुत्र घे’ असें पतीनें सांगून नंतर मृत झाला असेल तर घ्यावा. ‘पुत्र घे’ अशीस्पष्ट आज्ञा नसतां पति जीवित असून किंवा तो मृत झाल्यानंतर आतांच्या मुखांतून ‘दत्तक पुत्र घ्यावा’ असा पतीचा अभिप्राय जाणवणाऱ्या स्त्रियेनेंहि दत्तपुत्र घ्यावा असें सर्व संमत आहे. ह्या वर सांगितलेल्या दोन प्रकारांतून कोणतीहि आज्ञा नसेल तथापी नियंत्रते व काम्यत्रते इत्यादिक धर्म आचरण करण्याविषयी जसा त्या त्या शास्त्रेकरून अधिकार आहे तसा दत्तपुत्र घेण्या विषयीहि “अपुत्राला स्वर्गलोक नाही ” इत्यादिक सामान्य शास्त्रेकरूनच विधवा स्त्रीला अधिकार आहे. “पतीच्या आज्ञेवांचून स्त्रियेनें पुत्र देऊं नये, अथवा घेऊं नये” असे जें वसिष्ठ वाक्य आहे तें तर ज्या स्त्रियेला भर्त्याची आज्ञा नाही अशा स्त्रियेला दत्तकपुत्र घेणे नसल्यास मात्र अनुमती देते; सर्वथा स्त्रियेनें दत्तपुत्र घेऊं नये असा निषेध सांगत नाही. कारण, शास्त्रानें जें प्राप्त झालें त्याचा निषेध संभवत नाही. पाकरितां दत्तपुत्र घेण्यास योग्य जी स्त्री तिला दत्तपुत्र घेण्याविषयी प्रतिबंध करणारा वृत्तीचा लोप, व पिंडाचा नाश इत्यादिकांचा कर्त्ता होऊन नरकास पात्र होतो. कारण ‘ब्राह्मणाच्या वृत्तीला जो विघ्न करितो तो विघ्न भक्षण करणाऱ्या कुनीमध्ये उत्पन्न होतो ” असे शास्त्र आहे. याप्रमाणें कौस्तुभग्रंथात विस्तार केला आहे. स्त्रियांनीं दत्तपुत्र घेतला असतां होम इत्यादिक कर्मे तो व्रतादिकांप्रमाणें ब्राह्मणद्वारा करवावा. शूद्रानेहि असेच करावें. जो ब्राह्मण शूद्रापासून दक्षिणा घेऊन वेदमंत्रांनीं त्याचा होम इत्यादिक करितो त्या कर्मांत शूद्र हा पुण्यफलाभागी होतो, व ब्राह्मणास मात्र दोष लागतो. दत्तपुत्र घेऊन, त्या पुत्राचे जात कर्म इत्यादिक किंवा चौल इत्यादिक संस्कार करावे हा मुख्य पक्ष. तसा संभव नसेल तर सगोत्र व सपिंड यांत मीनी झालेला अथवा विवाह झालेलाहि दत्तक पुत्र होतो. विवाहित असेल

तथापि ज्याला पुत्र झाला नसेल तोच दत्तक घ्यावा असें मला वाटतें. असर्पिंड व असगोत्र यांमध्ये दत्तक घेणें तो मौंजी झालेला तोच घ्यावा, असेंहि वाटतें. भिन्न गोत्रां तला दत्तक घेणें तर मौंजी न झालेलाच घ्यावा. कोणी ग्रंथकार तर भिन्नगोत्र असा मौंजी झालेलाहि घ्यावा असें झणतात. याप्रमाणें दत्तपुत्र घ्यावा कोणता व न घ्यावा कोणता याचा निर्णय समाप्त झाला.

ऋग्वेदी यांनीं दत्तपुत्र कसा घ्यावा त्याचा प्रयोग.

पूर्व दिवसीं उपोषण करून दुसऱ्या दिवसीं निखळय केल्यानंतर हातांत दर्भपत्रिक धारण करून आचमन, प्राणायाम इत्यादिक करून देशकालांचा उच्चार करून संकल्प करावा. तो असा; — “ ममाप्रजत्वप्रयुक्तपैतृकऋणापाकरणपुत्रामनरकत्राणद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रोत्यर्थं शौनकोक्तविधिना पुत्रप्रतिग्रहं करिष्ये ॥ तदंगत्वेन स्वस्तिवाचन माचार्यवरणविष्णुपूजनमन्त्रदानेच करिष्ये ” असा संकल्प करून आचार्याची मधुपर्कानें पूजा केल्या नंतर विष्णुची पूजा करून ब्राह्मणादिकांच्या भोजनाचा संकल्प करावा. नंतर आचार्यानें “ यजमानानुज्ञया पुत्रप्रतिग्रहांगत्वेन विहितं होमं करिष्ये ” असा संकल्प करून अभिःश्रापन करावें. नंतर “ चक्षुषी आज्यनेत्येते सकृदग्निं सूर्याताविवीं षड्वारं चहणा अग्निं वायुं सूर्यं प्रजाप्रतिचाज्येन शेषेण स्विष्टकृतमित्यादि ” असें अन्वाधान करून पात्रांत अष्टावीस मुठी तांदुळांचा मंत्रविरहित निर्वाप करून मंत्रविरहित प्रोक्षण करून आज्योत्पवनांत कर्म करावें. नंतर दात्याकडे जाऊन ‘ याला पुत्र दे ’ असी याचना करावी. दात्यानें देशकालांचा उच्चार करून “ श्रीपरमेश्वरप्रोत्यर्थं पुत्रदानं करिष्ये ” असा संकल्प करून गणपतिपूजन झाल्यानंतर पुत्र घेणाराची यथाशक्ति पूजा करून पुत्राचें दान करावें तें असें— “ येयज्ञेनेतिपंचानानामानेदिष्टोमानवोविश्वेदेवास्त्रिष्टुप् ॥ पंचम्यनुष्टुप् ॥ पुत्रदानेवैनियोगः ॥ येयज्ञेन० ” ह्या पांच ऋचा झटल्या नंतर, “ इमं पुत्रं तव पैतृकऋणापाकरणपुत्रामनरकत्राणसिध्दयर्थं आत्मनः श्रीपरमेश्वर प्रोत्यर्थं तुभ्यमहं संप्रददे नमम ॥ प्रतिगृण्हातु पुत्रं भवान् ” असें वाक्य झणून पुत्र घेणाराच्या हातावर उदक घालावें. पुत्र प्रतिग्रह करणारानें “ देवस्यत्वा० ” हा मंत्र झणून पुत्राचे दोन हात धरून याला आपल्या मांडीवर बसवून “ अंगादंगात्संभवसि० ” या मंत्रें करून टाळू हुंगावी. नंतर वस्त्रें, कुंडले इत्यादिकांनीं भूषित केलेला अशा पुत्राला गीत, वाद्ये आणि स्वस्तिमंत्रांचे पाठ यां सहित आपल्या घरीं आणून पुत्र घेणारानें पाय धुवून आचमन करून आचार्याच्या उजव्या बाजूस आपण बसावें, आणि आपल्या उजव्या बाजूस स्त्रियेच्या मांडीवर पुत्राला बसवावें. नंतर आचार्यानें बर्हींच्या

आसादनापासून आज्यभागपर्यंत कर्म केल्या नंतर चढ घेऊन आचा होम करावा, तो असा:—“ यस्त्वाहदेतिद्वयोरान्त्रेयोवसुश्रुतोभिस्त्रिष्टुप् ॥ पुत्रप्रतिग्रहांगहोमेविनेयोगः ॥ यस्त्वाहदा० ” अशा दोन ऋचांनी एकच आहुति द्यावी. यजमानानें “ अन्नयद्दंनमम ” असा आग उच्चारवा. नंतर “ तुभ्यमग्नेपर्यवहन्सूर्यासावित्री सूर्यासावित्र्यनुष्टुप् ॥ ओं तुभ्यमग्ने० ॥ सूर्यासावित्र्या इदं नमम ॥ सोमोदददितिर्पंचानां सूर्यासावित्री सूर्यासावित्री ॥ अनुष्टुभौजगती त्रिष्टुवनुष्टुर् ॥ ओं सोमोददत् ० ” अशा पांच ऋचांनी प्रत्येक ऋचेस होम करावा. पांचाहि आहुतींचा “ सूर्यासावित्र्या इदं नमम ” असा आग करावा. या प्रमाणें चरुच्या सात आहुति देऊन “ओं भूः स्वा० ओं भुवः स्वा० ओं स्वः स्वा० ओं भूर्भुवः स्वः स्वाः ” अशा व्याहृति मंत्रांनी घृताच्या आहुति देऊन स्विष्ट कृत् इत्यादिक होमाची समाप्ति करून आचार्याला गोप्रदान देऊन ब्राह्मणांस भोजन घालावें.

आतां यजुर्वेदी यांचा बौधायनानें सांगितलेल्या रीतीनें प्रयोग.

दत्तपुत्राविषयी राजा, शिष्ट, व बांधव यांचो संमति घेऊन संकल्पा पासून आचार्य पूजेपर्यंत कर्म पूर्वी प्रमाणें करावें. मग ब्राह्मणभोजनाचा संकल्प झाल्यानंतर आचार्यानें देवयजन, स्थंडिलकरण इत्यादिकांपासून प्रणीतापात्र पर्यंत कर्म करावें. नंतर पुत्र घेणारानें प्रत्यक्ष दात्याच्या जवळ जाऊन ‘पुत्र मला दे’ असा आपणच याचना करावी. नंतर दात्यानें ‘देतो’ असें बोलावें. दात्यानें संकल्प इत्यादिकांपासून पुत्रदाना पर्यंत कर्म पूर्वी प्रमाणें करावें. पुत्र घेणारानें “ धर्माय त्वा गृण्हामि संततै त्वा गृण्हामि ” ह्या मंत्रानें पुत्राला हातीं धरून ग्याला वस्त्र, कुंडलें, आंगठ्या इत्यादिक अलंकार घालून भूषित करावें. नंतर आचार्यानें दर्भाचा बार्ह व पळसाच्या समिधांचा इध्मा संपादन करून पात्रासादन इत्यादिक आग्निमुख करून चरुश्रपण करून आसादनांत कर्म झाल्यानंतर पूर्वांग होम करून “ यस्त्वाहदाकीरिणा० ” हा पुरोनुवाक्यामंत्र लणून “ यस्मैत्वंसुकृते० ” अशा याज्यमंत्रानें होम करून व्यस्तसमस्त व्याहृति मंत्रांनी होम करून स्विष्टकृत् इत्यादिक करावें. नंतर आचार्याला दक्षिणा, वस्त्र, कुंडलें व आंगठ्या इत्यादिक द्यावी.

परगोत्रांत उत्पन्न झालेला अशा दत्तकाची कालकाच्या गोत्रानें नुस्ती मीनो मात्र केली असेल, अथवा मीनो झाल्यानंतर दत्तक घेतला असेल तर दत्तकानें अभिषादन, आह्न इत्यादि कर्मांचे ठिकाणीं दोन गोत्रांचा उच्चार करावा. चौल इत्यादिक संस्कार पाळक

पियाचें केले असतील तर पालक पियाच्या गोत्राचाच उच्चार कराना. विवाहाचे ठिकाणी तर सर्व दत्तकाने जनकपिता व पालकपिता ह्या दोघांच्या गोत्रप्रवर संबंधी कन्या वर्य करानी. या विषयीं सात पुरुष पर्यंत किंवा पांच पुरुषपर्यंत वर्य करानी असा पुरुषाचा नियम कोठें ग्रंथांत मिळत नाही. दत्तक सापिंड्या संगतीं — जनकपियाच्या गोत्राने दत्तकाचे मौजी झाली असेल तर जनक जीं पिता व माता यांच्या कुळा मध्ये क्रमाने सात पुरुषपर्यंत व पांच पुरुष पर्यंत सापिंड्य मानावे. दत्तक घेणारा याच्या मातेच्या व पियाच्या कुळांमध्ये तीन पुरुषपर्यंत सापिंड्य मानावे. दत्तक घेणाराच्या गोत्राने दत्तकाची नुस्ती मौजी मात्र झाली असेल तर दोन्ही पियांच्या कुळांमध्ये पांच पुरुषांपर्यंत सापिंड्य मानावे, व उभय मातृकुळामध्ये तीन पुरुषांपर्यंत सापिंड्य मानावे. जात कर्मापासून मौजीपर्यंत संस्कार दत्तक घेणाराने केले असतील तर घेणाराचे कुळामध्ये सात पुरुषांपर्यंत सापिंड्य, मातृकुळामध्ये पांच पुरुषांपर्यंत सापिंड्य, याहून जनकाच्या कुळामध्ये सापिंड्य कमी मानावे. कोणी ग्रंथकार तर, दत्तकाचा प्रवेश झाला असतां दोनही कुळांचे ठिकाणी सर्वथा कमीच सापिंड्य मानावे असे सांगतात. याप्रमाणे दत्तकाच्या संततीचेहि सापिंड्य जाणावे. दत्तक पुत्र मृत झाला असतां जनक व पालक असे जे आईबाप खांनीं तीन दिवस अशौच धरावे. सपिंड्यांनीं एक दिवस अशौच धरावे. मौजी झालेला असा दत्तक मृत होईल तर पालकपिता व सपिंड यांनीं दशाहादि अशौच धरावे असे, नीलकंठाच्या दत्तकनिर्णयांत सांगितले आहे. याप्रमाणे मागचे व पुढचे असे आईबाप मृत झाले असतां दत्तकानेहि त्रिरात्र अशौच धरावे. मागचे व पुढचे सपिंड मृत झाले असतां एक दिवस अशौच धरावे. आईबाप यांची उत्तरक्रिया करणे असेल तर कर्मसंबंधी दहा दिवसच अशौच धरावे. दत्तकाचे पुत्र, नातू इत्यादिक यांच्या जन्ममरणांचे अशौच सपिंड्यांनीं एक दिवस धरावे. सगोत्र असून सपिंड असा दत्तक असेल तर सर्वांनीं दहा दिवसच अशौच धरावे. स्त्री, कन्या इत्यादिक असतील तथापि पियाच्या द्रव्याचा वारिसदार दत्तपुत्रच होतो. दत्तक घेतल्यानंतर औरसपुत्र होईल तर दत्तक चवथ्या हिशाचा भागी होतो, समभागी होत नाही. कोणी ग्रंथकार तर, पुत्र घेणाराने जातकर्मापासून मौजीपर्यंत संस्कार व दत्तविधान हीं केलीं असतील तर औरस पुत्राच्या बरोबराने दत्तक भागीदार होतो. संस्कार केले असून दत्तविधान केले नसेल तर त्याचा विवाह मात्र करावा, इतर धन झाला मिळणार नाही. कितीएक संस्कार केले असतील तर चतुर्थांश द्रव्य मिळेल असे सांगतात. दत्तक असेल तत्रापि आईबापांला पिंड देण्याचा अधिकार औरसालाच आहे. जनकपियाला पिंड देणारा कोणी नसेल तर

दत्तकाने जनक व पालक या दोघांचेहि श्राद्ध करावे, व दोघांचे इव्यहि घ्यावे, असे नील-कंठाचे दत्तनिर्णयांत सांगितले आहे. याप्रमाणे पूर्वी सांगितल्या विधीकरून कन्या जी तीहि दत्तक घ्यावी. ती कन्या परगोत्रांतली घेतली असेल तर तिच्या विवाहाचे ठिकाणी दोन गोत्रे पाळावी. पुत्र व स्त्री यांतून एकहि नसेल तर दत्तकन्या जी तीच पित्र्याच्या इव्यची विभागी होते. याप्रमाणे दत्तपुत्राच्या उपयोगी सर्व निर्णय समाप्त झाला.

सर्व कन्याच होत असल्यास पुत्रा करितां पुत्र कामेष्टि.

ऋतुकालापासून सहाव्या दिवसीं स्त्रियेसहवर्तमान अश्विंज ज्ञान केले होतसाता निश्चरूप करून आचमन प्राणायाम करून देशकार्णांचा उच्चार केल्यानंतर संकल्प करावा. तो असाः—“पुत्रकामः पुत्रकामेष्टि करिष्ये” असा संकल्प करून पुण्याहवाचनापासून नांदी श्राद्धापर्यंत कर्म झाल्यानंतर अग्निस्थापन करून अन्वाधान करावे. ते असेः—“चक्षुषी अज्येनात्र प्रधानं अग्नि पंचवारं वरुणं पंचवारं विष्णुं पृथ्वीं विष्णुं सोमं सूर्यां सावित्रीं पायसेन शेषेण स्विष्टकृतमित्यादि.” असे अन्वाधान केल्यानंतर निर्वापकार्णां मंत्र विरहित अशा साठ मुठी तांदुळ पात्रांत घालून अमंत्रक धुवून श्वेतवर्ण आहे वस्त जींचा अशा श्वेतवर्ण गाईचे दुधाने चरू शिजवून, आज्यभाग झाल्यानंतर चरुहोम करावा, तो असाः—“आतेगर्भइति अग्निरैतु इति सुक्तद्वयस्य हिरण्यागर्भऋषिः ॥ क्रमेणाग्नीवरुणीदेवते ॥ अनुष्टुप्जगस्यौ छंदसि ॥ पायसहोमेविनियोगः ॥ आतेगर्भो० अग्नयइंदनमम ॥ करोमि० अग्नयइदं ॥ पुमांस्ते० अग्नयइदं० ॥ यानिभद्राणि० ॥ अग्नयइदं० कामःसमृ० ॥ अग्नयइदं० अग्निरैतुप० ॥ वरुणायइदं० इमामग्निस्त्रायतां० ॥ वरुणायइदं० मातेगृहेनिशि० वरुणायदेदं० अप्रजस्तांपीव० वरुणायदेदं० ॥ दैवकृतंब्राह्मणं० ॥ वरुणायदेदं० ॥ मेजमेषेति तिसृणांविष्णुस्त्वष्टागर्भकर्त्ताविष्णुपृथ्वीविष्णवोनुष्टुप् ॥ पायसहोमे वि० ॥ नेजमेष० ॥ विष्णवइंदनम० ॥ यथेयंपृथिवि० ॥ पृथिव्याइ० दिष्णोःश्रेष्ठे० ॥ विष्णवइ० ॥ सोमोऽधेनुराहृगणो गौतमःसोमस्त्रिष्टुप् ॥ पायसहोमेवि० ॥ सोमो० सोमायेदं० ॥ तांपूषन् सूर्यासावित्री सूर्यासावित्री त्रिष्टुप् ॥ पायसहोमेवि० ॥ तांपूषन्त्रि० सूर्यासावित्र्याइ०” या प्रमाणे पंधरा आहुतीनी होम करून स्विष्टकृत होम करावा. नंतर दंपतीनीं “अपश्यंत्वेतिद्वयोःप्रजावान् प्राजापय प्रजापति त्रिष्टुप् हुतशेषपायसप्राशनेविनियोगः अपश्यंत्वा०” ह्या दोन मंत्रानीं होमशेष पायस भक्षण करून “पिशंगभृष्टि०” ह्या मंत्राने दंपतीनीं नामीळा स्पर्श करावा. त्यानंतर यजमानाने प्रायश्चित्तादि होमशेषाची समाप्ति करून ब्राह्मणांला गोपदानं, व सुवर्ण इत्यादिक दक्षिणा

देऊन रात्रीचे ठिकाणी दंपतीनीं दर्भ हातकून त्यांजवर निद्रा करावी, याप्रमाणें पुत्र कामेष्टिप्रयोग समाप्त झाला.

पुंसवनसंस्कार.

हा पुंसवनसंस्कार गर्भाचे स्पष्ट ज्ञान झाल्या नंतर दुसरा, चवथा, सहावा किंवा आठवा यांतून कोणत्याहि मासांत करावा. अथवा सीमंत संस्काराबरोबर करावा. शुद्ध पक्षांतील पंचमीपासून आरंभ करून कृष्णपक्षांतील पंचमीपर्यंत जे दिवस त्यांतून चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी आणि पौर्णिमा ह्या तिथि वर्ज्य करून इतर दिवसीं रवि, मंगळ, गुरु ह्या वारीं करावा. ऋषेत् प्रयांत सोमवार, बुधवार व शुक्रवार या दिवसीं करावा असे सांगितलें आहे. पुरुष नांवाचीं नक्षत्रे ह्या संस्काराला प्रशस्त सांगितलीं आहेत, ज्ञानजे पुरुषनक्षत्र ज्या दिवसीं असेल त्या दिवसीं हा संस्कार करावा. पुरुषनक्षत्रे — पुष्य, श्रवण, हस्त, पुनर्वसु, मृग, अभिजित्, मूल, अनुराधा, आणि अश्विनी. यांमध्ये पुष्यनक्षत्र मुख्य आहे. पुष्य न मिळेल तर श्रवण ध्यावे, श्रवण न मिळेल तर हस्तादिक ध्यावीं. अनवल्लोभन ह्या संस्काराचाहि हाच काळ जाणावा. कारण, पुंसवन संस्काराबरोबर अनवल्लोभन करावें असे सांगितलें आहे. पुंसवन, व अनवल्लोभन हे संस्कार दरएक गर्भाला करावे. कारण ते गर्भाचे संस्कार आहेत. गर्भाधान, आणि सीमंतोन्नयन हे संस्कार तर स्त्रीसंस्कार आहेत याकरितां दरएक गर्भाचे ठिकाणीं करूं नयेत, तर पहिल्या गर्भाचे ठिकाणींच करावे. पहिल्या गर्भाचे ठिकाणीं ते न केले असतील तर, दरएक गर्भाचे ठिकाणीं त्यांच्या लोपाचें प्रायश्चित अवश्य करावें. कारण, पहिल्या अपत्याचे ठिकाणीं त्यांचें प्रायश्चित केल्यानें दुसरा, तिसरा, इत्यादिक गर्भांचे संस्कारांची सिद्धि होत नाही, प्रायश्चित केल्यानें दोषाचा परिहार मात्र होतो, पुण्याचा अतिशय उत्पन्न होत नाही, तो पुण्यातिशय संस्काराचा विधि केल्यानेच उत्पन्न होतो, याकरितां दरएक गर्भाचे ठिकाणीं प्रायश्चित करावें हें योग्य होय. पुंसवन व अनवल्लोभन हे संस्कार पहिल्या गर्भाचे केले तथापि दरएक गर्भाचे करावे, कारण ते गर्भसंस्कार आहेत. ते दरएक गर्भाचे न केले तर त्यांच्या लोपाचें प्रायश्चित करावें. ते प्रायश्चित दरएक संस्काराचें पादकच्छू करावें. समजून उमजून लोप झाला असेल तर दुप्पट प्रायश्चित करावें. पुंसवनसंस्कार पतीनें करावा. तो सन्निध नसेल तर दीर इत्यादिकांनें करावा.

सीमंतोन्नयनसंस्काराचा काल.

सीमंतोन्नयनसंस्कार करणें तो चवथा, आठवा, सहावा, पांचवा, “अथवा नववा या

महिन्यातून कोणत्याही एकांत करावा. प्रसूति होई तेथपर्यंत त्याची मर्यादा आहे. सीमंतोन्नयनसंस्कार केल्या खेरीज स्त्री प्रसूत होईल तर ती पुत्र हातांत घेऊन यथा विधि संस्कार करण्याला योग्य होते." पक्ष, तिथि, वार आणि नक्षत्र ही सर्व पुंसवनाला नी सांगितली तींच एथेहि ध्यावी. क्वचित् ग्रंथांत दशमी पर्यंत कृष्णपक्षाहि घेण्यावि. षष्ठी सांगितले आहे. षष्ठी, अष्टमी, द्वादशी, रिक्तातिथि व पौर्णिमा ह्या तिथि वर्य कराव्या. संकटविषय असेल तर त्यामध्ये चतुर्थी, चतुर्दशी, व पौर्णिमा ह्या ध्याव्या. तसेच षष्ठी, अष्टमी, द्वादशी ह्या तिथींच्या पहिल्या घटिका क्रमाने ८१११० टाकून त्याहि ध्याव्या. पुरुषनक्षत्र न मिळतील तर रोहिणी, रेवती, व तीन उत्तरा ही नक्षत्रे ध्यावी. उक्त नक्षत्रांचा पहिला व शेवटचा असे चरण टाकून मधले दोन चरण ध्यावे असे सांगितले आहे. हा सीमंतोन्नयनसंस्कार एकवारच करावा, असे सांगितले आहे. कात्यायन जे व्यांनी तर, हा गर्भसंस्कार आहे या करिता दरएक गर्भाचे ठिकाणी करावा. सीमंतोन्नयनसंस्कार पतीनेच करावा. गर्भाधानसंस्काराचा लोप होईल तर, त्याच्या प्रायश्चित्ताकरिता ब्राह्मणाला गोप्रदान देऊन पुंसवनादिक संस्कार करावे. त्यामध्ये आश्वलायनशास्त्री यांनी देश, काल यांचा उच्चार केल्या नंतर " मया-स्यां भार्यायामुत्पत्स्यमानगर्भस्य गार्भिकत्रैजिकदोषपरिहारापुरुषतातिद्विज्ञानोदयप्रतिरोधप्र-रिहारद्वारा श्रीपरमेश्वर प्रसिद्धं पुंसवनमनवलोभनं ममास्यां भार्यायां गर्भाभिवृद्धिपरिपे-थिपिशितरुधिराप्रियालक्ष्मीभूतराक्षसीगणदुरनिरसनक्षमसकल सौभाग्यनिदानमहालक्ष्मीसमा-वेशनद्वारा प्रतिगर्भं बीजगर्भं समुद्भवैर्नोनिवर्द्धणद्वाराच श्रीपरमेश्वरप्रसिद्धं स्त्रीसंस्काररूपं सीमंतोन्नयनाख्यं कर्मच तंत्रेण करिष्ये. " असा संकल्प, सीमंतोन्नयनसंस्कारा बरो वर तीनहि संस्कार करणे असल्यास जाणावा. ह्या संस्काराचे ठिकाणी नांदीश्राद्धांत देव घेणे ते ऋतुदक्ष संज्ञक विश्वदेव ध्यावे. पुंसवन, संस्कार निराळा करणे असेल तर, पवमानसंज्ञक औपासनाग्नीची स्थापना करावी. पुंसवन, अनवलोभन आणि सीमंतोन्नयन हे तीन संस्कार एकत्रचाने करणे असतील तर, मंगल नामक अग्नीची स्थापना करावी. गृह्याग्नीचा नाश झाला असता व सर्वाधानी असल्यास त्याच्या अग्नीची उत्पत्ति पूर्वी सांगितल्या प्रमाणे करावी. पुंसवनसंस्कारा प्रजापतीच्या उद्देशे करून चरूचा होम करावा. सीमंतोन्नयनसंस्कारा धातृदेवतेच्या उद्देशाने दोन आहुति, राका देव-तेच्या उद्देशाने दोन आहुति, विष्णु देवतेच्या उद्देशाने तीन आहुति, प्रजापति देव-तेच्या उद्देशाने एक आहुति, या प्रमाणे घृताचा होम करावा. अत्राशिश प्रयोग ग्रंथां सर्वा पहावा. अन्यशाखांचा प्रयोग आ आ ग्रंथांतून पहावा. एथे दरएक संस्कारा दहा दहा किंवा तीन तीन ब्राह्मणाला भोजन घ्यावे. समर्थ असेल तर शंभर शंभर

ब्राह्मणांस भोजन घालावे. सीमेंतसंस्कार संबंधी भोजन केलें असता पारिजात प्रंपात प्रायश्चित्त सांगितलें आहे. “ ब्रह्मोदन, क्षोमयाग, सीमेंतसंस्कार, व जातकर्म संबंधी नांदीश्राद्ध यांचे ठिकाणी भोजन केलें असता भोजन करणारानें चांद्रायण प्रायश्चित्त करावे. ” अथवा “ अराइव० ” ह्या मंत्राचा शंभर वेळ जप करावा. हे प्रायश्चित्त आधानांग ब्रह्मोदनसंबंधी भोजनासारखें सीमेंतसंस्कारसंबंधी भोजन केलें असता जाणावे. त्या दिवसीं त्या घरां नुस्तें भोजन करणारा जो त्याला प्रायश्चित्त नाही, असें पारिजात प्रंपांमध्ये जें सांगितलें तें योग्य आहे.

आतां गर्भिणीचे धर्म,

“ गर्भिणी स्त्रीनें हत्ती, घोडा इत्यादिकांवर बसूं नये. पर्वत, व मजक्याचें घर, यांच्यावर चढूं नये. व्यायाम करणें, त्वरित चालणें, गाडीत बसणें, हीं वर्ज्य करावीं. राखाडी इत्यादिक स्थलीं, मुसळ, उखळ इत्याकांवर बसूं नये. उदकांत बुडी मारून स्नान करणें, शून्य गृह, वृक्षाच्या तळीं बसणें इत्यादिक वर्ज्य करावीं. कलद्द करणें, अंग पिळणें, तिखट पदार्थ भक्षण, अति उष्ण पदार्थ भक्षण हीं वर्ज्य करावीं. संध्या कालीं अति थंड व अति आंबट असे पदार्थ, जडान चा आहार करणें हीं वर्ज्य करावीं. मैथुन, शोक, रक्त काढणें, दिवसा निद्रा, रात्रीं जागरण, हीं वर्ज्य करावीं. राखाडी, कोळसे, नखें यांहीं करून भूमीवर, रेषा काढणें, सार्वकाल निद्रा, हीं वर्ज्य करावीं. अमंगळ शब्द बोलूं नये. फार हसूं नये. मोकळे केश सोडूं नये. उद्विग्न असूं नये. कुक्कुटासन करूं नये. स्वच्छता ठेवणें, चांगले मंत्र लिहिणें, सुगंध पुष्पांच्या माळा, गंधाची उटी घेणें, स्वच्छ घरांत राहणें, दानें करणें, सासूतासरे यांची पूजा करणें इत्यादिकांनीं गर्भाचें संरक्षण निस करावे. हळद, कुंकू, शेंदूर, काजळ, नाहणें, वेणीफणी करणें, तांबूलभक्षण, सौभाग्याचे अलंकार घालणे हीं शुभकारक होतें. चवथा, सहावा अथवा आठवा या महिन्यांत गर्भिणी स्त्रीनें निस प्रयाण करूं नये. सहाव्या मासानंतर तर विशेषे करून निस प्रयाण वर्ज्य करावें.

आतां गर्भिणीपतीचे धर्म.

“ गर्भिणी स्त्रीची इच्छा ज्या पदार्थावर होईल तो तिला यथायोग्य द्यावा, तेणेंकरून चिरायु पुत्र प्रसवते. इच्छा पूर्ण न केल्यास पति दोषी होतो. समुद्रस्नान, वृक्ष तोडणें, क्षौर, प्रेत बाहणें, परदेशप्रयाण, हीं गर्भिणीपतीनें वर्ज्य करावीं. क्षौर, मैथुन, तीर्थयात्रा, श्राद्धभोजन आणि नौकेत बसणें इतकीं वर्ज्य करावीं. युद्ध; ग्रह बांधणें; नखें,

केश यांचा छेद; बौल; प्रेताबरोबर जाणे, विवाह हीं सातव्या महिन्यापासून वर्ज्य करावीं. क्षौर, पिंडदान, प्रेताची क्रिया, हीं ज्याचा पिता जिवंत आहे त्यानें व गर्भिणीपतीनें करूं नयेत. ” एथें नखें व केश यांचा छेदहि निषिद्ध सांगितला. “ क्षौराचा जरी निषेध आहे तथापि नखें, केश यांचा छेद करावा. ” असें जें वाक्य तें तर जिवात्पितृक इत्यादिकांला जो क्षौराचा निषेध सांगितला त्या विषयीं नखें व केश यांचा छेद करावा असें सांगतें. या क्षौराविषयीं अपवाद—“ निश्चयेंकरून जरी क्षौराचा निषेध असेल तथापि नैमित्तिक क्षौर करावें, व गर्भिणीपति असेल तथापि त्यानें आईबापांची प्रतिक्रिया करावी. अन्वष्टक्य, व अष्टका ह्या श्राद्धांचे ठिकाणीं गर्भिणीपतीनें पिंडदान करावें. किती एक लोक आईबापांच्या प्रतिसांस्तरिक श्राद्धां पिंडदान करितात; दर्शश्राद्ध, व महालय इत्यादिश्राद्धांचे ठिकाणीं पिंडदान करूं नये.

गर्भस्त्राव प्रतिबंधक यज्ञोपवीतदान.

यानंतर गर्भाचा स्त्राव होत असल्यास तो बंद करणारें असें सोन्याचे यज्ञोपवीताचें दान महार्णव ग्रंथांत सांगितलें आहे. हें दान स्त्रियेनें करावें. तें असें,—शुभ दिवस पाहून त्या दिवसीं स्त्रियेनें आचमन करून देशकालांचा उच्चार करून संकल्प करावा. तो असा;—“मम गर्भस्त्रावनिदानसकलदोषपरिहारद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रोत्थं वायुपुराणोक्तं सुवर्णं यज्ञोपवीतदानविधिं करिष्ये.” असा संकल्प करून एक पलपरिमित अथवा अर्ध पलाचें किंवा पावपलाचें अथवा यथाशक्ति असें सोन्याचें यज्ञोपवीत करून त्या यज्ञोपवीताचे ग्रंथीचे ठिकाणीं मोती लावावें. तसेंच वज्रमर्णानें युक्त असी रुप्याची उत्तरी करावी. नंतर तीं दोन गायत्रीमंत्रानें पंचगव्येंकरून धुवून तांब्याच्या पात्रांत द्रोणपरिमित दही घालून त्यांत द्रोणपरिमित तूप घालून त्या तुषार तीं दोन ठेवावीं. नंतर पति किंवा ब्राह्मण यानें गायत्रीमंत्रानें त्यांची पूजा करावी. आठ मुंजाचा एक मासा, दहा मासे ह्मणजे एक सुवर्ण, चार सुवर्ण ह्मणजे एक पल, चार पले ह्मणजे एक कुडव, चार कुडव ह्मणजे एक प्रस्थ, चार प्रस्थ ह्मणजे एक आठक, चार आठक ह्मणजे एक द्रोण. दही व तूप, हीं द्रोणपरिमित न मिळतील तर यथाशक्तिप्रमाण घ्यावीं. ब्राह्मणाकडून तूप, मध यांहींकरून युक्त अशा तिलांचा अष्टोत्तर शत होम, गायत्री किंवा व्याहृती या मंत्रांनीं करावा. होमाचा त्याग करणें तो पति किंवा स्त्री यांतून कोणी एकानें करावा. होम करणाऱ्या ब्राह्मणाची वखें इत्यादिकांनीं पूजा करून पूर्वं दिशेला संमुख अशा ब्राह्मणाला उत्तरादिशेला संमुख अशा स्त्रीनें उत्तरीसह त्या यज्ञोपवीताचें दान करावें, तें असें,—“उपवीतं परिमितं ब्रह्मणा विधृतं पुरा॥ भव नौकास्य दानेन गर्भं संधारये ह्यहं” असा मंत्र ह्मणून ब्राह्मणाचें नाम, गोत्र यांचा

उच्चार करून दान करावें. दानवाक्य.—“ताम्रपात्रस्यदध्वाज्यसंस्थं सुपूजितं सौत्तरी-
यकमिदं यज्ञोपवीतं गर्भस्त्रावनिदानदोषपरिहारद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रोक्तं तुभ्यमहं संप्रददे
नमम ॥ प्रतिगृह्यतां ” असें दानकर्त्यानें वाक्य झटल्यानंतर ब्राह्मणांनें “प्रतिगृह्यामि ”
असें वाक्य बोलवें, इत्यादिक. नंतर यथाशक्ति दक्षिणा देऊन इतर ब्राह्मणांलाहि यथा-
शक्ति दक्षिणा देऊन दान घेणाराला पांचविणें, नमस्कार, प्रार्थना इत्यादिक करून ब्रा-
ह्मणभोजनाचा संकल्प करून कर्म ईश्वराला समर्पण करावें. हें दान करणें तें “विष-
प्रयोग करून जी स्त्री बालकाच्या मारिले तिच्या गर्भाचा स्त्राव होतो” असें वचन आहे.
याकरितां बालहत्येचें प्रायश्चित्त करून नंतर हें सांगितलेलें दान करावें. दुसऱ्या ग्रंथांत
तर, सुवर्णधनुचें दान, हरिवंशग्रंथाचें श्रवण इत्यादिक सांगून तांब्याची घागर घुतानें
भरलेली असी करून तिचें दान करावें इत्यादिक विधानें सांगितलीं आहेत.

बाळंत होण्याच्या गृहांत गर्भिणीचा प्रवेश.

गृहाच्या नैऋति दिशीचे ठिकाणीं सूतिकागृह करून त्या गृहांत अश्विनी, रोहिणी,
मृग, पुनर्वसु, पुष्य, तीन उत्तरा, हस्त, चित्रा, स्वाती, अनुराधा, धनिष्ठा, आणि शत-
तारका, ह्या नक्षत्रां; रिक्तादि तिथि वर्ज्य करून अन्य तिथींचे ठिकाणीं; व चंद्र अनुकूल
असतां; गार्ह, ब्राह्मण, देव यांची पूजा करून मंत्र आणि वादें यांचा घोष व अपत्ययुक्त
अशा सुवासिनी स्त्रिया यांसहवर्तमान शुभ लग्नाचे ठिकाणीं सूतिकेनें प्रवेश करावा. तसा
संभव नसेल तर तत्कालीं प्रवेश करावा. प्रसवाचा प्रतिबंध झाला असतां ऋग्विधान
ग्रंथांत उपाय सांगितला आहे. तो असा, “प्रमंदिने०” ह्या ऋचेचा, किंवा “विनिहीर्ष्व०”
ह्या सूक्ताचा जप करावा. अथवा ऋचा व सूक्त यांहीं करून उदक मंत्रून तें प्राशन
करावें, तेणेंकरून सुखानें प्रसव होतो. त्वरित प्रसव होण्याविषयीं मंत्र—“हिमवत्युत्तरा पार्श्वे
सुरथानाम यक्षिणी ॥ तस्याःस्मरणमात्रेणविशल्यागर्भिणीभवेत् ॥ ओंक्षीं ओंस्वाहा” हा मंत्र
झणून दूर्वाकुंठेंकरून तिळांचे तेल शंभर वेळ किंवा सहस्र वेळ मंत्रून त्यांतून थोडें प्राशन
करवावें, व थोडें गर्भस्यानीं लावावें. आणि तें चांगलें लावलें असतां त्वरित सुखेंकरून
प्रसव होतो. गार्हच्या मस्तकाची करटी आणून सूतिकेच्या घरावर ठेवावी, तेणेंकरून
सुखानें प्रसव होतो. वेळू, निंबवृक्ष यांची साल; तुळसीची मुळी; कपित्थ वृक्षाचें पान
आणि कण्हेरीचें बीज हीं समभाग घेऊन झशीच्या दुधांत वाटून त्यांत तिळांचें तेल
घालून त्याचा छेप दोनीला दिला असतां तत्काल प्रसव होतो.

पुत्रावणाचा संस्कार.

मूळ, ज्येष्ठा, व्यतीपात इत्यादि अशुभकाळीं उत्पन्न न झालेला असा पुत्र उत्पन्न होतांच

पिस्यानै कुलदेवता, बडोल यांना पूर्वी नमस्कार करून पुत्राचें मुख पाहून नदी इत्यादिक ठिकाणी उत्तर दिशेला संमुख होस्ताता ज्ञान करावें. नदी इत्यादिक नसेल तर घरीं आणः लेलें जें शीतोदक त्यांत सुवर्ण घालून त्या उदकानें ज्ञान करावें. हें ज्ञान रात्रीचे ठिकाणीं हि नदी इत्यादिक स्थळीं करावें. अशक्त असेल तर रात्रीं अघींच्या जवळ सुवर्ण युक्त शीतोदकानें ज्ञान करावें. मूळ इत्यादिक नक्षत्रांचे ठिकाणीं जन्म झालें असेल तर पुत्राचें मुख पाहिन्यावांचूनच ज्ञान करावें. पिता देशांतरीं गेला असल्यास 'पुत्र झाला' असें समजल्यानंतर ज्ञान करावें. ज्ञानाच्या पूर्वी कोणालाहि स्पर्श करूं नये, असें सर्वत्र जाणावें. याप्रमाणें कन्या झाली तथापि ज्ञान करावें व ज्ञानाच्या पूर्वी स्पर्श करूं नये. दुसरे जें सपिंडांचें आशौच तें असून सामर्थ्ये पुत्राचें जन्म झालें असतां हि ज्ञान, दान इत्यादिक व पुत्रावण हीं कर्मे करण्याविषयीं पिस्याला त्या कार्त्वीं शुद्धि आहे. कोणी ग्रंथकार, मृताशौचामध्ये पुत्राचें जन्म झालें असतां जातकर्म करणे तें, मृताशौच गेल्यानंतर करावें, असें ह्मणतात. नालच्छेदनाच्या पूर्वी सर्वे संध्या इत्यादिक कर्म करण्याविषयीं आशौच नाही. पहिला, पांचवा, सहावा आणि दहावा ह्या दिवसीं दान देणें व घेणें याविषयीं दोष नाही. शिजलेलें अन्न घेऊं नये. ज्योतिष्टोम इत्यादिकांची दीक्षा ज्याला आहे त्यानें स्वतां किंवा दुसऱ्याकडून जातकर्म करूं नये; तर अवभृत्ज्ञान झाल्यानंतर पद्मदीक्षेचें विसर्जन करून स्वतां जातकर्म करावें. ज्येष्ठानें कनिष्ठाकडून पुंसवन इत्यादिक करवूं नये. जातकर्म करावें. पूर्वी करावयाचे राहिलेले असेल तर, पिस्यानैच करावें. पिता महारोगानें पीडित असेल तर त्यानें स्वतां जातकर्म करूं नये. "पुत्र जन्म झालें असतां नालच्छेदन करण्याच्या पूर्वी नांदीश्राद्ध करावें" ह्या वाक्यांत पुत्र असा शब्द आहे तथापि कन्येचेंहि ग्रहण करावें. तसेंच संस्कारसंबंधी नांदीश्राद्धाहून निराळें असें कन्यापुत्रांच्या जन्मसंबंधी नांदीश्राद्ध करावें असा विधि प्राप्त होतो. हें जन्मसंबंधी नांदीश्राद्ध रात्रीचे ठिकाणीं हि करावें, व तें द्रव्यद्वारा करावें, अत्रादिकें करून करूं नये. तसेंच पिस्यानै ज्ञान करून अलंकारयुक्त होस्ताता नालच्छेदन न केलेला, स्तनपान न केलेला, व इतरांनीं स्पर्श न केलेला आणि उदकानें धुतलेला असा पुत्र मातेच्या मांडीवर देववून आचमन करून देशकालांचा उच्चार केल्यानंतर संकल्प करावा. तो असाः—अस्य कुमारस्य गर्भांबुपानजनितदोपनिवर्हणायूर्ध्वेधाभिवृद्धिबीजगर्भसमुद्भवैनी निवर्हणद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रोसार्थं जातकर्म करिष्ये ॥ तदादौस्वास्तपुण्याहवाचनं मानुकापूजने च करिष्ये ॥ हिरण्येन पुत्रजन्मनिमित्तकं जातकर्मांगं च नांदीश्राद्धं तंत्रेण करिष्ये ॥" असा संकल्प करून जसें गृह्यसूत्र असेल तदनुसार प्रयोग करावा. "तदनंतर सुवर्ण,

भूमि, गाई, घोडा, रथ, छत्र, मेंढा, पुष्पमाळा, मंचक, आसन, गृह, सुवर्णसहित तिल्ल. पूर्णपात्रे हीं दाने करावीं. आशौची जो त्याच्या गृहांतील शिजलेले अन्न द्विजानें भक्षण केलें असतां चांद्रायण प्रायश्चित्त करावें. सुतकामध्ये. सगोत्रसपिंडांनीं अन्न भक्षण केलें तर दोष नाही असें मनु सांगतो.'"

जातकर्मसंस्कार.

यानंतर श्रीफळ इत्यादिक हातांत घेऊन ज्योतिषी याची पूजा करून त्यापासून जन्म लक्ष्मीं इष्टानिष्ट ग्रह कसे आहेत याचा निर्णय समजून घेऊन प्रतिकूळ ग्रह असतील ते अनुकूल होण्याकरितां त्या त्या ग्रहांच्या संतोपार्थ दाने करावीं. अथवा ग्रहांच्या भंतांचा जप इत्यादिक व शांतिसूक्तांचा जप इत्यादिक कर्मांचे. ठिकाणीं ब्राह्मण योजावा. त्या नंतर नालच्छेदन करवून सुवर्णयुक्त उदकानें मातेचा उजवा स्तन प्राक्षालन करवून मातेकडून पुत्राला स्तनपान करावें. त्या स्तनपानाविषयीं "इमांकुमार०" इत्यादिक मंत्र, ब्राह्मण इत्यादिकानें पठण करावें. जातकर्मापासून अन्नप्राशनापर्यंत जे संस्कार त्यांचे ठिकाणीं आश्वलायन शास्त्री जे त्यांनीं होम करावे किंवा न करावा. होम करणे यापक्षां, नांदीश्रद्ध शाल्यानंतर "जातकर्मागहोमंकरिष्ये" असा संकल्प करून लौकिकाग्ने स्थापन करून अन्वाधानापासून आज्यभागपर्यंत कर्म शाल्यानंतर अग्नि, इंद्र, प्रजापति, विश्वेदेव आणि ब्रह्मा ह्या देवतांच्या उद्देशेकरून घृताचा होम करावा. नंतर मधु, तूप यांचें प्राशन इत्यादिकापासून टाळू हुंगणें एथपर्यंत कर्म शाल्यानंतर स्विष्टकृत इत्यादिक कर्म करावें, याप्रमाणें क्रम जाणावा. आश्वलायनभिनशास्त्री यांनीं व्यापापल्या गृह्यसूत्राप्रमाणें होम इत्यादिक प्रयोग जाणावा.

कन्येचेहि जातकर्मापासून चौलापर्यंत सर्व संस्कार मंत्ररहित करावे. विवाहसंस्कार मात्र समंत्रक करावा, याकरितां कन्येचे जातकर्म इत्यादिक संस्कार लुप्त झाले असतां लक्षणजे ते न केले असतां ज्या कार्त्वीं जो संस्कार करावयाचा त्या कार्त्वीं, किंवा विवाहाच्या समयी त्या संस्कारांच्या लोपांचें प्रायश्चित्त करून विवाह करावा. एथें व सर्व ठिकाणीं जातकर्म, व नामकर्म इत्यादिक संस्कारांच्या मुख्य कार्त्वाचें उलंघन झालें असतां, गुरु इत्यादिकांच्या अस्ताविरहित व शुभनक्षत्र, इत्यादिक ज्या दिवसीं असेल त्या दिवसीं जातकर्मादिक करावें. त्या जातकर्माविषयीं नक्षत्रे—रोहिणी, तीन उत्तरा, अश्विनी, हस्त, पुष्य, अनुराधा, रेवती, मृग, चित्रा, श्रवण, धनिष्ठा, शततारका, स्वाती आणि पुनर्वसु, रिक्ता लक्षणजे चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी व पर्व लक्षणजे पौर्णिमा अमावास्या ह्या तिथि बर्ज्य करून अन्य तिथि घ्याव्या. मंगळ, शनि बर्ज्य करून घ्यावे. कन्याणी, वैशाखे इत्यादिकांनीं विरहित

अशा शुभदिवसी व सुकेंद्र लग्न असता जातकर्ष शुभ होय.

आतां यानंतर पांचवा व सहावा या दिवसी मन्मदा नामक देवतांचे पूजन करावे. तें असें;—रात्रीच्या पहिल्या प्रहरां पिता इत्यादिकांनै ज्ञान करून आचमन करून देश कालांचा उच्चार करून संकल्प करावा. तो असा:—“अस्य शिशोः समातृकस्यापुरारोग्य प्राप्तिकलानिष्ठशांतिद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं विघ्नेशस्य जन्मदानां जीवंत्यपर नाम्भ्याः षष्ठी देव्याः शस्त्रगर्भाभगवत्याश्च पूजनं करिष्ये.” असा संकल्प करून तंडुलराशिचे ठिकाणी विघ्नेश व जन्मदा ह्या देवतांचे नाममंत्राने आवाहन करून “आयाहि बरदा देवि महा षष्ठीति विश्रुते ॥ शक्तिभिःसह बालं मे रक्ष जागर वासरे ” ह्या मंत्राने षष्ठी देवीचे आवाहन करून नाममंत्राने भगवती देवीचे आवाहन करून नाममंत्राने व पुढें सांगतो यामंत्राने पूजा करावी. पूजेचा मंत्र—“ शक्तिस्त्वं सर्व देवानां लोकानां हितकारिणी ॥ मातर्बालमिमं रक्ष महाषोष्ठ नमास्तु ते ” या मंत्रेकरून सोळा उपचारांनी पूजा करून प्रार्थना करावी. प्रार्थनेचे मंत्र—“ लंबोदर महाभाग सर्वोपद्रव नाशन ॥ त्वत्पसादादविघ्नेश चिरंजीवनु बालकः ॥ जननी सर्व भूतानां बालानांच विशेषतः ॥ नारायणीस्वरूपेण बालं मे रक्ष सर्वदा ॥ प्रेतभूतपिशाचेभ्यो शाकिनी डाकिनीषुच ॥ मातेव रक्ष बालं मे श्वापदे पन्नगेषुच ॥ गौरीपुत्रो यथा स्कंदः शिशुन्वे रक्षितः पुरा ॥ तथा मयाप्ययं बालः षोष्ठिके रक्ष्यतां नमः ” या प्रमाणे प्रार्थना करून ब्राह्मणांला तांबूल दक्षिणा इत्यादिक दाव्या, व रात्री जागरण करावे. पांचवा व सहावा ह्या दिवसी दान देणे व घेणे ह्या विषयीं दोष नाही. सहाव्या दिवसी बलिदान व आतवगाला मजदान करावे.

आशौचामध्ये कर्तव्याकर्तव्य निर्णय,

“ मृताशौच्यामध्ये प्राणायाम अमंत्रक करावा. तसेच मार्जनाचे मंत्र मनांत झणून मार्जन करावे. गायत्री मंत्राचा स्पष्ट उच्चार करून सूर्याला अर्घ्य द्यावे. उपस्थान (प्रार्थना) सर्वथा करूं नये. मार्जन तें तर करावे किंवा न करावे. ” सूर्याचे ध्यान करून नमस्कार करावा. गायत्री मंत्राचा जप करूं नये. कारण, “अर्घ्यापर्यंत मनांत उच्चार करून संघ्या करावी ” असें वचन आहे. कोणी ग्रंथकार, मनांत उच्चार करून दहा वेळ गायत्री जप करावा असें झणतात. वैश्वदेव, ब्रह्मपद इत्यादिक पंचमहापद करूं नयेत, व वेदाचा पाठ करूं नये. औपासन होम व पिंडपितृयज्ञ हे भिन्नगोत्री असेल त्या करून करावे. कोणी ग्रंथकार, श्रौतकर्माचे ठिकाणी तेवढ्या कर्मा पुरती शुद्धि आहे असें वचन आहे या कर्मांत अभिहोत्राचा होम स्वतां करावा असें झणतात. दुसरे ग्रंथकार तर, सर्व जो आशौचाचा अपवाद झाला दुसरी गति नाही, या कालांत

ब्राह्मण असेल तर ब्राह्मणा कडूनच होम करावा, ब्राह्मण नसल्यास स्वता करावा असे
 झणतात. स्थालीपाक आशीर्वात करू नये, आशीर्वाची निवृत्ति झाल्या नंतर करावा.
 सर्वथाच स्थालीपाकाचा लोप प्रसंग वेईल तर स्थालीपाकहि ब्राह्मणा कडून करावा.
 अन्वाधान झाल्यानंतर आशीर्वा प्राप्त झाले असता ब्राह्मणाकडून श्रौत व स्थालीपाक कर-
 वावे. होम इत्यादिकांचे ठिकाणी वांग करणें तो ज्ञान करून आपण करावा. दर्श
 इत्यादिक श्राद्धाचा लोपच करावा. प्रतिसांवत्सरिक श्राद्ध करणें असेल तर तें आशीर्वा
 गेल्यानंतर अकराव्या दिवसी करावें. अकराव्या दिवसी श्राद्ध करण्याचा असंभव असेल
 तर आमावास्या, व्यतीपात इत्यादिक पर्व दिवसी करावें. याप्रमाणें स्त्री रजस्वला झाली
 असताहि पिंडपितृयज्ञ व दर्शश्राद्ध हीं पांचव्या दिवसी करावीं. अन्वाधान झाल्या
 नंतर स्त्री रजस्वला झाली असताहि शष्टि व स्थालीपाक करावे. अन्वाधानाच्या पूर्वी रज-
 स्वला झाल्यास अन्यकाली करावे. दान घेणें व देणें, अध्ययन हीं वर्ज्य करावीं. आशी-
 चामध्ये दुसऱ्याचें अन्न भक्षण करू नये. पिंडपितृयज्ञ, स्थालीपाक, व श्रवणाकर्म
 इत्यादिक संस्था यांचा पहिल्यानें आरंभ करणें असल्यास तो, जननाशीर्वा व मृताशीर्वा
 यांचे ठिकाणी ब्राह्मणांकडून हि होत नाही. पहिल्या आरंभाच्या नंतर श्रवणाकर्म इत्या-
 दिक करणें असेल तर आशीर्वा किंवा स्त्री रजस्वला असली तथापि ब्राह्मणांकडून कर-
 वावें, अग्रयण मात्र करू नये. अग्नीचा समारोप (समिध शेकून त्याजवर अग्नि घेणें), प्रथमरो-
 हण (शेकून ठेवलेली समिध पुढें अग्नीत हवन करणें) हीं आशीर्वात होत नाहीं. यावरून
 असें होतें कीं, अग्नीचा समारोप केल्या नंतर आशीर्वा प्राप्त होईल तर, तैत्तिरीयशाखी यांचा
 तीन दिवस होमलोप झाला असतां अग्नीचा नाश होतो व ऋक्शाखी यांचा बारा-
 दिवस होमलोप झाला असतां अग्निनाश होतो, यां करितां आशीर्वा गेल्या नंतर
 श्रौताग्नि व स्मार्ताग्नि यांचें निश्चयें पुनः आधान करावें. कारण अग्निमारोप व प्रथ-
 मरोहण हीं कर्म दुसऱ्याकडून करविण्यास आधार नाही, यास्तव करवू नयेत. अग्नि
 विच्छिन्न झाला असतां अग्निनाश झाल्याचें प्रायश्चित्त करून दुसऱ्याकडून अग्नि उत्पन्न
 करावा. भोजनकाली आशीर्वा प्राप्त झाले असतां मुखातील ग्रास टाकून ज्ञान करावें.
 मुखातील ग्रास भक्षण केला असतां एक उपोषण करावें. सर्व अन्न भक्षण केले असतां
 तीन रात्रि उपोषण करावें. "जननाशीर्वा व मृताशीर्वा यांत ग्रहण प्राप्त झाले असतां
 दोष नाही" असें बचन आहे, यास्तव ग्रहण प्राप्त झाले असतां ज्ञान करून आशीर्वा
 मध्येहि श्राद्ध, दान, जप, इत्यादिक करावें. याप्रमाणें संक्रांतिनिमित्तकहि ज्ञान, दान
 आदिक करावें. संकटविषय असेल तर नांदीश्राद्ध झाल्यानंतर बीजी, विवाह यांवि-
 षयी आशीर्वा नाही. संकट असतां मधुपर्क पुजेनंतर ऋत्विजांचा आशीर्वा नाही. यज्ञ

मानाळा यज्ञदीक्षा घेतल्यानंतर अवभृथ ज्ञानाच्या पूर्वी आशौच नाही. अवभृथ ज्ञान आशौच गेल्यानंतर करावें. “व्रताविषयी आशौच नाही” असे वचन आहे साकारता अनंत व्रत इत्यादिक दुसऱ्याकडून करावें. पूर्वी घातलेले जें अन्नसव खाचें जी अन्नदाने इत्यादिक खाविषयी आशौच नाही. “पूर्वी ज्यांचा संकल्प झालेला अशा अन्नाविषयी दोष नाही.” जडक, दूध, दही. तूप, मिठ, फळे, मूळे, भाजलेले पोहे इत्यादिक अन्ने हे प्रदार्थ सुतक्याचे घरांतले आपण घेतले असतां दोष नाही. सुतकी जो खाचे हातून घेऊं नये. कोणी ग्रंथकार, तांदूळ इत्यादिक हिरवें अन्न ह्यावें असे ह्मणतात. याप्रमाणें संक्षेपानें निर्णय सांगितला. विशेष निर्णय सांगणें तो पुढें सांगित.

आतां बाळ्यतिणीची शुद्धि.

प्रसूति होऊन दाहा दिवस झाल्यानंतर सूतिकेचा विटाळ जातो व नामकर्म, जातकर्म इत्यादिक प्राप्त झालेलीं कर्म करण्याचा अधिकार येतो. जातेष्टि, विवाह, धौळी इत्यादिक कर्मविषयी तर, पुत्र शाला आहे ज्यांना खास वीस साडे साडेनंतर अधिकार होतो, आणि कन्या शाली आहे ज्यांना खास एक महिन्यानंतर अधिकार होतो.

जन्मसमयीं दुष्टकाल शांतीचा निर्णय.

सामर्थ्ये प्रथम गोप्रसवशांति सांगतो—ज्या जन्मसमयीं पित्याला, मातेला, आणि अपत्याला असे अरिष्ट सांगितले त्या जन्मसमयीं गोप्रसवशांति व त्या त्या नक्षत्र इत्यादिकांची शांति करावी. इत्यनाश इत्यादिक अरिष्टे असतील तर शांति करूं नये. मूळ, आरुंधा, ज्येष्ठा, मघा ह्या नक्षत्रांवर जन्म झालें असतां चकवा इत्यादिक पादाचे ठिकाणीं पित्त इत्यादिकांला अरिष्ट नसलें तथापि गोप्रसवशांति करावी. अभिनी, रेवती, पुष्य, चित्रा ह्या नक्षत्रां जन्म झालें असतां नक्षत्रशांति नाही, तथापि गोप्रसवशांतिच करावी. ह्या गोप्रसवशांतीचा संकल्प—“अस्य शिशोरमुक्तदुष्टकालोत्पत्तिसूचितारिष्टनिवृत्त्यर्थं गोमुखप्रसवशांति करिष्ये,” असा संकल्प करून गणपातिपूजनमात्र करून “अंगादंगा०” ह्या मंत्रानें मुळाची टाळू हुंगल्यानंतर प्रयोगाच्या मध्येच पुण्याहवाचन करावें असे कौस्तुभ व मयूख ग्रंथांत आहे. आपल्या शाखेला सांगितलेले पुण्याहवाचन करून टाळू हुंगावी. नंतर यजमानानें, “अस्य गोमुखप्रसवस्य पुण्याहं भवंतो ब्रुवंतु” असे एकच वाक्य तीन वेळ ह्मणावें. ऋत्विजांनींहि प्रतिवचन द्यावें. शाखेला सांगितलेले पुण्याहवाचन करूं नये, असे शांतिकमलाकर ग्रंथांत आहे. नांदीश्राद्ध करूं नये. अशिक्षापन करून नंतर कोणत्या एकाशा पीठावर (असनावश) अग्निदेवतादिविरहित अशा नवग्रहांचें स्थापन करून अन्नाधान करावें. नंतर आग्र्यभागपत्र कर्म झाल्यानंतर प्रधानहोम करावा. तो

असा — अपदेवतांचा “आपोहिष्ठा०” ह्या तीन ऋचांनी “अप्सुमेसोमो०” ह्या ऋचे व गावत्रांमंत्रानें दधि, मध व घृत हीं तीन मिश्रित करून दर एक ऋचेचा आठवे याप्रमाणें होम करावा. विष्णुदेवतेचा “तद्विष्णो०” ह्या ऋचेनें दधि, मध, घृत ह तीन मिश्रित करून त्यांचा आठवेळ होम करावा. यक्ष्महणदेवतेचा “अक्षोभ्या०” ह्या सूक्ताच्या प्रत्येक ऋचेनें आठ आठ वेळ, मिश्रित असा दधिमधुघृतांचा होम करावा. नवग्रहांचा मिश्रित दधिमधुघृतांच्या आठ आठ आहुतींनीं होम करावा शेर्षिं द्रव्यानें स्विष्टकृत् होम इत्यादिक करावें असें मयूख इत्यादिक ग्रंथांत सांगितलें आहे कमलाकर ग्रंथ तर दधिमध्वाज्येंकरून आपदेवतांचा चार वेळ, विष्णुदेवतेचा एकवार यक्ष्महण देवतेचा “अक्षोभ्या०” या सूक्ताच्या दर एक ऋचेनें आठ आठ वेळ, आणि नवग्रहांचा एकेक वेळ, शेष द्रव्यानें स्विष्टकृत् होम करावा असें सांगितो. आज्यभाग होमपर्यंत कर्म झाल्यावर एका कलशाचे ठिकाणीं विष्णु व वरुण यांच्या दोन प्रतिमा स्थापन करून त्यांची पूजा करावी. तीन प्रतिमा स्थापन करून त्या तीन प्रतिमांचे ठिकाणीं विष्णु, वरुण, व यक्ष्महा ह्यांची पूजा करावी, असें मयूखांत सांगितलें आहे तदनंतर जसें अन्वाधान केलें असेल तदनुसार होम करावा. याप्रमाणें संक्षेप सांगितलें. बाकीचा प्रयोग शांतीचे ग्रंथांत पहावा. याप्रमाणें पुढेंहि देवता, द्रव्ये, आहुतींची संख्या, आणि निमित्ताचें फल, हीं मात्र सांगेन. बाकी सर्व विस्तार दुसऱ्या ग्रंथांतून जाणावा.

कृष्ण चतुर्दशीचे ठिकाणीं जन्म झालें असतां शांति.

“कृष्णपक्षातील चतुर्दशीचे ठिकाणीं जन्म झालें असतां त्याचें सहा प्रकारचें फळ आहे. तें असें,—एकंदर चतुर्दशीच्या घटिका मोजून त्यांचे सहा भाग करावे, आणि त्यावरून फळ जाणावें. प्रथमभागीं जन्म झालें असतां शुभ होय. दुसऱ्या भागीं जन्म झाल्यास पित्राला मृत्यु. तिसऱ्या भागीं मातेला मृत्यु. चवथ्या भागीं मानुळाला मृत्यु. पांचव्या भागीं वंशाचा नाश. सहाव्या भागीं द्रव्यहानि व आपल्या वंशाचा नाश, याप्रमाणें फळें जाणावी. या चतुर्दशीच्या सहा अंशांमध्ये दुसरा, तिसरा व सहावा ह्या अंशांचे ठिकाणीं जन्म झालें असतां गोमुखप्रसवशांति करून चतुर्दशीशांति करावी. इतर अंशीं जन्म असतां नुस्ती चतुर्दशीशांति करावी. शांतीचा संकल्प — “अस्य शिशोः कृष्णचतुर्दश्या अमुकांशजननसूचितसर्वादिष्टनिरासद्वाराश्रीपरमेश्वरप्रोसार्थं,” इत्यादिक संकल्प करावा. अमेयी इत्यादि चार दिशांचे ठिकाणीं चार कलशा स्थापन करावे, व सर्वे शतच्छिन्न (शंभर छिन्नांनीं युक्त असा) कलशा स्थापन करून त्याचे ठिकाणीं प्रतिमा

ठेवून त्या प्रतिमेवर वस्त्रदेवतेचे आवाहन करावे. मयूखग्रंथात तर पीठादिकांचे ठिकाणी वस्त्रप्रतिमेची पूजा करून आष्या पूर्व दिशिचे ठिकाणी किंवा उत्तर दिशेच्या ठिकाणी अस्तित्वादिक पांच कलशांचे स्थापन करून पूजा करावी असे आहे. अन्वाधान करारवे कसे ते सांगतो—“प्रधानष्टाष्टसंख्यसमिदाज्यचरुभिरधिदेवतादीनूएकैकसंख्यसामिद्वर्ज्याहु तिभिः षड्रंअश्वत्थप्लक्षपलाशखादिरसमिद्विश्वर्वाहुतिभिराज्याहुतिभिर्माधेस्तलैः सर्वेष्वयतिव्रज्य मष्टोचरशाताष्टाविंशस्यतरसंख्ययाज्यंवकामिति मंत्रेण अग्नि वायुं सूर्यं प्रजापतिच तिलाहुति भिरमुकसंख्याभिः सरुद्धा व्यस्तसमस्तव्याहृतिभिः यद्वा प्रजापतिमेवसमस्तव्याहृतिभिस्ति लैः शेषेण स्विष्टकृतिमत्यादि.”

सिनीवाली, कुहू आणि दर्श या तिथींत जन्म झाले असतां त्याची शांति.

अमावास्येचा पहिला जो प्रहर आला सिनीवाली असी संज्ञा होय. शेवटचे जे दोन प्रहर आला कुहू असी संज्ञा होय. मध्यवर्ती जे पांच प्रहर आला दर्श असी संज्ञा जाणावी असे कौणी ग्रंथकार झणतात. दुसरे ग्रंथकार तर, चतुर्दशीनें युक्त जे अहो- रात्र सामर्थ्य प्राप्त होणारी जी अमावास्य तिचे नांव सिनीवाली. प्रतिपदा तिथीनें युक्त जे अहोरात्र सामर्थ्य प्राप्त होणारी जी अमावास्य तिचे नांव कुहू. यावरून अमावा- स्येच्या तीन दिवसांला स्पर्श होणारी दिनवृद्धि ती नसेल तर, आणि सूर्योदयाला स्पर्श न कारणारा जो दिनक्षय तो नसेल तर दर्श सर्वथा नाहींच. कारण, सूर्योदयाच्या पूर्वीचे जे अहोरात्र सामर्थ्य प्राप्त होणारी जी अमावास्य ती सिनीवाली संज्ञक होते, व उदयानंतर प्राप्त होणारी जी अमावास्य ती कुहूसंज्ञक होते. दिनक्षय असतां जी अमा वास्या ती दर्शसंज्ञक होय, व तिचे ठिकाणीं सिनीवाली व कुहू हे भाग नाहींत, कारण त्या दिवसीं केवळ चतुर्दशी व केवळ प्रतिपदा यांचा योग नाहीं. याप्रमाणें दिनवृद्धि असेल तर तीन दिवसांचा जो स्पर्श आल्या मध्यस्थ दिवसाच्या साठ घटिकापरिमित जी अमावास्य ती दर्शसंज्ञक होते. कारण त्या दिवसीं चतुर्दशी व प्रतिपदा यांचा योग नाहीं. दिनवृद्धीच्या पूर्व दिवसांतला भाग व पुढच्या दिवसांतला भाग हे दोन भाग क्रमानें सिनीवाली व कुहूसंज्ञक आहेत असें झणतात. हें मयूख ग्रंथांत स्पष्ट सांगितलें आहे. “स्त्री, पशु, हस्तीण, घोडो, बैस व्हा ज्याच्या, सिनीवालीमध्ये प्रसूत झाल्या तर तो प्रसव इंद्राचेहि लक्ष्मीचा नाशक होतो. गार्ह, पक्षी, मृग, दासी, व्हा प्रसूत झाल्या असतांहि रज्याचा नाश होतो. कुहू तिथींत जी प्रसूति ती सर्वदोषकारक होते. ज्याच्या पश्चादिकांची प्रसूति होते त्याच्या आयुष्याचा व रज्याचा नाश होतो. शांति न केळी

असतां जन्म झालेल्याचा त्याग करावा, यांत संशय नाही. त्यात न केला असतां काही तरी नाश करील, किंवा स्वतां नाश पावेल.” त्या शांतिविषयी संकल्प करावा. असाः—“सिनीवालीजननसूचितारिष्टनाशेयादि, कुडूजननसूचितारिष्टनाशेयादि” प्रमाणे संकल्प करावा. कुडूचे ठिकाणी जन्म झाले असतां गोप्रसवशांतिहि करावी अ कोणी ग्रंथकार झणतात. ह्या दोनहि शांतींचे ठिकाणी चतुर्दशी शांतीप्रमाणे शिळिर कलशासहित पांच कलश स्थापावे. मध्यम कलशावर रुद्र ही प्रधान देवता, व पितर ह्या दोन पार्श्व देवता, याप्रमाणे तीन प्रतिमांचे स्थापन करावे. इंद्र आणि पि ह्या देवतांचा होम, मुख्य जी रुद्र देवता तिच्या होमाच्या संख्येहून कमी संख्येने करान व तो मुख्य देवतेला सांगितलेल्या सर्व द्रव्येकरून करावा व बाकीच्या अन्वाधानाम देवतांचा ऊह करणे ती चतुर्दशी शांतीप्रमाणे करावा. मुख्य देवतेची पूजा शाल्यानंत गाई, वस्त्र, सुवर्ण यांचीं दाने करून गाई, भूमि, तिल, सुवर्ण, घृत, वस्त्र, धान्य, गूळ, रुपें, लवण हीं दहा दाने करावीं. दूध, घृत, गूळ, यांचीं दाने देऊन होमाला आरं करवा; हीं दाने ऋत्विजांला द्यावीं, व शेवटीं निराळी दक्षिणा देऊं नये. याकरितां या स्थळ गाई इत्यादिक जीं दाने सांगितलीं तीं दक्षिणेच्या ऐवजीं आहेत यास्तव तीं दक्षिणायु दाने नाहीत. इतर ठिकाणीं दश दाने करणे तीं दक्षिणायुक्त करावीं.

दशदानप्रमाण.

भूमीचे प्रमाण गोचर्म. तें असें— सात हात झणजे एक दंड, तीस दंड झणजे एक वर्तन, दहा वर्तनें झणजे एक गोचर्म. तिळ एक द्रोणपरिमित. सोनें रुपें ह्यांविषयीं दहा मासे, पांच मासे, अडीच मासे यांतून कोणताहि प्रमाण घ्यावे. घृत ४० पळे. वस्त्र तीन हात. धान्य पांच द्रोण. गूळ व मोठ यांचे असेंच प्रमाण जाणावे. इतकी आशा प्रमाणे करून देण्याविषयीं सामर्थ्य नसेल तर नित्य, नैमित्तिक ह्या कर्मां ठिकाणीं यथाशक्ति द्यावीं. अथवा जीं जीं दाने द्यावयाचीं त्या त्या स्थानीं जशी शक्ति असेल त्याप्रमाणे सोनें “हिरण्यगर्भ०” ह्या मंत्रेकरून द्यावे. कारण, नैमित्तिक इत्यादिक न केले असतां दोष आहे. पुण्य इत्यादिकासाठीं दशदाने करणे तीं शक्ति नसतां कर्मे नयेत असें वाटते. होम शाल्यानंतर बलिदान, अभिषेक इत्यादिक करावे. याप्रमाणे सिनीवाली व कुडू यांची शांति समाप्त झाली.

आतां दर्शशांति.

“अमावास्येचे दिवसीं ज्यांचे जन्म होते त्यांच्या आईवापाळा दरिद्र प्राप्त होतें. तो दरिद्र ह्यांवर दूर होण्या करितां शांति सांगतो.” “अस्य शिशोः दर्शजनमसूचितारिष्टनिरासार्थं

शांति करिष्ये," याप्रमाणे शांतीचा संकल्प करावा. नंतर स्यडिलाच्या पूर्वे दिशेचे ठिकाणी कलशाची स्थापना करून कलशा व अग्नि यांच्या मध्यभागी सर्वतीभद्रपीठावर ब्रह्मादिक मंडलदेवतांचे आवाहन करून त्या मंडलदेवतांच्या मध्यप्रदेशी सुवर्ण प्रतिमेचे ठिकाणी "येचैह०" ह्या मंत्राने पितृदेवतांचे आवाहन करावे. त्याच्या दक्षिणप्रदेशी रौप्याच्या प्रतिमेचे ठिकाणी "आप्यायस्व०" ह्या मंत्राने सोमाचे आवाहन करून उत्तर भागी तांब्याच्या प्रतिमेचे ठिकाणी "सवितापश्वा०" ह्या मंत्राने सूर्याचे आवाहन करून पूजा करून अग्निस्थापना करून सर्वतीभद्राच्या ईशान्य दिशेचे ठिकाणी नवग्रहस्थापन इत्यादिक करावे. नंतर अन्वाधान करावे. ते असे:— "आदित्यादिग्रहान् अमुकसंख्याभिः समिञ्च वाज्याहुतिभिः पितृन् अष्टाविंशतिसंख्याकाभिः समिञ्चरुभ्यां सोमं सूर्यं च प्रत्येकमष्टोत्तरशतसंख्यसमिञ्चर्वाहुतीभिः शेषेणस्विष्टकृतं इत्यादि." या शांतीत स्विष्टकृत् होमाच्या पूर्वी माता, पिता, व शिशु यांच्यावर कलशांतोल उदकाने अभिषेक करून, नंतर स्विष्टकृत् होम व बलिदान इत्यादि करावी, हा विशेष जाणावा. याप्रमाणे दर्शशांति समाप्त झाली.

नक्षत्रशांती.

मूळनक्षत्राच्या, प्रथमचरणी पुत्रांचे जन्म झाले असता पित्याला मृत्यु प्राप्त होती. दुसऱ्या चरणी जन्म असता मातेला मृत्यु. तिसऱ्या चरणी जन्म असता ब्रव्यनाश. चवथ्या चरणी जन्म झाले असता कुळाचा नाश. याप्रमाणे दुष्ट फळे होतात; यास्तव मोठ्या यत्नाने शांति करावी. क्वचित् मतीं चवथा चरण शुभ असे पंडितांनी सांगितले आहे. कन्या मूळनक्षत्रावर जन्मली असता असेच फळ बुधानी जाणावे." कोणाच्या मतीं "मूळनक्षत्रीं शालेली कन्या आईबापांचा नाश करणारी होत नाही; तर मूळार शालेली कन्या सासऱ्याला मारखे, व आश्लेषानक्षत्रीं शालेली कन्या सासऱ्याला मारणारी होते; ज्येष्ठानक्षत्रावर जन्मलेली ज्येष्ठ दिराला मारते; विशाखानक्षत्रीं उत्पन्न शालेली कनिष्ठ दिराला मारखे; याप्रमाणे दुष्ट फळे होतात, याकरितां याविषयी जर मोठी शांति केली तर पूर्वीक दोषांचा नाश होतो, असे लक्षणतात. अमुक्त मूळाचे ठिकाणी उत्पन्न शालेला जो पुत्र त्याच्या सांग पित्याने आठ वर्षांपर्यंत करावा. अथवा पित्याने आठ वर्षांपर्यंत त्याचे मुलाबलोकन करू नये. "ज्येष्ठानक्षत्राची शेषवटची एक घटिका, व मूळनक्षत्राच्या पाहिल्या दोन घटिका, मेळून ज्या तीन घटिका, ते अमुक्तमूळ होय. अथवा ज्येष्ठांच्या शेषवटच्या दोन घटिका, व मूळांच्या पाहिल्या दोन घटिका मिळून चार संघिघटिका अमुक्त मूळ होय." "वृष, वृश्चिक, सिंह, कुंभ ह्या लक्ष्मी मूळनक्षत्र स्वर्गलोकीं राहते. मिथुन, तुळा, कन्या, मीन ह्या लक्ष्मी पातालीं राहावे. मेष, धनु, कर्क, मकर ह्या लक्ष्मीं पृथ्वीलोकीं राहते असे

सांगतात." ह्या लक्षांचे फळ—“स्वर्गलोकीं मूळ असतां राज्यप्राप्ति होईल, पाताळीं मूळ असतां धनप्राप्ति, मृत्युलोकीं मूळ असतां शून्य जाणावे, याप्रमाणे ह्यप्रकळ सम जावे.” “आश्लेषाचा दोष नऊ महिने, मूळाचा दोष आठ वर्षे, ज्येष्ठानक्षत्राचा दोष पंधरा महिने, याप्रमाणे दोष आहे याकरितां तेथपर्यंत ह्या मुळाचे दर्शन वर्ज्य करावे.” “व्यातीपाताचे ठिकाणीं अंगहाने, परिषाचे ठिकाणीं मृत्युफळ, वैधृतीचे ठिकाणीं आईबापांचा नाश, अमावास्येचे ठिकाणीं अंधपणा, मुळाचे ठिकाणीं समूळ नाश होतो, धृतीचे ठिकाणीं कुलनाश होतो. दोन यंधिकालांचे ठिकाणीं विकृतांग आणि हिनांग, होतें. तसेच दंतयुक्त असा झालेला आणि पांयाकडून झालेला हे मोठे अरिष्ट करणारे होतात. याकरितां क्रूर ग्रहांचो शांति करावी.” व्यतीपात इत्यादिकांचे ठिकाणीं सप्रहमख असी ह्या ह्या अनिष्टाची शांति अवश्य करावी. इतर शांतींत ग्रहमख अवश्य करावा असे नाही.

“शांतीच्या होमाचा मुख्य काल सांगतो, — जन्मदिवसापासून बाराव्या दिवसीं अथवा जन्मनक्षत्रीं किंवा शुभदिवसीं शांति करावी. जन्मदिवसापासून बाराव्या दिवसीं शांति करणे असेल तर शांतिला सांगितलेलीं नक्षत्रे, आहुति, अग्निचक्र हीं पाहण्याची आवश्यकता नाही. दुसऱ्याकालीं शांति करणे शाक्यास आवश्यक पाहावी. याप्रमाणे अन्य शांतिविषयींहि जाणावे.

अग्निचक्र पाहण्याचा प्रकार — “शुक्लधृतिपदैपासून वर्तमान तियि पर्यंत मोजून जी संख्या येईल तींत एक मिळववना आणि जी वर्तमानवार असेल तितके अंक त्यांत मिळवून ह्या संखेस ४ यानीं भागून शेष अंक उरेल त्यावरून अग्नि पहावा. शून्य अथवा तीन शेष असतां भूमीचे ठिकाणीं अग्नि, एक शेष असतां स्वर्गलोकीं अग्नि, दोन शेष असतां पाताळीं अग्नि.” भूमीचे ठिकाणीं अग्नि शुभ होय. होमाची आहुति पाहण्याचा प्रकार — “सूर्य नक्षत्रापासून दिवस नक्षत्रापावेतो नक्षत्रे मोजून ह्या पैकीं तीन तीन नक्षत्रेकरून एकेक ग्रहाचे मुखीं आहुति पडते ती असी, — पहिल्या तीन नक्षत्रीं सूर्याचे मुखीं, दुसऱ्या तीन नक्षत्रीं बुधाचे मुखीं, तिसऱ्या तीन नक्षत्रीं शुक्राचे मुखीं, चवथ्या तीन नक्षत्रीं शनीचे मुखीं, पांचव्या तीन नक्षत्रीं चंद्राचे मुखीं, सहाव्या तीन नक्षत्रीं मंगळाच्या मुखीं, सातव्या तीन नक्षत्रीं बृहस्पतीच्या मुखीं, आठव्या तीन नक्षत्रीं राहुमुखीं, नवव्या तीन नक्षत्रीं केतुमुखीं, याप्रमाणे आहुति पडतात. याकरितां ज्या दिवसीं पापग्रहाच्या मुखीं आहुति पडते ती अशुभ, व शुभ ग्रहाचे मुखीं पडते ती शुभ होय.” संस्कार, निव्वकर्म, निमित्त प्राप्त होतांच कर्तव्य जीं नैमित्तिक कर्म, व रोगाने आतुर यांविषयीं अग्निचक्र इत्यादिक पाहण्याची गरज नाही. शांतिकर्माविषयीं अग्निस्थापनकालीं अथवा पूर्णाहुतीचे समयीं आहुति व अग्नि हे पहावे.

सौम उत्तरा, रोहिणी, श्रवण, घनिष्ठा, शततारका, पुनर्वसु, स्वाती, मघा, आश्विनी, ज्येष्ठा, पुष्य, अनुराधा, रेवती, ह्या नक्षत्रां; गुरु व शुक्र यांचें अस्त, मलमास यांहीं रहित अशा शुभवार, शुभतिथि इत्यादिक दिवसीं शांति करावी. निमित्ताच्या सन्निहित कर्तव्य जें नैमित्तिक कर्म, व रोगसंबंधी शांति ह्यांविषयीं अस्त इत्यादिकांचा विचार करूं नये. या प्रमाणें ह्या शांतीच्या प्रसंगानें सर्व शांतीला उपयोगी असा शुभ दिवसाचा निर्णय सांगितला.

अभुक्त मूळाचे ठिकाणीं जन्म झालें असतां आठ वर्षेपर्यंत मुलाचा त्याग करून ज्ञान-तर शांति करावी. अभुक्तमूळाहून अन्य जें मूळ नक्षत्र त्याजवर जन्म झालें असेल तर बाराव्या दिवसीं अथवा जवळ येणाऱ्या मूळ नक्षत्रानें युक्त अशा शुभ दिवसीं, अथवा अन्य शुभ दिवसीं गोप्रसवशांति करून "अस्य शिशोर्मूलप्रयमचरणोत्पत्ति सूचितारिष्टनि-रासार्थं सग्रहमखां शांतिं करिष्ये," असा संकल्प कराना, दुसरा, तिसरा इत्यादिक चरणीं जन्म झालें असल्यास संकल्पांत तसा ऊह करावा. ब्रह्मा व सदस्य हे कृताकृत आहेत. ऋत्विज आठ किंवा चार असाने. मध्येकलशावरती सुवर्णाच्या प्रतिमेवर रुद्रदेवतेचें आवाहन इत्यादिक करावें. त्या मध्यम कलशाच्या चार दिशांचे ठिकाणीं चार कलशा स्थापन करून त्या कलशावर तांदुळांच्या राशांचे ठिकाणीं बरुणाची पूजा करावी, अथवा मध्यभागीं कलशावर प्रतिमेचे ठिकाणीं रुद्राची पूजा करावी, व आख्या उत्तरे कडे कलशावर बरुणाची पूजा करावी, याप्रमाणें दोन कलशा स्थापावे. रुद्रकलशाच्या उत्तरेकडे नो कलशा त्याच्यावर प्रतिमांचे ठिकाणीं निर्ऋति, इंद्र, अप, ह्या देवतांचें आवाहन करून कमळाच्या चौबीस दलांचे ठिकाणीं उत्तराषाढापासून अनुराधापर्यंत, जीं चौबीस नक्षत्रे आख्या विश्वेदेव इत्यादिक ज्या चौबीस देवता आंचें तांदुळांचे राशी इत्यादिकांवर आवाहन करून आठ दिशांचे ठिकाणीं इंद्रादिक आठ लोकपालांचें आवाहन करून सर्वांची पूजा करावी. अग्नि व ग्रह यांचें स्थापन इत्यादिक कर्म शाक्यानंतर अन्वाधान करावें. तें असें;—“अर्कादिग्रहान् सभिश्चर्वाग्याहुतिभिः निर्ऋतिप्रतिद्रव्यं अष्टोत्तरशतसंख्याभिर्घृतमिश्रपायससामिदाग्यचर्वाहुतिभिः यद्वा पायसेनाष्टोत्तरशतसंख्यया समिदाग्यचर्वाभिरष्टाविंशतिसंख्यया इंद्रमपश्च प्रतिद्रव्यमष्टाविंशतिसंख्यपायससामिदाग्यचर्वा हुतिभिर्विश्वेदेवादिचतुर्विंशतिदेवता अष्टाष्टपायसाहुतिभिः रक्षोहणमभिरुणुष्वपाजेतिपंचदश ऋग्भिः प्रत्यूचमष्टाष्टसंख्यकृत्तराहुतिभिः १२० सवितारं दुर्गां श्यंबकं कवीन् दुर्गां वास्तो ष्पातं अभि क्षेत्रपालं मित्रावरुणावभिस्राष्टकृत्तराहुतिभिः श्रियं हिरण्यवर्णांमिति पंचदश-ऋग्भिः प्रत्यूचमष्टाष्टसामिदाग्यचर्वाहुतिभिः सोमंत्रयोदशपायसाहुतिभिः रुद्रस्वराजंचतुर्गुहो ाभ्येनाग्निं वायुं सूर्यं प्रजापतिं चाज्येन बोधेण स्विष्टकृतभिः” असे अन्वाधान

करावे. अन्वाधानात 'कवीन्' असे जेथे झटले आहे तेथे 'ऋत्विक्स्तुति' असा उद्देश करावा असे मथूळ इत्यादिक ग्रंथांत सांगितले आहे. तीन सुपामध्ये निर्वाण ज्ञानजे तांदूळ घ्यावे. त्यामध्ये पहिल्या सुपांत पायसाकरितां मंत्ररहित बारा मुठी तांदूळ निऋति, इंद्र, अप् यांच्या उद्देशेकरून घ्यावे. दुसऱ्या सुपांत चरु करण्याकरितां त्याच तीन देवतांच्या उद्देशेकरून बारा मुठी घ्यावे. पुनः पहिल्या सुपांत २६ मुठी पायसाकरितां घ्यावे. तिसऱ्या सुपांत कसरासाठीं ४४ मुठी घ्यावे. दुसऱ्या सुपामध्ये पुनः चार मुठी घ्यावे. पुनः पहिल्या सुपांत सोमदेवतेकरितां चार मुठी घ्यावे. नंतर तीन सुपामध्ये सर्व आहुतीला पुरत इतके तांदूळ घेऊन पूर्वी जितक्या जितक्या मुठी तांदूळ घेतले त्या त्या संख्येने ते निरनिराळे धुवून तीन पात्रांमध्ये तीन चरु शिजवावे. तिलाभिस्त तांदूळ करून त्यांचा पाक करावा ज्ञानजे कसर होतो. ग्रहांच्या होमाकरितां चरु घेणे तो घरात शिजलेला घ्यावा. निऋति इत्यादिक देवतांसाठीं जसे तांदूळ ज्या क्रमाने घेतले त्याच क्रमाने त्यांचा पाक करावा असे सर्व ग्रंथांत सांगितले आहे, ज्ञानून घरात सिद्ध झालेल्या अन्नांतच तीळ, दूध मिश्रित करून कसर व पायस इत्यादिक सिद्ध करणे असे जें अलक्ष्य, आळस इत्यादिकेकरून केलेले कर्म ते व्यर्थच होय. तदनंतर यज्ञ-यानाने द्रव्यांचा त्याग करावा. तो असा—“एतावत्संख्याहुतिपर्याप्तं समिदायचरुद्रव्यमादित्यादिनवग्रहेभ्यो नमम ॥ एवमधिदेवतादिभ्यः ॥ ततोऽष्टोत्तरशतसंख्याहुतिपर्याप्तं घृत-मिश्रपायसं अष्टोत्तरशताहुतिनामाष्टविंशत्याहुतीनावापर्याप्तं समिदायचर्वात्मकरुद्रव्यत्रयमिदं निऋतये नमम ॥ अष्टाविंशत्याहुतिपर्याप्तं पायससामिच्चर्वाज्यामिद्राय नमम ॥ एवमद्भ्यः ॥ अष्टाष्टाहुतिपर्याप्तं पायसं विश्वेभ्यो देवेभ्यो १ विष्णवे २ वसुभ्यो ३ वरुणाय ४ अजैकपदे ५ अहयेनुष्ण्याय ६ पूष्णे ७ अश्विभ्यां ८ यमाय ९ अग्नये १० प्रजापतये ११ सोमाय १२ रुद्राय १३ आदित्ये १४ बृहस्पतये १५ सपेभ्यः १६ पितृभ्यः १७ भगाय १८ अर्यग्ये १९ सवित्रे २० त्वष्ट्रे २१ वायवे २२ इंद्राग्निभ्यां २३ मित्राय २४ नमम ॥ विंशत्यधिकशताहुतिपर्याप्तं कसरंक्षोभ्रेऽग्नये” नमम ॥ अष्टाष्टाहुतिपर्याप्तं कसरं सवित्रे दुर्गायै त्र्यंबकाय कविभ्यो दुर्गायै वास्तोष्पतयेऽग्नये क्षेत्रपालाय मित्रावरुणाम्यामग्नयेच नमम प्रतिद्रव्यं विंशत्याधिकशताहुतिपर्याप्तानि समिच्चर्वाज्यानि श्रियै नमम त्रयोदशाहुतिपर्याप्तं पायसंसोमाय चतुर्गृहीताज्यं रुद्राय स्वराजे एकैकाहुतिपर्याप्तमाज्यं अग्नये वायवे सूर्याय प्रजापतयेच नमम.” याप्रमाणे विस्तारसहित त्या त्या द्रव्यांची संख्या व देवता यांच्या उच्चारेकरून सर्वत्र त्याग करावा. कोणी ग्रंथकार तर, संक्षिप्त रीतीने त्याग करितात, तो असा;—“इदं संपकल्पितमन्वाधानोक्ताहुतिसंख्यापर्याप्तमन्वाधानोक्ताभ्यो धक्ष्यमाणाम्यो देवताभ्यो नमम.” तदनंतर ग्रहांच्या मंत्रांनी व निऋति इत्यादिक देवतांच्या मंत्रांनी बधाबोध होय कैच्यानंतर ग्रहांची घूना, स्थिष्टकृत,

प्रायश्चित्त, होम, बलिदान, पूर्णाहुति, प्रणीतापात्र नेये इत्यादिक, अभिपूजा, एष्यपर्यंत कर्म शान्त्यानंतर यजमान इत्यादिकांला अभिवेक कराच. नंतर यजमानानें शुभ वस्त्र, गंध धारण करून "मानस्तोके" मंत्रानें विभूति धारण करून मुख्य देवतांचें पूजन, विसर्जन, श्रेयोग्रहण, दक्षिणादान हीं कर्म करावीं, व शंभर, पन्नास, किंवा दहा ब्राह्मणांला भोजन घालावें. याप्रमाणें संक्षेप सांगितला.

आश्लेषाशांति.

आश्लेषाक्षत्राच्या एकंदर घटिका साठ, त्यांचे क्रमानें दहा सांग कराने. ते असे— पहिला भाग पांच घटिका, दुसरा सात घटिका, तिसरा दोन घटिका, चवथा तीन घटिका, पाचवा चार घटिका, सहावा आठ घटिका, सातवा अकरा घटिका, आठवा सहा घटिका, नववा नऊ घटिका, दहावा पांच घटिका, याप्रमाणें भाग करून ज्या भागांत जन्म होईल याप्रमाणें त्यांचीं फळें क्रमानें जाणावीं. तीं अशीं—राज्य, पित्याचा नाश, मातेचा नाश, कामभोग, पितृभक्ति, बळ, हिंसकपणा, त्याग, भोग, धन, यानंतर चरणाविभागानें फळ.तें असें— आश्लेषांचा पहिला चरण शुभ होय, दुसऱ्या चरणां धन-नशा, तिसऱ्या चरणां मातेचा नाश, चवथ्या चरणां पित्याचा नाश. आश्लेषानक्षत्राच्या शेवटच्या तीन चरणांवर कन्या जन्मली असतां सासवेला मारत्ये. याप्रमाणें वर जो तोडि शेवटच्या तीन चरणांवर जन्मला असतां आपल्या सासवेला मारतो. "आश्लेषानक्षत्राच्या कोणत्याहि चरणां जन्म झालें असतां त्याची, जन्मदिवसापासून बाराव्या दिवशीं यज्ञानें शांति करावी. बाराव्या दिवशीं न शान्त्यास जन्मनक्षत्रीं अथवा शुभदिवशीं करावी.

यानंतर उक्तकालीं गोमुखप्रशवशांति करून "अस्य शिशोः आश्लेषानजनसूचित सर्वां रिष्टपरिहारद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रसिद्धं इत्यादि," असा संकल्प करून मूळशांतीप्रमाणें दोन कलशांवर हस्त व वरुण या देवतांची पूजा करून चौवीस दलांनीं युक्त असें कमळ काढून त्यानवर कलश स्थापून त्या कलशाचे ठिकाणीं प्रतिवेवर आश्लेषानक्षत्राची देवता जे सर्प त्यांचें आवाहन करून त्यांच्या दक्षिणप्रदेशीं पुण्यनक्षत्राची देवता जो नृहस्पति त्यांचें आवाहन करून उत्तर प्रदेशीं मघानक्षत्राची देवता पितर त्यांचें आवाहन करून चौवीस दलांचे ठिकाणीं पूर्व दळापासून आरंभ करून प्रदक्षिण वर्तमानें पूर्वानक्षत्राची देवता जो भग त्यापासून पुनर्वसु नक्षत्राची देवता अदितिपर्यंत चौवीस द्वेवतांचें आवाहन इत्यादिक करावें. कौस्तुभ ग्रंथांत तर, तैत्तिरीय शास्त्रेच्या मंत्रांनीं पुण्य, मघा आदि करून पूर्वा इत्यादिक नक्षत्राचेंच आवाहन करण्याविषयीं सांगितलें आहे, नक्षत्रांच्या दिक्तांचें आवाहन सांगितलें नाहीं. तदनंतर अष्टौ दिक्पालांचें आवाहन करून आवाहन केलेंल्या सर्व देवतांचें पूजन करावें. यानंतर अभि व ग्रह यांची स्थापना करून त्यांच्या-

धान-करावें. आदिआदि प्रहांच्या अन्वाधानाचा उद्देश-केल्यानंतर प्रधानदेवतांचें अन्वा-
धान करावें. तें असें,—“ प्रधानदेवताः सर्पान् प्रतिद्रव्यमष्टोत्तरशतसंख्यमष्टानिशांति
संख्यंवाघृतमिश्रपायससामिदाज्यचर्बाहुतिभिः बृहस्पति पितृंश्चाष्टानिशातिसंख्यमष्टसंख्यंवा हेरे
ब्रह्मैर्भगादिचतुर्विंशतिदेवताः अष्टाष्टपायसाहुतिभिः रक्षोहणमित्यादि.” अवशिष्ट देवतांचा
निर्देश मूळशांतीप्रमाणें करावा. मूळशांतीप्रमाणेंच पायस, कसर, आणि चर्ब हीं द्रव्ये
शिवून तयार करावीं व यांचा आगहिं तसाच करावा. कौस्तुभामध्ये सांगितलेले प्रधा-
नदेवतांचे जे मंत्र याहींकरून या या देवतांचा होम करावा. अवशिष्ट सर्व कर्म मूळ
शांतीप्रमाणें जाणावें.

जन्मकालीं ज्येष्ठा नक्षत्र असतां त्याचें फल

“ज्येष्ठानक्षत्राच्या एकंदर घटिका साठ, यांचे समसमान दहा भाग करून ज्या
भागांत जन्म होईल याचें फल पुढें सांग्तां या प्रमाणें जाणावें. तें असें;—प्रथम भागीं
जन्म झालें असतां मातेची आई मृत होते. दुसऱ्या भागीं मातेचा पिता मृत होतो
तिसऱ्या भागीं मातुळ मृत होतो. चवथ्या भागीं माता मृत होते. पांचव्या भागीं स्वतां
आपण नाश पावतो. सहाव्या भागीं आपल्या गोत्रजांचा नाश करितो. सातव्या भागीं
मातेचें कुळ व पियाचें कुळ यांचा नाश करितो. आठव्या भागीं ज्येष्ठबंधूचा नाश
करितो. नवव्या भागीं सासऱ्याला मारितो. दहाव्या भागीं निश्चयेंकरून सर्वांला मारितो
असें जाणावें; ज्येष्ठानक्षत्रावर पुत्र जन्मला असतां आपल्या ज्येष्ठभ्रात्याचा नाश करणारा
होतो. ज्येष्ठानक्षत्रावर कन्या जन्मली असतां ज्येष्ठ दिरांग शीघ्र मारिले. ज्येष्ठा
नक्षत्राच्या पहिल्या तीन चरणांवर पुत्र जन्मला असतां तो श्रेष्ठहि होतो. ज्येष्ठानक्षत्राच्या
शेवटच्या (चवथ्या) चरणीं पुत्र जन्म पावला असतां पियाचा, व आपला नाश कर-
णारा होतो.’

आतां ज्येष्ठानक्षत्रशांति सांगतां.

वाराच्या दिवसी किंवा शांत्युक्त शुभादिवसी गोप्रसवशांति करून, “अस्य शिशोर्ज्येष्ठ
र्क्षजननसुचितसर्वांरिष्टपरिहारद्वारा०,” इत्यादिक संकल्प करून मध्यम कलशावर सुवर्णा
च्या प्रतिमेचे ठिकाणीं इंद्राणीसहित ऐरावतावर आरोहण केलेला इंद्र आणि लोकपाल
यांचें आवाहन करून दोन आरक्तवस्त्रें, करंज्यांचा नैवेद्य याहीं युक्त सोळा उपचारांनीं
पूजा करावी. या कलशाच्या चार दिशांचे ठिकाणीं चार कलश, व आच्या पूर्वे प्रदे
हीं मध्यभागीं शताच्छिन्न कलश असे पांच कलश स्थापून यांच्यावर पूर्ण पात्रें ठेवून
फलादिकांवर वस्त्रांचें आवाहन, पूजा इत्यादिक करावी. अन्वाधानांत, प्रहांचें अन्वा-

ज्ञान शान्त्यानंतर "ईदं पलाशसामेदाग्न्यच्चद्रव्यैः प्रतिद्रव्यमष्टोत्तरशतसंख्यया ईशार्येदोमरु स्वत इतिमंत्रेण प्रजापातिमष्टोत्तरशततिलाहुतिभिः समस्तव्याहृतिमंत्रेण शेषेणारिवष्टकृतं," इत्यादिक अन्वाधान करावें. एकशें आठ ब्राह्मणांला भोजन घालावें. याप्रमाणें ज्येष्ठा नक्षत्रशांतीचा संक्षेप सांगितला.

“ चित्रानक्षत्राचें पूर्वाह्न, पुष्यनक्षत्राचे मघले दोन पाद, पूर्वाषाढा नक्षत्राचा तिसरा पाद, आणि उत्तराचा आद्य पाद यांचे ठिकाणीं पुत्र शाला असतां माता, पिता, भाता, व अप्पण यांचा नाश करितो. ” उत्तराचे क्षणजे उत्तराफल्गुनीच्या प्रथम चरणीं असा अर्थ. या विषयीं असा विचार दिसतो— चित्रा नक्षत्राच्या पूर्वाह्नीं जन्म झाले असतां गोप्रसन्न करून नक्षत्र देवतेच्या प्रतिमेची पूजा करून अजादान करावें. या प्रमाणें पुष्याच्या दुसऱ्या व तिसऱ्या चरणीं जन्म झाले असतां गोप्रसन्न, नक्षत्र देवतेची पूजा, गोदान हीं करावीं. उत्तराफल्गुनीच्या पहिल्या चरणीं जन्म असतां नक्षत्रदेवतेची पूजा व तिलपात्राचें दान हीं करावीं. असेंच पूर्वाषाढांच्या तिसऱ्या चरणीं जन्म असतां नक्षत्रदेवतेची पूजा, सुवर्ण दान हीं करावीं. मघानक्षत्राच्या पहिल्या चरणीं जन्म असतां मूळनक्षत्रा प्रमाणें फळ होंतें, यास्तव या विषयीं गोप्रसन्न व नक्षत्र देवतेची पूजा, ग्रह-मख हीं करावीं. मघानक्षत्राच्या पहिल्या दोन घटिकांत जन्म झाले असतां नक्षत्रगंडांत शांति जी तीहिं करावी. रेवती नक्षत्राच्या शेवटच्या दोन घटिका व अश्विनी नक्षत्राच्या पहिल्या दोन घटिका, अंत जन्म झाले असतां नक्षत्रगंडांत शांति, गोप्रसन्न, ग्रहमख हीं सर्व करावीं. रेवती, अश्विनी यांच्या इतर भागांचे ठिकाणीं, आणि मघा नक्षत्राच्या शेवटच्या तीन चरणीं जन्म असतां दोषविशेषा विषयीं वचन नाहीं या-करितां शांति इत्यादिक करण्याचें कारण नाहीं. असेंच विशाखांच्या चवथ्या चरणीं जन्म झाले असतां शालक (पत्नीचा भाता,) दार यांचा नाश होतो इत्यादिक दुष्ट-फल सांगितलें आहे यास्तव ग्रहमख करावा. कारण, ज्या काला विषयीं दुष्टफल सांगून याची शांति सांगितली नाहीं तेथें ग्रहमख करावा असें कर्मलाकराचें वचन आहे. या प्रमाणें इतर ठिकाणींहि जाणावें. या प्रकारें नक्षत्रांच्या शांति समाप्त झाल्या.

आतां व्यतीपात, वैधृति, संक्रांति यांचीं फलें व शांति सांगतां.

“ पुत्राच्या जन्मसमयीं व्यतीपात, वैधृति, व सूर्यसंक्रांत हीं असून आनवर जन्म झाले असतां दरिद्र, रव्यनाश, आपणास मृत्यु हीं होतात. व स्त्रियांला शोक, दुःख, सर्वनाश यांतें कारणारा होतो, यास्तव गोमुलप्रसन्न व नवग्रहांनीं पुक्त अशी शांति हीं करावी. ”

सप्तकाळीं संकल्प इत्यादिक करून पांच द्रोण (पांच अक्षमणी) परिमित मान [साळी] याची राशि करून त्याच्यावर अडीच द्रोणपरित्त तंतुळांची राशि, त्याच्या वर सवा द्रोणपरिमित तिळांची राशि करून त्या तिळांच्या राशीवर विधिपूर्वक कल्प स्थापित करून त्या कलशावर सुवर्णाच्या प्रतिमेचे ठिकाणी सूर्याचे आवाहन करून त्याच्या दक्षिण व उत्तर द्या प्रदेशाचे ठिकाणी अग्नि व रुद्र यांचे आवाहन करून तीन देवतांची व्यतीपात शांति व संक्रांति शांति यांचे ठिकाणी पूजा करावी, व्यतीपात आणि संक्रांति या दोहोंचे ठिकाणी जन्म झाले असता व्यतीपात व संक्रांति या दोनही शांतींचा एकतंत्राने संकल्प करून एकच शांति करावी. ह्या एकतंत्रशांतिमध्ये पूजा, होम इत्यादिकांची मसंगीसद्धि होते. ह्मणजे पूजा होम इत्यादिक द्विगुण करण्याचे प्रयोग नार्हा. अथवा प्रधान देवतेचा होम दुष्पट करावा असे वाटते. ऋहपीठस्थ श्रेयसांचे अन्वाधान झाल्या नंतर “सूर्य उत्सूर्यो बृहदितिमंत्रेण समिदाज्यचर्वाहुतिभिः प्रतिद्रव्यमष्टोत्तरशतसंख्याभिः अग्नि रुद्रच तै रेव द्रव्यैः प्रत्येकमष्टाविंशतिसंख्याहुतिभिः अग्नि हूतमिति श्र्यंबकमिति मंत्राभ्यां मृत्युंजयमष्टोत्तरशतीतलाहुतिभिः शेषेणेत्यादि.” याप्रमाणे अन्वाधान करावे. नंतर अभिषेक केल्यावर गाई, वस्त्र, सुवर्ण इत्यादिक दाने करून शंभर ब्राह्मणांला भोजन घालावे. या प्रमाणे व्यतीपात, संक्रांति यांची शांति समाप्त झाली.

आतां वैधृतिशांतीचा विशेष प्रकार सांगतो.

पूर्वी सांगितल्याप्रमाणे भात, तांदूळ व तिळ यांचे राशीवर कलश स्थापन करून त्या कलशावर “श्र्यंबक०” ह्या मंत्राने मध्ये रुद्रदेवतेचे व त्याच्या दक्षिणेस “उत्सूर्य०” ह्या मंत्राने सूर्याचे, त्याच्या उत्तरेस “आप्यायस्व०” ह्या मंत्राने सोमाचे याप्रमाणे आवाहन करून पूजा करावी. नंतर अन्वाधान करावे. ते असे;—“रुद्रं समिच्चर्वाज्यैःप्रतिद्रव्यमष्टोत्तरशतसंख्याहुतिभिः सूर्यसोमी प्रत्येकमष्टाविंशतिसंख्यैस्तेरेवद्रव्यैर्मृत्युंजयं अष्टोत्तरसहस्रशतान्यतरसंख्य तिलाहुतिभिः शेषेणेत्यादि.” याप्रमाणे अन्वाधान करून अवशिष्ट कर्म पूर्वाप्रमाणे करावे. संक्रांतीच्या दिवसां वैधृति असेल तर संक्रांति व वैधृति या दोहोंच्या देवता निरनिराळ्या आहेत याकरितां दोन शांति निरनिराळ्या कराव्या. याप्रमाणे वैधृतिशांतीचा प्रयोग समाप्त झाला.

एक नक्षत्रावर जन्म झाले असतां त्याचीं फळे व शांति

‘‘भाते किंवा पितापुत्र ह्यांचे एकाच नक्षत्रावर जन्म झाले असतां त्यांतून एकाला निःशेषेकरून मृत्यु प्राप्त होतो.’’ पित्याला जन्मनक्षत्री किंवा मातेच्या जन्मनक्षत्री पुत्राचे किंवा कन्येचे जन्म झाले असतां गोमुखप्रसव करून एकनक्षत्रजननाची शांति करावी.

सौंदर आता व सौंदर नहीण यांच्या नक्षत्री भाषाचें अथवा नहिणीचें जन्म झाले असतां गोप्रसव केल्यावाचूनच शांति मात्र करावी. संकल्पांमध्ये “विषेकनक्षत्रोत्पत्तिसूचित सार्वरिष्टनिरसन” इत्यादिक उद्द करावा. कलशाचे ठिकाणीं व्हावर, ज्या नक्षत्री जन्म झाले असेल त्या नक्षत्राच्या प्रतिमेची, अथवा त्या नक्षत्राच्या देवतेच्या प्रतिमेची “अभिर्नःपातु कृत्तिका” इत्यादिक तैत्तिरीयमंत्रांनीं पूजा करावी. नंतर अन्वाधानामध्ये उद्द करावा तो असा,—“इदं नक्षत्रं अमुकानक्षत्रदेवतांवासमिच्चवर्ग्यैःप्रतिब्रह्म मष्टोत्तरशतसंख्यं शेषेणेत्यादि.” मंग शेवटीं ज्याचें एकनक्षत्रीं जन्म झाले असेल व्हावर अभिषेक करावा. ह्या शांतिमध्ये ग्रहमत्वाची आवश्यकता नाहीं. क्वचित् ग्रहामध्ये प्रतिमांचे ठिकाणीं हरिहरांची पूजा करून त्या प्रतिमांचें दान करावें. असेंहि सांगितलें आहे.

आतां ग्रहणावर जन्म झाल्याचें फळ व त्याची शांति हीं सांगतां.

“चंद्र व सूर्य यांच्या ग्रहणीं जर जन्म होईल तर ग्रहणावर होणार जो व्यास निश्चयें मृत्यु होतो, व रोग पिडा,दारिद्र्य,शोक, कलह हीं प्राप्त होतात. ह्या ग्रहण शांतींत गोमुखप्रसव करावा असें वाटतें. ग्रहमख करावा किंवा न करावा. संकल्पांत, “सूर्यग्रहण कालिक प्रसूतिसूचितनिरसन,” इत्यादिक उद्द करावा. ग्रहणसमयीं जें नक्षत्र असेल त्याची किंवा त्या नक्षत्रदेवतेची सुवर्णप्रतिमा करावी. सूर्यग्रहण असेल तर सूर्याची सुवर्णप्रतिमा,चंद्रग्रहण असेल तर रूपाचें चंद्रांबिंब (जसें असेल तसें) करून दोनहि ग्रहणांमध्ये शिखाची राहुप्रतिमा नागाकार करून गोमयानें सारवलेल्या अशा शुद्ध भूमीवर शुभ्र वस्त्र घालून साजवर तीन देवतांची पूजा करावी. एथें कलश स्थापन इत्यादिक करूं नये. त्या वस्त्रावर मध्यभागीं “आरुण्येन०” ह्या मंत्रानें सूर्य, त्याच्या दक्षिणभागां “स्वर्भानोरध०” ह्या मंत्रानें राहु व उत्तरप्रदेशीं नक्षत्रदेवता, याप्रमाणें आवाहन करून पूजा करावी. चंद्रग्रहण असतां “आप्यायस्व०” ह्या मंत्रेंकरून मध्यभागीं चंद्राची पूजा करावी, व दोन पार्श्वभागीं राहु व नक्षत्रदेवता यांचें आवाहन पूर्वीप्रमाणें करून पूजा करावी. सूर्यग्रहण असेल तर अन्वाधानामध्ये “सूर्यं अर्कसमिदाज्यचक्षतिलैःप्रत्येकं अष्टोत्तरशतसंख्यं याराहुं दूर्वाद्यचक्षतिलैस्तावत्संख्यैर्नक्षत्रदेवतांजलवृक्षसमिदाज्यचक्षतिलैस्तावत्संख्यया शेषेणे त्यादि,” असा उद्द करावा. चंद्रग्रहण असेल तर “चंद्रं पालाशसमिदाज्यचक्षतिलैः” असा विशेष, अवाशिष्टकर्म पूर्वी प्रमाणें जाणावें. शेवटीं ग्रहांच्या कलशातील उदकानें अथवा पंचगव्य, पंचत्वचा, पंचपल्लव इत्यादिकांनीं युक्त अशा लौकिक उदकानें अथवा

केवळ लौकिक उदकानेंच अभिवेक करावा. — ग्रहणाच्या वैषम्यसमयी जन्म झाले तर शांति करूंच नये, तर दुष्ट काल आहे याकारितां दशमिभेक करावा असें वटते.

आतां नक्षत्रगंडांत व त्याची शांति.

रेवती, आश्लेषा, आणि ज्येष्ठा ह्या तीन नक्षत्रांच्या शेवटच्या दोन दोन घटिका; अश्विनी, मघा, मूळ ह्या तीन नक्षत्रांच्या पहिल्या दोन दोन घटिका, याप्रमाणें चार घटिका परिमित असा तीन प्रकारचा नक्षत्रगंडांत होतो. “अश्विनी, मघा व मूळ यांच्या पूर्वाधीं पुत्राचें जन्म झाले असतां पियाला पीडा होते. रेवती, आश्लेषा, आणि ज्येष्ठा यांच्या उत्तराधीं जन्म झाले असतां मातेला पीडा होते. गंडांतावर जन्म झालेल्या सर्वांचा त्याग करावा. सहा महिन्यांपर्यंत त्या मुलाचें दर्शन करूंच नये. अथवा भक्तिमान् होत्साता सोमाच्या मंत्रानें मोठी शांति करावी.” शांतीचा संकल्प—“अस्य शिशोरेवअश्विनीसंध्यात्मकगंडा-सन्नननसूचितारिष्टनिरासार्थं नक्षत्रगंडांतशांति करिष्ये,” असा संकल्प करावा. गोमुख प्रसव करून सोळा पळे, आठ पळे किंवा चार पळे वजन असें कांस्यपात्र करून त्यामध्ये पायस (खोर,) किंवा दूध घालून त्यांत लोण्यानें भरलेला असा शंख ठेवून त्या शंखावर रुप्याचें चंद्रविंब ठेवून “सोमोहं” या भावनेनें ध्यान करून “आप्यायस्व०” ह्या मंत्रानें चंद्राची पूजा करावी. पूजा झाल्यावर “आप्यायस्व०” ह्या मंत्राचा एक हजार जप करावा, व ग्रहमखसंबंधी होम करावा. ह्या शांतींत प्रधानदेवतेचा होम नाही. दुसऱ्या ग्रंथा-मध्ये तर तांब्याच्या कलशावर रुप्याचे प्रतिमेचे ठिकाणीं बृहस्पतीच्या मंत्रानें वागीश्वराची पूजा करून त्याच्या उत्तरेस चार कलश स्थापून त्यामध्ये पंचपल्लव इत्यादिक, कुंकुम, चंदन, कुष्ठ, गोरचन हीं घालून वरुणाची पूजा करावी असें सांगितलें आहे. नंतर आचार्याला शंख व मौक्तिक यांसह चंद्रविंबाचें दान करावें. वर दाखविलेला ग्रंथांतरीचा पक्ष स्वीकारला असतां तांब्याच्या कलशासहित वागीश्वरप्रतिमेचें दान आपुण्याच्या वृद्धीकरितां, “सहस्राक्षेण०” ह्या मंत्राचा जप, व दहापेक्षां जास्त ब्राह्मणांला भोजन हीं करावीं.

आतां तिथिगंडांत लग्नगंडांत, यांची शांति.

पंचमी, षष्ठी; दशमी, एकादशी; पौर्णिमा, किंवा अमावास्या, प्रतिपदा ह्या तिथींचि संधीच्या ज्या दोन घटिका (क्षणजे पंचमीची शेवटची एक व षष्ठीची पहिली एक) आंला तिथिगंडांत असें क्षणतात. कर्क, सिंह; वृश्चिक, धनु; मीन, मेष; ह्या लग्नांचे संधीची एक घटिका (कर्काची अर्धी व सिंहाची अर्धी मिळून एक) तिला लग्नगंडांत क्षण-तात. त्यामध्ये तिथिगंडांतच्या पूर्वाधीं जन्म झाले असतां तत्कालीं ज्ञान करून नृषभाचें दान किंवा तितकें इव्य दान करून जननाशीच गेल्यानंतर शांति करावी. तिथिगंडां

साध्या उत्तरार्धी जन्म झाले असता शांति मात्र करावी. लग्नगंडांतल्या पूर्वार्धी जन्म झाले असता सुवर्णाचे दान करावे. उत्तरार्धी जन्म झाले असता शांति मात्र करावी. कलशा-वर सुवर्णाच्या प्रतिमेचे ठिकाणी वरुणाची पूजा करून वरुणाच्या उदरगाने प्रत्येक इग्याचा १०८ याप्रमाणे सपिधा, चरु; तिळ, आणि यव वाचा होम करावा. जव, त्रीह उडोई; तिळ, मूग बांचे दक्षिणेच्या स्थानी दान करावे.

दिनक्षय इत्यादिकांची शांति.

“दिनक्षय, कल्याणी, यमघंटयोग, दग्धयोग मृत्यु, दुष्टयोग, आणि तिथीच्या निषिद्ध घटिका यांचे ठिकाणी व पापचारयोगी जन्म झाले असता ते जन्म अतिदोषकारक होते.” यमघंट इत्यादिक योग ज्योतिष ग्रंथांत प्रसिद्ध आहेत. दुष्टयोग व तिथि यांच्या निषिद्ध घटिका — “विष्कंभ व बज्रयोग यांच्या पहिल्या तीन तीन घटिका, गंड व अतिगंड यांच्या सहा सहा घटिका, परिघाचे अर्ध, शूलाच्या पांच घटिका, व्याघाताच्या नऊ घटिका याप्रमाणे घटिका टाकाव्या. चतुर्थीच्या ८, पष्ठीच्या ९, अष्टमीच्या ११, नवमीच्या २६, द्वादशीच्या १०, चतुर्दशीच्या ९, याप्रमाणे तिथीच्या पहिल्या घटिका टाकाव्या.” याप्रमाणे सांगितलेल्या या नाणाच्या. दिनक्षय इत्यादिक जे दोष आंतून एकेक दोषाने दूषित अशा काली जन्म झाले असता शिवावर रुद्राच्या एकादशिनाने अभिषेक करावा. दोन तीन दोष असून त्या समयी जन्म झाले असता ग्रहयज्ञ, पिंपळाला प्रदक्षिणा इत्यादिक दोन तीन प्रकार करावे. “शिवीच्या देवालयां भक्तीकरून घृताचा दिवा लावावा. गणपतीचे सूक्त, पुरुषसूक्त, सौरसूक्त, मृत्युंजयजप, शांतिसूक्तांचा जप, रुद्रजप, हीं केल्याने मृत्यूला निकणारा होतो,” असे वचन आहे या करितां बहुत दोष असतील तर वाक्यांत सांगितलेले जपाहे करावे:

आतां विषघटींची शांति सांगतां.

कौस्तुभांत तिथि, वार आणि नक्षत्रे यांच्या विषघटिका सांगितल्या आहेत तथापि, ज्योतिष ग्रंथांमध्ये नक्षत्रांच्याच विषघटिका महादोषकारक असे सांगितले याकरितां नक्षत्रांच्या विषघटींतच जन्म झाले असतां सांगितलेली शांति करावी. तिथि, वार यांच्या ज्या विषघटी त्या अल्पदोषकारक आहेत यास्तव त्यांचे ठिकाणी जन्म असतां रुद्राभिषेक इत्यादिक करावा. विषघटींचे लक्षण कौस्तुभ इत्यादिक ग्रंथांतून पहावे. विषघटिका व पापग्रहांचे युक्त असे लग्न व लग्नांश यांचे ठिकाणी जो उत्पन्न झाला तो पिता, माता, धन, व आपण यांचा नाश — विष, सखें, अखें, यांहीं करून करणारा होतो.” “एत

द्विषणाडीषु शिशुजननसूचितारिष्टेऽदि. ” असा संकल्प करून एका कलशावर चार प्रतिमा ठेऊन त्यांचे ठिकाणीं रुद्र, यम, अग्नि, आणि मृत्यु या देवतांची, “कद्रुद्राययमाय सोमं अग्निर्मूर्धा परंमृत्यो० ” ह्या मंत्रांनीं पूजा करावी. प्रहांचें अन्वाधान केल्यानंतर “ रुद्रयमामिमृत्युन्समिश्चरुघृतसिलाहुतिभिः प्रतिदैवतं प्रतिद्रव्यं अष्टोत्तरशतसंख्यभिः शेषेण० ” असे अन्वाधान करावें. घरांत सिद्ध केलेल्या चरूचा होम करावा.

आतां जुळे जननाची शांति सांगतां.

स्वाची स्त्री जुळें प्रसवेळ त्यानें शांति करावी. तो अभिहोत्री असेल तर त्यानें “ मद् स्वत् अमीला, तेरा कपालांतो युक्त असा पुरोडाष करावा ” असी ऋग्वेदशाखेच्या ब्राह्मणांत सांगितलेली इष्टि करावी. अथवा आश्वलायनसूत्रांत सांगितलेला केवळ मादत याग करावा. गृह्यामीनें युक्त असा आश्वलायनशाखी असेल तर त्यानें मादत चरू करावा. कारण, “ ज्याची स्त्री किंवा गाय जुळें प्रसवेळ त्यानें मरुत् देवतांसाठीं चरू किंवा पूर्णाहुति करावी ” असे कारिकावचन आहे. गृह्याभिविरहित आश्वलायन असेल त्यानें कात्यायनानें सांगितलेली शांति लौकिकामीवर करावी. अभिहोत्री असेल तर त्यानें, “ मम-भार्यायमलजननसूचितत्वारिष्टपरिहारद्रु रा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं मादतेष्ट्या यक्ष्ये, ” असा संकल्प करावा. गृह्याभियुक्त असेल त्यानें, “ मादतस्थालीपाकेन यक्ष्ये, ” असा संकल्प करावा. अभिविरहित असेल त्यानें, “ सग्रहमखां कायायनोक्तां. शांतिं करिष्ये, ” असा संकल्प करून पुण्याहवाचनापासून आचार्यवरणांत कर्म करावें. आठ दिशांचे ठिकाणीं व्याठ कलश यथाविधि स्थापन करून त्या कलशांत उदक घालणें इत्यादिक पासून सर्वांषधी घालणें एषपर्यंत कर्म करून वरुणाची पूजा करावी. आठ कलशांतल्या उदकानें दंपतीला अभिषेक “ आपोहिष्टा० ऋचा ३, कयान० ऋचा २ आनःस्तुत० ऋचा ६, एकून ऐंशीऋचा ७, मोषुवरुण० ऋचा ६, इदमापः० ऋचा १, अपनवा अभिऋचा ८. ” ह्या ऋचांनीं करावा. नंतर अभिषेक केलेल्या दंपतीनीं शुभ वस्त्रें, चंदन धारण करून उत्तर दिशेचे सन्मुख बसवें. पूर्वाभिमुख होतता आचार्यानें अभि व ब्रह्म यांची स्थापना केल्यानंतर अन्वाधान करावें. तें असें,— “ अयस्ति सृभिराज्याहुतिभिरिंद्रं सप्तभिर्वरुणं पंचभिरपएकयाभिमष्टाभिराज्याहुतिभिः पूर्वाभिषेकार्यमुक्तैश्चतुर्विंशतिमंत्रैरभि सोमं पवमानं पाषकं मादतं मरुतः यमं अंतकं मृत्युचैकैकया चर्वाहुत्या नाममत्रैःशेषेण० ” इत्यादिक अन्वाधान करावें. छत्तीस वेळ मंत्ररहित निर्वाप (तांदुळ घेणें) करून तितक्या संख्येनें ते धुवावे. शेवटीं प्रहांच्या कलशांतील उदक इत्यादिकानें अभिषेक करावा. दासी, झईस, घोडी, गार्ह, हत्तोण ह्या जुळें प्रसवल्या असतांहीं ही शांति करावी. ब्रह्-

संबंधी उत्पात; घुबड, कपोत, गीध, ससाणा, हे पक्षी मरात शिरले असता; स्तंभप्ररोह (खांबाला पल्लव येणे); वारूळ उत्पन्न होणे; मधमाशांनी घरात मोहोळ करणे; आसन, पलंग, यान (पालखी इ०) यांचा आकास्मिक नाश होणे; पाल घडणे; सरठ चटणे; छत्र, ध्वज यांचा आकास्मिक नाश; असेच दुसरे उत्पात होणे याचे ठिकाणींहि ही शांति करावी असे काव्यायन ऋषींचे मत आहे. ती शांति सात्रिक असे काव्यायनशास्त्री यांनी आपल्या गृह्यसूत्रावर करावी. अग्निविरहित असे काव्यायन यांनी न इतरांनी लौकिकाधीवर करावी. याप्रमाणे यमलजनन इत्यादिकांची शांति समाप्त झाली.

तीन पुत्र होऊन चवथी कन्या किंवा तीन कन्या होऊन चवथा पुत्र असे झाले तर त्याचे फळ व शांति.

“तीन सारखे पुत्र होऊन चवथी कन्या होईल अथवा तीन सारख्या कन्या होऊन चवथा पुत्र होईल तर माता, पिता, कुल, यांला मोठे अनिष्ट होतें. ज्येष्ठपुत्राचा नाश, इत्यहानि किंवा मोठे दुःख हीं होतात.” गोप्रसव करून शांतीचा संकल्प करावा. तो असा;—“ममसुतत्रयजनमानंतरं कन्याजननसूचितसर्वारिष्टेति” अथवा “कन्यात्रयजनमानंतरं पुत्रजननसूचितेति,” याप्रमाणे तीन पुत्र किंवा तीन कन्या जसे नियमितअसेल तसा संकल्प करावा. स्यंडिलाच्या पूर्वप्रदेशी ग्रहांचे स्थापन ज्ञान्यांतर ग्रहांच्या उत्तर दिशेचे ठिकाणी पांच कलश स्थापून त्या कलशांवर सुवर्णप्रतिमांचे ठिकाणी ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इंद्र आणि रुद्र यांचे आवाहन करून त्यांची पूजा करावी. आवाहन व पूजा यांचे मंत्र—
“ब्रह्मजज्ञानं० इदंविष्णु० ज्यंबकं० यतइंद्र० कद्रुद्राय०.” ग्रहपीठस्य देवतांचे अन्वाधान केल्यानंतर “ब्रह्माणं विष्णुं महेशं इंद्रं रुद्रं च प्रत्येकं समिदाज्यचरितैः प्रतिब्रव्यमष्टोत्तरसहस्राष्टोत्तरत्रिशताष्टोत्तरशतान्यतमसंख्याहुतिभिः शोषेण०” इत्यादिक अन्वाधान करावे.

आतां दंतांसहित जन्म झाले असतां त्याची शांति सांगतां.

“ज्या मुलास दांत प्रथम वरचे देतात, अथवा दंतांसह जो जन्मतो, दुसरा, तिसरा, चवथा, पांचवा या मासांत जर दांत आले तर मोठे भय प्राप्त होतें, अथवा मातेला, पित्याला किंवा आपणालाच खातो. आठव्या मासांत किंवा सहाव्या मासांत ज्या मुलाला दांत येतात त्याची माता अथवा पिता हे नाश पावतात. अथवा स्वतां बालकच पीडित होतो, यांत संशय नाही. कोणी ग्रंथकार तर, आठव्या मासांत दांत आले असतां शुभ असे सांगतात — शांतीचा संकल्प — पहिल्याने वरचे दांत आले असल्यास, “अस्य शिशोः प्रथम मूर्धंदंतजननसूचितसर्वारिष्टेत्यादि.” दंतांसहित जन्म झाले असल्यास, “सदं

तनननसूचित०” दुसऱ्या मासांत दांत आले असल्यास, “द्वितीयमासे दंतनननसूचित०” याप्रमाणे जेथे निमित्त असेल तसा संकल्प करावा. स्थंडिल्याच्या उत्तरप्रदेशी नौका किंवा स्वरित कानें युक्त सुवर्णशीट याच्यावर बालकाला बसवून सर्वोषधींनीं युक्त अशा उदकानें बसूकाला स्नान घालावें. नंतर स्थंडिल्याच्या पूर्वभागी कलशावर सहा प्रतिमा मांडून त्या प्रतिमांचे ठिकाणीं धाता, बन्दि, सोम, वायु, पर्वत, आणि केशव ह्या सहा देवतांची पूजा करून ग्रहांचे अन्वाधान केल्यानंतर, “धातार सकृच्चरुणा वन्त्यादिपंचदेवता एकैकयाज्याहुत्या शोषेण०” इत्यादिक अन्वाधान करावें. नंतर “धात्रेत्काजुष्टनिर्वपाभि०” इत्यादिक ह्यणून निर्वाप, प्रांक्षण हीं कर्मे करावीं. नाममंत्रानें चरुहोम करावा. स्ववापात्रानें बन्दि इत्यादिक पांच देवतांला पांच घृताच्या आहुति देणें त्या नाममंत्रानेंच झग्या. होम झाल्या-नंतर दक्षिण देऊन सात दिवस यथाशक्ति ब्राह्मणांला भोजन घालावें. आठव्या दिवसी सुवर्ण इत्यादिक दान करून कर्म ईश्वराला समर्पण करावें. सहावा व आठवा या मासांत दांत आले असतील तर एका बृहस्पती देवतेची पूजा करावी, व दही, मध, घृत यांमध्ये भिजवलेल्या अशा पिंपळाच्या समिधांचा बृहस्पतीच्या मंत्रानें १०८ होम करून घृतानें क्षिष्टकृत् इत्यादिक होम करावा. याप्रमाणे दंतांसहित जन्म झाल्याची शांति समाप्त झाली.

विपरीत उत्पत्ति झाली असतां त्याची शांति.

“जेथें मनुष्याच्या, गाईच्या गर्भांचे ठिकाणीं विपरीत (जसा असावा तसा न होणे तो) होतो, व अद्भुत उत्पन्न होतात तेथें त्या देशाचा नाश होतो. मनुष्य, पशु, गन, अश्व, मृग, पक्षी, पांला विजातीय, दंतांसहित, अक्राळविक्राळ असे गर्भ होतात, व जेथें पुष्कळ डोक्यांचे, मस्तकरहित, पुष्कळ कानाचे, कर्णरहित, एकशृंगाचे, दोन शृंगांचे तीन शृंगांचे, तीन भुजांचे, चार भुजांचे, लांब कानांचे, गजासारख्या कानांचे, असे मनुष्य होतात तेथें श्रेष्ठ अशा राजकुळाचा व धनाचा नाश होतो. याकरितां चरु, घृत, पळसाच्या समिधा पांचा दरएक द्रव्याचा १००८ होम करावा. ब्राह्मणांस भोजनादि दानें करून तृप्त करावें. मस्तकहीन, तसाच दोन तीन मस्तकांनीं युक्त असा प्राणी झाला असतां तें सूर्यसंबंधी अद्भुत होय, याकरितां सूर्याची पूजा करून दाधि, मध, घृत यांत भिजवलेल्या अशा दईच्या समिधांनीं सूर्याच्या उद्देशानें होमहि करावा. हरिणी सर्प, वेडूक, मनुष्य यांत प्रसवली असतां तें अद्भुत बृहस्पतिसंबंधीं होय. व्याधिषयीं बृहस्पतीची पूजा करून दाधि, घृत यांत भिजवलेल्या अशा उंबराच्या समिधांचा होम करावा. स्त्रियांच्या गर्भपात अथवा स्त्रिया यमळ (नुळें) किंवा दंतांसहित प्रसवतात, उत्पन्न

होताच हस्तगत, इत्यादिक जें अजुत तें बुधसंबंधी होय. वास्तव पाविषयी बुधासाठी पुना, होम करावे.

याप्रमाणें संक्षेपेकखन पथ्यामति जन्ननसांति सांगितल्या. जप, अभिवेक पाक-रितां सूत्रादिकांनीं अति विस्तृत असून प्रसिद्ध असे दुसरे प्रयोग कौस्तुभ इत्यादिक ग्रंथीं पुष्कळ सांगितले आहेत. ह्या महाद्या प्रंथ्याच्या कृतीने भगवान् विदुळ प्रभु संतुष्ट असो.

नामकरणसंस्कारः

जन्मदिवसीं जातकर्तृसंस्कार केल्यानंतर नामकर्माचा काल क्वचित् प्रंथांत सांगितला आहे. अकराव्या दिवसीं अथवा बाराव्या दिवसीं ब्राह्मणमंत्रां नामकर्तृसंस्कार करावा. दहाव्या दिवसीं, अशौच असतां हि वचन आहे यकफिरतां नमकर्म करावें, असें कोणी ग्रंथकार झणतात. क्षत्रियांचा नामकरणसंस्कार तेराव्या किंवा सत्वेष्टव्या दिवसीं करावा. वैश्यांचा सोळाव्या अथवा बिसाव्या दिवसीं करावा. शूद्रांचा बाविसाव्या दिवसीं किंवा मासालीं करावा. म्हासातीं, शंभराव्या दिवसीं, अथवा वर्षातीं याप्रमाणें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य यांचा क्रमानें गौण काल जाणावा. ब्राह्मण इत्यादि मुख्यकालीं (नामकर्म) करील तर शुभमतिथि, शुभ नक्षत्रें, अनुकूल चंद्र इत्यादिक गुण पाहण्याची मरज नाही. सांगितलेला मुख्यकाल टळून गेला असतां शुभमतिथि, शुभनक्षत्र इत्यादिक अवश्य पाहावें. वैधृति, व्यतीपात, संक्रांति, ग्रहणदिवस, अमावास्या, भद्रा ह्या दिवसीं जरी काल प्राप्त झालेला असेल तथापि त्या दिवसीं नमकर्मादिक शुभ कर्म करूं नये. ह्या नामकर्माविषयी मल-मास, गुरुशुक्रांचें अस्त इत्यादिकांचा दोष नाही असे सांगितले आहे. अपराह्नकाली व रात्रीं नामकर्म करूं नये.

उत्तकालाचा अतिक्रम झाला असतां अपेक्षित असीं शुभमतिथि इत्यादिकः—चतुर्थी, षष्ठी अष्टमी, नवमी, द्वादशी, चतुर्दशी, पौर्णिमा यांचाचून इतर तिथि प्रशस्त होत. सोमवार, बुधवार, गुरुवार, व शुक्रवार हे शुभ होत. आश्विनी, उत्तरा, उत्तराषाढा, उच्चराभा इपदा, रोहिणी, मृग, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, स्वाती, अनुराधा, श्रवण, धनिष्ठा, शततारका, रेवती हीं नक्षत्रें शुभ होत. वृषभ, सिंह, वृश्चिक हीं लग्ने प्रशस्त होत.

नामाचे प्रकार.

नामें चार प्रकारचीं आहेत. तीं असीं,—देवतासंबंधी नाम, माससंबंधी नाम, नक्षत्र संबंधी नाम, आणि व्यवहारसंबंधी नाम, याप्रमाणें चार प्रकारचीं नामें जाणावीं. अमुक देवतामक्त (जसें, हरिहरेश्वरमक्त इ०) अशा आकाराचें जें देवतानाम तें पहिलें. 'वैश्रा-

दिक माससंबंधि नावे—वैकुंठ, जनार्दन, उपेंद्र, यज्ञपुरुष वासुदेव, हरि, योधीश, पुंडरी-
 काक्ष, कृष्ण, अनंत, अच्युत, आणि चकी, याप्रमाणे हीं बारा नावे क्रमैकरून सांगतात; '।
 याप्रमाणे जे माससंबंधि नांव ते दुसरे. ह्या नामप्रकरणीं मास घेणे ते चांद्रमास ध्यावे, व
 ते शुक्लपक्षापासून कृष्णपक्षापर्यंतच ध्यावे. ज्या नक्षत्रीं जन्म झाले असेल त्या नक्षत्राचा
 वाचक जो शब्द ह्या शब्दाहून 'जातः' ह्या अर्थी विहित तद्धित प्रत्यय करून जें सिद्ध
 झाले नाम ते नक्षत्र नाम तिसरे. ते असें,—आश्वयुक् (अश्विनी नक्षत्रावर झालेला तो
 १०, याप्रमाणे पुढच्या सर्व नक्षत्रसंबंधी नामांचे अर्थ जाणावे.) आपभरण, कार्तिक,
 रौहिण, मार्गशीर्ष; आर्द्रक, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेष, माघ, पूर्वाफल्गुन, उत्तराफल्गुन,
 इस्त, चैत्र, स्वाति, विशाल, अनुराध, ज्येष्ठ, मूलक, पूर्वाषाढ, उत्तराषाढ, आभिजित,
 श्रावण, धनिष्ठ, शतभिषक्, पूर्वाप्रौष्ठपाद, उत्तराप्रौष्ठपाद, रैवत, याप्रमाणे जाणावीं. कोणी
 ग्रंथकार तर, “ चु. चे, चो, ला अश्विनी” इत्यादिक ज्योतिष ग्रंथामध्ये सांगितले जे
 अवकहडाचक अवखून अश्विनी इत्यादिकांचे चार चरणांचे ठिकाणीं चूडामणि, चेदीश,
 चोलेशलक्ष्मण इत्यादिक नाक्षत्र नावे ठेवितात. परंतु तसे नांव ठेविणें तें श्रौतग्रंथादिकाला
 मान्य नाहीं. सांख्यायन जे ते तर, कृत्तिकांवर उत्पन्न झालेल्याचें 'अग्निशर्मा' असें नक्षत्र
 देवताप्रयुक्त नांव ठेवितात. याप्रमाणे कात्यायनशास्त्री जे तेहि असेंच नाक्षत्र नांव ठेवितात.
 नक्षत्रसंबंधि नांव तेंच अभिवादानोय (माता, पिता व गुरु यांना नमस्कार करण्यास योग्य)
 व तें मौजी होईपर्यंत गुप्त असून आईबापांला मात्र माहीत असावे. व्यवहारसंबंधि नांव
 तें चवथें. तें व्यावहारिक नांव कवर्ग इत्यादिक वर्गांतोळ तिसरा, चवथा, व पांचवा आणि
 हकारवर्ण, यांतून कोणत्याहि वर्णांचें पाहिलें अक्षर असावे, य, र, ल, व यांतून कोणताहि
 वर्ण मध्ये असावा, व ऋ, लृ, या वर्णांनी विरहित असून अंती विसर्ग, आणि पिता,
 पितामह (आजा), प्रपितामह (पणजा) ह्या तीन पुरुषांतून कोणाचेंही वाचक असून शत्रु
 नामांनीं भिन्न, तद्धितप्रत्ययविरहित, कृत्प्रत्यय आहे शेवटीं ज्यास असें पुरुषांचें समसंख्य
 अक्षरांचें, स्त्रियांचें विषमसंख्य अक्षरांचें असें नांव ठेवावे. जसें,—देव, हरि. याप्र-
 माणे सांगितलेलीं सर्व लक्षणें न भिळतील तर सम अक्षरांचें पुरुषांचें व विषमाक्षरांचें
 स्त्रियांचें, याप्रमाणे एक लक्षणानें युक्त असेंच ठेवावे. जसें,—रुद्र, राजा इत्यादिक. एथें
 अक्षर हणजे स्वर समजावे. व्यंजनं जीं त्याविषयीं संख्यानियम नाहीं. या विषयीं विशेष
 सांगतां—प्रतिष्ठेची इच्छा अरणारा असेल तर दोन अक्षरांचें व ब्रह्मतेजाची इच्छा करणारा
 असेल तर चार अक्षरांचें नांव ठेवावे, व नांवाच्या शेवटीं लकार, रेफ हे नसावे. आपस्तंब,
 हिरण्यकेशी सूत्रामध्ये तर, प्रातिपादिक आहेआदिज्यास व धातु आहे अंती ज्यास असें

नावठेवावे; जसे,—हिरण्यदा, याप्रमाणे; किंवा उपसर्गाने पुक्त असे, जसे, सुग्रीः इत्यादिक विशेषप्रकार सांगितल्या आहे. ते व्यवहारसंबंधी नांव, शर्मपदांत किंवा देवपदांत ब्राह्मणाचें ठेवावे. बर्मपदांत अथवा राजपदांत क्षत्रियाचें ठेवावे. गुप्तपदांत किंवा दत्तपदांत वैश्याचें ठेवावे. ब्रूवाचें दासपदांत ठेवावे. व्यावहारिक नांवें देवालयें, राजवाडे इत्यादिकांचींहि ठेवावीं. कारण, “देवालये; गज; अश्व; वृक्ष; वापी, कूप, सर्व बाजार, विकण्याचे पदार्थ, चिन्हें स्त्रिया, पुरुष; काव्यादिक; कवि, पशु; इत्यादिक, व राजवाडे, पक्ष; झांचीं यथा योग्य नांवें ठेवावीं असे वचन आहे:

प्रयोगाचा विशेष प्रकार.

गर्भाधान इत्यादिक संस्कारांचा लोप झाला असेल तर प्रत्येक संस्काराचे पादकृच्छ्र, समजून उमजून न केले असतील तर अर्धकृच्छ्र प्रायश्चित्त, जातकर्माचा काळ ठळून मेला एतन्मित्तक कर्तव्य जो घृताचा होम तो पूर्वी करून नंतर करावे. ते असे,—“जातकर्मणः कालातिपत्तिनिमित्तकदोषपरिहारद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीयर्थं प्रायश्चित्तहोमं करिष्ये,” असा संकल्प करून अभिस्थापन, इध्मास्थापन इत्यादिक जें पाकयज्ञाचें तंत्र मानें पुक्त किंवा अभिस्थापन, आज्याचा संस्कार, पात्रांचा संस्कार यांहीं करून मात्र पुक्त असा, “भूभुवःस्वःस्वाहा” ह्या समस्त व्याहृतिमंत्राने आज्याचा होम करावा. होम समाप्त करून संस्कारलोपाचा प्रायश्चित्तसंकल्प करावा. तो असा;—“गर्भाधानपुंसवनप्रवृत्तिपूर्वकलोपेऽर्धकृच्छ्रान्तत्प्रयाग्नायगोनिष्कयीभूत यथाशक्तिरजतद्रव्यदानेनाहमाचरिष्ये,” असा संकल्प करून तितकें द्रव्य द्यावे- जातकर्म व नामकर्म हे दोन संस्कार एक. तंत्राने कर्तव्य असतील तर पूर्वी सांगितलेल्या जातकर्माचे संकल्पाचे वाक्याचा उच्चार करून एकतंत्राचा संकल्प करावा. तो असा,—“अस्य कुमारस्यापुर्भिन्नाद्विव्यवहारसिद्धिबीजगर्भसमुद्भवैनोनिवर्हणद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीयर्थं नामकर्मचतंत्रेण करिष्ये,” असा संकल्प करून पुण्याहवाचन इत्यादिक करावे. पुण्याहवाचनांत वाक्य झणावे. ते असे;—“जातकर्मनामकर्मणोः पुण्याहं भवंतो ब्रुवंतु,” असे झणून “अस्य कुमारस्य जातकर्मणे एतन्नाम्नेअस्मैच स्वस्ति भवंतो ब्रुवंतु,” असे स्वस्ति शब्दाविषयीं झणावे. अशीं रीतीनेच ब्राह्मणांनीं प्रतिवचन (प्रत्युत्तर) झणावे. नुस्तें नामकरण कर्तव्य असेल तर, “नामकर्मणः पुण्याहं भवंतो ब्रुवंतु,” असे झणून स्वस्ति शब्दाविषयीं “अमुकनाम्ने अस्मै स्वस्ति भवंतो ब्रुवंतु” असे झणावे. ब्राह्मणांनीं “अमुकनाम्ने अस्मै स्वस्ति,” असे प्रतिवचन बोलावे. नांवें लिहिणें ग्रामध्ये तीन नामें शर्मादि शब्दविरहित लिहून

व्यावहारिक नांव शर्मादिपदांत लिहावे. अभिवादनविषयी (नामगोत्रोच्चारपूर्वक नव स्काराविषयी) नासत्र नाम जें व्याचाहि शर्मादिपदांत सर्वत्र उच्चार कराव. अषाढ (ह्या मंथी व सांभेतलेख) प्रयोग प्रयोगग्रंथामध्ये पहावा.

स्त्रियांचें नामकर्म.

संकल्पामध्ये "अस्याः कुमार्पाः" इतका विशेष जाणावा. पुण्यहवाचनमध्ये "एत आभ्यै अस्यै स्वस्ति" इत्यादिक विशेष समजावा 'भक्ता' असे आवंत देवतानाम; मास नांवामध्ये चाकिणी, वैकुंठी, वासुदेवी, हीं तीन उग्वंत जाणावीं, हरि हे नांव कन्यापुत्रां विषयीं सास्खें. बाकी आठ (जनार्दना, उर्षेदा, यज्ञपुरुषा, योगीशा, पुंडरीकाक्षा, कृष्णा, अनंता, अच्युता) आवंत जाणावीं. रौहिणी, लक्ष्मीका याप्रमाणें यथायोग्य नासत्र नांव ठेवावे असें मातृदत्ताचें मत आहे. आश्वलायनशास्त्री यांनीं स्त्रियांचें नासत्र नांव ठेवूं नये. व्यावहारिक नांव ठेवणें ते 'यज्ञदाशर्मा' असें पुरुषाप्रमाणें ठेवावे. पूजा इत्यादिक कर्म करणें तें वैदिकमंत्रविरहित पुरुषाप्रमाणें करावें. पिता सन्धिष नसेल तर कन्या व पुत्र यांचा नाम संस्कार पितामह (पित्राचा पिता) इत्यादिकांनीं करावा. या मथारणें नामसंस्कार समस्त झाला.

मुलास पाळण्यांत घालणें.

"पुत्राला पाळण्यांत घालण्यावेषयीं बारावा दिवस शुभ होय; कन्येला पाळण्यांत घालण्यास तेरावा दिवस शुभ होय, ह्या दोन दिवसीं शुभ नक्षत्राचा विचार करण्याची गरज नाहीं. इतर दिवसीं असेल तर दिनशुद्धि पाहावी." उत्तरा, उत्तराषाढा, उत्तराभा द्रपदा, रोहिणी, हस्त, अश्विनी, पुष्य, रेवती, अनुराधा, मृग, चित्रा, पुनर्वसु, श्रवण, स्वाती, ह्या नक्षत्रीं; शुभवारीं (सोमवार, बुधवार, बृहस्पतवार, शुक्रवार ह्या वारीं); रिक्ता तिथी (चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी) व्यतिरिक्त तिथींचे ठिकाणीं; चंद्रबळ व ताराबळ यांहीं युक्त अशा दिवसीं कुलस्त्रियांनीं मुलास पाळण्यांत घालावे.

जन्म झाल्यापासून एकतिसाव्या दिवसीं किंवा दुसऱ्या जन्मनक्षत्रीं, अथवा दोळारोहा स नीं सांगितलीं नक्षत्रीं त्या नक्षत्रीं, पूर्वाण्हकाल व मध्याण्हकाल ह्या कालीं कुलदेवता, ब्राह्मण यांची पूजा करून शांतानें गाईचें दूध मुलास प्राशन करावें. याप्रमाणें दुग्ध प्राशन झाल्यास झालें.

अतां जलपूजा सांगतो.

सुतिकेनें पूर्ण एक मास झाल्यानंतर बुध, सोम, गुरु ह्या वारीं, रिक्तान्यतिरिक्त तिथींचे

ठिकाणी; श्रवण, पुष्य, पुनर्वसु, मृग, हस्त, मूळ, अनुराधा, ह्या नक्षत्रां; उदकाच्या स्थानी जाऊन उदकाची पूजा करावी. एथे गुरुशुक्रास्त आणि चैत्र, पौष व अधिक्रमस हे वर्ज्य करावेत. या प्रमाणे जलपूजन समाप्त झाले.

तिसऱ्या मासांत मुशाला सूर्यावलोकन (सूर्याचे दर्शन) करावे. चवथ्या मासांत किंवा अन्नप्राशनकाली निष्क्रमण (मुशाल घराबाहेर न्यावे ते) करावे. त्या निषर्षी मुहूर्ते— “शुक्रपक्ष शुभ होय. शेवटचे पांच दिवस वर्ज्य करून ऋणपक्षाहे शुभ होय. रिक्ता षष्ठी, अष्टमी, अमावास्या, द्वादशी ह्या तिथि वर्ज्य कराव्या.” गुरु, शुक्र, बुध हे वार शुभ होत. अश्विनी, रोहिणी, मृग, पुष्य, तीन उत्तरा, हस्त, धनित्रा, श्रवण, रेवती, पुनर्वसु, अनुराधा, हीं नक्षत्रे शुभ होत. हे निष्क्रमण नियम काव्य असे आहे. सूर्यावलोकन व निष्क्रमण यांचे ठिकाणी नांदीश्राद्ध कृताकृत (करावे किंवा न करावे) असे आहे.

पांचव्या मासी; निष्क्रमणाला उक्त जी तिथि, वार, नक्षत्रे ह्या दिवसी मंगळाचे वळ असतां, भूर्मावर बालकाला ठेवावे.

अन्नप्राशनसंस्काराचा काल.

सहावा, आठवा, दहावा, बारावा या मासी अथवा पूर्ण वर्ष, झाले असतां त्या काली पुरुषाचा अन्नप्राशनसंस्कार करावा. पांचवा, सातवा, नववा या मासी स्त्रियांचे अन्नप्राशन करावे. “द्वितीया, तृतीया, पंचमी, सप्तमी, त्रयोदशी आणि दशमी ह्या तिथी अन्नप्राशननिषर्षी शुभ होत.” बुधवार, गुरुवार, शुक्रवार, हे वार शुभ होत. रावि, चंद्र हे वार काचित् प्रयांत शुभ सांगितले आहेत. अश्विनी, रोहिणी, मृग, पुनर्वसु, पुष्य, तीन उत्तरा, हस्त, चित्रा, स्वाति, अनुराधा, श्रवण, धनित्रा, जततारका, आणि रेवती हीं नक्षत्रे शुभ होत. जन्मनक्षत्र अशुभ असे कोणी प्रयाकार झणतात. मद्रा, वैधृति, व्यतीपात, मंड, अनिमंड, वज्र, शूळ, परिच हे योग वर्ज्य करावे. विष्णु, शिव, चंद्र, सूर्य, दिक्पाल, भूमि, दिशा, ब्राह्मण यांची पूजा करून मातेच्या मांडीवर बसलेला अशा बालकाला सुवर्णाच्या पात्रांत किंवा कांस्यपात्रांत दधि, मध, घृत यांहीं मिश्रित असी तीर सुवर्णयुक्त हस्ताने घेऊन ती त्या बालकाच्या मंत्रे करून प्राशन करावी. सूर्यावलोकन इत्यादिकांपासून अन्नप्राशनापर्यंत सर्व कर्मे अन्नप्राशनाचे समयीं शिष्ट करितात. ह्यांचे अन्नप्राशनावरोवर करण्याचे प्रयोग, संकल्प इत्यादिक सर्व विस्तार कांस्तुम इत्यादिक ग्रंथी पाहावा.

आतां अन्नप्राशन झाल्यानंतर कर्तव्य विधि— “बालकाच्या पुढे कलाकौशल्याचे सर्व

पदार्थ, शस्त्रे, वस्त्रे, इत्यादिक ठेवून खांबरून त्या बालकाचे लक्षण पाहावे. पुढे ठेवलेल्या पदार्थातून ज्या पदार्थाला बालक स्पर्श करील त्या पदार्थाचे त्याची पुढे उपजीविका होईल. ” अन्नप्राशनपर्यंत जे संस्कार खांबेविषयी मरुमास, गुरूशुक्रांचे अस्तादिक यांचा दोष नाही असे जे सांगितले ते, शुद्धकाली न झाले असता जागावे, यावरून सहाव्या इत्यादिक मासाचे ठिकाणी अस्तादिक दोष असतील तर अन्नप्राशन, आठवा इत्यादिक जे मास सांगितले त्यांचे ठिकाणी करावे. याप्रमाणे सूर्यालोकन, निष्क्रमण, भूम्युपवेशन, आणि अन्नप्राशन हे संस्कार समाप्त झाले.

मुलाचे कान टोंचणे.

‘जन्मदिवसापासून दहावा, बारावा, किंवा सोळावा ह्या दिवसी बालकाचे कान टोंचावे. अथवा सहावा, सातवा, व आठवा, दहावा, बारावा ह्या मासांमध्ये; किंवा प्रथम वर्षी; तिसऱ्या वर्षी; याप्रमाणे बालकाचे कान टोंचावे. पुत्र व कन्या यांचा कर्णवेध समवर्षी करूं नये.’ तिसऱ्या इत्यादिक वर्षी कर्तव्य असल्यास मास सांगतो—कार्तिक पौष, चैत्र, फाल्गुन या मासांत शुक्लपक्षी कर्णवेध करावा. जन्ममासांत करूं नये. भद्रा, (कल्याणी) विष्णुशयन (चातुर्मास्य) यांचे ठिकाणी कर्णवेध करूं नये. यावरून कार्तिक मासाचा जो विधि सांगितला तो शुद्ध द्वादशीच्या नंतर समजावा. कोणी ग्रंथकार मिनराशीचा सूर्य असतां चैत्रमास, व धनुःमाशीचा सूर्य असतां पौषमास कर्णवेधाविषयी बर्ष सांगतात. “द्वितीया, दशमी, षष्ठी, सप्तमी, त्रयोदशी, द्वादशी, पंचमी, तृतीया ह्या तिथि कर्णवेधाविषयी प्रशस्त जाणाव्या.’ चंद्र, बुध, गुरू, शुक्र हे वार प्रशस्त. पुष्य, पुनर्वसु, मृग, उत्तरा, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, हस्त, चित्रा, अश्विनी, श्रवण, रेवती, धनिष्ठा हीं नक्षत्रे शुभ होत. विष्णु, रुद्र, ब्रह्मा, सूर्य, चंद्र, दिक्पाल, नासत्य (अश्विनीकुमार) सरस्वती, गार्गी, ब्राह्मण, गुरू यांची पूजा करून अळव्याच्या रसाने अंकीत असा कान पुरुषाचा पूर्वी उजवा टोंचून नंतर डावा टोंचावा. स्त्रियांचा डावा पूर्वी टोंचावा. बालकाची आठ अंगुळी लांबीची सुई असावी. ती असी-राज पुत्राच्या कर्णवेधाविषयी सुवर्णाची, ब्राह्मण व वैश्य यांना रुप्याची, शूद्राला लोखंडाची, याप्रमाणे सुई करावी. कानाला भोक पाडावयाचे ते सुर्वाचे किरण आंत शिरत हतके मोठे करावे. कर्णवेधावांचून बालकाला पाहिले असता पूर्व पुण्याचा नाश होतो. याप्रमाणे कर्णवेध समाप्त झाला.

रक्षाविधि.

बालकाला कोणा दुष्टाची दृष्टि लागली असतां विभूत अभिमंत्रून खाला लावावी.

अभिमंत्रणाचा मंत्र — “वासुदेवो जगन्नाथः पूतनातर्जनो हरिः ॥ रक्षतु त्वारितो बालं मुञ्च मुञ्च कुमारकं ॥ कृष्ण रक्ष शिशुं शंख मधुकैटभमर्दन ॥ प्रातःसंगममध्यान्ह सायान्हेषुच संध्ययोः ॥ महानिशि सदा रक्ष कंस रिश्रनिषुदन ॥ यद्गोरजःपिशाचांश्च ग्रहान् मातृग्रहानपि ॥ बालग्रहान् विशेषेण छिधि छिधि महाभयान् ॥ त्राहिव्रह्मि हरे नियं त्वद्रक्षाभूषितं शिशुं,” ह्या मंत्रांनी भस्म अभिमंत्रण करून त्या भस्मेकरून बालकाला भूषित करावे, व मस्तक, कपाळ, इत्यादिक अवयवांला ते भस्म यथाविधि लावावे.” प्रयोगसागर ग्रंथामध्ये दुसरा प्रकार सांगतो — “रक्ष रक्ष महादेव नीलग्रीव जटाधर ॥ ग्रहेस्तु सहितो रक्ष मुञ्च मुञ्च कुमारकं,” हा मंत्र भूर्जपत्रावर लिहून ते भूर्जपत्र बालकाचे बाहवर बांधावे. बालक रोदन करित असेल तर त्याच्या परिहाराविषयी मयूखग्रंथी यंत्र सांगितले आहे. ते असे—सहा कोनांच्या आकृतीचे यंत्र काढून त्याच्या सहा कोनांच्या मध्यभागी ‘ही’ हें अक्षर लिहून यंत्राच्या मध्यभागी मुलाचे नांव लिहून सहा कोनांमध्ये “ओल्लुवस्वाहा” ह्या मंत्राची सहा अक्षरे (दरएक कोनी एक अक्षर याप्रमाणे) लिहून त्याच्या बाह्यप्रदेशीं रयाच्या चाकाच्या प्रातःभागासारखी दोन वर्तुळे लिहून त्याच्या बाह्यप्रदेशीं अधोमुख असे अर्ध चंद्र काढावे, नंतर गंधादिक पांच उगचारानी यंत्राची पूजा करून बालकाच्या हाताला ते यंत्र बांधावे. बालग्रहांची शांति इत्यादिक, व बालग्रहांचीं स्तोत्रे इत्यादिक विधि शांतिकमलाकर, शांतिमयूख ह्या ग्रंथांत पाहावे.

आतां वाढदिवसाचा विधि.

ग्या दिवसी जन्म झाले त्या दिवसाला वाढदिवस असे झणतात. वाढदिवसाचा विधि करणें तो वर्षपर्यंत दरएक मासी जन्मतियांचे दिवसी करावा. वर्षानंतर दरएक वर्षी करणें तो जन्मतियांचे दिवसी करावा. जन्मतिया दोन दिवस असेल तर ग्या दिवसी जन्मनक्षत्राचा योग असेल ती ध्यावी. दोन दिवसी जन्मनक्षत्राचा योग असेल किंवा दोनहि दिवसी नसेल तर सूर्योदयकालव्यापिनी असी चार घटिकांहून अधिक असेल ती ध्यावी. चार घटिकांहून कमी असल्यास पूर्व दिवसाची ध्यावी. जन्ममास अधिकमास आला असतां शुद्धमासी दरएक वर्षाचा वर्षापनविधि करावा, अधिक मासांत करूं नये.

“अयुरभिवृत्त्यर्थं वर्षवृद्धिकर्म करिष्ये,” असा संकल्प करून अंगाला तेल लावून तिलोदकानें स्नान करून कपाळीं गंध लावून नित्यकर्म करावे. नंतर गुरूची पूजा करून तांदुळाचे राशींवर देवतांची पूजा करावी. त्यामध्ये प्रथम “कुलदेवतायै नमः” ह्या नाम मंत्रानें कुलदेवतेचें आवाहन करून जन्मनक्षत्र, मातापितर, प्रजापति, भानु, विघ्नेश, मार्कण्डेय, व्यास, जामदग्न्य, राम, अश्वत्यामा, कृप, बलि, प्रह्लाद, हनुमान, निर्मोषण;

आणि षष्ठी ह्या देवतांचें नाममंत्रानेंच आवाहन करून पूजा करावी. षष्ठी देवीला दही भाताचा नैवेद्य अर्पण करावा. पूजा झाल्यानंतर प्रार्थना करावी. प्रार्थनेचे मंत्र—
 “चिरंजीवीयथा त्वंभो भविष्यामि यथा मुने ॥ रूपवान् वित्तवान् चैव श्रियायुक्तश्च सर्वदा ॥ मार्कंडेय नमस्तेस्तु सप्तकल्पांत जीवन ॥ आयुरारोग्यसिद्धयर्थं प्रसीद भगवन् मुने ॥ चिरंजीवी यथा त्वंतु मुनीनां प्रवरो द्विज ॥ कुरुष्व मुनिशार्दूल तथा मां चिरंजीविनं ॥ मार्कंडेय महाभाग सप्तकल्पांत जीवन ॥ आयुरारोग्यसिद्धयर्थमस्माकं वरदो भव.” याप्रमाणें प्रार्थना करून षष्ठीदेवीची प्रार्थना करावी. प्रार्थनामंत्र—“जय देवि जगन्मातर्जगदानंदकारिणी ॥ प्रसीद मम कल्याणि नमस्ते षष्ठि देवते ॥ त्रैलोक्ये यानि भूतानि स्थावराणि चराणि च ॥ ब्रह्मविष्णुशिवैः सार्धरक्षां कुर्वतु तानि मे.” तदनंतर तिळ, गूठ यांहीं मिश्रित असें दुग्ध प्राशन करावें. दुग्धप्राशनाचा मंत्र—“सतिलं गुडसंभ्रमं जल्यर्धमितं पयः ॥ मार्कंडेयाद्भरं लब्ध्वा पित्राभ्यायुर्विवृद्धये.” क्वचित् ग्रंथामध्ये, पूजा केंद्रल्या ज्या सोळा देवता यांच्या उद्देशानें नाममंत्रें करून दर एक देवतेला अष्टावीस याप्रमाणें तिळाचा होम करावा असें सांगितलें आहे. तदनंतर ब्राह्मणांला भोजन घालावें. त्या दिवसां नियम पाळावे. ते—
 “नलें, व केश यांचें छेदन, मैथुन, प्रयाण, मांसभक्षण, कलह, हिंसा हे वर्धापन दिवसां वर्ज्य करावे. मृत व जन्म आणि संक्रांति, श्राद्ध, जन्म दिवस, स्पर्शाचा अयोग्य अशाचा स्पर्श, यांतील कोणतेही निमित्त असतां उष्णादकानें स्नान करूं नये.

चौलसंस्कार.

“जन्मापासून किंवा गर्भापासून पहिल्या, दुसऱ्या, तिसऱ्या, पाचव्या ह्या वर्षी चौलसंस्कार करावा. अथवा मीं जीवरोवर करावा. याविषयी जसा कुलाचार असेल त्याप्रमाणें व्यवस्था जाणावी. माघ, फाल्गुन, वैशाख, ज्येष्ठ ह्या मासांत चौलसंस्कार शुभ होय. जन्ममास, अधिकमास यांचे ठिकाणी चौलकर्म करूं नये, आणि ज्येष्ठमासांत ज्येष्ठ पुत्राचें चौलकर्म करूं नये. शुक्लपक्ष शुभ होय. शेवटचे पांच दिवस वर्ज्य करून कृष्णपक्षहि शुभ होय. द्वितीया, तृतीया, पंचमी, सप्तमी, दशमी, एकादशी, त्रयोदशी ह्या तिथि प्रशस्त होत. रवि, मंगळ, शनि, शनि, हे वार क्रमेंकरून ब्राह्मणादिक वर्णांला प्रशस्त होत, झणजे ब्राह्मणाला रविवार, क्षत्रियाला मंगळवार, वैश्याला शनिवार, शूद्राला शनिवार. गुरू, शुक, बुध हे वार सर्वांला शुभ होत. शुक्लपक्षामध्ये सोमवार शुभ होय.” अश्विनी, मृग, पुनर्वसू, पुष्य, हस्त, चित्रा, स्वाती, ज्येष्ठा, श्रवण, धनिष्ठा, शततारका, रेवती, हीं नक्षत्रें शुभ होत. “क्षौर कर्म, प्रयाण, औषधसेवन,” यांविषयी जन्मनक्षत्र सर्वदा वर्ज्य करावें. “अनुराधा, कृत्तिका, तीर्थां उतरा, रोहिणी, मघा या नक्षत्रां चौलकर्म केलें असतां आयुष्याचा क्षय होतो.”

सिद्धिचा गुरु असता चौलादिक शुभ कर्म करू नयेत. ज्याचें चौल करावयाचें त्याची माता गर्भिणी असून त्या पुत्राचें वय पांच वर्षांचे आत असेल तर चौल करू नये, पांच वर्षांपेक्षा वय अधिक असल्यास माता गर्भिणी असली तथापि चौल करावें. मौजीबरोबर केले असता दोष नाही. चौल कर्म, व मौजी हे संस्कार माता गर्भिणी असता निर- निराळे करू नयेत. दोन बरोबर केले असता दोष नाही. गर्भिणी असेल तथापि पांचव्या महिन्यापर्यंत दोष नाही. कारण, “पांचव्या महिन्याच्या पूर्वी करावे, पांचव्या महिन्यानंतर करू नयेत,” असे वचन आहे. ज्वरानें जो युक्त अशाचें चौलादिक मंगल कार्य करू नये. ‘विवाह, मौजी, चौल हे संस्कार कर्तव्य असतां माता रजस्वला होईल तर तिची शुद्धि झाल्यानंतर मंगलकार्य करावें असे मनु सांगता.’ नांदीश्राद्ध झाल्यानंतर रजस्वला होईल तर शांति करून मंगलकार्य करावें. कोणी ग्रंथकार तर, दुसरा मुहूर्त न मिळेल तर प्रारंभाच्या पूर्वीहि रजस्वला झाली असता श्रीपूतनादिक विधीनें शांति करून मंगलकार्य करावें असे लक्षणतात. मातुळ, चुःता इत्यादिक कर्ता असेल आणि त्याची स्त्री रजस्वला होईल तथापि मंगल करू नये असे निर्णयसिंधु ग्रंथांत सांगितले आहे. तीन पुरुषरूप कुळांमध्ये मौजी व विवाहरूप मंगलकार्य झाल्यानंतर सहा महि- न्यांपर्यंत मुंडन नांवाचें, चौलकर्म इत्यादिक कर्म करू नये. संकट असेल तर वर्षभेदे करून करावें, क्षणजे फाल्गुनांत विवाह झाला असता चैत्रांत चौलादिक करावें. चार पुरुषांपर्यंत जे कुळ त्यामध्ये सर्पिडीकरण, मासिक श्राद्ध हीं कर्म आहेत शेवट ज्याच्या असे जें भेतकर्म त्याची समाप्ति होण्याचे पूर्वी चौलकर्मदिना मंगलिक कर्म करू नये. ‘एका मातेपासून झालेले असे दोन सोदर भ्राते किंवा बहिणी यांचा समान संस्कार क्षणजे मुंज, मुंज, विवाह, विवाह एका वर्षांत करू नये, माता निराळी असतां करावा.’ प्रारंभ झाल्यानंतर आशीच प्राप्त झाले असतां कुष्मांडी ऋवांनीं पृताचा होम करून गोपदान देऊन चौल, मौजी, विवाह इत्यादिक करावे. याविषयी विशेष निर्णय आहे तो विवाहप्रकरणी सांगेन. मध्यभागीं मुख्य एक शेंडी ठेवून बाकी शिखा बाजूचे भागाचे ठिकाणी, याप्रमाणें जसा कुलाचार असेल त्याप्रमाणें प्रवरांच्य संख्येनें, क्षणजे तीन प्रव- रांचे असतील तर तीन, पांचप्रवरी असल्यास पांच, याप्रमाणें शिखा चौलकर्मसमयी ठेवाव्या. मौजीच्या समयी मध्यशिखा ठेवून बाकीच्या सर्व शिखा काढून टाकाव्या आणि मौजीनंतर मध्यभागींच शिखा धारण करावी. चौल, जातकर्म, ह्या संस्कारां भोजन केले असतां सांतपन कच्छ प्रायश्चित्त करावें. इतर संस्कारां भोजन केले असतां एका उपोषणानें शुद्धि होते. जातकर्मापासून चौलापर्यंत सर्व संस्कार स्त्रियांचे अमंत्रक करावे, होम मात्र समंत्रक करावा. होमहि अमंत्रक करावा किंवा करू नये, असे वृत्तिकर्ता ह्यादिकांचें मत आहे. याप्रमाणें शुश्रूवेहि चौलकर्म अमंत्रक करावें.

विद्यमानकालीं शिष्ट जनांमध्ये, स्त्रियांचे चौल इत्यादिक संस्कार करणे दृष्टीस पडत नाही. विवाहकालीं चौलादिक संस्कारांच्या लोपाचे प्रायश्चित्त मात्र करितात. चौल केल्यानंतर सविडानीं तीन महिन्यांपर्यंत पिडदान तिलतर्पण हीं करूं नयेत. महालय, मयाश्राद्ध, मातापिवरांचे प्रतिसांवत्सरिक श्राद्ध यांमध्ये पिडदान इत्यादिक करावे.

विद्यारंभकाल.

पाचठ्या वर्षीं उत्तगयणसमयीं अक्षर लिहिण्याचा प्रारंभ करावा. ह्या अक्षरलेखना विषयीं कुंभीचा सूर्य वर्ज्य करावा. शुक्लपक्ष शुभ होय. शेवटचे पांच दिवस खेरीज करून कृष्णपक्षहि शुभ होय. द्वितीया, तृतीया, पंचमी, दशमी, एकादशी, द्वादशी आणि त्रयोदशी, ह्या तिथि श्रेष्ठ होत. अश्विनी, मृग, आरद्रा, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त चिन्ना, स्वाती, अनुराधा, श्रवण, धनिष्ठा, शततारका, रेवती हीं नक्षत्रे शुभ होत, मंगळ शनि, हे वार वर्ज्य करून अन्य वार शुभ होत. विघ्नश, लक्ष्मी, नारायण, सरस्वती आपला वेद, आणि सूत्रकार, यांची पूजा करून गुरु, ब्राह्मण, उपमाता दाई यांची पूजा करून नमस्कार करून सर्वांला तीन प्रदक्षिणा करून ओंकार पूर्वी लिहून नंतर दुसरीं अक्षरे लिहिण्यास आरंभ करावा. नंतर गुरूला नमस्कार करून देवतांचे निसर्जन करावे. तदनंतर, "अत्रभुवनमातः सर्ववाङ्मयरूपेणागच्छामच्छ," ह्या मंत्राने सरस्वतीचे आवाहन करावे व प्रणवमंत्राने सोळा उपचार अर्पण करावे.

मौंजी न झालेल्याचे धर्म.

मौंजी होण्याच्या पूर्वी बालकाला इच्छेस वाटेल याप्रमाणें संचार करणें, इच्छेस वाटेल याच्याशीं भाषण करणें, पाहिजेतें भक्षण करणें इत्यादिकांविषयीं दोष नाही, असें आहे यावरून लघुशंका, शौचविधि इत्यादिकांविषयीं आचमन करणें, इत्यादिक आचार जो उक्त आहे तो मौंजीच्या पूर्वी नाही. अल्पपातकास कारण असीं जीं लसूण, शिळें अन्न, डाळिष्ठ इत्यादिक तीं भक्षण केलीं असतां दोष नाही. याप्रमाणें प्राशन करण्यास अयोग्य असा पदार्थ प्राशन केला असतां, अनृत, व अवाच्य असें भाषण केलें असतां दोष नाही. महादोषाला कारण असीं जीं मांस, अंजज, रजस्वला इत्यादिक त्यांचा स्पर्श झालेला असें अन्न भक्षण असतां व मद्य इत्यादिक प्राशन केलें असतां दोष आहेच. "रजस्वला इत्यादिकांचा कुमाराला स्पर्श होईल तर कुमारानें स्नानच करावे. शिशुला उदकाचे प्रोक्षण करावे. बालकानें आचमन करावे." अन्नप्राशनाच्या पूर्वी शिशूसंज्ञा होय. अन्नप्राशानानंतर व चौलाच्या पूर्वी, किंवा तीन वर्षांच्या पूर्वी बाल संज्ञा होय. चौला नंतर मौंजीबंधन हईपर्यंत कुमारसंज्ञा होय. एथें आचमन करावे ह्मणजे तीन वेळ

उदक प्रक्षालन करावे, ओष्टमार्जनादिक पक्ष नाही, असे जाणवें. मीजी व शालेला यांनी वेदाचा उच्चार करूं नये. मातापितरांच्या अंशक्रियेचे ठिकाणी तर मीजी व शालेला असेल तथापि त्यांनींही मंत्राचा उच्चार करावा. तो मंत्रोच्चाराचा अधिकार, दोन तीन वर्षांमध्ये ज्याचे चालू झाले असेल त्यालाच आहे. तीन वर्षांनंतर तर चालूकर्म न झालेला अशालाहि आहे. मीजी न झालेला अशा पुत्रांनींही मातापितरांच्या क्रियेच्या निमित्त मंत्रोच्चार करावा असे जे सांगितले ते औरसपुत्राविषयी जाणावे. कारण, "औरसपुत्र मीजी न झालेला असा जरी आहे तथापि त्यांनींही मातापितरांची अंश क्रिया करवी, इतर क्रिया करणारे असतील तर मीजी झालेले असे ते श्राद्धाधिकारी होतात," असे स्कंदपुराणस्थ वचन आहे. बालांच्या निंद्य गोष्टींचे निवारण पिता इत्यादिकांनीं करावे. "तस्मात् सर्व प्रयत्नेः करून पहिल्यानें बालांन भोजन घालावे," बालकास लेळणीं दिलीं असतां स्वर्गसुख मिळते. बालकांस भक्षण करण्याचे पदार्थ दिले असतां गोदानाचें फळ मिळते.

उपसंस्कार.

उपनयन झणजे, कुमाराला आचार्याजवळ नेणें हें अंगरूप कर्म व गायत्रीमंत्राचा उपदेश करणें हें प्रधानकर्म, या दोहोनीं युक्त जें विशेष कर्म त्याला उपनयन असे झणतात. कारण, 'उपनयन' हा शब्द योगरूढ आहे. उपनयन संस्कार करण्याविषयी अधिकार सांगतो. — "पित्यानेच उपनयन करावे. पिता नसेल तर पित्याचे पित्यानें करावे. पित्याचा पिता नसल्यास चुलमानें करावे. चुलता नसेल तर सोदर भात्यानें करावे. सोदर धाता नसेल तर सगोत्र असून सपिंड असतील त्यांनीं करावे. सगोत्र सपिंड नसतील तर मातुळ इत्यादिक जे असगोत्र सपिंड त्यांनीं करावे. मातुळ इत्यादिक नसतील तेव्हा असपिंड सगोत्र जे त्यांनीं करावे. हे सर्व जे उपनयन करण्याविषयी अधिकारी सांगितले ते कुमारपेक्षां वयानें ज्येष्ठ असावेत. कारण, कुमारपेक्षां जो वयानें कनिष्ठ त्यानें केलेले उपनयन निषिद्ध आहे. पूर्वी सांगितले जे अधिकारी यांतून कोणीहि नसेल तर श्रोत्रियानें करावे. "जन्मेकरून ब्राह्मण जाण वा; ज्या ब्राह्मणाचे संस्कार झाले तो द्विजहोय; वेदाध्ययन केल्यानें विप्र होय, जन्मानें ब्राह्मण असून संस्कार झालेला व वेदाध्ययन केलेला असा जो तो श्रोत्रिय." "उपनयन करणारानें तीन कृच्छ्र प्रायश्चित्त करावे." कुमारानें तीन कृच्छ्र प्रायश्चित्त करावे. उपनयनकर्त्यानें उपनयन करण्याचा अधिकार प्राप्त होण्या कारितां गायत्रीमंत्राचा १०१२ जप करावा. किंताएक १२००० जप करितात.

गर्भापासून किंवा जन्मापासून पांचव्या किंवा आठव्या वर्षी ब्राह्मणाची मीजी करावी. अकराव्या वर्षी किंवा बाराव्या वर्षी क्षत्रियाची मीजी करावी. बाराव्या वर्षी किंवा

सोळाव्या वर्षी वैश्याची मोंजी करावी. १५ घनाची इच्छा करणारा याची सोळाव्या वर्षी, विद्येची इच्छा करणारा याची सातव्या वर्षी, सर्वाची इच्छा करणारा याची आठव्या वर्षी, कांतीची इच्छा करणारा याची नवव्या वर्षी मोंजी करावी. कोणो प्रयत्नकार सोळावें वर्ष ब्राह्मणांला उक्त नाही असे मानतात. गौणकाल सांगतो— सोळा वर्षपर्यंत ब्राह्मणांचा, बेवीस वर्षपर्यंत क्षत्रियांचा; चौवीस वर्षपर्यंत वैश्यांचा, वा प्रयागे गौणकाल जाणावा. ह्या गौणकाला विषयी गर्भादिक [गर्भकालापासून] संख्या घ्यावी. तसेच जन्मापासून पंधरा वर्षपर्यंत (मुंज न झाल्यास) ब्राह्मणांला विशेषकरून प्रायश्चित्त नाही. सोळावें वर्ष असतां, शिखेसुद्धां वपन करून एकवीस रात्री पर्यंत व व भक्षण करावे, नंतर शेवटीं सात ब्राह्मणांला भोजन द्यावे, हें प्रायश्चित्त करावें. सतराव्या इत्यादिक वर्षी असतां तीन कच्छ इत्यादिक प्रायश्चित्त पूर्वी करून नंतर मोंजी करावी. या प्रमाणे निर्णय जाणावा. ब्राह्मण, आणि त्रिय यांची मोंजी उत्तरायणांत करावी. वैश्याची दक्षिणायनांतही करावी. “ ब्राह्मणाची मोंजी वसंत ऋतूंत करावी, क्षत्रियाची ग्रीष्मऋतूंत, वैश्याची शरदृतूंत करावी.” “ माघापासून ज्येष्ठपर्यंत पांच महिने साधारणपणाने सर्व द्विजाला उक्त होत, ” असे गर्गऋषींचे वचन आहे याकरितां वसंत न मिळेल तर शिशिर ऋतु व ग्रीष्म ऋतु हेही ग्रहण करावे. कारण वसंतऋतूमध्ये ब्राह्मणाची मोंजी करावी असा जो वसंतविधि सांगितला येणे करून उत्तरायण इत्यादिक विधींचा संकोच घडत नाही. याप्रमाणे माघ इत्यादिक पांच महिने घ्यावे असा नियम सांगितला. या करितां पौष मास व आषाढ मास यांचे ठिकाणीं जरी उत्तरायण असले तथापि मोंजी करूं नये. त्यामध्येहि मीन राशीचा सूर्य झाल्यापासून मिथुनाचा सूर्य होईपर्यंत जो काल तो प्रशस्त होय. मर्निचा व मेघीचा सूर्य असतां फार प्रशस्त ‘ मकराचा, व कुंभाचा सूर्य असतां मध्यम, मर्निचा व मेघीचा सूर्य असतां उत्तम, वृष मीनाचा व मिथुनीचा सूर्य असतां अधम उपनयन, ” असे वचन आहे. याकरितां मीनाकार्नि युक्त चैत्र असून त्यामध्ये अनिष्ट वृहस्पति इत्यादिक अनेक प्रकारचे जरी दोष असतील तथापि त्यांविषयी अपवाद असल्याच्या योगाने तो चैत्र मास फारच प्रशस्त होय. कारण, “ गुरुशुक्रांचे अस्त, सिंहस्थ गुरु, चंद्र व सूर्य हे दुर्बल, गोचरींचा गुरु अनिष्ट इत्यादिक दोष असतील, परंतु जर मर्निचा सूर्य असेल तर चैत्रमासांत मोंजी करावी, अशा अर्थाची स्मृति आहे.” ह्या मोंजीविषयीं गुरुशुक्रांच्या अस्तदोषाचा जो अपवाद सांगितला तो अति महासंकट असेल तर आहे; याकरितां तो सांगूं नये. चैत्र मासांत मर्निचा सूर्य असल्यास जन्ममास, जन्मनक्षत्र यांचा दोष नाही. जन्ममास, जन्मनक्षत्र

जन्मतिथि, जन्मलग्न, जन्मराशि यांचे ठिकाणी ब्राह्मणाची मोंजी केली असता दोष नाही. क्षत्रिय व वैश्य यांच्या दुसरा इत्यादि गर्भाविषयी दोष नाही. ज्येष्ठ अपराह्ण ज्येष्ठ मासांत मंगळ करू नये. “शुक्लपक्ष शुभ व शेवटचे पांच दिवस टाकून कृष्णपक्ष शुभ” असे बृहस्पतीचे वचन आहे याकरितां कृष्णपक्षांत दशमीपर्यंत, संकट असता मोंजी करावी. शिष्टजन तर, संकट असले तयापि कृष्णपक्षांत पंचमीपर्यंतच मोंजी करितात.

मोंजीविषयी तिथिविचार.

द्वितीया, तृतीया, पंचमी षष्ठी, दशमी, एकादशी आणि द्वादशी ह्या तिथि प्रशस्त होत. काचित् ग्रंथांत सप्तमी, त्रयोदशी व कृष्णप्रतिपदा ह्या तिथि घेण्याविषयी सांगितले आहे; परंतु ह्या पुनरुपनयन व मुक्ते इत्यादिकांचे उपनयन यांविषयी ध्याव्या. “सोपपदा तिथि, अनध्याय, गलग्रह, आणि अपराह्णकाल, यांतील कोणत्या एकावर ज्याची मोंजी झाली तो पुनःमोंजीला योग्य होतो.” ज्येष्ठमासातील शुक्लपक्षांची द्वितीया, आश्विनमासातील शुक्लपक्षांची दशमी, माघ मासातील चतुर्थी व द्वादशी ह्या तिथीला सोपपदा असे नांव आहे.” अनध्याय—“पौर्णिमा; चतुर्दशी; अष्टमी; अमावास्या; प्रतिपदा; सूर्यसंक्रांति; मन्वा दितिथि; युगादितिथि; कार्तिक, आषाढ; आणि फाल्गून या मासांतील कृष्णपक्षांच्या द्वितीया, ह्या तिथि अनध्याय होत. तुला, मेष, व अयन संक्रांति यांचा बारा प्रहर अनध्याय असे प्रथमपरिच्छेदांत सांगितले आहे. सोपपदातिथि; व अनध्यायतिथि ह्या दोन दिवसीं सूर्यादयानंतर व सूयास्ताच्या पूर्वी सहा घटिकांपर्यंत असतील तर दोन दिवस पर्यंत अनध्याय जाणावा. शिष्ट जन तर, एक दोन घटिका जरी प्रतिपदा शेष असली तयापि मोंजीविषयी तो अनध्याय होय असे सांगतात. तुला, मेष, अयन यांहून इतर ज्या संक्रांति; मन्वादि; आणि युगादि यांविषयी तर प्रथमपरिच्छेदांत सांगितल्या रीतीने संक्रांतीचा पुण्यकाळ, व युगादि मन्वादि तिथींचा श्राद्धकाळ हीं ज्या दिवसीं येतील त्या दिवसीं अनध्याय जाणावा. तुला, मेष, अयन ह्यांहून इतर संक्रांति; मन्वादि; युगादि अस्त इत्यादिक समयी सहा घटिका असल्या तयापि तो अनध्याय असे समजू नये. त्रयोदशीपासून प्रतिपदेपर्यंत तिथि ४, व सप्तमी, अष्टमी, नवमी, चतुर्थी ह्या आठ तिथि गलग्रहसंज्ञक होत. एथें चतुर्थी, नवमी ह्या तिथि मोंजीबंधनाविषयी टाकाव्या असे वाटते. कितीएक अल्प चतुर्थीने मुक्त अशी जी पंचमी तिचेठिकाणी मोंजी करित नाहीत, परंतु आविषयी मूळ शोध करावा. नवमीशेषयुक्त दशमिचे ठिकाणी मोंजी करूं नये असे मयूखांत सांगितले आहे. अपराह्ण ह्यणजे दिवसाचे तीन भाग करून तिसरा भाग जो तो मोंजीविषयी वर्ज्य करावा. दिवसाचा मध्यभाग तो मध्यम, प्रथम भाग तो मुख्य

होय. मन्वादि, व युगादि दुसऱ्या परिच्छेदांत सांगितल्या आहेत. चैत्रशुद्ध तृतीया ही मन्वादि व वैशाखशुद्ध तृतीया ही युगादि ह्या दोन तिथींची मींजीविषयी प्राप्ति आहे, इतर ज्या युगादि मन्वादि तिथि त्यांची प्राप्ति नाही. चैत्रशुद्ध तृतीया, व वैशाखशुद्ध तृतीया ह्यांचा अपवाद निर्णयसिधु, कौस्तुभ इत्यादिक ग्रंथां सांगतात. “चैत्र व वैशाख या मासांतली शुद्धपक्षांच्या तृतीया, माघ मासांतली सप्तमी, आणि फाल्गुनमासांतली कृष्णपक्षांची द्वितीया ह्या तिथि मींजीविषयी प्रशस्त असें भाद्राज जे मुनींद्रमुख्य यांनीं सांगितले. एथें माघमासांतली सप्तमीचा जो अपवाद सांगितला तो पुनरुपनयनाविषयी आहे. फाल्गुनकृष्ण द्वितीयेला चातुर्मास्याचे द्वितीयेच्या संवधानें प्राप्त झाले जें अनध्यायत्व त्याचा हा अपवाद समजावा. “अनध्यायाच्या पूर्वदिवसीं आणि अनध्यायाच्या दुसऱ्या दिवसीं मींजी, सोडमुंज, विद्यारंभ हीं करू नयेत,” अली दुसरी स्मृति आहे ती तर, द्वितीयेच्या विधीची जी अतिद्वि तेषंकरून, गळग्रहतिथींच्या योगानें प्राप्त झाला जो सप्तमी, नवमी, व त्रयोदशी या तिथींस निषेधाचा अनुवाद लणजे पुनराक्ति तीस करणारी आहे असें मला वाटतें. नर कदाचिन् हा अपूर्व निषेध मानावा तर मन्वादि, युगादि, आणि संक्राति इत्यादिप्रयुक्त जे अनध्याय साहून जे पूर्व व पर दिवस त्यांसहि निषेध प्राप्त झाल्यानें चैत्रशुद्ध द्वितीयेलाहि निषेध प्राप्त होईल; यास्तव ती इष्टापत्ति नाही; कारण, शिष्टाचार ग्रंथांमध्ये तसें मिळत नाही. मुहूर्तमार्तंडकाराच्या वचनानें माघमासांतली शुद्धद्वितीया व कृष्णद्वितीया आणि वैशाखकृष्ण द्वितीया हे तीन मींजीविषयी अनध्याय अधिक प्राप्त होतात, परंतु इतर ग्रंथकार हे तीन अनध्याय मानित नाहीत. कारण पुष्कळ ग्रंथांमध्ये आधार मिळत नाही. मुहूर्तचिंतामणि इत्यादिक ग्रंथांमध्ये मींजीप्रकरणीं हें कोठेंहि सांगितलें नाही यास्तव मार्तंडामध्ये अधिक जे अनध्याय सांगितले ते उपनिषदे इत्यादिकांच्या पाठाविषयी होत, मींजीविषयीं नाहीत, असें मला योग्य वाटतें. त्यामध्ये तृतीया, षष्ठी, व द्वादशी ह्या तिथींचे ठायीं प्रदोष असतां मींजी करूं नये. रात्रीच्या पहिल्या प्रहरीं चतुर्थी, दीड प्रहरामध्ये सप्तमी, आणि दोन प्रहरांमध्ये त्रयोदशी याप्रमाणें तिथि असतां प्रदोष होतो. दोन दिवसीं पहिला प्रहर इत्यादिकांचे ठायीं चतुर्थी इत्यादिक तिथींची व्याप्ति लणजे दोन दिवस रात्रीच्या प्रथमप्रहरीं चतुर्थींची व्याप्ति, दोन दिवस रात्रीच्या दीड प्रहरीं सप्तमीची व्याप्ति, दोन दिवस रात्रीच्या दोन प्रहरीं त्रयोदशीची व्याप्ति असेल तर पूर्व दिवसीं प्रदोष; दुसऱ्या दिवसीं नाही, असें कौस्तुभांत सांगितलें आहे. प्रदोषाचा दिवस, शनिवार, आणि कृष्णपक्षाचे शेवटचे पांच दिवस ह्या दिवसीं मींजी केली असतां पुनः मींजी करावी असें मयखांत सांगितलें आहे. हे निम्न अनध्याय सांगितले.

नैमित्तिक अनध्याय.

विवाह, प्रतिष्ठा (मंडपप्रतिष्ठा, अर्चा इत्यादि), उद्यापन इत्यादि कार्यांत कार्याची समाप्ति होईपर्यंत सगोत्र जे त्यांस अनध्याय आहे असे स्मृत्यर्थेसार ग्रंथांत सांगितले आहे. यास्तव तीन पुरुषपर्यंत सपिंडांनी ब्रह्मयज्ञ, वैश्वदेव, इत्यादिक कर्मे वर्ज्य करावीं ह्मणून सांगितले आहे. याकरितां मौंजी, विवाह इत्यादिक निमित्ताने केलेले जे मंडपप्रतिष्ठा इत्यादिक उत्सव त्यांची समाप्ति होईपर्यंत मौंजी करूं नये असे वाटते. विवाह इत्यादिक मंगल कार्ये कोणी असतां दोष नाही. 'मंगलकार्यांचे दिवसां अनध्याय,' असे वचन आहे याकरितां गर्भावान इत्यादिक मंगल कार्ये ज्या दिवसां असेल त्या दिवसां एका कुलामध्ये किंवा एका घरामध्ये मौंजी करूं नये असे वाटते. भूमिकंप, भूमिविदारण, बीज पडणे, उरुकापात ह्मणजे आकाशांतून आभिरूप तारा पडणे, शेटे नक्षत्राची उत्पत्ति, ग्रहण इत्यादिक शाली असतां दहा दिवस किंवा सात दिवसपर्यंत मौंजी इत्यादिक मंगल कार्ये करूं नये. कोणी ग्रंथकार, संकट असतां तीन दिवस अनध्याय असे सांगतात. अकाली वृष्टि झाली असतां तीन रात्रि किंवा बारा प्रहर अनध्याय. पौषांपासून चैत्रमासापर्यंत जी वृष्टि ती अकालवृष्टि होय. कोणी ग्रंथकार आर्द्रा नक्षत्रापासून ज्येष्ठा नक्षत्रापर्यंत जी सूर्यनक्षत्रे त्यां बांचून इतर काली जी वृष्टि ती अकालवृष्टि असे ह्मणतात. ज्या देशामध्ये जो वृष्टीचा समय असेल त्याहून अन्यकाली जी वृष्टि होते ती अकालवृष्टि होय, असा सिद्धांत जाणावा. अतिवृष्टि, फरकावृष्टि ह्मणजे गारांचा पर्जन्य अथवा रक्ताची वृष्टि झाली असतां तीन दिवस अनध्याय. प्रातःसंध्यासमयी गर्जना झाली असतां एक अहोरात्र अनध्याय. गुरू, शिष्य, अथवा ऋत्विक् द्यांतून कोणीही मृत झाला असतां तीन दिवस अनध्याय. पशु, वेडुक, मुंगूस, कुत्रा, सर्प, मानर, उंदीर, द्यांतून एखादे मधून गेले असतां एक अहोरात्र अनध्याय. अरण्यांतोळ माजरींदादे मधून गेले असतां तीन रात्र अनध्याय. कोल्हे, वानर हे मधून गेले असतां बारा रात्रीपर्यंत अनध्याय. श्रवणद्वादशी, यमद्वितीया, महाभरणी इत्यादिक दुसरोही अनध्याय निस नैमित्तिक असे बहुत ग्रंथांमध्ये सांगितले आहेत परंतु मौंजीविषयी त्यांची प्राप्ति नसल्या कारणाने ते एथे सांगितले नाहींत. मौंजीप्रसंगी नांदीश्राद्ध शाब्दानंतर पूर्वी सांगितले जे प्रातःकाली गजितादि नैमित्तिक अनध्याय ते प्राप्त झाले असतां ज्योतिर्निबंध ग्रंथी सांगतात— "नांदीश्राद्ध केल्यानंतर जर अकालिक अनध्याय प्राप्त होईल तर उपनयन करावे, वेदा-रंभ करूं नये." वेदारंभ करूं नये असा जो निषेध सांगितला तो यजुःशाखीविषयी जाणावा; कारण ऋक्शाखी यांनी उपाकर्मकालीं वेदारंभ करावा असे सांगितल्यामुळे

ज्ञात मौंजीच्या दिवसीं वेदारंभाची प्राप्ति नाही, याकारिता 'उपमयन करावें, वेदारंभ करूं नये' असा जो निषेध तो ऋगूशाखी इत्यादिक सर्वांला साधारणपणानें सांगितला. यजुःशाखी इत्यादिकांनीं मौंजी शाल्यानंतरहि अनध्याय प्राप्त झाला असतां वेदारंभ वर्ज्य करावा. नांदीश्राद्धाच्या पूर्वी नैमित्तिक अनध्याय प्राप्त झाला असतां दुसऱ्या मुहूर्तावर मौंजी करावी. मौंजी शाल्यानंतर व अनुप्रवचनीय होमाच्या पूर्वी गर्जना झाली असतां व्याविषयीं पुढें सांगेन. याप्रमाणें अनध्याय इत्यादिकांचा निर्णय समाप्त झाला.

याप्रमाणें तिथि, व तिथींच्या प्रसंगानें अनध्याय इत्यादिकांचा निर्णय सांगून आतां बारादिकांचा विचार करितों:—गुरू, शुक्र, बुध, हे वार श्रेष्ठ होत. रविवार मध्यम, सोमवार अधम होय. भौम व शनिवार हे निषिद्ध होत. सामवेदी, व क्षत्रिय यांला भौम-वार प्रशस्त होय. "शाखाधिपतीचे वार, शाखाधिपतीचेवल, आणि शाखाधिपतीचे लभ हीं तीन मौंजीचे ठिकाणीं दुर्लभ होत. गुरूवार ऋग्वेदाचा अधिपती, शुक्रवार यजुर्वेदाचा अधिपती, मंगळवार सामवेदाचा अधिपती, बुधवार अथर्वणवेदाचा अधिपती, या प्रमाणें वेदांचे अधिपति सांगितले. गुरू व शुक्र हे ब्राह्मणांचे अधिपति, मंगळ व रवि हे क्षत्रियांचे अधिपति, चंद्र व बुध हे वैश्यांचे अधिपति, याप्रमाणें वर्णाधिपति सांगितले. पित्याला सूर्यवल श्रेष्ठ. बटूला शाखाधिपति व वर्णाधिपति यांचें वल श्रेष्ठ होय. पिता, बटु, व इतर सर्व यांला बृहस्पति, व चंद्र यांचें वल श्रेष्ठ होय." बटु, व त्याचा पिता, व माता यांला गुरू व चंद्र यांचें वल नसेल तर बटूला गुरू चंद्रांचें वल अवश्य असावें. आ मध्ये चंद्रबळ गर्भाधानप्रसंगीं सांगितलें. जन्मराशिपासून २।५।७।९।११ ह्या स्थानीं वा गुरू शुभ फळ देणारा होय. १।३।६।१० ह्या स्थानीं वा गुरू पूजाहोमरूप शांति केल्यानें शुभ होय. ४।८।१२ ह्या स्थानीं वा गुरू दुष्टफल होय. कर्क, धनु मीन ह्या राशींचा गुरू असेल तर, ४।८।१२ ह्या स्थानीं वा असला तथापि दोष नाही. अति संकट असेल तर चवथा, बारावा द्विगुणपूजा, होम इत्यादिक केल्यानें शुभ होतो. आठवा असेल तर त्रिगुण पूजा, होम इत्यादिकानें शुभ होतो. कोणी ग्रंथकार, आनीष्ट गुरू वामवेदानें शुभ असें सांगतात, परंतु राजमार्तंड ग्रंथकार तें मानीत नाही. आठवें वर्ष इत्यादिक जे मौंजीचे मुख्य काल त्याकालीं गुरूबळ नसेल तथापि मीनराशिस्थ सूर्यानें युक्त अशा चित्रांत मौंजी करावी, अथवा शांति करून मौंजी करावी, पण मुख्य काल टळूं देऊं नये; कारण निराकाल हा बलिष्ठ आहे.

मौंजीचीं नक्षत्रें.

पूर्वा, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा, हस्त, चित्रा, स्वाती, मूळ, आश्लेषा, आरद्रा, आणि

श्रवण ह्या नक्षत्रांचे ठिकाणी ऋकशास्त्री जे यांची मौंजी प्रशस्त होय. रोहिणी, मृग, पुष्य, पुनर्वसु, तीन उत्तरा, हस्त, अनुराधा, चित्रा, व रेवती ह्या नक्षत्रांवर यजुःशास्त्री जे यांची मौंजी प्रशस्त होय. अश्विनी, पुष्य, तीन उत्तरा, आर्द्रा, हस्त, धनिष्ठा, श्रवण ह्या नक्षत्रांनी सामवेदी जे यांची मौंजी प्रशस्त. अश्विनी, मृग, अनुराधा, हस्त, धनिष्ठा पुनर्वसु, आणि रेवती ह्या नक्षत्रांवर अथर्वणवेदी जे यांची मौंजी प्रशस्त. हीं पूर्वेक नक्षत्रें न मिळतील तर भरणी, कृत्तिका; मघा, विशाखा, ज्येष्ठा; शतताराका, हीं वर्ज्य करून सर्व नक्षत्रें सर्वांनीं घ्यावीं. राजमार्तंडांत पुनर्वसूचा जो निषेध सांगितला तो निर्मूल आहे असें पुष्कळ ग्रंथकार ह्मणतात. कोणी ग्रंथकार, पुनर्वसूचा निषेध ऋग्वेदी व सामवेदी यांविषयीं आहे असें ह्मणतात. व्यतीपात, वैधृति, परिघाचें अर्ध, विष्कंभ इत्यादि योगांच्या निषिद्ध घटिका; भद्रा; ग्रहण यांतील एकाहि असतां मौंजी करूं नये.

आतां लग्नाविषयीं ग्रहबल सांगतो.

मौंजीविषयीं लग्नशुद्धि पाहणें ती असी;—बारा, आठ, सहा ह्या स्थानींचे वर्ज्य करून शुभ ग्रह मौंजीला उक्त होत. ३।६।११ ह्या स्थानींचे पापग्रह उक्त होत. गुरुपक्षातील चंद्र वृषभाचा व कर्कीचा होत्साता लग्नीं स्थित असेल तर शुभ होय. क्वचित् ग्रंथा मध्ये लग्नीं रवि असेल तर श्रेष्ठ होय, असें सांगितलें आहे, व अष्टमस्थानीं कोणताहि ग्रह असल्यास तो वर्ज्य करावा. पष्ठस्थानीं लग्नपाति शुक व चंद्र आणि बारावा शुक हे वर्ज्य करावे. चंद्र व पापग्रह हे लग्नीं नसावे, आणि बारावा, आठवा चंद्र वर्ज्य करावा. पांच इष्टग्रह ज्या लग्नास येत नाहींत ते लग्न सर्वत्र वर्ज्य करावें. तुला, मिथुन, कन्या, धनु, वृषभ, मीन, हे नवमांश शुभ होत. मौंजीविषयीं कर्काश वर्ज्य करावीं. षट्दर्श-शुद्धि इत्यादिक, आणि इष्टकाल साधन इत्यादिकांचा विचार करणें तो ज्योतिष ग्रंथांतून पाहावा. ज्याची मौंजी करावयाची त्याची माता रजस्वला असेल तर, आणि पिता जवळ नसल्यामुळें मातुळ, ज्येष्ठभ्राता इत्यादिक मौंजी करणारे असून त्यांची स्त्री रजस्वला असेल तर मौंजी, विवाह इत्यादिक करूं नये. नांदीश्राद्ध झाल्यानंतर माता रजस्वला असतां आता इत्यादिक नरी दुसरा कर्ता असेल तथापि दुसरा मुहूर्त जवळ न मिळेल तर शांति करून उपनयन करावें, तसें नसेल तर दुसऱ्या मुहूर्तावरच करावें. नांदीश्राद्ध झाल्या नंतर मातुळ इत्यादिक जे कर्ते त्यांची स्त्री रजस्वला झाली असल्यास आरंभ झालेला आहे याकरितां शांति केल्यावांचूनच करावें. मौंजी, विवाह हीं झाल्यानंतर आणि मंडपोद्घासनाच्या पूर्वीं माता रजस्वला झाली असेल तथापि मंगलाची सभासे झाली नाहीं याक

रितां शांति करावी, असें मुहूर्त्ताचितामणीचे टिकेमध्ये सांगितले आहे. प्रारंभाच्या पूर्वीही रजस्वला झाली असेल आणि दुसरा मुहूर्त्त मिळत नसेल तर अति संकट असतां शांति करून मौंजी इत्यादिक कार्य करावे, असें कौस्तुभांत सांगितलें आहे. शांतीचा प्रकार संगतो— “ममामुकमंगले संस्कार्यजननीरजोदोषजनिताशुभफल निरासार्थ शुभफलावाप्त्यर्थं श्रीपूजनादिशांतिं करिष्ये,” असा संकल्प करून एक मासा सोन्याची लक्ष्मीची प्रतिमा करून त्या प्रतिमेची श्रीसूक्तानें षोडशोपचार पूजा करून आपल्या गृह्यासतां सांगितलेल्या विधीकडून श्रिसूक्ताच्या दरएक ऋचेनें पायसाचा होम करून कलशांतील उदकानें अभिषेक करून विष्णूचें स्मरण करून कर्म ईश्वराला अर्पण करावे. प्रारंभ झाल्यानंतर आशीच प्राप्त झालें असतां, सोदरभायांचा समानसंस्कार असतां, आणि प्रेतकर्माची समाप्ति न झाली असतां ह्या विषयींचा निर्णय चौलप्रकरणीं सांगितला आहे. विशेष निर्णय सांगणें तो पुढें सांगूं.

मौंजीविषयीं पदार्थ कोणते मिळवावे ते.

कौपीन, पांघुरण्याचें वस्त्र, हें कापसाचें अहत असें मिळवावे. थोडें धुतलेलें असून नवें, व श्वेतवर्ण, आणि दशायुक्त असें जें वस्त्र तें अहत संज्ञक होय. तें पांघुरण्याकरितां मिळवावे. अथवा कृष्णाजिन मिळवावे. तें कृष्णाजिन तीन अंगुळें किंवा चार अंगुळें बहिलें असें अखंड किंवा त्रिखंड ४८ अंगुळें धारण करावे. त्रिखंड धारण करणें असेल तर २४ अंगुळांचा, आठ अंगुळांचा, व सोळा अंगुळांचा याप्रमाणे क्रमानें तीन तुकडे असावे. यज्ञोपवीत करणें तें कापसाचें करावे.

यज्ञोपवीत कसें करावें तें.

यज्ञोपवीत करण्याकरितां सूत घेणें तें ब्राह्मणानें व ब्राह्मणाच्या स्त्रियांनीं काढलेलें आणि विभवा इत्यादिकांनीं निर्मिल्लें घ्यावे. एकत्र सारखींकेलिलीं जीं चार अंगुळें त्यांचे मूलांचे ठिकाणीं शाण्व व वेळ सूत वेष्टून तें सूत त्रिगुण करून पाहिल्यानें ऊर्ध्ववृत्त वळून पुनः त्रिगुण करून अधोवृत्त रीतीनें वळावे. असें केल्यानें तें सूत नवसुती होतें. नंतर ती नवसुती तीन वेळ वेष्टण करून घट्ट गांठ द्यावी. “स्तनाच्यावर व नाभीच्या खालीं यज्ञोपवीत कधींही धारण करूं नये. तुटलें असतां किंवा खालीं गेलें असतां व भोजन करून निर्माण केलें तें टाकावे.” “सिद्धपदार्थांचे ठायीं मंत्र योजावे,” असा न्याय आहे याकरितां यज्ञोपवीत तयार झाल्यानंतर त्रिगुणीकरणादिकांच्या मंत्रांनीं यज्ञोपवीत अभिमंत्रून “यज्ञोपवीतं परमं०” ह्या मंत्रानें धारण करावे. तें असें;—गायत्रीमंत्रानें त्रि-

गुणित करून " आपोहिष्ठा० " ह्या तीन ऋचांनी प्रक्षालन करून पुनः गायत्रीमंत्राने त्रिगुणित करून ग्रंथीचे ठायी विष्णु, ब्रह्मा, इतर यांचा न्यास करावा. कोणी ग्रंथकार, नवसुतीचे ठायी नऊ देवतांचे न्यास करावे असे सांगतात. तदनंतर गायत्रीमंत्राने ब्रह्म-वेळ अभिमंत्रित केलेल्या उदकाने यज्ञोपवीत प्रक्षालन करून "उदुखं०" ह्या तीन ऋचांनी सूर्याला दाखवून "यज्ञोपवीत०" ह्या मंत्राने, प्रथम उजवा बाहू उंच करून नंतर कंठाचे ठायी धारण करावे. "डाव्या खांद्यावरून वर केलेला उजवा हात असता घातलेले जे ब्रह्मसूत्र ते उपवीत, उजव्या खांद्यावरून घातलेले जे ब्रह्मसूत्र ते प्राचीन-वीत, कंठाचे ठायी सरळ माळेसारखे घातले जे ब्रह्मसूत्र ते निवीत होय." चित्ति-काष्ठ, चित्तीचा धूर, चांडाल, रजस्वला, प्रेत, बाळंतीण यांचा स्पर्श झाला असता स्नान करून यज्ञोपवीत टाकावे, ह्मणजे दुसरे धारण करावे. निवीती इत्यादिक केल्यावाचून मलमूत्राचा उत्सर्ग केला असताहि यज्ञोपवीत टाकावे. चार माहिने झाल्यानंतर यज्ञोपवीत टाकावे कोणी ग्रंथकार जननाशीच व मृताशीच यांच्या अंतीहि यज्ञोपवीत टाकावे असे सांगतात-जीर्ण यज्ञोपवीताचा त्याग करणेतो, "समुद्रं गच्छ स्वाहा" ह्या मंत्राने किंवा ओंकरासहित व्याहृतिमंत्रांनी करावा. यज्ञोपवीत विस्मरणाने हरवले असता मंत्रविरहित लौकिक यज्ञोपवीत घालून "मनोऽप्यो त्तिः० अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छ्रेयं तन्मेराधपतां, वायोव्रतपते०, आदिसव्रतपते०" इत्यादि चार मंत्रांनी चार घृताच्या आहुतींचा होम करून नंतर समंत्रक नवे यज्ञोपवीत धारण करावे. अथवा "यज्ञोपवीतनाशजन्यद्रोपानिरासार्थं प्रायश्चित्तं करिष्ये," असा संकल्प करून अचार्यवरण, अग्निस्थापन इत्यादि आज्यभागांत कर्म करून सविता देवतेच्या उद्देशाने गायत्रीमंत्रे करून तिळांचा, व घृताचा अष्टोत्तरशत (१०८) किंवा सहस्र होम करावा नंतर नवे यज्ञोपवीत घालून राहिलेले संघ्यादिक कर्म करावे. यज्ञोपवीतावाचून एक क्षण जरी राहिल तरी शंभरगायत्रीजप करावा. यज्ञोपवीतावाचून भोजन केले असता किंवा शौच मूत्र केले असता गायत्रीमंत्राचा आठ सहस्र जप करावा. डाव्या खांद्यावरून कोपरावर किंवा मनगटाच्या (यज्ञोपवीत) शेवटी पडले असता जेथच्या तेथे धरून तीन किंवा सहा क्रमाने प्राणायाम करून नवे धारण करावे. क्रोध इत्यादिकांच्या योगाने आपण यज्ञोपवीत टाकले असता पूर्वी सांगितल्याप्रमाणे लौकिक यज्ञोपवीत धारण करून प्रायश्चित्त केल्यानंतर नवे धारण करावे. ब्रह्मचारी याने एक यज्ञोपवीत घालावे. स्नातकाने दोन घालावी. उत्तरीय वस्त्राच्या अभावी तिसरे घालावे. ज्याचा पिता जिवंत असेल त्याने व ज्याचा वडील भाऊ जिवंत असेल त्याने उत्तरीय वस्त्र, किंवा त्याच्या स्थानी तिसरे यज्ञोपवीत धारण करू नये. आयुष्याची इच्छा करणारा याने तीनपेक्षा अधिक असीं

बहुत यज्ञोपवीते घाळावी. "अभ्यंगस्नान, समुद्रस्नान, मातापितरांचा मृतदिवस (श्राद्धदिवस) इतक्या दिवसी तैत्तिरीय, कठ, कण्व, चरक आणि वाजसनेयी इतके ब्राह्मण यांनी कंठा पासून यज्ञोपवीत काढून निश्चयें प्रक्षालन करावें." इतर यजुःशाखी, ऋग्वेदी, व साम-वेदी यांनी कंठापासून काढलें असतां ते टाकून नवें धारण करावें.

आतां यानंतर मेखला, दंड इत्यादिक सांगतो.

"मुंज (मोळ) तृणाची तिपेड, सारखी, बारीक असी मेखला ब्राह्मणाची करावी. या मेखलेचे तीन फेरे घालून पहिली गांठ एका फेऱ्याची, दुसरी तीन फेऱ्यांची; तिसरी पांच फेऱ्यांची याप्रमाणें बांधावी. मुंजतृण न मिळेल तर कुश, आश्मंतक, बल्बज ह्या तृणांची करावी. ब्राह्मणाला केशापर्यंत उंचीचा असा पळसाचा दंड उक्त होय. अथवा सर्वांला यज्ञिय वृक्षाचा दंड वरच्या नाशिकाप्रापर्यंत उंचीचा उक्त होय." बटूच्या हातानें लांबी व रुंदी चार चार हात, व उंची एक हात, व चतुष्कोण, पायऱ्यांनी युक्त, पूर्वेकडे व उत्तरेकडेस उतरती, कदलीच्या स्तंभादिकांनी अलंकृत असी वेदी करावी.

आतां मौंजीचे जे अंतर्गत पदार्थ त्यां मध्ये विशेष सांगतो.

वस्त्रधारण केल्यानंतर लौकिक आचमन करावें. यज्ञोपवीत धारण केल्यानंतर तर विधियुक्त आचमन करावें. आचमनाचा विधि पुढें सांगेन. याप्रमाणें आज्यपात्राच्या उत्तरप्रदेशी बटूकडून आचमन करवून प्रणीतापात्राच्या पश्चिमप्रदेशरूप तीर्थकरून प्रवेश करवून आचार्य व अग्नि यांच्या मधून नेऊन आचार्याच्या उजव्या वाजूस बसवावें. तदनंतर वहींचे, आस्तरणापासून सुवसंमार्गांत कर्म केल्यानंतर यज्ञोपवीताचे दान इत्यादिक आचमनापर्यंत कर्म करावें. त्यानंतर शिष्याचे अंजलीचे ठायीं जलाचें अवक्षरण इत्यादिक पासून समिदाधानापर्यंत गायत्री उपदेशाचें अंगभूत कर्म करावें. बटूला शुचित्वाची सिद्धि व्हावी एतदर्थ "अग्नये समिधं०" हा मंत्र एक वेळ ह्मणवावा. तदनंतर परि दान (सूर्य आणि प्रजापति यांना मनैकरून बटूला देणें,) अभिवादन (अग्नीला यथाविधि नमन करणें,) हीं झाल्यानंतर आचारप्राप्त असें गायत्रीपूजन करून अग्नीच्या उत्तर प्रदेशीं बटूला गायत्रीचा उपदेश करावा. अवक्षरण करणें तेंहि अग्नीच्या उत्तर प्रदेशीं करावें. पूर्व दिशेला सन्मुख अशा आचार्यानें पश्चिमाभिमुख बसलेल्या बटूला गायत्रीचा उपदेश करावा.

आतां उपसंग्रहण ह्यणजे गुरूचे पाय धरणें त्याचा विधि सांगतां.

उपसंग्रहण ह्यणजे “अमुक प्रवरांनीं युक्त, अमुकगोत्र, अमुकशर्मा असा मी नमस्कार करितों,” असें बोलून बटूनें आपल्या उजव्या व डाव्या कानांला, डाव्या व उजव्या हातांनीं स्पर्श करून उजव्या हातानें गुरूच्या उजव्या पायाला व डाव्या हातानें डाव्या पायाला याप्रमाणें स्पर्श करून मस्तक नम्र करणें हें उपसंग्रहण होय. याप्रमाणें गुरू, माता, पिता इत्यादीकांचे पायांला अभिवादनपूर्वक स्पर्श करणें तें उपसंग्रहण होय. वृद्ध तर जे खांस अभिवादन मात्र करावें. वृद्ध जे खांला नमस्कार करावा. अशुचि; वांती करणारा; अभ्यंग केलेला; ज्ञान करणारा; जपादिकांत असणारा; पुष्प, जल, भिक्षादिकांचा भार वाहणारा यांला त्या त्या कालीं नमस्कार करूं नये. खांला नमस्कार केला असता उपोषण करावें. शूद्राला नमस्कार केला असता त्रिरात्र उपोषण करावें. अंजयाळा नमस्कार केला असतां कृच्छ्रप्रायश्चित्त करावें. देवता, गुरू, संन्यासी यांला नमस्कार न केला असता उपोषण करावें.

आतां प्रत्ययभिवादन ह्यणजे शिष्यानें नमस्कार केल्या- नंतर गुरूनें आशीर्वाद देणें तें सांगतां.

त्या प्रत्ययभिवादानाविषयीं शेवटचे स्वर अक्षर घुत असावें. तें असें; —“आयुष्मान् भव सौम्यदेवदत्ता ३” अर्थ—हे सौम्यदेवदत्ता, आयुष्मान् हो. एकार व ओकार हे आहेत अंतीं ज्याच्या असे नाम असेल तर, “इरा ३ इ, शंभा ३ उ” अर्थ—हे इरे, हे शंभो. याप्रमाणें संधीच्या अक्षराच्या वियोगानें पूर्वभागाचा ‘आ’ कार तो घुत होय. अनुप्रवचनीय होमाकरितां जी भिक्षा तिचेठायीं “भिक्षां भवान्ददातु,” किंवा “भिक्षां भवती ददातु,” याप्रमाणें ‘भवत्’ हा शब्द मध्ये ज्या वाक्यांत आहे असा भिक्षावाक्याचा प्रयोग करावा, अनुप्रवचनीयव्यतिरिक्त भिक्षा असेल तर पूर्वी किंवा शेवटीं ‘भवत्’ हा शब्द असावा.

विनायकशांति.

मौनी, विवाह इत्यादिक कार्यांत निविघ्नरूप फल प्राप्त होण्याकरितां, किंवा शुभाशुभ-सूचक उपद्रवाचा नाश होण्याकरितां; अथवा सपिंडाचें मरण इत्यादिक निमित्तानें प्राप्त होणारें जें प्रतिकूल त्याची निवृत्ति होण्याकरितां विनायकशांति करावी. याविषयीं काल—शुद्धपक्षातील चतुर्था, गुरुवार, पुष्य, श्रवण, उत्तरा, रोहिणी, हस्त, अश्विनी, आणी षष्ठी हीं नक्षत्रे प्रशस्त होत. मौनी इत्यादिक कार्यांचे ठिकाणीं मुख्य कालाच्या अनु-

रोधाने नसा िळिल तसा काल घ्यावा. शांतीचा संकल्प—“अमुककर्मणी निर्विघ्नफलसि-
ध्यर्थ,” अथवा “उपसर्गनिवृत्त्यर्थ,” किंवा “अमुकसर्विदमरणनिमित्तकाशुचिस्वप्नातिकूल्य-
निरासार्थ,” याप्रमाणे जसे निमित्त असेल तदनुसार संकल्पांत ऊह करावा. अवशिष्ट
प्रयोग दुसऱ्या ग्रंथी पाहावा.

आतां ग्रहमख.

विवाह, मौंजी इत्यादिक मंगल कार्ये कर्तव्य असतां प्रथम ग्रहयज्ञ करावा. श्राद्धव्य-
तिरिक्त जी मंगलरहित असीं शांति इत्यादिक कर्मे कर्तव्य असतांही, ग्रह अनकुळ व्हावे
असी इच्छा करणारा याने ग्रहयज्ञ करावा. शांतीचीं स्थाने असे जे उत्पात ते शाले
असतां, जरी तो मुख्य नाही तथापि अरिष्टाचा नाश होण्याकरितां ग्रहमख करावा असें
सांगितलें आहे, याकरितां प्रधानकर्माच्या पूर्वी जवळच्या किंवा दूरच्या कार्णी करावा.
दुरच्या कार्णी करणे असेल तर सात दिवसांपेक्षा अधिक अंतर असूं नये. दरएक
ग्रहाचे मुख्य आहुतीची संख्या दहांच्या आंत असेल तर एकच ऋत्विज करावा. दहा
पेक्षा अधिक पन्नासपर्यंत होमसंख्या असेल तर चार ऋत्विज करावे. पन्नासांपेक्ष
अधिक शंभरांपर्यंत होम असल्यास आठ ऋत्विज व नववा आचार्य करावा. त्यांमध्ये
आचार्याने आचार्यकर्म करून सूर्याचा होम करावा. सोमादिक आठ ग्रहांचा होम
आठ ऋत्विजांनी करावा. चार ऋत्विज असतील तर दोन दोन ग्रहांचा एकेकाने होम
करावा, व आचार्याने सूर्याचा होम करावा. तांबें इत्यादिकांच्या प्रतिमांचे ठायीं अथवा सर्व सुव-
र्णाच्या प्रतिमांचे ठायीं किंवा कलचे ठायीं अथवा तांदुळांचे राशींचे ठायीं आदित्यादि नवग्र
हांचें पूजन करावें. जशी जशी होमाची संख्या असेल त्याप्रमाणे कुंड, किंवा स्थंडिल व ग्रहांची
वेदि यांचें हस्तादिक प्रमाण घ्यावें. प्रधान आहुति, व अंगदेवतांच्या आहुति ह्या मिळून पन्ना
सांपर्यंत असतील तर रत्निपरिमित कुंड करावें. शंभरांचे आंत असतां अरत्निपरिमित करावें
सहस्राचे आंत असतां हस्तपरिमित करावें. दहा सहस्र इत्यादिक होम असेल तर दोन
हात कुंड करावें. एक लक्ष होम असेल तर चार हात करावें. मुष्टि केलेला जो हात
तो रत्नि होय. विस्तृत जी कनिष्ठांगुलि तिणें युक्त जी मुष्टि तद्युक्त जो हात तो अरत्नि
होय. चौबीस अंगुळे लणजे एक हात. एक यवाने कमी अशा चौतीस अंगुळांचे दोन
हात. अष्टेचाळीस अंगुळांचे चार हात. कुंडाच्या मेलला, योनी, नाभी, खोली, इत्यादि-
कांचें प्रमाण दुसऱ्या ग्रंथांतून पाहावें. हें कुंडादिकांचें प्रमाण सर्वत्र जाणावें. समिधा,
चवू, घृत, हीं द्रव्ये होत. “ई, पळस, खैर, आघाडा, पिपळ, उंबर, शमी, दुर्वा, दर्भ
या प्रमाणे सूर्यादिक नवग्रहांच्या क्रमाने समिधा जाणाऱ्या. कोणी ग्रंथकार सिद्धी घ्यावे

असे झणतात. सूर्य इत्यादिक ज्या प्रधानदेवता यांच्या मुख्य होमाची जी संख्या तिच्या दहाव्या अंशाने, अधिदेवता व प्रथमिदेवता यांचा होम करावा. अधिदेवता इत्यादिकांची जी संख्या असेल तिच्या अर्ध्या संख्येने क्रतुसंरक्षक व क्रतुसाद्रुष्य ह्या देवतांचा होम करावा. शांतीचा अंगभूत जो ग्रहयज्ञ त्याचे ठायी बलीदान करितात. शांतिव्यतिरिक्त ग्रहमखाचे ठायी बलिदान करित नाहीत. प्रधानभूत असी एक आहुति असतां एक ब्राह्मणाला भोजन देणे तें श्रेष्ठ. शंभर आहुति असतां एक ब्राह्मणाला भोजन देणे तें मध्यम. सहस्र आहुती असतां एका ब्राह्मणाला भोजन देणे तें अधम होय. सविस्तर प्रयोगादिकांचा प्रकार दुसऱ्या ग्रंथा पाहावा. याप्रमाणे ग्रहमख समाप्त झाला.

आतां बृहस्पतीची शांति सांगतो.

कुमाराच्या मौंजीसमयी किंवा कन्येच्या विवाहसमयी बृहस्पति अनुकूल नसेल तर शौनक इत्यादिकांनी सांगितलेली शांति करावी. ती असी,—अस्य कुमारस्य उपनयने अस्याः कन्यकाया विवाहेवा बृहस्पत्यानुकूल्यसिद्धीद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं बृहस्पतिशांति कारिष्ये,” असा संकल्प करून आचार्याला वरावे. रथंडिलाच्या ईशान्यादिशीचे ठिकाणी यथाविधि स्थापन केल्या श्वेत कलशांत पंचगव्य, कुशोदक, विष्णुक्रांता, अतावरी इत्यादि औषधि टाकून पूर्णपात्र स्थापन केल्यानंतर पिवळ्या अक्षतांनी केलेले असे जें दीर्घ चतुष्कोणपीठ याच्यावर सुवर्णमय असी बृहस्पतीची प्रतिमा स्थापन करून रथंडिलावर अभि स्थापन इत्यादिक कर्म करावे. नंतर अन्वाधान करावे. तें असे,—“बृहस्पतिमश्वत्य. समिदाज्यसर्पिर्मिश्रापयसैः साज्येन मिश्रितयवव्रीहितिलेनच प्रतिद्रव्यमष्टोत्तरशताहुतिभिः शोवे णस्विष्टकृतं०” इत्यादिक अन्वाधान करून आज्यभागापर्यंत कर्म केल्यावर प्रतिमेचे ठायी षोडशोपचारांनी गुरूची पूजा करावी. या पूजेमध्ये पिवळीं दोन वस्त्रे, पिवळें यज्ञोपवीत, पिवळा चंदन, पिवळ्या अक्षता, पिवळीं पुष्पे, घृतदीप, दहिभाताचा नैवेद्य, हे उपचार अर्पण केल्यानंतर माणिक्य किंवा सुवर्ण दक्षिणा देऊन ग्रहमखांत सांगितले रीतीने कलशाचे अभिमंत्रण केल्यानंतर बृहस्पतिच्या मंत्राने दधि, मध यांत भिजवलेल्या समिधा; आज्य; घरांत सिद्ध केलेले पायस; मिश्रित यवादिक ह्या द्रव्यांनी, जसे अन्वाधान केले असेल तदनुसार होम करावा. नंतर होमशेष समाप्त करून गंधादिक उपचारांनी बृहस्पतीची पूजा करून तांब्याचे पात्रांत उदक घेऊन त्यांत पिवळ्या अक्षता, पिवळे, गंध, पिवळीं पुष्पे, हीं घालून त्या उदकाने अर्घ्य द्यावे. अर्घ्याचा मंत्र—“गंभीरदृढक पांग देवेज्यसुमतेप्रमो ॥ नमस्तेवाक्पतेशांत गृहाणार्घ्यं नमोस्तु ते.” नंतर प्रार्थना करावी—मार्धनेचे मंत्र—भक्षयापत्तेसुराचार्यहोमपूनादि सत्कृतं ॥ तत्त्वं गृहाण ह्यार्घ्यं बृहस्पते नमोः

मनः ॥ जीवो बृहस्पतिः सूरिराचार्यो गुरुंगिराः ॥ वाचस्पतिर्देवमंत्री शुभंकुर्वात्सदा मम,” याप्रमाणे प्रार्थना करून नंतर देवतेचे विसर्जन, प्रतिमेचे दान हीं केल्यानंतर कुमार इत्यादिकांनी युक्त अशा यजमानावर अभिषेक करावा. अभिषेकाचे मंत्र—“आपोहिष्ठा० ऋचा ३, तत्वायामि० ऋचा ३, स्वादिष्टया० ऋचा ३, समुद्रज्येष्ठा० ऋचा ४, इद-मापःप्रवह० ऋचा १, तामग्निवर्णा० ऋचा १, याओषधी० ऋचा १, अश्ववतीर्गोमतीर्न० ऋचा १, यद्देवादेवहेडनं०” इत्यादिक कुष्मांडमंत्र “पुनर्मनः पुनरायुः०” एथपर्यंत तैत्तिरीय शाखेचे ठायीं प्रसिद्ध, ते कौस्तुभ इत्यादि ग्रंथांत लिहिलेले आहेत. ह्या मंत्रांनीं अभिषेक करून ब्राह्मणांला भोजन घालवें. याप्रमाणे बृहस्पतिशांति समाप्त झाली.

मौंजी इत्यादिक संस्काराचे समयीं संकल्प करावयाचे ते.

मौंजीच्या पूर्वे दिवसीं आचार्याने “ ममोपनेतृत्वयोग्यतासिद्ध्यर्थं कृच्छ्रत्रयंतत्प्रत्याभ्नाय गोनिष्कयीभूतपयाशक्ति रजतद्रव्यदानेनाहमाचरिष्ये, ” “ तथा द्वादशाधिकसहस्रगायत्रीजपमुपनेतृत्वयोग्यतासिद्ध्यर्थं करिष्ये, ” असा संकल्प करावा. जर मौंजीच्या पूर्वेचे संस्कार अंतरले असतील तर, “ अस्य कुमारस्य पुंसवनादीनामथवाजातकर्मादीनां चौलांतानां संस्काराणां कालातिपत्तिजनितप्रयवायपरिहारद्वाराश्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं प्रतिसंस्कारमेकैकांभूर्भुवःस्वः स्वाहेति समस्तव्यात्हृत्साज्याहुतिं होष्यामि, ” असा संकल्प करून अभिस्थापन, इध्मास्थापन इत्यादिक पाकयज्ञाच्या तंत्रासाहित, अथवा अभिस्थापन, आज्य-संस्कार, पात्रसंमार्ग इतक्यांनीं मात्र युक्त अशा व प्रत्येक संस्काराची एक या प्रमाणे जितके संस्कार अंतरलेले असतील तितक्या संख्याक समस्तव्यात्हृतिमंत्राने आज्याच्या आहुतीचा होम करावा. तदनंतर, “ अस्य कुमारस्य पुंसवनानवलोभ नसीमंतोत्थयन-जातकर्मनामकर्मसूर्यावलोकननिष्क्रमणोपवेशनान्नप्राशनचौलसंस्काराणां लोपनिमित्तप्रयवायपरिहारार्थं प्रतिसंस्कारं पादकृच्छ्रं प्रायश्चित्तं चौलस्यार्धे कृच्छ्रं बुद्धिपूर्वकलोपे प्रतिसंस्कारं अर्द्धकृच्छ्रं चुडायाःकृच्छ्रं तत्प्रत्याभ्नायगोनिष्कयी भूतपयाशक्तिरजतद्रव्यदानेनाहमाचरिष्ये.” चौलसंस्कार मौंजीसहवर्तमान करण्याचा कुलधर्म असेल तर काल अतिक्रांत झाल्याचा होम व चौलाच्या लोपाचे प्रायश्चित्त करूं नये. कोणी शिष्टजन संस्काराच्या लोपाचे प्रायश्चित्त बटुकडून करवितात. तदनंतर बटूने, “मम कामचारकामवादकामभसादिदोष परिहारद्वारोपनेयत्वयोग्यतासिद्ध्यर्थं कृच्छ्रत्रयप्रायश्चित्तं तत्प्रत्याभ्नायगोनिष्कयीभूतपयाशक्ति रजतदानद्वारा आचरिष्ये,” असा संकल्प करावा. निष्क, अर्धा निष्क, निष्काचा चतुर्थांश किंवा निष्काचा अष्टमांश याप्रमाणे रौप्य, गार्हचे मौल्य दावें, याहून कमी देऊं नये. आठ गुंजांचा मासा एक, या मानाने चाळीस मासे झणजे एक निष्क असे

सांगितलें आहे—तदनंतर, “प्रायश्चित्त केले तथापि अंतरलेले कर्म नें तेंहि निश्चय करावें, असें कितीएक आचार्य सांगतात. दुसरे आचार्य प्रायश्चित्त केल्यानंतर अंतरलेले कर्म करूं नये असें ह्मणतात,” असें वचन आहे याकरिता प्रायश्चित्त केले असत जातकर्मादिक संस्कार करावे किंवा न करावे, याप्रमाणें दोन पक्ष आहेत. ग्रामण्ये प्रायश्चित्तानें दोषाचा जरी परिहार झाला तथापि संस्कारजन्य पुण्य उत्पन्न होण्याकरिता संस्कार करणें असतील तर त्या पक्षां संकल्प करावे. ते असे;—पत्नी; कुमार यांसह वसून देशकालांचा उच्चार करून, “अस्य कुमारस्य गर्भानुपानजनितदोषनिवर्हणापुर्मेधा भिवृद्धिवीजगर्भसमुद्भवैनोनिवर्हणद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थ अतिक्रान्तं जातकर्म, तथा बीजगर्भसमुद्भवैनोनिवर्हणापुरभिवृद्धिव्यवहारासिद्धिद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थ नामकर्म, आयुरभिवृद्धिद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थ सूर्यावलोकनं, आयुः श्रीवृद्धिवीजगर्भसमुद्भवैनोनिवर्हणद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थ निष्क्रमणं, आयुरभिवृद्धिद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थ उपवेशनं, मातृगर्भमलप्राशनशुद्धयन्नाद्यन्नसर्वसतेर्जश्रियायुरभिवृद्धिवीजगर्भसमुद्भवैनोनिवर्हणद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थ अन्नप्राशनं चाद्यकरिष्ये, बीजगर्भसमुद्भवैनोनिवर्हणवलायर्चनंभिवृद्धिद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थ चूडाकर्म, द्विजत्वसिद्ध्यावेदाध्ययनाधिकारार्थंउपनयनं च श्वःकरिष्ये, जातादिसर्व संस्कारांगत्वेन पुण्याहवाचनं मातृकापूजनं नांदीश्राद्धं च करिष्ये, उपनयनांगत्वेन मंडपदेवतास्थापनं कुलदेवतास्थापनं च करिष्ये,” या प्रमाणें आपापल्या गृहग्रंथांत सांगितल्या प्रमाणें संकल्प करून नांदी श्राद्धांत कर्म एकतंत्रानें करावें. अनेकांच्या उद्देशानें एकवार अंगभूत कर्मांचें अनुष्ठान करणें तें तंत्र होय. मंडपदेवतांचे स्थापनापासून बटु व त्याचे मातापितर यांला आस्रवर्गानां केलेल्या अहेरा पर्यंत कर्म करून अन्नप्राशना पर्यंत सर्व संस्कार आपापल्या गृहसूत्रा प्रमाणें पूर्ण दिवसां करावे. चौल व मौंजी हीं दुसऱ्या दिवसां करावीं. सर्व संस्कार मौंजीच्या दिवसां कर्तव्य असल्यास पूर्वी सांगितलीं जीं सर्व संकल्पांचीं वाक्यें यांच्या शेवटीं, उपनयनचाद्य करिष्ये, ” असा संकल्प करावा. संस्कार न करणें असा पक्ष असेल तर चौल कर्म व उपनयन यांचे संकल्प करून, “उभयांगत्वेन पुण्याहवाचनं नांदीश्राद्धं उपनयनांगत्वेन मंडपदेवतास्थापनं कुलदेवतास्थापनं च करिष्ये,” असा संकल्प करावा. नांदीश्राद्धं शान्यानंतर पूर्वी पूजा केलेल्या अशा ज्या मातृका यांहीं पुक्त मंडपदेवतांचें स्थापन करावें. नंतर पूर्वी सांगितल्या प्रमाणें वेदि करावी. या प्रमाणें मौंजीच्या पूर्व दिवसांचे कृत्य समाप्त झालें.

तदनंतर दुसऱ्या दिवसां अंतरले असेल तर तें चौल करावें आणि जर पूर्वी चौल झालेला असा बटु आहे तर अभ्यंग स्नान घालवून झाला मातेसह भोजन घालावें. या वेळीं ब्रह्मचारी जे झाना भोजन घालावें असा आचार आहे. नंतर देशकालांचा उच्चार

करून, “ अस्य कुमारस्य द्विजत्वसिद्धिद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रसिद्धं गायत्र्युपदेशं कर्तुं तत्रा
 ष्यांगभूतं वापनादि करिष्ये, ” असा संकल्प करून वपन इत्यादिक करावें. मुख्य
 शिखा ठेवून इतर ज्या चौलांत धारण केलेल्या शिखा त्यांचे येथे वपन करावें, हणजे
 त्या काढून टाकाव्या. तदनंतर बटूला स्नान घालून नवे वस्त्र अंगावर देऊन शिखा
 बंधन करून मांगलिक तिलक लावावा. ज्योतिषी जो त्याची पूजा करून त्यानें सांगि
 तलेल्या मुहूर्तावर, वेदीचे ठिकाणीं पूर्वाभिमुख बसलेल्या आचार्यानें अंतःपट एकीकडे
 दूर करून बटूचे मुख अवलोकन करावें. नंतर बटूनें नमस्कार केल्यानंतर आपल्या
 मांडीवर आला बसवावें. तदनंतर ब्राह्मणांनीं जसा आचार असेल तदनुसार मंत्रे
 करून दोघांच्या मस्तकांवर अक्षता टाकाव्या. या प्रमाणे जसें सूत्र असेल त्याप्रमाणे
 मूर्तिचा प्रयोग पाहून सर्व कर्म आचरण करावें. सर्व ठिकाणीं बटूकडून गायत्री
 इत्यादिक मंत्र हणवीत होसाता संधिकृत अक्षरें अशुद्ध झगवूं नयेत. प्रयोगशेष समाप्त
 करून दोनशें, शंभर, अथवा जसी शक्ति असेल त्या प्रमाणे ब्राह्मण भोजनाचा संकल्प
 करून ब्राह्मणांला भूयसी दक्षिणा द्यावी. तदनंतर ब्रह्मचारी याणें नूतन अशा भिक्षा
 पात्रामध्ये माता, किंवा मावशी इत्यादिकांपाशीं, “ भिक्षां भवती ददातु ” असें वाक्य
 हणून अनुप्रवचनीय होमाकरितां तांदूळ मागावे. पिसाजवळ, “ भवान् भिक्षां ददातु, ”
 असें वाक्य हणून मागावे. नंतर ती भिक्षा आचार्या जवळ देऊन मध्यान्हसंध्या करून
 शेष राहिलेला दिवस गुरुच्या जवळ घालवावा. मूर्तिच्या दिवसीं मध्यान्हसंध्या वैक
 र्णिक आहे असें कोणी ग्रंथकार हणतात. ब्रह्मयज्ञ करणें तो दुसऱ्या दिवसीं आरंभ
 करून गायत्री मंत्रानें करावा. अनुप्रवचनीय होमाच्या आरंभाच्या पूर्वी गर्जना,
 पर्जन्यवृष्टि इत्यादि होण्याचा संभव असल तर दिवसासच चरुश्रपणापर्यंत कर्म करून
 सूर्यास्त झाल्यानंतर होम करावा. चरु करून न ठेवितां गर्जना इत्यादिक निमित्त
 प्राप्त होईल तर शांति करून नंतर चरु करावा.

आतां शांतीचा प्रयोग.

शांतीचा संकल्प— “ ब्रह्मादिनपाकात्पूर्वं गर्जितेन सूचितस्य ब्रह्मचारि कर्तृकाध्यय
 नविघ्नस्य निरासद्वाराश्रीपरमेश्वरप्रसिद्धं शांतिं करिष्ये, ” असा संकल्प करून पुण्याह-
 वाचन, आचार्यवरण हीं कर्म केल्या नंतर आचार्यानें अभिस्थापन करून अन्वाधान
 करावें. तें असें, — “ चक्षुषी आज्येनेत्यंते सवितारं अष्टोत्तरशतसंख्यां साज्यपायसाहुते
 भिर्गायत्री मंत्रेण शेषेण स्विष्टकृतं, ” “ प्रायश्चित्तहोमांते गायत्र्या सवितारमाज्ये, ” याप्रमाणे
 अन्वाधान करून घरांत सिद्ध केलेल्या पायसाचा होम केल्यानंतर नृहस्पर्शित्तकाचा वप

करावा. शेवटी आचार्याला गोप्रदान देऊन, “द्यतं ययाशक्ति वा विप्रान् भोजयिष्ये,” असा ब्राह्मणभोजनाचा संस्कार करावा.

मेधाजननादि कार्ये.

मेधाजननाच्या पूर्वकालीं होणारे जें अभिकार्य तें शाल्यावांचून उपनयनाभि नष्ट झाला असतां काटिसूत्रधारण इत्यादिक बटूचे संस्कार, अवक्षारण, अभिकार्य, गायत्र्युपदेश ह्या वांचून व पूर्वोत्तरतंत्रसहित अशा ज्या उपनयनाच्या आहुति खाहींकरून अभि उत्पन्न करून त्या अग्नीवर अनुप्रवचनीय होमाच्या पूर्वी होणारे अभिकार्य करून नंतर अनुप्रवचनीय होम करून मेधाजननाच्या पूर्वीचीं अभिकार्ये करून मेधाजनन करावें असें कौस्तुभांत सांगितलें आहे, व “नष्टोपनयनाग्नेः पुनरुत्पत्तिहोमे विनियोगः” असा होमाविषयी विशेषहि सांगितला आहे. मला तर, उपनयनाच्या आहुतीनीं अभि उत्पन्न करून त्या अग्नीवर मेधाजननाच्या पूर्वी होणारीं अभिकार्ये करून मेधाजनन करावें, व अनुप्रवचनाच्या पूर्वी होणारे अभिकार्य, आणि अनुप्रवचनीय होम हीं करून नयेत असें वाटतें. कारण, गायत्र्युपदेश, अनुप्रवचनीय, आणि मेधाजनन हीं तीन कर्मे सारखीं प्रधान असल्यामुळे अध्ययनाचीं अंगें असून अभि त्या तीन प्रधान कर्मांचें अंग आहे पाकरितां कौस्तुभांत सांगितल्या रीतीनें गायत्र्युपदेश, व तत्पूर्वीं होणारे अभिकार्य यांच्या आवृत्तीचा जसा अभाव करावा तसा अनुप्रवचनीय व त्याच्या पूर्वीचे अभिकार्य यांच्या आवृत्तीचा अभाव मानावा हें योग्य आहे. अग्निष्टोमाचीं अंगें असे जें तीन पशुयाग ह्यांचें अंग जो यज्ञांगस्तंभ तो, दोन पशुयाग केल्यानंतर नष्ट होईल तर तिसरा पशुयाग करण्यासाठीं नष्ट झालेल्या यूपाची उत्पत्ति करण्याविषयी दुसऱ्या पशुयागाचें अनुष्ठानहि होत नाहीं. याविषयी विद्वानांनीं सदसद्दिचार करून करणें तें करावें. सायंसंध्या; अभिकार्य हीं करून ब्रह्मचारी यानें अनुप्रवचनीय होम करावा. ब्रह्मचारी अशक असेल तर अन्यानें, चरुश्रपणापर्यंत कर्म करावें, होम मात्र ब्रह्मचारी यानें करावा. होम करून शेष जो चरु राहिला असेल तेणेंकरून तीनपर्यंत ब्राह्मणांला भोजन घालावें.

ब्रह्मचारी यांचें व्रत—“क्षार, लवण, इत्यादिकानें वर्ष्य असें भोजन ब्रह्मचारी यानें तीन दिवस करावें. खालीं निद्रा करावी, चवथ्या दिवसीं मेधाजनन करावें. अथवा बारा रात्रीपर्यंत किंवा एक वर्षपर्यंत पूर्वोक्त व्रत धारण करावें” मेधाजननाचा विधि दुसऱ्या ग्रंथीं पहावा.

आतां देवदेवक उद्विगेणें तें मंडपदेवतांचें उत्पादन, ज्या दिवसीं मंडपदेवतांचें स्थापन केलें त्या दिवसापासून समदिवसीं व पांचवा, सातवा ह्या दिवसीं करावें, तें शुभ होय. सहाव्या दिवसीं व विषम दिवसीं अशुभ होय.

आता मंडपदेवतांचे विसर्जन होई तावत्कालपर्यंत सपिंडांनी कोणतीं कर्मे वर्य करावीं तीं सांगतां—“नांदीश्राद्ध केल्यानंतर मातृकांचे विसर्जन होई तावत्कालपर्यंत दर्शश्राद्ध, मातापितरांचे सांवत्सरिक श्राद्ध, शीतोदकाने स्नान, अपसव्य, स्वधाकार, निरश्राद्ध, ब्रह्मयज्ञ, अध्ययन, नदीचे उल्लंघन; सीमोल्लंघन, उपोषणव्रत, श्राद्धभोजन हीं सर्व सपिंडांनी मंडपदेवतांचे विसर्जन होईपर्यंत वर्य करावीं.” येथे स्वधाकाराचे जें ग्रहण केले तें स्वधाकारविशिष्ट वैश्वदेव त्याच्या निषेधाकरितां आहे, यावरून वैश्वदेवाहि करूं नये असे सांगितले. एथे सपिंड घेणे ते तीन पुरुषपर्यंत घ्यावे असे पुरुषार्थाचिंतामणीमध्ये सांगितले आहे. — “अभ्यंग, आशौच, विवाह, पुत्रजन्म आणि सर्व मांगलिक कार्ये यामध्ये गोपीचंदन लावूं नये.” अभ्यंग इत्यादिक जीं, पूर्वी सांगितलीं त्यांमध्ये भस्म सुद्धां धारण करीत नाहींत. जननाशौचामध्ये भस्म, गोपीचंदन धारण करूं नयेत. मृताशौचामध्ये भस्म धारण करावे.

षंड, बहिरा, मुका, पांगळा, कुबडा, आणि खुजा, इत्यादिकांचे संस्कार करावे. मत्त, उन्मत्त यांचे संस्कार करूं नयेत असे कोणी ग्रंथकार ह्मणतात. पातिस जें तें तर नाहीं; कारण, त्यांना कर्माचा अधिकार नाहीं. मत्त, उन्मत्त यांच्या अपत्यांचे संस्कार करावे; कारण “ब्राह्मणापासून ब्राह्मणीस्त्रीचेठायीं जो उत्पन्न झाला ता ब्राह्मणच होय,” अशी श्रुति आहे. दुसरे ग्रंथकार तर मत्त, उन्मत्त यांचेहि संस्कार करावे असे ह्मणतात. ह्या संस्कारांमध्ये होम करणे तो आचार्याने करावा. विकलांग ह्मणजे ज्यास अवयव कमी आहेत तो, त्याचे उपनयन ह्मणजे आचार्याच्या जवळ झाला नेणे, किंवा अग्नीच्या जवळ नेणे, अथवा गायत्रीमंत्र ह्मणणे, हीं तीन कर्मे विकलांगाच्या उपनयना विषयीं प्रधान आहेत; याकरितां ह्या तिहींतून कोणते एक मात्र करावे. इतर अंगरूप कर्मे जसा संभव असेल त्याप्रमाणे करावीं. मुका, बहिरा इत्यादिकांस गायत्रीमंत्र ह्मणण्याचा संभव नाहीं यास्तव त्याला स्पर्श करून गायत्रीमंत्राचा जप करावा. संस्काराचे मंत्र, व वस्त्रपरिधान करण्याचे मंत्र ह्मणजे ते आचार्यानें ह्मणावे. कोणी ग्रंथकार, वस्त्र परिधान इत्यादिक करणे तें मंत्रविरहित करावे असे ह्मणतात. याप्रमाणे विवाहामध्ये हि असाच निर्णय जाणावा; कारण, “कन्येचे पाणिग्रहणावांचून इतर सर्व कर्मे ब्राह्मणाकडून करावे,” असे वचन आहे. या प्रमाणे विकलांगाचे मौंजी इत्यादिकांचा निर्णय समाप्त झाला.

“पति जीवंत असता जारापासून जो झाला तो कुंड होय, आणि पति मृत झाल्यावर जारापासून झाला तो गोलक होय.” हे जे कुंड, व गोलक यांचे संस्कार करावे अशा अर्थाचे जें वचन आहे तें अन्ययुगाविषयीं आहे; कारण तें वचन क्षेत्रजपुत्रविषयक आहे,

व कालियुगामध्ये दत्तक, औरस द्यावाचून अन्यपुत्राचा निषेध आहे. “वडोळ पुत्राचे संस्कार झाले नसतील तर कनिष्ठ्याचे गर्भाधानादिक संस्कार निश्चय कळं नयेत, असे शातातप सांगतो” हे वचन चौलापासून मीजीपर्यंत जे संस्कार व्याविषयी निषेध सांगते. विवाहाविषयी तर विकलांग जे यां विषयी हा नियम नाही. कन्याविषयीही हाच निर्णय समजावा, झणजे वडोळ कन्येचा विवाह शास्त्रानंतरच कनिष्ठ्याचा विवाह करावा. ज्येष्ठपुत्राचा विवाह झाला नसेल तथापि कनिष्ठ कन्येचा विवाह करावा. ज्येष्ठपुत्राची मीनी झाली नसेल तर कनिष्ठकन्येचा विवाह कळं नये.

आतां पुनरुपनयन सांगतो.

ते पुनरुपनयन तीन प्रकारचे आहे. दोष प्राप्त झालेले जें प्रायश्चित्तरूप तें पाहिले पुनरुपनयन होय. तें पुनरुपनयन जातकर्म इत्यादिक संस्कारांनी युक्त, जातकर्मादि संस्कारविरहित, दुसऱ्या प्रायश्चित्तानें युक्त आणि केवळ याप्रमाणे अनेक प्रकारचे आहे. एकवेळ केलेल्या उपनयनामध्ये उक्त कालादिकांचा कमीपणा प्राप्त झाल्याने केलेले व्यर्थ होऊन पुनः करणें प्राप्त झाले तें दुसरें पुनरुपनयन होय. एका वेदाचे अध्ययन करून दुसऱ्या वेदाचे अध्ययन करण्याकरितां सांगितले तें तिसरें पुनरुपनयन होय. यां मध्ये पाहिले कसे तें सांगतो. —दुसऱ्या औषधानें दूर न होणारा अशा रोगाचा नाश होण्याकरितां, स्वमतानें केलेले नव्हे असे पैठी सुरेचे पान केले असतां तीन मासपर्यंत कृच्छ्र प्रायश्चित्त करून पुनरुपनयन करावें. पैठी सुरेवाचून दुसरी सुरा स्वबुद्धीनें औषधा करितां प्राशन केली असतां कृच्छ्र, अतिकृच्छ्र प्रायश्चित्त करून पुनरुपनयन करावें. पैठी सुरेचे प्राशन केले असतां द्वादशाब्द प्रायश्चित्त करावें. वारुणी, गौडी झ० गुळाची माध्वी झ० मधूकपुष्पांपासून झालेली, द्या सुरा न जाणून प्राशन केल्या असतां पुनरुपनयन, आणि तप्तकृच्छ्र हीं प्रायश्चित्ते करावीं. अज्ञानेंकरून रेत, विष्टा, मूत्र हीं प्राशन केलीं असतां, व मद्यमिश्रित अन्न, उदक इत्यादिक भक्षण केलीं असतां पुनरुपनयन, तप्तकृच्छ्र हे प्रायश्चित्त करावें. जाणून विष्टा, मूत्र इत्यादिक भक्षण केले असतां चांशायण, पुनःसंस्कार हे प्रायश्चित्त करावें. द्विजाति झ० ब्राह्मण, क्षत्रिय, व वैश्य यांनीं लसून, कांदे, गानरे, हीं भक्षण केलीं असतां व गांबडुकर, गांबकोंबडे, मनुष्य, गाई यांचे मांस भक्षण केले असतां तीं तीं प्रायश्चित्ते करून पुनरुपनयन करावें. मेंढी, गाढवी, उंट, आणि मनुष्यस्त्री यांचे दूध प्राशन केले असतां व हस्तिणी, घोडी यांचे दूध प्राशन केले असतां तप्तकृच्छ्र व पुनःसंस्कार हे प्रायश्चित्त करावें. गाढव, उंट इत्यादिक जनावरांवर आरोहण केले असतां कृच्छ्र व पुनःसंस्कार हे प्रायश्चित्त करावें;

हे हेमाद्रिचे मत आहे असे निर्णयसिद्ध्या एकाद्या पुस्तकांत मिळते. भिताहारा, स्मृत्ये सार इत्यादिक ग्रंथांच्या मती गाढव, उंट यांच्यावर आरोहण केले असतां तीन उपोषणे इत्यादिक मात्र प्रायश्चित्त करावे, पुनःसंस्कार करूं नये. कौस्तुभग्रंथाचाहि अभिप्राय असाच आहे. न जाणून बैलावर आरोहण केले असतां एक कृच्छ्र, जाणून केले असतां तीन कृच्छ्र इत्यादिक प्रायश्चित्त करावे. कितीएक जन, बैलावर आरोहण केले असतां पुनःसंस्कार करितात; परंतु याविषयी मूळ शोध करावा. याप्रमाणे भेंडा, बोकड, टोणगा यांच्यावर आरोहण केले असतांहि हाच निर्णय जाणावा. मांसभक्षण करणाऱ्या पशूची विष्टा भक्षण केली असतां पुनरुपनयन मात्र करावे. कोणी ग्रंथकार मनुष्याची विष्टा भक्षण केली असतांहि पुनःसंस्कार मात्र करावा असे सांगतात. “मृतशय्येचे दान घेणारा पुनःसंस्काराला पात्र होतो.” जिवंताची ‘मृत झाला, असी वार्ता ऐकून त्याची और्ध्वदेहिक क्रिया केली असतां त्याला घृताच्या कुंभांत बुडवून नंतर बाहेर काढून स्नान घालवून जातकर्मापासून मीजीपर्यंत संस्कार करून त्रिरात्रव्रत धारण केल्यानंतर पूर्वीच्या स्त्रियेवरोवर किंवा ती मृत असल्यास दुसऱ्या स्त्रियेवरोवर विवाह करावा. अभिहोत्री असेल तर त्याने पुनराधान, आयुष्मत् इष्टि करावी. तीर्थयात्रा इत्यादिक कारणावांचून कलिंग, अंगदेश, वंग, आंध्र, सिंधु, सैवीर, पश्चिम देश, द्या देशांमध्ये गमन केले असतां पुनःसंस्कार करावा. चांडालाचे अन्न भक्षण केले असतां चांद्रायण व बुद्धिपूर्वक, चांडालाचे अन्न भक्षण केले असतां कृच्छ्राब्द याप्रमाणे प्रायश्चित्त करून दोनही ठिकाणी पुनःसंस्कार करावा. अजिन, मेखला. दंड यांचे धारण; भिक्षा मागणे; व्रते इतके प्रकार द्विजाति जे त्यांच्या पुनःसंस्कारकर्मांमध्ये वर्ज्य आहेत. ‘अजिनं’ मेखला, याठिकाणी ‘वपनं’ मेखला, असा दुसऱ्या स्मृतीमध्ये पाठ आढळतो. ब्रह्मचारी याने मद्य, मांस हीं भक्षण केलीं असतां पुनरुपनयन, प्राजापत्य, अथवा तीन रात्रि उपोषण हे प्रायश्चित्त करावे. बुद्धिपूर्वक भक्षण केले असतां पराक प्रायश्चित्त करावे. वारंवार भक्षण असतां दूष्यट प्रायश्चित्त करून पुनःसंस्कार करावा. ब्रह्मचारी याने पिता, माता, व गुरु यांहून इतर मृत झालेल्यांची अंत्यक्रिया केली असतां त्याने पुनरुपनयन करावे. हाताने घुसळलेले दही अभ्यासाने भक्षण करील, व वेदीच्या बाहेर पुरोडाश अभ्यासाने भक्षण करील तर कृच्छ्र, पुनःसंस्कार हे प्रायश्चित्त करावे. जो ब्राह्मण संन्यास घेऊन नंतर त्या आश्रमांतून निवृत्त होऊन गृहस्थाश्रमसंबंधी धर्मात येण्याची इच्छा करितो त्याने सहा महिने कृच्छ्र प्रायश्चित्त करून जातकर्मादिक संस्कारांनी संस्कृत होतताता शुद्ध होतो, नंतर त्याने गृहस्थाश्रमसंबंधी कर्मे करावी. याप्रमाणे मरण येण्याक

रितां उपोषणाचा संकल्प करून पुनःनिवृत्त होईल तर त्यानेहि असें प्रायश्चित्त करावें. कर्मनाशा नदीच्या उदकाला स्पर्श, करतोया नदीचे उल्लंघन, गंडकी नदीत हातांनी पोहणें, यांपासून तो पुनःसंस्काराला पात्र होतो.”

दुसरें पुनरुपनयन—“प्रदोष, रात्रि, अनध्याय, शनिवार, कृष्ण, गुरुप्रहतिथि, आणि अपराह्नकाल यांचे ठिकाणीं मींजी झालेला पुनःसंस्काराला पात्र होतो.” एथे प्रदोष झणजे प्रदोषाचा दिवस. कृष्ण झणजे कृष्णपक्ष, तो एकादशी इत्यादिक शेवटचे पांच दिवस. अपराह्न झणजे दिवसाचा तिसरा भाग असें सांगितलें आहे. अनध्यायामध्येहि पौर्णिमा, प्रतिपदा इत्यादिक जे नित्य अनध्याय सांगितले तेच पुनरुपनयनाला कारण होत. अकालीं वृष्टि होणें इत्यादि नैमित्तिक विरावादि अनध्याय, ते पुनरुपनयनाला कारण होत नाहीं. नैमित्तिक अनध्यायामध्यें प्रातःकालीं गर्जनानिमित्त अनध्याय तोच पुनः संस्काराला कारण होतो; याविषयीं विस्तार कौस्तुभांत सांगितला आहे. पूर्वीं खांद्याला स्पर्श करित होतेसाता अशा बटूला गुरुजबळ आणणें हें जें प्रधानकर्म त्याचें विस्मरण झालें असतां पुनरुपनयन करावें. याप्रमाणें गायत्रीमंत्राच्या उपदेशाचें विस्मरण झालें असतांहि पुनरुपनयन करावें.

तिसरें पुनरुपनयन—एका वेदाचें अध्ययन करून दुसऱ्या वेदाचें अध्ययन करण्याची इच्छा असेल तर दर एक वेदाचे अध्ययनाविषयीं पुनरुपनयन करावें असें किती एक ग्रंथकार झणतात. अन्ये वेदा यांना ऋग्वेदाचें अध्ययन करणें असेल तर त्याचें पुनरुपनयन करावें, असें दुसरें ग्रंथकार झणतात. आणखीं दुसरें ग्रंथकार तर, एकाच उपनयनेंकरून तीन वेदांचे अध्ययनाचा अधिकार येतो, व अथर्वणवेदाचे अध्ययना करितां दुसरें उपनयन करावें असें झणतात. तेणेंकरून ऋग्वेद, यजुर्वेद व सामवेद या तीन वेदांचे अध्ययन करणारे पुनःसंस्कार केल्यावांचून मुंड, मांडूय इत्यादि, अर्धवण वेदाचीं उपनिषदें पठण करितात ते चिंत्य आहेत. एककालीं अनेक वेदांच्या अध्ययनाचा आरंभ केला असतां पुनरुपनयनाच्या आनृत्तीची गरज नाहीं असें आहे, यावरून एकाच उपनयनेंकरून एकाकालीं सर्व वेदांचा आरंभ झाला असें सिद्ध होतें, असें दुसरें ग्रंथकार झणतात. त्यामध्ये एका वेदाचें अध्ययन केल्यानंतर ज्या दुसऱ्या वेदाचें अध्ययन करण्याची इच्छा असेल त्या वेदामध्यें जसें संगितलें असेल त्या विधीनें पुनरुपनयन करावें. त्या मध्यें वपन, ब्रह्मौदन, मेघाजनन आणि दीक्षा हीं कर्में कृताकृत; परिदान क्रिया नाहीं. दुसऱ्या उपनयनाला कारण जें अनध्यायादिक त्यांचे ठायीं उपनयन झाल्यामुळे जें पुनरुपनयन करणें तें कोणतेंहि कर्म बर्ज्य न करितां उक्तकालीं करावें.

प्रायश्चित्तार्थे जे पुनरुपनयन त्याविषयीं निर्णय.

निमित्त प्राप्त झाल्यानंतर तत्कालींच पुनरुपनयन करणे असेल तर उत्तरायण, शुभनक्षत्र इत्यादिक उक्तकाल पाहण्याची गरज नाही. तत्कालीं करणे नसेल तर यथोक्तकाल पाहण्याची आवश्यकता आहे. त्या पुनरुपनयनाविषयीं कर्ता पिता, पिता नसल्यास चुलता इत्यादिक संपिंडानीं करावे. चुलता इत्यादिक संपिंड नसतील तर- दुसरा कोणी याने करावे. जेथे प्रायश्चित्तरूपानें पुनरुपनयन सांगितले तेथें सभेने सांगितलेल्या विधीने तेंच करावे. आणि जेथे दुसऱ्या प्रायश्चित्तासहवर्तमान पुनरुपनयन सांगितले असेल तेथें, ज्याचें पुनरुपनयन करावयाचें अच्येकडून उक्तविधिने प्रायश्चित्त करवून आचार्याने त्याचे उपनयन करावे. जेथे जातकर्मादिक संस्कारांसहवर्तमान पुनरुपनयन करण्याविषयी सांगितले तेथे जातकर्मापासून चौलापर्यंत संस्कार करून नंतर करावे. पुनरुपनयनीं गाय धोर्यानीं "तत्सवितुर्वृणीमहे०" ह्या सावित्रीचा उपदेश करावा असे सांगितले आहे या करितां आचार्याने ह्याच ऋचेचा १२००० जप, व तीन कृच्छ्र प्रायश्चित्त हीं मानीं करण्याच्या अधिकाराकरितां करावीं. नंतर संकल्प करावा. तो असा--"अस्य कृतौर्ध्वदै-
हि कस्यपुनःसंस्कारद्वाराश्रीपरमेश्वरप्रोत्यर्थं जातकर्माद्युपनयनांतसंस्कारान् करिष्ये"या प्रमाणे दुसरे निमित्त असतांही त्या त्या प्रमाणे संकल्पांत उद्देश करावा. सर्व संस्कारांच्या उद्देशे करून एकतंत्राने नांदाश्राद्धादिक कर्म करून झमझुचें वपन केल्यानंतर चौलसंबंधी केशांचे वपन करावे, मनुष्य इत्यादिकांचें दुध प्राशन इत्यादिक दुसरे निमित्त असेल तर ज्याचा संस्कार करावयाचा त्यानें "अमुकदोष परिहारार्थं पर्षदुपदिष्टं अमुकप्रायश्चित्तं करिष्ये असा संकल्प करून तें प्रायश्चित्त करावे. आचार्यानें तर, "अस्यामुकदोषपरिहारार्थं पुनः संस्कारसिद्धिद्वाराश्रीपरमेश्वरप्रोत्यर्थं पुनरुपनयनं करिष्ये", असा संकल्प करून उपनयन मात्र करावे. जेथें उपनयन मात्र सांगितले तेथें संस्कारांचा संकल्प नाही; तर आचार्यानेंच संकल्प करावा. पुनरुपनयन करणे तें गांवापासून बाहेर पूर्वे किंवा उत्तर दिशेचे ठायीं जाऊन करावे. नांदाश्राद्धपर्यंत कर्म केल्यानंतर मंडपदेवतांचें स्थापन करावे. मंगल ज्ञान केलेला अशा संस्कारांचा, भोजन करवून वपन करण्याचा पक्ष असेल तर वपन, ज्ञान हीं करवून, "अस्य प्रायश्चित्तार्थं पुनरुपनयनहोमे देवतापरिग्रहार्थं मन्वाधानं करिष्ये॥ अस्मिन्मन्वाहितेऽ मी "इत्यादिक मन्वाधान नियाप्रमाणे करावे ब्रह्मचाऱ्याला पुनरुपनयनांत समंजक वस्त्राचे धारण करणे हे नियम आहे, ब्रह्मचारी नसेल तर त्याला कृताकृत आहे. यज्ञोपवीतधारणापासून सूर्याचें दर्शन करणे पथपर्यंत कर्म नियाप्रमाणे करावे. तदनंतर "युवासुवासा०" हा आहे मंत्र ज्याचा असें नें

मदीक्षण फिरणें इत्यादिकपासून वखानें अंजळि बांधून ती ग्रहण करणें एवपर्यंत कर्म केल्यानंतर प्रणव, व्याहृति यांचे ऋषि, देवता इत्यादिकांचें स्मरण करून उपदेश करावा. तो असा — “तत्सवितुर्वृणीमहइत्यस्य इवावाश्वःसवितानुष्टुप् ॥ पुनरुपनयने उपदेशे विनि-
योगः ॥ तत्सवि०” याप्रमाणें प्रथम चरणरूपानें, दुसऱ्यानें अर्धा ऋचा, तिसऱ्यानें सर्षि याप्रमाणें तीन वेळ लक्षणवाची. ब्रह्मचारी असेल तर खाला मेखलादान इत्यादिकापासून ब्रह्मचर्याचा उपदेशपर्यंत कर्म निलय आहे. इतरास मेखला, अजिन, दंड यांच्या धारणाचा विकल्प आहे. ब्रह्मचर्याचा उपदेश “दिवामास्वाप्तीः” एवपर्यंत करावा. “वेदमधीष्व” इत्यादिक उपदेश करूं नये. तदनंतर स्विकृत होम इत्यादिक कर्म करावें. मेधाजनन करण्याचा पक्ष असेल तर मेधाजनन होई तेथपर्यंत अग्नि रक्षण करावा. भिक्षा मागून अनुभवचनीय होम करावा. गायत्रीच्या स्थानी, “तत्सवितुर्वृणीमह०” ह्या मंत्रानें होम करावा. त्रिरात्रत धारण केल्यानंतर पूर्वी ज्या आश्रमामध्ये असतां पुनरुपनयन केलें त्या आश्रमाचे धर्म आचरण करावे. ज्याचें प्रेतकर्म केलें आहे असा जो त्याचें पुनरुपनयन शाल्यानंतर पुनः विवाह करावा असें जेथें सांगितलें असेल तेथें पूर्वी मेखला इत्यादि धारण करून काहीं दिवसपर्यंत ब्रह्मचर्य करून योग्यकालीं त्याची समाप्ति करून पूर्वीच्या स्त्रियबरोबर किंवा दुसऱ्या स्त्रियबरोबर विवाह करावा. याप्रमाणे ऋग्वेदी यांचा पुनःसंस्कार समाप्त झाला.

आतां यजुर्वेदी यांचें पुनरुपनयन.

“ब्रह्मचारी यानें पिता व आपणापेक्षां ज्येष्ठ यांहून इतरांचें उच्छिष्ट भक्षण केलें असतां; स्त्रियेसह भोजन केलें असतां; मद्य, मांस यांचें भक्षण केलें असतां; आद्राण, सूत-
काण गणाच, वेश्येकडचें अन्न, यांचें भक्षण केलें असतां; पुनरुपनयन करावें. इत्यादिक सांगून अभिमुख झणजे स्थंडिलकरणादि कर्म करून आज्यानें भिजलेली पळसाची समिधा घेऊन मंत्र झणावे, ते असे—“पुनस्त्व० कामाःस्वाहा ” “यन्मआत्मनोमिदाभूदग्निःपुनर
मिथ्सुरदात्०” अशा दोन मंत्रांनीं हवन करून चरु शिजवून होम करावा. होमाचा मंत्र—“सप्तते अग्ने० घृतेन स्वाहा.” तदनंतर “येनदेवाः पवित्रेण०” ह्या तीन ऋचांनीं उपहोम करावे. नंतर स्विकृत होमापासून गुरूला गोप्रदान देणें एवपर्यंत कर्म करावें. दुसरा पक्ष—ब्रह्मधारणापर्यंत कर्म करून पळसाची समिधा घेऊन ब्राह्मप्रायश्चित्ताचा होम करून व्याहृतिमंत्रांनीं होम करावा. तिसरा पक्ष—ब्राह्मणाकडून गायत्रीमंत्रानें शंभर वेळ घृत अभिमंत्रित करवून तें घृत प्राशन केलें असतां रुतप्रायश्चित्त (शुद्ध) होतो इत्यादिक प्रकार बौधायन सांगतो. एथें जे पक्ष सांगितले त्यांची शक्ताशकभेदानें व्यवस्था करावी. हें कौस्तुभांत पाहावें. याप्रमाणें दुसऱ्या शाखाचे ठिकार्णादि वपन, मेखला,

अजिन, दंड, भिक्षाचरण, अर्ते इत्यादिक कसे कृताकृतव्यवस्थेने करून आपापच्या शासने मध्ये सांगितल्याप्रमाणे पुनरुपनयन करावे.

आतां ब्रह्मचारी याचे धर्म.

शिकाल संघ्यावंदन, अग्नीची सेवा, आणि भिक्षा हीं ब्रह्मचारी मला नियम आहेत. ग्राममध्ये अग्नीची सेवा सकाळीं संघ्याकाळीं करावी; अथवा सायंकाळींच एकवेळ करावी. पळस, खैर, पिंपळ आणि शमी ह्या समिधा उत्तम व त्यांचा अलाभ असेल तर हई, वेते यांच्या ध्याव्या. “भवत्” शब्दपूर्वक भिक्षा ब्राह्मणांनीं मागावी. ती भिक्षा ब्राह्मणांचे घरींच मागावी. आपत्तिकालीं शूद्रांच्या घरीं आमन्त्राची भिक्षा घ्यावी. हव्यज्ञ० देवप्रीत्यर्थ जे अन्न ते व श्राद्धावांचून कव्य स० पितृप्रीत्यर्थ जे अन्न ते यांचे ठिकाणीं बलाबलें असतां भोजन करावे. ब्रह्मचारी याला ब्रह्मयज्ञाहि नियम आहे. तो ब्रह्मयज्ञ उपाकर्माच्या पूर्वी गायत्रीमंत्रेंकरून करावा. गुरूचें उच्छिष्ट, मध इत्यादिक निषिद्ध पदार्थ तेहि, त्या निषिद्ध पदार्थावांचून बरा न होणारा असा रोग ज्ञाला असल्यास त्याच्या परिहासकरितां भक्षण करावे. निषिद्धावांचून दुसरे गुरूचें उच्छिष्ट असें औषध नसेल तथापि ते भक्षण करावे. याप्रमाणें वडील भ्राता, पिता यांच्या उच्छिष्टाविषयींहि हाच निर्णय जाणावा. दिवसा निद्रा, नेत्रांत काजळ घालणें, पायांत जोडा घालणें, छत्री घेणें, पलंग इत्यादिकांवर निद्रा करणें हीं वर्ज्य करावीं. “तांबूल, काजळ, कांस्यपात्रांत भोजन, हीं संन्यासी, ब्रह्मचारी, आणि विधवा यांणीं वर्ज्य करावीं.” मधु, सूतकान्न, श्राद्धान्न इत्यादिकांचे निषेध पुनःसंस्कारप्रकरणामध्ये सांगितले आहेत ते पाळावे. “मेखला, अजिन, दंड, यज्ञोपवीत, कौपीन, कटिसूत्र हीं ब्रह्मचारी याणें नियम धारण करावीं.” मेखला, यज्ञोपवीत इत्यादिक तुटलीं असतां तुटलेलीं उदकांत टाकून दुसरीं धारण करावीं. यज्ञोपवीताचा नाश झाला असतां, “मनोज्योति०” ह्या मंत्रान व “त्रातपतिभिः०” ह्या तीन मंत्रांनीं घृताच्या चार आहुति हवन कराव्या असें सांगितलें आहे. ब्रह्मचारी यानें गुरूची सेवा करण्याचा प्रकार ग्रंथांतरीं पाहावा.

आतां ब्रह्मचारिव्रतांचा लोप झाला असतां प्रायश्चित्त.

संध्या, अभिकार्य यांचा लोप झाला असतां आठ सहस्र गायत्रीमंत्रांचा जप करावा. क्वचित् ग्रंथामध्ये एकवेळ, संध्या व अभिकार्य यांचा लोप झाला असतां “मानस्तोके” ह्या मंत्राचा शंभर वेळ जप करावा असें सांगितलें आहे. भिक्षालोप झाला असतां आठशें जप करावा. अभ्यास असतां द्विगुणित जप करून पुनःसंस्कार करावा. मधु, मांस इत्यादि भक्षण केले असतां साविषयीं पूर्वी सांगितलें आहे. स्त्रियेचा संग झाला असतां ब्रह्मचारी

घाने गर्दमपशुयाग करावा. एक किंवा अनेक व्रतांचा लीप झाला असता साधारण प्रायः क्वित् स्तुतिचानग्रंथामध्ये सांगतो—“ब्रह्मचारी याने स्वधर्माचे ठिकाणी काही न्यूनपणा झाला असता शिवाच्या मंदिरांत नसून “तेवोधिवा” ह्या मंत्राचा लक्ष जप करावा. तेंचकळून न्यूनपणा जाऊन पूर्णता होते.”

वेदाध्ययनारंभ.

उपाकर्म करून पूर्वी सांगितलेला जो विशेष्या आरंभाचा काल त्या काली अक्षरविशेष्या आरंभी जसी विष्णु इत्यादिक देवतांची पूजा करण्यास सांगितले त्या प्रकाराने पूजा करून वेदाध्ययनाचा आरंभ करावा. अन्ययुगामध्ये द्विजांच्या स्त्रियांला मीजीबंधन व वेदांचे अध्ययन हे संस्कार होते. कलियुगामध्ये तर, हे दोन संस्कार स्त्रियांला नाहींत, पाकारितां स्त्रियांला वेदाचा उच्चार इत्यादिकांविषयी दोष आहे.

अनध्याय.

अनध्याय निख व नैमित्तिक असे दोन प्रकारचे, ते बहुधा पूर्वी मीजीप्रकरणांत सांगितले आहेत. त्यांहून दुसरोहि नियनैमित्तिक अनध्याय ग्रंथामध्ये पुष्कळ सांगितले आहेत; परंतु ते एथे सांगत नाहीं; कारण ह्या कलियुगामध्ये ते सर्व अनध्याय पाळणे झटले झणजे जन मतिमंद असल्यामुळे फार अशक्य आहे. तसेच हेमाद्रिग्रंथामध्ये स्मृतिवचन सांगतो—“चतुर्दशी, अष्टमी, पर्वणी, प्रतिपदा, मधून गमन, इतके अनध्याय मंदमति यांना होत,” याकारितां कलियुगामध्ये दोन प्रतिपदा, दोन अष्टमी, दोन चतुर्दशी पूर्णमा, अमावास्या आणि अयनसंक्रांति इतके मात्र अनध्यायदिवस टाकून वेद, शास्त्रे इत्यादिकांचे अध्ययन करावे; कारण पुरुषांची बुद्धि बहुधा मंद आहे. शिष्टांचा आचारही असाच आहे. पूर्वदिवसी सायकाली व दुसऱ्या दिवसी प्रातःकाली साहा घटिका अनध्यायतिथि असेल तर, “उदयकाली किंवा अस्तकाली” ह्या वचनेकळून दोन दिवसी अनध्याय प्राप्त झाला असतां दुसरे वचन सांगतो—“उया दिवसी जितवया अनध्यापतिथीच्या घटिका असतील तितकाच अनध्याय मानावा, अनध्यायघटिकापुक्त दुसरा दिवस अनध्याय नाहीं, असे कोणी ग्रंथकार सांगतात,” हेहि वचन मंदबुद्धि असतील यां विषयी जाणावे. चतुर्थी, सप्तमी, इत्यादि दिवसी प्रदोष होतो त्याचा निर्णय पूर्वी सांगितला आहे. “प्रदोष दिवसी पठण करूं नये व स्मरणहि करूं नये” असे वचन आहे, या वरून इतर अनध्यायांहून प्रदोष अनध्यायाचा दोष आधिक असे समजावे. अग्ने, इतिहास, पुराणे, धर्मशास्त्रे, व इतर शास्त्रे यां विषयी अनध्याय नाहींत. पर्वणीचे दिवसी ह्यांचे अध्ययन करूं नये. नित्यकर्म, जप, काथ्यकर्म, यज्ञ, पारायण,

या विषयी अनध्याय नाही. वेदांचे अध्ययन करणे व करावणे यां विषयी अनध्याय आहे.

अध्ययन करण्याचे धर्मः

वेदाचे अध्ययनाच्या आरंभी आणि समाप्तिकालीं गुरूचे चरणांचे वंदन करावे. प्रथम ओंकाराचा उच्चार करून नंतर वेदांचे अध्ययन करून शेवटीं ओंकाराचा उच्चार करून भूमीला स्पर्श करून विराम करावा. रात्रीच्या पहिल्या प्रहरां, व शेवटच्या प्रहरां वेदाध्ययन करावे. “दोन प्रहरपर्यंत निद्रा करणारा ब्रह्मवाला पावतो.” गुरू, पिता, माता, यांचा सन्मान ठेवावा, कधीहि द्रोह करूं नये. “गुरूपासीं अध्ययन केलेंले असे शिष्य वाणी, मन, कर्म यांहींकरून जर गुरूचा सत्कार न करितो तर जसे ते गुरूला पालन करण्याला योग्य नाहीत तसे वेदाहि त्यांचे पालन करीत नाहीत; ह्मणजे त्यांस ते फलरूप होत नाहीत.” याप्रमाणे अध्ययनाचे धर्म समाप्त झाले.

आतां व्रते.

तीं व्रते—महानाम्नीव्रत, महाव्रत, उपनिषद्ब्रत आणि गोदानव्रत अशा नांवाचीं चार प्रकारचीं आहेत. तीं चार व्रते कर्मकरून जन्मापासून तेराव्या इत्यादिक वर्षांचे ठिकाणी उत्तरायणांत चौलसंस्काराला उक्त जी तिथि, नक्षत्रें, वार यांचे ठायीं करावीं. ह्या व्रतांचे विस्तृत प्रयोग कौस्तुभ इत्यादिक ग्रंथांमध्ये व आपापल्या गृह्यसूत्रांत पाहावे. ह्यांचा लोप झाला असतां प्रत्येकाचे एकेक कृच्छ्र प्रायश्चित्त करून गायत्रामंत्रानें शंभर आहुति होम करावा. तीन, सहा किंवा बारा कृच्छ्र प्रायश्चित्त करावे असें दुसऱ्या ग्रंथी सांगितले आहे.

आतां सोडमुंज.

वेदांचे अध्ययन झाल्यानंतर गुरूला शेत, जमीन इत्यादिकांतून एकादें देऊन नंतर त्याची आज्ञा घेऊन ज्ञान करावे, ज्ञान ह्मणजे समावर्तन करावे. गुरूला द्यावयाचीं क्षत्रे इत्यादिक तीं सांगतां—क्षेत्र, सोने, गाई, घोडा, छत्री, जोडा, धान्य, तीन बख्खे, भाजी यांमध्ये गुरूला जें प्रिय असेल तें द्यावे. कांहीं दिल्यावाचूनच गुरूचा संतोष झाला असल्यास त्याची आज्ञा घेऊनच ज्ञान करावे. क्षेत्र इत्यादिक दिलें असतादि विद्येचें मौल्य होत नाही; कारण, “जो गुरू एकेक अक्षर शिष्याला पढवितो; ह्या गुरूचा अनृणी, जो पदार्थ गुरूला दिला असतां होईल असा पदार्थ पृथ्वीत नाही” असें वचन आहे. तो ज्ञातक तीन प्रकारचा—विद्याज्ञातक, व्रतज्ञातक आणि विद्याव्रतोभयज्ञातक, असत तीन प्रकारचा ज्ञातक जाणावा. आमध्यें एक, दोन, तीन अथवा चार

वेद किंवा वेदाचा एक भाग याचे पठण करून व त्याचा अर्थ जाणून बारा वर्षे इत्यादिक ब्रह्मचर्याचे कालाचा जो अवधी सांगितला त्याचे पूर्वीच ज्ञान करितो अणजे समावर्तन करितो तो विद्याकातक होय. उपनयनव्रत, सावित्रीव्रत आणि वेदव्रत हीं आचरण करून वेदाचे अध्ययनाची समाप्ति होण्याचे पूर्वीच ज्ञान करितो तो व्रतकातक होय. बारा वर्षे इत्यादिकपर्यंत ब्रह्मचर्य धरण करून त्या ब्रह्मचर्याची समाप्ति करून वेदाची समाप्ति करून जो ज्ञान करितो तो विद्याव्रतोभयकातक होय. मैत्री शास्त्रानंतर मेधाजननापर्यंत जे तीन रात्रि, बारा रात्रि इत्यादि व्रतधारण करणें तें उपनयनव्रत होय. मेधाजनन शास्त्रानंतर उपाकर्मापर्यंत जे ब्रह्मचर्याचे धर्म आचरण करणें तें सावित्रीव्रत होय, उपाकर्मानंतर वेदाचे अध्ययन करण्याकरितां बारा वर्षे इत्यादिक कालापर्यंत जें व्रत आचरण करणें तें वेदव्रत होय. 'वेदाच्या अर्थाचे ज्ञान होईपर्यंत वेदाचे अध्ययन करावें, असा विधि आहे याकरितां वेदाच्या अर्थाचे ज्ञान शास्त्रावांचून केवळ वेदाचा पाठ केल्यानें समावर्तनाविषयी अधिकार नाही असें पूर्वमीमांसाशास्त्रकर्ते अणतात. वेद साद्यंत पठण करणें हेंच विधीचें फळ होय, पूर्वकांडाच्या अर्थाचे ज्ञान संपादन करणें तें कर्माच्या अनुष्ठानाकरितां उपयुक्त होय, उत्तरकांडाच्या अर्थाचे ज्ञान काश्यकर्माच्या श्रवणीय विधीनें प्राप्त आहे असें उत्तरमीमांसाशास्त्रकर्ते अणतात. ग्रामध्ये संहिता व ब्राह्मण मिळून एक वेद होतो. अरण्यकांड जें तें ब्राह्मणाचा अंतर्गतच भाग आहे. समग्र वेदाचे अध्ययन करण्याला उगला सामर्थ्य नसेल त्यानें वेदाचा एक भाग अध्ययन करावा. अति अशक्त असेल त्यानें संहितेचें पाहिलें व शेवटचे अस्ती सुक्ते, किंवा कृती एक सुक्तांच्या पहिल्या ऋचा, अथवा सर्व सुक्तांच्या पहिल्या ऋचा यांचे अध्ययन करावें. याप्रमाणें वेदाच्या एका भागाचे अध्ययन केल्यानंतर समावर्तन झालेला किंवा विवाह झालेला होस्तता त्यानें ब्रह्मचर्यामध्ये सांगितलेल्या नियमंकरून अध्ययन करावें. या ब्रह्मचर्यानिवमामध्ये ऋतुकालीं स्त्रीगमन करावें. ब्रह्मचारिव्रताच्या लोपाचें प्रायश्चित्त तीन क्लृप्त करून महाव्याहृतिभंत्राचा होम करून समावर्तनसंस्कार करावा. हें प्रायश्चित्त संध्या, अभिकार्य, भिक्षा यांचा लोप असतां; शूद्रादिकांचा स्पर्श झाला असतां; काटि-सूत्र, भेलला, अजिन यांचा त्याग झाला असतां; दिवसा निद्रा; डोक्यांत काजळ घालणें; शिळें अन्न भक्षण करणें इत्यादिक व्रतभंगामध्ये थोडे दिवसपर्यंत अल्प व्रतभंग असतां याविषयीं जाणावें. पुष्कळ धर्मांचा लोप झाला असेल तर, " तंचोधिपानस्पत्याशविष्टं०" ह्या भंत्राचा लक्ष जप शिवाच्या देवालयांत करावा असें पूर्वी सांगितलें आहे. याप्रमाणें महानाम्नी इत्यादिक व्रतांचा लोप झाला असतां यांचें व ब्रह्मचर्यव्रताच्या लोपाचें असें प्रायश्चित्त करून नंतर समावर्तनसंस्काराचा अधिकार प्राप्त होतो.

आतां समावर्तनाचा काल सांगतो.

समावर्तन झणजे सोडमुंज करणें ती मींजीला जो काल सांगितला त्या कालीं काशी असें बहुत ज्योतिष ग्रंथांत सांगितलें आहे. त्यावरून अनध्याय, प्रदोषदेवम, भौमवार, शनिवार, पौषमास, आषाढमास, दक्षिणायन ह्यांचे ठायीं समावर्तन करूं नये. मार्गशीर्ष मासांत त्याचा विवाह करण्याचा प्रसंग आल्यास दक्षिणायनांतहि समावर्तन करावें. विवाह नसतां समावर्तन केल्यास "द्विजाने एक दिवसहि आश्रमावांचून राहूं नये," असा जो निषेध सांगितला त्याचें उल्लंघन होईल. दुसरे ग्रंथकार तर मींजीला जो काल सांगितला तो समावर्तनाला ध्यावा असें मूळ प्रमाण कोठें मिळत नाही याकरितां तीन रिक्ता तिथि पौर्णिमा, अमावास्या, अष्टमी, प्रतिपदा ह्या तिथि वर्ज्य करून अन्यतिथि; शुक्लपक्ष; शेवटचे पांच दिवस वर्ज्य करून कृष्णपक्ष; गुरुशुक्रांचें अस्तादिक, दिनक्षय, भद्र, व्यतीपात इत्यादिकदोषरहित अशा शुभवारीं समावर्तन करावें, ह्या समावर्तनाविषयी प्रदोष, सोपपदा इत्यादिक तिथि हीं वर्ज्य करणें आवश्यक नाहीत असें सांगतात. पुष्य, पुनर्वसु, मृग, रेवती, हस्त, अनुराधा, तीन उत्तरा, रोहिणी, श्रवण, विशाखा, आणि चित्रा हीं नक्षत्रे शुभ आहेत. हीं न मिळतील तर मींजीला सांगितलेलीं नक्षत्रे ध्यावीं. क्वचित्तमयी शनिवार, भौमवार ध्यावें असें निर्णयसंघंत सांगितलें आहे.

यानंतर मणि, कुंडलें, दौन वस्त्रें, छत्री, जोडा, दंड, माळ, अम्बंग, उठी, काजळ, आणि पागोटें हे पदार्थ आपल्याकरितां व आचार्याकरितां मिळवावे. अथवा दोघाला पुरत इतके न मिळतील तर आचार्याकरितांच मिळवावे. नंतर देश, काल, यांचा उच्चार करून "मम ब्रह्मवर्धनियमलोपजनितसंभावितदोष परिहारेण समावर्तनाधिकारसं पादनद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रसिद्धं आज्यहोमपूर्वकं कृच्छ्रव्रतमहानाम्नीदव्रतचतुष्टयलोपजनितप्र सवायपरिहारार्थं प्रतिसंस्कारमेकैककृच्छ्रव्रताद्यज्यहोमपूर्वकं त्वेणाहमाचरिष्ये " असा सकलं करून अग्निस्थापन इत्यादिक कर्म केल्यानंतर अन्वाधान करावें. तें असें- " चक्षुषो आज्येनात्रप्रधानं आभ वायुं सूर्यं प्रजापतिंचचतसृभिराज्याहुतिभिः अग्निं पृथिवीं महांतमेकयाज्याहुया वायुमंतरिक्षं महांतमेकयाज्याहुया आदित्यं दिवं महांतमेकयाज्या हुया चंद्रमसंनक्षत्राणिदिशोमहांतमेकयाज्याहुया अग्निद्विःविभावंसुं शतक्रतुं अग्निं अग्निं आग्निं वायुं सूर्यं प्रजापतिंचेयष्टावेकैकयाज्याहुया शेषेणस्विष्टकृतं० " इत्यादिक अन्वाधान करून आज्यभागांपर्यंत कर्म केल्यानंतर व्यस्तसमस्तव्याहृतिमंत्रांनीं होम करून पुनः होम करावा, त्याचे मंत्र- " भूमये च पृथिव्यै च महते च स्वाहा अग्ने पृथिव्यै महते इदं नमम, इत्यादिक नसें अन्वाधान केलें आहे या प्रमाणें सांग करावा.) भुवो वापवे चांतरिक्षात्य च

महतेच स्वाहा ॥सुवरादेव्यायचादेवेच महतेच स्वाहा भूर्भुवःस्वयंभ्रमसेच नक्षत्रैर्यश्व
दिग्भ्यश्च महतेच साहा चंद्रमसेनक्ष० ॥ पाहिनो अग्र एनसे स्वाहा ॥ पाहिनो विश्व
वेदसेस्वाहा ॥ यज्ञपाहि विभावसो स्वाहा ॥ सर्व पाहि शत क्रतो स्वाहा ॥ पुनरूर्जानिवर्त-
स्वपुनरमृदहायुषा पुनर्नःपाह्यइसःस्वाहा ॥ सहरण्यानिवर्तस्वामे पन्वस्वधारया विश्विक्ष
या विश्वतस्परिस्वाहा "या प्रमाणे होम करून पुनः व्यरतसमस्तव्याहृतिमंत्रांनी चार
आहुति द्याव्या. तदनंतर चार व्रतांकरिता गायत्रीमंत्राने आज्य होम करावा.
तीन कृच्छ्र गाईची किंमत देऊन होमशेष समाप्त करावा. महानाम्नी इत्यादिकांचे लोपा
विषयी प्रत्येक व्रताच्या एकशें आठ, अथवा अष्टावीस, किंवा आठ आहुती गायत्रीमंत्राने
आज्याचे (घृताचे) हवन करून एकेक कृच्छ्रप्रायाश्चत करावे. याप्रमाणे प्रायश्चित्ताचा
प्रयोग समाप्त झाला.

आतां समावर्तनाचा संकल्प इत्यादिक सांगतो.

पानंतर समावर्तनाचा संकल्प इत्यादिक करावा. तो असा-" मम गृहमयाश्रमाहता
सिद्धिद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रियर्थं समावर्तनं करिष्ये," असा संकल्प करून नांदीश्राद्धापर्यंत
कर्म बटूनेच करावे. ब्रह्मचारी जीवत्पितृक (जिवंत आदि पिता ज्याचा तो) असेल तर
नांदीश्राद्धामध्ये पिता जो त्याच्या माता इत्यादिकांचा उद्देश करावा. ब्रह्मचारी अशक्त
असेल तर पिता इत्यादिकाने त्याच्या प्रतिनिधिरूपाने नांदीश्राद्ध करावे. मीनी इत्यादिक
संस्काराचे ठायीं जसा नांदीश्राद्ध करणारा पिता इत्यादिकच अधिकारी तसा समावर्तनाचे
ठायींही नांदीश्राद्ध करणारा पिता इत्यादिकच असे मतांतराने पूर्वी सांगितले आहे.
अवशिष्ट प्रयोग आपापल्या गृहसूत्राप्रमाणे करावा. दहा अथवा तीन ब्राह्मणांच्या भोजन
द्यावे. जे मधुपर्क देतात झणजे मधुपर्काने पूजा करतात तेथे या रात्री राहावे. तदनंतर
व्रतांचा संकल्प करावा. तीं व्रते आपल्या सूत्रांत सांगितलेली व स्मृतीत सांगितलेली असीं
दोन प्रकारची आहेत. तीं सर्व, पुरुषार्थरूपच होते, समावर्तनाची अंगरूप नव्हते.
आमध्ये अशक्त असेल त्याने सूत्रांत सांगितलेली व्रते मात्र करावी. सशक्त असेल तर
सूत्रांत सांगितलेली करून स्मृतीत सांगितलेली तींही करावी. तीं अर्ती- निमित्तावाचून
रक्षी भी क्लान करणार नाही. नम्र होतिसाता क्लान करणार नाही. नम्र होतिसाता
निद्रा करणार नाही. मैथुना वाचून अन्यकाली नमस्त्रिपेला पाहणार नाही. वृष्टीमध्ये
धावत गमन करणार नाही. वृक्षावर आरोहण करणार नाही. विहिरित उतरणार नाही.
बाहूंकडून नदीतितरून जाणार नाही. जेणेकरून प्राणसंशय झणजे प्राण जातील किंवा
राहतील असा संशय येईल ते कर्म करणार नाही. याप्रमाणे सुशोक घुर्वे जाणावी.

पानतर स्मृतौ सागितलेलीं व्रते सांगतो—निम्न दोन यज्ञोपवीते धारण करीत. उदक युक्त असा कमंडलु, छत्री, पागोटें, पादुका, जोडा, सुवर्णाचीं कुंडले, आणि दर्मगुष्टी हीं धारण करीत. छत्रेकडून लहान केलेल्या दादी, भिशा आणि नखें असा रस्तीस झणजे निमित्तावांचून क्षीर करणार नाही असा अर्थ समजावा. कारण, “उप्याचै समवर्तनं शाले शानीं क्षीर कर्षं नये,” असा निषेध आहे. निम्न अध्ययनांत आसक्त असेन. आपल्या अंगावरून काढलेलीं तीं आपणाला निर्माल्य अशीं पुष्पें, चंदन इत्यादिक पुनः धारण करणार नाही. पांढरीं वस्त्रें धारण करीत. सुगंधयुक्त व प्रतिकारक उप्याचै दर्शन असा होईत. संपत्ति असल्यास फाटकीं वस्त्रें व मळकट वस्त्रें धारण करणार नाही. तांबडें वस्त्र अथवा शींगराला पीडाकारक वस्त्र धारण करणार नाही. गुरूवांचून दुसऱ्यांनीं धारण केलेले वस्त्र, अलंकार, माळा हीं धारण करणार नाही. अशक्त असेल तर इतरांनीं धारण केलेले वस्त्र इत्यादिक तोंडे धुवून धारण करावें. इतरांनीं धारण केलेले यज्ञोपवीत, जोडा हीं धारण करणार नाही. कंधा (गोधडी) धारण करणार नाही. आपलें रूप उदकांत पाहणार नाही. खिपेररोवर एका पात्रांत किंवा एककालीं भोजन करणार नाही; हे किंवा हावांचून जाणावें. शूद्राला धर्मोपदेश, नीतीचा उपदेश, व व्रताचा उपदेश करणार नाही, हे साधूत् उपदेश करण्याविषयीं जाणावें. कारण, “ब्राह्मणाला पुढें कडून उपदेश करावा,” असे वचन आहे पाकारितां ब्राह्मणद्वारा उपदेश केला असतां दोष नाही. गृहस्थाश्रमी शूद्राला आपलें उच्छिष्ट देणार नाही. शूद्राला होमाचें शेष देणार नाही. वर काढलेल्या उदकानें, उभा रहात होताता आचमन करणार नाही कारण जानुमात्र किंवा साहून अधिक उदकांत उभें राहून आचमन केले असतां दोष नाही. अशुचि जो झालें किंवा एका हातानें काढलेल्या उदकाचीं आचमन करणार नाही. पायाने पाय धुणार नाही. रोगादिकानें असमर्थ अशा खिपेपत गमन करणार नाही. मस्तकास वस्त्र गुंडाळून दिवसा फिरणार नाही. रात्री आणि मलमूत्रोत्सर्गसमयीं मस्तकास वस्त्र गुंडाळीत. पायांत जोडा घालून भोजन, अभिवादन नमन करणार नाही. पायानें आतन एकाकडे ओटणार नाही. याप्रमाणें दुसरींही स्मृत्युक्त व्रते आहेत तीं पाहवीं. या व्रतां अर्थें आं आपणास करण्याला शक्य वाटतेंल तितक्यांचाच संकल्प करावा. ह्या संकल्प केलेल्या व्रतांचें बुद्धिपूर्वक उल्लंघन केले असतां तीन दिवस उपोषण करावें. न जाणून उल्लंघन झालें असतां एक रात्रपर्यंत उपोषण हें प्रायश्चित्त करावें. उपोषण करण्यास अशक्त असेल तर तीन किंवा एक ब्राह्मणाला भोजन घालावें. याप्रमाणें कातकाचीं व्रते समाप्त झालीं.

आतुर अवस्थेमध्ये यथाविधि समावर्तनाचा असंभव असेल तर संक्षेपेकक्षण समावर्तन करावे. आचा संक्षेप प्रयोग—संक्षेप करून ब्रह्मचारी यानें मेलला इत्यादिक थिथें टाकून वपन करून तीर्थामध्ये स्नान करावे. नंतर वस्त्रपरिधान, आचमन तिलकधारण हीं करून अग्नीची स्थापना करानी. नंतर या अग्नीमध्ये, प्रजापतीचें मनेंकरून ध्यान करित होस्ताता मंत्रविरहित समिध द्यावी. इतरदि कर्म विरुद्ध नसेल तें मंत्ररहितच करावे. याप्रमाणें समावर्तनाचा शौण पक्ष समाप्त झाला.

ब्रह्मचर्यावस्थेत दहा दिवस आशौच धरण्यासारखा कोणी, आपल्या सपिंडांतला मृत झाला असेल तर समावर्तन झाल्यानंतर मृताला तिळांजलि देऊन तीन दिवस अतिक्रांत आशौच धरावे. भोजी न झालेला असा सपिंड मृत झाला असेल किंवा मानुल इत्यादिक मृत असेल तर अक्रांत आशौच धरूं नये. याप्रमाणें जननाचीचिनिःसक्रीहि अति-क्रांताशौच नाही. व्यवहन जर दहा दिवस आशौच धरण्याला योग्य असा सपिंड मृत झाला असेल तर समावर्तन झाल्यानंतर तीन दिवसपर्यंत विवाह करूं नये, कोणी मृत झाला नसल्यास विवाहाविषयी टोष नाही.

अनंतोपाध्यायांचा पुत्र मी यानें याप्रकारें ज्ञातकत्र्यापर्यंत सर्व कर्मांचा निर्णय करून आपल्या वाणीचा शृंगार श्रीविठ्ठलाचे चरणीं समर्पण केला.

यानंतर पुंडरीकाक्ष वरप्रदान देणारे असे श्रीविठ्ठलाचे चरण, श्रीगुरु आणि मातापिता या सर्वांला नमस्कार करून विवाह सांगण्याविषयीं उद्युक्त होतो.

द्विजानें आपल्या जातिली, लक्षणांनीं युक्त, अवयवानीं अद्यंग, सौम्यवाची, कोमलांगी सुंदर असी स्त्री वचावी. पुढे होणारे जे शुभाशुभ त्याचे ज्ञानाला कारण, तीं लक्षणे त्यांचा विचार, "मातीचे आठ पिंड कमवे," इत्यादि, आश्वययन सूत्रांत सांगितला आहे. उगोतिःशास्त्रामध्ये सांगितलीं जीं राशि, नक्षत्रे इत्यादिक, त्याच्या घटिताचा निश्चार तोहि शुभादिकाचे ज्ञानाला कारण आहे याकरितां तो संक्षेपानें सांगतो. आपध्ये प्रथम भेषादिकराशांचे स्वामी सांगतो—“मंगळ, शक्र, बुध, चंद्र, सूर्य, वृध, शुक्र, मंगळ, बृहस्पति शनि, शनि, आणि वृहस्पति या प्रमाणे कर्म करून भेषादिक वारा राशांचे स्वामी जागावे.

आतां ग्रहांचे शत्रु मित्र इत्यादि.

सूर्याचे—गुरु, मंगळ, चंद्र, हे मित्र होत. शनि, शुक्र हे शत्रु होत. बुध हा सम होय. चंद्राचे—सूर्य, बुध मित्र. मंगळ, गुरु, शुक्र, शनि हे सम होत. चंद्राला शत्रु नाही. मंगळाचे—बुध हा शत्रु, सूर्य, गुरु, चंद्र हे मित्र. शनि, शक्र, हे सम. बुधाचे—शनि, शुक्र हे मित्र. चंद्र हा शत्रु. शनि, मंगळ, गुरु हे सम होत. वृहस्पत्याचे—सूर्य, मंगळ, चंद्र हे

मित्र. शुक, बुध हे शत्रु. शनि सम होय. शुक्राचे- शनि बुध हे मित्र. सूर्य, चंद्र हे शत्रु मंगळ, गुरु, हे सम. शनीचे-शुक, बुध हे मित्र. मंगळ, सूर्य, चंद्र हे शत्रु. गुरु सम होय. याविषयी गुणांचा विचार-वधुवरांचे राशिस्वामी एक, किंवा राशिस्वामीचे परस्पर मित्रत्व असतां पंच गुण जाणावे. राशिस्वामीचे समत्व व शत्रुत्व असेल तर अर्धा गुण समत्व व मित्रत्व असतां चार गुण. शत्रुत्व व मित्रत्व असतां एक गुण. दोघांचे समत्व असतां तीन गुण. दोघांचे शत्रुत्व असेल तर शून्य जाणावे.

गणमैत्री—पूर्वा, पूर्वाषाढा, पूर्वाभद्रपदा, उत्तरा, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, भरणी, रोहिणी, आर्द्रा, ह्या नक्षत्रां जन्म असल्यास मनुष्यगण. हस्त, रेवती, पुनर्वसु, पुष्य, स्वाती, मृग, श्रवण, अश्विनी, आणि अनुगाधा ह्या नक्षत्रां जन्म असतां देवगण. कृत्तिका, आश्लेषा, मघा, चित्रा, विशाखा, ज्येष्ठा, मूळ, धनिष्ठा, शततारका ह्या नक्षत्रां जन्म असतां राक्षसगण. वधूवरांचा एक गण असतां शुभ होय. देव मनुष्यगण असतां मध्यम होय. देवगण व राक्षसगण असतां वैर असेल. राक्षसगण मनुष्यगण असतां मृत्यु होतो, याकरितां मनुष्यगण व राक्षसगण यांचा परस्पर विवाह करूं नये. गणमैत्रीचे गुण सांगतो. — वधुवरांचा एक गण असतां सहा गुण. पुरुषाचा देवगण आणि स्त्रीया मनुष्यगण असतां सहा गुण. तेच विपरीत असतां ह्यणजे पुरुषाचा मनुष्यगण आणि स्त्रीचा देवगण असतां पांच गुण. वराचा राक्षसगण व वधूचा देवगण असतां एक गुण. यांहून विपरीत असतां शून्य गुण जाणावा. एकाचा मनुष्यगण व दुसऱ्याचा राक्षसगण असतांही शून्य गुण जाणावा.

आतां राशिकूट—वधूचे राशीपासून वराची राशि, अथवा वराचे राशीपासून वधूची राशि दुसरी किंवा बारावी असतां निर्धनत्व होतें. पांचवी किंवा नववी असतां पुत्ररा हिय होतें. सहावी किंवा आठवी असतां मरण अथवा विपत्ति होते. दोहोंकडूनही सातवी, तिसरी, अठरावी, चवथी आणि दहावी असतां शुभ होय. वधूवरांचे नक्षत्र एक असतां चरण भिन्न असेल तर शुभ होय. उभयतांची राशि एक असेल तर अतिशुभ होय. राशि भिन्न असल्या तथापि कूटाचा दोष नाही. उभयतांचे नक्षत्र भिन्न व राशि एक असतां शुभ होय. ह्या राशिकूटाविषयी नाडी, गण, ग्रहमैत्री इत्यादि दोष नाही. वधूवरांचा नक्षत्रचरण एक, व सहावी, आठवी राशि हीं वर्ज्य करावी. दुसरी, बारावी, नववी आणि पांचवी यांचे ठिकाणी मध्यम होय. यांहून ज्या शेष राशि याचे ठिकाणी शुभ होय. येथे गुण सांगतो—सत्कूट असतां सात गुण. द्विर्द्वा दशादिक व ग्रहमैत्री असतां चार गुण. या दोहोंतून एक असतां एक गुण. वधूव

राचा नक्षत्रचरण एक असल्यास गुण नाही.

आतां नाडी—अश्विनी, आरद्रा, पुनर्वसु, उत्तरा, हस्त, ज्येष्ठा, मूळ, शततारका पुर्वाभाद्रपदा, यांची प्रथमनाडी होय. भरणी, मृग, पुष्य, पूर्वा, चित्रा, अनुराधा, पूर्वाषाढा, धनिष्ठा, उत्तराभाद्रपदा, यांची मध्यनाडी. कृत्तिका, रोहिणी, आश्लेषा, मघा, स्वाती विशाखा, उत्तमशाढा, श्रवण, रेवती ह्या नक्षत्रांची अंयनाडी होय. वधूवर्गांची एक नाडी असतां मृत्यु होतो. वधूवर्गांची भिन्न नाडी असतां आठ गुण होत. एक नाडी सर्वथा वर्ज्य करावी. शुद्ध इत्यादिक धर्मास पार्श्वनाडी, व एकनाडी संकट असतां शुभ होत. वर्ण, वश्य, नक्षत्रकूट, आणि योनिकूट यांचे गुण अल्प असून तीं विवाहाला बाधक नाहींत, याकरितां एथें त्यांचे स्वरूप सांगितलें नाहीं. सर्व गुण एकत्र भिळवून पाहावे आणि धीस गुण आले असतां मध्यम; विसांहून अधिक गुण आल्यास अतिशुभ होय. विसांपेक्षां कमी असल्यास अशुभ होय. याप्रमाणें नक्षत्र इत्यादिक घटिताचा विचार समाप्त झाला.

सापिंडधानर्णय—“दान, उपभोग यांहींकरून जींचें ग्रहण दुसऱ्या पुरुषानें केलें नाहीं अशी, वरणाऱाचे मनाला व नेत्रांला आनंद उत्पन्न करणारी, पुढें सांगावयाचें जें सापिंडय तें आख्याशीं नाहीं जींचें असी, व वरणापेक्षां वयानें व शरीरानें कमी, रोगरहित, भ्रान्तयुक्त आणि वरशीं असमान लक्षणें भिन्न आहेत प्रवर आणि गोत्रे ज्यांची अशा कुलामध्ये उत्पन्न झालेली असी, स्त्री वरणी ” याप्रमाणें याज्ञवल्क्य इत्यादिकांनीं सांगितलीं जीं कन्येचीं विशेषणें त्यांमध्ये कांतव, निरोगत्व आणि भ्रान्तत्व या विशेषणांचाचून जीं इतर विशेषणें तीं त्या कन्येचे अंगीं नसतां ती कन्या वरली तर इहलोकीं व परलोकीं पातित्य प्राप्त होतें यास्तव तीं लक्ष्में विस्तारकरून सांगतां—त्यांमध्ये अन्यपूर्विका लक्षणें पूर्वी, पुढील सात प्रकारांनीं अन्य पुरुषाच्या न झालेल्या; त्या अशा—“भनेकरून दिलेली, वाग्दान झालेली, विवाहहोमापर्यंत संस्कार झालेली, सप्तपदीविधि पूर्ण झालेली, उपभोग केलेली, गर्भधारण झालेली आणि प्रसूत झालेली, या प्रमाणें सात प्रकारच्या पुनर्भू होत, एतद्भिन्न जी ती अनन्य पूर्विका जाणावी. विवाहहोम झाल्यानंतर जो सप्तपदी लक्षण विधि करतात तो होण्याच्या पूर्वी वरील सातांमध्ये पाहिल्या तीन अशा ज्या कन्या त्यांचा विवाह संकट असतां दुसऱ्या वगारोवर होतो. घटाकारानें विवाह झालेली अती नरी असेल तथापि सप्तपदीविधि झाल्यानंतर त्या कन्येचा दुसऱ्या वगशीं विवाह कळं नये, समान लक्षणें एक आहेपिंड लक्षणें पिंडदानक्रिया अथवा मूलपुरुषशरीरावयसंबंध जींचा ती सापिंडा, तीव्रिणा जी ती असपिंडा असी असावी. त्या सापिंड्याविषयीं “पिता,पितामह, आणि पिपिताम

देपिडभागी होत, व वृद्धपितामहादि वरचे तीन पुरुष लेपभागी होत, याप्रमाणे हे जे साहा
 घाला जो सातवा तो पिंड देणारा आहे; यास्तव सात पुरुषांपर्यंत सापिंड्य होतें," असें
 मास्यपुराणातील वचन आहे; याकारितां एका पिंडदानाच्या क्रियेमध्ये दानृत्व, पिंडभाक्त्व,
 आणि लेपभाक्त्व, यांतून कोणत्याहि संबंधकरून जो प्रवेश होतो त्याचें नांव निर्वप्यसा-
 पिंड्य असें कित्तीएक ग्रंथकारांचें मत आहे. ह्या सापिंड्यांत पतीसहवर्तमान स्त्रियांसहि
 कर्तृत्व असल्यामुळे त्यांस सापिंड्य सिद्ध होतें. मूलपुरुषाच्या एकशरीरसंबंधी अवयवांचें
 अस्तित्त्व आहे यास्तव अवयवसापिंड्य असें दुसरें मत आहे, हे सापिंड्य जरी आत्मांच्या
 स्त्रियांस परस्पर संभवत नाहीं तथापि आधारत्वांनै एकशरीराचा अवयव होतो. कारण,
 आत्माचा जो एक मूळपुरुष, त्याच्या अवयवांचें पुत्रद्वारा स्थापन ह्या आत्माच्या स्त्रियांचे
 ठिकाणीं होतें यावरून जाणावें. निर्वप्यसापिंड्य ह्यणजे पिंडदानक्रियारूप सापिंड्य व
 शरीरावयवसापिंड्य या दोनांहे सापिंड्यलक्षणांत गयादिश्राद्धांमध्ये मित्रादिकांसहि पिंड
 प्राप्त होतो यमुळें व एकशरीराचा अवयवसंबंध सातांहून पलिकडे शेकडों पर्यंतहि
 असल्यामुळें त्यांसहि सापिंड्यप्राप्ति येईल आणि तसें ज्ञाल्यानें अनवस्थाप्रतंग प्राप्त झाला
 त्याचा निरास, "कन्येचा किंवा वगचा पिता कूटस्थपुरुषापासून जर सातवा होईल व
 ह्या वधुवरांची माता जर पांचवी होईल तर तें सापिंड्य दूर होतें," इत्यादिक नां वचनें
 यांहीकरून होतो. कारण, मातृत्व, पितृत्व इत्यादिक संबंध असतांच पांचवी माता व
 सातवा पिता एवंपर्यंतच सापिंड्य अशाविषयीं दोन नियमांचा स्वीकार केला आहे, याव
 रून पिसाकडून सापिंड्याचा विचार केला असतां सातव्या पुरुषानंतर सापिंड्याची निवृ
 त्ति होते, व मातेकडून सापिंड्याचा विचार केला असतां पांचव्यानंतर सापिंड्याची निवृ
 त्ति होते, याप्रमाणे निर्णय जाणावा.

याविषयी उदाहरणें.

| विष्णु मूळ पुरुष. | विष्णु मूळ पुरुष. | विष्णु मूळ पुरुष. | विष्णु मूळ पुरुष. |
|-------------------|-------------------|---------------------|-------------------|
| काति. २ गौरी २ | दत्त. २ चैत्र. २ | दत्त, २ चैत्र. २ | दत्त. २ चैत्र. २ |
| सुधी. ३ हर. ३ | तोम. ३ मैत्र. ३ | तोम. ३ मैत्र. ३ | तोम. ३ मैत्र. ३ |
| बुध. ४ मैत्र. ४ | सुधी. ४ बुध. ४ | सुधी. ४ बुध. ४ | सुधी. ४ बुध. ४ |
| चैत्र. ५ शिव. ५ | श्यामा ५ रति. ५ | श्यामा. ५ नर्मदा. ५ | श्यामा. ५ शिव. ५ |
| गण. ६ भूर. ६ | शिव. ६ गौरी. ६ | शिव. ६ काम. ६ | काति. ६ हर. ६ |
| मूड. ७ अश्विन. ७ | | रमा. ७ कवि. ७ | |
| रति. ८ काम. ८ | | | |

| | | | |
|---|--|---|--|
| या उदाहरणी रति | या उदाहरणी गौरी | या उदाहरणी रमा | या उदाहरणी कांति |
| आणि काम यांचा विवाह होतो; कारण, पित्याकडून दोनही आठवीं होतात. | व शिव यांचा विवाह होतो; कारण, मातेकडून दोनही सहावीं होतात. | व कवि यांचा विवाह होत नाही; कारण, मडूकडुतीने पिंड्य येते. | व हर यांचा विवाह होत नाही; कारण, एकाकडून झणजे कांतीकडून सापिंड्यनिवृत्ति होते, परंतु दुसऱ्याकडून झणजे हराकडून सापिंड्यनिवृत्ति होत नाही. |

“मूळपुरुष विष्णु, त्याच्या दोन कन्या; एक कांति व दुसरी गौरी. आंतून कांतीचा पुत्र सुधी, सुधीचा पुत्र बुध, बुधाचा पुत्र चैत्र, चैत्राचा पुत्र गण, गणाचा पुत्र मृद, मृदाची कन्या रति, ती मूळ पुरुष जो विष्णु आपासून आठवी होते; दुसरी कन्या गौरी, तिचा पुत्र हर, हराचा पुत्र मैत्र, मैत्राचा पुत्र शिव, शिवाचा पुत्र भूप, भूपाचा पुत्र अच्युत, अच्युताचा पुत्र काम, तो मूळ पुरुष जो विष्णु आपासून आठवा होतो या कारितां रति व काम हीं दोनही आठवीं असल्यामुळे यांचा निवाह होतो. ”

मूळपुरुष विष्णु, त्याचे पुत्र दोन; एक दत्त व दुसरा चैत्र. दत्ताचा पुत्र सोम सोमाचा पुत्र सुधी, सुधीची कन्या श्यामा, श्यामेचा पुत्र शिव, तो मूळपुरुष जो विष्णु आपासून सहावा होतो. दुसरा पुत्र चैत्र, त्याचा पुत्र मैत्र, मैत्राचा बुध, बुधाची कन्या रति, रतीची कन्या गौरी, ती मूळपुरुष जो विष्णु आपासून सहावी होते. याप्रमाणे शिव व गौरी हीं उभयतां सहावीं आहेत याकरितां यांचा विवाह होतो. ”

“मूळपुरुष विष्णु, त्याचे पुत्र दोन; दत्त व चैत्र. दत्ताचा पुत्र सोम, सोमाचा पुत्र सुधी, सुधीची कन्या श्यामा, श्यामेचा पुत्र शिव, शिवाची कन्या रमा, ती मूळपुरुषापासून सातवी होते. दुसरा चैत्र, चैत्राचा पुत्र मैत्र, मैत्राचा बुध, बुधाची कन्या नर्मदा, नर्मदेचा पुत्र काम, कामाचा पुत्र कवि, हा मूळपुरुषापासून सातवा होतो, यथे मडूकडुती-सापिंड्य होतें, याकरितां रमा व कवि यांचा विवाह होत नाही.

“मूळपुरुष विष्णु, त्याचे पुत्र दोन; एक दत्त व दुसरा चैत्र. दत्ताचा पुत्र सोम, सोमाचा पुत्र सुधी, सुधीची कन्या श्यामा, श्यामेची कन्या कांति, ही मूळपुरुष जो विष्णु आपासून सहावी होते. दुसरा पुत्र चैत्र, त्याचा पुत्र मैत्र, मैत्राचा पुत्र बुध, बुधाचा शिव, शिवाचा हर, हाही मूळ पुरुष जो विष्णु आपासून सहावा होतो; परंतु कांति व हर यांचा विवाह होत नाही. कारण एकाकडून झणजे कांतीकडून मातृद्वारक सापिंड्य

असल्यामुळे सापिंड्यानिवृत्ति होते, परंतु दुसऱ्याकडून झणजे इतराकडून पितृद्वारक सापिंड्य असल्यामुळे निवृत्ति होत नाही. याप्रमाणे एथे ही सापिंड्यपद्धति दिक्प्रदर्शनककून सांगितली आहे.

मूळपुरुषापासून पांचव्या अशा ज्या दोन कन्या त्यांचे संततीला मातेकडून सापिंड्य आहे झणून सापिंड्यानिवृत्ति होते. आणि मूळपुरुषापासून पांचव्या कन्या त्यांचे जे पुत्र या पुत्रांची जी संतति तिला पित्याकडून सापिंड्य आहे झणून ते निवृत्त होत नाही; बाला मंडूककृत्तिसापिंड्य झणतात.

मूळ पुरुषापासून पांचवी जी कन्या तिचा पुत्र जो सहावा पुरुष त्याचा, मूळ पुरुषापासून पांचवा आदिकरून जो पुरुष तो सापिंड होत नाही तथापि दुसऱ्या संततीच्या पंक्तीचे ठिकाणी पांचवा सहावा इत्यादि पुरुषांला पितृद्वारक सापिंड्य आहे झणून एकीकडून झणजे मातृद्वारकत्वाने सापिंड्य निवृत्त झाले तथापि दुसरीकडून झणजे पितृद्वारकत्वाने आहे; यास्तव पांचव्या, सहाव्या इत्यादिक पुरुषाने पांचव्या कन्येच्या संततीशी विवाह करूं नये. याप्रमाणे मूळपुरुषाला आरंभ करून आठवा इत्यादिक पुरुषाला आणि मूळपुरुषापासून दुसरा, तिसरा इत्यांकांला एकीकडून सापिंड्याची निवृत्ति होते. व दुसरीकडून सापिंड्यप्राप्ति आहे असे योजावे. याप्रमाणे आशीचसंबंधी सापिंड्याविषयीही एकीकडून निवृत्ति व दुसरीकडून सापिंड्यप्राप्ति याप्रमाणे जसे असेल तसे जाणावे.

याप्रमाणे पितृद्वारक सापिंड्य, मूळपुरुषापासून सातव्या पुरुषानंतर निवृत्त होतें व मातृद्वारक सापिंड्य तर मूळपुरुषापासून पांचव्या पुरुषानंतर निवृत्त होतें, झणून मुख्य पक्षेकरून वर्ध करण्याला योग्य ज्या कन्या त्यांची संख्या याप्रमाणे होते. ती अशी— पितृकुळामध्ये २०१६, व मातृकुळामध्ये १०५, याप्रमाणे दोन कुळे मिळून २१२१ कन्या वर्ध कराव्या. याच्या गणनेचा प्रकार व त्याविषयी मूळ श्लोक आणि त्या श्लोकांची व्याख्या हे कौस्तुभांत सर्व स्पष्ट सांगितले आहे. व ज्यांज शास्त्रव्युत्पत्तिनाही झाला ते दुर्बोध असल्यामुळे ते एथे सांगत नाही. तेव्हा मुख्यपक्षी दोन कुळे मिळून इतक्या कन्या निश्चये वर्ध कराव्या. अनुकरणाचा आश्रय करून सातव्या, पांचव्या पुरुषाचे आंत विवाह करूं नये. कारण, “ज्या पुरुषांचा विवाहसंस्कार पांचव्या सातव्या सपिंडेसी होतो ते पुरुष क्रियातत्पर जरी असले तथापि पतित होतसाते झूटवाला पावतात.” “सातव्या व पांचव्या पुरुषांच्या आंतली अथवा सगोत्रा झणजे समानगोत्रांतली अशा कन्येसी जो बुद्धिमान द्विज विवाह करील तो गुरुतन्वी झणजे गुरुपत्नीसी गमन कर-

‘‘गारा असत जाणावा’’ इत्यादिक स्मृतिवाक्ये आहेत. ‘‘मूळ पुरुषापासून चवथी वर याने चवथी कन्या वरावी, आणि पांचवा वर याने तिसरी अथवा चवथी कन्या वरावी; याप्रमाणे दोनाहे झणजे मातृपक्षा व पितृपक्षा जाणावे,’’ इत्यादिक नी वचने आहेत या मध्ये काही वचने निर्मूळ व काही वचने दत्तक, मादल इत्यादिक संबंधविषयकून ब्राह्मणाविषयी योजनाई, अथवा क्षत्रियादिकांविषयी जें सापिंडय त्याविषयी योजनाई, असे निर्णयसिध्दें मत आहे. कौस्तुभामध्ये तर ‘‘मूळपुरुषापासून सातव्या पुरुषानंतरची वरावी, तिच्या अभावी सातवी, तिच्या अभावी पांचवी याप्रमाणे कन्या वरावी, व हा विधी मातृपक्षा असून पितृपक्षाहि आहे.

‘‘सातवी, सहावी आणि पांचवी असी कन्या वरावी, याप्रमाणे वरली असता दोष नाही असे शाकटायन सांगतो.’’ ‘‘दोनाहे पक्षा तिसरी, अथवा चवथी कन्या वरावी, असे मनु, पाराशर्य, यम आणि अंगिरा हे सांगतात. जो पुरुष देशाचार व कुलाचार घाला अनुसरून विवाह करितो तो निरा व्यवहाराला योग्य होतो असे वेदांताहि सांगितले आहे’’ इत्यादिक वचने चतुर्विंशतिमत, व षट्त्रिंशतिमत इत्यादिक ग्रंथांमध्ये मिळतात; यास्तव आणि सापिंड्याचा संकोच मानून पुष्कळ देशांमध्ये विवाह करण्याचा आचार दृष्टीस पडतो याकरिता ज्यांच्या कुलामध्ये व देशामध्ये अनुकरणांने सापिंड्याचा संकोच परंपराप्राप्त असेल, यांनी सापिंड्याचा संकोच मानून विवाह केला असता दोष नाही. आपल्या कुळाला व देशाचाराला विरुद्ध असा सापिंड्यसंकोचकून विवाह केला असता निश्चयें दोष प्राप्त हांतो कारण, ‘‘देशाचार, ग्रामाचार आणि कुलाचार हे विवाहा. मध्ये करावे,’’ असे आश्रुलायन सांगतो. ‘‘ज्या आचाराने आपले पितृ, पितामह सन्मार्गी गेले या आचारानेच आपण जावे, कारण तसा जाणारा दोषी होत नाही’’ इत्यादिक वचनानी आपले कुळ व आपला देश यांमध्ये जो आचार असेल त्याला विरुद्ध नाही असे जें शास्त्र तें विवाहाविषयीं व्यावे. याप्रमाणे मानुलाच्या कन्येशीं विवाह करण्याविषयीहि देशाचार व कुलाचार यांस अविरुद्ध असे शास्त्र पाहून याप्रमाणे करावे. ‘‘यज्ञामध्ये नसी वया ही इंद्राचा भाग असल्यामुळे ऋत्विक् तिचा होम करितात याप्रमाणे मातुळकन्या आतेवहीण ह्या भागरूप असल्यामुळे यांचेहि ग्रहण करितात’’ अशा मंत्रप्रमाणानीं मातुळकन्या, मातुळाच्या गोत्रांतली कन्या व आपणाशीं एक आहे प्रवर जीचा ती कन्या इतक्यांतून कोणत्याहि कन्येशीं विवाह केला असता तिचा आग करून चांद्रायण प्रायश्चित करावे, इत्यादिक स्मृतिवचने व वित आहेत; यास्तव ज्याच्या कुळांत मातुळकन्येशीं विवाह करणें परंपराप्राप्त असेल यांनी तो करावा. ‘‘आतेवहीण, व मातुळकन्या यांच्याशीं विवाह करणे, गोधळ करणे’’ ही कर्त्तव्य वर्य करानी, असे जें कलिवर्यप्रकरणें मातुळकन्येशीं विवाह न कर

व्याविषयी वचन आहे तेहि व्याच्या कुळांत व देशांत मातुलकन्यांशीं विवाह करीत नाहींत व्याविषयी जाणावें. कारण, मातुलाच्या कन्येशीं विवाह करणें हें बहुत श्रुति-स्मृति प्रमाणेकरून सिद्ध आहे, दास्तवच 'मातुलकन्येशीं विवाह केलेले जे सांगा आर्द्धी आमंषण करूं नये, असा जो निषेध तोहि आपल्या कुलाचाराला विरुद्ध असा जो मातुलकन्येशीं विवाह करणारा व्याविषयी जाणावा. पूर्वी सांगितले जें सापिंड्या व्याचा संकोच करून विवाह करणारे जे पुरुष त्याला श्राद्धादिकांमध्ये भोजनादिकांला सांग व्याचा शिष्टांचा आचार आहे, इत्यादिक बहुत सांगितले आहे; परंतु सापिंड्यासंकोच स्वीकारला असतांहि कितवी कन्या कितव्या पुरुषानें बरावी, कितव्या पुरुषानें न बरावी ही व्यवस्था सांगितली नाहीं.

सापिंड्यादीपिकाकार इत्यादिक जे अर्वाचीन ग्रंथकार ते तर "चवथा किंवा पांचवा पुरुष यानें चवथी कन्या बरावी, पराशराच्या मतीं सहावी बरावी; परंतु पांचवा यानें पांचवी कन्या वरूं नये" इत्यादिक वचनें प्रमाणभूत आहेत असा निश्चय करून अज्ञा-कांनीं संकटसमयीं स्वीकारण्याला योग्य असा जो सापिंड्याचा संकोच व्याची व्यवस्था सांगतात. ती अशी,—पितृपक्षी आणि मातृपक्षी चवथी कन्या, चवथा किंवा पांचवा पुरुष यानें बरावी. दुसरा, तिसरा, आणि सहावा इत्यादि पुरुष यानें चौथी कन्या वरूं नये. पराशराच्या मतीं पांचवा यानें सहावी कन्या बरावी. दुसरा, तिसरा, आणि चवथा इत्यादि पुरुषानें सहावी कन्या वरूं नये. पांचवा पुरुष यानें पांचवी कन्या वरूं नये. "मातृकुळाकडून आणि पितृकुळाकडून जो सहावा पुरुष यानें सहावी कन्या बरावी" असें दुसरें वचन आहे; याकरितां सहाव्या पुरुषानेंहि सहावी कन्या बरावी. पांचवा व सहावा यांहून जे भिन्न सांगां सहावी कन्या वरूं नये असा शेषटचा अर्थ समजावा. तसेंच पितृपक्षी सातवी कन्या, व मातृपक्षी पांचवी कन्या तिसरा इत्यादिक सर्वांनीं बरावी. कथण "पितृपक्षी सातवी, व मातृपक्षी पांचवी कन्या बरावी" असें व्यासाचें वचन आहे: "मूळपुरुषापासून सातव्या पुरुषानंतरची बरावी, तिच्या अभावीं सातवी, तिच्या अभावीं पांचवी बरावी व हा विधि मातृपक्षी असून पितृपक्षीहि आहे असें चतुर्विंशतिस्मृतींत वचन आहे; याकरितां पितृपक्षीहि पांचवी कन्या तिसरा इत्यादिकांनीं बरावी. त्यामध्येहि मातृपक्ष व पितृपक्ष यांतीलहि पांचवा पुरुष यानें पांचवी कन्या वरूं नये. कारण, "पांचवा पुरुष यानें पांचवी कन्या वरूं नये" असा सर्वत्र निषेध आहे. "मातृपक्ष व पितृपक्ष या दोन्ही पक्षी तिसरी किंवा चौथी कन्या बरावी" असें वचन आहे, यावरून तर, तिसरी कन्या बरावी असें प्रामाण्य होतें व्याविषयी व्यवस्था सांगतो. मातृपक्षी तिसरी मातृ

कन्या किंवा मातेच्या बहिणीची कन्या ह्या संभवतात. पितृपक्षां तर तिसरी कुलजाची कन्या किंवा पिताच्या बहिणीची कन्या ह्या संभवतात, यांतून कुलजाची कन्या ही एक गोक्षा असल्यामुळे वर्ज्य करावी. कारण "बापाचे बहिणीची कन्या (आतेबहीण), व मातेची बहीण, मातेच्या बहिणीची कन्या ह्या तीन कन्या बुद्धिमान् जो त्यानें वरूं नयेत असें मनुचे वचन आहे; याकरितां आतेबहीण व माऊतबहीण ह्याहि वरूं नयेत. पिताचे बहिणीची कन्या, मातेची भगिनी झणजे मातृष्वसा, मातेची स्वत्या झणजे मातेच्या बहिणीची कन्या ह्या तीन कन्या वरूं नयेत, याप्रमाणें वाक्याचा अर्थ होतो; पास्तव मातुलकन्या हीच तिसरी पूर्वी सांगितल्या रीतीनें कुलपरंपरागत आचार असेल तर बरावी याप्रमाणें तिसरी कन्या जी तीहि तिसऱ्या पुरुषानेंच मातुलकन्याच बरावी. चौथा इत्यादिक कोण्याहि पुरुषानें वरूं नये. कोणी ग्रंथकार संकट असतां आतेबहिणीशीं विवाह कराना असें झणतात, परंतु याविषयीं देशाचार व कुलाचार असेल तदनुसार व्यवस्था जाणावी. एथें सापिंड्यदीपिका इत्यादिकांनीं सिद्ध केलेल्या अर्थाचा हा संग्रह सांगितला. तिसरी कन्या वरणें ती मातुलकन्याच बरावी. चौथी कन्या वरणें ती चौथा व पांचवा पुरुष यानेंच बरावी; पांचवी कन्या वरणें ती पांचवा वर्ज्य करून तिसरा, चौथा, सहावा व सातवा यांनीं बरावी. सहावी कन्या वरणें ती पांचवा व सहावा यांनींच बरावी. सातवी कन्या वरणें ती तिसरा, चौथा, पांचवा, सहावा आणि सातवा यांनीं बरावी याप्रमाणें सापिंड्याचा संकोच मानून जो हा विवाह सांगितला तो अशक असेल त्यानें संकटें असतां करावा. दुसरी कन्या मिळत असेल तर सापिंड्यसंकोचानें शक्तिमंत यांनीं विवाह करूं नये. कारण, सापिंड्यसंकोच मानून विवाह केला असतां गुरुपत्नीगमनाचा दोष आहे, व सापिंड्यसंकोच्याविषयीं जीं वचनें आहेत तीं अशक्याविषयक होत हैं स्पष्टच आहे कारण, "मुख्य कल्याणविषयीं समर्थ असून जो अनुकल्पानें कर्म कर्तितो त्याचा कर्माचें फल प्राप्त नाहीं" असें वचन असल्यामुळे जे शक्य आहेत त्यांनीं अनुकल्पाचा स्वीकार केला असतां दोष लागतो असें सांगितलें आहे. दत्तकाविषयीं सापिंड्याचा निर्णय दत्तकाच्या निर्णयप्रसंगीं पूर्वीच सांगितला आहे.

यानंतर सापत्नमातेच्या कुळामध्ये सापिंड्यनिर्णयाचा प्रकार सुमंतु ऋषि सांगतो:—
 'पिताच्या ज्या पत्नी या सर्व माता होत.' यांचे जे आते ते मातुल होत. यांच्या ज्या बहिणी या मावशा; कन्या या बहिणी; या बहिणीचीं अर्धे तीं भागिनेय होत. "असें न मानल्यास ते संकर करणारे होतात." ह्या स्थितीं अतिदेश करून सापत्नमातेच्या कुळातील चारपुरुषपर्यंत सापिंड्य, निवाहनिषेधासाठीं सांगितलें आहे असें कोणी

अप्यकार ह्यणतात. दुसरे ग्रंथकार तर, केवळ विवहाविषयीच हे चारपुरुषपर्यंत सापि-
 ह्य ध्यावें याविषयी प्रमाण नाही, यास्तव व आशौच इत्यादिकाविषयीहें घेण्याचा संभव
 असल्यामुळे “जितक्याचा उच्चार करून सांगितलें तितकेंच प्रमाण ” असा न्याय आहे
 याकरिता “पियाच्या पत्नी त्या सर्व माता होत ” इत्यादिक जीं कंठरवानें सांगितलीं
 याविषयीच सापिह्य आहे असें सांगतात. “जितकें कंठरवानें सांगितलें तितकें प्रमाण”
 असें मानलें आहे ह्यणून सुमंतुवाक्याचीं निरनिगळीं वाक्ये तोडून अर्थ केले असतां
 पुढें सांगतो याप्रमाणें वाक्यांचे अर्थ संभवतात. “पियाच्या पत्नी त्या सर्व माता होत”
 ह्या पहिल्या वाक्यानें सापत्नमातेला मुख्यमातेप्रमाणें मानणें, सापत्नमातेचा वध केला
 असतां मातृवधाचें प्रायश्चित्त, सापत्न मातेचे ठिकाणीं गमन केलें असतां मातृगमनाचें
 प्रायश्चित्त करणें इत्यादिकांचा अतिदेश येतो; ह्यणजे वचनवले करून मानावें लागते.
 “पियाच्या पत्नी त्या सर्व माता ” ह्या वाक्यानें अतिक्रान्त आशौचाविषयीं दहा दिव-
 सांच्या आशौचाचा अतिदेश होत नाही; कारण, सापत्न मातेचें अतिक्रान्ताशौच तीन दिवस
 घरावें असें विशेष वचन असल्यामुळे बाध आहे. “सापत्नमातेचे भ्राते ते मातुल होत” ह्या
 वाक्यानें ‘मातुल’ या निमित्तानें जें आशौच इत्यादिक प्राप्त होते तें व मातुलाला आपल्या
 बहिणीची जी सवत तिच्या कन्येशीं विवाहाचा निषेध, हे सूचित होतात. एथें मातु-
 लत्वाचा जरी अतिदेश ह्यणजे आरोप प्राप्त होतो तथापि सापत्नमातुलांचे पुत्राचे ठायीं
 मातुलपुत्रत्वादिकाचा अतिदेश येत नाही; याकरितां बंधुत्रयसंबंधी आशौच नाही. साप-
 त्नमातुलकन्या इत्यादिक कन्यांशीं विवाह करणें याविषयीं विधि नाही व निषेधहि नाही.
 याप्रमाणें मातुलकन्या इत्यादिकांचे ठायीं ‘पियाची मामेवहीण’ असा अतिदेश नसल्या
 मुळे त्या पुत्राप्रताहि मामेभाते इत्यादिकांचा अतिदेश होत नाही. “सापत्न मातेच्या
 बहिणी त्या मावशा होत” ह्या वाक्यानें ‘मावशा’ या संबंधेकरून आशौच व विवा-
 हाचा निषेध हे प्राप्त होतात, सापत्न मातेच्या बहिणीचे पुत्राविषयीं बंधुत्रयत्व नाही.
 सापत्न मातेच्या बहिणीच्या कन्येशीं विवाह करूं नये ह्यणून जो निषेध सांगितला तो
 तर विरुद्धसंबंध होतो, यास्तवच, तो विरुद्ध संबंध कसा तें पुढें सांगेन. “सापत्नमा-
 तेच्या कन्या त्या बहिणी होत ” ह्या वाक्यानें सापत्नबहिणीचें आशौच धरणें व त्याचा
 सन्मान करणें हीं प्राप्त होतात. सापत्नभागिनीचें ठिकाणीं विवाहाचा प्रसंग नाही. कारण
 समान गोत्र आहे. ह्या स्थलीं आपले मातुल व आपले सोदर भ्राते यांचा उच्चार केल्या
 नंतर सापत्न मातुल, सापत्न भ्राता, सापत्न मावशी, सापत्न बहीण यांचें तर्पण करणें,
 व महालय इत्यादिक श्राद्धांत उच्चार करणें तें ह्याच वचनेंकरून आवश्यक करण्याविषयी

सांगितले असे वाटते: “ सापत्नबाहिणीच्या ज्या कन्या या भाच्या होत ” ह्या वाक्याने सापत्न भागिनीकन्येचे आशीच व तिच्याशी विवाहाचा निषेध हीं प्राप्त होतात. भागिनेयीत्वाचा जरी अतिदेश आहे तथापि सापत्नभागिनेयीच्या ज्या कन्या यांचे ठायीं भागिनेयीकन्यात्वाचा अतिदेश होत नाही. कारण ‘जितके सांगितले तितकेच प्रमाण’ असा न्याय आहे. याप्रमाणे दिव्यदर्शन केले.

कचित् स्थली सापिंड्य नसतां विंशोत्र वचन आहे याकरितां विवाह होत नाही असे सांगितले आहे. “विरुद्ध संबंध जीचा नसल त्या कन्येशीं विवाह करावा.” ज्यांचा परस्पर विवाह करणे आहे असे जे वधू व वर त्यांचे ठिकाणीं वरास वधूचे पिशाचे साम्य नसणे व वधूस वराचे मातेचे साम्य नसणे यांचे नांव अविरुद्धसंबंध; आणि तसें साम्य असल्यास तो विरुद्धसंबंध होय. तो असा—“आपल्या स्त्रियेच्या बाहिणीची कन्या, व चुलत्याचे स्त्रियेची बाहिण ” असे परिशिष्टांत सांगितले आहे. या स्थलीं आपल्या स्त्रियेच्या बाहिणीची जी कन्या तिचा आपण मावसा होतो, ह्मणून पितृसाम्य आले. चुलत्याचे स्त्रियेची जी बाहिण ती आपल्यास आईप्रमाणे असल्यामुळे मातृसाम्य आले. याप्रमाणे विरुद्धसंबंध जाणावा. बौधायन दुसऱ्या प्रकारें विरुद्धसंबंध सांगतो. “ सापत्न मातेची बाहिण व त्या बाहिणीची कन्या, ह्या वर्ज्य कराव्या; व चुलत्याचे स्त्रियेची बाहिण व त्या बाहिणीची कन्या ह्या वर्ज्य कराव्या.” कोणी ग्रंथकार, “ज्येष्ठभ्राता हा पितृतुल्य आहे” असे वचन असल्यामुळे ज्येष्ठभ्रात्याच्या स्त्रियेची बाहिण ही आपणास मावशी प्रमाणे आहे याकरितां ती वरुं नये असे ह्मणतात. तसेंच जी कन्या वरावयाची ती यवपिपी ह्मणजे आपणा पेक्षां वयानें व शरीरानें कमी असेल ती व असमानार्पणगोत्रजा ह्मणजे आपणाशीं भिन्न आहेत गोत्रप्रवर ज्याचे अशा कुळांत झालेली, ह्मणजे असमानगोत्रा असून असमान वरा असी वराची, हा तात्पर्यार्थ होय.

आतां संक्षेपें करून गोत्रें आणि प्रवर यांचा निर्णय.

सामर्थ्ये गोत्राचें लक्षण सांगतो —“ विश्वामित्र, जमदग्नि, भरद्वाज, गीतम, अग्नि, ऋषिष्ठ, कश्यप हे सात ऋषि आणि आठवा अगस्त्य यांचे जें अपत्य ह्मणजे वंश झाला गोत्र असे ह्मणतात. जरीहि केवळ भार्गव जे आष्टिषणादिक, व केवळ आंगिरस जे शरीरादिक यांचे ठायीं हे पूर्वी सांगितलेले गोत्राचें लक्षण येत नाहीं; कारण भृगुऋषि आणि अंगिराऋषि हे दोन, पूर्वी सांगितलेल्या आठ ऋषींच्या वंशांत नाहींत तथापि एकप्रवर असल्यामुळे विवाह होत नाहीं. सहस्र, प्रयुत, अर्बुद अशीं गोत्राची संख्या आहे असे

वचन आहे, यास्तव जरीहि गोत्रे अनंत आहेत तथापि एकूणपन्नास इतकेच गोत्रांचे भेद आहेत. कारण, निरनिराळे प्रवरांचे भेद एकूणपन्नासच मिळतात.

प्रवरांचे लक्षण—गोत्रांचे वंशांचे प्रवर्तक जे ऋषि त्यांचे भेद दाखविणारे जे तद्द्वितीय विशेष ऋषि तेच प्रवर असे संक्षेपेकरून जाणवें. एकगोत्रत्व, व एकप्रवरत्व हे निरनिराळे विवाहाला प्रतिबंधक आहे, लक्षणजे एकगोत्र व एकप्रवर आले असतां विवाह करूं नये. यामध्ये प्रवरांचे साम्य लक्षणजे सारखेपणा तो दोन प्रकारचा. कोठें एक ऋषीचें साम्य येतें व कोठें दोहोंचें किंवा तिघांचें साम्य येतें. यामध्ये भृगुगण व अंगिरोगण ह्यांचाचून इतर गणांत एक प्रवरांचें साम्य आहे तथापि तेहि विवाहप्रतिबंधक लक्षणजे विवाहाचें निषेधक होतें. केवळ भृगुगण व केवळ अंगिरोगण यांमध्ये एकप्रवर साचें साम्य जरी आहे तथापि ते विवाहाला बाधक होत नाही; तर तीन प्रवरांमध्ये दोन प्रवरांचें साम्य, आणि पांच प्रवरांमध्ये तीन प्रवरांचें साम्य हींच विवाहाला बाधक होतात. कारण, “भृगुगण व अंगिरोगण यांत पांच प्रवरांमध्ये तीन प्रवर सारखे येतील तर, आणि तीन प्रवरांमध्ये दोन प्रवर सारखे येतील तर विवाह करूं नये, आणि अवशिष्ट गणांत एक जरी सारखा प्रवर येईल तथापि विवाह करूं नये” इत्यादिक वचन आहे. जामदग्न्य भृगुगण, गौतमांगिरस, आणि भारद्वाजांगिरस यांमध्ये एका प्रवरांचें जरी साम्य आहे आणि क्वचित् स्थळां प्रवर सारखे नसले तथापि एकगोत्र आहे याकारितांच यांचा परस्पर विवाह होत नाही.

गोत्रे आणि प्रवर यांचा सर्वांला सुल्लेखून बोध व्हावा, व भगवंताची प्रीति व्हावी यांसाठीं त्या गोत्रप्रवरांची आतां संख्या संक्षेपानें सांगतो. ७ भृगुगण, १७ आंगिरसगण, ४ अत्रिगण, १० विश्वामित्रगण, ३ कश्यपगण, ४ वसिष्ठगण, ४ अगस्त्यगण; हे सर्व मिळून एकूणपन्नास गण होतात, तथापि सर्व ग्रंथांच्या मतांचा संग्रह करून पाहिले असतां पाहून अधिक गण सांपडतात ते त्या त्या ठिकाणीं सांगूं—यामध्ये प्रथम भृगुगण सांगतो. वसु, विद, हे जामदग्न्यभृगु होत. आश्र्विण, यस्क, मित्तयु, वैश्व, आणि शुनक हे पांच केवळभृगु होत. याप्रमाणे पूर्वी सांगितलेले जामदग्न्य भृगु (२) व हे [५] मिळून सात भृगुगण जाणावे. यामध्ये १ वसु, मार्कण्डेय, मांडूकेय इत्यादिक दोनशांभेसां अधिक वसुगोत्रांचे भेद आहेत. ह्या वसुगोत्रांच्या भेदाचे प्रवर पांच. ते असे—भार्गव, च्यावन, आम्रवान, और्य आणि जामदग्न्य, याप्रमाणे पांच जाणावे. अथवा भार्गव, और्य, जामदग्न्य असे तीन प्रवर होत. किंवा भार्गव, च्यावन, आम्रवान असे तीन प्रवर होत. श्विद, शैल, अश्वट, इत्यादिक विसांपेक्षा अधिक विद होत. यांचे प्रवर—भार्गव, च्यावन

आप्तवान, अर्ध, आणि वैद्य याप्रमाणे पांच. अथवा भार्गव, अर्ध, जामदग्न्य असे तीन प्रवर होत—३ आर्ष्टिषेण, नैऋति, ग्राम्यायण इत्यादिक विसापेक्षां अधिक आर्ष्टिषेण जाणावे. यांचे प्रवर—भार्गव, च्यावन, आप्तवान, आर्ष्टिषेण, आणि अनूप याप्रमाणे पांच जाणावे, अथवा भार्गव, आर्ष्टिषेण, अनूप असे तीन प्रवर होत. वत्स, विद आणि आर्ष्टिषेण हे जे तीन यांचा परस्पर विवाह होत नाही. कारण, यांचे दोन तीन प्रवर सारखे आहेत, व पहिले जे दोन वत्स, व विद हे जामदग्न्य असल्यामुळे यांचे एकगोत्रत्व आहे. तीन आहेत प्रवर ज्यांचे असे जे आर्ष्टिषेण यांचे जरी वत्स व विद यांच्याशी दोन प्रवर सारखे होत नाहीत, व सगोत्रत्वहि नाही, कारण ते जामदग्न्य नाहीत, तथापि पांच प्रवरांतलेहि तीन प्रवर सारखे आहेत म्हणून ते तीन प्रवर विवाहाला बाधक होतात. याप्रमाणे पुढेहि असेच जाणावे. ४ वात्स्य जे यांचे प्रवर—भार्गव, च्यावन, आप्तवान याप्रमाणे तीन प्रवर जाणावे. ५ वत्सपुगेधस्. यांचे प्रवर—भार्गव, च्यावन, आप्तवान, वत्स, आणि परोधस याप्रमाणे पांच जाणावे. ६,७ वैज, व मथित यांचे प्रवर—भार्गव, च्यावन, आप्तवान, वैज, आणि मथित याप्रमाणे पांच प्रवर जाणावे. क्वचिन् ग्रंथांत हे तीन प्रवर सांगितले आहेत. ह्यांचा परस्पर विवाह होत नाही, व पूर्वी सांगितले जे वत्स, विद, आर्ष्टिषेण गण यांच्याशीहि ह्या वात्स इत्यादिकांचा विवाह होत नाही. कारण, तीन प्रवर सारखे येतात. ८ यस्क, मीन, मूक इत्यादिक त्रैपक्षापेक्षां अधिक यस्क आहेत. यांचे प्रवर—भार्गव, वैतहव्य सवैतस याप्रमाणे तीन प्रवर जाणावे. ९ मित्रयु, रौश्र्यायन, सापिंडिन इत्यादिक तिसापेक्षां अधिक मित्रयु आहेत. यांचे प्रवर—भार्गव, वाध्यश्व, दिवोदास याप्रमाणे तीन प्रवर जाणावे. अथवा—भार्गव, च्यावन, दिवोदास याप्रमाणे तीन. किंवा वाध्यश्व हा एकच प्रवर जाणावा. १० वैन्य, पार्थ, वाष्कल, आणि श्येत याप्रमाणे हे वैन्य होत. यांचे प्रवर—भार्गव, वैन्य पार्थ याप्रमाणे तीन प्रवर जाणावे. ११ शुनक, गार्त्समद, यज्ञपति इत्यादिक सतरापेक्षां अधिक शुनक होत. यांचे प्रवर—शौनक हा एक प्रवर. किंवा गार्त्समद हा एक प्रवर जाणावा. अथवा भार्गव, गार्त्समद याप्रमाणे दोन प्रवर जाणावे. किंवा भार्गव, शौनकोत्र, गार्त्समद असे तीन प्रवर जाणावे. यस्क इत्यादिक जे चार यांचा विवाह, आपापला गण वर्ज्य करून परस्पर होतो, आणि पूर्वी सांगितलेले जे जामदग्न्य वत्सादिक यांच्याशीहि ह्या यस्क इत्यादिक चोर्होचा विवाह होतो. कारण, एक प्रवर जरी सारखा आहे तथापि दोन तीन प्रवर सारखे नाहीत, व भृगुगणांमध्ये जरी एक प्रवर सारखा आहे तथापि तो विवाहाला बाधक नाही, आणि ते जामदग्न्य नसल्यामुळे

एकगोत्री नाहीत. मित्रयुजे त्यांचे एका पक्षाने दोन प्रवर सारखे येतात, याकरितां त्रिप्रवरी जे वस्तादिक त्यांच्याशीं मित्रयुजा विवाह होत नाही असें कोणी ग्रंथकार ह्मणतात. वस्तादिकांच्या प्रवरांचा पक्ष ग्रहण करणारे जे मित्रयुजा त्यांचा विवाह होत नाही, दुसऱ्या प्रवरांचा पक्ष ग्रहण करणारे जे मित्रयुजा त्यांचा मात्र विवाह होतो असें दुतरे ग्रंथांकार ह्मणतात. क्वचित् ग्रंथांत दोन गण अधिक सांगितले आहेत. ते असे—१ वेद आणि २ विश्वज्योतिष. यांचे प्रवर—मार्गव, वेद, विश्वज्योतिष याप्रमाणें तीन प्रवर जाणावे. १ शाठर, माठर, यांचे प्रवर—मार्गव, शाठर, माठर याप्रमाणें तीन प्रवर जाणावे. या दोहोंचा परस्पर विवाह होतो, व पूर्वी सांगितलेल्या सर्वांशींही यांचा विवाह होतो. याप्रमाणें भृगुगण सांगितला.

आनां आंगिरसगण—ते आंगिरस तीन प्रकारचे आहेत, ते असे—गौतम, भरद्वाज व केवल आंगिरस. त्यांमध्ये गौतमांगिरस दहा प्रकारचे, ते असे— १ आयास्य, २ शारद्वत, ३ कौमंड, ४ दीर्घतमस, ५ करेणुपालि, ६ वामदेव, ७ औशनस, ८ राहूगण, ९ सोमराजक, १० बृहदुक्थ याप्रमाणें दहा प्रकारचे जाणावे. त्यांमध्ये १ आयास्य, श्रोत्रिवेध, मूढरथ, इत्यादिक अठरांपेक्षां अधिक आयास्य जाणावे. यांचे प्रवर—आंगिरस, आयास्य, गौतम याप्रमाणे तीन प्रवर जाणावे. शारद्वत, अभिजित, रौहिण्य इत्यादिक सत्तरांपेक्षां अधिक शारद्वत होत. यांचे प्रवर—आंगिरस, गौतम, शारद्वत असे तीन प्रवर जाणावे. ३ कौमंड, ममंथरेषण, मासुराक्ष इत्यादिक दहापेक्षां अधिक कौमंड. यांचे प्रवर—आंगिरस, औतथ्य, काक्षीवत, गौतम, कौमंड याप्रमाणें पांच प्रवर जाणावे. अथवा आंगिरस, औतथ्य, गौतम, औशिज, काक्षीवत असे पांच प्रवर. किंवा आंगिरस, आयास्य, औशिज, गौतम, काक्षीवत याप्रमाणें पांच प्रवर जाणावे. अथवा आंगिरस, औशिज, काक्षीवत असे तीन प्रवर जाणावे. किंवा आंगिरस, औतथ्य, काक्षीवत असे तीन होत. अथवा औतथ्य, गौतम, कौमंड, असे तीन प्रवर होतात. ४ यानंतर दीर्घतमस गौतम. यांचे प्रवर—आंगिरस, औतथ्य, काक्षीवत, गौतम, दीर्घतमस याप्रमाणें तीन प्रवर जाणावे. अथवा आंगिरस, औतथ्य, दीर्घतमस याप्रमाणें तीन प्रवर जाणावे. ५ करेणुपालि, वास्तव्य, श्वेतीय इत्यादिक सातपेक्षां अधिक करेणुपालि जाणावे. यांचे प्रवर—आंगिरस, गौतम, करेणुपालि याप्रमाणें तीन प्रवर जाणावे. ६ वामदेव. यांचे प्रवर—आंगिरस, वामदेव्य, गौतम याप्रमाणें तीन प्रवर जाणावे. अथवा आंगिरस, वामदेव्य, बार्हदुक्थ याप्रमाणें तीन प्रवर होत. ७ औशनस, दिश्य, प्रशस्त इत्यादिक नवपेक्षां अधिक औशनस होत. यांचे प्रवर—आंगिरस, गौतम, औशनस असे तीन प्रवर जाणावे

८ राहूगण. यांचे प्रवर—आंगिरस, राहूगण, गीतम असे तीन प्रवर जाणावे. ९ सोम-राजक. यांचे प्रवर—आंगिरस, सोमराज, गीतम असे तीन प्रवर होत. १० बृहदुक्थ. यांचे प्रवर—आंगिरस, बार्हदुक्थ, गीतम याप्रमाणे तीन प्रवर होतात. याप्रमाणे दहा जे गीतमांगिरस त्यांचे प्रवर सांगितले. क्वचित् ग्रंथां दोन गण अधिक सांगितले आहेत. ते असे— १ उत्थय, २ राघुव. उत्थयांचे प्रवर. — आंगिरस, औत्थय, गीतम याप्रमाणे तीन प्रवर जाणावे. राघुवांचे प्रवर— आंगिरस, राघुव, गीतम याप्रमाणे तीन प्रवर जाणावे. पूर्वी सांगितले जे दहा गीतमांगिरस यांचा परस्पर विवाह होत नाही. कारण त्या सर्वांचे एकगोत्र आहे, व बहुधा दोन तीन प्रवर सारखे आहेत. याप्रमाणे आंगिरसगणांतले पहिले दहा गीतमांगिरस सांगितले.

आतां भरद्वाज ते चार प्रकारचे.—१ भारद्वाज, २ गर्ग, ३ ऋक्ष, ४ कापि याप्रमाणे चार आहेत. १ भरद्वाज, क्षाम्यायण, देवाश्व इत्यादिक एकशें साटांपेक्षां अधिक भरद्वाज होत. यांचे प्रवर—आंगिरस, बार्हस्पत्य, भारद्वाज याप्रमाणे तीन प्रवर जाणावे. २ गर्ग, सांभरायण, सखीनि, इत्यादिक पन्नासांपेक्षां अधिक गर्ग जाणावे. यांचे प्रवर—आंगिरस, बार्हस्पत्य, भारद्वाज, शैन्य, गार्ग्य याप्रमाणे पांच प्रवर. अथवा आंगिरस, शैन्य, गार्ग्य, असे तीन प्रवर. अथवा अस्यांचा व्यत्यय करावा. अथवा भारद्वाज, गार्ग्य, शैन्य, असे तीन प्रवर. गर्गांच्या भेदांचे प्रवर—आंगिरस, तैत्तिरि, कापिभुव याप्रमाणे तीन प्रवर. ३ ऋक्ष, रीक्षायण, कपिल इत्यादिक नवांपेक्षां अधिक ऋक्ष जाणावे. त्यांचे प्रवर आंगिरस, बार्हस्पत्य, भारद्वाज वांदन, मातवचस, याप्रमाणे पांच प्रवर होतात. अथवा आंगिरस, वांदन, मातवचस याप्रमाणे तीन प्रवर जाणावे. ४ कापि, स्वस्तितरि, दंडि, इत्यादिक पंचविंसांपेक्षां अधिक कापि जाणावे. यांचे प्रवर—आंगिरस, आमहृष्य, औरुक्षय्य याप्रमाणे तीन प्रवर जाणावे. “आंगिरस, आमहृष्य, औरुक्षय्य” असा आश्वलायन सूत्रांत पाठ आहे. आत्मभू. यांचे प्रवर— आंगिरस, भारद्वाज, बार्हस्पत्य, वर, अत्मभुव याप्रमाणे पांच प्रवर होतात. हा गण क्वचित् ग्रंथांत सांगितला आहे. सर्व भरद्वाजांचा परस्पर विवाह होत नाही. कारण, सर्व भरद्वाजांचे गोत्र एक आहे, व बहुधा दोन तीन प्रवर सर्वांचे सारखे आहेत. ऋक्षांचे अंतर्गत जे कपिल त्याचा विश्वामित्रांशीहि विवाह होत नाही. याप्रमाणे भरद्वाज आंगिरस सांगितले.

आतां यानंतर केवळ आंगिरस सांगतो—ते केवळ आंगिरस सहा. १ हारीत, २ कुक्ष, ३ कण्व, ४ रथीतर, ५ विष्णुवृद्ध, ६ मुद्गल याप्रमाणे सहा आहेत. १ हारीत, सौभग, नय्यगव इत्यादिक वत्तिसांपेक्षां अधिक हारीत आहेत. यांचे प्रवर— आंगिरस, आंबरीष

शैवनाश्व या प्रमाणे तीन प्रवर, अथवा ह्या तीन प्रवरांमध्ये पाहिला मांधाता प्रवर जाणावा. २ कुत्स. यांचे प्रवर—आंगिरस, मांधात्र, कौत्स याप्रमाणे तीन प्रवर आहेत. ३ कण्व, औषमर्कट, वाष्कलायन, इत्यादिक एकविसापेक्षां अधिक कण्व आहेत. यांचे प्रवर—आंगिरस, आजमीढ, काण्व याप्रमाणे तीन प्रवर होतात. अथवा आंगिरस, धौग, काण्व, याप्रमाणे तीन प्रवर होतात. रथीतर, हस्तीद, नैतिराक्षि इत्यादिक चवदापेक्षां अधिक रथीतर आहेत. यांचे प्रवर—आंगिरस, वैरूप, रथीतर असे तीन प्रवर होतात. अथवा आंगिरस, वैरूप, पार्षदश्व असे तीन प्रवर होतात. किंवा अष्टादंष्ट्र, वैरूप, पार्षदश्व असे तीन प्रवर होतात. अथवा अंश्यांचा व्यवय करावा. ५ विष्णुवृद्ध, शठ भरण इत्यादिक पंचविसापेक्षां अधिक विष्णुवृद्ध आहेत. यांचे प्रवर—आंगिरस, पौरुकुत्स्य, त्रासदस्यु, याप्रमाणे तीन प्रवर आहेत. ६ मुद्गल, साखमुग्नि, हिरण्यस्तंबि इत्यादि अठरापेक्षां अधिक मुद्गल आहेत. यांचे प्रवर—आंगिरस, भार्ग्याश्व, मौद्गल्य, याप्रमाणे तीन प्रवर होतात. अथवा ताक्षर्ष, भार्ग्याश्व, मौद्गल्य असे तीन प्रवर होतात. किंवा आंगिरस, तावि, मौद्गल्य याप्रमाणे तीन प्रवर होतात. हे जे सहा केवळ आंगिरस यांचा विवाह, आपापला गण खेरीज करून परस्पर होतो, व पूर्वी सांगितले जे सर्व त्यांच्याशीही यांचा विवाह होतो; कारण अगस्ति आहे आठवा ज्याला असे जे सप्तषि सांडून आंगिरस हा निराळा असल्या कारणाने त्याच्या पुत्रांचे एक गोत्र नाही, व दोन तीन प्रवरही सारखे नाहीत. हारीत आणि कुत्स यांचा तर विवाह परस्पर होत नाही; कारण, पक्षां दोन प्रवर सारखे येतात.

आतां अत्रिगण.—ते अत्रि चार, अत्रि, गविष्टिर, वाडुतक, मुद्गल याप्रमाणे चार अत्रि आहेत. १ अत्रि, भूरि, छादि इत्यादिक चवव्याणवापेक्षां अधिक अत्रि आहेत, यांचे प्रवर—आत्रेय, आर्चनानस, श्यावाश्व याप्रमाणे तीन आहेत. २ गविष्टिर, दक्षि, भलंदन इत्यादिक चौविसापेक्षां अधिक गाविष्टिर आहेत. यांचे प्रवर—आत्रेय, आर्चनानस, गाविष्टिर असे तीन आहेत. अथवा आत्रेय, गाविष्टिर, पौर्वातिय याप्रमाणे तीन आहेत. ३ वाडुतक. यांचे प्रवर—आत्रेय, आर्चनानस, वाडुतक याप्रमाणे तीन प्रवर आहेत. ४ मुद्गल, शालिसंधी, अर्णव इत्यादिक दहापेक्षा न्यून मुद्गल आहेत. यांचे प्रवर—आत्रेय, आर्चनानस, पौर्वातिय याप्रमाणे तीन आहेत. क्वचित् प्रथामध्ये अतिथि, वामरथ्य, सुमंगल, बीजवाप, धनंजय असे पांच गण अधिक सांगितले आहेत. त्यामध्ये पहिले जे चार त्यांचे प्रवर आत्रेय, आर्चनानस, आतिय याप्रमाणे तीन प्रवर. अथवा आत्रेय, आर्चनानस, गाविष्टिर असे तीन आहेत. सुमंगल जे त्यांचे प्रवर—अत्रि, सुमंगल,

इयावाश्व. असे तीन आहेत धनंजय जे यांचे प्रवर — आत्रेय, आर्चनानस, धानंजय या प्रमाणे तीन आहेत. वाल्य, कौत्रेय, शौत्रेय, वामरथ्य इत्यादिक अत्रीच्या कन्येचे पुत्र आहेत, यांचे प्रवर—आत्रेय, वामरथ्य, पौत्रिक याप्रमाणे तीन आहेत. आणि जे सर्व यांचा परस्पर विवाह होत नाही. कारण सर्व अत्रींचे गोत्र एक आहे, व प्रहरहि सर्वांचे सारखे आहेत अत्रीच्या कन्येचे पुत्र जे वामरथ्यादिक यांचा वसिष्ठ, विश्वामित्र यांच्याशी एक विवाह होत नाही. याप्रमाणे अत्रिगण सांगितला.

आतां विश्वामित्र गण सांगतो—ते विश्वामित्र दहा—कुशिक, लोहित, रौक्षक, कामाकपन, अज, कत, धनंजय, अघमर्षण, पूरण, आणि इंद्रकौशिक याप्रमाणे दहा विश्वामित्र आहेत. १ कुशिक, पर्णजघ, वारक्य इत्यादिक सत्तरापेक्षां अधिक कुशिक आहेत. यांचे प्रवर — विश्वामित्र, देवरात, औदल असे तीन आहेत. २ लोहित, कुडक्य, चाक्रवर्णायन इत्यादिक पांचापेक्षां अधिक लोहित आहेत. 'लोहित' या स्थानी 'रोहिता, असे कोणी लक्षणतात. यांचे प्रवर — वैश्वामित्र, आष्टक, लोहित असे तीन प्रवर आहेत अथवा अंयांचा व्यवस्य करावा. किंवा वैश्वामित्र, माधुच्छंदस, आष्टक असे तीन आहेत. अथवा विश्वामित्र, आष्टक असे दोन आहेत. ३ रौक्षक. यांचे प्रवर — विश्वामित्र, गाथिन रेवण असे तीन आहेत. अथवा विश्वामित्र, रौक्षक, रेवण याप्रमाणे तीन आहेत. किंवा हे रेवण जाणावे. ४ कामकायन, देवश्रवस, देवतरस, इत्यादिक पांचांपर्यंत कामकायन किंवा श्रीमत आहेत. यांचे प्रवर — वैश्वामित्र, देवश्रवस, देवतरस, असे तीन आहेत. ५ अज. यांचे प्रवर — वैश्वामित्र, माधुच्छंदस, आज याप्रमाणे तीन आहेत. ६ कत, औदुंबरि, शीशिरि, इत्यादिक विसापेक्षां अधिक कत आहेत. यांचे प्रवर — वैश्वामित्र. काश, आक्षालि, असे तीन आहेत. ७ धनंजय, पार्थिव, बंधुल इत्यादिक सातांपर्यंत धनंजय आहेत. यांचे प्रवर—वैश्वामित्र, माधुच्छंदस, धानंजय याप्रमाणे तीन आहेत अथवा वैश्वामित्र, माधुच्छंदस, अघमर्षण याप्रमाणे तीन आहेत. ८ अघमर्षण. यांचे प्रवर — वैश्वामित्र, अघमर्षण, कौशिक याप्रमाणे तीन प्रवर जाणावे. ९ पूरण. यांचे प्रवर — वैश्वामित्र, पूरण याप्रमाणे दोन प्रवर आहेत. अथवा वैश्वामित्र, देवरात, वीरण याप्रमाणे तीन प्रवर आहेत. १० इंद्रकौशिक. यांचे प्रवर — वैश्वामित्र; इंद्रकौशिक, याप्रमाणे दोन प्रवर आहेत. काचित् ग्रंथामध्ये दुसरोहि अकरा गण सांगितले आहेत: ते असे — १ आश्मरथ्य, २ साहुल, ३ गाथिन ४ वैणय, ५ हिरण्यरेतस, ६ सुवर्ण-रेतस, ७ कपोतरेतस, ८ शालंकायन, ९ घृतकौशिक, १० कथक, ११ रौद्रिण याप्रमाणे अकरा गण जाणावे. १ आश्मरथ्य. यांचे प्रवर—वैश्वामित्र, आश्मरथ्य, धुल

याप्रमाणें तीन प्रवर आहेत: २ साहुल यांचे प्रवर—वैश्वामित्र, साहुल, माहुल याप्रमाणें तीन आहेत. ३ गाथिन. यांचे प्रवर—वैश्वामित्र, गाथिन, रैणव याप्रमाणें तीन आहेत. 'रैणव' ह्या स्थानी 'वेणुव' असा क्वचित् ग्रंथी पाठ आहे. ह्यांसच 'रैणव' 'उदवेणव' असेहि लक्षणतात. ४ वैणव. यांचे प्रवर—वैश्वामित्र, गाथिन, वैणव याप्रमाणें तीन आहेत. ५ हिरण्यरेतस. यांचे प्रवर—वैश्वामित्र, हिरण्यरेतस, याप्रमाणें दोन आहेत. ६ सुवर्णरेतस. यांचे प्रवर—वैश्वामित्र, सुवर्णरेतस याप्रमाणें दोन आहेत. ७ कपोतरेतस. यांचे प्रवर—वैश्वामित्र, कपोतरेतस याप्रमाणें दोन आहेत. ८ शालंकायन. यांचे प्रवर—वैश्वामित्र, शालंकायन, कौशिक याप्रमाणें तीन आहेत. यांचाच 'कौशिक' 'जन्हव' असेहि लक्षणतात. ९ घृतकौशिक. यांचे प्रवर—वैश्वामित्र, घृतकौशिक असे दोन आहेत. १० कथक. यांचे प्रवर—वैश्वामित्र, काथक याप्रमाणें दोन आहेत. ११ रौहिण. यांचे प्रवर—वैश्वामित्र, माधुच्छंदस, रौहिण, याप्रमाणें तीन आहेत. वैश्वामित्र जे सर्व गण यांचा परस्पर विवाह होत नाही; कारण हे सर्व विश्वामित्रगण एकगोत्री व प्रवर्गांनी सारखे आहेत. कुशिकांचे व देवरातांचे प्रवर सारखे आहेत, याकरितां कुशिक हे देवरातांहून निराळें किंवा स्यांतलेच आहेत याचा निर्णय होत नसल्यामुळे, पुढें रांगावयाचे असे जे देवरात यांचा जसा विवाह जामदग्न्यांशी होत नाही, त्याप्रमाणें कुशिकांचाहि विवाह जामदग्न्यांशी होत नाही असे वाटते. धनंजय जे त्यांचा विश्वामित्र व अत्रि यांच्याशी विवाह होत नाही. कत जे त्यांचा विवाह भरद्वाज व विश्वामित्र यांच्याशी होत नाही; कारण कत जे त्यांला गोत्रे दोन आहेत. याप्रमाणें विश्वामित्रगण सांगितला.

आतां कश्यपगणसांगतो—ते कश्यप तीन आहेत. १ निधुव, २ रेभ, ३ शांडिल याप्रमाणें तीन. त्यांमध्ये १ निधुव, कश्यप, अष्टांगिरस इत्यादिक चालिसांपेक्षा अधिक शंभरांपर्यंत निधुव आहेत. यांचे प्रवर—काश्यप, अवत्सार, नैधुव याप्रमाणें तीन आहेत. निर्णयसिद्धीमध्ये तर निधुवगणानंतर कश्यपगण सांगून कश्यपाचे काश्यप, अत्वसार, असित असे तीन प्रवर सांगितले आहेत व याविषयी शिष्टाचारहि आढळतो. २ रेभ. यांचे प्रवर—काश्यप, अवत्सार, रैभ याप्रमाणें तीन आहेत, ३ शांडिल, कोहल, उदमेध इत्यादिक साठ्यांपर्यंत शांडिल आहेत. यांचे प्रवर—काश्यप, अवत्सार, शांडिल्य याप्रमाणें तीन आहेत. 'शांडिल्य' या स्थानी 'देवल' किंवा 'असित' असा प्रवर आहे. अथवा काश्यप, असित, देवल याप्रमाणें तीन आहेत. अथवा अंशांचा व्यवसय करावा. अथवा देवल, असित असे दोन आहेत. हे जे कश्यप यांचा परस्पर विवाह होत नाही. कारण, हे कश्यप एकगोत्री व एकसारखे प्रवरी आहेत.

यानंतर वसिष्ठगण — ते वसिष्ठ चार, १ वसिष्ठ, २ कुंडिन, ३ उपमन्यु, ४ पराशर याप्रमाणे चार आहेत, १ वसिष्ठ, वैतालकवि, रकि इत्यादिक साठापेक्षा अधिक वसिष्ठ आहेत. यांचे प्रवर—वासिष्ठ, इंद्रप्रमद, आभरद्वसु याप्रमाणे तीन आहेत. अथवा वासिष्ठ असा एक प्रवर आहे. २ कुंडिन, लोहितायन, गुग्गुलि इत्यादिक पंचविसांपर्यंत कुंडिन आहेत. यांचे प्रवर—वासिष्ठ, त्रैणारुण, कौंडिण्य याप्रमाणे तीन आहेत. ३ उपमन्यु, औदलि मांडलेखि इत्यादिक सत्तरांपर्यंत उपमन्यु आहेत. यांचे प्रवर—वासिष्ठ, इंद्रप्रमद, आभरद्वसु असे तीन आहेत. 'आभरद्वसु' या स्थानी 'आभरद्वसव्य' असा दुसरा पाठ आहे. अथवा वासिष्ठ, आभरद्वसु, इंद्रप्रमद असे तीन प्रवर आहेत. अथवा आद्यांचा व्यव्य करावा. ४ पराशर, कांडुशय, वाजि, इत्यादिक सत्तेचाळीसपर्यंत पराशर आहेत. यांचे प्रवर—वासिष्ठ, शक्त्य, पराशर्य असे तीन प्रवर आहेत. हे जे चार वसिष्ठ सांगितले त्यांचा परस्पर विवाह होत नाही. याप्रमाणे वसिष्ठ गण सांगितला.

आतां अगस्त्यगण सांगतो—ते आगस्त्य दहा—१ इधमवाह, २ सांभवाह, ३ सोमवाह ४ यज्ञवाह, ५ दर्भवाह, ६ सारवाह, ७ अगस्ति, ८ पूर्णमास, ९ हिमोदक, १० पाणिक याप्रमाणे दहा आगस्त्यगण आहेत. १ इधमवाहा, विशालाद्य, स्फालायन, इत्यादिक पन्नासापेक्षा अधिक इधमवाह आहेत. यांचे प्रवर—आगस्त्य, दार्ढ्यच्युत, इधमवाह याप्रमाणे तीन आहेत. अथवा आगस्त्य हा एक प्रवर आहे. २ सांभवाह. यांचे प्रवर—आगस्त्य, दार्ढ्यच्युत, सांभवाह याप्रमाणे तीन आहेत. ३ सोमवाह. यांचे प्रवर—आगस्त्य, दार्ढ्यच्युत, सोमवाह असे तीन आहेत. ४ यज्ञवाह. यांचे प्रवर आगस्त्य, दार्ढ्यच्युत, यज्ञवाह याप्रमाणे तीन होत. ५ दर्भवाह. यांचे प्रवर आगस्त्य, दार्ढ्यच्युत, दर्भवाह याप्रमाणे तीन होत. ६ सारवाह. यांचे प्रवर—आगस्त्य, दार्ढ्यच्युत, सारवाह असे तीन होत. ७ अगस्ति यांचे प्रवर आगस्त्य, महिद्र, मायोभव असे तीन प्रवर. ८ पूर्णमास यांचे प्रवर—आगस्त्य, धौर्णमास, पारण असे तीन. ९ हिमोदक. यांचे प्रवर—आगस्त्य, पैमावर्च, हिमोदक याप्रमाणे तीन जाणावे. १० पाणिक. यांचे प्रवर—आगस्त्य, पैनायक, पाणिक असे तीन जाणावे. याप्रमाणे दहा जे अगस्तिगण सांगितले या सर्वांचा परस्पर विवाह होत नाही, कारण, हे सर्व अगस्ति यांचे गोत्र व प्रवरहि सर्वांचे एकसारखे आहेत. याप्रमाणे अगस्तिगण सांगितला.

आतां दोन गोत्रांचे सांगतो — भारद्वाज जो शंग त्यापासून वैश्वामित्र जो शैशिरिच्या स्त्रीयेचे ठायीं झालेला शैंगशैशिरिनामक ऋषी तो गोत्राच्या लक्षणाने युक्त असल्या. येथे त्याला गोत्रत्व आहे. त्याच्या गोत्राचे प्रवर—आंगिरस, बार्हस्पत्य, भारद्वाज, शैंग

शैशिर, असे पांच आहेत. अथवा आंगिरस, बार्हस्पत्य, भारद्वाज, काश्य, आक्षील असे पांच प्रवर. किंवा आंगिरस, काश्य, आक्षील असे तीन आहेत. अथवा भरद्वाज, काश्य, आक्षील असे तीन प्रवर आहेत. ह्यांचा विवाह सर्व भरद्वाज, व सर्व विश्वामित्र यांशी होत नाही. संकृति, पूतिभाष, तंडि इत्यादिक अष्टावीसपर्यंत संकृति आहेत. यांचे प्रवर — आंगिरस, गौरिवीति, सांकृत्य असे तीन आहेत. अथवा शक्त्य, गौरिवीति, सांकृत्य असे तीन आहेत. अथवा अंथांचा व्यत्यय करावा. यांचा विवाह आपल्या गणांतील जे पूतिभाषादिक ते, सर्व वसिष्ठगण, आणि अहर्वसिष्ठसंज्ञक असे पुढें सांगाव याचे आहेत जे लौगाक्षि ते या सर्वांशी होत नाही. केवळ जे अंगिरोगण यांच्याशी तर यांचा विवाह होतोच; कारण, -ते जरी आंगिरस आहेत तथापि एकगोत्री नसून यांचे दोन तीन प्रवरहि एकसारखे नाहीत. कोणी ग्रंथकार, भारद्वाजांत आंगिरसत्व स्वीकारून भारद्वाज जे शौंगशैशिरि यां सहवर्तमान यांचा विवाह होत नाही असें ह्मणतात, परंतु तें योग्य नाही. कारण यांला भारद्वाजत्व आहे याविषयी प्रबल प्रमाण नाही. प्रयोगपारिजात ग्रंथांत काश्यपांसहवर्तमान यांचा विवाह होत नाही असें सांगितले आहे, परंतु याविषयीचे कारण योग्य नाही असें कौस्तुभांत आहे. लौगाक्षि, दर्भायण, इत्यादिक अठतितापेक्षा अधिक लौगाक्षि आहेत. यांचे प्रवर—काश्यप, अवत्सार, वासिष्ठ असे तीन आहेत अथवा काश्यप, अवत्सार, असित असे तीन आहेत. त्यांना अहर्वसिष्ठ व नक्तकाश्यप असे ह्मणतात, ह्मणजे दिवसाचे कर्माचे ठायीं वासिष्ठत्व प्रयुक्त जें कार्य तें करणारे आणि रात्रिकर्माचे ठिकाणीं काश्यपत्वप्रयुक्त कार्य करणारे असा अर्थ होतो. ह्यांचा विवाह सर्व काश्यप, सर्व वसिष्ठ व संकृति यांच्याशी होत नाही.

आतां स्मृत्यर्थसार इत्यादिक ग्रंथांत सांगितलेले द्विगोत्र—१ देवरात, यांचे प्रवर—विश्वामित्र, देवरात, औदल, असे तीन आहेत. ह्या देवरातांचा विवाह सर्व नामदग्ध्य, व विश्वामित्र यांशी होत नाही. २ धनंजय. यांचे प्रवर—विश्वामित्र, माधुच्छंदस, धानंजय असे तीन आहेत. ह्या धनंजयांचा विवाह सर्व विश्वामित्र, व अत्रि यांशी होत नाही. ह्या गण विश्वामित्रगणामध्ये पूर्वी सांगितला. ३ जातूकर्ण्य. यांचे प्रवर—वासिष्ठ, आत्रेय जातूकर्ण्य याप्रमाणें तीन प्रवर आहेत. ह्या जातूकर्ण्यांचा विवाह वसिष्ठ व अत्रि यांशी होत नाही. ह्या गण वसिष्ठगणामध्ये निर्णयसिद्धत सांगितला आहे. ४ पूर्वी अत्रिच्या गणांत सांगितलेले असे अत्रिच्या कन्येचे पुत्र जे वामरथ्यादिक यांचा विवाह वसिष्ठ व अत्रि यांच्याशी होत नाही. अत्रि व विश्वामित्र यांच्याशी होत नाही असें कोणी ग्रंथकार ह्मणतात. ५ पूर्वी भरद्वाजगणांतला जो ऋक्ष ह्मणून अंतर्गतगण सांगितला त्यामध्ये

सांगितलेले आंगिरस, बार्हस्पत्य, भारद्वाज, वादन, मातवचस ह्या पंच प्रवरांनी युक्त कपिल यांचा विवाह विश्वामित्र व भरद्वाज यांच्याशी होत नाही. हे पूर्वी विश्वामित्र गणा मध्ये सांगितलेले; वैश्वामित्र, काश्य, आक्षील या तीन प्रवरांनी युक्त असे जे कत यांचा विवाह विश्वामित्र व भरद्वाज यांच्याशी होत नाही. याच न्यायेंकरून परगोत्रांत उत्पन्न झालेले असे विद्यमानकालीचे दत्तकादिक त्यांलाहि दोन गोत्रे आहेत याकरितां जनकपिता व दत्तक घेणारा पिता यांचे जे एकगोत्री त्यांच्याशी त्या दत्तकादिकांचा विवाह होत नाही असें जाणावे. याविषयीं अमुक पुरुषपर्यंत विवाह होणार नाही अशी ज्यपेक्षा पुरुषसंख्या कोठें सांगितली नाही, यावरून शंभर पुरुषांनंतराहि दत्तकाचे द्विगोत्रत्व दूर होत नाही. सत्रिय व वैश्य हे पुरोहितगोत्रप्रवरी आहेत, असा सर्व सिद्धांत जाणावा.

आपलें गोत्र माहीत नसेल तर निर्णय—आपलें गोत्र माहीत नसेल तर मींजीमध्ये जो आचार्य असेल त्याचें गोत्र व प्रवर ग्रहण करून त्यांवरूनच सर्व कर्मे करावीं, व विवाह होतो, न होतो हे सर्व आचार्यांचेच गोत्रप्रवरांवरून पाहावे. आचार्यांचें गोत्र माहीत नसेल तर, “कोणाएकाला आपलें आपण दान करून दान घेणाराचा गोत्रप्रवरी व्हावे.”

विवाहाविषयीं मातृगोत्र वर्ज्य करावें ह्मणून जें सांगितलें त्यावरून मातामहगोत्रच वर्ज्य करावें. मातामहगोत्र वर्ज्य करणें तें गांधर्व इत्यादिक विवाह करून ज्या वरलेल्या स्त्रिया त्यांच्या सर्व पुत्रांस तें वर्ज्य आहे. ब्राह्मविवाह करून वरलेल्या ज्या स्त्रिया त्यांच्या सर्व पुत्रांस मातामहगोत्र वर्ज्य नाही; तर माध्यांदिनीयशास्त्री जे त्यांचाच मातामहगोत्र वर्ज्य आहे. कारण, “मानृगोत्र वर्ज्य करणें तें माध्यांदिनीयशास्त्री जे त्यांनीं वर्ज्य करावें” असें सत्यषाढाचें वचन आहे, व तसाच सर्व शिष्टांचा आचरहि आहे.

सगोत्री इत्यादिकांशीं विवाह झाला असां प्रायश्चित्त.—सगोत्री व समानप्रवर अशा कुळांतल्या कन्येशीं न जाणून विवाह झाला असतां ती कन्या टाकून चांद्रायण प्रायश्चित्त करावें. जाणून विवाह होईल तर पूर्वपेक्षां द्विगुणित प्रायश्चित्त करावें. याप्रमाणें कन्येनें याच्या अर्थें प्रायश्चित्त करावें. याप्रमाणें सपिंडांतिल कन्येशीं विवाह झाला असतांहि हाच निर्णय जाणावा. ब्राह्मणी स्त्रियेचा त्याग करणें तो संभोग व धर्मकार्य यांविषयीं मात्र करावा; पालनविषयीं त्याग करूं नये. कारण, “मातेप्रमाणें त्या स्त्रियेचें पालन करावें” असें वचन असल्यामुळें तिला अन्नवस्त्र इत्यादिक देऊन तिचें रक्षण केलें पाहिजे. जो पुरुष सगोत्र अशा कुळांतिल कन्येशीं अज्ञानें करून विवाह करून तिशीं गमन करितो त्यानें सगोत्रकन्येशीं विवाह झाला याकरितां तत्पुत्रक चांद्रायण प्रायश्चित्त करून सगोत्रकन्येशीं गमन केलें यास्तव दोन चांद्रायणांपेक्षां अधिक प्रायश्चित्त करावें. जाणून सगोत्र

कन्येची विवाह होऊन गमन झाल्यास पूर्वी पेशा अधिक प्रायश्चित्त करावें असें कोणा ग्रंथकार झगतात. दुसरे ग्रंथकार तर, “गुरुपत्नीशीं गमन करणारा याला जें प्रायश्चित्त आनें तो शुद्ध होतो” असें वचन आहे यास्तव गुरुपत्नीसारखी सगोत्रा कन्या असें वचन असल्यामुळे षडब्द प्रायश्चित्त करावें; अज्ञानेकरून होईल तर ष्यब्द किंवा तीन चांडायणे प्रायश्चित्त करावें असें झणतात. न जाणून सगोत्र इत्यादि कन्यांशीं विवाह होऊन त्यांचे ठिकाणी जे पुत्र उत्पन्न झाले असतील त्यांचा सर्व व्यवहार, पित्याने प्रायश्चित्त केल्यानंतर काश्यपगोत्रेकरून करावा, परंतु त्यांचा आग करूं नये. जाणून सगोत्रा इत्यादिकांचे ठायीं जे उत्पन्न झाले चांडालत्वच प्राप्त होतें; कारण “आरूढपातै- ताचें अपत्य, शूद्रापातून ब्राह्मणी स्त्रीचेठायीं झालेला पुत्र, सगोत्र कन्येचीं विवाह करून तिचेठायीं झालेला पुत्र हे तीन चांडाल कथन केले” अशी यमस्मृति आहे.

विवाहविषयीं दुसरे निषेध— “आपली कन्या ज्याचे पुत्रास दिली त्याची कन्या आपल्या पुत्रास करणें याला प्रत्युद्वाह असें झणतात, तर तसा विवाह निश्चयें करूं नये. एक बराला दोन सोदर बहिणी देऊं नयेत. सोदर भायांला सोदर बहिणी देऊं नयेत” याविषयीं अपवाद—सोदर भायांला सोदर बहिणी देणें असतील तर, विवाहामध्ये एक वर्ष इत्यादिक काळ मध्ये टाकून नंतर द्याव्या, झणजे एका कन्येचा विवाह झाल्यानंतर दुसरी कन्या त्या बराच्या सोदरभायाला देणें असेल तर एका वर्षानंतर द्यावी. अथवा महानदीचें अंतर असता द्यावी. पूर्वी दिलेली कन्या मृत झाली असतां त्याच बराला दुसरी कन्या द्यावी. प्रत्युद्वाह करणें तो दारिद्र्य इत्यादिक संकट असेल तर करावा. सोदर पुत्र किंवा कन्या यांचे तुल्य संस्कार एका वर्षामध्ये करूं नयेत. गृह वाघणें, विवाह करणें हीं दोन एका वर्षामध्ये करूं नयेत. गृहप्रवेश करण्याविषयीं निषेध नाही या करितां गृहप्रवेश केल्यानंतर विवाह करावा. दोन सोदर पुत्र, अथवा एक सोदर कन्या व पुत्र, किंवा दोन सोदर कन्या यांचा विवाह सहा मासांच्या आंत विशेषेकरून निषिद्ध आहे, झणजे एका सोदर पुत्राचा किंवा कन्येचा विवाह केल्यानंतर सहा महिन्यांचे आंत दुसऱ्या सोदर पुत्राचा किंवा कन्येचा विवाह करूं नये. त्रिपुरुष कुलामध्ये विवाह झाल्यापासून सहा महिनेपर्यंत मौजी करूं नये. सहा महिन्यांमध्ये तीन शुभ कार्ये करूं नयेत. ह्या स्थलीं ‘शुभ कार्ये’ ह्या वाक्यानें मौजी, व विवाह यांचाच निषेध केला यावरून गर्भाधान, नामकरण इत्यादिक संस्कार तीन करण्याचा निषेध नाही. अथवा गर्भाधान इत्यादिके करून चार कार्यांची पूर्ति करूं नये. “तीन आंग्रिकार्ये होत नाहीत,” असें जें वचन तर्णेकरून एकवाक्यतालाघव होतें; यास्तव तसें नाही असें

वाटते. भिन्नोदर जे व्यक्तीं तीन अधिकार्ये शाली असता दोष नाही असे कोणी ग्रंथकार झणतात. कोणी ग्रंथकार, 'तीन मंगलकार्ये करूं नयेत,' ह्या वाक्याचा निराळा अर्थ स्वीकारून कोणतीही तीन शुभ कार्ये करूं नयेत असें झणतात. १ पुत्राचा विवाह केल्यानंतर कन्येचा विवाह साहा मासामध्ये करूं नये. २ ज्येष्ठमंगल केल्यानंतर लघु मंगल करूं नये. बाहेर मंडपामध्ये जे करण्यास सांगितले ते ज्येष्ठमंगल. आहून जे निराळें ते लघु मंगल होय. प्राप्त आहे काल ज्यांचा असे जे गर्भाधानादिक संस्कार त्यांचा निषेध नाही. निमित्ताने प्राप्त आहे काल ज्यांचा असा जीं शांति इत्यादिक नौमि-त्तिक कर्मे सांचाहि निषेध नाही. ३ ज्यांचा काळ टळून गेला असेल त्याला मात्र हा निषेध जाणावा. ४ याप्रमाणे व्रतांची उद्यापने इत्यादिक, वृगृहप्रवेश इत्यादिक हीं कार्ये लघु असल्या कारणानेच विवाह इत्यादिक केल्यानंतर यांचा निषेध, झणजे हीं करूं नयेत. हे जे चार निषेध सांगितले ते त्रिपुरुष कुळामध्ये सहा महिन्यांच्या आंतच जाणावे. या प्रमाणे दोन मुंडन कर्मे यांचा निषेध व मीनी ज्ञान्यानंतर चौलसंस्काराचा निषेध हे दोन निषेध कोणी ग्रंथकार सांगतात.

ह्या निषेधाचे भपवाद—सोदर भाते जरी असतील तथापि सांचेहि तुम्य संस्कार व विवाह, संकट असता वर्षभेदाने करावे. अथवा चार दिवसांच्या अंतराने किंवा एक दिवसाच्या अंतराने करावे. अति संकट असेल तर एक दिवसी कर्माच्या भेदाने किंवा मंडपाच्या भेदाने करावे. दोन कर्ते असतील तर एका लमावर, एका घरी भिन्नोदरांचा विवाह करावा. याप्रमाणे पूर्वी सांगितले जे चार निषेध साविषयींही वर्षभेद असेल तर दोष नाही. जुळ्याचे, एकसमयी किंवा एका मंडपांत समान संस्कार (मुंज, मुंज किंवा विवाह, विवाह) केले असता दोष नाही. याप्रमाणे माता निराळ्या असतील तर सहा मासामध्ये समान संस्कार केला असता दोष नाही. रिता एक असून दोघी कन्यांच्या माता निराळ्या असतील तर या कन्यांचा विवाह एक दिवसी, एका मंडपांत, बेदी मात्र निराळी करून केला असता तो दोषाकारण होत नाही असे कोणी झणतात. त्रिपुरुष कुळामध्ये मंगलकार्ये केल्यानंतर साहा महिन्यांमध्ये मुंडनयुक्त कर्मे करूं नये. याविषयी सर्व ठिकाणी त्रिपुरुषांची संप्रदाय मोलण्याचा प्रकार कसा तो सर्व प्रतिकूलाच्या विचार प्रसंगी स्पष्ट होईल. मुंडनकर्मे कोणते ते सांगतो,—चौल, सर्प संस्कार (नागबलि) इत्यादिक, आधानादिक, उत्कर्ष होण्यासाठी इच्छाप्राप्त असे सर्व प्रायश्चित्त इत्यादिक, सीराला कारण तीर्थयात्रा इत्यादिक हीं सर्व मुंडनकर्मे होत. कात्यायनाच्या मती व्रतबंध तर मंगलरूप आहे, याकरितां विवाह इत्यादिक केल्यानंतर व्रतबंध करावी. इतर जे सर्व व्यक्ती

मती व्रतबंध मुंडनरूप आहे याकरिता तो करूं नये. माता, पिता यांची अंगक्रिया इत्यादिकाने प्राप्त झालेले मुंडन, अकस्मात् प्राप्त झालेले असे प्रायश्चित्तसंबंधी मुंडन, मरणसमय समीप आल्यामुळे कर्तव्य जे सर्व प्रायश्चित्त तत्संबंधी मुंडन, हीं निश्चये करावीं. दशी, पूर्णमास, आणि चातुर्मास्ये इत्यादिसंबंधी मुंडन केले असता दोष नाही; कारण ते दशपूर्ण मासादिसंबंधी मुंडन निम्न आहे. “चौलसंस्कार हे मुंडन होय, मौंजी व विवाह हे मंगल होय.” असे जे वचन तेणेंकरून मुंडन, आणि मुंडन, हीं निराळीं दाखविलीं याकरितां आधान, इत्यादिक केलीं असतां दोष नाही असें झणून नये; कारण वचन जें सांगितले तें केवळ उहाहरण दाखविण्याकरितां आहे; असें न मानावें तर ‘मौंजी, विवाह झाल्यानंतर चौल करूं नये’ असें सांगावयाचें होतें, तसें न सांगतां ‘मुंडनानंतर मुंडन करूं नये’ असें जें सामान्येंकरून वचन सांगितले त्याला वैयर्थ्यापत्ति (व्यर्थ सांगितले असत दोष) येईल. याकरितां गर्भाधानादेक लघुमंगल व विवाहादिक ज्येष्ठ मंगल हीं मंगल कार्ये शालीं असतां आधानादिक मुंडनहिं वर्ज्य करावें असें वाटतें. असें झाले असतां बहुत कर्म करण्याचीं रंद राहतात असें असेल तर विवाह, मौंजी, चौल यांच्या नंतर मंगलकार्ये शालीं असतां जसा पिंडदान इत्यादिका विषयीं एक महिना इत्यादिक अल्पकालाचा प्रतिबंध, व पिता, माता यांहून दुसरा कोणी मृत झाल्या असतां अल्प कालपर्यंत प्रतिकूल होते झणून जसा निर्णय सांगितला त्याप्रमाणें लघुमंगल झाल्यानंतर एकमास इत्यादिक अल्पकालपर्यंत मुंडनाच्या निषेधाची कल्पना करावी असें युक्तिबलाने ग्रहण करावें याप्रमाणें मला वाटतें. याविषयीं प्राचीन ग्रंथांमध्ये विशेष निर्णय कोठें आढळत नाही, तथापि मी केवळ हा विशेष, धारिष्टानें सांगितला आहे, योग्य वाटल्यास ग्रहण करावा. याप्रमाणें मुंडनमुंडनांचा निर्णय सांगितला.

प्रतिकूलाचा निर्णय.—विवाहाचा निश्चय झाल्यानंतर वराच्या किंवा कन्येच्या सगोत्र त्रिपुरुषरूप कुळांमध्ये कोणी मृत झाले असतां प्रतिकूलदोष होतो. विवाहाचा निश्चय घेणें तो वैदिक किंवा लौकिक या दोहोंतून एक ग्रहण करावा. त्यामध्ये वाग्दाननामक विधीकरून जो निश्चय झाला तो वैदिक निश्चय. व तो मुख्य होय. लग्न, तिथि यांचा निश्चय इत्यादिक; वर आणि कन्या यांला जें अलंकारादिक देणें त्याचा परस्पर भाषाबंध; सुपारी देणें इत्यादिक जो तो लौकिक निश्चय होय. ‘सगोत्र त्रिपुरुष’ असें जें झटले यावरून मातामहकुलादिकाची व्यावृत्ति झाली. आतां त्रिपुरुषी कोणत्या तें सांगतां.— वर, सची, पूर्वीची स्त्री, वराची माता व पिता, वराचा पितामह व पितामही, विवाह न झालेली असी पिढ्याची बहीण ही पूर्वं त्रिपुरुषी होय. वर, त्याचा भ्राता, भ्रातृपत्नी, भ्रातृ

पुत्र, विवाह न झालेली भात्याची कन्या, विवाह न झालेली वराची बहीण. वराची सून व पुत्र, विवाह न झालेली वराची कन्या, नातू, नातवाची स्त्री, विवाह न झालेली नात, या प्रमाणे ही परिपुरुषी होय; वराचा चुलता, चुलती, चुलत्याचा पुत्र, चुलत्याच्या पुत्राची स्त्री, विवाह न झालेली चुलत्याची कन्या व संतानभेद असेल तर ती त्रिपुरुषी, याप्रमाणे सगोत्र त्रिपुरुषीचे पुरुषांची संख्या जाणावी. हे जे पूर्वी सांगितलेले यांतून कोणताहि मृत झाला असतां प्रतिकूलदोष होतो असा शेवटचा अर्थ जाणावा. या प्रतिकूलाविषयीं भ्राता, पुत्र, नातू इत्यादिक यांची मंजी झाली नसेल तथापि तीन वर्षांहून अधिक वयाचा असेल तो ध्यावा. याप्रमाणे विवाह न झालेली कन्या तीहि तीन वर्षांहून अधिक वयाची घ्यावी असे योग्य वाटते. याप्रमाणे कन्येच्या कुळामध्येहि हाच निर्णय जाणावा. याप्रमाणेच मंडन, मुंडन, इत्यादिकांविषयीहि तीन पुरुषांची संख्या योग्यावी.

ह्या प्रतिकूलाविषयींचा विशेष सांगतो—पिता, माता, पितामह, पितामही, चुलता, पूर्वीची स्त्री, पूर्वीच्या स्त्रियेचा पुत्र, भ्राता, विवाह न झालेली बहीण यांतून कोणी मृत झाला असतां विशेषेंकरून प्रतिकूल होते याकरितां विवाह करूं नये. हे जे पिता इत्यादिक सांगितले यांहून दुसरा कोणी त्रिपुरुष संपिंडांतील मृत होईल तर शांति इत्यादिकानें दोष दूर करून विवाह करावा. संकट असेल तर पिता इत्यादिक मृत होईल तथापि कालप्रतीक्षा, शांति यांहींकरून दोष दूर करून विवाह करावा. याविषयीं व्यवस्था सांगतो—विवाहाचा निश्चय झाल्यानंतर माता व पिता या दोगांलाहि मरण प्राप्त झाले असतां कालाची प्रतीक्षा व शांति केली असतांहे दोष निरसन होत नाहीं याकरितां विवाह करूं नये. माता व पिता यांतून एकेक मृत झाले असेल तर शांति इत्यादिक करून विवाह करावा.—त्यामध्ये, “विवाहाविषयीं एक वर्षपर्यंत पित्याचे आशीच, मातेचे सहा महिने आशीच, स्त्रियेचे तीन महिने आशीच, भ्राता व पुत्र यांचे दहा महिना आशीच, इतर संपिंडांचे एक मास आशीच, त्या आशीचाची निवृत्ति झाल्यानंतर शांति करून नंतर विवाह करावा. प्रतिकूलदोष असेल तर सहा महिनेपर्यंत विवाह करूं नये. संपिंड मृत होऊन प्रतिकूल असेल तर एक मास वर्ज्य करावा,” इत्यादिक वचनांच्या आश्रयाने याची व्यवस्था सांगतो,—ह्या वाक्यांत ‘आशीच’ असा जो शब्द आहे तेणें करून प्रतिकूलानें झालेला विवाहाचा अनधिकार मात्र कालप्रतीक्षा करण्याकरितां सांगितला, याकरितां पिता मृत झाला असतां एक वर्षानंतर विनायकशांति करून संकट असतां विवाह करावा. अति संकट असेल तर सहा महिन्यांनंतर विनायक शांति, व श्रीपूजनादिक शांति हीं करून विवाह करावा. आहून अति संकट असेल तर एक

मासानंतर दोन शांति (विनायकशांति व श्रीपूजनादिक शांति) करून विवाह करावा, याप्रमाणे संकटाच्या तारतम्येकरून तीन पक्ष सांगितले. माता मृत झाली असेल तर सहा महिन्यांनंतर विनायक शांति करून विवाह करावा. अति संकट असेल तर एक मासानंतर दोन शांति करून विवाह करावा. “ज्याचा पिता व माता मृत झाली असतील त्याचा देह एक वर्षपर्यंत अशुचि होय, याकरितां वर्ष पुरे होई तावत्पर्यंत दैवकर्म व पित्र्यकर्म यांविषयी अधिकार नाही,” याप्रमाणे पिता, माता मृत झाली असतां एक वर्षपर्यंत संपूर्ण शुभकर्मांचा निषेध करणारे जें वचन तें निश्चय होण्याच्या पूर्वी पिता माता मृत झाली असतां विवाह करील किंवा संकट नसतां विवाह करील तर याविषयी जाणावें. स्त्री मृत झाली असतां तीन मासानंतर किंवा एक मासानंतर श्रीपूजनादिक शांति करावी. आता मृत झाला असतां दोड महिन्यांनंतर किंवा एक मासानंतर विनायकशांति करावी. पितामही व विवाह न झालेली बहीण आंतून कोणी मृत असतां एक मासानंतर श्रीपूजनादिक शांति करावी. यांहुन दुसरे कोणी विपुरुषसपिंडांतील मृत झाले असतां एकमासा नंतर श्रीपूजनादिक शांति करावी, व तदनंतर विवाह करावा. अति गुणवती असी माता मृत असेल व सहा महिन्यांनीं मनांतिल शोक दूर न होईल तर एक वर्षपर्यंत प्रतीक्षा करावी. याप्रमाणे अति गुणवती स्त्री मृत झाली असतां सहा महिनेपर्यंत प्रतीक्षा करावी. ज्योतिःप्रकाश ग्रंथांत तर, माता इत्यादिक मृत झाली असून अति संकट असेल व एकमासापेक्षां अधिक प्रतीक्षा करण्याचा असंभव असेल तर महिन्यामध्येहि दहा दिवस गेल्यानंतर कांहीं दिवसपर्यंत प्रतीक्षा करून पूर्वी सांगितल्या व्यवस्थेनें विनायकशांति व श्रीपूजनादिक शांति करून गोप्रदान करून पुनः वाग्दान इत्यादिक करावें असे सांगितले आहे. सर्व जो हा अपवाद सांगितला तो बहु संकट असतां तारतम्येकरून पंडितांनीं योजावा. अल्प संकटाविषयी महासंकटाविषयक विधि सांगितला असतां सांगणारा व कर्ता या दोघांलाहि दोष आहे. दुष्काळ, राष्ट्राचा नाश इत्यादिक भय, आईबापांचे मरणाची आशंका यांविषयी प्रतिकूलदोष नाही. कन्या मोठी वाढली असतां फार दिवसांचा रोगी, दूरदेशी राहणारा, विरक्त यांच्या संबंधी प्रतिकूलदोष नाही, याप्रमाणे प्रतिकूलाचा अपवाद जाणावा.

“श्रीपूजनादि शांतीचा विधि—“अ्रियेजात०” ह्या मंत्रानें श्रीची पूजा “इदांविष्णु०” ह्या मंत्रानें विष्णुची पूजा “गौरीभिमाय०” ह्या मंत्रानें गौरीची पूजा “अंबक०” ह्या मंत्रानें रुद्राची पूजा “परंमृशो०” ह्या मंत्रानें यमाची पूजा याप्रमाणे पूजा करून १०८, तिलांचा व घृताचा होम करावा. “भूःस्वाहा मृत्युर्नश्यतां स्तुषायै सुखंवर्धतां स्वाहा ” या मंत्रानें होम करावा. तदनंतर होमाची समाप्ति करून दोन गोप्रदाने दक्षिणा ध्यावी

याप्रमाणे कौरुमप्रंथांत शांति पाहावी. याप्रमाणे प्रतिकूलाचा निर्णय झाला.

‘प्रेतकर्म समाप्त केल्याखेरीज आचतुर्थ झणजे चार पुरुष सापिंडपर्यंत अभ्युदय क्रिया झणजे मांगलिक कर्म करूं नये. तदनंतर पाचव्या पुरुषापासून शुभदायक होतें.’ ह्या वाक्यामध्ये ‘प्रेतकर्म’ ह्या पदेकरून सापिंडी करण्याच्या पूर्वी हीणारीं कर्म, सापिंडीकरण, आणि सापिंडी केल्यानंतर पार्वणविधीने सांगितलेली मासिके इतक्यांचे ग्रहण केलें; कारण, ‘सापिंडी करण्यापूर्वी अपकर्ष करून केलेलीं नीं कर्म तीं हि पुनरपि अपकर्ष करून करावीं; कारण, वृद्धिआद्द केल्यानंतर तीं प्रेतकर्म करण्याचा निषेध आहे’ असे अनुमासिकांचा अपकर्ष करण्याविषयी वचन आहे. ‘अभ्युदय, ह्या पदेकरून नांदीआद्दयुक्त जें कर्म तेंच ग्रहण करावें. किती एक ग्रंथकारांनीं विवाहादिकच घ्यावें असे सांगितलें आहे. ‘आचतुर्थ’ ह्या पदेकरून नांदीआद्द करणाऱ्या पुरुषापासून आरंभ करून पित्यापासून मागचे चार पुरुष, पुढें होणारे चार पुरुष, आणि संतानभेद असतां ते चार पुरुष इतक्या सगोत्र पुरुषांचें ग्रहण होतें. ते पुरुष असे—नांदीआद्द कर्त्याचे पिता, पितामह; प्रतितामह, सपत्नीक; नांदीआद्द कर्त्याचे स्त्री, पुत्र, पुत्राचा-पुत्र व त्यांच्या स्त्रिया; तसेच आता, आनृपुत्र, आतृपौत्र व त्यांच्या स्त्रिया; चुलता, सांचा पुत्र, त्याचा पौत्र, त्यांच्या स्त्रिया; प्रपितामहाचे पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र, व त्यांच्या स्त्रिया हे मृत झाले असतां यांचें अनुमासिक पर्यंत प्रेतकर्म केलें नसेल तर मंगलकार्य करूं नये. एथें मुख्य नांदीआद्दकर्ताच ग्रहण करावा, मातुल इत्यादिक गौणकर्ता घेऊं नये. मृत झाला आहे पिता ज्याचा त्याच्या भौजो इत्यादिक संस्कारांचे ठिकाणीं संस्कार्य जो त्या पासूनच आरंभ करून चार पुरुषांची संख्या ग्रहण करावी. माता मह, मातृपितामह, आणि मातृप्रपितामह हे निराळ्या गोत्रातील जरी आहेत तथापि ते नांदीआद्दाच्या देवता आहेत या करितां यांचें प्रेतकर्म झालें नसेल तर मंगलकार्य होत नाहीं. मातामही, मातृपितामही, व मातृप्रपितामही ह्या, स्वतंत्रपणानें नांदीआद्दाच्या देवता नाहींत या करितां यांचें दशाहांत कर्म झालें नसेल तथापि मंगल करण्यास प्रतिबंध नाहीं. याप्रमाणें और्ध्वदोहिक कर्म न केलें एताभित्तक मंगलकार्य विषयी प्रतिबंधाचा निर्णय झाला.

भौजो, विवाह या मंगलकार्यांमध्ये नांदीआद्दाला आरंभ करून मंडपोशासन होई ताव-पर्यंत मध्ये दर्शदिवस न होईल असे करावें. दर्शावांचून इतर, मातापितरांचा क्षयदि-वस इत्यादिक आद्ददिवस जर जाणून किंवा न जाणून मध्ये येईल तर तीन पुरुषपर्यंत सापिंडांनीं, विवाहादिक मंगलकार्याची समाप्ति झाल्यानंतर आद्द करावें. यावरून असें

होतें कीं, दर्शाखेरीज इतर श्राद्धाचाच स्वरूपेकरून विवाहामध्ये निषेध सांगितला, दर्शाचा नसा निषेध सांगितला तसा श्राद्धविरहित अशा श्राद्धतिथिमात्राचा निषेध सांगितला नाहीं; कारण “विवाह शाल्यानंतर पुढें श्राद्ध करावें” इत्यादिक वचन आहे. येणेकरून संक्रांति, मन्वादि, अष्टकादिक हे श्राद्धदिवस असल्यामुळे दर्शासारखे विवाहामध्ये पडतील तर ते निषिद्ध होत असे जी शंका ती दूर केली, व यावरून घणवति श्राद्धे करणारे सपिंड असतील व त्या घणवति श्राद्धसंबंधी मन्वादि दिवस विवाहामध्ये पडेल तर त्या श्राद्धाचें प्रायश्चित्तादिक करून त्याची सिद्धि करावी, प्रत्यक्ष श्राद्ध करूं नये. याप्रमाणें विवाहसंबंधी चार दिवसांमध्ये दर्शादिक दिवस प्राप्त झाले असतां त्यांचा निर्णय सांगितला.

प्रारंभाच्या पूर्वी किंवा नंतर वराच्या किंवा कन्येच्या मातेला अथवा चुलता इत्यादिक अन्य नांदीश्राद्धकर्ता असून त्याच्या स्त्रियेला रजोदर्शन होईल तर जो निर्णय सांगावयाचा तो मौंजीप्रकर्णा विस्तारपूर्वक सांगितला आहे तो तेंच पाहावा.

रजोदर्शन, जननाशीच प्राप्त होण्याचा संभव असल्यास नांदीश्राद्ध अपकर्षाने केले असतां किती दिवसपर्यंत राहतें तें —“यज्ञसंबंधी नांदीश्राद्ध एकवीस दिवसपर्यंत, विवाह संबंधी दहा दिवसपर्यंत, चौलसंबंधी तीन दिवस, मौंजीसंबंधी सहा दिवस, याप्रमाणें नांदीश्राद्ध करावें.” दहा दिवस इत्यादिक जी मर्यादा सांगितली तिचें उल्लंघन झाले असतां पुनः नांदीश्राद्ध करावें, असे अर्थसिद्ध आहे. नांदीश्राद्ध शाल्यानंतर जननाशीच व मृताशीच हीं प्राप्त होतील तर विवाहादिक करण्याला प्रतिबंध नाहीं; कारण “विवाह, व्रत, यज्ञ, श्राद्ध, होम, पूजा, जप, यांचा पूर्वी आरंभ झाला असून नंतर आशीच प्राप्त होईल तर त्या विषयीं आशीच नाहीं, आरंभ झाला नसेल तर आशीच आहे.” प्रारंभाचें लक्षण “यज्ञा विषयीं ऋत्विज वरणें तो प्रारंभ, व्रत व सत्र यांचा संकल्प झाला झणजे तो प्रारंभ, विवाह इत्यादिक कार्यांत नांदीश्राद्ध झालें झणजे तो प्रारंभ, श्राद्धविषयीं पाकाचें प्रोक्षण झालें झणजे तो प्रारंभ” असें नचन आहे, या प्रमाणें प्रारंभाचें लक्षण जाणावें. हा निर्णय, जवळ दुसरा मुहूर्त मिळत नाहीं इत्यादिक संकट असेल तरच ग्रहण करावा. संकट नसेल तर नांदीश्राद्ध झालें असेल तथापि आशीच गेल्यानंतर दुसऱ्या मुहूर्तावरच मंगल करावें; कारण, “सर्व जो आशीचा अपवाद सांगितला तो अनन्यगतिक व आपत्ति असतां जाणावा” असें निर्णयसिधूमध्ये सांगितलें आहे. यावरून व्रता विषयीं संकल्प झाल्यानंतर आशीच प्राप्त झालें तथापि ब्राह्मणांकडूनच पूजा इत्यादिक करावें. यज्ञादिकाचे ठायीं मधुपर्क

विधि करून ऋत्विजांचे वरण शाल्यानंतरहि दुसरे ऋत्विजांचा अलाभ इत्यादिक अशा अनन्यगतिक संकट समयांचे मधुपर्क विधीने वरलेला त्याला आशीच नाही. या प्रमाणे जप, होम इत्यादिकां विषयीहि असत्तच निर्णय जाणावा. श्राद्धाचे ठिकाणी पाकाचे प्रोक्षण, हाहि निर्णय आपत्ति असतां जाणावा. महा संकट असेल तर प्रारंभ होण्याच्या पूर्वीहि आशीच प्राप्त झाले असतां कूपमांड मंत्रांनी घृताचा होम करून दुग्ध देणारी अशा गाईचे दान करून पंचगव्य प्राशन करून शुद्ध होस्ताता चौलकर्म, यौजी, विवाह, प्रतिष्ठा इत्यादिक करावे. नवळ दुसरा मुहूर्त नसल्यामुळे सिद्ध केलेल्या सर्व पदार्थांचा नाश होणार इत्यादिक आपत्तिकालीं सुद्धां या प्रमाणेच शुद्धि जाणावी. हा निर्णय जननाशीचा विषयी मात्र जाणावा असे मारुटादि ग्रंथांत सांगितले आहे.

कूपमांड मंत्रांनी होम इत्यादिक करून पूर्वी शुद्धि केल्या नंतर जननाशीच व मृताशीच यांमध्ये आरंभलेले जे विवाहादिक मंगलकार्य यामध्ये पूर्वी संकल्प करून ठेवलेले अन्न ब्राह्मणांनी भक्षण केले असतां दोष नाही. पात्रांवर पदार्थ वाढावयाचे तेहि आशीची यांनी वाढावे; कारण होमादिक विधिकरून शुद्धि केली आहे असे कौस्तुभांत आहे; तथापि हे योग्य नाही; कारण लोकांमध्ये ते निंदारपद होतें याकारितां परगोत्रातील असतील स्पूर्णांचे पात्रांवर पदार्थ वाढावे हे योग्य असे वाटते. नादी-श्राद्ध केल्यानंतर जननाशीच व मृताशीच हीं प्राप्त झालीं असतां नादीश्राद्धाच्या पूर्वी जरी अन्नाचा संकल्प केला नसेल तथापि विवाह शाल्यानंतर पुढच्या कालीं संकल्प केलेले अन्न ब्राह्मणांनी भक्षण करावे. याविषयीहि “परान्नी अन्न वाढावे व ते ब्राह्मणांनी भक्षण करावे” असे सर्वसंमत आहे; कारण, पर ज्ञानजे परगोत्री असा निर्णय सिंधु, मयूख इत्यादिक ग्रंथांत परशब्दाचा अर्थ केला आहे. पूर्वी संकल्प करून ठेवलेल्या अन्नाच्या भोजनसमयां सुतकप्राप्त असतां भोजन कारणारानीं भुक्तशेष टाकून दुसऱ्यांच्या घरांतील उदकाने आचवणे इत्यादिक करावे. कारण “ब्राह्मण भोजन करीत असतां तत्कालीं मृताशीच प्राप्त होईल तर दुसऱ्यांच्या घरांतील उदकाने आचवणे करावे” असी स्मृति आहे. शेष अन्न राहिले असेल तें आशीची यांनी भक्षण करावे. नादीश्राद्ध केल्यानंतर भोजनकालाहून अन्यकालीं आशीच प्राप्त झाले असतां सुतक्याच्या घरीं भोजन करावे. ब्राह्मण भोजन करीत असतां आशीच प्राप्त होईल तर भोजन करणाऱ्या ब्राह्मणांनी पात्रावरीलहि अन्न टाकावे, असा वाचनिकच विशेषनिर्णय आहे. कारण, बवनाला अतिभार नाही असा न्याय आहे. मला तर “ब्राह्मण भोजन करीत असतां तत्कालींच मृताशीच प्राप्त होईल तर दुसऱ्यांच्या घरांतील उदकाने

आचरण करावें" इत्यादिक जें वाक्य सांगितलें तें, आरंभ झालेली किंवा आरंभ न झालेली अशा सर्व कर्मांचे ठिकाणी असंकाल्पित अशा अनाविषयी आहे असें वाटते. या प्रमाणें विवाह इत्यादिक मंगलकार्यसमयी रजोदर्शन, आशौच प्राप्त झाले असता त्याचा निर्णय सांगितला.

विवाह होण्याच्या पूर्वी कन्येला रजोदर्शन होईल तर तेणेंकरून ह्या कन्येची माता, पिता, भ्राता यांला नरकप्राप्ती होते. कन्येला वृषलीत्व प्राप्त होऊन तिच्या पतीला वृषलीपतित्व होतें. याविषयी शुद्धीचा प्रकार सांगतो—कन्येचे दान करणारा याने कन्येचे ऋतु भोजन नी संख्या येईल तितकी गोप्रदानें किंवा एक गोप्रदान अथवा यया-शक्ति ब्राह्मणभोजन यांतून कोणतेहि केले असतां तो कन्यादानाविषयी योग्य होतो. कन्येनें तर तीन दिवस उपोषण केल्यानंतर गार्हचे दूध प्राशन करून ब्राह्मणाच्या कुमारीला रत्नयुक्त अलंकाराचें दान करावें, तेणेंकरून ती विवाहाला योग्य होते. वरानें कूपमांड मंत्रांनी घृताचा होम करून ती कन्या वरावी लक्षणजे दोष होत नाही. विवाहहोणाच्या समयी कन्येला रजोदर्शन होईल तर कन्येला ज्ञान घालून "युंजान०" ह्या तैत्तिरीय शाखेच्या मंत्रानें प्रायश्चित्तहोम करून होमतंत्र समाप्त करावें. ज्या कार्ही, दान करणारा नाही या कारणानें कन्या प्रीट होऊन तिला रजोदर्शन होईल, त्याकार्ही तीन वर्षेपर्यंत कालप्रतीक्षा करून नंतर कन्येनें आपण पति वरावा. या विषयी वरालाहि दोष नाही; याप्रमाणें कन्येच्या रजोदोषाचा निर्णय सांगितला.

क्षयपक्षादिकांचा निर्णय.—एका पंद्रवड्यामध्ये दोन तिथींचा क्षय होऊन तेरा दिवसांचा जो पंधरडा होतो त्याला क्षयपक्ष असें लक्षणतात, व त्या कार्ही बहुत प्रजांचा संहार अथवा राजाचा संहार होतो. क्षयपक्षांत चौल, मौंजी, विवाह, घर बांधणें इत्यादिक शुभ कार्ये करूं नये. क्षयमास, अधिकमास, गुरुशुक्रांचें अस्तादिक यांचे ठायीं विवाहाचा निषेध प्रथम परिच्छेदांत सांगितला आहे. याप्रमाणें सिंहस्थ गुरूच्या निषेधाचाहि निर्णय प्रथम परिच्छेदांत सांगितला आहे तो पाहावा. क्षयसंवत्सर तोहि शुभ कार्मांला निषिद्ध आहे. श्रावणगतीनें पूर्वीच्या राशीचें शेष उल्लंघून दुसऱ्या राशीचे ठायीं जो संचार झाले नांवा अतिचार. या अतिचाराप्रत गुरु गेला असतां पुनःवक्रगतीनें ज्याकार्ही पूर्व राशीला येत नाही त्या कार्ही तो क्षयसंवत्सर होतो. तो सर्व कर्मांला वर्ज्य आहे. त्यामध्ये शेष, वृषभ, वृश्चिक, कुंभ, मीन ह्या राशींचा वृहस्पति असले तर दोष नाही. कोणी ग्रंथकार, गोदेच्या दक्षिणप्रदेशी अतिचारादिक गुरूचा कोणताहि दोष नाही असें लक्षणतात. या प्रमाणें क्षयपक्षादिकांचा निर्णय समाप्त झाला.

गुरुवजाचा निर्णय.—कन्येला गुरुवजल हें मुख्य होय. वराला रविवजल इष्ट होय. कन्येच्या जन्मराशीपासून दुसरा, पांचवा, सातवा, नववा, अकरावा हा गुरु कन्येला शुभ जाणावा. जन्मस्थ, तिसरा, सहावा, दहावा, पूजाहोमरूप शांति कन्येने शुभ होतो. चतुर्थ, अष्टम, द्वादश ह्या स्थानींचा दुष्टफळ होय. कर्क, धनु, मीन ह्या राशींचा असतां चतुर्थ इत्यादि स्थानींचा असेल तथापि दुष्ट नाही. संकटसमयी चतुर्थ, द्वादश ह्या स्थानींचा असेल तर दोन वेळ; अष्टम असेल तर तीन वेळ होमादिरूप पूजा कन्येने शुभ होतो.

वराच्या राशीपासून तृतीय, षट्, दश, एकादश ह्या स्थानींचा रवि शुभ होय. इतर स्थानींचा रवि, प्रथमखात सांगितलेली पूजा केली असतां शुभ होतो: गुरुपूजेचा प्रकार मैत्रीप्रकरणीं सांगितला आहे.

जन्मापासून, किंवा गर्भसमयापासून पांचव्या वर्षापासून आठव्या वर्षापर्यंत कन्येच्या विवाहाविषयी काल उक्त आहे. सहा वर्षांनंतर दोन वर्षे अतिप्रशस्त जाणावा. कारण, “सहा वर्षेपर्यंत कन्येचा विवाह करूं नये, जन्मापासून दोन वर्षे तिचा उपभोग सोम करितो, तदनंतर दोन वर्षे गंधर्व उपभोग करितो, नंतर दोन वर्षे अग्नि उपभोग करितो, याप्रमाणे सहा वर्षेपर्यंत देवता कन्येचा उपभोग करितात ” असे वचन आहे. नवम वर्ष व दशम वर्ष हा मध्यमकाल होय. अकराव्या वर्षाचेटायी विवाह अधम होय. बाराव्या इत्यादिक वर्षी विवाह केला असतां तो प्रायश्चित्तकारक होतो.

ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, असुर, गांधर्व, राक्षस आणि पैशाच याप्रमाणें आठ विवाह आहेत. योग्य वराला सत्कारपूर्वक बलावून अलंकारयुक्त अशा कन्येचे दान कन्यादानाच्या विधीनें ब्राह्म करावें तो ब्राह्मविवाह. यज्ञांत ऋत्विजाचें कर्म करणारा ब्राह्मण बाला अलंकारयुक्त कन्या अर्पण करणें तो दैवविवाह. वरापासून एक गोमिथुन ह्मणजे गाई व बैल किंवा दोन गोमिथुनें घेऊन बाला कन्या अर्पण करणें तो आर्षविवाह. हें जें गोमिथुन घेणें तें निरा नाही; कारण, तें कन्येच्या पूजेकरितां ह्मणजे सत्काराकरितां घ्यावें असें सांगितलें आहे; यास्तव त्यापासून कन्येचा विक्रय होत नाही. तूं याच स्त्रियेसहवर्तमान गृहस्थाश्रम धर्म आचरावा व ही स्त्री जीवंत आहे तावपर्यंत दुसरा विवाह किंवा संन्यास आश्रम करूं नये, असें सांगून कन्या देणें तो प्राजापत्यविवाह. ब्राह्म जें बाला घयेच्छ इत्ये देऊन विवाह करावा तो असुरविवाह. वर आणि कन्या यांच्या इच्छेनें परस्परांचा संयोग होतो तो गांधर्वविवाह. युद्ध, इत्यादिक करून बलात्कारानें कन्या हरण करणें तो राक्षसविवाह. चोरी करून कन्या हरण करणें तो पैशाच विवाह

याप्रमाणे आठ विवाह आहेत. आठ प्रथमचे जे चार आमध्ये पहिले पहिले त्रेष्टः व पुढचे जे चार आमध्ये पुढचा पुढचा निश्च होय. या आठ विवाहांमध्ये ब्राह्मविवाह, व दैवविवाह हे ब्राह्मणाला प्रशस्त होत. क्षत्रियांला गार्धर्व, राक्षस हे प्रशस्त आहेत. वैश्याला असुरविवाह प्रशस्त आहे. आर्ष, प्राजापत्य, आणि पैशाच हे सर्वांला प्रशस्त आहेत. संकट असतां राक्षस विवाह खेरीज करून बाकीचे सात विवाह ब्राह्मणाला उक्त आहेत. ब्राह्म, दैव यावांचून इतर सहा विवाह क्षत्रियाला उक्त आहेत. आणि वैश्य व शूद्र यांला ब्राह्म, दैव, आणि राक्षस यांवांचून इतर पांच उक्त आहेत. सर्व विवाहांमध्ये या या प्रकारांनी कन्येचा स्वीकार केल्यानंतर आपापल्या गृह्यसूत्रांच्या रीतीने विवाहहोम इत्यादिक विधि अवश्य करावा. दानाच्या विधीने सर्व विवाहांत दान होत नाही. पैशाचादिक विवाहांमध्ये सप्तपदीविधि होण्याच्या पूर्वी दुसऱ्या वराला कन्या द्यावी. ब्राह्म इत्यादिक विवाहांचे ठायी कन्येचे दान झाल्यानंतरहि सप्तपदी विधि होण्याच्या पूर्वी, वराला नपुंसकत्व इत्यादि दोष आहेत असे समजेल किंवा वर मृत होईल तर ती कन्या दुसऱ्या वराला द्यावी. ब्राह्मविवाहाने वरली जी स्त्री तिचे ठायी झालेला पुत्र, दहा पूर्वांचे व दहा पुढचे अशा वीस पितरांला तारितो. दैवविवाहाने वरलेल्या स्त्रीचा पुत्र सात सात पुरुषांला, प्राजापत्य विवाहाने वरलेल्या स्त्रीचा पुत्र सहा सहा पुरुषांला व आर्ष विवाहें करून वरलेल्या स्त्रीचा पुत्र तीन तीन पुरुषांला तारितो आश्वलायनगृह्यसूत्रांत तर ब्राह्मादिक चार विवाह असतां १२।१०। ८।७ असे मागचे व पुढचे पुरुष यांला पुत्र तारितो असे सांगितले आहे. “ इतर दुविवाह यांचे ठायी जे पुत्र होतात ते ब्राह्मण धर्माचे द्वेष्टे असे होतात. ” वाग्दान करून नंतर वर देणांतरी गेला असेल तर सहा महिने पर्यंत त्याची वाट पाहून नंतर दुसऱ्या वराला कन्या द्यावी. कन्येचे मर्त्य देऊन गेला असेल तर एक वर्षपर्यंत वाट पहावी. बलात्काराने विवाह झाला असेल, अथवा एकगोत्रत्व, नपुंसकत्व इत्यादिक वरस दोष आहे असे समजेल तर सप्तपदीविधि झाला असेल तथापि दुसऱ्या वराला कन्या द्यावी असे जे सांगितले ते कलियुगांत निषिद्ध आहे असे जाणवें. वाग्दान केल्यानंतर पाति-व्यादिक दोष नसून कन्या न देईल तर कन्यादात्यालाहि दंड करावा असे सांगितले आहे. याप्रमाणे कन्येला अपस्मारदोष असून तो चोरून ठेवील तर कन्यादाताहि दंडीस पात्र होतो. अधर्म्य विवाहांचे ठायी ब्राह्मणांनी भोजन केले असतां, आसुरविवाहाचे ठायी एकराज उपोषण, गार्धर्वविवाहाचे ठायी त्रिराज उपोषण, राक्षस व पैशाच यांचे ठायी चांश्रायणप्रायश्चित्त करावें. याप्रमाणे विवाहाचे भेद सांगितले.

“ज्येष्ठ बंधूचा विवाह न होता जो कनिष्ठ बंधु, विवाह व अग्निहोत्र चारण करितो झाला परिवेत्ता, व ज्येष्ठाला परिवेत्तित असें झणतात.” याप्रमाणे ज्येष्ठकन्या अग्निहोत्र वाहित असून कनिष्ठ कन्येचा विवाह केला असतां ज्येष्ठ कन्येला दिविषु व कनिष्ठ कन्येला अग्नेदिविषु असें झणतात. याविषयीं प्रायश्चित्त—पिता इत्यादिकांनीं दिलेली जी कन्या तिष्याशीं न समजून विवाह झाला असतां परिवेत्ता, व परिवेत्तित या भाषांला दोन दोन कच्छ प्रायश्चित्त, कन्येला एक कच्छ, कन्यादात्याला अतिकच्छ, उपाध्यायाला चाश्रायण, याप्रमाणे प्रायश्चित्त करावे. पिता इत्यादिकांनीं न दिलेली तिष्याशीं जाणून विवाह केला असतां सर्वांनीं एक वर्षपर्यंत कच्छ प्रायश्चित्त करावे. इच्छेकरून पिता इत्यादिकांनीं दिलेलीचा विवाह केला असतां त्रैमासिक करावे. पिता इत्यादिकांनीं दिलेली नसून अज्ञानेकरून विवाह झाला असतां चाश्रायण इत्यादिक प्रायश्चित्त करावे. याप्रमाणे दिविषूच्या पतीनें अतिकच्छ, अग्नेदिविषूच्या पतीनें कच्छ, असें प्रायश्चित्त करावे. याविषयीं अपवाद--सापन्न किंवा दत्तक ज्येष्ठ भ्राता असेल तर कनिष्ठास विवाह व अग्निहोत्र हीं ग्रहण करण्याविषयीं दोष नाही. सोदरभ्राता असून नपुंसक, मुका, बहिरा, खुजा पंगु इत्यादिक दोषांनीं युक्त; देशांतरीं राहणारा; वेश्येचे ठिकाणीं आसक्त; बाटलेला; महारोगी; अतिवृद्ध; कृषांचे ठिकाणीं आसक्त; द्रव्यवृद्धि, राजाची चाकरी इत्यादिक व्यापार यांमध्ये आसक्त; चौर्यासक्त; उन्मत्त; विवाह व अग्निहोत्र यांविषयीं निरीच्छ असा ज्येष्ठ भ्राता असेल तर कनिष्ठाला विवाह, अग्निहोत्र घेण्याविषयीं दोष नाही. ज्येष्ठ भ्राता देशांतरीं गेलेला असल्यास आठ वर्षे किंवा १२ वर्षे कनिष्ठानें प्रतिक्षा करावी. याप्रमाणेच ज्येष्ठकन्येची भिल माता असतां कनिष्ठ कन्येच्या विवाहाविषयीं दोष नाही. याप्रमाणे मुकेपणा इत्यादिक दोष युक्त ज्येष्ठ कन्या असतां असाच निर्णय जणावा. याप्रमाणे परिवेत्ता इत्यादिकांचा निर्णय झाला.

आतां कन्यादाते यांचा अनुक्रम—कन्येचे दान करणे तें पितानें करावे. पिता नसेल तर पित्याचा पिता, आच्या अभावीं भ्राता, भ्रात्याच्या अभावीं पित्याच्या कुळातील चुलता इत्यादिक यांनीं करावे. यांचा अभाव असतां मातेच्या कुळातील मातेचा पिता, मानुळ इत्यादिकांनीं कन्यादान करावे. सर्वांच्या अभावीं माता, याप्रमाणे पूर्वीच्या अभावीं पुढचा पुढचा अधिकारी होतो असें जाणावे. मीजी झालेल्या भ्रात्यांसच कन्यादानाधिकार आहे. मीजी न झालेला भ्राता व माता इत्यादिक असतील तर मातेलाच अधिकार आहे, मीजी न झालेल्या भ्रात्याला अधिकार नाही. सर्वांच्या अभावीं कन्येनें आपण वर वरावा; कन्या आपण स्वतां वरणारी, व माता दान करणारी असतां कन्येनेच किंवा

मातेनेच नांदीश्राद्ध करावे. अविषयी मातेने किंवा कन्येने प्रधानसंकरूप मात्र करून इतर सर्व कृत्य ब्राह्मणाकडून करवावे. वराने तर, संस्कार झालेला भ्राता इत्यादिक नसल्यास आपणच नांदीश्राद्ध करावे; मातेने करू नये; कारण, उपनयनेकरून वरला कर्माचा अधिकार प्राप्त झाला आहे. दुसऱ्या इत्यादिक विवाहाचे ठायी वराने आपणच नांदीश्राद्ध करावे. दुसऱ्याच्या कन्येचे दानाविषयी विशेष सांगतो— “दुसऱ्याची कन्या सुवर्ण देऊन आपली असी करून तिचे धर्म विधिने दान करणे तें परमोत्तम कन्या असली तथापि युक्त होतें.” याप्रमाणे कन्यादात्यांच्या निर्णयामध्ये वर व कन्या यांचाहि नांदीश्राद्धकर्तृत्वाचा निर्णय झाला.

मूलनक्षत्राच्या पहिल्या तीन चरणांवर कन्या व वर यांचे जन्म झाले असता ते कन्या-वर आपापल्या श्वशुराचा नाश करितात. आश्लेषानक्षत्राच्या शेवटच्या तीन चरणांवर जन्म झाले असेल तर सासवेचा नाश; ज्येष्ठानक्षत्राच्या शेवटच्या चरणावर जन्म झाले असेल तर परस्पर ज्येष्ठभ्रात्यांचा नाश; विशाखाच्या शेवटच्या चरणावर परस्पर कनिष्ठभ्रात्यांचा नाश; मघानक्षत्राच्या पहिल्या चरणावर मूळाप्रमाणे फळ होतें असे कोणी ग्रंथकार झणतात. कोणी ग्रंथकार, उपनयन हे दुसरें जन्मरूप असल्यामुळे त्या उपनयनरूप दुसऱ्या जन्मेकरून, पूर्वं जन्मामध्ये उत्पन्न झालेला मूलादिकनक्षत्राचा दोष दूर होतो याकरिता, ‘मूळ नक्षत्रावर जन्म झालेला वर श्वशुरघातक होतो, इत्यादिक दोष नाही’ असा अपवाद संकटविषयी सांगतात. सासरा इत्यादिकांचा अभाव असेल तर कन्येलाहि दोष नाही, “आस्वल, वृक्ष; नदी या नांवाची; चांडाल, पर्वत या नांवाची; पक्षी, सर्प, दास या नांवाची; भयंकर नांवाची असी कन्या वरू नये.” वराला कन्या देणे ती पुरुषत्वाची परीक्षा करून द्यावी. “ज्या पुरुषाचे रेत उदकावर तरते, व मूत्र सशब्द, फेंस-युक्त असते” इत्यादि पुंस्त्वाची परीक्षा जाणावी. कुल, स्वभाव, शरीरसौंदर्य, वय, विद्या, ब्रह्म, पालकत्व, हे सात गुण ज्ञात्यांनी वराचे आंगी पाहून कन्या द्यावी. ह्याहून इतर गुण पाहण्याची गरज नाही. याप्रमाणे कन्या व वर यांचे मूळ इत्यादिक नक्षत्री जन्म झाले असता त्यांच्या गुणदोषांचा निर्णय सांगितला.

आतां विवाहाविषयी मासादिकांचा निर्णय—“विवाहाला मास घेणे ते माघ, फाल्गुन वैशाख, ज्येष्ठ, हे शुभदायक होत. मार्गशीर्ष मध्यम होय. क्वचित् ग्रंथांत आषाढ, कार्तिक हेहि सांगितले आहेत.” विवाहाविषयी भिद्युनस्थ सूर्य असतां आषाढमास, व वृश्चिकस्थ सूर्य असतां कार्तिक मास याप्रमाणे ज्या देशांत जसा आचार असेल तदनुरोधाने घ्यावे, सर्व देशांत ग्रहण करू नयेत. याप्रमाणे मकराचा रादि असतां फौवमास, मेषाचा

रत्नी असतां चैवमास हेहि ग्रहण करावे. ज्येष्ठ कन्या व ज्येष्ठ वर यांचा विवाह ज्येष्ठ मासांत शुभकारक नाही. ज्येष्ठ कन्या व ज्येष्ठ वर यांचा विवाह ज्येष्ठमासाबाबून अन्य मासांत केला असतां मध्यम होय. कारण, “ज्येष्ठ कन्या, आणि ज्येष्ठ वर यांचा विवाह विशेषकरून ज्येष्ठमासांत करूं नये. दोन ज्येष्ठ असतील तर ते मध्यम होत. ज्येष्ठ कन्या, ज्येष्ठ वर, आणि ज्येष्ठ मास यांतून एक ज्येष्ठ असणें हें सुस्तकारक होय. विवाहाचे ठिकाणीं तीन ज्येष्ठ करूं नयेत असें सर्वसंमत वचन आहे.” तसेच ज्येष्ठ कन्या किंवा ज्येष्ठ वर यांच्या मंगलकार्याविषयीं ज्येष्ठ मास मध्यम होय. जन्म मास, जन्मनक्षत्र इत्यादिक, ज्येष्ठ अपत्याचे संस्काराविषयीं निषिद्ध आहे. “कित्तीएक अमचार्यं सर्विकाल विवाह करावा असें ह्यणतात” तें वचन तर आसुरादिक जे अपभ्रंश विवाह साविषयीं आहे.

आर्द्रादिक दहा नक्षत्रां सूर्य असतां विवाह, मीनी इत्यादिक मांगलिक कार्ये निषिद्ध होत असें बसिष्ठ इत्यादिक ऋषींनीं सांगितलेले आहे; परंतु कौस्तुभ, निर्णयसिंधु इत्यादिक ग्रंथांत व मार्तंडादिक ज्योतिष ग्रंथांत नाहीं यास्तव बहुत भिष्टजन आर्द्रादिक नक्षत्रांच्या प्रवेशाचा दोष मानीत नाहीत. अमावास्या विवाहाविषयीं निषिद्ध होय. रिक्ता, अष्टमी, षष्ठी ह्या तिथी विवाहाविषयीं अल्पफळ ह्यणजे मध्यम होत. इतर ज्या तिथी ह्या उत्तमफल होत. शुक्लपक्ष श्रेष्ठ होय. कृष्णपक्ष त्रयोदशीपर्यंत मध्यम होय. सोमवार, बुधवार, गुरुवार, आणि शुक्रवार हे वार विवाहाला शुभ होत. इतर वार मध्यम होत. रोहिणी, मृग, मघा, उत्तरा, उत्तरापाटा, उत्तराभाद्रपदा, हस्त, स्वाती, मूळ, अनुराधा, रेवती हीं नक्षत्रे विवाहाचा सर्वमान्य होत. हरदत्ताच्या मतीं चित्रा, श्रवण, धनिष्ठा, अभिनी हीं चार अधिक उक्त आहेत. हीं जीं विवाहाचीं नक्षत्रे सांगितलीं आंमध्वेहि जें नक्षत्र पापग्रहानें युक्त असलें तें वर्ज्य करावें. चंद्रबळ व ताराबळ हीं कन्या व वर या दोघांलाहि अवश्य असावीं, दोघांतून एकाला चंद्रबळ नसेल तर रौप्यदिक दान करावें.

घात चंद्र— “मेषराशीचा पहिला, वृषभराशीचा ५ वा, मिथुनराशीचा ९ वा, कर्कराशीचा २ रा, सिंहराशीचा सहावा, कन्याराशीचा २० वा, तूळ राशीचा ३ रा, वृश्चिक राशीचा ७ वा, धनुराशीचा ४ था, मकरराशीचा ८ वा, कुंभराशीचा ११ वा, मीन राशीचा १२ वा, या प्रमाणें घातचंद्र जाणावे. प्रयाण, युद्धकार्ये इत्यादिकांविषयीं घातचंद्र वर्ज्य करावा. विवाह, सर्व मांगलिक कर्मे, चौलादि मीनी, यज्ञ, सीमंतोत्सव व जातकर्म हीं कर्तव्य असतां घातचंद्र पाहूं नये. मृत्युयोग, परिघाचें पूर्वाधि,

भद्रा, व्यतीपात, वैधृति, विष्कंभादिक योगांच्या निषिद्ध घटिका, तिथिवृद्धि, तिथिस्रव, यामार्ग, कलिकादिक, तीन प्रकारचा गंडांत, सूर्यसंक्रांति झाली तो दिवस, केतूद्रम झणजे शेज्ये नक्षत्राचा उदय, भूकंप यांवर विवाहादिक मंगलकार्य करूं नये. " एक चरण ग्रास असतां ग्रहण दिवसापासून तीन दिवस, दोन चरण ग्रास असतां चार दिवस, तीन चरण ग्रास असतां सहा दिवस, चार चरण ग्रास असतां आठ दिवस, असे दिवस, पूर्वी निमे व पुढे निमे वर्ज्य करावे. भूकंप, उल्कापात हीं निमित्ते असत; तीन दिवस, वज्रपात असतां एक दिवस या प्रमाणें दिवस वर्ज्य करावे. " जितके दिवस पर्यंत शेज्ये नक्षत्र दिसत आहे तितके दिवस अशुभ होत, यास्तव तितके दिवस पर्यंत शुभ कार्य करूं नये. " याचा अपवाद सांगलों— " नादीश्राद्ध केल्या नंतर भूकंपादिकांचा दोष नाही. " दिवसास विवाह प्रशस्त होय कन्यादान रात्रोपध्वेहि प्रशस्त होय असे हेमाद्रि इत्यादिकांच्या मती आहे.

लग्ना विषयीं ग्रहबल— ज्या लग्नीं विवाह करावयाचा त्या लग्नापासून तृतीय, षष्ठ, अष्टम या स्थानीं रवि; तृतीय चतुर्थ, द्वितीय या स्थानीं चंद्र; तृतीय षष्ठ या स्थानीं मंगळ; बुध व गुरु हे द्वादश व अष्टम या स्थानीं वर्ज्य; द्वितीय, चतुर्थ, पंचम, नवम, दशम, लग्न या स्थानीं शुक्र; षष्ठ, तृतीय, अष्टम या स्थानीं शनि, राहु व केतु; एकादश स्थानीं सर्व ग्रह हे विवाहाविषयीं शुभ होत.

वर्ज्य ग्रह— लग्नीं रवि; लग्न, षष्ठ, अष्टम या स्थानीं चंद्र; अष्टम, लग्न दशम या स्थानीं मंगळ; बुध व गुरु हे अष्टमस्थानीं; तृतीय, अष्टम, षष्ठ या स्थानीं शुक्र; लग्नीं शनि, व शेषग्रह; लग्नस्वामी षष्ठ, अष्टम या स्थानीं, आणि सप्तमस्थानीं सर्व ग्रह याप्रमाणें हे सर्व अशुभ ग्रह होत. शेष शब्देंकरून राहु व केतु जाणावे. दुसरे ग्रंथकार मारावा चंद्र; रेष्काणस्वामी व नवमांशस्वामी हे सहावे व आठवे; दहावा बुध हे वर्ज्य करावे असे सांगतात.

शेष, सिंह, घन यांची प्रवृत्ति मेषापासून; वृषभ, कन्या, मकर यांची प्रवृत्ति मकरापासून; मिथुन, तुळा, कुंभ यांची प्रवृत्ति तुळापासून; कर्क, वृश्चिक, मीन यांची प्रवृत्ति कर्कापासून याप्रमाणें तीन तीन वेळ मोजिले असतां नवमांश होतात. त्यांमध्ये वृषभ, मिथुन, कर्क, कन्या, तूळ, घनु आणि मीन हे नवमांश शुभ होत.

एकवीस महादोष— १ ज्या कार्याला तिथि, वार, नक्षत्र, योग, करण हीं पांच दुष्ट बाजित असतील तीं त्या कार्याला टाकावीं. २ लग्नापासून अष्टमस्थानीं मंगळ. ३ चंद्र व पापग्रह यांहीं युक्त असे लग्न. ४ लग्नापासून षष्ठ व अष्टम या स्थानीं चंद्र. ५ लग्ना-

पासून षष्ठस्थानी शुक्र. ६ संक्रांतिः— सूर्याचे राश्यंतर गमनाचा दिवस; ७ तिन प्रका-
रचा गंडांत ह्यजे लग्नगंडांत, तिथिगंडांत, व नक्षत्रगंडांत. ८ पापग्रहयुक्त नक्षत्र.
९ वारापासून उत्पन्न झालेले कुलिक, अर्धयामादिक दोष. १० वैधृतिव्यतिपात सप्त
चंद्रसूर्यांचे क्रांतिसाम्यलक्षण. ११ जन्मराशि व जन्मलग्न यां पासून अष्टम लग्न. १२
षट्त्वर्गामध्ये पापग्रहवर्ग अधिक असणे. १३ लग्ना पासून सप्तमस्थानी पापग्रह. १४
लग्न व अंश हे स्वस्वपतींनी युक्त अथवा दृष्ट असणे ही उदयशुद्धि होय, तसेच लग्ना-
शापासून सप्तम लग्न व अंश स्वस्वपतींनी युक्त किंवा दृष्ट असणे ही अस्तशुद्धि होय,
या प्रमाणे उदयशुद्धि व अस्तशुद्धि नसणे ती. १५ पापग्रहानें विद्ध नक्षत्र असणे.
१६ कर्तरीदोष ह्यजे चंद्रा पासून अथवा लग्ना पासून २।१२ या दोहों स्थानी पाप-
ग्रह असणे तो. १७ विष्कंभ, अतिगंड, व्याघात, वज्र, व्यतीपात, परिघ, वैधृति,
शूल, गंड, हे नऊ दुष्टयोग असतां दिवस नक्षत्रा पासून अभिजितसहित मोजून विषम
नक्षत्रां सूर्य नसेल तर एकार्गलयोग होतो, या एकार्गलानें विद्ध नक्षत्रचरण. १८
उषा नक्षत्रां ग्रहण झाले असेल तें नक्षत्र. १९ अनुकनवांश. २० दुर्मुहूर्त. ते असे—
शुक्रवारी ९ वा मुहूर्त; सोमवारी नववा, गुरुवारी १२ वा, शनिवारी १ ला, हे दिव-
सास; व भौमवारी ७ वा रात्रीस; हे दुर्मुहूर्त होत. २१ उषा नक्षत्रां भूकंप इत्यादिक
उत्पात झाला असेल तें नक्षत्र. या प्रमाणे हे एकवीस महादोष सांगितले. यांतून
एकहि दोष विवाहा विषयी नसावा.

संकटविपर्यां गोरज मुहूर्त—सायंकाळीं सूर्याचे अर्धास्तापूर्वी १५ पळे व पुढे १५पळे
मिळून जी अर्धघटिका तिला गोरज लग्न असे ह्यणतात. विवाहाला उक्त जी पंचांग
शुद्धि ती असेल तर हा गोरज मुहूर्त शूद्रजातीस विवाहाविषयी शुभ होय. सहावा व
आठवा चंद्र, पापग्रहयुक्त लग्न, आठवा मंगळ, गुरु व शनि हे वार, महापात सूर्यसंक्रांति
उषा दिवसां झाली तो दिवस, हे दोष गोधूलमुहूर्तां वर्ज्य करावे. इतर दोष साज्य नाहींत.
ब्राह्मणादिकांनीं संकटसमयीं, अथवा कन्या तारुण्ययुक्त झाली असेल तर गोधूलमुहूर्त
विवाहाविषयी ध्यावा असे कचिन् ग्रंथांत सांगितले आहे.

चंद्र, तारादिक यथोक्त नसतील तर त्या विपर्यां दानें सांगतो —चंद्र अशुभ अस-
ष्यास शंखदान करावें. तारा अनिष्ट असल्यास लवणदान करावें. अनिष्ट तिथि
असल्यास ताटुळांचें दान करावें. कल्याणो असेल तर धान्यदान, न्यतीपातादिक दुष्ट
योग व दुष्ट वार असतां सुवर्णदान याप्रमाणें दानें करावीं.

षट्त्वर्ग यांची शुद्धि इत्यादिक कसी पाहावी त्याचा निर्णय, व लग्नवेलासाधन इत्या-

दिक प्रकार आणि कुलिकादिकांची स्वरूपे ही सर्व, उपोतिष त्रयांतून पाहावी, प्रत्ये-
 स्तार होईल याकरितां तीं एथें सांगितलीं नाहींत. याप्रमाणें मुहूर्ताचा विचार संक्षेपानें
 सांगितला. विवाहाचीं अंगभूत अर्ती मंडप घालणें इत्यादिक कार्ये करावयाचीं तीं
 अंगभूत विवाहादिकांला उक्त जीं नक्षत्रे, तिथे इत्यादिक सांगितलीं आंवर करावीं,
 कारण, 'कांडण, दळण, यवारक, मंडप घालणें, मृत्तिकेची वेदी घालणें, घर व भिती
 यांला रंग देणें इत्यादिक संपूर्ण, विवाहाचे पूर्वीचीं व पुढचीं अंगभूत कार्ये करणें तीं
 विवाहनक्षत्रां करावीं असें वचन आहे.' 'यवारक' ह्मणजे प्राकृतामध्ये ज्याला 'चिकसा'
 असें ह्मणतात तो. याप्रमाणें हळद लावणें, उडदामुहूर्त इत्यादिक अंगभूत कार्ये
 करणयाला चंद्रबलाची गरज नाहीं. विवाहाचीं अंगभूत कार्ये करावयाचीं तीं विवाहा-
 च्या पूर्वी तिसरा, सहावा व नववा या दिवसीं करूं नयेत. विवाहाचा मंडप कराव-
 याचा तो सोळा हात, बारा हात, दहा हात, अथवा आठ हात यांतून कोणत्या एका
 संख्येचा, चार दरवाजांनीं युक्त असा करावा. आणि त्या मंडपामध्ये वराच्या हातांनीं
 चार हात, अथवा कन्येच्या हातांनीं पांच हात, लांबीनें व रुंदीनें सारखी, पायन्यांनीं
 युक्त, पुर्वेच्या बाजूस उतरती, व कदलीचे खांब इत्यादिकांनीं सर्वत्र सुशोभित अशी
 वेदी (बहुलें) घरांतून जो बाहेर जाण्याचा दरवाजा त्याच्या डाव्या बाजूस करावी.

आतां यानंतर कन्येला नमस्कारां त्रहादिकांच्या योगेंकरून सूचित जें वैधव्य त्याच्या
 परिहाराचा उपाय सांगतोः—आविषयीं मूर्तीचें दान करावें. तें असें—कन्येनें देशका-
 लांचा उच्चार करून "वैधव्यहरं श्राविष्णुप्रतिमादानं करिष्ये" असा संकल्प करून एक
 पळ (४० मासे) किंवा अर्ध पळ, पाव पळ यांतून कोणत्या एका मानानें सुवर्णाची केले-
 ली, सायुध, चतुर्भुज असी विष्णुमूर्ति तिची अग्न्युत्तारण पूर्वक षोडशोपचार पूजा, पूर्वीं
 बरेल्ल्या आचार्याकडून करवावी. पूजेमध्ये ज्यावेळीं वस्त्र अर्पण करावयाचें त्यावेळीं २
 पिषळीं वस्त्रें, व पुष्पे अर्पण करावयाचीं त्यावेळीं कुमुदें व कमळे यांची माळा हीं अर्पण
 करावीं. याप्रमाणें पूजा झाल्यानंतर कन्येनें मूर्तीला नमस्कार करून मंत्रेंकरून त्या
 मूर्तीचें दान करावें. दानाचा मंत्र—“यन्मयाप्रांचिजनुधिप्रियापतिसमागमं ॥ विषोपविष
 शास्त्राद्वैर्हतोवापिबिरक्तया ॥ प्राप्यमाणंमहाघोरं यशःसौरुपधनापहं ॥ वैधव्याद्यतिदुःखौघंत
 नाशपसुखाप्तये ॥ बहुसौभाग्यवृद्धयैचनहाविष्णोरिमांतनुं ॥ सौवर्णीनिर्मितांशक्तपातुंयंतंपद-
 दोद्दिज,” याप्रमाणें मंत्र ह्मणून दान करावें. नंतर ययाशक्ति सुवर्ण दक्षिणा देऊन
 “अनघावाहमस्मि” असें कन्येनें तीन वेळ ह्मणावें. “एवमस्तु” असें ब्राह्मणानेंहि तीन
 वेळ ह्मणावें. नंतर ब्राह्मणभोजन घालावें.

आता वैधव्यदोष दूर करणारा कुंभविवाह.—कन्येचा विवाह करणारा पितादिक वानें "कन्यावैधव्यहरं कुंभविवाहं करिष्ये" असा संकल्प करून नांदीश्राद्धापर्यंत कर्म करून "महिषोः०" इत्यादिक विधीने कुंभस्थापन केल्यानंतर सा कुंभावर बहणाच्या प्रतिमेचे ठायी बहणाची पूजा करून सा कलशाच्या मध्यभागी विष्णूची प्रतिमा स्थापून सा प्रतिमेवर विष्णूची षोडशोपचारानीं पूजा करून प्रार्थना करावी. प्रार्थनेचा मंत्र—"बह-णागस्वरूपाय जीवनानां समाश्रय ॥ पतिं जीवय कन्यायाश्चिरं पुत्रसुखं कुरु ॥ देहिबिष्णो वरंदेव कन्यापालयदुःखतः" याप्रमाणें प्रार्थना केल्यानंतर "विष्णुरूपिणे कुंभायेमांकन्या श्रीरूपिणीं समर्पयामि" असे वाक्य झणून कन्या कुंभाला देऊन "परित्वा०" इत्यादिक मंत्रानीं खाली व वर कुंभ आणि कन्या यांला मंत्राच्या आवृत्तीनें सूत्राचें वेष्टन करावें. तदनंतर कुंभ एकाकडे करून तो जलाशयात नेऊन टाकावा. नंतर शुद्धोदकानें "समुद्र-व्येष्टा०" इत्यादिक मंत्रानीं पंचपल्लवें करून कन्येवर अभिवेक करून ब्राह्मणांला भोजन घालावें. याप्रमाणें कुंभविवाह सांगितला.

यानंतर बराला मृतभार्यात्वदोष असेल तर साच्या परिहाराचा उपाय परिवर्तित्वपापानें मृतभार्यात्वदोष प्राप्त होतो यास्तव सा दोषाचा परिहार होण्याकरितां तीन प्राजापत्ये व तीन चांद्रायणे करावी. वारंवार मृतभार्यात्वयोग असेल तर तीन प्राजापत्ये व तीन चांद्रायणे आवृत्तीनें करून, "मृतभार्यात्वनिरासद्वारा श्रीपरमेश्वर प्रीत्यर्थं अयुतसंख्यचर्वाज्य होमं करिष्ये" असा संकल्प करून अभिस्थापनपर्यंत कर्म केल्यानंतर अन्वाधान करावें. तें असें—“दुर्गाभिविष्णुन् अष्टाधिकायुतसंख्याभिश्वर्वाज्याहुतिभिःशेषेण स्तितृकृतमिद्यादि” असें अन्वाधान करून प्रत्येक देवतेस मंत्रविरहित चारवेळ निर्वाप करून झणजे चहू शिजविण्याकरितां स्थालीत चारवेळ तांदुळ घेऊन ते धुवावे. नंतर आगकाली "अष्टो सरायुतसंख्याहुतिपर्याप्तं चर्वाज्यद्रव्यं ययामंत्रलिग्गदुर्गायै अग्नये विष्णवेच नमम" असा आग करावा. नंतर होम करावा. तो असा—“जातवेदसेइत्यनुवाकस्य उपानिषदऋषयः॥ दुर्गाभिविष्णवो देवताः ॥ त्रिष्टुप्लंदः ॥ चर्वाज्यहोमेविनियोगः”॥ पुनःपुनः तोच शेष अनुवाक झणून तें एककरून प्रत्येकऋचेनें होम करावा. त्यामध्ये प्रथम ९,००४ चहूहोम करून नंतर ९,००४ आज्यहोम करावा. याप्रमाणें दहासहस्र होम करावा. नंतर होमशेष समाप्त करून ब्राह्मणांला भोजन घालावें. अथवा कोणाएका ब्राह्मणाचा विवाह करावा.

यानंतर मृतपुत्रत्वदोष असेल तर साचा परिहार—पुत्र होऊन मृत होतात तो मृतपुत्रत्व दोष, तसा दोष असतां ब्राह्मणाचा विवाह, हरिवंशप्रंथ्याचें श्रवण, व महाहराचा

जप असे हे तीन उपाय सांगितले आहेत. यांतून एक दोन, किंवा शक्ति असल्यास तीनही करावे. ब्रह्माचा जप केला असेल तर जपाच्या दशांशेकरून, आज्यामध्ये भिन्न-बलेल्या दूर्वांचा होम करावा. हरिवंशाचे श्रवणाचा विधि व दुसरेही आणखी विधि विस्तारपूर्वक पूर्वी सांगितले आहेत.

यथाशक्ति अलंकारांनी कन्या अलंकृत करून त्या कन्येचे दान करणारा, अश्वमे-धयज्ञ करणारा, आणि प्राणांतभयकालीं दुसऱ्याचे प्राण रक्षण करणारा हे तीन समपुण्य होत. "पितामहासह सर्व पितर, कन्यादान करणारा यात श्रवण करून सकल पातकांपासून मुक्त होतात ब्रह्मलोकाप्रत जातात." याप्रमाणे कन्यादानप्र-शंसा जाणावी.

"जामाता हा विष्णु आहे असे मानून आचार्यवर कोप करू नये." "कन्या अप्रजा आहे तावकालपर्यंत जांवयाच्या घरी कन्येच्या पियाने, व मातेने भोजन करू नये." या प्रमाणे मातापितरांस कन्यागृही भोजनाचा निषेध सांगितला. विवाहामध्ये स्त्रियेसहवर्तमान भोजन केले असताही दोष नाही. विवाहाखेरीज अन्यकालीं स्त्रियेसहवर्तमान भोजन केले असता चांद्रायण प्रायश्चित्त करावे.

व्यादानादिकांचा विचार—विवाहनक्षत्रादिकाने युक्त अशा शुभ दिवसीं वराचा पिता इत्यादिकाने कन्येच्या गृहाप्रत जाऊन, "कन्यापूजनं करिष्ये, तदंगत्वेन गणपति पूजनं वरुणपूजनंच करिष्ये," असा संकल्प करावा. कन्येच्या पियाने तर, "करिष्यमाणकन्या दानांगभूतं व्यादानं करिष्ये, तदंगगणपतिपूजनं वरुणपूजनंच करिष्ये," असा संकल्प करावा, व अवशिष्ट प्रयोग दुसऱ्या ग्रंथी पाहावा.

यानंतर विवाहादिवसीं किंवा विवाहाच्या पूर्व दिवसीं कन्येच्या अंगाला हळद, तेल, इत्यादिक लावून तिला मंगलस्नान करवून कन्येची शेष राहिलेली हळद इत्यादिक तेणे करून वराला मंगलस्नान करवावे असा आचार आहे याप्रमाणे करावे.

याप्रमाणे वराचा पिता इत्यादिक याणे पत्नी व संस्कार्य यांसहवर्तमान केले आहे अश्वमेधस्नान ज्याने असा होताता व नूतन वस्त्र परिधान केलेला, पूर्वाभिमुख बसून आप-क्या उजव्या बाजूस स्त्री, व स्त्रियेच्या उजव्या बाजूस संस्कार्य, असा बसवून देशका-लांचा उच्चार करून "ममास्य पुत्रस्य दैवपितृव्यक्रुणापाकरणेत्तुधर्मप्रजोत्पादनतिसिद्धिद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं विवाहाख्यं संस्कारकर्म करिष्ये ॥ तदंगत्वेन स्वास्तिवाचनं मातृकापूजनं नांदीश्राद्धं नंदिन्यादिमंडपदेवतास्थापनंच करिष्ये ॥ तदादौ निर्विघ्नतासित्त्वर्थं गणपति पूजां करिष्ये" याप्रमाणे पुत्राच्या विवाहाचा संकल्प करावा. कन्येच्या विवाहाविषयी

तर जातकर्मादि संस्कारांचा लोप असता, “ममास्याः कन्यायाः जातकर्म नायकर्म सूर्या-
बलोकन निष्क्रमणोपवेशनाभ्याशान चील संस्काराणां बुद्धिपूर्वक लोपजन्य प्रत्ययाय परि-
हारार्थं प्रतिसंस्कारमर्धकृच्छं चूडायाःकृच्छं तत्रत्याभ्याम गोनिष्कर्मभूत यथाशक्ति रजसदाने-
नाहमाचरिष्ये.” गर्भाधान व सीमंतोन्नयन यांचा लोप झालेला असेल तर त्यांचाहि ऊह
संकल्पांत करावा. नंतर, “ममास्याः कन्यायाः भर्त्रासह, धर्मप्रजोत्पादनद्रव्यपरिग्रहधर्मा
चरणेष्वधिकारसिद्धिद्वारा श्रीपरमेश्व प्रियर्थं विवाहाख्यं संस्कारं करिष्ये” याप्रमाणे संक-
ल्पांत विशेष जाणावा. अवशेष सर्व प्रयोग पूर्वीप्रमाणे करावा. भ्राता कर्ता असेल तर
त्यानें ‘ममभ्रातृः’ असा किंवा ‘मम भगिन्यः’ असा, अथवा चुलता इत्यादिकं कर्ता
असेल तर त्यानें ‘ममभ्रातृः सुतस्य’ किंवा ‘भ्रातृकन्यायाः’ असा संकल्पांत ऊह
करावा. वर व कन्या ही स्वतां विवाह करणारी असतील तर, वरानें “मम देवापिश्वपन्न
णेइत्यादिक” व कन्येनें “ममभर्त्रासहेत्यादिक” संकल्प करावा. कोणी ग्रंथकार, प्रधान जो
विवाहसंस्कार त्याचा संकल्प पुण्याहवाचनाच्या समयी किंवा कन्यादान इत्यादिक समयी करित
नाहींत, परंतु हा त्यांचा प्रमाद होय असें बहुत झणतात. दुसरे तर कन्यादान, विवाहहोम इत्या-
दिकांचा जो संकल्प तोच प्रधानसंकल्प होय; कारण, कन्यादान, विवाहहोम यांचाचून अन्य क-
र्मांस, विवाह असी संज्ञा नाहीं असें झणतात. मातृकापूजन झाल्यानंतर नांदीश्राद्ध करावयाचें
तें ज्याचे माता, पिता व मातामह हे मृत असतील असा जो वरपिता किंवा कन्यापिता
त्यानें, आपला पिता इत्यादिकांच्या उद्देशेकरून तीन पार्वणांनी युक्त असें करावें, हें
निःसंशय होय. माताच जिवंत असेल तर मृतपार्वणाचा लोप करावा. केवळ मातामह
मात्र जिवंत असेल तर त्याच्या पार्वणाचा लोप करावा, झणजे दोहोंकडे दोन दोन पार्व-
णांनीच नांदीश्राद्धाची सिद्धि होते. माता व मातामह हे दोन जिवंत असतील तर केवळ
पितृपार्वण केल्यानेंच नांदीश्राद्धाची सिद्धि होते. पिता, व प्रपितामह (पणजा) हे मृत
असून पितामह जिवंत असेल तर पिता; प्रपितामह व प्रपितामहाचा पिता यांच्या उद्देशे
करून पितृपार्वण करावें, झणजे “पितृप्रपितामहतत्पितर! नांदीमुखा इदं वः पाशं” इत्या-
दिक प्रकीर्ण करावा. प्रपितामह जिवंत असेल तर “पितृपितामहतत्पितरतामहाः” असा प्रयोग
करावा. पिता मृत असून पितामह, प्रपितामह हे जिवंत असतील तर “पितुःप्रपिता-
महस्य पितामहप्रपितामहीच नांदीमुखाः” असा उच्चार करावा. याप्रमाणे माता मृत
असून पितामही मात्र जिवंत असेल तर, “मातःपितुःपितामहीप्रपितामहौच नांदीमुखाः”
असा उच्चार करावा. प्रपितामही मात्र जिवंत असेल तर, “मातृपितामहौ पितुःप्रपिता-
महीच नांदीमुखाः” असा उच्चार करावा. पितामही व प्रपितामही जिवंत असतील तर

“मातः पितामहस्यपितामहीप्रपितामहौच नांदीमुखाः” असा उच्चार करावा. मुख्य माता निवृत असून सापत्न माता मृत झाली असेल तथापि मातृपार्वण करूं नये. याप्रमाणें मुख्य पितामही निवृत असून पितामहीची सवत मृत असेल, तथापि पितामहीच्या सवतीसह वर्तमान मातृपार्वण करूं नये, तर पूर्वी सांगितलेलाच उच्चार करावा. याप्रमाणें प्रपितामहीची सवत मृत असेल तर तीवषयीहि असाच निर्णय जाणावा. याप्रमाणें मुख्य मातामही निवृत असून तिची सवत इत्यादिक मृत असेल तथापि मातामहादिकांचा उच्चार ‘सपत्नीक’ असा करूं नये, तर केवळ मातामहादिकांचाच उच्चार करावा; कारण दशादिक श्राद्धविषयीं माता निवृत असून सापत्न माता मृत असेल तर पिता इत्यादिकांचाच केवळ उच्चार करावा, असा सिद्धांत आहे.

यानंतर मातामह मृत असून मातेचा पितामह निवृत असेल तर, “मातामह तपितामह प्रपितामहाः” असा उच्चार करावा. मातेचा पणजा मात्र निवृत असेल तर मातामहमातृपितामहौ मातामहस्य प्रपितामहश्च नांदीमुखाः” असा उच्चार करावा. मातेचा आज्ञा व पणजा हे निवृत असतील तर, “मातामह मातुःपितामहस्य पितामहप्रपितामहौच नांदीमुखाः” असा उच्चार करावा.

यानंतर पिता निवृत असून माता व मातामह हे ज्याचे मृत आहेत असा जो व्यक्ती विवाह, मौनी, जातकर्म इत्यादिक पुत्राच्या संस्कारां नादिश्राद्धांत मातृपार्वण व मातामहपार्वण हीं दोनच पार्वणे करावीं. माताच जीवंत असतां मातामहपार्वणच घ्यावें. जीवितपितृकानें, माता मृत असून मातामह निवृत असेल तर सुतसंस्कारां मातृपार्वणयुक्तच, देहित नांदीश्राद्ध करावें. माता, पिता, व मातामह हे तीनहि निवृत असून सुतसंस्कारां असेल तर पित्याचे जे पिता इत्यादिक व्यक्ती उद्देशानें तीन पार्वणे करून घ्यावें. पिता, माता, व मातामह निवृत असतील तर सुतसंस्कारां नांदीश्राद्धांत करावा असा दुसरा पक्ष ह्या ग्रंथाच्या तृतीय परिच्छेदांत आरंभी सांगितला आहे.

आपण जीवात्पितृक असून दुसरा विवाह, सोडमुंज, आधान इत्यादिक आपले संस्कार तांमिक्त नांदीश्राद्ध करणें तें आपल्या पित्याचे जे पिता इत्यादिक व्यक्ती उद्देशेकरून तीन पार्वणांनीं युक्त करावें. त्याच उच्चार असा—“पितुर्मातृपितामहीप्रपितामहाः॥पितुः पितृपितामह प्रपितामहाः ॥ पितुर्मातामह मातुःपितामह मातुःप्रपितामहाःनांदीमुखाः” या प्रमाणें तेथें उच्चार करावा. पित्याचीं माता इत्यादिक जीवंत असतां ह्या स्थलीं मातृपार्वणाचा लोप करावा. मृतपितृक असतां आपला पिता इत्यादिकांच्या उद्देशेकरून करावें याविषयीं संशय नाहीं. पिता व पितामह हे दोघे निवृत असतां पितामहाचीं माता

इत्यादिक नीं तीन पार्वणें त्यांच्या उद्देशें करून करावें. तीन जीवंत असतां पार्वणांचा छोप करावा. यामध्ये सुतसंस्कारां मानृपार्वण, व मातामहपार्वण ह्या दोन पार्वणांनीं जशी सिद्धि होते त्याप्रमाणें स्वकीयसंस्कारां मातृपार्वण व मातामहपार्वण या दोन पार्वणांनींच नांदीश्राद्धाची सिद्धि होते. पिता इत्यादिक तीन जीवंत असतील व माता, मातामह हे जीवंत असतील तर प्रपितामहाचीं नीं पिता इत्यादिक तीन पार्वणें त्यांच्या उद्देशें करून नांदीश्राद्ध करावें. याप्रमाणें पहिल्या विवाहींदुसरा कर्ता नसल्यामुळें मृतपितृक असा स्वता वरच नांदीश्राद्ध करणारा असेल तर त्यानें आपले जे पिता इत्यादिक त्यांच्या उद्देशें करून नांदीश्राद्ध करावें. जीवत्पितृक असा वरच नांदीश्राद्ध कर्ता असेल तर त्यानें, पित्याचे जे पिता इत्यादिक त्यांच्या उद्देशें करून नांदीश्राद्ध करावें. पिता व पितामह हे ज्याचे जीवंत आहेत असा जो वर त्यानें पितामहाचीं नीं पिता इत्यादिक तीन पार्वणें त्यांच्या उद्देशानें नांदीश्राद्ध करावें. प्रपितामह जो तोहि जीवंत असेल तर, प्रपितामहाचीं नीं पिता इत्यादि तीन पार्वणें त्यांच्या उद्देशें करून किंवा पितृपार्वणाचा छोप करून नांदीश्राद्ध करावें. एथें सर्व ठिकाणीं पित्याचे पिता इत्यादिक, किंवा पितामहादिकांचे पिता इत्यादिक या पार्वणांचा उद्देश करून नांदीश्राद्ध करणें असा पक्ष असेल तर आपली माता, व मातामह हे जरी मृत झाले असतील तथापि आपल्या मातेचें व मातामहाचें पार्वण घेऊं नये, तर आपल्या पिता इत्यादिकांची जी माता व मातामह तीं पार्वणें घ्यावीं असें जाणावें. या प्रमाणें जीवत्पितृकाचा नांदीश्राद्धप्रयोग सांगितला.

ज्या समयी कन्येचा विवाह, पुत्राची मौंजी व प्रथम विवाह हीं करणारा चुलता, मातुळ, इत्यादिक असेल त्या वेळीं संस्कार्य मृतपितृक असेल तर त्या संस्कारकर्त्यानें, "अस्य संस्कार्यस्य पितृपितामहाः प्रपितामहाः" इत्यादिक प्रयोग, करावा; सोदरभाता संस्कारकर्ता असल्यास त्याला उच्चार करण्याविषयी विशेष नाही; कारण, सोदर भात्याचे पिता इत्यादिक आणि संस्कार्याचे पिता इत्यादिक हे एक आहेत. सापळ भाता संस्कारकर्ता असेल तर त्यानें "संस्कार्यस्य मातृपितामही प्रपितामहाः" इत्यादिक उच्चार करावा. ज्याचा संस्कार करावयाचा त्याची माता जीवंत असल्यास मातृपार्वणाचा छोप करावा. संस्कार्य हा जीवत्पितृक असून संस्कारकर्ता मातुळादिक असेल तर त्यानें, "संस्कार्यपितुः मातृपितामही प्रपितामहाः ॥ संस्कार्यपितुः पितृपितामह प्रपितामहाः" इत्यादिक उच्चार करून संस्कार्याच्या पित्याचीं नीं पिता इत्यादिक तीन पार्वणें तीं घ्यावीं; संस्कार्याचा पिता व पितामह हे जीवंत असतील तर मातुळादि कर्त्यानें संस्कार्याच्या

पित्याची जी माता इत्यादिक व मातामहादिक त्यांच्या उद्देशे करून दोन पार्वणे करावी. पित्याचे ते दोन वर्ग त्यांमध्ये प्रत्येक वर्गाचा पहिला ह्यणजे मातृ वर्गाची पहिली ह्यणजे माता व पितृवर्गाचा पहिला ह्यणजे पिता व मातामहवर्गाचा पहिला ह्यणजे मातामह, यांतून कोणत्याही दोन वर्गांचे आद्य हे जिवंत असतील तर एकेक वर्गाचे पार्वण करावे. पित्याचे तीन वर्गांचे पहिले जिवंत असून मातृळ इत्यादिक कर्ता असेल तर पितामहाची जी माता इत्यादिक तीन पार्वणे त्यांचा उद्देश करावा. पितामहाची माता इत्यादिक जिवंत असेल तर त्या मातृपार्वणाचा लोप पूर्वी सांगितल्या प्रमाणे करावा. जीवित्पितृकाचा संस्कारकर्ता चुलता असेल तर पार्वणाच्या उच्चार विषयी विशेष नाही; कारण, संस्कार्याच्या पित्याचे पिता इत्यादिक व चुलत्याचे पिता इत्यादिक हे एक आहेत. संस्कार्याचा पिता मृत झाल्या मुळे संस्कारकर्ता पितामह असेल तर त्याने, "संस्कार्यस्य पिताः समपितृपितामहौच नांदीमुखाः ॥ संस्कार्यस्य मातृपितामही प्रपितामहाः ॥ संस्कार्यस्य मातामहमातुः प्रपितामहाः", इत्यादिक उच्चार करावा. संस्कार्याचा पिता जिवंत असून संस्कारकर्ता पितामह असेल तर त्याने आपली माता, पिता व पितामह ही पार्वणे 'मम' ह्या पदाने रहित किंवा तत्सहित अशी उच्चारवा. याप्रमाणे प्रपितामह कर्ता असताही असीच योजना करावी.

कन्यादान करण्याविषयी असमर्थ असा कन्यादानाचा अधिकारी याने 'तुं कन्यादान कर' अशी प्रार्थना केलेला जो कोणी दुसऱ्याची कन्या देण्याविषयी इच्छितो असे, व सुवर्ण देऊन दुसऱ्याची कन्या आपली असी करून तिचे दान करणारा याने, अथवा दुसऱ्याची कन्या, अनाथ असी समजून तिचे दान करण्याविषयी जो इच्छितो असे, हे संस्कार्य जी कन्या तिचा पिता इत्यादिकांचा उच्चार करावा. त्या कन्येचा पिता जिवंत असेल तर कन्येचे मातृपार्वण व मातामहपार्वण यांचा यांचा उच्चार करावा. त्या कन्येच्या तीन वर्गांचे पहिले पिता, माता, व मातामह हे जिवंत असतील तर कन्येच्या पित्याची जी पिता इत्यादि तीन पार्वणे त्यांचा उच्चार करावा. याप्रमाणे जसा संभव असेल तसे करावे. याप्रमाणे पित्याहून अन्याने नांदीश्राद्ध कर्तव्य असता त्याचा प्रयोग सांगितला:

दत्तक अशा कन्येचा विवाह, दत्तक घेणारा पिता करणारा असेल तर त्याने आपली पिता इत्यादिक जी तीन पार्वणे त्यांच्या उद्देशे करूनच नांदीश्राद्ध करावे. दत्तक पुत्र असून जनकापित्याचा दुसरा कोणी अधिकारी नसल्यामुळे जर जनकापित्याचे घन त्या दत्तकाला मिळाले असेल तर त्या दत्तकपुत्राने जनकापिता इत्यादिक व आपला प्रतिग्रहीता पिता इत्यादिक यांचा उच्चार करावा. तो- "पितरौ पितामहौच प्रपितामहौच नांदीमुखाः"

असा उच्चार करून नांदीश्राद्ध करावें. मातृपार्वण व मातामहपार्वण यांताहे द्विवचनान्त प्रयोग करावा. सणजे “मातरी पितामह्यौ प्रपितामह्यौच नांदीमुखाः ॥ मातामहौ मातुः पितामहौ मातुःप्रपितामहौच नांदीमुखाः ” असा. जनकापित्याचें धन घेण्यास दुसरा अधिकारी असल्यामुळें जर तें दत्तकाला न मिळेल तर आपला प्रतिग्रहता पिताइत्यादिक यांच्याच उद्देशेकरून करावें, दोन पित्यांच्या उद्देशानें करूं नये. ह्या सर्व नांदीश्राद्धप्रकरणांत संभ्रमंकरून काचित् मातृपा० व पितृपा० हें सांगण्यामध्ये व्युत्क्रम पडला असेल तथापि तो अनुक्रम विवक्षित नाही. कारण, सर्वत्र पूर्वी मातृपा०, नंतर पितृपा० व यानंतर मातामहपा० याप्रमाणे अनुक्रम निश्चित आहे. ऋग्वेदी व कात्यायन यांनी “मातृपितामही प्रपितामहः” इत्यादिक क्रमंकरून तीन पार्वणांमध्येहि उच्चार करावा. तैत्तिरीय इत्यादिक झाली यांनी तर “प्रपितामह पितामहपितरः” असा व्युत्क्रमाने उच्चार करावा. एक संस्कारांचे अनेक संस्कार एकाकालीं करणें असतील तर नांदीश्राद्ध एकवारच करावें. तसेच जुळे दोन पुत्र किंवा कन्या यांचे विवाह, मौजो इत्यादिक संस्कारांचे बरोबरच अनुष्ठान आहे तथापि त्यांतहि नांदीश्राद्ध एकवारच करावें. जुळे जे त्यांचे संस्कार एका मंडपांत, एका कालीं, एका कर्मानें बरोबर केले असता दोष नाही असे सांगितले आहे. नांदीश्राद्धामध्ये अन्न नसेल तर आमाम्न द्यावें. त्याच्या अभावीं हिरण्य, त्याच्या अभावीं दोन ब्राह्मणांचें भोजन होईल इतक्या अन्नाचें मीन्य असे यथाशक्ति किंचित् द्रव्य द्यावें. त्याचा उच्चार—“ युग्मब्राह्मणभोजनपर्याप्तान्निष्क योभूतं यथाशक्ति किंचिद्द्रव्यं स्वाहानमम ” याप्रमाणें करावा. इतर सर्व विशेषनिर्णय गर्भधानप्रकरणीं विस्तारानें सांगितला आहे तो तेथे पहावा. याप्रमाणें नांदीश्राद्ध सांगितलें.

तदनंतर मंडपदेवतांचें स्थापन, ग्रहयज्ञ हीं कृत्यें पुण्याहवाचनाच्या पूर्वी किंवा नांदीश्राद्धानंतर करावीं.

नंतर कन्यादाता यानें वराचे गृहीं जाऊन “ करिष्यमाणकन्याविवाहांगश्वेन वरश्च सीमांतपूर्णा करिष्ये” असा संकल्प करून गणपति व वरुण यांची पूजा करून वराचे पाय धुवून वस्त्र, गंध, पुष्प, नीरानन यांहीं त्याची पूजा करावी. नंतर यथा आचार दूष इत्यादिक वराला प्राशन करावें. नंतर वरानें वाहनावर बसून मंगलघोषेकरून बधूच्या गृहा प्रत जावें. नंतर वराच्या पित्यानें जसा आचार असेल तशी वस्त्र इत्यादिकांनीं बधूची पूजा करावी. विवाहाच्या दिवसीं कन्यापित्यानें किंवा कन्येनें परस्परांनीं आळिगित असे गौरीहर यांची सुवर्ण, रीष्य इत्यादिकांनीं केलेली जी प्रतिमा तिची कात्यायनी, महा.

लक्ष्मी, शची या देवतासहवर्तमान पूजा करावी. चार कोनांचे ठायीं स्थापित ज्या कलशांच्या पंक्ति त्यांच्या मध्ये तंदुलांनीं परिपूर्ण असा पाटावरवंटा किंवा बस्र त्याच्यावर गौरीहरांची मंजानें पूजा करावी. त्यांच्या ध्यानाचा मंत्र—“सिंहानस्थां देवेशीं सर्वालंकारसंयुतां ॥ पीतांबरधरं देवं चंद्रार्धकृतशेखरं ॥ करेणाधः सुधापूर्णं कलशं दक्षिणेनंतु ॥ वरदं चाभयं वामेनाश्लिष्यचतनुप्रियां ” याप्रमाणें ध्यान करून पूजा करावी. पूजामंत्र—“गौरीहर महेशान सर्वमंगलदायक ॥ पूजा गृहाण देवेश सर्वदा मंगलं कुह” याप्रमाणें पूजा करावी. नंतर कन्येची उंची असेल त्या प्रमाणें सत्तावीस सुतांची वात करून तिचा दीप लावून सुवासिनी, ब्राह्मण यांला भोजन घालावें. याप्रमाणें गौरीहरांची पूजा सांगितली.

मधुपर्काचा विधि—पंचवीस दर्भ घेउन त्यांची वेणी करून शेवटीं गांठ दिलेला, व लांब आहेत अग्नें ज्यांचीं असा विष्टर करावा, “कन्यादाता मित्रशाखी असला तथापि वराची जी शाखा त्या शाखेच्या गृहसूत्रामध्ये नसा विधि सांगितला असेल तसा मधुपर्क करावा.” दही व मध मिश्र करणें त्याला मधुपर्क असें झणतात. त्यामध्ये दही न मिळेल तर दूध किंवा उदक घ्यावें. मध न मिळेल तर घृत अथवा गूळ हा प्रतिनिधि जाणावा. “गृहागतं स्नातकं वरं मधुपर्केणार्हयिष्ये,” याप्रमाणें मधुपर्काचा संकल्प करावा. वराचा दुसरा विवाह असेल तर संकल्पांत ‘स्नातक’ ह्या पदाचा लोप करावा. तदनंतर जसें गृहसूत्र असेल तदनुसार मधुपर्काचा प्रयोग जाणावा. याप्रमाणें गुह, श्रेष्ठ ब्राह्मण, राजा यांतून कोणी आपल्या घरीं आले असतां त्यांची, व यज्ञामध्ये वरलेले ऋत्विज यांचीहि मधुपर्कानें पूजा करावी. ऋत्विज इत्यादिकांचा मधुपर्क करावयाचा तो त्यांची जी शाखा तदनुसारच करावा, दात्याच्या शाखेनें करूं नये. नयंत प्रथकार तर, सर्वत्र यजमानाच्या शाखेकरूनच मधुपर्क करावा असें सांगतो. ह्या मधुपर्क पूजे मध्ये गंध, पुष्प, धूप, दीपपर्यंत पूजा झाल्यानंतर उडदाच्या डाळीचे लाडू इत्यादिक उपहार वराला भक्षणार्थ द्यावा. याप्रमाणें मधुपर्क केल्यानंतर किंवा त्याच्या पूर्वी, भोजन केलेला अशाच वराला जो दाता उपोषित होत्सता त्यानें कन्या द्यावी.

लमघाटस्थापन—दहा पळे वजन तांत्रे घेउन त्याचें सहा अंगुळें उंच व बारा अंगुळें विस्तृत असें घटियंत्र करावें असें निर्णयसिंधूत सांगितलें आहे. द्वादशाह्दपळोन्मानं चतुर्भिश्चतुर्गुलैः॥स्वर्णमाषैःकृतोच्छिद्रंवावत्प्रस्थजलद्भुत” असें तर श्रीमद्भागवतांत तृतीयस्कंधी सांगितलें. याचा अर्थ—ऐशी गुंजा झणजे एक कर्ध, यालाच सुवर्ण असी संज्ञा आहे. चार

कर्ष लणजे एक पल, या मानानें सहा पळें वजन तांचें घेऊन त्याची घटिका करावी, आणि बीस गुंजा सोंग्याची शलाका चार अंगुळें लांबीची करून त्या शलाकेने घटिकेच्या मूळाला छिद्र पाडावें. नंतर त्या छिद्रानें त्या घटिकापात्रांत एक प्रस्थपरिमित उदक शिरतें, तें एक प्रस्थपरिमित उदक भरल्यानें तें घटिकापात्र उदकांत बुडतें, तें पात्र एक घटिकालाचें प्रमाण आहे. त्यामध्ये प्रस्थाचें प्रमाण तर, सोळा पळें लणजे एक प्रस्थ होतो. कारण “चार सुवर्ण लणजे एक पल, चार पळें लणजे एक कुडव, चार कुडव लणजे एक प्रस्थ, चार प्रस्थ लणजे एक आटक, चार आटक लणजे एक द्रोण, चार द्रोण लणजे एक खारिका” असें वचन आहे. दुसऱ्या ग्रंथांत चार मुठी लणजे एक कुडव, चार कुडव लणजे एक प्रस्थ, असें सांगितलें आहे. कोणी ग्रंथकार, साठ वेळ गुरु अक्षर उच्चारवासा जो काळ लागतो तो काळ पलसंज्ञक होय आणि साठ पळें लणजे एक घटिका असें झणतात. अशा प्रमाणानें केलेली ती घटिका, सूर्यमंडलाचा अर्धा उदय किंवा अर्धास्त शाला असतां उदकानें भरलेल्या तांब्याच्या किंवा मातीच्या पात्रांत ठेवावी. याविषयी मंत्र—“सुखं त्वमसि मंत्राणां ब्रह्मणा निर्मितपुरा ॥ भव भावाय दंपयोः कालसाधनकारण ” ह्या मंत्रेकरून, गणपति, वरुण यांची पूजा पूर्वी करून घटिकेची स्थापना करावी. याप्रमाणें स्थापन केलेली घटिका आग्नेय, दक्षिण, नैर्ऋत्य आणि वायव्य ह्या दिशांकडे गेली असता ती शुभ नाही. मध्यभागीं व अन्य दिशेत गेली असता शुभ होय, याप्रमाणें आग्नेय इत्यादिक पांच दिशांचे ठायीं पूर्ण शाली असता शुभ नाही. याप्रमाणें घटिका निर्णय सांगितला.

यानंतर ज्योतिषी यानें सांगितलेल्या शुभसमयीं, एक हात मध्यें जागा सोडून पूर्वेकडे एक व पश्चिमेकडे एक अशा तांदुळाच्या दोन राशि करून पूर्वेकडच्या राशीवर पश्चिमाभिमुख वर, व पश्चिमेकडच्या राशीवर पूर्वाभिमुख कन्या, याप्रमाणें वधुवरांला उभें करून त्या दोघांच्या मध्ये, कुंकुमादिकानें काढलेलें जें स्वीस्तक तेंणें करून चिन्हित असून उत्तर दिशेकडे दशा केलेला असा अंतःपट धरावा. कन्या व वर यांचा पिता इत्यादिकानें ज्योतिषी याची पूजा करून ज्योतिषी यानें दिलेल्या अक्षता फलसहित, कन्या वरांच्या ओंजळीत घालाव्या. हातामध्ये अक्षता घेतलेले कन्यावर अंतःपटावरचे स्वीस्तक पाहात होतासे “अमुक देवतायै नमः” असें आपापल्या कुलदेवतेचें ध्यान करित त्यांनीं उभें राहावें. मंगळाष्टकें झटल्यानंतर ज्योतिषी यानें आपण सांगितलेला जो मुहूर्त तत्समयीं “तदेवल्लभं०” हें वाक्य पठणें करून “सुमुहूर्तमस्तु ओंप्रतिष्ठ” असें झटल्यानंतर अंतःपट उत्तर दिशेकडे ध्यावा. तदनंतर कन्यावरांनीं परस्परांच्या मस्तकावर अक्षता टाकाव्या व

परस्परांला अवलोकन करावें. वरानें वधूच्या भुकुटीच्या मध्यभागीं दर्भाच्या अग्रानें "ओंभूर्भुवःस्वः" ह्या मंत्रेंकरून रेषा करून दर्भ टाकून उदकाला स्पर्श कराना. वैदिक ब्राह्मणांनीं पठण करावयाचीं जीं ब्राह्मणांच्या खंडांतील वाक्यें यांच्या शेवटीं झणजे प्रत्येक वाक्याच्या शेवटीं पूर्वीं कन्येनें वराच्या मस्तकावर अक्षता घालाव्या, नंतर वरानें कन्येच्या मस्तकावर अक्षता घालाव्या, याप्रमाणें प्रत्येक वाक्याचे अंतीं वधूवरानीं परस्परांवर अक्षता घालाव्या. तदनंतर वराला पश्चिमाभिमुख व कन्येला पूर्वाभिमुख करून वधूवर्यांच्या दक्षिणदिशेस दाता सपत्निक वसून वरदत्त अलंकारादिकांनीं विरहित, नवीन वस्त्र व आपण द्यावयाचे अलंकार यांहींकरून मात्र युक्त, कनकानें युक्त आहे अंजलि जीचा असी, व वराची पूजा करून शेष राहिलेले गंध तेणेंकरून लिप्त आहेत हस्त व पाप जीचे अशा प्रकारची कन्या द्यावी. दाता दर्भपाणि होतसाता त्यानें देशकालांचा उच्चार करून कन्यादानाचा संकल्प करावा. तो असाः--"अमुक प्रवरामुक गोत्रामुकशर्माहं ममसमस्तपितृणां निरतिशयानंदब्रह्मलोकावाप्स्यादि कन्यादानकस्योक्तफलावाप्तये अनेन वरेणास्यां कन्यायामुत्पादयिष्यमाणसंतत्या द्वादशावरान् द्वादशपरान् पुरुषांश्च पवित्रीकृतुं याःमनश्च श्रीलक्ष्मीनारायण प्रीतये ब्राह्मविवाहविधिना कन्यादानं करिष्ये" असा संकल्प करून दर्भ व अक्षता यांहीं युक्त उदक सोडावें. नंतर उठून कन्येला घेऊन "कन्यां कनकसंपन्नां कनकाभरभैर्युतां ॥ दास्यामि विष्णवे तुभ्यं ब्रह्मलोकजिगीषया ॥ विश्वंभरः सर्वभूतः साक्षिण्यः सर्वदेवतः ॥ इमां कन्यां प्रदास्यामि पितृणां तारण्यायच" हे मंत्र झणून, कांस्यपात्रामध्ये कन्येच्या अंजलीवर वराची अंजली ठेवून उजव्या बाजूला उभी राहिलेली जी स्त्री तिनें संतत करावयाची असी शुद्धोदकधारिणी हिरण्ययुक्त असा जो वराचा हस्त त्यावर पाडावी. नंतर, "कन्या तारयतु ॥ पुण्यं कर्द्वयतु ॥ शांतिःपुष्टिस्तुष्टिश्चास्तु पुण्याहं भवंतो ब्रुवंतु" इत्यादिक चार वाक्यें उच्चारल्यां नंतर, "अमुकप्रवरामुक गोत्रामुकशर्माहं मम समस्तेऽद्यादिप्रीतये" एथपर्यंत वाक्य झणून "अमुकप्रवेशेतामुकगोत्रायामुकशर्मणःप्रपौत्रायामुकशर्मणः पौत्रायामुकशर्मणः पुत्रायामुक शर्मणे श्रीधररूपिणे वराय ॥ अमुकप्रवरामुकगोत्रामुकशर्मणःप्रपौत्रीं अमुकशर्मणः पौत्रीं अमुकशर्मणः मम पुत्रीं अमुकनाम्नीं कन्यां श्रीरूपिणीं प्रजापतिदेवत्यां प्रजोत्पादनार्थं तुभ्य महंसंप्रददे" असे वाक्य झणून सहिरण्य हस्तावर अक्षतासहवर्तमान उदक सोडावें, आणि "प्रजापतिःप्रियतां कन्यां प्रतिगृण्हातु भवान्" असें झणावें. याप्रमाणें तीन वेळ "कन्या तारयतु" इत्यादिक पूर्वोक्त प्रकारानें कन्यादान करावें. नंतर वरानें "ओंस्वस्ति" से झणून कन्येच्या उजव्या खांद्याला स्पर्श करून, "करदं कस्याअदात् ० पृथिवीं प्रति-

गृह्णातु” हा मंत्र तीन वेळ झणून “धर्मप्रनासिद्धचर्यं प्रतिगृह्णामि” असे वाक्य बोलाने. नंतर दाखाने “गौरौ कन्यामिमां विप्र यथाशक्ति विभूषितां ॥ गोत्राय शर्मणे तुभ्यं दत्ता विप्रसमाश्रय ॥ कन्ये ममाग्रतो भूयाः कन्ये मे देवि पार्श्वयोः ॥ कन्ये मे पृष्ठतो भूयास्त्व हानान्मोक्षप्राप्त्या ॥ मम वंशकुले जाता पालिता वस्तराष्टकं ॥ तुभ्यं विप्र यथा दत्ता पुत्र पौत्रप्रवर्द्धिनी ॥ धर्मेश्वर्येच कामेषु नातिचरितव्या त्वयेयं.” असा वाक्ये हाटल्यानंतर वराने “नातिचरामि” असे वाक्य झणाने. नंतर दाखाने वसून कन्यादान सांगतेकरिता बराला सुवर्णदाक्षिणा द्यावी, व दाक्षिणा देण्याचे वाक्य झणाने, ते असे—“कन्यादानप्र तिष्ठासित्स्वर्यं इदं सुवर्णं अग्निदैवत्यं दाक्षिणात्वेनसप्रददे” असे वाक्य झणून सुवर्णदाक्षिणा द्यावी. नंतर वराने “ओं स्वस्ती” असे झणून दाक्षिणा ध्यावी. तदनंतर भोजनाचा पात्रे (ताटे) बाव्या इ०) व उदकपात्रे यांची दाने करावी. पितामह कन्यादान करणारा असेल तर हानवाक्यामध्ये ‘पौत्री’ ह्या पदाच्या पूर्वी ‘मम’ असा उच्चार करावा, ‘पुत्री’ ह्या पदा च्या पूर्वी ‘मम’ असा उच्चार करू नये. कन्यादान करणारा भ्राता इत्यादिक असेल तर याने तीन पुरुषांचा उच्चारच करावा ‘मम’ असा उच्चार कोठेहि करू नये. प्रापेतामह कर्ता असेल तर त्याने ‘प्रपौत्री’ ह्या पदाच्या पूर्वी ‘मम’ असा उच्चार करावा. मातुळ इत्यादिक किंवा अन्य कोणी कन्यादाता असल्यास त्याने आपल्या विशेषणाने स्वकीय गोत्राचा उच्चार करून “अमुकशर्मणः समस्तपितृणां” असे कन्येच्या पित्याचे नांव षष्ठीविभक्तान्त उच्चारून कन्येच्या विशेषणासहित तिच्या पित्याचे गोत्र इत्यादिक उच्चाराने ‘ममवंशकुलेजाता’ ह्या स्थळी ‘मम’ ह्या स्थानी कन्येच्या पित्याचे नामाचा उच्चार करावा. दत्तककन्येचे दान असेल तर ‘ममवंशकुले जाता’ ह्या स्थानी ‘ममवंशकुलेदत्ता’ असा उद्द करावा.

यानंतर कन्यादानाच्या अंगत्वाने जीं गाई इत्यादिक दाने अर्चे मंत्र सांगतां—गोदा-
नाचा मंत्र—“यज्ञसाधनभूताया विश्वस्याघौघनाशिनी ॥ विश्वरूपधरोदेवःप्रीयता बनया यवा.” अंगठबा जोडवी इत्यादिकांचा मंत्र—“हिरण्यगर्भसंभूतं सुवर्णचांगुलीयकं सर्व-
प्रदंप्रयच्छामि प्रीणातुकमलापतिः” कुंडलांचा मंत्र—“क्षीरं दमयने पूर्वप्रुद्धंतकुंडलद्वयं ॥
त्रियासहस्रमुद्धृतं ददे श्रीः प्रीयतामिति .” कडीं तोडे यांचा मंत्र—“कांचने हस्तवलयं
रूपकांतिसुखप्रदं ॥ विभूषणं प्रदास्यामि विभूषयतु मे सदा.” तांब्याच्या उदकपात्रांचा
मंत्र—“परापवादपैशुन्या दमरूपस्यच भक्षणात् ॥ उत्पन्नपापं दानेन ताम्रपात्रस्य नश्यतु.”
भोजनासाठीं जें कांस्यपात्र आचा मंत्र—“यानियापानि काम्यानि कामोत्थानि कृता-
निच ॥ कांस्यपात्रप्रदानेन तानिनश्यंतु मे सदा.” उदकाकरिता व भोजनाकरितां ३

हव्याची पात्रे द्यावयाचीं त्यांचा मंत्र — “अगम्याममनंचैव परदारामिमहीनं ॥ रौप्यपात्रप्रदानेन तानिनश्चतुमेसदा.” तांबुलाचा मंत्र — “पुरितंपूगपूगेन नागबळोदलाम्वितं ॥ पूर्णेनचूर्णपात्रेण कर्पूरपिष्टकेनच ॥ सपूगखंडनंदिव्यं गंधर्वांश्चरसांप्रियं ॥ ददौदेवनिरातंकं वत्प्रसादात्कुहृष्वमां.” याप्रमाणें दासी, हौत, हस्ती, अश्व, भूमि, सुवर्णपात्रे, पुस्तक, शय्या, गृह, रौप्य, वृषभ यांच्या दानाचे मंत्र कौस्तुभांत पहावे.

अंतःपट धरणें इत्यादिकापासून कन्यादाना पर्यंत कथ्य, कितीएक जन अग्निस्थापन केल्या नंतर करितात, कितीएक पूर्वांगहोम झाल्यानंतर करितात, कोणी आज्यसंस्कार झाल्या नंतर करितात, या प्रमाणें अनेक पक्ष आहेत त्या विषयीं आपापल्या गृह्यसूत्रांत जसे सांगितले असेल तदनुसार व जसा ज्याचा आचार असेल तदनुसृत व्यवस्था जाणावी. तदनंतर वधूवरांवर अभिषेक करावा. त्या नंतर कंकणबंधन करावें, अक्षतारोपण, वधूवरांनीं परस्परांला तिलक करणें, परस्परांनीं गळ्यांत माळा बांधणें, अष्टपुत्री, कंचुकी, मंगलसूत्र इत्यादिक वरानें वधूला देणें, गणपतिपूजन, लाडू बांधणें, आंगावरचे वस्त्रांचे शेवटास गांठ देणें, लक्ष्मी इत्यादिकांची पूजा इत्यादिक करणें, या प्रमाणें ऋकशाखी यांच्या कन्यादानाचा अनुक्रम बहुधा असा आहे व इतरशाखी यांचा अनुक्रम त्यांच्या त्यांच्या गृह्यसूत्राप्रमाणें जाणावा.

विवाह होमाचा विधि—वधुवरांनीं पूर्वी सांगितलेल्या लक्षणानीं युक्त अशा वेदीवर मंत्रघोशानें आरोहण करून वरानें आपल्या आसनावर बसून वधूला आपल्या दाक्षिणभागी बसवून देशकालांचा उच्चार करून संकल्प करावा. तो असा “प्रतिगृहीतायामस्यां वध्वां भार्यात्व सिद्धये विवाह होमंकरिष्ये” असा संकल्प जसें गृह्यसूत्र असेल तदनुसार विवाह होम करावा. ह्या वेळेपासून विवाहाभि रक्षण करून ठेवावा. रक्षण केलेला अभिचतुर्थीकर्मपर्यंत असावा. तो आग्ने गृहप्रवेशनीय होमाच्या पूर्वी नष्ट होईल तर पुनः विवाहहोम करावा. गृहप्रवेशनीय होम झाल्यानंतर नाईल तर दोनाहे होम पुनः करावे. बारा दिवसपर्यंत गृह्याभि नष्ट झाला असतां वृत्तोमध्ये सांगितलेली “अयाश्वा०” ही घृताची आहुति द्यावी, असा सार्वत्रिक निर्णय आहे यास्तव त्याचा आश्रय करून ह्या स्थलींहे “अयाश्वा०” ही आहुतिच द्यावी असें कोणी ग्रंथकार झणतात.

गृह प्रवेशनीय होम—वर वधूसहवर्तमान आपल्या गृहाप्रत गेल्यानंतर वरानें स्वगृहीं गृहप्रवेशनीय होम करावा असें सांगितले आहे, तथापि शिष्ट सासऱ्यांच्या घरींच करितात. तो विवाहहोम मध्यरात्रीनंतर झाला असतां दुसऱ्या दिवसीं प्रातःकालीं तिथि, वार इत्या-

दिकांचा उच्चार करून “ ममाभेर्गृह्यामित्यसिद्धिद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं गृहप्रवेशनीयाख्यं होमं करिष्ये ” असा संकल्प करावा. मध्यरात्रीच्या पूर्वी विवाहहोम झाला असता विवाहहोमानंतर तत्कालींच पुनः तिथि, वार इत्यादिकांचा उच्चार करून संकल्प करून रात्री मध्यर्धे गृहप्रवेशनीय होम केला असता दोष नाही. विवाहहोम व गृहप्रवेशनीय होम यांचे एकतंबाने जे अनुष्ठान करितात ते योग्य नाही. आश्वलायन, तैत्तिरीयशास्त्री इत्यादिक यांच्या गृह्यामाची सिद्धि होणे ती गृहप्रवेशनीय होम झाल्यानंतर व विवाहामीपासूनच होते. तैत्तिरीय, कात्यायन इत्यादिक शास्त्री यांच्या पुनराधानाविषयी दुसरा प्रकार आहे, जर रात्रीचे ठायी सहा घटिकांमध्ये अग्नि उत्पन्न होईल तर गृहप्रवेशनीय होम झाला नसेल तथापि व्यतीपात इत्यादिक कुयोगांचा संभव असला तरी तत्कालींच औपासन होमाचा आरंभ करावा. सहा घटिकांनंतर अग्नि उत्पन्न होईल तर दुसऱ्या दिवसा सायंकाळी औपासन होमाचा आरंभ करावा. तो असा—सायंसंध्या करून विवाहाग्नि प्रदीप्त करून प्राणायाम करून देशकालांचा उच्चार करून संकल्प करावा. तो असा—“ अस्मिन् विवाहसमीप्योक्तकाले श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं यावज्जीवमुपासनं करिष्ये ” असा संकल्प करून पुनः देशकालांचा उच्चार करून “श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं सायंप्रातरौपासनहोमौ करिष्ये ॥ तत्रेदानीं सायमौपासनहोमं करिष्ये” असा संकल्प करावा. प्रातःकालीं संकल्प करणे तो तर, “पूर्वसंकल्पितप्रातरौपासनहोमं करिष्ये,” असा संकल्प करून होम करावा.

यानंतर त्रिरात्रपर्यंत वधू व वर हे ब्रह्मचारी, अलंकारयुक्त, भूमीवर निशा करणारे, क्षीरलवणरहित भोजन करणारे असे असावे.

यानंतर चवथ्या दिवसा ऐरिणीदान करावयाचे ते—ऐरिणीदान वधूच्या उपोषित आईबापांनीं उपोषित जी वराची माता तिला द्यावे. वराची माता रजस्वला असता ती शुद्ध होईपर्यंत प्रतीक्षा करण्याचा असंभव असेल तर तिचा मनामध्ये उद्देश करून ऐरिणीदान करावे. विवाह झाल्यानंतर देवकोत्यापनाच्या पूर्वी वधुमाता व वरमाता यांला रजोदर्शन होईल तर शुद्धि झाल्यानंतर पूर्वी सांगितलेली श्रीशांति करून देवकोत्यापन करावे, संकट असेल तर शुद्धीच्या पूर्वीहि शांति करून देवकोत्यापन करावे. मातुळ इत्यादिक अन्य कर्ता असून त्याची स्त्री रजस्वला होईल तर त्याचा निर्णय मौंजीप्रकरणी सांगितला आहे. याप्रमाणे विवाह झाल्यानंतर आशीच प्राप्त होईल तर चतुर्थीकर्मापर्यंत प्राप्त झालेले कर्म करण्या विषयी दाता, वर आणि कन्या यांला आशीच नाही. आशीच गेल्या नंतर देवकोत्यापन करावे. आशीच गेल्यानंतर देवकोत्यापन करण्याचा संभव नसेल तर आशीच्यामध्येच देवकोत्यापन करून आशीच धरावे. विवाह होण्याच्या

पूर्वी आशौच, रजोदोष हे प्राप्त झाले असतां यांचा निर्णय पूर्वी सांगितला आहे. चतुर्थीकर्म संबंधी होम कौस्तुभांत सांगितला आहे. कितीएक ऋक्शाखी हा चतुर्थीकर्म-संबंधी होम करित नाही. मंडपोद्घासनाचे दिवसाचा निर्णय, व मंडपोद्घासन होईपर्यंत कोणतीं कर्मे करावीं, कोणतीं करूं नयेत यांचा निर्णय उपनयनप्रकरणीं सांगितला आहे तो तेथे पाहाना. “उत्सव समाप्त झाल्यानंतर; मंगलकार्य समाप्त झाल्यावर; सुष्ट, बांधव यांच्या अनुलक्षानें गमन करून; इष्टदेवतेची पूजा केल्या नंतर इतकीं कर्मे केलीं असतां ज्ञान करूं नये. मंगलकार्य झाल्यानंतर एक वर्षपर्यंत सचैल ज्ञान, तिलतर्पण, प्रेतामागून गमन, कुंभदान, अपूर्वतीर्थयात्रा, अपूर्व देवाचें दर्शन हीं कर्मे करूं नयेत. विवाहादिक, व्रताचा प्रारंभ हीं केलीं असतील तर सहा महिनेपर्यंत जीर्णपात्रे टाकूं नयेत व घर झाडणें, सारवणें इत्यादिक करूं नये. पुत्राचा विवाह केल्यानंतर एक वर्ष पर्यंत व पुत्राची मौंजी झाल्यानंतर सहा महिने पर्यंत कर्मानें आपलें मुंडन करूं नये. चौलव्यतिरिक्त इतर संस्कार केला असतां एक मास पर्यंत, चौलसंस्कार केला असतां तीन मास पर्यंत. पिंडदान, मृत्तिकाज्ञान, व तिलतर्पण हीं करूं नयेत. विवाह, मौंजी, चौल हे संस्कार झाल्यानंतर कर्मे करून एकवर्ष, सहा महिने, तीन महिनेपर्यंत; व इतर नांदीश्राद्धयुक्त मंगल कार्य झाल्यानंतर एक महिना पर्यंत पिंडदान, तिलतर्पण हीं करूं नयेत असा जो हा निषेध सांगितला तो त्रिपुरुषसपिंडविषयकच जाणावा. या प्रमाणें मुंडनाचा निषेध तोहि त्रिपुरुषसपिंडविषयक आहे. मौंजी, विवाह हे मंगल होय अशा पक्षीं मौंजी केल्या नंतर मुंडन करूं नये. मौंजी ही मुंडनरूप आहे अशा पक्षीं तर मुंडनाचा निषेध नाही, झणजे मुंडन करण्याला दोष नाही. ‘आपलें मुंडन करूं नये’ असें जें सांगितलें तें केलें करून कर्माच्या अंगत्वानें प्राप्त झालेलें मुंडन व प्राप्त मुंडन यांचा निषेध प्राप्त होतो. ह्या मुंडनाच्या निषेधा विषयीं अपवाद—“भास्करक्षेत्र, मातापितरांचा मृत दिवस, आधान, सोमयाग इत्यादिक, आणि इत्यादी हीं निमित्ते असतां क्षौर करावें.” विवाहादिक केलेला असेल तथापि यानें महालय, गयाश्राद्ध, मातापितरांचें प्रतिसावत्सरिक श्राद्ध, सपिंडी पर्यंत मृताची क्रिया, आणि षोडश मासिकश्राद्धें यांमध्ये पिंडदान, तिलतर्पण हीं करावीं. कोणी ग्रंथकार भ्रता, चुलता इत्यादिकांच्या प्रतिसावत्सरिक श्राद्धामध्येहि पिंडदान, तर्पण करावें असें सांगतात. या प्रमाणें पिंडपितृयज्ञ, अष्टका, अन्वष्टका, आणि पूर्वतुःश्राद्ध ह्या श्राद्धामध्ये पिंडदानाचा निषेध नाही. दर्शश्राद्ध तर पिंडरहितच करावें, व यावरून ऋक्शाखी यांला दोहोंचा बरोबर प्रयोग नाही. याप्रमाणें मंडपोद्घासन झाल्या नंतर करावें कोणतें व न करावें कोणतें याचा निर्णय सांगितला.

बधूप्रवेश — विवाहा पासून सोळा दिवसपर्यंत सम दिवसीं, व पांचवा, सातवा, नववा ह्या विषम दिवसीं, रात्री, स्थिरलक्षीं, नूतनभिन्न गृहीं बधूप्रवेश शुभ होय. प्रथम दिवसींही बधूप्रवेश करावा असें कोणी ग्रंथकार झणतात. प्रयोगरत्नग्रंथांत सहाव्या दिवसाचा निषेध सांगितला आहे परंतु त्याचा प्रमाण नाही. सोळा दिवसांमध्ये पूर्वी सांगितलेल्या दिवसीं प्रवेशास उक्त कीं नक्षत्र, तिसरे, वार, गोचरस्थचंद्रबल इत्यादिक तीं जरी नसतील तथापि दोष नाही, व गुरुशुक्रांचे अस्तादिकांचाहि दोष नाही. “व्यती पात, क्षयतिथि, ग्रहण, वैधृति, अमावास्या, संक्रांति आणि भद्रा इत्यादिक कुयोग असतील तर, प्राप्तकालकर्म जरी आहे तथापि ते कळू नये; झणजे ज्या शुभकर्माचा जो दिवस त्या दिवसीं जर व्यतीपात इत्यादिक असेल तर त्या दिवसीं ते शुभकर्म कळू नये. पहिल्यानें नवीन बधूचा प्रवेश, व विवाहासाठीं गमन यां विषयीं प्रतिशुक्राचा दोष नाही. द्विरागमनाविषयींचं संमुख शुक्राचा दोष आहे. सोळा दिवसांनंतर बधू प्रवेश करणें तो एक महिन्या पर्यंत विषम दिवसीं करावा, मासानंतर करणें तो विषम मासीं करावा, वर्षां नंतर करणें तो विषम वर्षीं करावा, तो शुभ होय. सोळा दिवसां नंतर सम दिवसीं, सममासीं, समवर्षीं बधूप्रवेश केला असतां वैधव्यादिक दोष प्राप्त होतो. पांचव्या वर्षीं नंतर बधूप्रवेशाविषयीं समविषमाचा विचार करण्याची गरज नाही. सोळा दिवसां नंतर बधूप्रवेशाविषयीं नक्षत्रे — अश्विनी, रोहिणी, मृग, पुष्य, मघा, उत्तरा, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, हस्त, चित्रा, स्वाती, अनुराधा, मूळ, श्रवण, धनिष्ठा, आणि रेवती हीं नक्षत्रे बधूप्रवेशाविषयीं शुभ होत. चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी, पौर्णिमा, अमावास्या ह्या तिथी वर्यं करून इतर तिथी शुभ होत. रविवार व भौमवार हे वर्यं करून इतर वार शुभ होत. याप्रकारें नवबधूचा प्रवेश सांगितला.

धाता द्विरागमन — द्विरागमना विषयीं माघ, फाल्गुन, वैशाख, शुक्लपक्ष, हे शुभ होत. अश्विनी, रोहिणी, पुनर्वसु, पुष्य, उत्तरा, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, अनुराधा, ज्येष्ठा, हस्त, स्वाती, चित्रा, श्रवण, शततारका, ह्या नक्षत्रां; चंद्र बुध, गुरु, ह्या वारां; गुरुशुक्रांच्या अस्तादिकांनें राहित अशा स्थिरलक्षादि शुभकार्त्वीं, द्वितीय बधूप्रवेश शुभ होय.

द्विरागमनाविषयीं अधिक मास, विष्णुशयनमास, सम वर्षे, आणि प्रतिशुक्रादि दोष हे वर्यं करावे. जर विवाहापासून सोळा दिवसांमध्ये द्विरागमन करणें असेल तर त्या विषयीं प्रतिशुक्रादिक दोष व अस्तादिक दोष नाहीत. “विवाहापासून सोळा दिव-

सांमध्ये अकराव्या दिवशी व सप्तदिवशी द्विरागमन केलें असतां आविषयीं नक्षत्र, तिथि, योग, दिनशुद्धि इत्यादिकांचा विचार करण्याची गरज नाही." केवळगिरस, केवळ भृगु, भरद्वाज, वसिष्ठ, कश्यप, अत्रि, वस ह्रीं ज्यांचीं गोत्रें आहेत आंणा प्रतिशुक्रदोष नाही. रेवती, अश्विनी, भरणी व कृत्तिकांचा प्रथम चरण यांचेठायीं चंद्र असतां शुक्राला अंधत्व दोष असतो याकरितां प्रतिशुक्राचा दोष नाही. दुष्काळ, देशोपद्रव, विवाह, तीर्थयात्रा, एक नगर, एक ग्राम यांचेठायीं प्रतिशुक्रदोष नाही. याप्रमाणें द्विरागमनाचा निर्णय सांगितला.

विवाहापासून पहिल्या वर्षीं आषाढमासी जर भर्त्याच्या गृहीं कन्या राहिल तर भर्त्याची माता ल्हाणजे स्वकीय सासू तिचा ती कन्या नाश करील. क्षयमासी स्वशरीराचा ज्येष्ठमासी वढील द्विराचा, पौषमासी सासऱ्याचा, अधिकमासी पतीचा, चैत्रमासी पित्याच्या गृहीं असेल तर पित्याचा नाश करील, यास्तव या मासी त्या त्या गृहीं कन्येनें राहूं नये. सासू इत्यादिक नसतील तर भय नाही. याप्रमाणें प्रथम वर्षीं कन्येच्या राहण्याचा निर्णय सांगितला.

पुनर्विवाह—दुष्ट लग्न, यथोक्त ग्रह तारा नसणें, इतर दुष्ट योग इत्यादिक अशुभ काल अशा समयीं विवाह झाला असेल, अथवा आशौच प्राप्त झालें असून कूष्मांडी मंत्रांनीं यथोक्त विधि केल्यावांचून आशौचांत विवाह झाला असेल तर त्याच बधूवरांचा सुमुहूर्तावर पुनः विवाह करावा. “मद्यपान करणारी, व्याधिष्ठ, प्रतारणा करणारी, बंध्या, अर्थनाश करणारी, अप्रियवाद करणारी, कन्या प्रसवणारी, आणि पतीचा द्वेष करणारी असी जी स्त्री ती अधिवेत्तव्या.” अधिवेदन ल्हाणजे दुसरी स्त्री करणें तें, ल्हाणजे दुसरी स्त्री करावी हा फलितार्थ होय. “जिला संतति होत नसेल तिचा त्याग दहाव्या वर्षीं करावा. कन्या प्रसवणारी तिचा त्याग बाराव्या वर्षीं करावा. मृतबंधेचा त्याग पंधराव्या वर्षीं, अप्रियवादिनीचा त्याग तात्कालिक करावा. एथें अप्रियवाद ल्हाणजे व्यभिचार असा अर्थ जाणावा. कारण, कलीमध्ये बहुधा सर्वत्र ठिकाणीं प्रतिकूलभाषणरूप अप्रियवाद आहे. आज्ञेमध्ये वागणारी, गृहकृत्त्यामध्ये दक्ष, वीर पुत्राला प्रसवणारी, प्रिय भाषण करणारी, असी स्त्री असून तिचा त्याग करून उपभोगाकरितां दुसऱ्या स्त्रीशीं विवाह करील तर त्यानें पूर्वीच्या स्त्रियेला आपल्या संपत्तीचा तिसरा अंश द्यावा. दरिद्री असेल तर तिचे अनाच्छादन करून पोषण करावें. मनु सांगतो— “अधिवेत्ता ल्हाणजे एका पुरुषानें विवाहित ज्या दोन स्त्रिया आंतील

पहिली स्त्री, ती रोषानें घरांतून जाईल तर तिला तत्काळ दुसऱ्या घरांत बंदोबस्तानें ठेवावी, अथवा आपल्या कुलसन्निध टाकावी, झणजे कुळातील श्रेष्ठ पुरुषांच्या स्वाधीन करावी." अग्नीची सेवा इत्यादिक धर्माचरण करणें तें ज्येष्ठ स्त्रियेबरोबर करावें, कनिष्ठ स्त्रियेबरोबर करूं नये. ज्येष्ठ स्त्रियेबरोबर धर्माचरण करावें झणून जें सांगितलें तें, ज्येष्ठ स्त्री आता मान्य करणारी असेल तर असें समजावें. जर रागीट स्वभावाची असल्यामुळें पूर्वी समीप सांगितलेल्या मनुवाक्येंकरून ज्येष्ठ स्त्री कुलसन्निध टाकण्यास योग्य अशी असेल अथवा अन्य गृही निरोध करून ठेवण्यास योग्य असेल तर कनिष्ठेसहवर्तमानादि धर्माचें आचरण करावें. तसें न करील तर धर्माचा नाश प्राप्त होईल. तसोच वीरपुत्राची माता, आता संपादन करणारी, गृहकार्याविषयी दक्ष, प्रियभाषिणी, आचरणाने शुद्ध अशी कनिष्ठ स्त्री असेल तर ती धर्मकार्याविषयी योजावी, झणजे तिच्या सहवर्तमान धर्माचरण करावें, अशी माधवग्रंथांतील स्मृति आहे. दुसऱ्या विवाहसंबंधी होम करावयाचा तो पूर्वीच्या विवाहसंबंधी गृह्याग्नीवरच करावा. पूर्वीचा विवाहसंबंधी अग्नि नसेल तर लौकिकाग्नीवर करावा. लौकिकाग्नीवर करणें ह्या पक्षां दुसऱ्या विवाहाचें जें विवाहहोमादिक तरेणें करून सिद्ध झालेला जो अग्नि तो गृह्याग्नि असल्यामुळें दोन गृह्याग्नींचा संसर्ग करावा.

दोन अग्नींचा संसर्ग प्रयोग—देशकालांचा उच्चार करून, "मम द्वाभ्यां भार्याभ्यां सह निष्पन्नगृह्याभ्योः ताभ्यां सहाधिकारसिद्धिद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रसिद्धं संसर्गं करिष्ये" असा संकल्प करून पुण्याहवाचन करावें. नंतर दक्षिण दिशेला एक स्थंडिल व उत्तर दिशेला दुसरें स्थंडिल याप्रमाणें दोन स्थंडिलें घालून दक्षिण स्थंडिलावर ज्येष्ठ स्त्रियेचा गृह्याग्नि व उत्तर स्थंडिलावर कनिष्ठ स्त्रियेचा गृह्याग्नि याप्रमाणें दोन अग्नि स्थापन करून ज्येष्ठ पत्नीनें अन्वारब्ध होस्ताता त्यानें पहिल्या अग्नीवर, "अग्निद्वयसंसर्गार्थे प्रथमाग्निहोमकर्माणि देवता परिग्रहार्थमन्वाधानं करिष्ये ॥ चक्षुषी आज्येनेत्यंते अग्निं नवभिराज्याहुतिभिः शेषेणेत्यादि" याप्रमाणें अन्वाधान करून चक्षुषीपर्यंत कर्म झाल्यावर प्रधानहोम करावा. याचे मंत्र—“अग्निर्मळि इति नवानामधुच्छेदाअग्निर्गायत्री॥ अग्निद्वयसंसर्गार्थप्रथमाग्नी प्रधानाज्यहोमविनियोगः॥ अग्निर्मळि०” इत्यादिक अशा नऊ ऋचांनी प्रत्येक ऋचेनें सुत्रापात्रें करून घृताच्या नऊ आहुति हवन कराव्या, व ‘अन्नयइदंनमम’असा सर्वत्र त्याग झणावा. याप्रमाणे प्रधानहोम करून होमशेष समाप्त करून, “अयंतेयोनिः०”या मंत्रानें ज्येष्ठाग्नीचा समिधेवर समारोप करून “प्रथ्वरोह०” या मंत्रानें तो ज्येष्ठाग्नि दुसऱ्या अग्नीवर प्रथ्वरोह करावा, झणजे अग्निसमारोप केलेली समिधा दुसऱ्या अग्नीमध्ये हवन करावी. नंतर अग्नीचें ध्यान करावें. नंतर दोन्ही स्त्रियांनी अन्वारब्ध होस्ताता त्यानें अन्वाधान करावें.

ते अर्चे—“अग्निद्वयसंसर्गार्थे प्रथमसंसृष्टाद्वितीयाग्नी विहित होमे देवतापरिग्रहार्थं मन्वाधानं करिष्ये ॥ आज्यभागति अग्नि प्रधानं षड्वारमाज्येन शेषेणेत्यां” प्रक्षिर्णा, कुश, दवी, सुवा, प्रणीता, आज्यपात्र, इध्मा, राई याप्रमाणें आठ पात्रे स्थापार्वी. आज्यभागपर्यंत कर्म शान्वावर दवीपात्रामध्ये सुवापात्रेकरून चार वेळ आज्य घेऊन दोन्ही पत्नींनी अन्वारब्ध होत्माता होम करावा. होमाचे मंत्र “अग्नावग्निरित्यस्य हिरण्यगर्भोऽग्निरष्टी ॥ अग्निद्वयसंसर्गार्थे संसृष्टाग्नी प्रधानाज्यहोमे विनियोगः ॥ अग्नावग्निरतिप्रविष्ट ऋषीणांपुत्रो-अधिराजएषः ॥ तस्मैजुहोमिहविषाघृतेन मादेवानामोमुहद्भागधेयं स्वाहा” याप्रमाणे आहुति देऊन “अग्नेयइदंनमम” असा व्याग ललावा. याप्रमाणे पुढेही जाणावे. प्रत्येक आहुतिसमयी दवीपात्रांत चार वेळ घृत घेणे, विनियोग करणे व व्यागाचा उच्चार करणे हे सर्व पूर्वाप्रमाणे पुढेही करावे. पुढच्या आहुतीचे मंत्र—“अग्निनाग्निर्धेधातिथिः काण्ठोभिर्गायत्री ॥ अग्निनाग्निःसमि० ॥ अस्तीदामिति तिसृणांविश्वामिन्नेऽग्निरनुष्टुप् ॥ अंशेविष्टुमी ॥ अस्तीदमधि० ॥ अरण्यो० ॥ उक्तानाया० ॥ पाद्दिनो अग्नेइत्यस्य भर्गः प्रगाथोभिर्वृहती ॥ पाद्दिनो० भिर्वसो०” याप्रमाणे प्रधानहोम करून होमशेष समाप्त करून अग्निहोत्रे ब्राह्मणाच्या दोन गोप्रदाने करून ब्राह्मणाला भोजन घालावे. याप्रमाणे दोन अर्चांचा संसर्ग-प्रयोग सांगितला.

“दोन स्त्रियांतून एक जर मृत होईल तर त्या संसर्गाचीकरूनच तिचे दहन करून गृहस्थाश्रमी याने दुसऱ्या स्त्रियेसहवर्तमान आधानविधिकरून अग्नि उत्पन्न करून तो धारण करावा.”

दुसऱ्या इत्यादिक विवाहाचा काल—“वराने पुनःविवाह करणे तो स्त्रियेच्या मृतदिवसापासून विषम वर्षी करावा तो शुभ होय. समवर्षी केला असता मृत्युदायक होतो” असेल तर महादशाचा अभिषेक किंवा मृत्यंजयमंत्राचा जप करून विवाह वाटते. “तिसरी मनुष्यकन्या वरून नये, वरिली असता ती मृत होईल, होईल यास्तव तिसऱ्या विवाहाचे ठिकाणी रुई बरोबर विवाह करावा.

अर्कविवाह—अर्काने रविवारी किंवा शनिवारी अथवा हस्तनक्षत्री,

कोणत्या एका शुभदिवसी पुष्पफलांनी युक्त असा अर्कवृक्ष पाहून त्या वृक्षाच्या नाऊन अर्ककन्यादान करणारा आचार्य वरून आरक्त गंधादिकाने भूषित होतिसाता देश-कालांचा उच्चार करून संकल्प करावा. तो असा—“ममनृतीयमानुषाविवाहजन्यदोष परिहारार्थं तृतीयमर्कविवाहं करिष्ये.” असा संकल्प करून आचार्याला वरून नादीश्राद्धापर्यंत कर्म करावे. दासाने मधुपर्क, यज्ञोपवीत, बस्त्रे, गध, पुष्पमाळा इत्यादिक उपचा-

रात्री बराची पूजा करावी. नंतर अर्कवृक्षाच्या पुढे वसून प्रार्थना करावी. प्रार्थनेचा मंत्र--“त्रिलोकवासिन् सप्ताश्र छापया सहितो रवे ॥ तृतीयोद्वाहजं दोषं निवारय सुखं कुब” असा प्रार्थना करून छायापुक्त रवीचे अर्काचे ठायी ध्यान करून अर्कालिंग स्पर्शाने समुद्रज्येष्ठा इ० याने अभिषेक करून वस्त्रादिक उपचारांनी “आरुष्णने०” ह्या मंत्रेकरून पूजा करून श्वेत वस्त्र, व सूत्र याहीकरून वृक्षाला वेष्टन करून गुडोदन निवेदन करून तांबूळ द्यावे. नंतर, “ममप्रीतिकारायेयं मयास्पृष्टापुरातनी ॥ अर्कजाब्रह्मणासृष्टाद्यास्मान्सं प्रातेरक्षतु,” या मंत्राने अर्कवृक्षाला प्रदक्षिणा करून पुनः “नमस्ते भंगले देवि नमःसवितुरात्पजे ॥ त्राहिमा रूपया देवि पत्नीत्वं मइहागता ॥ अर्कत्वं ब्रह्मणा सृष्टः सर्वप्राणिहिता यच्च ॥ वृक्षानामधिभूतस्त्वं देवानां प्रीतिवर्धन ॥ तृतीयोद्वाहजं पापं मृत्युंचाशुविनाशय,” या मंत्रांनी प्रदक्षिणा करावी. मग अंतःपटधारणापासून कन्यादानपर्यंत विधि करून कन्यादास्याने “आदिशस्यप्रपौत्रीं सवितुःपौत्रीं अर्कस्यपुत्रींकाश्यपगोत्रामर्ककन्याममुकगोत्रा यवरायतुभ्यंसंप्रददे ॥ अर्ककन्यामिमांविप्र ययाशक्तिविभूषितां ॥ गोत्राय शर्मणे तुभ्यं दत्ता विप्र समाश्रय,” या मंत्राने अर्ककन्या द्यावी. नंतर दक्षिणा देऊन गावत्रीमंत्राने अर्क व वर याला सूत्राचे वेष्टन करून त्या सूत्राने “बृहत्साम०” या मंत्राने अर्कवृक्ष व वर याला कंकण बांधून अर्कवृक्षाच्या चार दिशांचेठायी चार कलश मांडून त्या प्रातिकलशावर नाम मंत्राने विष्णूची षोडशोपचार पूजा करून अर्कवृक्षाच्या उत्तरेस अर्कपत्नीने अन्वारुद्ध होत्सावा वर याने, “अस्याःसम्पक् भायात्त्वसिद्धये पाणिग्रहहोमं करिष्ये,” असा संकल्प करून अन्वाधान करावे. ते असे--“आघारदेवते आग्नेनेखंते बृहस्पतिं अग्निं अग्निं वायुं सूर्यं प्रजापतिंचाभ्यद्रव्येण शेषेण स्विष्टकृतं,” याप्रमाणे अन्वाधान करून आघारांत कर्म करून प्रधानहोम करावा. नंतर “संगोभिरिगिरसो नृहस्पतिस्त्रिष्टुप् ॥ आग्यहोमेवि न्दियोगः ॥ संगोभिरिगिरसो ॥ नृहस्पतय इदंनमम ॥ यस्मैत्वेति वामदेवोभिस्त्रिष्टुप् ॥ यस्मै त्वा काम कामाय वपं सन्नाड्यनामहे ॥ तमस्मभ्यं कामं दत्त्वा यदं त्वं घृतं पिब स्वाहा ॥ अन्नय इदं०” या मंत्रांनी होम करून नंतर व्यस्तसमस्तव्याहतिमंत्रांनी होम करून होम शेष समाप्त करून, “मयारुतमिदं कर्म स्यावरेषु जरायुणा ॥ अर्कापस्याने नो देहि तत्सर्वं क्षंतु मर्दासि” या मंत्राने प्रार्थना करून शांतिसूक्ताचा पाठ केल्यानंतर दोन गाई आचा-याला देऊन आपण धारण केलेली वस्त्रे आचार्याला देऊन दुसरी वस्त्रे धारण करावी. दहा आयवा तीन ब्राह्मणांला भोजन द्यावे. याप्रमाणे अर्कविवाह सांगितला.

श्रीमन्नाथांगिकमलंदीनानाथदयार्णवं
स्मारंस्मारंकामपूरमान्हिकाचरणंत्रुवे ॥

अर्थ—दीन, अनाथ यां विषयी दयासागर भक्तांचे मनोरथ पूर्ण करणारे असे जें श्रीमान् लक्ष्मीपतीचें चरणकमल त्याचें वारंवार स्मरण करून आन्धिक आचार सांगतो.

प्रथमोक्तोबद्धानांप्रकारःसतुयाजुषैः
प्राद्योयत्रस्वसूत्रोक्तोविशेषःस्पन्नबाधकः ॥

अर्थ—ऋक्शाखी यांचा पूर्वी जो निर्णय सांगितला त्याला आपल्या सूत्रामध्ये सांगितलेला विशेष निर्णय बाधक नसेल तर तो यजुःशाखी यांनी ध्यावा.

ब्राह्ममूर्ती लक्षणजे रात्रीच्या चवथ्या प्रहरां उठून श्रीविष्णूचें स्मरण करून गनेंद्र-मोक्षादिक स्तोत्रांचा पाठ करून इष्ट देवतादिकांचें स्मरण करावें. नंतर भूमीची प्रार्थना करावी. प्रार्थनेचा मंत्र—“ समुद्रवसनेदेवि पर्वतस्तनमंडिते ॥ विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्श क्षमस्व मे ” या प्रमाणे प्रार्थना करून गाई इत्यादिक भंगल पदार्थांचें दर्शन घ्यावें.

मूत्रपुरीषोत्सर्गादिविधि— भूमीवर तृण इत्यादिक हातळून मस्तकाला वस्त्र गुंडाळून यज्ञोपवीत कंठलंबित, किंवा पृष्ठभागी अथवा कानावर ठेवून नासिकेवर आच्छादन करून दिवसा व दोहों संधिकाली उत्तराभिमुख आणि रात्री दक्षिणाभिमुख, मानी, पायांत बोडा न घातलेला, बसलेला असा होत्साता मूत्रपुरीषोत्सर्ग करावा. कंठलंबित केल्या वांचूनच यज्ञोपवीत कानावर धारण करणें हा अनाचार होय. मार्ग, जल, देवालय संबंधी स्थळ, नदीचें तीर इत्यादिक स्थलीं मलोत्सर्ग करूं नये. अधिक जागा असल्यास मूत्रोत्सर्ग करणें तो तलाव इत्यादिक जलाशयापासून बारा किंवा सोळा हात जागा सोडून करावा. मलोत्सर्ग करणें तो, मूत्रोत्सर्गाच्या चतुर्गुणित जागा सोडून करावा. सूर्याच्या संमुख मलोत्सर्ग केला असतां व स्वकीय मल अवलोकन केला असतां सूर्य किंवा गाई यांचें दर्शन घ्यावें. तदनंतर शिश्न हातांत धरलें होत्साता उठून शुद्धि करावी. मूत्रोत्सर्गाचे ठायीं शुद्ध मृत्तिका घेऊन लिंगास एक वेळ, डाव्या हातात तीनवेळ आणि उभय हातांस दोन वेळ याप्रमाणें मृत्तिका लावून तितक्या वेळ उदकानें प्रक्षालन करावें. “रतस्त्रलन झालें असतां मूत्राच्या द्विगुण, मैथुनाचे ठायीं त्रिगुण शुद्धि करावी असे सांगितलें आहे. ” मलोत्सर्गाविषयी शुद्धि—“लिंगास एक वेळ, गुदद्वारास तीन वेळ, डाव्या हातास दहा वेळ, व दोहों हातांस सात वेळ, पायांला सात सात वेळ किंवा तीन वेळ याप्रमाणें मृत्तिका लावावी. प्रत्येक मृत्तिका लावल्यावर उदकानें प्रक्षा-

लन करावें. गृहस्थाश्रमी याला जें शीच सांगितलें त्याच्या द्विगुण ब्रह्मचारी यानें करावें, व चतुर्गुणित संन्यासी यानां करावें, याप्रमाणें मृत्तिका व जल यांहींकरून शुद्धि करावी. दिवसा जो शुद्धीचः प्रकार सांगितला त्याच्या अर्धाभागानें रात्री शुद्धि जाणावी. रात्रीच्या अर्धाभागानें रोगी यानें शौच करावें. रोगी याच्या अर्धाभागानें शूद्र, स्त्रिया व बालक यांस शुद्धि सांगितली आहे. " पूर्वी मृत्तिका इत्यादिकांची जो संख्या सांगितली त्याप्रमाणें शौच करून जर मल, दुर्गंध दूर न होतोल तर जितक्यावेळ आणखी मृत्तिका लावणें अवश्य वाटेल तितक्या वेळ लावून मल व दुर्गंध दूर होतोल असे शुद्धि करावी. शौचा विषयी मृत्तिका घेणें ती ओल्या आवळ्याच्या परिमाणाची असतानी. जल न मिळाल्या कारणानें शुद्धि करण्यास विलंब होईल तर सचेल खान करावें. यथोक्त शौच न केलें असतां, गायत्रीमंत्राचा आठशें जप करून तीन प्राणायाम करावे. या नंतर चूळ भरून टाकणें ते—केवल मूत्र केले असतां चार, मलाचा त्याग केला असत नारा किंवा आठ, आणि भोजन झाल्यावर सोळा याप्रमाणें उदकानें चूळ भरून टाकावे.

आचमनाचा विधि—मस्तकास व कंठास वस्त्र न गुंडाळलेला, बसलेला, डाव्या खांद्यावरून यज्ञोपवीत धारण केलेला असा पूर्वाभिमुख किंवा उत्तराभिमुख होत्वाता, मुक्त आहेत अंगुष्ठ कनिष्ठिका ज्याच्या अशा हस्तानें फेस व बुडबुडे यांहीं करून रहित, क्षीत, हृदयास ज्ञात होणारें असे उदक अंगुष्ठमूलेकरून त्रिवार प्राशन करावें. 'केशवायनमः, नारायणायनमः, माधवायनमः, ह्या तीन नामांनी प्रत्येक नामास उदक प्राशन करावें. "गोविंदायनमः" ह्या एक मंत्रानें दक्षिणकर्णाचें प्रक्षालन करावें. "विष्णवेनमः मदुसू-दनायनमः" ह्या दोन मंत्रांनी दोन ओष्ठ प्रक्षालन करावे. "त्रिविक्रमायनमः" ह्या एक मंत्रानें दोन ओष्टांस प्रोक्षण करावें. "वामनायनमः" ह्या एक मंत्रानें उदक अभिर्ष-षण करून "श्रीधरायनमः" ह्या एक मंत्रानें वामकराचें प्रक्षालन करावें. "हृषीकेशा-यनमः" ह्या एक मंत्रानें दक्षिण पायाचें प्रक्षालन करावें. "पद्मनाभायनमः" ह्या एक मंत्रानें वाम पायाचें प्रक्षालन करावें. "दामोदरायनमः" ह्या एक मंत्रानें मस्तकावर प्रोक्षण करावें. "संकर्षणायनमः" ह्या मंत्रानें ऊर्ध्वोष्ठाचें प्रोक्षण करावें. " वासु-देवायनमः " ह्या मंत्रानें नासिकेच्या दक्षिण छिद्रास स्पर्श करावा. " प्रदुभ्नायनमः " ह्या मंत्रानें नासिकेच्या वाम छिद्रास स्पर्श करावा. " अनिरुद्धायनमः " ह्या मंत्रानें दक्षिण नेत्रास स्पर्श करावा. " पुरुषोत्तमायनमः " ह्या मंत्रानें वामनेत्रास स्पर्श करावा. " अधोक्षजायनमः " ह्या मंत्रानें दक्षिण कर्णास स्पर्श करावा. ' नारासिंहान ममः' ह्या मंत्रानें वामकर्णास स्पर्श करावा. या प्रमाणें दक्षिणोपक्रमानें क्रमें करून जाणावें.

“अव्युतायनमः” ह्या मंत्राने नाभीस स्पर्श करावा. “जनार्दनायनमः” ह्या मंत्राने हृदयास स्पर्श करावा. “उपेन्द्रायनमः” ह्या मंत्राने मस्तकास स्पर्श करावा. “हरयेनमः” ह्या मंत्राने दक्षिणभुजास स्पर्श करावा. “श्रीकृष्णायनः” ह्या मंत्राने वामभुजास स्पर्श करावा.

कोणी ग्रंथकार केशवादिक तीन नामांनी प्रत्येक नामास आचमन करावे, दोन नामांनी दोन हस्तांचे प्रक्षालन करावे, दोन नामांनी दोन कपोलांस मार्जन करावे, दोन नामांनी दोन ओष्टास मार्जन करावे. एक नामाने हस्तास मार्जन करावे, एक नामाने पायास मार्जन करावे, अथवा दोन दोन नामांनी ओष्टास मार्जन व प्रक्षालन करावे, हस्त व पाय यांला एकेक नामाने मार्जन करावे, अवशिष्ट नामे पूर्वाप्रमाणे जाणावी असे द्वाण तात. सामध्ये स्पर्श कसा करावा ते सांगतो-- अंगुलींच्या अग्रानी उर्ध्वोष्टास स्पर्श करावा. अंगुष्ठ व तर्जनी यांहींकरून नासिकाच्छिद्रांस स्पर्श करावा. अंगुष्ठ व अनामिका यांहीं करून नेत्रांला स्पर्श करावा. अंगुष्ठ व कनिष्ठिका यांहीं करून कान व नाभि यांला स्पर्श करावा. पसरलेल्या हाताने हृदयाला स्पर्श करावा. हस्ताने मस्तकाला स्पर्श, अंगुलींच्या अग्रानी भुजांला स्पर्श करावा. पूर्वोक्त हा आचमनाचा विधि करण्याविषयी असमर्थ असेल तर त्याने केशवादिक तीन नामांनी तीन आचमने करून हस्तप्रक्षालन करून दक्षिणकर्णास स्पर्श करावा. कांस्य, लोखंड, शिसे, कथील आणि पितळ ह्या धातूंच्या पात्रांनी आचमन करू नये. श्रीताचमन-गायत्रीमंत्राचे तीन चरण; ‘आपोहिष्ठा०’ ह्या तीन ऋचांचे नऊ चरण; सात व्याहृतिमंत्र; गायत्रीचे तीन चरण; आणि शिरोमंत्राचे दोन भाग याप्रमाणे चोवीस स्थाने जाणावी.

आचमनाची निमित्ते-कर्भकाली अधोवायु सरणे, अश्रुपात, क्रोध, मार्जारस्पर्श, शिक, वृषपरिधान, रज्जकादिक व चांडाल यांचे दर्शन, यांतील कोणतेहि निमित्त असतां आचमन करावे. स्नानकेल्यावर, कांहीं पदार्थ प्राशन केल्यावर, भोजन केल्यावर, निद्राकरून उठल्यावर आचमन करावे. मलोत्सर्ग, मुत्रोत्सर्ग, व रेत एतत्संबंधी शौच झाल्यानंतर आचमन करावे. सर्भठिकाणी आचमनाचा असंभव असेल तर दक्षिणकर्णास स्पर्श करावा. दातांमध्ये अडकलेले अन्न फार संभाळून काढावे; कारण, रक्त निघाले असतां दोष सांगितला आहे. दातांत अडकलेले ते दातां प्रमाणे होय, अडकलेले अन्न तत्काली न निघतां कालांतरांनी निघाले असतां त्या वेळी आचमन करावे. “डाव्या हातीं दर्भ असतां दक्षिण हस्ताने आचमन करू नये. दोन हातांमध्ये दर्भपवित्र धारण करून आचमन करावे, तेजेकरून तो सोमपान करणारा होईल. ते पवित्रक उच्छिष्ट होत नाही; भोजन व पिश्रुकर्म केले असतां ते पवित्रक टाकावे.” विष्टा व मूत्र यांच्या उत्सर्गकाली दर्भपवित्रक टाकावे

आतां दंतधावन—दंतधावन करावयाचें तें खदिरादि कंटकावृक्ष, अर्कादि क्षीर-गुक्ष व आघाडा इत्यादि काष्ठानां करावें. दांतवणाचें काष्ठ ज्या दिवसां न मिळेल त्या दिवसां, व श्राद्ध, उपोषण इत्यादि निषिद्ध दिवसां वृक्षाच्या पानादिकानें किंवा आंगठ्या जवळचे अंगुलीवांचून इतर अंगुलीनीं अथवा बारा चुळानीं दांत शुद्ध करावे.

संक्षेपानें ज्ञानविधि सांगतो—नदी इत्यादिक तीर्थांप्रति जाऊन शिखाबंधन करून गुढ-ग्याच्यावर उदक असेल तर उभें राहावें, तितकें उदक नसेल तर बसावें, नंतर आचमन करून संकल्प करावा. तो असा—“मम कायिकवाचिकमानसिकदोषनिरसनपूर्वकं सर्वक-मसुं शुद्धिसिद्धयर्थं प्राप्तःस्नानं करिष्ये,” असा संकल्प करून उदकास नमस्कार करावा. नंतर पूर्वाभिमुख किंवा प्रवाहाच्या संमुख होतसाता तीन वेळ बुडो मारून सर्व अंगांचें प्राक्षालन करून ज्ञान करावें. नंतर दोनवेळ आचमन करून “आपोहिष्ठा०” ह्या तीन ऋचांनीं मार्जन करून “इमंमेगंगे०” ह्या मंत्रानें तीन वेळ उदक टवळून “ऋतं-च०” हें सूक्त तीन वेळ झणून अघमर्षण करावें. कात्यायनशास्त्रो यांनीं “दुपदा०” ह्या ऋचेनें अघमर्षण करावें. उदकामध्यें निमग्न होतसाता ज्ञान करून आचमन करून जलतर्पण करावें किंवा न करावें. तें असें—उपविती होतसाता, “ब्रह्मादयो येदेवास्तान्देवांस्तर्पयामि ॥ भूर्देवानित्यादि.” नंतर निवीती करून “कृष्णद्वैपायनादयो येऋषयःतान्ऋषींस्तर्पयामि” इत्यादि नंतर प्राचीनाधीती करून “सोमःपितृमान्यमोंगिर स्वानभिष्वात्तादयोपेपितरः तान्पितृंस्तर्पयामि इत्यादि,” याप्रमाणें तर्पण करावें. एका नदीमध्यें ज्ञान करीत असतां अन्यनदीचें स्मरण करूं नये. ह्या जलतर्पणसमयीं तैत्तिरीयशास्त्री इत्यादिकांनीं तर्पणामध्यें ऋषि इत्यादिक दुसऱ्या देवता सांगितल्या आहेत परंतु संक्षेपविधीमध्यें तें जलतर्पण कृताकृत असल्यामुळें तें ऋषि व देवता सांगितल्या नाहीत.

गृहज्ञान सांगतो—घरीं उष्णोदकानें ज्ञान करावें, शीतोदकानें करूं नये. त्याचा विधि—पान्नांत शीतोदक घालून त्या शीतोदकावर उष्णोदक घालावें. नंतर “ज्ञानो-देवी०, आपः पुनंतु०, दुपदादिवे०, ऋतंच०, आणि आपोहिष्ठा०” ह्या पांच ऋचांनीं तें उदक अभिमंत्रण करून, “इमंमेगंगे०” इत्यादिक मंत्रांनीं तीर्थांचें स्मरण करून ज्ञान करावें. घरीं ज्ञान केलें असतां संकल्प, आचमन, अघमर्षण व तर्पण हीं करूं नयेत. ज्ञान केल्यानंतर आचमन, मार्जन हीं करावीं. याप्रमाणें ज्ञान करून वस्त्रानें किंवा हातानें अंगावरील उदक म घालवितां झणजे अंग न पुसतां सुकें, स्वच्छ पादरें असें कापसाचें वस्त्र नेसून ज्ञान केलें असें वस्त्र घरून उतरावें. “कण्ठहीन, उत्त-

रीबराहित, नम, वस्त्रादित, अशा पुढ्याने श्रौतस्मार्त कर्मे करूं नयेत." दुहेरी वस्त्र धारण करणारा, दग्धवस्त्र धारण करणारा, शिवलेले व ग्रंथियुक्त वस्त्र धारण करणारा, भगवे वस्त्र परिधान करणारा, आणि दिगंबर हे नम होत. पिळलेले वस्त्र खांद्यावर धारण करूं नये. घरी वस्त्र पिळावपाचे तें चौघडी करून खाली दशा केलेले असें स्थळावर पिळावे, नदीचे ठायीं पिळणें तें वर दशा केलेले असें भूमीवर पिळावे, विघडी केलेले पिळूं नये. श्याचा पिता व ज्येष्ठ भाता हे जिवंत असतील त्यानीं उत्तरीय धारण करूं नये. आंगवस्त्र तर सर्वांनीं धारण करावे. याप्रमाणें प्रातःकालीन नियम-ज्ञान सांगितलें.

चांडाल, सुतकी, वाळंतीण, रजस्वला, चितासंबंधी काष्ठ, प्रेत, चांडालाची सावली, इत्यादिकांचा स्पर्श झाला असेल तर सचैल ज्ञान करावे. चांडाल इत्यादिकांचा जो स्पर्श करणारा त्यापासून आरंभ करून त्यानें दुसऱ्याला स्पर्श केला, दुसऱ्यानें तिसऱ्याला याप्रमाणें स्पर्श झाला असता तिसऱ्यापर्यंत सचैल ज्ञान करावे. चौथ्यानें आचमन मात्र करावे. पांचव्यापासून पुढें उदकानें प्रोक्षण करावे. दुसरा इत्यादिकास काठी, तृण इत्यादिकांच्या अंतरानें स्पर्श झाला असेल तर आचमनच करावे. वस्त्राच्या व्यवधानानें साक्षात् स्पर्शच होतो यास्तव आविषयी चौथा जो त्यानेंच आचमन करावे. काहींएक निमित्तानें ज्ञान प्राप्त असेल तर तें रात्रीमध्येहि करावे. मृतदिवस, पुत्रादिजन्मकाल, संक्रांति, श्राद्ध-दिवस, स्वकीय जन्म दिवस, स्पर्शास अयोग्य अशाचा स्पर्श हीं निमित्तें असतां उष्णोदकानें ज्ञान करूं नये. नैमित्तिक ज्ञानामध्ये उदकानें तर्पण करणें इत्यादिक विधि नाही. नियमज्ञान (प्रातःकालीन ज्ञान) केल्याखेरीज भोजन केलें असतां उपोषण करावे. ग्रहण, संक्रांति इत्यादिक निमित्त प्राप्त झालें असून ज्ञान केल्यावांचून भोजन, पान करील तर गायत्री मंत्राचा आठ हजार जप करावा. शूद्रादिकांचा स्पर्श झाला असून ज्ञान केल्यावांचून भोजन करील तर उपोषण करावे. कुतरा, कावळा, चांडाल इत्यादिकांचा स्पर्श झाला असतां ज्ञान केल्यावांचून भोजन, पान करील तर त्रिरात्रव्रत करावे. रजक इत्यादिकांचा स्पर्श झाला असेल तर त्याच्या अर्धे प्रायश्चित्त करावे. याप्रमाणें नैमित्तिक ज्ञान सांगितलें.

दर्श, व्यतीपात, रथसप्तमी इत्यादि पर्वणीदिवसीं ज्ञान, कार्तिकज्ञान, आणि माघ-ज्ञानादिक हीं काव्य ज्ञानें होत. याप्रमाणें जलावगाह्यादिरूप झ० जलामध्ये बुडी इत्यादि वास्तु ज्ञानें करणें तीं वारुणज्ञानें सांगितलीं.

गौण ज्ञानें सांगतीं.—“ आपोद्धिष्ठा०” इत्यादिक मंत्रांनीं अंगावर प्रोक्षण करणें तें मंत्रज्ञान होय. गायत्री मंत्रानें दहा वेळ उदक अभिमंत्रित करून त्या उदकानें सर्व अंगें

प्रोक्षण करणें तें गायत्र्यज्ञान होय. भस्मानें ज्ञान करणें तें आग्नेयज्ञान. ओळें वस्त्र करून घानें आंग पुसणें तें कापिलज्ञान. विष्णूचें चरणतीर्थ, ब्राह्मणाचें चरणतीर्थ, पाहाकिल्लेन प्रोक्षण, व विष्णूचें ध्यान इत्यादिक दुसरीं अनेक ज्ञानें सांगितलीं आहेत. गीणज्ञानांनीं जप, संध्या इत्यादिक करण्याविषयीं शुद्धि होते. श्राद्धकर्म, देवपूजा इत्यादिकाविषयीं शुद्धि होत नाहीं. गीणज्ञानेंकरून ब्रह्मयज्ञ करावा किंवा न करावा.

तिलकाचा विधि—“प्रातःकालीन ज्ञान केल्यानंतर मृत्तिकेनें उभा तिलक करावा. निव्व होम केल्यानंतर भस्मानें आडवा तिलक करावा. गोपीचंदन, तुलसीमूल, सिधु-तीर, भागीरथीचें तीर, आणि ज्या ठिकाणीं वाळूळें असतात तें स्थल, इत्यादिक स्थलांतल्या मृत्तिका घ्याव्या. याप्रमाणें मृत्तिका घेऊन त्या मृत्तिकेचा ललाट, उदर, हृदय, कंठ, दक्षिणपार्श्व, दक्षिणाबाहु, दक्षिणकर्णदेश, वामपार्श्व, वामबाहु, वामकर्णदेश, पृष्ठ, ककुत् (श्रीवापृष्ठभाग) ह्या द्वादश स्थानीं, शुक्लपर्षी केशवादि द्वादश नामांनीं, व कृष्ण पर्षी संकर्षणादि द्वादश नामांनीं आणि मस्तकीं वासुदेव ह्या नामानें तिलक लावावा.

आतां भस्माचा त्रिपुंड्र—“श्राद्ध, यज्ञ, जप, होम, वैश्वदेव, देवपूजा यांचे ठायीं भस्माचा त्रिपुंड्र लावावा, तेणेंकरून तो मानव पूतात्मा होताता मृत्युसंजिकितो.” भस्माचे त्रिपुंड्रधारणाचा विधि—हातामध्ये भस्म घेऊन “अग्निरितिभस्म वायुरितिभस्म जलमितिभस्म स्थलमितिभस्म व्योमेतिभस्म सर्वहवाइदंभस्म मनएतानिचक्षूंषिभस्मानि,” ह्या मंत्रानें तें भस्म अभिमंत्रित करून त्यांत उदक घालून दक्षिण कराच्या मधल्या तीन अंगुलींनीं भस्म घेऊन ललाट, हृदय, नाभि, कंठ, स्कंध, बाहुसांघे, पृष्ठ, आणि शिर ह्या स्थानीं शिवमंत्रानें, अथवा नारायणाच्या अष्टाक्षरमंत्रानें किंवा गायत्रीमंत्रानें त्रिपुंड्र करावे.

आतां संध्याकाल सांगतीं—“प्रातःकालीं नक्षत्रे चांगलीं दिसत असतां संध्योपासनास आरंभ करणें हा उत्तमकाल, नक्षत्रें अदृश्य होत असतां आरंभ करणें तो मध्यमकाल, आणि सूर्योदय शान्यानंतर आरंभ करणें हा कनिष्ठकाल होय, याप्रमाणें प्रातःसंध्याकाल तीन प्रकारचा जाणावा. सायंकाळीं सूर्य चांगला दिसत असतां संध्योपासनास आरंभ करावा तो उत्तमकाल, सूर्यास्त झालें असतां आरंभ करावा तो मध्यमकाल, आणि नक्षत्रे दिसत असतां आरंभ करणें तो कनिष्ठकाल होय, याप्रमाणें सायंसंध्येचा काल तीन प्रकारचा जाणावा. दंडप्रहर दिवसापासून सायंकाळपर्यंत वाघ्यान्हसंध्याकाल होय. नदी इत्यादिक तीर्थ असतां सर्वशास्त्री यांनीं तनाहें संध्या बाहेर कराव्या हें प्रशस्त होय. सांभिक असेल तर घानें प्रादुष्करण इत्यादिकाच्या अनुरोधेंकरून सायंकाळीन व प्रातःकालीन संध्या घरीं करावी.

अतां ऋक्शाखी यांचा संध्याप्रयोग संक्षेपानें सांगतां.—दोन दोन दर्पांची पानिवेळें प्रथियुक्त किंवा ग्रंथिविरहित करून दोन हस्तामध्ये धारण करून दोन वेळ आचमन करून प्राणायाम करावा. ती असा—“ प्रणवस्य परब्रह्मऋषिः परमात्मादेवता देवी गायत्रीच्छंदः सप्तानां व्याहृतीनां विश्वामित्रजमदग्निभरद्वाजगीतमात्रिवसिष्ठकश्यपा ऋषयः ॥ अग्निवाग्वादिग्रन्थस्पतिवरुणेश्वरेश्वेदेवादेवताः गायत्र्युष्णिगनुष्टुप्बृहतीपांक्तिविष्टुप्लग्नश्छंदांसि ॥ गायत्र्या विश्वामित्रऋषिः॥ सविता देवता ॥ गायत्रिच्छंदः ॥ गायत्रीशिरसः प्रजापातिऋषिः ॥ ब्रह्माग्निवाग्वादियादेवताः यजुश्छंदः ॥ प्राणायामे विनियोगः” ६६ अंगुलींनीं अथवा तर्जनीमध्यमाविरहित अंगुलींनीं नासिका धरून दक्षिणच्छिद्रानें वायु वर ओढून काढावा. नंतर “ओंभूः ओंभूवः ओंस्वः ओंमहः ओंजनः ओंतपः ओंसंभ ओं तत्सवितुर्वरेण्यं ० यात् ओं आपोज्योतीरसोमंतंब्रह्मभूर्भुवः सुवरोम्,” याप्रमाणें प्रणव, सप्त व्याहृति, गायत्री आणि शिर हीं तीन वेळ झणून ढाव्या नासिकाछिद्रानें, कांडलेला वायु सोढावा, याप्रमाणें सर्वशाखासाधारण प्राणायाम जाणावा. अशा रीतीनें प्राणायाम केल्या-नंतर, “ममोपात्तदुरितक्षयद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रसिद्धं प्रातःसंध्यामुपासिष्ये,” असा संकल्प करून मार्जन करावें. मार्जनाचा मंत्र—“आपोहिष्टेति तृचस्यांवरीषः सिंधुद्वीपआपोगायत्री ॥ मार्जनीविने ० ॥ आपोहिष्टा ०” ह्या तीन ऋचांचे, प्रणवयुक्त नऊ पादांनीं कुशोदकेंकरून मस्तकावर नऊ वेळ मार्जन करावें, व “यस्यक्षयाय ०” ह्या मंत्रानें अधोभागीं मार्जन करावें. नदी हत्यादिकांचे ठायीं तथींतलि उदक अथवा तांब्याचें किंवा मृत्तिका इत्यादिकांचे पात्र भुमीवर ठेवून त्या पात्रांतलि उदक, किंवा वायकरावर घेतलेलें उदक दर्भ इत्यादिकानें घेऊन मार्जन करावें, धारें पडणाऱ्या उदकानें मार्जन करूं नये. याप्रमाणें सर्वत्र मार्जनाचा निर्णय जाणावा.

अतां मंत्राचमन — “सूर्यश्वेतिमंत्रस्य याज्ञवल्क्यउपनिषदऋषिः सूर्यमन्युमन्यु पतयो रात्रिश्वदेवताः प्रकृतिश्छंदः मंत्राचमने विनियोगः ॥ सूर्यश्वमामन्युश्वमन्युपतयश्वमन्युकृतेभ्यः ॥ पापेभ्योरक्षंतां ॥ यद्रात्र्यापापमकार्ष ॥ मनसावाचाहस्ताभ्यां ॥ पद्भ्यामुदरेण विश्रा ॥ रात्रिस्तदवलुपंतु यत्किंचदुरितंमयि ॥ इदमहंमामृतयोनौसूर्ये ज्योतिषिजुहोमि स्वाहा.” ह्या मंत्र झणून उदक प्राशन करावें. नंतर आचमन करून मार्जन करावें. मार्जनाचा मंत्र — “आपोहिष्टेति नवऋचस्यांवरीषः सिंधुद्वीपआपोगायत्री ॥ अंसेद्वेअनुष्टुभौ ॥ मार्जनेविनेश्रीगः ॥ आपोहिष्टा ०” “प्रणवमंत्रानें पहिलें, समस्त व्याहृतिमंत्रांचीं दुसरें, प्रणवांत आयचीमंत्रानें तिसरें, आणि “आपोहिष्टा ०” ह्या सूक्तानें चवथें अशीं मार्जनें करावीं. “आपोहिष्टा ०” ह्या सूक्ताची प्रत्येक ऋचा, किंवा ऋचेचें प्रत्येक अर्ध, अथवा

प्रवेशा प्रत्येक चरणे लक्षणं मार्जनार्थं मस्तेकावर उदकसिंचनं करवें. गायत्रीश्रीमंत्राने मार्जनं करून नंतर अघमर्षण करावें. अघमर्षणाचा मंत्र—“ऋतञ्चेतितृप्तस्य साधुस्रग्दंष्ट्रो ऽघमर्षणो भाववृतमनुष्टुप् ॥ अघमर्षणाविनियोगः” दक्षिण हातावर उदक घेऊन “ऋतञ्च० द्या तनि ऋचा किंवा “द्रुपदा०” ही ऋचा जपून दक्षिण नासाछिरेकरून उच्छ्वास रूपाने प्रापपुरुष दक्षिणहस्तस्य उदकावर टाकावा, आणि ते उदक अवलोकन केल्या-बांचून वामभागाच्या भूमिवर टाकावें. नंतर आचमन करून अर्घ्यप्रदान करावें. ते असें—“गायत्र्या विश्वामित्रः सविता गायत्री॥ प्रीसूर्यार्घ्यप्रदानेविनियोगः” असें लक्षणं सूर्याच्या संमुख उभा रहात होस्ताता प्रणवव्याहृतिपूर्वकं गायत्रीमंत्राने उदकाची अंजली द्यावी. या प्रमाणे तीन उदकांजली द्यावे. संध्येचा काळ टळला असेल तर प्रायश्चित्तार्थं चौथे अर्घ्य द्यावें. नंतर, “असावादित्यो ब्रह्म,” द्या मंत्राने, प्रदाक्षिणां फिरत होस्ताता उदकसिंचनं करावें. अर्घ्याच्या अंजलीमध्ये अंगुष्ठ, व तर्जनी यांचा योग करून नये लक्षणं अंगुष्ठ व तर्जनी परस्परांस संलग्न करून नये. कोणी ग्रंथकार अर्घ्यदान हे प्रधानकर्म होय असें लक्षणं तात. दुसरे ग्रंथकार अर्घ्य हे अंगभूत आहे असें लक्षणं तात.

आतां गायत्रीमंत्राचा जप सांगतों—प्राणायाम करून “गायत्र्याविश्वामित्रःसवितागा यत्री ॥ जपेविनि० तत्सवितुर्वरेण्यं शिरसेस्वाहा ॥ भर्गो देवस्य धियाँ नमो भर्गवे वाच ॥ धियो यो नो नेत्रत्रयाय वैषट् ॥ प्रचोदयात् अस्त्रापकट्,” याप्रमाणे षडंग-न्यास करावा, अथवा करू नये; कारण, न्यासाचा विधि वेदांत सांगितला नाही असें गृह्यपरिशिष्टांत स्पष्ट आहे. यावरून अक्षरन्यास, पादन्यासादि, मुद्रादिक विधि, मंत्रांचा शापमोचनादि विधि हे प्रकार तंत्रग्रंथांत सांगितले आहेत, वेदांत सांगितले नाहीत, यावरून हेहि अवश्य कर्तव्य आहेत असें नाही. नंतर मंत्रदेवतेचे ध्यान करावें. कोणी ग्रंथकार गायत्री इत्यादिक देवतेचे ध्यान करावें असें सांगतात. नंतर “आगच्छ वरदे देवि जपे मे सन्धिर्भवे ॥ गायंतं त्रायते यस्मात् गायत्री त्वं ततः स्मृता,” द्या मंत्राने गायत्रीचे आवाहन करून नंतर, “यो देवः सविता ऽस्माकं धियो धर्मादिगोचरे ॥ प्रेरयेत्स्य तद्भर्गस्तद्भरेण्यमुपास्महे,” याप्रमाणे मंत्रार्थाचे चिंतन करित मौन होस्ताता, प्रातः-कालीं सूर्याच्या संमुख उभा राहून सूर्यमंडल दृष्टिगोचर होई तावकालपर्यंत, प्रणव व व्याहृति यांहीयुक्त अशा गायत्रीमंत्राचा १०८, किंवा २८, अथवा १० जप करावा. सायंकालीं वायव्य दिशेला संमुख होस्ताता नक्षत्रे दृष्टिगोचर होत तोंपर्यंत जप करावा, हा विशेष जाणावा. अनध्यायदिवसी अष्टावीस, प्रदोषदिवसी दहा जप करावा असें

कारिकेमध्ये सांगितले आहे. द्वादश, पौर्वर्ती, इत्यादिकांच्या माला करून या मालांनी अथवा अंगुलीच्या पर्वानी जप करावा. एकशे आठ, चौपन, अथवा सत्तावीस असे मालेस मणि असावे: उत्तरन्यास करून उपस्थान करावे. ते असे—“जातवेद० तच्छेषो० नमोब्रह्मणे०” या मंत्रांनी सायंकाली व प्रातःकाली उपस्थान करावे, असे गृह्यपारिशिष्टाचे मत आहे. स्मृत्यंतरी, सूर्य आहे देवता ज्यांची अशा “मित्रस्य चर्षणा०” इत्यादिक मंत्रांनी प्रातःकाली, व वरुणपर्दानी युक्त अशा “इममेवरुण०” इत्यादिक मंत्रांनी सायंकाली सूर्योपस्थान करावे असे सांगितले आहे. उपस्थानानंतर “प्राच्यै दिशेनमईद्रायनमः, आग्नेयैदिशेनेमभ्रमेनमः” इत्यादि प्रकारे करून दश दिशांचे वंदन केल्यानंतर, “संध्यायैनमः, गायत्र्यैनमः, सावित्र्यैनमः, सरस्वत्यैनमः, सर्वाभ्यो देवताभ्योनमः” असे नमस्कार करून “उत्तमे शिखरे जाते भूम्यां पर्वतमुर्धनि ॥ ब्राह्मणैरभ्यनुज्ञाता गच्छ देवी ययासुतं” या मंत्राने संध्येचे विसर्जन करून, “ भद्रं नो अपिवातयमनः” हा मंत्र त्रिवार झणून प्रदक्षिण फिरत होत्साता, आसखलोकादापातालादालोकालोकपर्वतात् ॥ ये संति ब्राह्मणा देवतास्तेभ्यो निखं नमोनमः” या मंत्राने भूमिसे स्पर्शपूर्वक नमस्कार करून द्विवार आचमन करावे. याप्रमाणे ऋक्शाखी यांचा संध्याविधि संक्षेपाने सांगितला.

तैत्तिरीयशाखी यांचा संध्याप्रयोग.—आचमना पासून संकल्पापर्यंत प्रयोग पूर्वीप्रमाणे तैत्तिरीयशाखी यांनी करून गायत्रीचे ध्यान करून आवाहन करावे. आवाहनाचे मंत्र—“ आयातु वरदा देवी अक्षरं ब्रह्मसमितं ॥ गायत्रीं छंदसां माते दंब्रह्म जुषस्य मे ॥ सर्ववर्णे महादेवी संध्याविद्ये सरस्वति ॥ अजरे अमरे देवि सर्वे देवि नमोस्तु ते ॥ ओजोसि सहोसि बलमासि भ्रजोसि देवानां धामनामासि विश्वमासि विश्वायुः सर्वमासि सर्वा युरभिभुरोम् ॥ गायत्रीमावाहयामि ॥ सावित्रीमावाहयामि ॥ सरस्वतीमावाहयामि ॥ छंदऋषीणावाहयामि ॥ श्रियमावाह० िहय मावाह० ” या मंत्रांनी संध्येचे आवाहन करून मार्जन पूर्वी प्रमाणे करावे. मार्जन केल्या नंतर हातावर उदक घेऊन “ आपोहिष्ठा सर्वविश्वा भूतान्पापः प्राणावाआपः मशवआपोन्नमापोमृतमापः सम्राडापोविराडापःश्वराडापःशंहापः स्यापोऽयोतीः ॥ व्यापः सत्यमापः सर्वादेवता आपोभूर्भुवः सुवराफ ओ ” ह्या मंत्राने उदक अभिमंत्रण करून “ सूर्यश्च० ” या मंत्रे करून पूर्वी प्रमाणे मंत्राचमन करावे. नंतर “ दधिक्रान्णो० ” ही ऋचा झणून “ आपोहिष्ठा० ” ह्या तीन ऋचा, “ हिरण्यवर्णाः० ” आणि “ पवमानः सुवर्जनः० ”, हा अनुवाक, ह्या मंत्रे करून प्रत्येक ऋचेच्या अंती मार्जन या प्रमाणे सर्व मंत्रांनी मार्जन करावे. नंतर अघमर्षण करून किंवा न करितां अर्घदाना पासून गायत्रीजपांत कर्म करावे. गायत्रीचे आवाहन करणे ते मंत्रविरहित पूर्वी प्रमाणे करावे. न्यासविधि वेदांत सांगितला नाही

हैं पूर्वी सांगितलेंच आहे. गायत्रीजप केल्या नंतर उपस्थान करावें. तें असें—
 “ मित्रस्य चर्षणी० मित्रोजनान्० प्रसमित्र० यच्चिद्धिते० यतिकचेदं० कितवासोयारि० ”
 ह्या सहा ऋचा झणून उपस्थान करून प्राग्देशे याश्वदेवता एतस्यां प्रतिवसंसेताभ्यश्च
 नमोनमः ” इत्यादिक मंत्रांनीं पूर्वादिक चार दिशा, उर्ध्वदिशा, आणि अधरादिशा
 ह्या सहा दिशाला नमस्कार करून, “ अवांतरायै दिशेयाश्च देवता एतस्यां प्रतिवसंसे-
 ताभ्यश्च नमोनमः ” इत्यादिक मंत्रांनीं दिशाला नमस्कार करावा. नंतर “ नमो
 गंगायमुनयोर्मध्ये० ” इत्यादिक मंत्रानें ऋषि, देव यांचा नमस्कार करून, स-स्वन्तु-
 दिशो० ” हा मंत्र पठण करून गोत्र, प्रवर, नाम यांचा उच्चार करून पूर्वी प्रमाणें
 भूमिला स्पर्श पूर्वक नमस्कार करून पूर्वी सांगितल्या प्रमाणें संध्येचें विसर्जन करावें.
 याप्रमाणें तैत्तिरीयशाखी यांचा संध्याप्रयोग सांगितला.

कात्यायनांचा संध्याप्रयोग. आचमन करून, “ भूः पुनातु भुवःपुनातु

स्वः पुनातु भूर्भुवःस्वः पुनातु ” इत्यादिक मंत्रविधीनें शुद्धि करून “ अपवित्रः पवि-
 त्रोवा० ” ह्या मंत्रानें त्रिण्णुस्मरण करावें. नंतर आसनादिक विधि करून द्विवार आच-
 मन करून प्राणायाम करावा, व पूर्वी प्रमाणें संकल्प करून गायत्री देवीचें आवाहन
 करावें. आवाहनाचे मंत्र — “ गायत्रीं त्र्यक्षरांवालां साक्षसूत्रकमंडलुं ॥ रक्तवस्त्रांचतुर्व-
 कांहंसवाहनसंस्थितां ॥ ब्रह्मणीं ब्रह्मदेव्यां ब्रह्मलोकनिवासिनां ॥ आवाहयाभ्यहं देवीमायातीं
 सूर्यमंडलात् ॥ आगच्छवरदेदेवित्र्यक्षरे ब्रह्मवादिनि ॥ गायत्रीं छंदसां पातर्ब्रह्मयोने नमोस्तु
 ते, ” हे मंत्र झणून गायत्रीचें आवाहन करून पूर्वी सांगितल्या प्रमाणें “ आपो-
 हिष्टा० ” ह्या तीन ऋचांनीं मार्जन करावें. “ सूर्यश्चतिमंत्रस्य नारायणऋषिः ॥
 सूर्यो देवता ॥ अनुष्टुप् छंदः ॥ आचमने विनियोगः ॥ सुर्यश्च० ” हे मंत्र झणून
 उदक प्राशन करून, नंतर आचमन करावें. “ आपोहिष्टा० ” ह्या नऊ ऋचांनीं
 मार्जन करावें असें कोणी ग्रंथकार झणतात. बहुत ग्रंथकार तर, संकल्प इत्यादिक केल्या-
 नंतर “सूर्यश्चाति” ह्या मंत्रानें मंत्राचमन करून “आपोहिष्टा०” ह्या तीन ऋचांनीं प्रत्येक
 चरणाच्या अंतीं मार्जन करून नंतर अघमर्षण करावें, दोन मार्जनें करूं नयेत असें झण-
 तात. “सुमित्र्यादुर्मीत्र्याशतिद्वयोः प्रजापतिऋषिः आपोदेवता ॥ यजुश्छंदः ॥ आदानप्रक्षेपविनियो-
 गः ॥ सुमित्र्या न आप ओषधयः संतु ” ह्या मंत्रें करून हातावर उदक घेऊन, “सुमित्र्यास्तस्मै
 संतु योऽस्मान् द्वौ द्वौ यंचवयं द्विष्मः ” हा मंत्र झणून वामभागाच्या भूमीवर तें टाकावें. तदनंतर
 “ऋतंच०” ह्या तीन ऋचा झणून किंवा “दुपदा०” ही त्रिवार ऋचा झणून पूर्वीप्रमाणें
 अघमर्षण करावें. सायंकाली व प्रातःकाली पुण्युक्त उदकांनें, त्रिवार अर्घ्य पूर्वीप्रमाणें द्यावें,

मध्यान्हकालीं अर्ध एकच घावें. गायत्रीमंत्रानें आसमंतात् उदक सिंचन करीत प्रदक्षिण फिरावें. आतां उपस्थान सांगतो. उपस्थानाचे मंत्र—“उद्वयमुदुस्यमिति द्वयोः प्रस्कम्बः सूर्पोनुष्टुप् गायत्र्यौ ॥ चित्रदेवानामागिरसःकुत्सः सूर्यास्त्रिष्टुप् ॥ तच्चक्षुर्दध्यङ्गधर्वण सूर्यः पुरउष्णक् ॥ उपस्थाने विनियोगः ॥ उद्वयंतमस० १, उदुसंजा० १, चित्रदेवा० १, तच्चक्षुर्देवहित०” ह्या ऋचा, ऊर्ध्वबाहु, सूर्याकडे पाहात होत्साता शाखानुरूप पठण कराव्या. नंतर प्राणायाम इत्यादिक करावा. न्यास, मुद्रा, तर्पण इत्यादिक विधि कृता-कृत आहे. “तेजोसीति परमेष्ठी प्रजापतिराज्यंयजुः ॥ आवाहनेविनियोगः ॥ तेजोसिशुक्र-मस्यमृतसि धाम्नानामासिप्रियंदेवानामनाभृष्टं देवयजनमसि ॥ परोरजस इतिविमलः परम त्मानुष्टुप् ॥ गायत्र्युपस्थानेविनियोगः ॥ गायत्र्यस्येकपदीद्विपदी त्रिपदी चतुष्पदपदासि नहिप द्यसे नमस्ते तुरीयाय दर्शनाय पदाय परोरजसे सावदोम्” या मंत्रांनीं उपस्थान केल्यानंतर गायत्रीजपापर्यंत कर्म पूर्वीप्रमाणें करावें. तदनंतर शाक्तिमान् असेल तर ज्ञानें “विधाट्” हा अनुवाक किंवा पुरुषसूक्त, अथवा शिवसकल्पसूक्त, किंवा मंडलब्राह्मण यांहींकरून उपस्थान करावें ऋक्शाखेमध्येजसें दिशांत बंदन करण्याविषयी उक्त आहे तद्वत् एथें दिशांला बंदन कित्तिएक करितात- तदनंतर, “उत्तमे शिखरे” “देवागातुं विदोगातुं” ह्या मंत्रांनीं सध्येचें विसर्जन करावें. भूमौला नमस्कार, इत्यादिक कर्म पूर्वी प्रमाणें करावें. याप्रमाणें काश्यायनांची संध्या सांगितली.

“जे द्विज, नियमंकरून संध्येची उपासना करितात ते निष्पाप होत्साते अंतीं ब्रह्मलो-काप्रत जातात. जो द्विज संध्या करीत नाही तो अपावित्र होय, व तो अपावित्र असल्यामुळें जें अन्य धर्मकृत्य करील त्या कृत्याचें त्यास फल मिळणार नाही, आणि तो जिवंत असतां शूद्र होतो व मृत झाल्यानंतर निश्चयें श्वाण होतो असें समजावें.

प्रातःसंध्या, मध्यान्हसंध्या व सायंसंध्या ह्यांचे जे मुख्यकाल सांगितले आहेत ते टळ-ताल तर प्रायश्चित्तार्थ एक अर्धदान अधिक करावें, व रात्री प्रहरपर्यंत दिवसास सांगि-तलेलीं कर्में करावीं. ब्रह्मपत्र, सौरसूक्तपठन हीं रात्रीं करूं नयेत. सर्वथा संध्येचा लोप होईल तर प्रत्येक संध्यानिमित्तक एक उपोषण, दहा सहस्र, किंवा १००८ गायत्रीजप करावा. अति असामर्थ असल्यामुळे संध्येचा लोप होईल तर प्रतिसंध्येस १०० गायत्रीजप करावा. दोन दिवस, तीन दिवस, संध्यालोप होईल तर हीं सांगितलीं यांची आवृत्ति करावी तीन दिसांहून अधिक दिवस संध्येचा लोप होईल तर कृच्छ्रादिक प्रायश्चित्त करावें.

औपासनहोम — हा होम देणें, तो आपण स्वतः घावा हा मुख्य होय, आपणास शक्ति नसेल तर पत्नी, पुत्र, कुमारी, भाता, शिष्य, भगिनीपुत्र, नामात! अथवा ऋदिवक

पानून कोणाकडून देववावा. पुत्र इत्यादिकानें होम देणें असेल तर दंपतींनीं जवळ असतां किंवा दोघांतून एक तरी जवळ असतां द्यावा, यजमान किंवा पत्नी बांनीं द्याग झणावा. यजमानपत्नी सभिध नसेल तर तिच्या आज्ञेकरून ऋत्विक् इत्यादिकानेंहे द्याग झणावा. पत्नी रजस्वला, वाळंतीण, भ्रांतिष्ठ इत्यादिक असेल तर तिच्या आज्ञेवाचूनहि ऋत्विक् इत्यादिकानें द्याग झणावा. “आपण होम करून जें फल प्राप्त होतें त्याच्या अर्धें फल अन्यानीं होम केला असतां प्राप्त होतें.” पर्वाचे दिवसीं तर होम आपणच करावा. प्रातःकालीं सूर्योदयाच्या पूर्वी, व सायंकालीं सूर्यास्ताच्या पूर्वी अग्नि किंवा गृध्राग्नि प्रज्वलित करून प्रातःकालीं सूर्योदयानंतर, व सायंकालीं अस्तानंतर होम द्यावा. प्रादुष्करणाचा काळ टळेल तर आज्यसंस्कारपूर्वकं सुवापात्रानें आज्याहुति “ओं भूर्भुवः स्वः स्वाहा” ह्या मंत्रानें द्यावी, हें सर्व प्रायश्चित्त करून नंतर होम द्यावा. सूर्योदयापासून दहा घटिकांपर्यंत प्रातर्होमाचा मुख्य काल होय. दहा घटिकानंतर सायंकालपर्यंत गौण काल जाणावा. सायंकालीं नऊ घटिकांपर्यंत मुख्यकाल, नऊ घटिकानंतर प्रातःकालपर्यंत गौणकाल जाणावा. होमाचा मुख्यकाल टळेल तर “कालातिक्रमनिमित्तप्रप्यैश्चित्त पूर्वकममुकहोमं करिष्ये” असा संकल्प करून आज्यसंस्कार करावा. नंतर सुत्रिपात्रामध्ये चार वेळ आज्य घेऊन सायंकालीं “दोषानस्तर्नमः स्वाहा.” ह्या मंत्रानें आहुति द्यावीः प्रातःकालीं असेल तर “प्रातर्वस्तर्नमः स्वाहा” ह्या मंत्रानें द्यावी. याप्रमाणे प्रायश्चित्ताहुति देऊन होमद्रव्याचा संस्कार करून नित्यहोम करावा. पूर्वी श्रौतहोम करून नंतर स्मार्तहोम करावा. कोणी ग्रंथकार स्मार्तहोम पूर्वी करावा असें झणतात. आधान व पुनराधान यांचे टायीं सायंकालीं होमाचा आरंभ करावा. सायंकालीं व प्रातःकालीं होमद्रव्य एक, व होमकर्ताहि एक असावा. जर प्रातःकालीं होम देणारा यजमान आहे तर कर्त्ता भिन्न शाला असा दोष नाही.

आश्वलायनांचा स्मार्तहोमाचा प्रयोग.—कर्मानें आचमन व प्राणायाम करून देशकालांचा उच्चार केल्यानंतर “श्रीपरमेश्वरप्रसन्नार्थं सायभौपासानहोमं प्रातरौपासनहोमं वामुकद्रव्येण करिष्ये” असा संकल्प करून “ चत्वारिंशं०” हा मंत्र झणून अग्निचे ध्यान करावें. नंतर हातांत उदक घेऊन तीन वेळ, कुंडाच्या अथवा रथांडिलाच्या सर्भोवतीं सिंचन करावें. तसेंच दर्भाचे परिस्तरण करावें, व त्रिवार उदक प्रोक्षण करावें. नंतर कुंडाच्या उत्तरेस ठेविलेलें असें समिधापुक्त होमद्रव्य प्रज्वलित अशा दर्भानें प्रकाशित करून उदकानें प्रोक्षण करून तेंच दर्भकोळीत पुनः त्रिवार होमद्रव्याच्या सर्भोवती फिरवून टाकावें, व होमद्रव्य अग्निच्या पश्चिमेस दर्भावर ठेवून “ विश्वानिमो०” ह्या

मंत्रां अग्नीची गंधादिकानीं पूजा करून प्रजापतीचें मनामध्ये ध्यान करीत असता अग्नीवर समिध देऊन तसाच आग मनांत झणून समिध प्रदिस घाल्यानंतर शतसंख्याक तांदुळ घेऊन आ तांदुळांची "अग्रपरेवाहा" या मंत्रानें सायंकाळीं पहिली आहुति, व "सूर्यार्य स्वाहा" या मंत्राने प्रातःकाळीं पहिली आहुती, आणि शंभरपेक्षा अधिक असे तांदुळ घेऊन आहोकरून, "प्रजापतये०" असा मनांत उच्चार करून होम व आग याही करून, दुसरी आहुति सायंकाळीं व प्रातःकाळीं याची. परिस्तरण घातलेले दर्भ काढून पूर्वाप्रमाणें उदकाचें सिंचन व प्रोक्षण करून उभें राहून अग्नीचें उपस्थान करावें. उपस्थानाचे मंत्र "अग्रआयुंघोतितिसृणांशतवैखानसाभिः पवमानोगायत्री ॥ अग्न्युपस्थानेविनियोगः ॥ अग्नेत्वनइतिचतसृणांगीपायनावंधुःसुबंधुःश्रुतबंधुःप्रबंधुःश्राग्रीर्होपदा-विराट् ॥ अग्न्युपस्थानेवि० ॥ प्रजापतीहिरण्यगर्भःप्रजापतिस्त्रिष्टुप् प्रजापत्युपस्थानेवि० ॥ संतुन्तन्वन्देवान्अभिर्जगती ॥ यद्वादेवाप्रजापतिर्जगती ॥ उपस्थानेवि० ॥ हिरण्यगर्भोहिरण्यगर्भःप्रजापतिस्त्रिष्टुप् ॥ प्रजापत्युपस्थानेवि०" याप्रमाणें मंत्र झणून उपस्थान करून वसून "मानस्तोके०" इत्यादिक मंत्राने विभूतिधारण करावें असे क्वचित् ग्रंथांत सांगितले आहे. विष्णूचें स्मरण करून "अनेनहोमकर्मणापरमेश्वरःप्रीयतां" असे वाक्य झणून कर्म ईश्वरांत अर्पण करावें. प्रातःकाळीं उपस्थान करणें याचे मंत्र - "सूर्योनोदिवः सूर्यश्चतुःसूर्योगायत्री ॥ सूर्योपस्थानेवि० उदुस्यकाश्वः प्रस्कण्वः सूर्योगायत्री सूर्यो० ॥ चित्रदेवानामागिरसःकुतःसूर्यस्त्रिष्टुप् ॥ सूर्योप०" हे चार मंत्र, व पूर्वी सांगितलेले प्रजापति देवताक तीन मंत्र याप्रमाणें सात मंत्रेकरून प्रातःकाळीं सूर्योपस्थान करावें. कृष्ण शिष्ट जन प्रातःकाळीं "तंतुतन्व०" हा मंत्र हाणत नार्हात. पत्नी किंवा कुमारी या उपस्थानाच्या असतील तर ध्यान, उपस्थान इत्यादिक कर्मांत मंत्र वर्ज्य करावे. याप्रमाणें आश्वलायनांचा स्मार्तहोमप्रयोग सांगितला.

हिरण्यकेशीय यांच्या स्मार्तहोमाचा प्रयोग—पूर्वी सांगितल्याप्रमाणें हिरण्यकेशीय यांनीं संकल्प इत्यादिक करून नंतर "यथाहतद्वसव०" या मंत्रानें कुंडाच्या सभोंवती उदक सिंचन करून तसेच सभोंवती दर्भ घालून "अदि तेनुमन्यस्व" ह्या मंत्रेकरून दक्षिणेकडे पश्चिमेपासून पूर्वेपर्यंत, व "अनुमतेनुमन्यस्व" या मंत्रे करून पश्चिमेकडे दक्षिणेपासून उत्तरेपर्यंत व "सरस्वतेनुमन्यस्व" या मंत्रेकरून उत्तरेकडे पश्चिमेपासून पूर्वेपर्यंत व "देवसवितःप्रसुव" या मंत्रेकरून सभोंवतीं ईशानीपासून ईशानीपर्यंत प्रदक्षिणा याप्रमाणें उदक सिंचन करावें. नंतर "अदितेन्वःस्याः ॥ अनुमतेन्व० सरस्वतेन्व० देवसविताःप्रासावीः०" हे चार झणून पूर्वीसांगितल्याप्रमाणें उदकाचें सिंचन

करावें. “उदुमं, शिञ्जदेवाना०” हे दोन मंत्र झणून प्रातःकाली उपस्थान करावें. व “अभिर्पूर्धादिवः०” हा व “त्वामग्नेपुष्करादधि०” हा असे दोन मंत्र झणून सूर्य-काली उपस्थान करावें. आपस्तंब ने त्यांच्या सायंकालाच्या “अग्नेयेस्वा० अग्नेयेरिवृत्ते-स्वाहा,” अशा दोन आहुति होत. प्रातःकाली वर, “सूर्ययस्वाहा, अग्नेयेरिवृत्ते-स्वाहा” ह्या दोन आहुति होत, हा विशेष जाण्वा. शेष कर्म, हिरण्यकेशीय यांचे प्रमाणें करावें.

कात्यायनाचा स्मार्तहोमप्रयोग—कात्यायन यांनी सायंकाली सूर्यास्तानंतर होम करावा. प्रातःकाली सूर्योदयाच्या पूर्वी होम करावा. तो असा—प्रातःकाली उपस्थानापरंतु संख्या करून होम द्यावा. नंतर गायत्रीजप इत्यादिक शेषसंध्या समाप्त करावी. या होमाविषयी पूर्वी सांगितल्याप्रमाणें संकल्प करून नंतर उपयमनसंज्ञक दर्भ घेऊन ते डाव्या हातात घेऊन उजव्या हातानें तीन समिधा अग्नीमध्ये देऊन कलशातील उदकानें कुंडाचे सभोवार प्रोक्षण करून अग्नीचे पूजन करून सायंकाली “अग्ने, स्वाहा, प्रजापतयेस्वाहा” ह्या दोन आहुतीनीं दधि किंवा तांदूळ यांचा होम करावा. प्रातःकाली सायंकालीन होमाप्रमाणें “सूर्याय स्वाहा, प्रजापतये स्वाहा” ह्या दोन आहुतीनीं होम करावा. “समास्व०” ह्या अनुवाकानें सायंकाली उपस्थान करावें, व प्रातःकाली तर “विभ्राट्०” ह्या अनुवाकानें उपस्थान करावें. दधि इत्यादिक इव्यानीं होम केला असतां ह्या स्थलीं संस्त्रावाचें प्राशन करावें असे सांगतात. होमाचा लोप झाला असतां १००८ गायत्रीजप करावा. मुख्य होमकाल टळेल तर अनादिष्टहोम करावा:

भातां होमाचीं इव्ये सांगतो—व्रीहि (भात), श्यामाक (साबे), यव (जव) यांचे तांदूळ ध्यावे. किंवा पप, दधि, घृत, यव, व्रीहि; गहुं, भिंयंगु (कांग, राळे) हीं इव्ये स्वरूपेकस्नादे (भात इत्यादिकांचे तांदूळ केव्यावाचूनही) होमास योग्य आहेत. तिळ तर जसे असतील तसेच होमास ध्यावे. तांदूळ इत्यादिक होमास घेणें ते प्रत्येक आहुतीस शंभर घेऊन हातानें त्यांचा होम करावा. दधि इत्यादिक पातळ इव्य खुवापात्रानें हवन करावें. जेथें दोन आहुति सांगितल्या असतील तेथें पहिल्या आहुतीतून दुसरी आहुति परिमाणानें किंचित् अधिक द्यावी, असा सर्वत्र नियम आहे. समिधा—रुई, पळस, खैर, व्याघाडा, अश्वत्थ, उंबर, जामी, दूर्वा आणि कुश या वृक्षांच्या समिधा दहा किंवा बारा अंगुळे लांबीच्या, त्वचायुक्त अशा ग्रहण कराव्या. बट, षुस (पिंपरीवृक्ष), विष्ण (बेल) इत्यादि वृक्षांच्या ध्याव्या असे होमाद्विंत सांगितले आहे. दोन आहुति यांचा संसर्ग होईल तर “यन्नवेत्य०” ह्या मंत्रानें अग्नीच्या उद्देशेकरून समिधेचा होम करावा. निम्नहोम

अतिक्रांत होईल तर आग्याचा संस्कार करून ते आग्य चार वेळ (सुधीमर्ग) घेऊन “मनोग्योतिर्जुषता०” ह्या मंत्राने होम करावा. बारा दिवसपर्यंत होमाचा लोप होईल तर हेंच प्रायश्चित्त करावें. बारा दिवसांहून अधिक दिवस होमाचा लोप झाल्यास अग्नि नष्ट होतो. याप्रमाणे होमलोप झाल्याचे प्रायश्चित्त करून अतिक्रांत झालेला होम करण्याकरितां होमद्रव्याचा संस्कार करून सायंकाली व प्रातःकाली कर्मकरून दोन दोन आहुति. याप्रमाणे नितके दिवस होमाचा लोप झाला असेल तितके दिवस मोजून या प्रमाणे होम करावा, व अग्नि, सूर्य, प्रजापति यांचे उपस्थान करावें. अथवा अतिक्रांत होम करू नये; कारण, प्रायश्चित्त केल्याने होम केल्याचे फळ मिळतें. आशौच इत्यादिक प्राप्त झाल्याने होमाचा लोप होईल तर असाच निर्णय जाणावा. हिरण्यकेशीय ने यांचाहि याप्रमाणेच निर्णय जाणावा. आपस्तंब इत्यादिक जे यांचा होमलोप झाला असता तीन रात्रींनंतर अग्नि नष्ट होतो, याकरितां यांनी आशौचामध्येहि स्वतां होम करावा. जर अग्नीचा समारोप केल्यानंतर आशौच प्राप्त होईल व त्या कारणाने प्रज्वरोह करण्याचा संभव नसल्यामुळे त्रिरात्र होमाचा लोप होईल तर (आपस्तंब इत्यादिकांनी) पुनराधान करावें.

आतां समस्यहोम सांगतो.—(कांहीं एक आपत्तिकाल प्राप्त असतां सायंहोम व प्रातःकालीन होम असे दोन होम सायंकालीच करणे त्याला समस्यहोम असें झणतात.) याचा प्रयोग—“सायंप्रातर्होमौ समस्य करिष्ये,” असा संकल्प करून पूर्वीं तांमि-तल्या प्रमाणे सायंकाल होमापर्यंत कर्म करून उदकाने प्रोक्षण करून पुनःद्रव्याचा संस्कार करून अग्नीमध्ये समिध देऊन सूर्य व प्रजापति यांच्या उद्देशाने एकेक आहुति देऊन “हविष्पात०” ह्या पांच ऋचांनी उपस्थान करावें. “हविष्पातमिति पंचर्चस्य वामदेवः सूर्यवैश्वानरौ त्रिष्टुप्” निशाप्रमाणे प्रजापतिमंत्रांनी उपस्थान करावें.

पक्षहोम सांगतो—(महा आपत्तिकाल प्राप्त होईल तर प्रतिपदेपासून चतुर्दशीपर्यंत चवदा दिवसांचे सायंप्रातर्होम अपकर्षाने करणे त्याला पक्षहोम असें झणतात.) याचा विधी—प्रतिपदेच्या दिवसां “अद्यसायणारभ्य चतुर्दशीसायमवधिकान् पक्षहोमान् तंत्रेण करिष्ये” असा संकल्प करून वृद्धि किंवा क्षय जसें असेल तदनुसार (चवदा वेळ, तेरा वेळ, किंवा पंधरा वेळ) सायंकालीन होमाचे तांदुळ दोन पात्रांमध्ये घेऊन, होम-कालीं “अभये स्वाहा” ह्या मंत्राने, पूर्वी घेतलेले पात्रांतले तांदुळांचा एककालीच होम करून दुसऱ्या पात्रांतल्या तांदुळांचा होम “प्रजापतये स्वाहा” ह्या मंत्राने पूर्वाप्रमाणेच

कराव. याप्रमाणे द्वितीयेच्या दिवसी, “प्रातरद्यावधि पर्वप्रातरवधिकान् पक्षहोमान् संत्रेण करिष्ये” इत्यादिक सायंहोमाप्रमाणे कर्म करावे. विशेषविधि तर, पहिल्या पात्रांत घेतलेले तांदुळांचा होम “सूर्याय स्वाहा” ह्या मंत्राने करावा, व दुसऱ्या पात्रांतिल तांदुळांचा होम प्रजापतये स्वाहा” ह्या मंत्राने करावा. दोनदि दिवसी अर्घत समिध द्यावाची ती एकवेळ द्यावी, व उपस्थानहि एकवेळ करावे. पक्षामध्ये काही आपत्ति प्राप्त होईल तर त्या सायंकाला पातून चतुर्दशी दिवसाच्या सायंकालपर्यंत जे शेषहोम ते, सायंपक्षहोमाप्रमाणे करून प्रातःकाली पर्व्याच्या प्रातःकालीन होमापर्यंत होम करावा. पर्व्याचा सायंहोम, व प्रतिपदेचा प्रातर्होम हे सर्वथा निरनिराळेच कराने. याप्रमाणे पक्षहोम व शेषहोम, पक्षामध्ये आपत्ति दूर होईल तर अपकर्षाने केलेले होम पुनः करावे. सतत तीन पक्षहोम शाल्याने अग्नि नष्ट होतो याकरितां तिसऱ्या पक्षां प्रतिदिवसी होम द्यावा. सर्वथा आपत्ति दूर न होईल तर यावर्जिवपर्यंत पक्षहोम करावे.

आतां अग्निसमारोप सांगतो. (ज्याचा अग्नि असेल त्यानें अरणीमध्ये किंवा समिधेमध्ये अग्नि आला असी जी विधिपूर्वक भावना करणे त्याला अग्निसमारोप असें लक्षणतात.) त्याचा विधि असा—“अयेते योनिरियस्य विश्वमिन्नोग्निनुष्टुप् ॥ अग्निसमारोविनियोगः” हा मंत्र लक्षणून होमानंतर अरणी, किंवा अध्याची समिन् अग्नीवर तापवून तो अग्नी अरणीवर किंवा समिधेवर आला असी भावना करानी, नंतर पुनः होमादिकाचा समय येईल यावेळीं त्या अरणीचे मंथन करून अग्नि उत्पन्न करून, “प्रसवरोह०” ह्या मंत्रेकरून स्थंडिलामध्ये त्या अग्नीची स्थापना करावी. समिधेचेटार्या समारोप केल्या असेल तर, श्रोत्रियाच्या घरांतिल अग्नि आणून त्याची स्थंडिलामध्ये स्थापना करून “प्रसवरोह०” ह्या मंत्रेकरून ती समित् अग्नीमध्ये हवन करावी. दुसऱ्या सूत्रामध्ये “आजुव्हान०, उद्रुवृष्व०” ह्या दोन मंत्रांनी प्रसवरोहण करावे असे सांगितले आहे. प्रतिदिवसी समारोपादिक करणे ते बारा दिवसपर्यंतच करावे. पर्वदिवसी सायंहोमकालपर्यंत, प्रसवरोहण नसेल तर अग्नि नष्ट होतो असे कोणी ग्रंथकार लक्षणतात. समारोप व प्रसवरोह यांचा कर्ता यजमानच होय, लक्षणजे ते यजमानानेच करावे, यावरून समारोप केल्यानंतर पर्वदिवसी आशीच प्राप्त होईल तर प्रसवरोहाचा संभव नसल्यामुळे अग्नि नष्ट होतो, परंतु हा निर्णय आपस्तंब इत्यादिकशास्त्री जे व्याविषयी आहे. बारा रात्रीत पर्व प्राप्त असतां त्यादिवसी प्रसवरोहाचा अभाव असतां हि नष्ट होत नाही, तर बारा रात्रीं नंतर होमाचा लोप मानवच होतो असे दुसरे ग्रंथकार लक्षणतात. राजक्रांति इत्यादिक संकटप्राप्त होईल तर ऋत्विजाकडूनहि समा-

रोपादिक करावें. कोणी ग्रंथकार, ऋत्विज इत्यादिक प्रतिनिधि नसल्या कारणानें अनन्य-गतिक (दुसरी गति नसणें) असेल तर आशीच होण्याच्या पूर्वी पर्वहोमासहितहि हो-मांचा अपकर्ष करून होम करून किंवा केल्यावांचून समारोप करून आशीच गेल्यान-तर प्रसवरोह करावा, याविषयी पर्वाचे उल्लंघनाचा दोष नाही असें झणतात.

समारोप केल्यानंतर दंपती जेव्हां प्रयाण करतील आणि ग्रामाची सीमा व नदी यांच्या उल्लंघनाचा समय येईल सावेळीं उभयतांनीं किंवा दोघांतून एकानें, समारो-पित अशा या समिधेत किंवा अरणास स्पर्श करावा, स्पर्श न केला तर अग्नि नष्ट होतो. यजमानासच कर्तव्यप्रवासा विषयीं विधि—“ अभयंभयंमेस्तु० ” ह्या मंत्रानें अग्नीचें उपस्थान करून प्रवासाप्रत जावें. तदनंतर प्रवासांतून येऊन “ गृहा मा विभि-त्पिवः स्वस्येवोस्मासुचप्रजायध्वंमाचवोगोपती रिषत् ” हा मंत्र झणून स्वकीय गृह अव-लोकन करावें. नंतर, “ गृहानहंसुमनसः प्रपद्येविरमोवीरवतः सुवीरान् इरांवहंतोघृतमु-क्षमाणास्तेष्वहंसुमनाः संविशामि, ” हा मंत्र झणून गृहांत प्रवेश करून “ शिवंशंमं-शंयोःशंयोः ” हा मंत्र झणून त्रिवार पाठीमार्गे पाहून नियहोम दिल्या नंतर “ अभ-यंभयंभयंमेस्तु ” ह्या मंत्रानें अग्नीचें उपस्थान करावें. ज्येष्ठपुत्राचें मस्तक दोहों हातांनीं ग्रहण करून, “ अंगादंगात्तंभवासे० ” ह्या मंत्राचा जप करून मस्तक [ताळ] तीन वेळ हुंगावा. या प्रमाणें इतर पुत्र व विवाहितकन्या यांचे मस्तक मंत्रविरहित हुंगाने. प्रवासांतून आलेल्या जवळ त्या दिवसीं प्रतिज्ञात असें जरी असेल तथापि अग्निप भाषण कोणी बालू नये.

पाते प्रवासांत असेल तर स्त्रियेनें स्मार्तहोम आपण स्वतां करून दर्शपूर्णमासस्थाली-पाक, पिंडापितृयज्ञ ब्राह्मणाकडून करावें. पाते प्रवासास गेल्यानंतर अग्नि नष्ट झाल्या-धे प्रायश्चित्त इत्यादिक करणें तें स्त्री रजस्वला असेल तथापि ऋत्विजानें करावें. पुनः संधान करणें तें तर प्रति प्रवासस्थ असतां होत नाही. नैमित्तिक इष्टि, जातोष्टि, व गुहदाहोष्टि ह्याहि इष्टि पाते प्रवासांत असतां करूं नयेत. प्रायश्चित्तेष्टीची पूर्णाहुति करूं नये.

यानंतर औपासनाग्नि नष्ट झाला असतां कर्तव्य विधि— औपासनाग्नि नष्ट होईल तर “ गृह्यामेरनुगमप्रायश्चित्तं करिष्ये ” असा संकल्प करून कुंडातील भस्म दूर करून गोमयानें कुंडाचें सारवण इत्यादिक करून अग्नीची स्थापना करावी. नंतर आज्याचा संस्कार करून “ अयाथा० ” ह्या मंत्रानें एक आज्याची आहुति व सर्व प्रायश्चित्ता-हुति होम करून दंपतींतून एकानें दुसऱ्या होमकालपर्यंत उपोषित राहवें. यामागणें

बारा रात्री पर्यंत असतां हा निर्णय जाणावा. कोणी ग्रंथकार, उपवास अथवा “अयाश्वा०” ह्या मंत्रानें होम, झोतून एक करावें; दोन [उपवास व होम] करूं नयेत असें झणतात, व हें वृत्तिकाराचें मत होय. कोणी ग्रंथकार तर, जर अभि नष्ट होऊन दोन होमाचा काल अतिक्रांत होईल तर नष्ट झालेला अभि तिद्ध करावा, आपण्ये त्रिरात्र पर्यंत अभि नष्ट होईल तर शंभर प्राणायाम करावे, त्रिरात्रापासून वीस रात्री पर्यंत एक दिवस उपवास करावा, वीस रात्री पासून दोन महिन्यापर्यंत त्रिरात्र उपवास करावा, दोन महिन्यां नंतर वर्ष पर्यंत प्राजापत्य कृच्छ्र करावें, एक वर्षा नंतर प्रतिवर्षांत कृच्छ्राची आवृत्ति करावी. या प्रमाणें प्रायश्चित्त करून आधानास सांगितलेली सामग्री संपादन करून, “नष्टस्य गृह्याग्निः प्रायश्चित्तं करिष्ये,” असा संकल्प करून, “अयाश्वा०” ह्या मंत्रानें आज्यानें स्तुवाहुति देणें, स्त्रियेनें उपोषण करणें इशादिक कर्म पूर्वीं सांगितल्या प्रमाणें करावें, अथवा लाजहोमादिक करावें, या प्रमाणें बारा रात्री पर्यंत अग्नीची उत्पत्ति करावी असें झणतात. बारा दिवसांनंतर असेल तर अग्नि-विच्छेदाचें प्रायश्चित्त, होमादिक द्रव्याचें दान हीं करून विवाहहोमादिविधीनें आपापल्या गृह्यसूत्रानुसार पुनःसंधान करावें.

यानंतर यागाच्या पूर्वीं अन्वाधान केलेला अभि नष्ट होईल तर, “अयाश्वा०” ह्या मंत्रानें पूर्वीं सांगितल्याप्रमाणें अभि उत्पन्न करून पुनः अन्वाधान करून “भूर्भुवःस्वः” ह्या मंत्रानें उपस्थान करून सर्व प्रायश्चित्ताहुति देऊन स्थालीपाक करावा. अन्वाधान केल्यानंतर प्रयाण करण्याचें प्राप्त होईल तर, “तुभ्यं अंगिरस्तम०” ह्या मंत्रानें आज्या-ची आहुति अग्नीच्या उद्देशानें देऊन सर्वप्रायश्चित्ताहुतिहोम करून अग्नीचा समारोप करून प्रयाण करावें. “अग्निसमारोप केलेल्या समिधेचा नाश झाला तर पुनराधेय करावें” तें पुनराधेय असें—गोमयानें कुडाचें सारवण इत्यादिक करून नष्टाग्निचे प्रायश्चित्ताचा व पुनराधेयाचा संकल्प करून आधानास सांगितलेले पदार्थ संपादन करून अग्नीची स्थापना करून, “अयाश्वा०” ह्या मंत्रानें स्तुवाज्याहुती एक व सर्वप्रायश्चित्ताहुति यांचा होम करावा, हें पुनराधेय होय. हा स्वकीय अग्नि आढे अशा भ्रमानें दुस्तयाच्या अग्निवर स्वकीय होम करील, अथवा आपल्या अग्निवर अन्य स्वकीय होम करील तर “पथिकृत् स्थालीपाकं करिष्ये,” असा संकल्प करून चरू करावा. अथवा, “पथिकृत्याने पूर्णाहुती होष्यामि,” असा संकल्प करून सुचिपात्रामध्ये बारा वेळ किंवा चार वेळ घृत घेऊन “अग्नये पथिकृते स्वाहा” ह्या मंत्रानें आहुति द्यावी. स्थालीपाकाला आरंभ करावयाचा तो विवाहानंतर किंवा आधान केल्यानंतर पौर्णिमेच्या दिवसां करावा. प्रतिपदेच्या दिवसां

याग होण्याचा राहिल तर पुढें येणारें जें पर्व त्याच्या पूर्वीच्या ज्या तिथि त्यांचे ठायीं (चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी, द्वितीया, पंचमी आणि अष्टमी ह्या तिथि वर्ज्य करून) करावा. या विषयी, कालातिक्रांत झाल्याचें प्रायश्चित नाहीं अन्वाधान केल्यानंतर प्रतिपदेचे दिवसीं इष्टी करावी, ती न करील तर तृतीया इत्यादिक ज्या उक्त तिथि त्यांचे ठायीं, सर्वप्रायश्चित होम करून पुनःअन्वाधान करून याग करावा. दुसरें पर्व प्राप्त झालें असतां अतीत [पूर्वीं करावयाची राहिलेली] इष्ट पथिकृत्चरुपूर्वक (पथिकृत्स्थालीपाक पूर्वीं करून) पर्वदिवसीं करावी. आपर्वदिवसींदि न होईलतर दुसऱ्या प्रतिपदेचे दिवसीं इष्टिलोपाचें पादकृच्छ्र प्रायश्चित करून प्राप्त झालेल्या कालीं याग करावा. दुसऱ्या यागाचा हिषेणाऱ्या तिथिचे ठायीं लोप झाला तर आपर्वदिवसीं पादकृच्छ्र करून पथिकृत्चरु करून दुसरा याग करावा. या दिवसींदि न झाला तर तिसऱ्या प्रतिपदेचे दिवसीं, दोन यागांचें अर्धकृच्छ्र प्रायश्चित्त करून प्राप्त झालेला याग करावा. अर्धकृच्छ्र व पथिकृत्स्थालीपाकपूर्वक, तिसरा याग उक्त तिथिचे दिवसीं अथवा चतुर्थे पर्वचे दिवसीं करावा, न केला तर अग्नि नष्ट होतो, याकरितां पुनराधेय कावें. एथें पुनराधेयाचा प्रकार—आधानोक्त पदार्थ संपादन करून “अयाश्वा०” ह्या मंत्रानें स्तुवाज्याहुति द्यावी. समारोप केलेल्या समिधेचा नाश झाला असतां त्याच्या निर्णयस्थलीं सांगितलेच आहे. एथें पुनराधान जें तेंतर विवाहहोमादिरूप असें पुनराधेयाहून भिन्न आहे. कुंडापासून बाहेर व शम्यापरासाच्या आंत अग्नि पडला तर, “इदंत एकं०” ह्या ऋचेनें तो अग्नी कुंडांत घालून सर्वप्रायश्चित्तहोम करावा. पूर्व दिवसीं व्रतलोप झाला तर, व्रतपति जो अग्नि त्याच्या उद्देशानें चरु अथवा पूर्णाहुति करावी. पर्वदिवसीं दंपतींनून कोणास अश्रुपात झाला तर, व्रतधारी जो अग्नि त्याच्या उद्देशानें चरु किंवा पूर्णाहुति करावी. पवित्राचा नाश झाला तर पवित्रवान् अग्नीच्या उद्देशानें चरु किंवा पूर्णाहुति करावी. अन्वाधानेष्टीमध्ये चंद्रग्रहण प्राप्त झालें तर “अत्राहो०” ह्या मंत्रेंकरून चंद्राच्या उद्देशानें आज्याहुति देऊन, “नवोनवो०” ह्या मंत्रानें उपस्थान करून इध्मास्थापनादे याग करावा. सूर्यग्रहण असेल तर, “उद्वयं०” ह्या मंत्रानें सूर्याच्या उद्देशानें आज्याची आहुति देऊन “चित्रदेवानां०” ह्या मंत्रानें उपस्थान करावें. अन्वाधान केल्यानंतर स्वप्नांत रेतस्खलन झालें तर, “इधमेवरुण० तत्वा यामी०” ह्या दोन मंत्रांना वरुणाला दोन आज्याहुति देऊन सूर्याची पुजा व “पूनर्मामं०” ह्या सूक्तोक्तमंत्राचा जप करावा. बुद्धिपूर्वक रेतःपतन झाले तर, व्रतपति जो अग्नि त्याच्या उद्देशानें चरु करावा. अन्य समयीं स्वप्नांत रेतःपात झाला तर सूर्याला तीन नमस्कार करावे. इध्माचें स्थापन केल्यानंतर होमद्रव्यास कांहीं दोष उत्पन्न झाला तर दुष्ट झालेल्या होमद्रव्याच्या स्थानीं आज्यप्रतिनिधि करून याग समाप्त करून दुष्ट

झालेलें होमद्रव्य उदकांत टाकून अन्वाधानादिक तदेवताक (तोत्र आहे देवता उपाची तां) पुनः याग करावा. इध्मास्थापनाचे पूर्वी होमद्रव्यास दोष उत्पन्न झाला तर तदेवताक होमद्रव्य पुनः दुसरें घेऊन याग करावा. स्विष्टकृतासाठीं घेतलेल्या हवनीव द्रव्याला काहीं दांप उत्पन्न झाला तर आज्ये करून स्विष्टकृत् करावें. अंगभूत होमद्रव्याला दोष झाला तर तत्कालीं पुनः आज्यग्रहण करावें.

होमद्रव्याचे दोष सांगतो—प्रच्युत असीं नखें, व केश, कीट, रक्त, अरिय, विष्टा, मूत्र, श्लेष्मा, इत्यादिक बीभत्स (वाईट) पदार्थ; मांजर, मुंगूस, कावळे, मुखसंबंधीं जलविंदु (धुंकीचे तुषार), नाकांतिल मळ, अश्रु कानांतिल मळ, बाळंतीण, रजस्वला, चांडाल, इत्यादिकांच्या दृष्टि ह्यांचे जे संसर्ग होणें हे दोष होत. देवता, होमद्रव्ये, आणि मंत्र यांचा विपर्यास (व्यतिक्रम) झाला तर, “यद्दोदेवा०” ह्या मंत्रेकरून मरुद्देवतांच्या उद्देशानें आज्याचा होम करावा. सर्व होमद्रव्य दग्ध झालें तर तें होमद्रव्य उत्पन्न करून तोच याग करावा, पुनः याग करूं नये. पूर्वादिक चार दिशांला चरूचा उत्तेक (ऊत) झाला तर क्रमेकरून पूर्वदिशेस अग्नीच्या उद्देशानें, दक्षिण दिशेस यमाच्या उद्देशानें, पश्चिमदिशेस वरुणाच्या उद्देशानें, उत्तर दिशेस सोमाच्या उद्देशानें, होम करावा. चारीहि दिशांकडे उत आला तर चारीहि देवतांच्या उद्देशानें होम करावा. कोनाकडे उत आला तर व्याहृतिहोम करून “ आप्यायस्व०, संतेपयासि०” ह्या दोन मंत्रेकरून चरु आज्यानें म्रुत करावा; कोणी ग्रंथकार, अग्नीमध्ये दोन मिदाहुति (यन्मआ०पुनर०) द्याव्या असें झणतात. आपल्या गृह्याग्नीचा अन्य गृह्याग्नीशीं संसर्ग झाला तर दोन यजमानांनीं एककालीं त्या अग्नीचा समारोप करून दोघांनीं प्रयवरोहण कर्म करून विविध नामक जो अग्नि त्याचे उद्देशेकरून चरु करावा. शवाच्या अग्नीचा संसर्ग झाला तर शुचिनामक अग्नीच्या उद्देशानें चरु करावा. पाकाग्नीचा संसर्ग झाला तर संवर्ग अग्नीच्या उद्देशानें चरु करावा. सर्वत्र संसर्गाचे ठायीं समारोप, व प्रयवरोहण हीं केल्यानंतर चरु करावा. आपोआप अग्नि प्रदीप्त होईल तर “ उदीप्यस्वजातवेदो०, मानोहिंसीर्नातवेदो०” ह्या दोन मंत्रे करून दोन समिधा अग्नीच्या उद्देशानें हवन कराव्या. सर्वत्र अनुष्ठानाच्या विधीमध्ये चूक झाली तर सांगतार्थ सर्वप्रायश्चित्ताहुति द्यावी. गृह दग्ध असतां क्षामवान् अग्नीच्या उद्देशानें चरु करावा. याप्रमाणें आणखी प्रायश्चित्ते ऋग्वेदाच्या ब्राह्मणादि ग्रंथांत सांगितलीं आहेत तीं पहावीं. ज्या स्थलीं विशेषप्रायश्चित्त सांगितलें नाहीं त्या स्थलीं सर्वप्रायश्चित्ताहुति करावी. “ भूर्भुवःस्वः” ह्या मंत्रानें जो आज्याची आहुति तीस सर्वप्रायश्चित्त असी संज्ञा आहे.

अग्नीचा नाश होण्याचीं निमित्ते — कुत्रा, डुकर, गर्दभ, कावळा, कांढरा, धानर, शूद्र, अंजन, पतित (वाटलेला) पेत, बाळंतोण, रजस्वला, विष्टा, मूत्र, रेत, अश्रु, पूय, श्लेष्मा, रक्त, अस्थि, मांस इत्यादिक, व जुगुप्सित (निदित) पदार्थ यांचा स्पर्श आरोपित (ज्या अरणीवर अग्निस्मारोप केलेला त्या) अरणीला स्पर्श किंवा साक्षात् अग्नीला स्पर्श झाला तर अग्नि नष्ट होतो. यामध्ये अरणीसंबंधी अग्नि नष्ट असतां पुनराधेय करावें. साक्षात् अग्निला स्पर्श असतां पुनराधान करावें. अथवा, “पुनस्तत्त्वादिद्या०” या मंत्रेकरून समिधाहोम करून “आदित्यरुद्रवसुभ्यश्दनमम” असा याग करावा. अथवा सुर्वेकरून आज्याहुती द्यावी. अग्नीमध्ये उदक पडेल तर हेंच प्रायाश्चित करावें. आपण जोषित असतां मी मृत झालों असा शब्द श्रुत होईल तर, सुरभिमान जो अग्नि व्याच्या उद्देशाने चरु किंवा पूर्णाहुति करावी. प्रधानाहुतीचा स्विष्टकृताशीं संसर्ग झाला तर सर्वप्रायश्चिता. हुति द्यावी. पिंडापितृयज्ञांत अतिप्रणीतनामक अग्नीचा नाश झाला असतां होमपक्ष नसेल तर श्याविषयीं सर्वप्रायाश्चित करावें. होमपक्ष असेल तर पुनः प्रणयन (पुनःअग्नि नेणें) पूर्वक सर्वप्रायाश्चित करावें. आपस्तंबजे झाला प्रायाश्चिताहुति दिल्या नंतर प्रणयनच अवश्य आहे. पिंडापितृयज्ञाचा लोप झाला तर वैश्वानरचरु करावा. अथवा, “सप्तहोत्रारूपमहाहविर्होता०” इत्यादि मंत्रांनीं पूर्णाहुति करावी. श्रवणाकर्म, सर्पबलि, आश्वयुजीकर्म, अग्रयण आणी प्रत्यवरोहण ह्या कर्मांतून एकाचा लोप झाला तर प्राजापत्यकृच्छ्र करावें. आग्रयण केल्यावांचून नवान्न भक्षण केलें असतां वैश्वानर अग्नीच्या उद्देशानें चरु करावा. अष्टकाश्राद्धाचा लोप झाला तर उपवास करावा. पूर्वेद्युःश्राद्धाचा लोप झाला असतांही उपोषण करावें. किंवा उपोषणाचा प्रत्याम्नाय, एका ब्राह्मणास भोजन द्यावें. अन्नष्टक्यश्राद्धाचा लोप झाला तर, “एभिर्दुभिःसुमना०, एभिर्दुभिः ” या ऋचेचा शंभवेळ जप करावा. ज्या ज्या स्थलीं चरु करावा असें सांगितलें असेल त्या त्या स्थलीं दर्शपूर्णमासाचा आरंभ केला नसतां पूर्णाहुति करावी. आळस इत्यादि कारणानें पूर्णाहुति केली असेल तर यागाची पूर्ति होईल इतके तांदुळ व घृत यांचें दान करावें असें गृह्यसामागंतांत सांगितलें आहे. निषिद्ध अशी तिथि इत्यादिकाचे दिवसीं स्वस्त्रियेचे ठिकाणीं गमन, होम करण्यास जो अयोग्य त्याच्या घरीं होम करणें, लसूण इत्यादिक व वेद्येकडचें अन्न इत्यादि अमक्ष्य भक्षण करणें, निषिद्ध प्रतिग्रह करणें याविषयीं, “पुनर्मैत्रिश्चि०, इवेयोधिष्ण्यासः०” या दोन मंत्रेकरून आज्यहोम, किंवा समिधेचा होम, अथवा जप करावा. कपोतपक्षी घरावर बसला तर, “देवाःकपोत०” या पांच ऋचांचे सूक्ताचा जप अथवा पाकयज्ञ मंत्रानें याप्रत्येक ऋचेनें आज्यहोम करावा. दुष्ट स्वप्न दृष्टीस पडलें तर “योमेराज-

न्युत्थोवा०" या ऋचेकरून सूर्याचे उपस्थान करावे. रोगपरिहार होण्याकरितां अथवा यक्ष्मरोग (क्षयरोग)चा नाश होण्याकरितां, "मुंचामित्वा०" ह्या सूक्ताच्या प्रत्येक ऋचेने चरुचा होम करावा, व पांच ऋचांचे ठायीं, "यक्ष्मनाशायदेनमम," असा याग झणावा. सहावीं स्वष्टकृन् आहुति द्यावी. प्रोक्षणो व प्रणीता या पात्रांतील उदकाचा विंदु बाहेर पडला किंवा स्त्राव झाला तर, "आपोऽइष्टा०" ह्या तीन ऋचा झणून पुनः या पात्रांत उदक घालावे, व "ततमेवपस्तदुतायते०" ह्या ऋचेने आज्याहुति द्यावी. इध्मास्थापनाचा लोप झाला असतां आज्यभाग झाल्यानंतर त्याचे स्मरण होईल तर विपर्यास झाल्याचे प्रायश्चित्त करून इध्मास्थापन करून प्रधानयाग करावा. प्रधानयाग झाल्यानंतर याचे स्मरण होईल तर अभिसमिध्नरूप [अभिप्रज्वलनरूप] द्वाराचा अभाव असल्यामुळे लोपच होय व प्रायश्चित्त करूनच या इध्माची सिद्धि होते. इतर जीं अंगें याविषयीं असाच निर्णय जाणावा.

अग्नीचा नाश करणारीं निम्नित्तें सगळीं-दंपतींतून एकानें, अग्निबळ उदयकालीं व अस्तकालीं वास करावा. दोघे दंपती घराची सीमा किंवा ग्रामाची सीमा अथवा नदी यांतें उल्लंघन करून होमकालीं बाहेर वास करतील तर पुनराधान केलें पाहिजे. कुंडांतून सर्व अग्नि बाहेर घेऊन जाणें यापक्षीं अग्नि घेऊन जात असतां शम्पापरासाच्या पूर्वी उच्छ्वास झाला तर अग्नीचा नाश होतो. कांहीं एक कर्मविशेषासाठीं कुंडांतून अग्नि नेत असतात ह्या साठीं उच्छ्वासाचा रोध केला पाहिजे असें नाहीं. आपल्या ठायीं अग्नि समारोप केला आहे या पक्षीं यानें उदकांत बुडणें, मैथुन, शूद्रादिकांचा स्पर्श हीं केलीं असतां अग्नि नष्ट होतो. बहुत स्त्रिया असतांही यांतून एकाहें स्त्री होम कालीं गृहाच्या सीमेबाहेर गेली असतां अग्नि नष्ट होतो.

ज्येष्ठ स्त्री अग्नीच्या सभिध असतां कनिष्ठस्त्रीसहवर्तमान यजमानाचा प्रवास दोषकारक होत नाहीं. दोघेही यजमान व पत्नी ग्राम व गृह यांच्या सीमेच्या बाहेर जाऊन होमकालापूर्वी घरीं येतील तर दोष नाहीं. होमकालीं स्त्री दुसऱ्या ग्रामीं असतां यजमान अग्नीच्या जवळ असला तथापि पुनराधान करावें असें झणतात. प्रवासापथ्यें नदी व ग्रामाची सीमा यांच्या उल्लंघनसमयीं दंपतींतून एक जर समारोपित अग्नीस स्पर्श न करील तर पुनराधान केलें पाहिजे. यजमान अग्नीचा परिग्राम करून शंभर योजनें (चारशें) कोश पर्यंत प्रयाण करील, अथवा एक वर्षपर्यंत स्वतां होम न देखील तर अग्नि नष्ट होतो, व तसें झालें असतां पुनराधान किंवा पवित्रेष्टि करावी. "बरोबर अग्नि श्वेतव्यावांचून स्त्री, समुद्राला मिळणारी अशा नदीचे उल्लंघन करील तर अग्नीचा नाश

होतो असे श्रुतिप्रमाण आहे.” अग्नीच्या समीप पति किंवा अग्न्य स्त्री असेल तर स्त्रियेने नदीचे उलंघन केले असता दोष नाही. पतिप्रवासांत असून स्त्रियेने अग्नीसह वर्तमान सीमेचे उलंघन केले असता अग्नीचा नाश होतो. याप्रमाणेच स्त्री प्रवासांत असून पतीने अग्नीसह सीमेचे उलंघन केले असता अग्नीचा नाश होतो. उदकाच्या योगाने अभि नष्ट झाला तर पुनः आधेय करावे. अभि नष्ट झाला असता यजमान अग्नीचे उपस्थान केल्यावाचून सीमेचे उलंघन करील तर तेंच पुनः आधेय करावे. समारोप केल्याखेरीज शम्यापरासाच्या (छत्तीस अंगुळें प्रमाण शम्यापरास) पलिकडे अग्नि नेले असता नष्ट होतात. “स्त्री रजस्वला असतां अथवा जननाशीच, मृताशीच असतां अग्निमान् असा ब्राह्मण प्रवास करील तर तो पुनराधानास योग्य होतो. बहुत स्त्रियांतून एक नरी रजस्वला असली तथापि प्रवासास जाऊं नये. निमित्तापासून अकारव्या दिवसी व चवथ्या दिवसी प्रवासास जाण्याची इच्छा करावी. अग्नीच्या होमसमयी व पूर्वदिवसी प्रयाण करूं नये.” दोन होमांचा नाश (लोप) होईल, अथवा दर्शपूर्णमास-स्थालीपाकाचा नाश होईल तर पुनराधेय करावे असे जें सांगितलें तें आपस्तंबादिशास्त्र-विषयक आहे. “जननाशीच व मृताशीच हीं असतां पाकाग्नीवर पाक करावा. पाकाग्नीवर पाक न करितां एक रात्र तसाच राहिल तर पुनराधान करावे असे जें सांगितलें तें कात्यायनादिक शास्त्रां जे त्यांविषयीं आहे. स्त्री प्रवास करील तर पुनराधान करावे असे जें सांगितलें तें ज्याला एक स्त्री असेल त्याविषयीं आहे. बहुत स्त्रिया ज्याला असतील त्यानें ज्येष्ठ स्त्री प्रवास करील तरच पुनराधान करावे असे कोणी ग्रंथकार झणतात. हीं पूर्वोक्त निमित्तें प्राप्त झालीं असतां पाहिले अग्नि टाकून अन्य अग्नींचें आधान करावे. साक्षात् उपकार करणारे जें अंगभूत कर्म (प्रयाजादि) त्याचा लोप झाला असतां कर्मसमाप्ति होण्याचे पूर्वी प्रायश्चित्त करून लुप्त झालेलें अंगभूत कर्म करावे. कर्म समाप्ति झाल्या नंतर लोप झाला असतां प्रायश्चित्तच करावे, अंगभूत कर्माची आवृत्ति करूं नये. परंपरासंबंधाने द्रव्यसंस्काररूप उपकारक अंगाचा लोप झाला तर प्रधान कर्माच्या पूर्वी तें अंगभूत कर्म करावे. प्रधानोत्तर लोप झाला असतां प्रायश्चित्तच करावे, आवृत्ति करूं नये.

पत्नी मृत झाली असतां तिचे दहन करण्याकरितां अर्धा अग्नि देऊन शेष राहिलेल्या अग्नीवर सायंप्रातर्होम, स्थालीपाक, व आग्रयण हीं करावीं. कौस्तुभांत तर, अर्धा अग्नि द्यावा इत्यादिक सांगून विष्टुराने (मृतपत्नीकाने) अपूर्वाधान करावे, व तो शेष राहिलेला अग्नि नष्ट झाला तर पुनराधान करावे, असे सांगितले, सामध्ये आधान करण्याविषयी

जी प्रकार सांगितला तो, शेष राहिलेला अग्नि होमाच्या पूर्वी नष्ट होईल तर तत्पर जाणू, वा. अथवा श्रीतामि ने झालून झियेला (दहनाकरितां)अर्धे अग्नि देऊन उत्तर्गोष्टि करून पूर्वीचे अग्नी टाकून पुनराधान करून अग्निहोत्र करावें झालून जसे सांगितले तसे अग्निहोत्र उत्तर्गोष्टि करून पूर्वीचे अग्नीचा त्याग केल्यानंतर अपूर्वाधान करण्याविषयी कौस्तुभांत सांगितले, याप्रमाणें एथें योजना करावी असें वाटते.

अरणी, सुखा इत्यादिक पात्रांचीं लक्षणें कशी व तीं कोणत्या वृक्षाचीं करावीं याचा निर्णय दुसऱ्या ग्रंथां पहावा. ह्या पूर्वी सांगितलेल्या सर्व विधींचे संकल्प इत्यादिक विस्तारयुक्त प्रयोग गृह्याभिसागरांत पहावे. प्रायश्चित्ते इत्यादिकांचे विधि बहुधा सर्व सूत्रांत सारखेच सांगितले आहेत, आपापच्या सूत्रामध्ये क्वचित् क्वचित् विशेष अतत्त्वात ते पहावे. विवाहहोम, गृहप्रवेशनायिहोमासहवर्तमान एकतंत्रानें करणें तो ऋग्वेदी याचें पुनराधान होय, इतर शास्त्री जे झालीं विवाहहोमाहून निराळेंच पुनराधान करावें, हा विशेष जाणावा.

कात्यायनांचे उपयोगी काहीं निर्णय—(कात्यायनांनीं) “गूळ, गोरस, यांचाचून अस्य पदार्थ दुसऱ्याच्या अग्नीवर पक झालेले भक्षण करूं नयेत. आहिताग्नि (अग्निहोत्री) यांचा हा धर्म याज्ञिकांला मान्य आहे. जंत, व दूध यांपासून झालेले पदार्थ, खापरांत भाजिलेले यव हे पदार्थ दुसऱ्याच्या अग्नीवर पक झाले तद्यापि प्रवासांत अग्निहोत्र्यानें दुसऱ्याच्या अग्नीवर पक असे समजूं नयेत, [ग्रहण करावे.] केवळ लौकिकाग्निवर उदकाबाचून पक झालेले जें अन्न तें फळाप्रमाणें घ्यावें, तें घेतलें असतां अन्नदोष नाहीं. प्रातः-कालीन होम समाप्त करून नंतर त्या अर्घ्यतून अल्प अग्नि घेऊन तो स्वयंपाकगृहांत प्रदीप्त करून आच्यावर सर्व पाकनिष्पत्ति करावी. नंतर पुनः तो अग्नि कुंडस्य अर्घ्यति पिळवून आच्यावर होम द्यावा, असें आहे यास्तव निरालस्य होस्ताता वैश्वदेवादि कर्म गृह्याग्नीवर करावें.

बहवृचकारिकेमध्ये सांगतात—“ प्रति दिवसी पाकनिष्पत्तिकरणासाठीं गृह्याग्नींतील एका बाजूचे, पाक करणें हेंच आहे अर्थ ह्मणजे प्रयोजन ज्याचें असें [प्रज्वलित कोलीत] घेऊन तें स्वयंपाक गृहांत नेऊन तो अग्नि प्रदीप्त करावा, व सार्व सर्व पाक निष्पत्ति करावी. पाकनिष्पत्ति ज्याच्यावर केली तो लौकिकाग्नि होय याकरितां वैश्वदेव करणें तो गृह्याग्नीवर करावा. श्राद्ध इत्यादिक निमित्त, उत्सव या दिवसी ज्या अग्नीवर मोठा स्वयंपाक होतो सार्व वैश्वदेव करावा; कारण कार्याच्या अनुसंधानें तो लौकिकाग्नि नव्हे. दीप लावण्याकरितां, धूप दाखविण्याकरितां व तापविण्याकरितां

वेतलेले जे गृह्यार्थीतून आभि ते सर्व लौकिकाभि हेतः कारण, तें तें कार्य शाख्यान्-
 तर या या अर्थीचें गृह्यार्थित्व नष्ट होतें. गृह्यार्थीतून निरानिराख्या कार्यां करितां बहुत
 वेळ अग्नि ग्रहण केला असेल तर या ग्रहण केलेल्या अर्थीतून ज्येष्ठपर्यंत एक तरी अग्नि
 आहे तावत्कालपर्यंत अरणी मंथन करून दुसरा अग्नि घेऊं नये. वैश्वदेव, होम हे
 करण्या पूर्वी अग्नि मंथन करूं नये. पाकनिष्पत्ति करण्या करितां गृह्यार्थीतून जो अग्नि-
 वेतला तो पचनाग्नि होय, या करितां पचनाग्निवर दिवसा पाक न करील तर त्यानें पुन-
 राधान करावें. अग्निसमारोप केलेल्या अशा दोन अरणी त्यांतील एक किंवा दोन नष्ट
 झाल्या असतां या कालीं अग्नीचें आधेय किंवा पुनराधानच करावें असें सांगितात. अग्नि-
 समारोप न केलेल्या अशा अरणी नष्ट होतांल तर पुनः दुसऱ्या नूतन अरणी ध्याव्या.
 दुसऱ्या नूतन अरणी न मिळतील आणि अग्नि नष्ट होईल तर पुनराधान करावें.
 “ शूद्र, रत्नस्वला, अंशज, पतित, अपवित्र, गर्दभ इत्यादिक यांनीं समारोप न केलेल्या
 अरणीला स्पर्श केला असतां या टाकून दुसऱ्या अरणी ध्याव्या, ” समारोप केलेल्या
 अरणीला शूद्र इत्यादिकांचा स्पर्श झाला तर पुनराधेय करावें. असें सांगितलें आहे.
 समारोप केलेल्या अरणी दूषित झाल्या तर या अरणी, “ भवतंनःसम० ” या मंत्रे-
 करून उदकांत टाकाव्या. एकच अरणी दूषित झाली तर तीच उदकांत टाकावी.
 दूषित झालेल्या अरणी उदकांत टाकल्या नंतर व दुसऱ्या अरणी मिळण्या पूर्वी अग्नि
 नष्ट झाला तर पुनराधान करावें. अरणी नष्ट झाली असतां यावत्कालपर्यंत अग्नि
 गृह्यामध्ये आहे तावत्कालपर्यंत होमादिक करावें, व तो अग्नि नष्ट झाला तर पुनरा-
 धान करावें. या स्थलीं एका अरणीचा नाश झाला असतां दुसरी एक अरणी सम-
 न्नक घेऊन दोन अरणींचें मंथन करून अग्नि उत्पन्न करावा असें कोणी ग्रंथकार
 झणतात. दुसरे ग्रंथकार तर, शेष राहिलेली जी अरणी तीच तोडून दोन अरणी
 करून त्यांचें मंथन करावें असें झणतात. दोन अरणीतून एक जरी दूषित झाली तथापि
 दोनांही अरणी टाकून नवीन दोन अरणी ध्याव्या असा नारायण वृत्तीचा अभिप्राय
 आहे. हा अरणींचा निर्णय, श्रौतकर्म व स्मार्तकर्म यांचा साधारण व सर्व शाखांचा साधा-
 रण सांगितला आहे.

अग्नीचा समारोप केला असतां कात्यायनशाखी यांनीं वैश्वदेव, पाक (स्वयंपाक), लौ-
 किकाग्निवर करावा असें झणतात. ज्या कुळामध्ये तीन पुरुषांपर्यंत वेदाध्ययन व अग्नि-
 होम ग्रहण केलें नाहीं तो दुर्ब्राह्मण होय, व तो दुर्ब्राह्मण असल्यामुळें कोणत्याहि सत्क-
 र्मांसि योग्य नाहीं. अग्निहोत्रासारखा उत्तम धर्म मार्गें झाला नाहीं, व पुढें होणारही नाहीं,

याकरितां ज्ञानवान् व भक्तिमान् अशा पुढवानें अभिहोत्र धारण करावें. ज्ञान (विद्वत्ता), इत्य इत्यादिकांच्या अभावामुळे श्रौतकर्म (अभिहोत्रादि) करण्याविषयीं जो समर्थ नाहीं त्यानें यथाशक्ति स्मार्तकर्म करावें. ह्या स्मार्तकर्मामध्येहि सार्वकाल आचार (धर्म) प्राप्त होतो. ज्या द्विजानें यथाविधि विवाह करून स्त्रीपरिमद केला त्यानें एक क्षणहि अग्नीवांचून राहू नये. कदाचित् द्विज अग्नीवांचून राहिला तर तो संस्कारहीन व पतित होतो. जो ब्राह्मण विवाहाभि धारण करित नाहीं आणि आपण गृहस्थाश्रमी असें मानितो त्याचे अन्न भक्षण करू नये, कारण त्याचा तो पाक व्यर्थ होय. सुवर्णमय असा मेढपर्वत व ससु-
 द्रांसहिते पृथ्वी यांचें जो दान करितो व त्याला जें दानाचें फल मिळतें तें व सायंकाळीं, प्रातःकाळीं जो अग्नीत होम द्यावा त्या होमाचें जें फल तें असी उभय फलांची तुलना केली असतां तें दानफल होमाचो तुलना पावेल किंवा नाहीं, ह्मणजे सुवर्णाचा मेढ व पृथ्वी यांचें दान करून जें फल आपेक्षा होमाचें फल विशेष आहे असें तात्पर्य जाणावें. याप्रमाणें होमाचें प्रकरण सांगितलें.

नित्यदान—“दानावांचून एकाहि दिवस जर गेला तर, चोरांनीं घर लुटून सर्वस्वाप-
 हार केला असतां जसा तो दिवस अग्रंत दुःखात पात्र, तसा दानविरहित दिवस दुः-
 खात पात्र होय, याकरितां जसें ऐश्वर्य असेल तदनुसार धन, धान्य इत्यादिक कांहीं अन्नप
 तरी दान करावें. इत्य, धान्य इत्यादिक देण्यास शक्ति नसेल तर सुपारी इत्यादिकांचें
 हि दान प्रतिदिवसीं करावें. तदनंतर गार्ह, ब्राह्मण, इत्यादि मंगल पदार्थांचें दर्शन
 घ्यावें. याप्रमाणें दिवसाचे आठ भाग करून जो प्रथम भाग त्याचें कर्म सांगितलें.

दिवसाच्या दुसऱ्या विभागीं वेद, शास्त्रें यांचा अभ्यास करावा. ‘ब्राह्मणानें वेद
 पठण करावे, दुसऱ्याला शिकवावे, जप करावा; वेदाच्या अर्थाचा विचार करावा, आणि
 धर्मशास्त्रें अर्थविचारेंकरून पाहार्वां.’ प्रातःकालीन होम दिव्यानंतर देवाची पूजा करावी
 अथवा दिवसाच्या चौथ्या विभागीं ब्रह्मयज्ञ केल्यानंतर करावी. काला, ‘प्रातःकालीन
 होम दिव्यानंतर देवपूजा करावी, किंवा जपयज्ञ ह्मणजे ब्रह्मयज्ञ केल्यानंतर देवपूजा करावी,’
 इत्यादिक दोन प्रकारचें स्मृतिवचन आहे. ‘देवपूजा त्रिकाळीं यथाक्रमेंकरून करावी त्रिकाल
 विस्तारें पूजा करण्यास शक्ति नसेल तर प्रातःकाळीं विस्तारेंकरून करावी, व माध्यान्हकाळीं
 गंधादिक उपचरेंकरून करावी, व सायंकाळीं धूप, दीप, आरती इत्यादिक उपचरेंकरून करावी
 त्रिकाल तुलसीपत्रांनीं पूजा करावी. जसी त्रिकालसंध्या मोक्ष देणारी, तसी त्रिकालपूजा
 मोक्ष देणारी होते असें कमलाकर सांगतो. त्यामध्ये बिष्णु, शिव, ब्रह्मा, सूर्य, देवी, गणपति
 इत्यादिक श्या देवता सामध्ये आपणास जो देवता इष्ट तिचें पूजन करावें. अंतूनहि कर्मि-

युगामध्ये विष्णु व शिव यांची पूजा करणे प्रशस्त होय. “विष्णूच्या पूजेपेक्षा पुण्यकारक वैदिककर्म कोणतेच नाही, याकरिता ज्यास आदि, मध्य, अंत नाहीत अशा संसारदुःखहरण करणाऱ्या विष्णूचे नियम पूजन करावे. अथवा द्योतमान, षट्गुणैश्वर्यसंपन्न शाश्वत, अशा शिवाची पूजा प्रणवमंत्राने, अथवा रुद्रगायत्रीमंत्राने किंवा त्र्यंबकमंत्राने, किंवा “ओं नमःशिवाय” ह्या षडक्षर मंत्राने करावी.” त्यामध्येहि प्रतिमा, स्थंडिल, इत्यादिकांपेक्षां शालग्राम व बाणलिंग यांचे ठायी पूजा करावी ती प्रशस्त होय; कारण, आवाहन इत्यादिक केव्यावांचून देवतेचे सान्निध्य शालग्राम व बाणलिंग यांचे ठायीं नित्य आहे. श्रीमद्भागवतांत—“हे उद्धवा, शिपरमूर्तीची पूजा कर्तव्य असतां आवाहन व विसर्जन हीं करूं नयेत. अशिपरमूर्तीची पूजा कर्तव्य असतां आवाहन, विसर्जन यांविषयीं विकल्प आहे. स्थंडिलाचे ठायीं तर दोनही करावीं.”

संक्षेपें करून देवपूजेचा प्रयोग— ह्या स्थलीं देवपूजेचा प्रयोग संक्षेपानें सांगतो, विशेष विचार करणें तो मूर्तीच्या अर्चेच्या प्रसंगानें पुढें सांगितला जाईल. त्यामध्ये सुयोदयाच्यापूर्वी देवावरील निर्माल्यकाटून विहितकालीं पूजेचा आरंभ करावा. “येभ्योमाता०” एवापित्रे०” हे मंत्र पठण करून घंटा वाजवावी. नंतर आचमन, प्राणायाम करून देशकालाचें संकीर्तन केल्यानंतर, “श्रीमहाविष्णुपूजां करिष्ये,” असा संकल्प करावा. पंचायतनाची पूजा कर्तव्य ह्या पक्षां, “श्रीरुद्रविनायकसूर्यशक्तिपरिवृतश्रीमहाविष्णुपूजां करिष्ये,” असा संकल्प करून आसनादिक विधि करून पुरुषसुक्तानें न्यास करावा. तो असा,—“सहस्रशीर्षेति षोडशर्चस्य सूक्तस्य नारायणः पुरुषोऽनुष्टुप् ॥ अंशात्रिष्टुप् ॥ न्यासे-पुजायांच विनियोगः” तदनंतर पहिली ऋचा ह्मणून डाव्या करतलावर न्यास करावा, दुसऱ्या ऋचेचा उजव्या करतलावर न्यास, तिसऱ्या ऋचेचा डाव्या चरणावर न्यास, चवथ्या ऋचेचा उजव्या चरणावर न्यास, पांचव्या ऋचेचा वामजानुवर न्यास, सहाव्या ऋचेचा दक्षिण जानुवर न्यास, सातव्या ऋचेचा वामकटीवर न्यास, आठव्या ऋचेचा दक्षिण कटीवर न्यास, नवव्या ऋचेचा नाभिस्यानीं, दहाव्या ऋचेचा हृदयस्थानीं, अकराव्या ऋचेचा कंठस्थानीं, बाराव्या ऋचेचा वामबाहुस्थानीं, तेराव्या ऋचेचा दक्षिणबाहुस्थानीं, चवदाव्या ऋचेचा मुखस्थानीं, पंधराव्या ऋचेचा उभयनेत्रस्थानीं, सोळाव्या ऋचेचा मस्तक स्थानीं न्यास करावा. याप्रमाणें पुरुषसुक्ताच्या सोळा ऋचा ह्मणून आपल्या देहावर आणि देवाच्या देहावर न्यास करावा, व पुनः शेवटच्या पांच (ब्राह्मणो०, चंद्रमा०, नाभ्या०, सप्तास्या०, यज्ञेन०) ह्या ऋचांचा क्रमें करून हृदय, मस्तक, शिखा, कवचरूप; अस्त्ररूप न्यास करावा. नंतर कलश, शंख, घंटा, यांची पूजा करून पाषाण

दक, अथवादेक, व आचमनीयोदक याची पूजा करून शंखोदकानें आपल्या अंगावर व पूजापदार्थावर व्रीक्षण करावें. नंतर आपणास इष्ट जी विष्णुमूर्ती तिचे ध्यान करून त्या मूर्तीची पूजा करावी. पुरुषसूक्ताच्या पहिल्या ऋचेनें आवाहन करावें शालग्राम इत्यादिक देवांचे आवाहन नसल्यामुळे मंत्रपुष्प अर्पण करावें. प्रत्येक सूक्ताची ऋचा झटल्या नंतर “श्रीमहाविष्णवे, श्रीकृष्णाय” याप्रमाणें आपणास जी इष्ट देवता असेल तिचा चतुर्थी विभक्तिनें उद्देश करून सर्वोपचार समर्पण करावे. पंचायतनपूजा असेल तर “श्रीविष्णवे शिषयिनायकसूर्यशक्तिःपथ” याप्रमाणें जी जी उपस्थ देवता असेल तिचा उद्देश पूर्वी करून नंतर इतरांचा करावा. नैवेद्य इत्यादिक उपचार निरनिराळे नसतील तर “यथाशतः” असें झणावें. दुसऱ्या ऋचेनें आसन द्यावें. तिसऱ्या ऋचेनें पाद द्यावें. चवथ्या ऋचेनें अर्घ्य द्यावें. पांचव्या ऋचेनें आचमन द्यावें. सहाव्या ऋचेनें ज्ञान घालावें. संभव असेल तर, “आप्यायसव०” इत्यादिक मंत्रेकरून पंचामृतस्नानें घालावीं. चंदन, वाळा, कापूर, केशर, कृष्णागुरु हे पदार्थ घालून सुवासित केलेल्या उदकांनीं व सुवर्णघर्मानुवाक (सुवर्ण घर्न पारिवेदनं इत्यादि), महापुरुषविद्या (जितं ते पुंडरीकाक्ष नमस्ते विश्वभावन० हा श्लोक) पुरुषसूक्त (सहस्रशीर्षेत्यादि), आणि राजनसाम (इंद्रंनरोनेमथिताहवंत ह्य ऋचेत सांगितलेले) या मंत्रांनीं अभिषेक करावा. सातव्या ऋचेनें वस्त्र अर्पण करावें. आठव्या ऋचेनें यज्ञोपवीत अर्पण करावें. नवव्या ऋचेनें गंध, व दहाव्या ऋचेनें पुष्पे वहावीं. अकराव्या ऋचेनें धूप, बाराव्या ऋचेनें दीप दाखवावा. ज्ञान, धूप व दीप हे उपचार अर्पण करावयाचे झाल्यां घंटेचा नाद करावा.” तेराव्या ऋचेनें नैवेद्य अर्पण करावा, संभव असेल तर तांबूल, फल, दक्षिणा, व आरती हे उपचार समर्पण करावे. व चवदाव्या ऋचेनें नमस्कार करावा. पंधराव्या ऋचेनें प्रदक्षिणा कराव्या. सोळाव्या ऋचेनें विसर्जन करावें, अथवा पुष्पांजलि अर्पण करावी. ज्ञान घातल्यावर, व वस्त्र व यज्ञोपवीत दिल्यावर, आणि नैवेद्यानंतर आचमनाकरितां उदक द्यावें. पुरुषसूक्ताच्या सोळा ऋचांनीं चरूच्या सोळा आहुतींनीं होम करून पुनः त्याच पुरुषसूक्ताच्या सोळा ऋचांनीं सोळा पुष्पे अर्पण करावीं, व पुनः पुरुषसूक्तानें स्तुति करावी. तदनंतर पुराणांतील स्तोत्रे व प्राकृतस्तोत्रे यांहीं करून स्तुति करून नमस्कार करावा. तो असा—देवाच्या चरणावर मस्तक ठेवून दक्षिणोत्तर हस्तांनीं देवाचे दक्षिणोत्तर पाय ग्रहण करून, अथवा आपल्या पृष्ठभार्गी परस्पर निबद्ध हस्त करून कृतापराधासारखा होऊन हे ईश, मृत्युग्रहरूप समृद्धापासून भीत अतएव शरणागत जो मी त्यामाते रक्षण कर, ”असी प्रार्थनाकरून नमस्कार करावा. नंतर निर्घ्राय, देवांनें दिक्षा अर्घी भावना करून तो मस्तकावर धारण करावा. विष्णूच्या मस्तकावर बाहेले

पुण्य मनुष्याने आपल्या मस्तकावर ठेवू नये. "शंखोदक आपल्या मस्तकावर धारण करू नये." देवाचे तीर्थ पूजा झाल्यानंतर अथवा वैश्वदेवानंतर मस्तकावर धारण करून प्राशनही करावे. याविषयी अनुक्रम—“ब्राह्मणाचे तीर्थ प्राशन करून विष्णूचे तीर्थ प्राशन करावे. जो मनुष्य शालग्रामशिलेचे तीर्थ प्राशन केल्यावांचून आपल्या मस्तकावर उडविल तो ब्रह्महा लणजे ब्रह्महत्या करणारा असा होतो. तीर्थ घेणे ते दुसऱ्या पात्राचे घ्यावे, हस्ताने कदापि घेऊ नये, असे कपलाकर सांगतो. देवास अर्पण केलेले एकच वस्तू उदकाने प्रक्षालन करून तेच प्रतिदिवसी अर्पण केले असता दोष नाही. याप्रमाणे सुवर्णादिक अलंकारांविषयीही असाच निर्णय जाणावा. सुवर्णाचे यज्ञोपवि-
 ताविषयीही असाच आचार आहे याप्रमाणे शांभ्रामाचे पूजेचे फल स्कंदपुराणात सांगतात. “कामाच्या स्वाधीन असो, अथवा क्रोधयुक्त असो, भक्तीने किंवा भक्तीवा-
 च्छूनही कलामध्ये जो ब्राह्मण शालग्रामशिलेची पूजा करील तो मोक्षास जाईल. शांभ्रामाशिलेच्या पुढे जो विष्णूचे कीर्तन करितो त्याला यमाचे व कलिकालाचे भय प्राप्त होत नाही. कलियुगामध्ये पातकांचे निरसन होण्यास प्रायश्चित्त असे विष्णूचे तीर्थ होय. ते तीर्थ मस्तकावर धारण केल्याने व प्राशन केल्याने सर्व देवता संतुष्ट हो-
 तात.” विष्णु व शिव यांचे पूजेचा विधि बौधायनाने सांगितलेला पराशरसाधवत पाहावा. मी तर शिवपूजाविधि दुसऱ्या परिच्छेदात शिवरात्रिप्रकरणी सांगितला आहे, याकरितां एथे सांगत नाही. कूर्मपुराणात—“मोहाने किंवा आळसाने जो मनुष्य देवपूजा केल्यावांचून भोजन करितो तो नरकाप्रत जातो आणि पुढे सुकरयोन्यात त्याला जन्म प्राप्त होतो.” याप्रमाणे देवाची पूजा करून माता पिता आदिकरून गुल्फी पूजा करावी. कारण; “उपाची, देवाचे ठिकाणी नैष्ठिक भक्ति असून जती देवाचे ठिकाणी निष्ठ तशी गुरूवर असावी,” अशी श्रुति आहे असे मावळ लणतो.

दिवसाच्या तिसऱ्या विभागी आपल्या पौषवर्गी (माता, पिता, गुरु, वृद्धजन, भार्या, पुत्रादिक, अनाथ, आश्रित, पूर्वी कधीही न आलेला असा पाहुणा, एकात्र राहणारा पाहुणा, आणि गृह्याभि ह्या समुदायास पोष्यवर्ग असे लणतात) करितां धन संपादन करावे. यज्ञ करणे, वेदादिकांचे अध्ययन करणे, दान देणे, ऋत्विक्कर्म करणे, शिष्यां कडून वेदादिकांचे अध्ययन करविणे, आणि दान घेणे असीं सहा कर्मे ब्राह्मणास विहित आहेत. “ह्या यज्ञादि सहा कर्मांमध्ये ऋत्विक्कूर्माने धनसंपादन करणे, धर्मबुद्धीने शिष्यांस वेदादिकांचे अध्ययन सांगून ते कृतविद्य झाल्यानंतर प्रत्युपकारबुद्धीने जे धन देतो ते घेणे व न्यायाने धन मिळविणाऱ्या पजमानापासून प्रतिग्रह घेणे हीं तीन कर्मे

ब्राह्मणांच्या वृद्धरपोषणाविषयी साधनभूत आहेत.” श्रीभागवतात— तपस्व्यां, ऋषीभ्यः, कीर्तिं दांशी ह्यग्निं करणारा प्रतिग्रह आहे असे जो मानणारा अग्निं ऋषिभ्यः कर्मानं घन संपादन करणे, व शिष्यांस वेदादिकानि अध्वयन सांगून ते प्रत्युपकारबुद्धीने घन देतीक ते घेणे, ह्या दोन साधनांना उपजीविका करावी. पूर्वोक्त दोन उपजीविकांमध्ये रूप-णता इत्यादि दोषदृष्टि असेल तर, स्वामीने टाकल्यामुळे क्षेत्रांत पडलेले दाणे, निवडून आपणून खाईकखून उपजीविका करावी. तसेच वार्ताविचित्रा, शालीन, यामावर, शिलो-छन ह्या चार उपजीविका होत. वार्ताविचित्रा ह्मणजे कृषिकर्म करणे इत्यादिक, शालीन ह्मणजे याचनेवांचून जें मिळेल तें ग्रहण करणे, यामावर ह्मणजे प्रसर्ही धान्य मागणे, शिलोछन ह्मणजे स्वामीने टाकलेली अती शेतांतोळ कणसे व दाणे ग्रहण करणे, याप्र-माणे चार उपजीविका सांगितल्या यांमध्ये पुढची पुढची प्रशस्त होय. शिलोछनवृत्ति कलीमध्ये निषिद्ध आहे. कुसूळधान्य, कुंभाधान्य, व्याहिक (तीन दिवस पुरे इतके धान्य ज्याच्या जवळ आहे तो), श्वस्तन (ह्मणजे उद्यांच्या दिवसास पुरे इतके धान्य ज्याच्या जवळ आहे तो) असा असावा. कुटुंबपोषणाविषयी नारा दिवस पर्यंत पुरे इतके धान्य ज्याच्या जवळ आहे त्याला कुमूलधान्य असे ह्मणतात. सहा दिवसपर्यंत पुरे इतके धान्य बालगणारा त्याला कुंभाधान्य असे ह्मणतात. “कृषिकर्म, व्यापार, आणि सेवा ही ब्राह्मण करील तर तो ब्राह्मणप्रांतून भ्रष्ट होतो, याकरितां तीं करूं नयेत,” असे वचन आहे यास्तव कृषिकर्मवृत्ति आपत्तिकालीं करावी. “पुत्राचें मांस भक्षण करणें बरें; परंतु राजापासून प्रतिग्रह घेणें बरें नाही” असे जें वचन तें अधार्मिक राजापासून प्रतिग्रह घेणे निषेध करितें असे जाणावे. अयाज्ययाजन (होमादि करण्यास अनधिकारी जो याचे घरी होमादि करणे), शूद्रापासून दान घेणे, इत्यादिकेंकरूनहि वृद्ध असे माता, पिता साधो स्त्री, लहान पुत्र यांचें पोषण करावे, असे जें सांगितलें तेंहि आपत्तिकालीं जाणावें. नारिणी स्त्रां, पंड, पतित (जातिभ्रष्ट) यांवांचून जो इतर नाच खापासूनहि याचनेवांचून प्राप्त झालेले असे आक, दूध, दही, पुष्पे, उदक, कुश, आणि भूमे इत्यादि पदार्थ ग्रहण करावे. “ब्रह्मवाती, सेन्यासी, विद्यार्थी, गुरु व माता पितर इत्यादि वृद्ध ह्यांचें पोषण करणारा, पांश्वर, आणि धान्यादिजीविकेनें हीन हे सहा शिजलेल्या अन्नाचे भिक्षुक होत; ह्मणजे यांला शिजलेलें अन्न द्यावें.” ब्राह्मणांची सेवा करणें ही शूद्राची वृत्ति होय. आपत्तिकालीं शूद्रानें कृषिकर्म इत्यादिक वृत्ति करावी. याप्रमाणें तिसऱ्या विभागाचें कथ्य सांगितलें.

चतुर्थविभागीं माघान्दखान करावें. माघःकालीं गोमयेंकरून खान करावें. माघान्-

नृकाली मृषिकेने ज्ञान करावें. ह्या दोन ज्ञानांचा विधि प्रायश्चित्तप्रकरणी सांगितला आहे. शेषराहिलेला विधि प्रातःज्ञानासारखा जाणावा. ब्रह्मयज्ञसंबंधी तर्पण करण्याच्या पूर्वी वस्त्र पिळून नेणे, हा विशेष जाणावा. माध्यान्हज्ञान केल्यानंतर पुंड्र धारण केला होस्ताता माध्यान्हसंध्या करावी. “दोडप्रहर दिवसानंतर सायंकालपर्यंत माध्यान्ह संध्या करणें ती इष्ट होय.” माध्यान्हसंध्येविषयी विशेष विधि—“सूर्यश्च०” ह्या मंत्राच्या स्थानी “आपःपुनंतु०” ह्या मंत्रानें मंत्राचमन करावें. तें असे—“आपः पुनं विद्मस्य नारायणयाज्ञवल्क्य आपः पृथिवी ब्रह्मणस्पतिरष्टी मंत्राचमने विनियोगः ओ आपःपुनंतु०” हा मंत्रज्ञान हातावरील उदक प्राशन करावें. अघमर्षणात्कर्म शक्या मंतर उभें राहून “हंसःशुचिषदिस्यस्य गीतमःसूर्योन्नगती अर्धदाने विनियोगः ओ हंसः शुचिष०” हा मंत्र झणून एक अर्ध द्यावें. अर्ध दिव्यानंतर उपस्थान करावें. तें असे—ऊर्ध्वबाहु स्थित होऊन “उदुस्यमितिनयोदशर्चस्यप्रस्कृष्वःसूर्योगायत्री ॥ अंभ्राश्चत स्त्रीनृष्टमः ॥ सूर्योपस्थाने विनियोगः” कोणी शिष्ट “चित्रदेवानां०” ह्या सहा ऋचांनीहि उपस्थान करितात. उपस्थान वर्ज्य करून शेषकर्म प्रातः संध्येप्रमाणें करावें. रात्री माध्यान्हसंध्याकर्तव्य असता, “आकृष्णेन०” ह्या मंत्रानें अर्ध द्यावें, व गायत्री-मंत्रानें प्रायश्चित्तार्थ दुसरें अर्ध देऊन “हविष्ठां०” ह्या पांच ऋचांनी उपस्थान करावें.

यानंतर तैत्तिरीयशास्त्री जे सांची माध्यान्हसंध्या—“आपःपुनंतु०” ह्या मंत्रानें मंत्राचमन करून “दविक्राष्णो०” ह्या मंत्रानें पूर्वी सांगितल्या रीतीने मार्जन करून सूर्याला एक अर्ध गायत्रीमंत्रानें देऊन ऊर्ध्वबाहु स्थित होऊन उपस्थान करावें. उपस्थानाचे मंत्र—“१ उद्वयं०, १ उदुसंजातवेदसं०, १ चित्रदेवानां०, १ तच्चसुदेवाहितंपुरस्तात्०, १ यउदगान्महतो०,” याप्रमाणें उपस्थान केल्यानंतर जपादिक, उपस्थान वर्ज्य करून पूर्वीप्रमाणें करावें.

यानंतर काश्यायनशास्त्री जे सांची माध्यान्हसंध्या—“आपः पुनंतु०” ह्या मंत्रानें मंत्राचमन पूर्वी प्रमाणें करावें, व गायत्री मंत्रानें एक अर्ध देऊन “उद्वयं०” इत्यादिक चार ऋचांनी उपस्थान करावें. जप केल्या नंतर सशकानें, पूर्वी सांगितलेले जे “विषाट्०” असे अनुवाकादिक सांडी करून उपस्थान करावें शेषकर्म पूर्वी प्रमाणें करावें.

ब्रह्मयज्ञ विधि—ब्रह्मयज्ञ करणें तो प्रातःकाळीन होम केल्यानंतर, अथवा माध्यान्हसंध्या केल्यानंतर किंवा वैश्वदेव केल्यानंतर एक वेळच करावा. मंडोनिदीक्षितांच्या

आश्विंक प्रयात तर प्रातः कालीन होम दिव्यान्तर ब्रह्मपञ्चाचा जो काल सांगितला तो दुसऱ्या शाखांविषयी आहे. आश्वलायनशास्त्री जे त्यांनी तर आश्वान्हसंख्या० केल्यान्तर ब्रह्मपञ्च करावा, असे सांगितले आहे. शुष्क वस्त्र परिधान करावे. शुष्क नसल्यास ओले वस्त्र तीन वेळ झाडून परिधान करावे. नंतर आचमन, प्राणायाम करून संकल्प करावा. तो असा—“श्रीपरमेश्वरप्रोक्ष्यर्थे ब्रह्मयज्ञं करिष्ये, तदंगतया देवस्रष्ट्याचार्यतर्पणं करिष्ये.” अशाचा पिता मृत असेल त्यांनी, “पितृतर्पणंच करिष्ये” असा संकल्प करून दर्भासनावर दर्भपवित्र धारण करून पूर्वाभिमुखच वसून आकुंचित केलेल्या ढाव्या पायाच्या पोटीच्या मूलप्रदेशी उजवा पाय ठेवून अथवा ढाव्या पायाच्या अंगुष्ठान्वर उजव्या पायाचा अंगुष्ठ ठेवून याप्रमाणे उपस्थ करून बसावे. नंतर ज्याच्या अंगुली पूर्वन होतील असा असून उजव्या ज्ञानूवर ठेवलेल्या उताणा अशा ढाव्या हातामध्ये दोन पूर्वोद्भर्मावेचे धरून उजव्या हाताने तसाच संपुटित करून आकाश व पृथ्वी यांच्या मध्यभागी दृष्टि करून अथवा नेत्र मिटून ओंकार, व तीन समस्तव्याहृते हे एकवेळ झगून पादशः, अर्धशः, व पृथक् पादरहित सर्व ऋचा असा त्रिवार जप करावा. तदनंतर “अग्निमीळेपु०” हे सूक्त पठण करून संदिता, ब्राह्मण, षडंगे, एक समाप्त करून दुसरे याप्रमाणे अध्याय, किंवा सूक्त, अथवा एक ऋचा जसी शक्ति असेल तदनु रूप क्रमेकरून पठण करावी. मंत्र ब्रह्मण इत्यादि पठण करणे ती यथाविभागेकरून सर्व, जसी शक्ति असेल याप्रमाणे प्रतिदिवसी पठण करावी असे कोणी ग्रंथकार झणतात. याप्रमाणे चार वेदांचे अध्ययन केलेला असेल तर त्याने क्रमेकरून चार वेद भागाभागाने अथवा सर्व, ऋग्वेदपूर्वक पठण करावे. एक झालेच अध्ययन केलेला असेल तर त्याने स्वकीय ज्ञात्वाच पठण करावी. सर्व ज्ञात्वे अध्ययन केले असेल तर सूक्त, अथवा ऋचा, पठण करून एक यजुर्दोहा मंत्र, एक साम, आणि एक उपनिषद, व इतिहास, पुराण इत्यादिक पठण करावी. नंतर पुण्यसूक्त झगून “नमो ब्रह्मणे नमो अस्वप्रये०” ही ऋचा त्रिवार झगावी. ह्या ब्रह्मपञ्चात ऋषि, देवता, छंद याचे स्मरण करून नये झगजे मंत्रांचे छंदऋषि झगून नयेत. “विद्युदसि०” इत्यादिक मंत्राचा पूर्वा व शेवटी जो पठ तो तैत्तिरीयशाखांविषयक आहे. वसून पाठ करण्यास अशक्त असेल त्याने उभ्याने, चालताना, निजल्याने अशा कोणत्याही स्थितीने ब्रह्मपञ्चाचे अध्ययन करावे असे आश्वलायन सांगतो. अनध्याय दिवसी अल्प पठण करावे.

आतां यानंतर तर्पण सांगतो—आंमध्ये देवांचे तर्पण करणे ते सव्येकरून देवतीर्थाने (अंगुलीच्या अग्रानीं) व दर्भाच्या अग्रानीं करावे. ते असे,—उदकाच मसुवा घालून

आ उदकानें देव व ऋषि यांचें तर्पण करावें. उदकांत तिळ टाकून त्या उदकानें
 आचार्य व पितर यांचें तर्पण करावें. तर्पणाच्या देवता अशा—“१ प्रजापतिस्तृप्यंतु, २
 ब्रह्मांतु, ३ वेदास्तृप्यं, ४ देवास्तृप्यं, ५ ऋषयस्तृप्यं, ६ सर्वाणिच्छंदास्तृप्यं. ७
 ओंकारस्तृ, ८ वषट्कारस्तृप्यं, ९ व्याहृत्यस्तृप्यं, १० सावित्रीतृप्यं, ११ यज्ञा-
 स्तृप्यं, १२ द्यावापृथिवीतृप्यतां, १३ अंतरिक्षंतृप्यंतु, १४ अहोरात्राणितृप्यंतु,
 १५ सांख्यास्तृप्यं, १६ सिद्धास्तृप्यं, १७ समुद्रास्तृप्यं, १८ नद्यस्तृप्यं, १९
 गिरयस्तृप्यं, २० क्षेत्रीष्विन्नस्यतिगंधर्वाप्तामस्तृप्यंतु, २१ नागास्तृप्यंतु, २२ वयासितृप्यं
 २३ गावास्तृप्यंतु, २४ साध्यांतु, २५ विप्रास्तृप्यंतु, २६ यक्षास्तृप्यंतु, २७ रक्षांसि तृ-
 प्यंतु, २८ भूतानि तृप्यंतु, २९ एवमेतानि तृप्यंतु.” याप्रमाणें देवतर्पण करून निवीती
 [मरळ माळेंसारखें यज्ञोपवीत केलेला] होताता व तिष्ठेच्या मूलानें, दर्भाच्या मध्यभा-
 गेंकरून ऋषींचें तर्पण करावें. त्या ऋषिदेवता अशा—“१ शतर्षिनातृप्यं, २ षड्य-
 यास्तृप्यं, ३ गृत्तमदस्तृप्यं, ४ विश्वामिवस्तृप्यं, ५ वामदेवस्तृप्यं, ६ अत्रिस्तृप्यंतु,
 ७ भरद्वाजस्तृप्यंतु, ८ वसिष्ठस्तृप्यं, ९ प्रगाथास्तृप्यं, १० पवमानस्तृप्यं, ११ क्षुद्र
 सूक्तास्तृप्यं, १२ महासूक्तास्तृ, एकवचन, द्विवचन व बहुवचन यांचें ठायीं क्रमेकरून
 “तृप्यंतु, तृप्यतां, तृप्यंतु” याप्रमाणें जसें जेथें योग्य असेल तसा उच्चार करावा. यानंतर
 प्राचीनवीती (उजव्या स्कंधावरून यज्ञोपवीत धारण केलेला) होताता पितृतीर्थकरून
 द्विगुणित केलेल्या दर्भाच्या मूलाप्रांती तर्पण करावें. त्याच्या देवता अशा—“१ सुमंतुमै
 मिनिवेशोपायनपैलसूत्रभाष्यभारतमहाभारतधर्माचार्यस्तृप्यंतु, २ जानतिबाहविगार्थगौतमशा
 कल्पवाधव्यमांडव्यमांड्रियास्तृप्यंतु, ३ गर्गीवाचक्रवीर्यस्तृप्यंतु, ४ बडवाप्रातीथेयी तृप्यंतु,
 ५ सुचभामित्रेयी तृप्यंतु, ६ कर्होळं तर्पयामि, ७ वींजातकं तर्पयामि ८ महाकौषीतकं तर्प
 यामि, ९ वैश्वंतर्पयामि, १० मडापैश्वं तर्पयामि, ११ सुयज्ञं तर्पयामि, सांख्यायनं तर्पयामि
 १३ ऐश्वर्यं तर्पयामि, १४ महैतरेयं तर्पयामि, १५ आकलं तर्पयामि, १६ वाक्कलं तर्पयामि १७
 सुजातवकं तर्पयामि, १८ औदवाहं तर्पयामि, १९ महौदवाहं तर्पयामि, २० सौजातं तर्प-
 यामि, २१ शौनकं तर्पयामि, २२ आश्वलायनं तर्पयामि, २३ येच्यान्येआचार्यास्ते सर्वे तृप्यंतु”
 याप्रमाणें आचार्यतर्पण करून नंतर ज्याचा पिता मृत असेल त्यानें पितृत्रयी, मातृत्रयी,
 सांख्यवादा, उपनिषद प्रातामहत्रयी, आणि महालयप्रकरणीं सांगितलेले मृत जे पति
 इत्यादीं कुकीदृष्टण यांचें तर्पण करावें. “ज्या पितरांचें तर्पण करावयाचें त्यांचा व
 आदला संबंध याचा प्रथम उच्चार करावा, (उदाहरण; अस्वपितर इत्यादी.)नंतर नाग

व गोत्र (अमुक शर्माणं, अमुक गोत्रं इत्यादि) यांचा उच्चार करावा. नंतर ज्या पितरांचे जें वस्त्रादिक रूप, तशी असेल तर वसुधेशादियस्वरूपः, एकोद्विष्ट असेल तर वसुरूपः याचा उच्चार करावा. याप्रमाणें हा निबार्ध अनुक्रम जाणावा. तर्पणविषयी उदकाचा अंजलि देवास एकएक द्यावा, ऋषींस दोनदोन अंजलि द्यावे, व तारांस तीनतीन अंजलि द्यावे असा जो संख्येचा विशेष सांगितला आहे तो आश्वलायनाच्या खी जे खांस वैकल्पिक जाणावा; कारण, आश्वलायनाच्या सूत्रामध्ये अंजलीची संख्या सांगितली नाही. ज्यांच्या सूत्रमध्ये अंजलीची संख्या उक्त असेल खांस तो नित्य आहे, ह्यून खांसां याप्रमाणें अंजली अवश्य द्यावेत असें माधव सांगतो. गातृत्रयीवांचून ज्या इतर स्त्रिया खांला एकेक अंजली द्यावा. इतकें विस्तारपूर्वक तर्पण करण्यास शक्ति नसेल तर, “आश्रमस्तंभपर्यंत देवाधिपितृमानवः ॥ तृप्यंतुपितरः सर्वेमातृमातामहादयः अतीतशुलकोटीनांसतद्दीपनिशासिनां ॥ आब्रह्मभुवनाहोकादिदारुणतिलोदकं,” हे मंत्र ह्यून तीन तीन अंजली द्यावे. तदनंतर “येकेचास्यत्क्रेजाता अपुत्राणोधिणोमृताः ॥ तेगृहंतुमथादत्तं वस्त्रनिष्पीडनोदकं,” हा मंत्र ह्यून परिधान केलेले वस्त्र भूमीवर निष्पीडन करून उदक द्यावे. ह्याविषयी आश्वलायनांनी प्राचीनांगीती करावी. इतरशास्त्री जे खांसांनी निबार्धती करावी. वस्त्र निष्पीडन करून उदक देणें तें गृहास निषिद्ध आहे. ब्रह्मयज्ञ करणें तो ग्रामापासून बाहेर उदकाच्या सजिय करावा, ग्रामांत ब्रह्मयज्ञ कर्तव्य असतां सर्व अध्वयन मनोमय करावे. दक्षिण हस्तास वामहस्त सल्लभ करून त्या दक्षिण हस्तानें, किंवा दोन हस्तांचा अंजलि करून त्या अंजलीने तर्पण करावे. ‘तर्पण करणें तें दर्भाच्छादित भूमीवर करावे. उदकांत सोडूं नये. अथवा पात्रांतिल उदक घेऊन दुसऱ्या शुद्धपात्रांत सोडावे. अथवा उदकांत भरलेल्या भूमीच्या खाचेंत सोडावे, परंतु दर्भविरहित भूमीवर सोडूं नये. तर्पणा विषयी पात्र सुवर्णाचें, रौप्याचें, अथवा तांब्याचें किंवा कांस्यमय ध्यावे, मातीचें पात्र घेऊं नये. ज्या काळीं तर्पण करावयाचें त्या वेळीं ती भूमि अपवित्र असेल तर नदीवर जाऊन नदीच्या उदकांत तर्पण करावे. अनामिकेंत (कारांगळी जवळचे बोटांत) सुवर्ण धारण, तर्जनीमध्ये रौप्य धारण, आणि कनिष्ठिकेमध्ये खड्गाधारण यांहीं करून मनुष्य पवित्र होतो. अंगुलीचें जें अग्र तें देवतीर्थ होय, अनामिका व कनिष्ठी का यांचें जें मूळ तें काय (प्रजापति) तीर्थ होय. अंगुष्ठ व तर्जनी यांचा जो मध्यभाग तें पितृतीर्थ होय अंगुष्ठाचें जें मूळ तें ब्रह्मतीर्थ होय.” उदक बाहेर काढून खांसांनी पितृ-तर्पण करणें असल्यास त्या उदकांत तिल मिश्र करून करावे. अनुवृत्त (न काढलेले) उदकांत तर्पण कर्तव्य असेल तर ह्याच्या हस्तामध्ये तिल ध्यावे. तिलमिश्रित उद-

कानें तर्पण घरीं करूं नये. रविवार, भृगुवार, सप्तमी, नंदातिथि, कृत्तिका, मघा, भरणी, मन्वादितिथि, युगादितिथि ह्या दिवसीं पिंडदान, मृत्तिकास्नान, व तिलतर्पण हीं करूं नयेत. मातापितरांच्या श्राद्धदिवसीं जें नियम तर्पण याविषयीं तिल घेऊं नयेत. पर्बे दिवसीं निषिद्ध तिथि, वार इत्यादिक जरीं असतील तथापि तिलतर्पण करावें. “ब्राह्मण पुस्तकानें विकिर, पिंडदान, तर्पण व स्नानकर्म हीं केल्यानंतर आचमन करून धारण केलेंले दर्भ टाकावे.” दर्भसागाचा मंत्र--“येषां पिता न न आता न पुत्रानान्यगोत्रिणः ॥ ते सर्वे तृप्तिनायानु मयात्सृष्टैः कुशैस्तथा.”

हिरण्यकेशीय यांचा ब्रह्मयज्ञविधि—हिरण्यकेशीय यांचें संकल्पापासून त्रिवार गायत्री जपपर्यंत कर्म पूर्वी प्रमाणेंच जाणावें. तदनंतर, “इषेत्वोर्जत्वा०” इत्यादिक अध्याय किंवा अनुवाक यथाशक्ति पठण करून ऋचा, साम, षडंगे, इतिहास, पुराण, इत्यादिक पठण करून “नमोब्रह्मणे०” ही ऋचा तीनवेळ पठण करावी.

आतां यानंतर तर्पणाचा विधि सांगतो—तें तर्पण तैत्तिरीयशाखी जे यांचें ब्रह्मयज्ञाचें अंग होत नाहीं. याकरितां ब्रह्मयज्ञ सणने (अध्ययन) केल्यानंतर मध्ये कांहींवेळ टाकून वाढि किंवा ब्रह्मयज्ञाच्या पूर्वीं होतें. याप्रमाणें काण्व, माघ्यांदिन यांविषयीं हे हाच निर्णय आहे याकरितां “देवर्ष्याचार्योपेतृतृप्तिद्वाराश्रीरमेश्वरप्रोथ्यर्ष्यदेवर्ष्याचार्योपेतृतर्पणं करिष्ये” असा निराळाच संकल्प करावा, व पूर्वीं सांगितल्याप्रमाणें एकेक अंजलि देऊन देवतर्पण करावें. देवतर्पणाच्या देवता अशा—“१ ब्रह्माणं तर्पयामि २ प्रजापतिं तर्पयामि ३ बृहस्पतिं० ४ अग्निं० ५ वायुं० ६ सूर्यं० ७ चंद्रमसंत० ८ नक्षत्राणि० ९ इंद्र० राजानंत० १० यमश्राजानंत० ११ वरुणश्राजानंत० १२ सोमश्राजानंत० १३ वैश्रवणश्राजानंत० १४ वसूंत० १५ रुद्रान्त० १६ आदिसान्त० १७ विश्वान् देवान्त० १८ साध्यान्त० १९ ऋभून्तर्पया० २० भृगून्त० २१ मरुतः० २२ अप्सर्वणस्त० २३ अंगिरसस्तर्पयामि०.” याप्रमाणें तर्पण करून निवीती करून उत्तर दिशेस सन्मुख होऊन ऋषितर्पण करावें. ऋषितर्पणाच्या देवता अशा—“१ विश्वामिंत्रंत० २ जमदाग्निंत० ३ भरद्वाजंत० ४ गौतमंत० ५ अत्रित० ६ वसिष्ठं० ७ कश्यपंत० ८ अहंधर्तांतर्प० ९ अगस्त्यंतर्पयामि० १० रुष्णद्वैपायनं० ११ जातुकर्ष्यं० १२ तद्वत्सं० १३ तृणविंदुंत० १४ वनिणं० १५ वरुथिनंत० १६ वाजिनं० १७ वाजिश्रवसं० १८ सत्यश्रवसंतं० १९ सुश्रवसं० २० सुतश्रवसं० २१ सोमशुष्माणंत० २२ सत्ववंतं० २३ बृहद्वयं० २४ वामदेवंतं० २५ वाजिरत्नं० २६ हर्यमायनं० २७ उदगयं० २८ गौतमंतर्पं०

३९ ऋणंजयंतं ३० ऋतंजयं ३१ कृतंजयं ३२ धनेंजयं ३३ वधुं ३४ त्र्यह्वणं ३५ त्रिवर्षं ३६ त्रिवारं ३७ शिविं ३८ पराशरं ३९ विष्णुं ४० इन्द्रं ४१ इन्द्रं ४२ काशीशरं ४३ ज्वरं ४४ धर्मं ४५ अर्थं ४६ कामं ४७ क्रोधं ४८ वसिष्ठं ४९ इंद्रं ५० स्वष्टारं ५१ कर्तारं ५२ धर्तारं ५३ धातारं ५४ मृत्युं ५५ सवितारं ५६ सावित्रीं ५७ ऋग्वेदं ५८ यजुर्वेदं ५९ सामवेदं ६० अथर्ववेदं ६१ इतिहासपुराणं” याप्रमाणे एकेकास दोन दोन अंजलि देऊन तर्पण करावें. नंतर प्राचीनार्वादी करून दक्षिणमुख हास्ताता आचार्यतर्पण करावें. आचार्यतर्पणाच्या देवता “ १ वैशांपायनंतर्पयामि २ पिलिमुं ३ तित्तिरं ४ उखं ५ आत्रेयंपदकारं ६ कौण्डिन्यं वत्तिकारं ७ सूत्रकारान् ८ सरथाषाढं ९ प्रवचकतुर्नू १० आचार्यान् ११ ऋषीन् १२ वानप्रस्थान्तर्पयामि १३ उर्ध्वरेतसस्तं १४ एकपस्नीस्तं” याप्रमाणे एकेकास तीन तीन अंजलि देऊन तर्पण करावें हा विशेष जाणावा शेष पितृतर्पणादिक सर्व कर्म पूर्वी सांगितले आहे याप्रमाणे करावें.

यानंतर आपस्तंब इत्यादिकांच्या तर्पणाचा विधि—आ तर्पणाच्या देवता “ १ ब्रह्मादयो देवास्तां देवां २ सर्वान् देवां ३ सर्वान् देवगणांस्तं ४ सर्वदिवस्पस्नीस्तं ५ सर्वा नृपुत्रांस्तं ७ सर्वान् पौत्रांस्तं ८ भूर्देवांस्तं ९ भुवर्देवांस्तं १० सुवर्देवांस्तं ११ भूर्भुवःसुवर्देवांस्तं १२ कृष्णद्वैपायनादयो ऋषयः तान् ऋषींस्तं १३ सर्वान् ऋषींस्तं १४ सर्वान् ऋषिगणांस्तं १५ सर्वा ऋषिपत्न्यस्तं १६ सर्वान् ऋषिपुत्रांस्तं १७ सर्वान् ऋषिपौत्रांस्तं १८ भूर्ऋषींस्तं १९ भुवर्ऋषीं २० सुवर्ऋषीं २१ भूर्भुवःसुवर्ऋषींस्तं एवं सोमः पितृमान्यमोगिरःस्वानभिष्वात्ताः कव्यवाहनादयोऽपि पितरः २२ तान् पितॄंस्तं” इत्यादिक दहा पितृतर्पणाचा ऊह करावा, व याप्रमाणे इतरांनीहि असेच जाणावें.

यानंतर कात्यायनशास्त्री जे त्यांचा ब्रह्मपञ्चविधि—पूर्वाभिमुख वसून आचमन करून हातांत दर्भपवित्रके धारण करून प्राणायाम करून संकल्प करावा. तो असा—“श्रीप. रमेश्वरप्रोत्यर्थं ब्रह्मपञ्चेन यद्ध्ये” याप्रमाणे संकल्प केल्यानंतर अंजलीत दर्भ धारण करून तो अंजलि उजव्या जानूवर ठेवून दुसऱ्या सूत्रांत सांगितल्याप्रमाणे त्रिवार गायत्री झणून “इषेत्वा०” इत्यादिकापासून आरंभ करून संहिता व ब्राह्मण पांचे पूर्वी सांगितल्या रीतीने अध्ययन करावें. नंतर उपनिषद्, इतिहास, पुराण इत्यादिक पठण करून अंती “ओम्स्वस्ति” असे झणावें. दुसऱ्या सूत्रांत सांगितली याकरिता “नमो ब्रह्मणे०” ही ऋचा त्रिवार क्वचित् पठण करितात.

यानंतर तर्पण सांगतो—हे तर्पण करणे ते प्रातःसंध्या झाल्यानंतर, अथवा मध्यरात्री

ब्रह्मयज्ञ कोट्यानंतर एकवारच करावे. ब्रह्मयज्ञाचे काल विकल्पेकरून तीन सांगितले आहेत. आंमध्ये "देवाधिपितृतर्पण करिष्ये" असा संकल्प करून पूर्वी सांगितल्या रीतीने प्रथम देवतर्पण करावे. ते असे—भूमि अथवा तर्पे इत्यादिकांचे पात्र वापर दर्भ हातून "विश्वेदेवास आगत०" हा मंत्र झपून देवांचे आवाहन करून "विश्वेदेवाःसृणुतेम०" ह्या मंत्राचा जप करून पूर्वदिशेला अग्नें होतील असे तीन दर्भ घेऊन देवतीयांनै तर्पण करावे. देवतर्पणाच्या देवता—भो ब्रह्मातृप्यतां, विष्णुस्तृप्यतां, रुद्रस्तृ० प्रनापतिस्तृ० देवस्तृ० छंदीसितृ० वेदास्तृ० ऋषयस्तृ० पुगाणाचर्यास्तृ० इतराचार्यास्तृ० संवत्सरःसाव-यवस्तृ० देव्यस्तृ० अप्सरसस्तृ० देवानुगास्तृ० नागास्तृ० सागरास्तृ० पर्वतास्तृ० सरितस्तृ० मनुष्यास्तृ० पक्षास्तृ० रक्षांसितृ० पिशाचास्तृ० सुपर्णास्तृ० भूतानितृ० पशवस्तृ० वन-स्पतयस्तृ० ओषधयस्तृ० भूतग्रामश्चतुर्विधस्तृ०" याप्रमाणे सर्वत्र प्रणवासाहित प्रथमा विभक्त्यंत नाम उच्चारून तर्पण करावे. २९नंतर "सप्तऋषयः०" ह्या मंत्राने ऋषींचे आवा-हन करून निवृत्ती होस्तोता प्रत्येक ऋषीस दोन दोन अंजली असे तर्पण करावे. ऋषि-तर्पणाच्या देवता अशा— "सनकस्तृ०, सनंदनस्तृ०, सनातनस्तृ०, कपिलस्तृ०, आसु-रीतृ०, बोहुस्तृ०, पंचशिक्षस्तृ०" याप्रमाणे तर्पण करून प्राचीनावृत्ती होस्तोता, "उश-तस्त्वा०" ह्या मंत्राने पितरांचे आवाहन करून "आयंतुनःपितरः०" ह्या मंत्राचा जप करून पितृतीर्थाने प्रत्येकास तीन तीन वेळ असे तर्पण करावे. त्याच्या देवता "कव्य-वाहनरस्तृप्यतां, सोमस्तृप्य० यमस्तृ० अर्यमातृ० अग्निष्वात्ताःपितरस्तृप्यतां, सोमपाः पितरस्तृप्य० बर्हिषदस्तृप्यतां, यमायनमस्तर्पयामि, धर्मराजायनमस्तर्पयामि मृशवे० अंत-काय० वैवस्वताय० कालाय० सर्वभूतक्षयाय० औदुंबराय० दध्नाय० नीलाय० परमेष्ठिन० वृकोदराय० चित्राय० चित्रगुप्ताय० २१" याप्रमाणे तर्पण करावे. यमतर्पण करावयाचे ते वैकल्पिक आहे. कारण सूत्रामध्ये "एके" असे वचन आहे, ह्यजजे कोणी आचार्य करावे, असे ह्यजतात. ज्याचा पिता जिवंत आहे त्याने अपसव्य करणे ते मनगटा पर्यंतच करावे असा सर्वत्र निर्णय जाणावा. तदनंतर मृतपितृकाने पितृत्रयी मातृत्रयी यांचे तर्पण करून, "उदीरता०" ह्या नऊ ऋचांनी तर्पण करावे, व जेथे उदक असेल त्या स्थानी अंजलीने उदकधारा सोडावी. त्या ऋचा अशा— "उदीरता० १, अंगिरसोनपितरो० २, आयंतुनः० ३, ऊर्जबहतिरमृतं० ४, पितृभ्यःस्वधानमः० ५, येचेहापि० ६, मधुवाता० ऋचा ३," ह्या नऊ ऋचांनी प्रत्येक ऋचेस प्रत्येक वेळी 'तृप्यध्वं' असे ह्यजून अंजलीने त्रिवार उदकधारा पाडावी. तदनंतर, "नमोवःपितरः०" हे आठ यजुर्मंत्र ह्यजून माता-महादेवत्रयी व एकोद्विष्टगण यांचे तर्पण करावे. नंतर "देवागातुविद०" ह्या मंत्र ह्यजून

विसर्जन करावे. आम केलेले वस्त्र पिळून उदक देणे इत्यादिक शोधकर्म पूर्वी सांगितल्याप्रमाणे जाणावे. प्रातःकालीन होम दिव्यान्तर देवपूजा केली नसेल तर चौथ्या मासामध्ये ब्रह्मयज्ञ केव्यान्तर करावी.

आता पांचव्या भागाचे कथन—गृहस्थाश्रमी जे मास सर्वदा पंचसूना संबंधी होष प्राप्त होते त्याचा नाश होण्या करितां प्रत्यही वैश्वदेव करावा. कंडणी झणजे उखळ, मुसळ इत्यादिक कांडण्याचे साधन; पेषणी झणजे जारें, पाटा, वरवंटा इत्यादिक पिष्ट करण्याचे साधन; चुल्ली झणजे चूल, अहाळ इत्यादि पाक करण्याचे साधन; जलकुंभा झणजे घट, हांडा इत्यादि उदक ठेवण्याचे साधन; मार्जनी झणजे केरसुणी, खराटा, कुंवा इत्यादि गृहशुद्धि करण्याचे साधन, या प्रमाणे ही पांच साधनें कृमिकीटकादिकांची अलक्षित हिंसा होण्याची स्थले त्या पंचसूनां होत. वैश्वदेवाचा प्रारंभ प्रातःकालीच होतो. अग्निहोत्रा प्रमाणे प्रारंभ सायंकाळी होत नाही, यस्तक संकल्प करणे तो “प्रातःसायं वैश्वदेव०” इत्यादिकच कथवा. पंचमहायज्ञ प्राति दिवसीं करावे. ते हे—ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, भूतयज्ञ, पितृयज्ञ आणि मनुष्ययज्ञ या प्रमाणे पंचमहायज्ञ होत. त्यामध्ये ब्रह्मयज्ञ सांगितला. ऋक्शाखी इत्यादिक जे त्यांचा वैश्वदेव देवयज्ञ, भूतयज्ञ, व पितृयज्ञ हे तीन यज्ञ मिळून होतो, व अतिथीला अन्न देणे हा मनुष्ययज्ञ होय. “गृहामध्ये पक्क असून तैल, क्षार इत्यादिकांनीं विरहित, घृतयुक्त असीं जीं हविष्यांके त्यांचा होम गद्याग्रीवर अथवा लौकिकाग्रीवर करावा. ज्या अग्रीवर चरु केला असेल त्या अग्रीवर वैश्वदेव करावा.” वैश्वदेव संबंधी पितृयज्ञ केव्यानें निम्न श्राद्धाची तिद्धि होते. नियश्राद्धा करितां ब्राह्मणभोजन करूं नये. वैश्वदेव संबंधी जो पितृयज्ञ तेणें करूनच दर्शश्राद्धाची तिद्धि होते त्या करितां प्रतिमासीं दर्शश्राद्ध करण्यास ज्याला शक्ति नसेल त्यांनीं वर्षामध्ये एकवारच करावे. असें भट्टोजिदीक्षितांनीं केलेल्या आन्हिकांत सांगितलें आहे. आशीचांमध्ये पंचमहायज्ञ करूं नयेत असें सांगितलें आहे. वैश्वदेव हा आत्मसंस्कार व अन्नसंस्कार एतत्प्रयोजक आहे. अविभक्त बंधूंचा एक पाक असतां पृथक् वैश्वदेव करूं नये. विभक्त असून सर्वांचा पाक जरी एक असेल तथापि त्यांनीं दुसऱ्या हविष्य द्रव्यानें निराळाच वैश्वदेव करावा. बंधु विभक्त नसून पाकभेद असतां पृथक् वैश्वदेव कृताकृत असें भट्टोजिदीक्षितकृत आन्हिकांत सांगितलें आहे. पाकाचा असंभव असतां एकादशी इत्यादिकांचेठायीं तांदूळ, दूध, दही, तूप, फळे अथवा उदक इत्यादिकांनीं करावा. “अन्न इत्यादिक हवनिय द्रव्यांचा वैश्वदेव हस्तानें करावा, व उदकें करून अंगुलीनें अलात करावा. कोडुधान्य, चणे, उडीद,

मसुरा, व कुळीप, सर्वे क्षार, सर्वे लवण हे पदार्थ वैश्वदेवावेषयी वर्ण्ये करावे. जो गृहस्थ प्रवासी असेल त्याने श्वशुराची पुत्र, ऋत्विक् इत्यादिकांकडून वैश्वदेव करावा. स्वगृही वैश्वदेव करणारा दुसरा कोणी नसेल तर प्रवासातमध्ये स्वतां करावा. ऋग्वेदी, व तैत्तिरीयशास्त्री यांनी वैश्वदेव दिवसा व रात्री असा दोन वेळ करावा. दिवसा व रात्री असा दोन वेळ करण्यास ज्याला शक्ति असेल त्यांनी एककालीच द्विरावृत्तीने अथवा एकतन्नाने करावा. ऋग्वेदी व तैत्तिरीयशास्त्री यांच्या बहुधा आचार, पाक व वैश्वदेव हे लौकिक कामीवर करण्याचा आहे.

यानंतर प्रातःकालीन व सायंकालीन असे दोन वैश्वदेव बरोबर करणे ह्या पक्षाचा एकतंत्रप्रयोग सांगता— यामध्ये वैष्णवांनी भगवंताला सोळा उपचारांमध्ये, दीपापयंत उपचार अर्पण करून सर्वे अन्नांतून, एका पुरुषाचे आहाराची पर्याप्ति होई इतका नैवेद्य भगवंताला अर्पण करून शेष राहिलेल्या अन्नाने वैश्वदेव करावा. जे वैष्णव नसतील त्यांनी तर पूर्वी वैश्वदेव करून जो शेष पाक राहिला असेल तेणे करून नैवेद्य समर्पण करावा; कारण “विष्णूस्त अर्पण केलेले अन्न घेऊन त्या अन्नाने दुसऱ्या देवतांचा यज्ञ (वैश्वदेवादिक) करावा, व पितरांलाहि ते अन्न द्यावे, ह्मणजे त्या अन्नाने श्राद्ध करावे, व ते कर्म अनंत फल देणारे होतें, ” इत्यादिक जी वचनें तीं वैष्णवपर आहेत असे निबंधकारांनी सांगितले आहे. या वैष्णवत्वा विषयी विचार केला असता असे सिद्ध होते कीं नारायणाच्या अष्टाक्षर इत्यादिक वैष्णवमंत्राचे दीक्षेचा उपदेश घेऊन जे ऋष करितात ते मुख्य वैष्णव होत; कारण, “कलियुगामध्ये उपदेश ग्रहण करावा, ” अशा स्मृतिवचनाने उपदेश मात्राचेंहि दीक्षेच्या फला सारिले फल आहे. परंपरागत अरुणोदयाने विद्ध अशा एकादशीचे उपोषण न करितां शुद्ध कृष्ण एकादशीचे उपोषण करणे इत्यादिक, कांहीं अल्पस्वरूप धर्म, पाळणारे असून मंत्रोपदेशाने विरहित असे जे ते गौणवैष्णव होत. शंका—“पांचरात्र इत्यादिक जे वैष्णवशास्त्र यामध्ये सांगितलेली दीक्षा ज्याने ग्रहण केली असेल तो वैष्णव होय, ” असे वचन आहे याकरितां अल्पस्वरूप वैष्णवधर्म आचरण केल्याने कसा वैष्णवपणा येईल? समाधान—गायत्रीचे अध्ययन करणे इत्यादिक जो, क्षत्रियवैश्यांचा साधारण धर्म तो मात्र पाळणारे; दुसऱ्याचे परीं ऋत्विक्कर्म करणे, वेदाचे अध्ययन शिकावेणे, व दान घेणे असा जो विशेष धर्म तेणे करून शुन्य असणारे; बाप, आज्ञा इत्यादि कांच्या परंपरेने वैश्यादिकांचा व्यापार करणारे असे ब्राह्मण असतांही केवळ त्यांचे व आपले गोत्र एक व जाति एक इत्यादिक अल्पस्वरूप ब्राह्मणधर्माने असे ते ब्राह्मण

व ब्राह्मणतला योग्य असा अशौच घरणे इत्यादिक आचार असा चालतो तसा काळी-
 दुगामध्ये अल्पस्वरूप वैष्णव घर्मानेहे वैष्णवपणा व सा वैष्णवांचा योग्य आचार हे मानले
 जातात. क्षत्रिय जे खांस वस्तुतः गोत्र नसून खांचे पुरोहिताचे जे गोत्र ते खांचे गोत्र
 अशा नियमाने क्षत्रियांचे पुरोहित अनेक झाल्यामुळे क्षत्रियांची गोत्रेहे अनेक झाली,
 आणि तेणेकरून यदुवंशामध्ये परस्पर विवाह झाला असा ब्रह्मणांत होत नाही हे स्पष्ट
 आहे. याप्रमाणे श्राद्ध असेल तथापि नैवेद्य अर्पण करून पितरांला अन्न समर्पण करावे
 असें जाणावे. वैश्वदेवाचा संकल्प असा—“मयात्मानसंस्कारपंचसुनाजनेतदोषपरिहार-
 द्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं प्रातर्वैश्वदेवंसायं वैश्वदेवंच सहतंत्रेण करिष्ये,” याप्रमाणे संकल्प करून
 कुंडाला किंवा स्थंडिल इत्यादिकांत पचनाग्निचे व्याहृतिमंत्रांनी पावकनामा असे स्थापन करून-
 न, “चत्वारिंशृगा०” ह्या मंत्राने अग्निचे ध्यान करून परिसमुद्रा ह्यजने अग्निच्या सभोवती
 उदक सिंचन करून पर्युक्षण ह्यजने सभोवती उदक सिंचन करून “विश्वानितो०” ह्या
 मंत्रांनी पूजा, स्तुती करून घृतयुक्त अन्न अग्निवर किंचित् शिजव्यासपर्यंत करून ते उदका
 ने प्रोक्षित करून उत्तरेकडून आणून अग्निच्या पश्चिम भागी स्थापन करून खाचे तीक्ष्ण
 भाग करून पहिल्या भागाचा देवांच्या उद्देशाने होम करावा. तो असा— डावा हस्त
 हृदयावर ठेवून उताप्या अशा उजव्या हाताने “सूर्यार्यस्वाहा सूर्यायेदंनमम, प्रजापतये०
 सोमायवनस्पतये० अग्निषोमाम्या० इंद्राभ्यां० द्यावापृथिवीभ्यां० ध्रुवंतरये० इंद्राय० विश्वे-
 ष्योदेवेभ्यः० ब्रह्मणे०” याप्रमाणे होम करावा. ह्या दहा आहुति प्रातःकालीना
 वैश्वदेवाच्या होत.

यानंतर सायंकालीन वैश्वदेवाच्या आहुति “अग्नयेस्वाहा” ही आहुति देऊन, “प्रजा-
 पतयेस्वाहा” इत्यादिक पुनः नऊ आहुतींनी होम करावा. याप्रमाणे वीस आहुतींनी होम
 करावा. प्रायश्चित्तार्थे व्यस्त समस्तव्याहृतिमंत्रांनी होम करणे तो करावा किंवा न करावा.
 नंतर परिसमूहन, पर्युक्षण (पूर्वी सांगितल्याप्रमाणे कुंडाच्या सभोवतार उदक फिरवणे) ही
 कार्याची. व “ओंचमे०” ह्या मंत्राने उपस्थान करावे. याप्रमाणे देवयज्ञ सांगितला.

यानंतर बलिहरणनामक भूतयज्ञ सांगता—अन्नाच्या दुसऱ्या भागांतून अन्न घेऊन
 शुद्ध भूमीवर “सूर्यार्यस्वाहा सूर्यायेदंनम” याप्रमाणे दहा आहुति एकीच्या पुढे दुसरी
 याप्रमाणे मध्ये अंतर न ठेवता पूर्वेकडे घालीत जाव्या. नंतर मध्ये काही अंतर टाकून
 “अद्भ्यः स्वाहा, ओषधिवनस्पतयेभ्यः०, गृहाय०, गृहदेवताभ्यः०, वास्तुदेवताभ्यःस्वाहा
 अशा पूर्वसंस्थ आहुति देऊन ‘अद्भ्यः’ ह्या आहुतीच्या पाठीमागे “इंद्राय०” ही आ-
 हुती द्यावी, तिच्या उत्तरेस “इंद्रपुरुषेभ्यः०” ही द्यावी, अंतरालाच्या दक्षिणेस “पवा.

य०” ही देऊन तिच्या उत्तरेस यमपुरुषेभ्यः०” ही द्यावी ‘ब्रह्मणे०’ ह्या आहुतीच्या पूर्वेस “वरुणाय०” ही आहुती देऊन तिच्या उत्तरेस “वरुणपुरुषेभ्यः०” ही आहुती द्यावी. अंतरालाच्या उत्तरेस “सोमाय०” ही आहुति देऊन तिच्या उत्तरेस “सोमपुरुषेभ्यः०” ही द्यावी. मध्यमार्गी “ब्रह्मणे०, ब्रह्मपुरुषेभ्यः०, विश्वेभ्यो देवेभ्यः०, सर्वेभ्यो भूतेभ्यः०, दिवाचारिभ्यः०” याप्रमाणे आहुति देऊन ‘सोमपुरुष०’ असी जी आहुति तिच्या उत्तरेस “रक्षोभ्यः०” ही आहुति द्यावी. याप्रमाणेच सूर्याच्या स्थानी प्रथम “अग्नेये०” ही आहुति देऊन “प्रजापतये०” इत्यादिक पूर्वी सांगितल्याप्रमाणे सायंकालीन वैश्वदेवसंवेदि दुसरे बलिहरण घालावे. त्या सायंकालच्या बलिहरणामध्ये ‘दिवाचारिभ्यः०’ ह्या आहुतीच्या स्थानी “नक्तं चारिभ्यः स्वाहा” ही आहुति द्यावी, हा विशेष ज्ञापनावा. याप्रमाणे भूतयज्ञ सांगितला.

नंतर प्राचीनार्थी होस्ताता अन्नाच्या तिसऱ्या भागांतून अन्न घेऊन “स्वधापितृभ्यः” असी आहुति यमाच्या आहुतीच्या दक्षिणमार्गी देऊन “पितृभ्य इदं नमः” असा ज्ञान घणून दुसऱ्या आहुतीच्या दक्षिणप्रदेशी दुसरा पितृयज्ञच करावा. याप्रमाणे पितृयज्ञ सांगितला.

कोणी दुसरे ग्रंथकार चक्रा प्रमाणे बलिहरण घालावे असे सांगतात “बलिहरण काढून टाकण्यावांचून भोजन करू नये, व आपण काढू नये. तदनंतर घराच्या आंगण्यांत भूमीवर उदक सिंचन करून, “एंद्रवारुणवायव्यां याभ्यां नैर्ऋतिकाश्वये॥ ते काकाः प्रतिगृहंतु भूभ्यां पिंडं मयोद्दिशतं ” हा मंत्र घणून पितृयज्ञशेष जे अन्न असेल त्याचा पिंड देऊन “वैश्वतकुले जातौ द्वौ इयाम शबलो शुनी ॥ ताभ्यां पिंडो मया दत्तो रक्षेतां पथि मां सदा येभुताः प्रचशंते० ” ह्या दोन मंत्रे करून दोन पिंड भूतयज्ञशेषाचाचे द्यावे. एकतंत्राने वैश्वदेवाचा प्रयोग कर्तव्य असेल तर “ये भूताः०” ह्या मंत्राचे ठिकाणी ‘दिवानक्तं’ असा पाठ जाणावा. दिवसा आणि रात्री निरनिराळा वैश्वदेवप्रयोग कर्तव्य असल्यास “दिवाबलिभिच्छंतो०, नक्तं बलिभिच्छंतो० ” अशा विभाग करून पाठ जाणावा. तदनंतर हस्तपाद प्रक्षालन केले होस्ताता आचमन करून गृहांत जाऊन “शांताश्रयित्री०” इत्यादि मंत्रांचा जप करून विष्णूचे स्मरण करून कर्म ईश्वराला समर्पण करावे.

यानंतर मनुष्ययज्ञ सांगतो — अतिथीचे भोजन होईल इतके अन्न अथवा साठ्या प्राप्त परिमित किंवा चार ग्रास अथवा एकग्रास परिमित अन्न “सनकादिमनुष्येभ्यो हंत इदं नमः,” असे वाक्य घणून द्यावे. बहुत भिक्षुक आले असतील आणि तितक्यांत अन्न

देण्याचें सामर्थ्य नसेल तर तीन भिक्षेकऱ्यांला तीन प्रास अथ खावें.

तैत्तिरीयशास्त्री यांचा वैश्वदेव तैत्तिरीयशास्त्री यांनीं श्राद्धदिवसी गिराळा पाक करून श्राद्धाच्या पूर्वी वैश्वदेव, व देवयज्ञादिक चार यज्ञ करावेत. दुसरे ग्रंथकार, पूर्वी वैश्वदेव केल्यानंतर पंचमहायज्ञ करावे असें झणतात. “यजुःशास्त्री व सामवेदी यांनीं श्राद्धाच्या पूर्वी करावा, अथर्वणवेदी यांनीं श्राद्धाच्या मध्ये वैश्वदेव करावा, आणि ऋग्वेदी यांनीं श्राद्ध करून श्राद्धशेषान्नानें करावा. त्यामध्येहि जे सामिक ऋग्वेदी असतील त्यांनीं श्राद्धाच्यापूर्वी वैश्वदेव करावा.” वैश्वदेवाचा संकल्प — ‘स्वर्गपुष्टयर्थं आत्मसंस्कारार्थं प्रातःसायं वैश्वदेवैतंत्रेण करिष्ये,’ असा संकल्प करून औपासनाभि किंवा स्थापना केलेला पंचनापि घाला औपासन होमाप्रमाणें परिसमूहन, परिधिचन करून अन्न अग्नीवर थोडें उष्ण करून खाबर उदकानें प्रोक्षण करून अग्नीवरून उतरून खाबर आश्रय घालून वें अन्न अग्नीच्या पश्चिमेस ठेवावें. नंतर अग्नीची पूजा करून त्या अन्नाचे तीन विभाग करून प्रथम भागांतोळ अन्नाचा हस्तानें होम करावा. होमाचे मंत्र असे — ‘अग्रये’ स्वाहा, विश्वेभ्यो देवेभ्यः० ध्रुवाय भुमाय० ध्रुवक्षितये० अच्युतक्षितये० अग्रयेऽश्विष्टकृते०’ याप्रमाणें होम करून परिसमूहन, पर्युक्षण करून अग्नीच्या पश्चिमेस एकाच प्रदेशीं विजण्याच्या आकाराचें किंवा चक्राच्या आकाराचें बलिहरण घालावें. बलिहरणाच्या देवता अशा — धर्माय स्वाहा धर्मायिदंनमम, अधर्माय० अद्भ्यः० ओषधिवनस्पतिभ्यः० रक्षोदेव जनैभ्यः० गृह्याभ्यः० अवसानेभ्यः० अवसानपतिभ्यः० सर्वभूतेभ्यः० कामाय० अंतरिक्षाय० यदेजतिजगति यज्ञचेष्टतिनाम्नो भागो यन्नाम्ने स्वाहा नाम्नाइदंन०” या स्थानीं कोणी ग्रंथकार “वायवइदं०” असा त्याग झणावा असें सांगतात. “पृथिव्यै स्वा० अंतरिक्षाय० दिवे० सूर्याय० चंद्रमसे० नक्षत्रेभ्यः० इंद्राय० बृहस्पतये० प्रजापतये० ब्रह्मणे०” याप्रमाणें आहुति देऊन सर्व आहुतींस उदकानें एकवार सिंचन करावें. निरनिराळें सिंचन करणें हा पक्ष गृहीत असेल तर ‘धर्म व अधर्म’ ह्या दोन आहुति मिळून एक वेळ सिंचन; ‘अद्भ्यः’ ह्या आहुतीस सिंचन; ‘ओषधिवनस्पति व रक्षोदेवजन’ ह्या दोन आहुति मिळून सिंचन; ‘गृह्याभ्यः’ अवसान० अवसानपति० व सर्व भूत०’ ह्या चार आहुति मिळून सिंचन; ‘काम०, अंतरिक्ष०, यदेजति०’, ह्या तीन आहुतींस पृथक् पृथक् सिंचन; व पृथिवीपासून ब्रह्मापर्यंत, दहा आहुति मिळून एकवार सिंचन, याच्या पुढच्या ज्या आहुति त्यांला प्रत्येकीस निरनिराळें सिंचन या क्रमानें उदकाचें सिंचन जाणावें.” नंतर प्राचीनावीती होःसाता पृथिव्यादि दहा आहुतींच्या दक्षिणप्रदेशीं ‘स्वधापितृभ्यः स्वाहा०” ही आहुति खावी; व दिव्या उत्तरप्रदेशीं उपवीती होःसाता

“नमोद्द्रायपशुपतयेस्वाहा.” ही आहुति देऊन पितर व इतर यांच्या आहुतीवर निखनेपाळे सिंचन करावे. याप्रमाणे वैश्वदेव सांगितला.

आतां देवयज्ञादिक चार यज्ञ—“देवयज्ञेनयक्ष्ये”असा संकल्प करून अग्नीच्या समो-
वार उदकाचे सिंचन करून “द्वेभ्यःस्वाहा ” ह्या मंत्राने अग्नीमध्ये आहुति देऊन
उत्तर परिवेक करावा. नंतर प्राचीनावीती होत्साता “पितृयज्ञेनयक्ष्ये” असा संकल्प
करून दक्षिणप्रदेशीं भूमीवर ५ पितृभ्यःस्वधास्तु ” ह्या मंत्राने आहुति देऊन त्याग उड्या-
रून उदकाचा परिवेक करावा. नंतर यज्ञोपविती होत्साता उदकाला स्पर्श करून
“भूतयज्ञेनयक्ष्ये ” असा संकल्प करावा. नंतर “ भूतेभ्यो नमः ” ह्या मंत्राने भूमी-
वर आहुति देऊन उदकाचा परिवेक करावा. नंतर निवीती होत्साता “ मनुष्ययज्ञेन
यक्ष्ये ” असा संकल्प करून पूर्वी सांगितले आडे प्रमाण ज्याचे असे अन्न “ मनुष्ये
भ्योहंत । ” ह्या मंत्राने द्यावे. तैत्तिरीयशास्त्री हे सर्व यज्ञांमध्ये पूर्वी व शेवटीं क्रमे-
करून “ विद्युदसि० आणि वृष्टिरसि० ” ह्या मंत्राचा पाठ बहुधा करिता व. बलि-
हरण घालून शेष अन्न जें असेल तें घेऊन घराच्या आंगण्यामध्ये जाऊन “ येभूताःप्रच
रंतिदिवा० ” हा मंत्र झणून तें वर आकाशांत उडवावे. तदनंतर जसा आचार असेल-
याप्रमाणें कुत्रे, काबळे, यांना बलि द्यावा.

आतां कात्यायनशास्त्री यांचा वैश्वदेव.

कात्यायनशास्त्री जे यांमध्ये जे सामिक असतील त्यांनीं एका पाकाने आहुतिद्वारां
श्राद्धाच्या पूर्वी वैश्वदेव करावा. जे सामिक नसतील त्यांनीं श्राद्धानंतर त्याच पाकाने
वैश्वदेव करावा. गृह्याधीतून ज्वालायुक्त कोलीत घेऊन स्वयंपाक घरांत तो प्रदीप्त करून
त्याच्यावर सर्व पाक करून स्वयंपाकघरांतील आग्ने घेऊन तो गृह्याधीत मिळवावा. नंतर
सिद्ध केलेल्या पाकांतून घृतयुक्त चर घेऊन पूर्वीप्रमाणें, “आत्मानसंस्कारार्थं वैश्वदेवाखंडं
कर्म करिष्ये” असा संकल्प करावा. अथवा “ देवभूत पितृ मनुष्यान् वैश्वदेवाच्चेन यक्ष्ये, ”
असा संकल्प करावा. नंतर कलशादिकाने गृह्याधीच्या आसमंतात् प्राक्षिण करून हस्ते
करून अग्नींत होम करावा. त्याच्या देवता अशा--“ब्रह्मणे स्वाहा इदं ब्रह्मणेन मम” याप्रमाणें
पुढेंही जागावे. “ प्रजापतये० गृह्याभ्यः० कश्यपाय० अनुमतये ” याप्रमाणें देवयज्ञ सांगितला
तदनंतर कलशाजवळ उत्तरेकडे जाणाऱ्या अशा तीन आहुति एकापुढें एक याप्रमाणें द्याव्या.
त्या अशा —“पर्जन्याय नमःस्वाहाइदं पर्जन्याय नमम, अद्भ्योन० पृथिव्यै० ” यानंतर
दक्षिणशाखाचे ठिकाणीं पूर्वस्य दान आहुति द्याव्या. त्या अशा—“धात्रे० विधात्रे०”
नंतर उदकाने चतुष्कोण मंडळ करून त्या मंडळावर पूर्वप्रदेशीं “ वायवे० ” दक्षिण प्रदे-

शी "वायवे०," पश्चिम प्रदेशी "वायवे०," उत्तरप्रदेशी "वायवे०" याप्रमाणें आहुति देऊन पुनः पूर्वादि दिशापासून, वायुबलीच्या पूर्वेस अथवा उत्तरेस "प्राग्ध्वे दिशे०" दक्षिणस्ये दिशे०, प्रतीध्वे दिशे०, उदीध्वे दिशे०" ह्या आहुति द्याव्या. नंतर मध्य-भागी पूर्वसंस्थ "ब्रह्मणे०, अंतरिक्षाप०, सूर्याय०" ह्या आहुति द्याव्या, व यांच्या उत्तरेस "विश्वेभ्यो देवेभ्यः० विश्वेभ्योभूतेभ्यो०" अशा द्याव्या. यांच्या उत्तरेस, "उषसे० भूतानां च पतये०" ह्या आहुति द्याव्या. याप्रमाणें भूतपञ्च सांगितला. नंतर प्राची-नावीती होस्ताता ब्रह्मादि तीन आहुतींच्या दक्षिणप्रदेशी पितृतीर्थानें, "पितृभ्यः स्वस्त्यं नमस्कृतं पितृभ्योनमः" असा मंत्र ह्मणून आहुति द्यावी. या प्रमाणें पितृ-पञ्च सांगितला.

चतुर्थे पात्र प्रक्षालन करून घाव्या वाजूनें ब्रह्मादिक आहुतींच्या वायव्य प्रदेशी "यह्यैतत्त्वे निर्घेजन०" ह्या मंत्रानें तें उदक धावें. नंतर पूर्वी सांगितल्याप्रमाणें मनुष्य-पञ्च करावा. निरामिक असेल तर, लौकिकाग्नि आणून "पृथोदिवि०" ह्या मंत्रानें अन्न अग्नीची स्थापना करून "तस्तवि०, तास्तवितु०, विश्वानिदेव०" ह्या तीन सामिप्य मंत्रांनीं प्रदीप्त करून त्या अग्नीवर निखाचा औपासनहोम करून त्या अग्नीवर पाक करून वैश्वदेव करावा, असें गदाधर सांगतो. याविषयींही असामर्थ्य असेल तर ऋग्वेदी इत्यादिकांला जी रीति सांगितली त्या रीतीनें पचनाग्नि स्थापून ध्यान करून पूजा करावी. नंतर त्या अग्नीवर पूर्वी सांगितल्या रीतीनें वैश्वदेव करावा. त्यामध्ये पाहिल्या पांच आहुति दिल्या नंतर, "अन्नयेस्विष्टकृते स्वाहा०" ह्या मंत्रानें आहुति द्यावी, याप्रमाणें निरामिकाचा सर्वत्र विशेष जाणावा. शेषकर्म पूर्वीप्रमाणें करावें, काव्यायनशास्त्री यांनीं दिवसासच एक वैश्वदेव करावा, रात्री दुसरा करूं नये. सामवेदी व अथर्वणवेदी यांनींही आपापल्या गृह्यसूत्रांत सांगितल्यारीतीनें पंचमहायज्ञ करावे. त्यांना आपापले गृह्यसूत्र न मिळेल तर ऋग्वेदी यांना सांगितल्या रीतीनें त्यांनीं उपनयनादिक संस्कार व पंचमहायज्ञ करावेत.

"अन्यशास्त्रांचीं मते यद्यार्थ पाहिल्यावांचून आपल्या धैर्यानें यथामति अन्य शास्त्रांचें आग्नेहिकप्रकरण मी सांगितलें आहे, असें जाणून स्वशास्त्री यांनीं शोधून पाहावें."

"ऊत, उदक; फल, मूल, तांबूल, दूध, आणि औषध हीं भक्षण करूनहि ज्ञान, दान इत्यादिक कर्मे करावीं." पंचमहायज्ञांतून एकाद्या यज्ञाचा लोप होईल तर उपो-षण करावें. धनवान् व रोगी यांनीं प्रत्येक यज्ञाच्या लोपास अर्धकच्छु प्रायश्चित्त करावें. दुसरे ग्रंथकार तर, एक दिवस पंचमहायज्ञांचा लोप झाला असेतां "मनस्वति०" ह्या

आहुतीचा होम, दोन दिवस, तीन दिवस लोप झाला असेल तर तीम "तंतुमती०" ह्या आहुतींनी होम, आणि चार वारुणी ऋचांचा जप करावा; नारा दिवसपर्यंत लोप होईल तर, तंतुमतीस्थालीपाक, ४ वारुणी ऋचांनी आज्यहोम करावा असें क्षणतात.

आतां सर्वसाधारण भोजनादिकांचा विधि—सोन्याचे पात्रांत, रुप्याचे पात्रांत अथवा आंबा इत्यादिक वृक्षांच्या पानावर भोजन करावें तें प्रशस्त होय. कांस्यपात्रांत भोजन करणें असेल तर ज्या कांस्यपात्रांत आपण भोजन करितों त्यांत इतरांनीं कळं नये, दुसऱ्यानें भोजन केलेल्या कांस्यपात्रांत उच्छिष्ट शाल्यामुळें भोजन कळं नये. "संन्यासी, नक्षत्रारो आणि विधवा यांनीं तांबूल, तैलाभ्यंग, कांस्यपात्रांत भोजन हीं विशेषें करून बर्ज्य करावीं." संन्यासी इत्यादिकांनीं पळसाच्या पानावर भोजन करावें तें प्रशस्त होय. गृहस्थाश्रमी यानें पळसाच्या पानावर भोजन कळं नये; केले, असतां चांद्रायण करावें. हें चांद्रायण, वल्लोरूप जो पळसाचा वृक्ष तद्विषयक होय असें स्पृश्याचार्यांत सांगितलें आहे. कदली, कुडा, मोहाचा वृक्ष, जामूळ, कणस, आंबा, चांफा, आणि उंबर यांचीं पानें भोजनाला प्रशस्त होत. रुई, पिंपळ, वड इत्यादिकांचीं पानें निषिद्ध होत.

चतुष्कोण मंडल करून त्या मंडलावर धुतलेलें पात्र ठेवून ज्या अक्षानें पंचमहायज्ञ केलेले असें शेष, घृत इत्यादिकांनीं युक्त असून पात्रावर वाढलेलें हें अन्न निरंतर आहारास प्राप्त होऊं असें बोलत होताता नमस्कार करून उजव्या हातांत ग्रंथिभिरहित दर्भपवित्र धारण केलेला असून उभयचरणांनीं किंवा एका चरणानें भूमिळा स्पर्श करीत होताता व्याहृति व गायत्री या मंत्रांनीं पात्रावरील अन्न अभिमंत्रण करून "सस्यं त्वेतेन परिषिचामि," ह्या मंत्रानें दिवसा व "ऋतं त्वा सत्येन परिषिचामि," ह्या मंत्रानें रात्री पात्राच्या समोबाहू उदकाचे सिंचन करावें. नंतर "अंतश्चरतिभूतेषु गुहायां विश्वतो मुखः ॥ त्वंपद्मस्तं वषट्कारस्तं विष्णुः पुरुषः परः" ह्या मंत्रानें प्रार्थना करून पात्राच्या उजव्या बाजूस भूमिवर "भूपतये नमः, भूवनपतये नमः, भूतानां पतये नमः" अशा तीन मंत्रांनीं तीन आहुति द्याव्या अथवा "चित्राय०, चित्रगुप्ताय०, यमाय०, यमधर्माय०, सर्वभूतेभ्यः" अशा मंत्रांनीं पांच आहुति द्याव्या. अथवा व्यस्तसमस्तव्याहृतिमंत्रांनीं चार द्याव्या. किंवा "धर्मराजाय० चित्रगुप्ताय०" अशा दोन द्याव्या. अथवा भूपत्यादिक तीन आहुति व धर्मराज, चित्रगुप्त ह्या दोन आहुति मिळून पांच द्याव्या. हस्त, पाद, आणि मुख हीं ज्याचीं आर्द्र आहेत असा होताता आपोशनाकरितां उदक हस्तांत घेऊन "अक्षं नक्षत्रसो विष्णुर्भोक्ता०, अहवैश्वानरो भूत्वा०" हे मंत्र घणून पांचा अर्थ मनांत आणावा. द्याव्या हस्तानें पात्र

धरून "अमृतोपस्तरणमति" ह्या मंत्रानें हातांत घेतलेले उदक प्राशन करावें. नंतर मानी होताता " ओं प्राणायस्त्रा०, ओंअपानाय०, ओंव्यानाय०, ओंउदानाय०, ओंसमानाय०" हे मंत्र झणून प्रत्येक मंत्रानें एकेश्च अशा घृतयुक्त किंवा दुग्धयुक्त पाक आहुति सर्व अंगुलींनीं, सर्व प्रास भक्षण करीत होताता मुलांमध्ये हवन कराव्या. "ब्रह्मणे स्वा०" ही सहावी आहुति क्वचित् ग्रंथांत उक्त आहे. पात्र हातभेने धरणें व मीन ही प्राणा-हुतीपर्यंत निम्न आहेत, प्राणाहुतीनंतर हीं दोन ऐच्छिक आहेत. भोजन करणें तें पूर्वाभिमुख किंवा पश्चिमाभिमुख करावें तें प्रशस्त होय. दक्षिणाभिमुख भोजन करावें तें काम्य होय, आर्षे फल यज्ञ. उत्तरादेशेस मुख करून भोजन करणें तें निंद्य होय. विदेशास मुख करून भोजन करणें तें निषिद्ध होय. अन्नाचा सर्व प्रास भक्षण करीत होताता बचीस इत्यादिक प्रासपरिमित किंवा यथेच्छप्रास भोजन करून हातावर उदक घेऊन "अमृता-विधानमति" ह्या मंत्रानें तें उदक अर्धे प्राशन करून शेष भूमीवर टाकावें. नंतर हातातील पवित्रक टाकून मुख व हात चांगले प्रक्षालन करावे. तर्जनीने मुख प्रक्षालन करूं नये, पूर्वी कांहीं चूळ भरून टाकून नंतर हात धुवावे. सोळा चूळ भरून टाकल्या नंतर दोन वेळ आचमन करावें. भोजनगृहांत आचमन करूं नये. आचमन केल्यावा-चून मूत्रपुरीष करूं नयेत. उत्तरापोशन घेतल्यावाचून उठलें असतां ज्ञान केल्यावाचून शुद्धी होत नाहीं. हातावर उदक घेऊन तें खाली पाघळवून त्या उदकेकरून अंगुष्ठानें नेत्रांवर सिंचन करून इष्टदेवतेचें स्मरण करावें. उदक अंजलीनें प्राशन करूं नये. पळसाचा, दग्ध शालेला, लोखंडाचे खिळ्यांनीं युक्त असा पाट बसायला घेऊं नये. लहान् मुलें जवळ घेऊन त्यांच्या बरोबर भोजन करूं नये. विवाहावाचून स्त्रियेबरोबर भोजन करूं नये. बाल, वृद्ध, यांला भोजन घातल्यावाचून भोजन करूं नये. मांडीवर पाय घटवून, पाटावर पाय ठेवून, अथवा पाय पसरून, विदेशेला मुख करून भोजन करूं नये. दुष्टयुक्त पंक्तीत भोजन करूं नये. अग्नि व पाकनिष्पत्ति यांहींकरून, हीन अशा गृहीं, व देवालयीं भोजन करूं नये. दिवस व रात्री याचे संघ्वासमय, मध्यरात्र या समयी भोजन करूं नये. यज्ञोपवीतविरहित भोजन करूं नये. डाव्या हस्तानें भोजन करूं नये. शूद्रभोजन करून शेष राहिलेले अन्न भक्षण करूं नये. भोजन करणें तें पूर्वी मधुर पदार्थ, मध्ये खारट थं आवट पदार्थ, शेवटीं कटु इत्यादि पदार्थ, अशा रीतीनें भोजन करावें. पूर्वी पातळ पदार्थ, मध्ये कठीण पदार्थ, शेवटीं पातळ पदार्थ, भक्षण करावे. संन्यासी यानें आठ प्रास; गृहस्थाश्रमी यानें सोळा किंवा बत्तीस प्रास; वानप्रस्थानें सोळा प्रास; व ब्रह्मचारी यानें यथेच्छ, याप्रमाणें भोजन करावें. घृत व पादस हे पदार्थ निः

शेष भक्षण करावे. इतर पदार्थ पात्रावर थोडथोडे शेष राखून भक्षण करावे. भोजनांत, दुध, दही, व मध हे पदार्थ भक्षण करावे. दिवसा व रात्री मिळून दोनवेळच भोजन करावे. मध्ये आणखी तिसऱ्याने भोजन करू नये.

“रविवार, पौर्णिमा व अमावास्या ह्या दिवसीं रात्री भोजन करू नये; चतुर्दशी व अष्टमी ह्या दिवसीं दिवसा भोजन करू नये; एकादशीचे दिवसीं अहोरात्र भोजन करू नये; कारण ह्या दिवसीं भोजन केलें असतां चांद्रायण करावें असें सांगितलें आहे. जो मनुष्य हातावर अन्न घेऊन भोजन करितो, जो मनुष्य उष्ण अन्नावर फुंकर घालून भोजन करितो, व जो प्रसृत अंगुलीं करून भोजन करितो त्याचे तें भोजन गोपास भक्षण केव्याप्रमाणें होतें. अजीर्ण असतां, अति भुकेलेला त्यानें तत्कालाचि, ओलें वळ परिधान करून, मस्तक ओलें असतां, पायांवर हात ठेवून व प्रासाचे शेष भोजन करू नये. उदक प्राशन करून पात्रांत शेष राहिलेले उदक प्राशन करू नये. शाक, मूळ, फले इत्यादिक पदार्थ दातांनीं तोडून भक्षण करू नयेत. उच्छिष्ट होताना त्यानें तूप घेऊं नये. पायानें पात्राला स्पर्श करू नये. उदक प्राशन करित असतां मुखापासून पात्रांत उदक पडेल तर तें पात्रांतलें अन्न भक्षण करू नये. उदक प्राशन करून पात्रांत शेष राहिलेले उदक प्राशन केले असतां चांद्रायण प्रायश्चित्त करावें. हाताचे नखांचा स्पर्श झालेले उदक प्राशन केले असतां, व ड्याव्या इत्यां उचललेले उदक प्राशन केले असतां सुरापानासम जाणावें. जर एका पंक्तीत वसून चांद्रायण भोजन करित असतां त्यांतून एकादा उठेल किंवा उच्छ्रापोशन घेईल तत्पश्चात् इत्यादी शेष राहिलेले अन्न भोजन करू नये. साविषयी उठणारा व भोजन करणारा या दोघांचा यताला दोष आहे. गुद असेल तर खाला दोष नाही. लवण, व्यंजन, घृत, तेल, इत्यादी पदार्थ, पेय, इत्यादिक अनेक प्रकारचे पदार्थ हाताने दिलेले भक्षण करू नयेत. अन्नाने च्या पात्रांत गाईचे दूध इत्यादिक, कांस्यपात्रांत नारळाचे उदक व उंसाचा रस, मूत्रमिश्रित दही, आणि गुडयुक्त आले हीं मदासमान होत. सैध्वमीठ व समुद्रांत उतरण झालेले मीठ पांवांचून जें प्रयत्न लवण तें भक्षण करणें व मृत्तिका भक्षण करणें हीं गोष्टांसतुल्य होत. भोजन करित असतां रजस्वला, चांडाल, कुत्रा आणि कुकूट, यांचे दर्शन होईल तर तें अन्न टाकावें. भोजन करणाराचा गुदस्त्राव होईल तर त्यानें एक उपोषण करून पंचगव्य ग्रहण टाकावें. आपोशन घेतल्यानंतर प्राणाहुतीच्या पूर्वी गुदस्त्राव झाला असतां स्नान करून सहा प्राणायाम करावे. भोजन करित असतां तत्कालीं आशौच प्राप्त होईल तर मुखांतिल प्राप्त टाकून स्नान करावें, मुखांतिल प्राप्त भक्षण

करील तर ज्ञानपूर्वक उपोषण करावें. सर्वे अन्न भक्षण करील तर त्रिरात्र उपोषण करावें. भोजन करीत असतां विष्टा इत्यादिकांचा स्पर्श होईल तर ज्ञान करून तनि प्राणायाम करावे. चांडाल, पतित, व रजस्वला यांचा शब्द ऐकून भोजन केलें असतां एक उपोषण करावें, अथवा ज्ञान करून शंभर गायत्रीजप करावा. कलह, घोट उलळ, मुसळ यांचा जोपर्यंत शब्द होत आहे ताककालपर्यंत भोजन करूं नये. “ब्राह्मणांनी, स्वकृपि आप्त जन यांच्या सहवर्तमानादि एका पंक्तिस बसून भोजन करूं नये; कारण कोणाचें कसें काय गुप्त पातक असेल तें कोणासाहि समजत नाही. या करितां ब्रह्मा पुरुषानें अधि, भस्म, स्तंभ, उदक, दरवाजा अथवा मार्ग यांतून कोणत्या एका प्रकारानें पंक्तिभेद करावा.” केंस, मुंग्या व माशा यांसहित जें अन्न शिजलें तें टाकावेंच. पाक झाल्यानंतर तें अन्न केंस, मुंग्या, किडे, माशा इत्यादिकांनीं मिश्र झालें अथवा तें अन्न गाईनें हुंगिलें असतां “आ अन्नाच्या शुद्धीकरितां उदक, भस्म अथवा मृत्तिका सावर टाकावें,” असें विज्ञानेश्वर सांगतो. शूद्रान्न; शूद्रानें दिलेलें ब्राह्मणाकडचें अन्न; रात्रीचें शिळें अन्न; रजस्वला, चांडाल, पतित, इत्यादिकांनीं अवलोकन केलेलें अन्न; कावळे इत्यादिक पक्ष्यांचें उच्छिष्ट अन्न हीं अभोज्य होत. तूप, तेल यांत तळलेले माडे, घिबर हे पदार्थ शिळे ग्रहण करावे. जीस वासळ नाही अशी गाई; सुवेर गोला नाही अशा गाई, महिषी, भेंढी, बकरी; व मार्भेणी; एकात्राआड दूध देणारी; जुळें प्रसवणारी; स्तनांतून निघून दूध स्रवणारी; भेंढी बकरी यांचांचून दिस्तनी, उंटीण; घोडी; अरण्यांतिल हरिणी इत्यादिक आणी एडकी यांचीं दूग्धे वर्ज्य होत. शोगवा व हिंग खेरीज करून तांबडा असा वृक्षाचा बीक; विष्टेच्या स्थळां उत्पन्न झालेले माठ, तांदूळजा इत्यादिक; देवादिकांच्या उद्देशावांचून केलेले असे मोहन भोग, पायस, अपूप, करंज्या, खिचडी, तिल-मिश्र ओदोन हे पदार्थ वर्ज्य करावे. ताग, कर्डेई, दुध्या भोंपळा, वांगे, कोरळ, बट इत्यादिक फळे व माहळुंगे, हीं भक्षण करूं नयेत. पलांडू, लसूण आणि गाजर हीं भक्षण केलीं असतां चांद्रायण करावें. भोजन करित असतां परस्पर स्पर्श झाला तर त्या अन्नाचा स्वाग करावा. पात्रावरचें अन्न भक्षण केलें असतां ज्ञान करून अष्टोत्तरशत गायत्रीजप करावा. पात्रावरील अन्न भक्षण करून आणखी अन्न भक्षण केलें असतां ज्ञानपूर्वक सहस्रगायत्रीजप करावा. अशुचि ब्राह्मणांशीं भोजन करण्याचा स्पर्श झाला असतां तें अन्न टाकावें. भोजन केल्यानंतर उच्छिष्टावस्थेमध्ये स्पर्श होईल व स्पर्श करणारा आपल्या वर्णांतला असेल तर ज्ञान किंवा जप करावा, आपल्या वर्णांतला

नसेल तर उपवास करावा. भोजनानंतर उच्छिष्टावस्थेमध्ये कुत्रा, शूभ्र इत्यादिकांचा स्पर्श झाला तर उपोषण करून पंचगव्य प्राशन करावें रजक इत्यादिकांचा स्पर्श झाला असल्यास त्रिरात्र व्रत करावें. पात्रावर पदार्थ वाढीत असतां उच्छिष्टाचा स्पर्श झाला तर दूध, दही, घृत इत्यादिक हलके पदार्थ टाकून नयेत, व हस्तपाद प्रक्षालन करून आचमन केल्याने शुद्ध होतो. भक्ष इत्यादिक अन्नाचा त्यागच करावा. वस्त्राच्या त्यागाविषयी विकल्प आहे झणजे टाकावें किंवा न टाकावें. स्त्री पात्रावर पदार्थ वाढीत असतां त्यासमयी रजस्कन्धाली तर तिचा स्पर्श झालेले अन्न टाकावें.

भोजन झाल्यानंतर उच्छिष्ट जें शेष अन्न तें घेऊन “ रौरवे पुयनिलये पद्मार्धुः शिवा सिनां प्राणिनां सर्वभूतानामक्षय्यमुपीतष्टु, ” हा मंत्र झणून द्यावें. “ भोजनपात्र जें पर्यंत काढले नाहीं तावत्काल पर्यंत, तो अशुचि होय. “ पात्र काढल्यानंतरादि जेथपर्यंत भूमीचें सारवण केलें नाहीं तेथपर्यंत तो अशुचि होय. “ नागवेलीच्या पानाचें अन्न, मूळ व शिरा हीं अवश्य काढून चुन्याचें पान वर्ज्य करून ज्ञात्या पुष्पाचें तांबूल भक्षण करावें. मुखांत पान घातल्यावांचून सुपारी भक्षण करूं नये; झणजे पूर्वी पान नंतर सुपारी या प्रमाणें तांबूल भक्षण करावें. ” या प्रमाणें पांचव्या भागाचें कथ सांगितलें:

“ दिवसाचा सहावा व सातवा हे भाग भारतादि इतिहास, पुराणें इत्यादिकांच्या वाचन पूर्वक अर्थ विचारानें घालवावे, आणि दिवसाच्या आठव्या भागांत आपले इष्ट, मित्र, आस इत्यादिकांस भेटणें, संभाषण करणें इत्यादिक संसार संबंधीं कार्ये करून योग्यकालीं गांवाच्या बाहेर नदी, तळें इत्यादिकांवर सायंसंध्या करावयास जावें. ” सायं कालची संध्या प्रातःसंध्ये प्रमाणें करावी. प्रातःसंध्येहून सायंसंध्येचा काहीं विशेष प्रकार आहे. तो असा—“ अभिश्च मामन्युश्च, यदन्हा पापमकार्षं, अहस्तदव-
'लुपतु, सभ्योऽप्योतिषि जुहोमि स्वाहा ” या प्रमाणें मंत्राचमनांत विशेष जाणावा. पश्चिम दिशेला संमुख उभा राहत होतासा अर्घ्य द्यावें. ऊर्ध्व जानु होतिल असा पश्चिमाभिमुखच बसून गायत्रीचा जप करावा. सायंकालचा होम पूर्वी सांगितलाच आहे तसा करावा. सायंकालीं वैश्वदेव करणें असल्यास पुनः पाक करावा. अतिथीची पूजा करून तीन घटिका रात्रे झाल्यानंतर, आणि दीड प्रहर रात्रीच्या पूर्वी भोजन करून निद्रा करावी.

भोजन करीत असतां दीप नष्ट झाला तर भोजनपात्र हातांत धरून सूर्याचें स्मरण करून पुनः दीप प्रज्वलित झाल्यानंतर तो पाहून पात्रावरचें अन्न भक्षण करावें, दुसरें

भक्षण करूं नये. श्राद्धाचा पूर्व दिवस, श्राद्ध दिवस, व्यतीपात, वैधाति, संक्रांति इत्यादिक ह्या दिवसांनी रात्रीं भोजन करूं नये. "रात्रीचा चवथा व पाहिला हे प्रहर विद्याभ्यासानें घालवावे सणजे ह्या प्रहरांत विद्याभ्यास करावा. मधल्या दोन प्रहरपर्यंत जो निद्रा करितो तो ब्रह्मत्वा कारणें योग्य होतो." पूर्व, पश्चिम किंवा दक्षिणदिशा यांतून कोणत्याहि दिशेस उत्तें करून निद्रा करावी, उत्तर दिशेला उत्तें करून कधीहि निजूं नये. रात्रिसूक्ताचा जप करून सुखशार्पांचें स्मरण करून विष्णूला नमस्कार करून निद्रा करावी. सुखशार्पा—अगरित, माधव, मुचुकुंद महामुनि, कपिल आणि आस्तिक हे पांच मुनि सुखशार्पा होत, या करितां निद्राकार्त्वी यांचें स्मरण केल्यानें निद्रा सुखकारक होते.

संध्यासमयी; धान्यावर; गाईच्या गोष्टांत; देव, ब्राह्मण व गुरू यांच्या उपरिप्रदेशीं उच्छिष्ट हास्तात; दिवसा; नम्रपर्णी निद्रा करूं नये. निद्रा समयी मुखांतून तांबूल, पेंलंगावरून स्त्री, मस्तकाच्या गंधाचा तिलक, आणि रतिकार्त्वी मस्तकावर धारण केलेलीं पुष्पें या सर्वांचा त्याग करावा. गर्भाधानप्रकरणीं सांगितला जो स्त्रीगमन-काल ह्या कार्त्वी दांड प्रहर रात्र गेल्या नंतर दीप असो किंवा नसो यज्ञोपवीत निवीत (कंठामध्ये माळे सारखें लावतें) कंठादिकांचे ठायीं करून स्त्रियेप्रत गमन करावें. "अष्टमी, चतुर्दशी, दिवा, पर्वणी, या समयी मैथुनकर्यानें सचैल ज्ञान करून वारुणी ऋचांनीं मार्जन करावें, आणि "पुनर्मैत्रिव०" ह्या मंत्राचा जप करावा व तो पूर्वी सांगितलाच आहे.

याप्रमाणें अनेक प्रकारच्या विधिनिषेधांनीं युक्त अशा ज्ञान, भोजन इत्यादिक आन्धिक कर्मांमध्ये न्यूनाधिक दोष, विधिनिषेधाचा अतिक्रम केल्याचा दोष, हे सर्व दोष परिहार होण्याकरितां, प्रायश्चित्ताचें ज्ञान नसल्यास कर्म सांग होण्याकरितां व प्रायश्चित्ताची सांगता होण्यासाठीं श्रीविष्णूच्या नामाचें उच्चारण इत्यादिक करावें. "तपोरूप व कर्मरूप अशीं जीं सर्व प्रायश्चित्ते ह्या सर्वांमध्ये श्रेष्ठ प्रायश्चित्त कृष्णस्मरण हें होय. तपश्चर्या, यज्ञयागादिक कर्म यांमध्ये जें कांहीं न्यून होतें ते ज्याच्या स्मरणमंत्रानें व नामोच्चारणमंत्रानें परिपूर्णतेला पावतें असा सनातन विष्णु बाला नमस्कार करितो. पातकाचा नाश करण्याविषयी हरीच्या नामामध्ये जितकी शक्ति आहे तितकी शक्ति पापी जनाला पातक करण्याविषयी नाही." लौकिक, वैदिक कर्म ईश्वराला समर्पण करावें. कारण गीतेंत श्रीकृष्ण सांगतात—"हे अर्जुना, स्वभावेकरून किंवा शास्त्रविधीनें जें कर्म करितोस, जें भक्षण करितोस, जें हवन करितोस, जें देतोस, आणि जें तप करितोस

ते सर्व कर्म मला जसे अर्पण होईल असे कर," असे वचन आहे. एकदाच सर्व कर्म ईश्वराला समर्पण करण्याचा मंत्र—“कामतोऽकामतोर्वापिपत्करोमिशुभाशुभं ॥ तत्सर्वैस्त्वयि संस्यस्तंत्वत्प्रयुक्तःकरोम्यहं.”

“शाखापरत्वे अनेक प्रकारचे ज्यांत भेद आहेत असें हे अपार आन्धिक कर्म असत गहन असल्यामुळे ते सर्व सांगण्याविषयी, अनंतोपाध्यायांचा पुत्र, काशीनाथ नामक असण पंडित मी असमर्थ आहे, परंतु यथामति संक्षेपाने सांगितलें आहे. तेणेंकरून श्रीरुक्मिणीपाति भगवान् प्रभु विह्वल संतुष्ट होवो. याप्रमाणें अन्धिकारप्रकरण समाप्त झालें.”

प्रतिदिवसीं करावयाचें असें आवश्यक आन्धिककर्म सांगून यानंतर त्या आन्धिकारचेंच शेष राहिलेले आणि काम्य व नैमित्तिक कर्म बहुधा निर्णयासिंधूच्या क्रमानें सांगतां.

या नंतर आधानाचा निर्णय—सामध्ये आधानें कोणत्या नक्षत्रां व कोणत्या कालीं करावें इत्यादिक निर्णय पहिल्या परिच्छेदांत सांगितला आहे तो पहावा. गृह्याधीचें आधान करणें ते तर, विवाहकालीं पिता इत्यादिकांपासून प्राप्त होणार जो दाय ह्यणजे धन याच्या विभागकालीं करावें. “प्रमाद इत्यादिकारणेंकरून ज्याणें विवाहाग्नि धारण केला नाही त्यानें पिता मृत झाल्यानंतर मोठ्या प्रयत्नेंकरून धारण करावा, ह्यणजे धारण करण्याविषयीं जरी अनेक संकटें प्राप्त झालीं तथापि तीं सर्व सहन करून अवश्य धारण करावा.” गृह्याधीनें जो हीन त्याचें अन्न कोणीं भक्षण करूं नये. पिता किंवा ज्येष्ठ भ्राता सामिक असून कनिष्ठ इत्यादिक विभक्त नसेल तर त्या कनिष्ठास आग्नि धारण न केल्याचा दोष नाही. याप्रमाणें ज्ञान, अध्ययन इत्यादिकाविषयीं जो नैष्ठिक त्यालाहि अग्नि धारण न केल्याचा दोष नाही. कारण, गृहस्थाश्रमी यानेंहि वेदाध्ययन करावें, असें वचन आहे. जर ज्येष्ठ भ्रात्यानें आधान केलें नसेल तर कनिष्ठानें स्मार्ताधीचेंहि आधान करूं नये, असें निर्णयासिंधु इत्यादिक ग्रंथांमध्ये गर्गाश्रमीचें वचन आहे. या विषयीं मला असा निर्णय वाटतो—जेथें ज्येष्ठ भ्रात्यानें दयाचा पहिला पक्ष स्वोकारून विवाहकालीं, “यावज्जीवमीपासनं करिष्ये,” असा संकल्प पूर्वीं करून विवाहाग्नि घेतला नसेल तद्विषयक हा कनिष्ठाला आधानाचा निषेध सांगितला. ज्या ज्येष्ठ भ्रात्यानें विवाहकालीं तसा संकल्प पूर्वीं करून विवाहाग्नि घेतला आणि पुढें त्याप्रमाणें अग्नि धारण केला नाही या कारणानें तो ज्येष्ठ भ्राता विद्यमान ज्याला अग्नि नाही असा झाला तथापि तो उच्छिन्नाग्निच होय, आधान न केलेला असा नव्हे, यास्तब तशा स्थलीं कनिष्ठानें आधान केलें

असतां दोष नाही, या आधानाविषयीं कनिष्ठ जरी अधिकारी आहे तथापि त्यानें ज्येष्ठ भ्रात्याची आज्ञा घेऊन आधान करावें, विवाह, ज्येष्ठाची आज्ञा असेल तथापि होणार नाही याप्रमाणें पिण्याची आज्ञा घेऊनाहे पुत्रानें आधान करावें. “ पिता किंवा ज्येष्ठ भ्राता हा संन्यासी असेल किंवा तुटलेला हात इत्यादिक व नपुंसकत्व इत्यादिक दोष त्यास असेल तर कनिष्ठानेंच सर्व कर्मे करावी, ” इत्यादिक विषेध निर्णय विवाह-प्रकरणीं परिवेश्याच्या प्रसंगांत सांगितला आहे.

यानंतर शूद्रांच्या संस्कारांचा निर्णय—गर्भाधान, पुंसवन, अनवलोभन, सीमंतोन्नयन, जातकर्म, नामकर्म, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चौल, मौंजो, महानाम्यादिक चार व्रते,समावर्तन (सोडमुंज) आणि विवाह या प्रमाणें हे सोळा संस्कार द्विजांचे होत. जातकर्म, नामकर्म, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चौल व विवाह हे सहा संस्कार द्विजांच्या स्त्रियांचे होत. त्यांमध्ये स्त्रियांचा विवाह करावयाचा तो समंत्रक करावा, व इतर संस्कार अमंत्रक करावे. गर्भाधान, सीमंतोन्नयन हे संस्कार स्त्रीपुरुषांचे साधारण होत. गर्भाधान, पुंसवन, अनवलोभन, सीमंतोन्नयन, जातकर्म, नामकर्म, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चौल हे नऊ व विवाह असे दहा संस्कार शूद्रांचे अमंत्रक होत असें बहुसंमत आहे. शूद्रकमलाकर ग्रंथांत शूद्रांस पंचमहायज्ञ सुद्धां सांगितले आहेत. कोणी ग्रंथकार, पुराणोक्त मंत्रांनीं शूद्रांचें उपनयनसुद्धां करावें असें सांगतात. ब्रह्मपुराणांत तर, “शूद्राचा विवाहसंस्कार मात्र निरंतर करावा ” असें सांगितलें, तेव्हां याविषयीं सच्छूद्र व असच्छूद्र या विषयत्वानें किंवा परंपरा चालत आलेल्या प्रकारानें व्यवस्था जाणावी, ह्या शूद्रांची वृत्ति द्विजांची सेवा ही होय. आपत्तिकालामध्ये व्यापार, शिल्प इत्यादिक जाणावी. शूद्रानें लवण इत्यादिकांचा विक्रय करावा, मद्यमांसाचा विक्रय करूं नये. “कपिला गाईचें दुग्धपान ब्राह्मणस्त्रीचे ठिकाणीं गमन, आणि वेदाच्या अक्षरांचा विचार हीं केल्यानें शूद्र चांडालत्वाला पावतो.” “शूद्रवर्ण हा चवथा आहे; तथापि मुख्यवर्ण जे त्यांतला असल्यामुळें वेदमंत्र, स्वधाकार, स्वाहाकार, आणि वषट्कार इत्यादिक वर्ण्य करून इतर धर्माचरणास तो योग्य आहे.” स्त्रिया, शूद्र यांच्या व्रते इत्यादिक धर्मांमध्ये ब्राह्मणानें सर्वत्र ठिकाणीं मंत्र ह्मणावा व तोहि मंत्र पुराणोक्तच ह्मणावा. स्त्रिया व शूद्र यांस भारत, पुराणें हीं श्रवण करण्याचा अधिकार आहे, अध्ययनाचा अधिकार नाही. “वक्त्रानें श्रोता ब्राह्मण पुढें बसवून चार वर्णांकडून पुराण श्रवण करावें.” शूद्रांचे पंचमहायज्ञ व श्राद्धादिक कर्मे कावीयसूत्राप्रमाणें होतात असें मयूखांत सांगितलें आहे. आगमांत सांगितलेले असून ज्यांच्या अंती नमः शब्द आहे असे विष्णु, शिव इत्यादि देवतांचे मंत्र, प्रणवरहित,

शूद्रांनी पठण करावे. स्त्रिया व शूद्र यांनी पुराणादिकांच्या साधनाने श्रवण, निदिध्यास इत्यादिक करून ब्रह्मज्ञानसुद्धां संपादन करावे. उपनिषदांच्या श्रवणाविषयी तर अधिकार नाही. कारण, 'तदनादरश्रवणात्' ह्या अधिकरणांत शूद्रास उपनिषदांचे आदरं करून श्रवण नाही असे सांगितले आहे. शूद्राने सर्व श्राद्धे आमाले करूनच करावी. कोणी ग्रंथकार, सर्व प्रजासृष्टे कश्यपाची आहे याकरितां सर्व शूद्रांचे काश्यपगोत्र आहे, व ते काश्यपगोत्र शूद्रांनी श्राद्धामध्येच उच्चारवे, अन्य कर्मांत उच्चारूं नये असे सांगतात. याप्रमाणे शूद्रास शांति इत्यादिक कर्म करण्याविषयी जो अधिकार सांगितला तो ब्राह्मणद्वाराच आहे असे जाणावे. जर ब्राह्मण शूद्रापासून दक्षिणा घेऊन वैदिकमंत्रांनी त्या शूद्राची होम, अभिषेक इत्यादिक कर्म करील तर त्याविषयी तो शूद्र त्या कर्माच्या पुण्याचा फलभागी होतो, व ब्राह्मण तर महादोषी असे माधवांत सांगितले आहे.

हिसा न करणे, सत्य भाषण करणे, चोरी न करणे, शुचिर्भूतपणा ठेवणे, इंद्रियनिग्रह करणे, दान, शम, दम, क्षमा इत्यादिक हे शूद्र इत्यादिक सर्व लोकांचे साधारण धर्म असून ईश्वरपदाची प्राप्ति देणारे होत. पुण्याहवाचन आदिकरून जी शूद्रांचीं कर्म खांचे प्रयोग पाहाणें असतील तर शूद्रकमलाकर ग्रंथांत पहावे.

आतां विहिरी तलाव इत्यादिकांचा उत्सर्ग — घर, किंवा गांव यांच्या आग्नेय, दक्षिण, नैऋत्य आणि वायव्य ह्या दिशांचे ठिकाणी व घराच्या अथवा गांवाच्या मध्यभागी जी विहिर ती दुष्टफल देणारी होते. इतर दिशांचे ठिकाणी शुभ होय. वापी, कूप, तलाव इत्यादिकांचा उत्सर्ग करणे तो उत्तरायणी माघादिक जे सहा मास त्यांमध्ये शुक्लपक्षां प्रशस्त होय. माघादि सहा मासांत त्या वापी, कूप इत्यादिकांतले उदक शुष्क होण्याचा संभव असेल तर कार्तिक व मार्गशिर्ष या मासांतहि उत्सर्ग करावा; कारण, "उत्सर्ग करण्यास कारण उदक आहे" यामुळे ज्या कालीं कूपादिकांत उदक असेल त्या कालीं उत्सर्ग करावा. याविषयी कालाचा नियम नाही असे वचन आहे. विष्णूच्या शयनाचे जे आषाढ शुद्ध एकादशीपासून कार्तिकशुद्ध एकादशीपर्यंत चार मास व शुकांचे अस्तादिक यांत करूं नये.

जलोत्सर्गाचीं नक्षत्रे—अश्विनी, रोहिणी, मृग, पुष्य, मघा, उत्तरा, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, मूल, श्रवण, धनिष्ठा, शततारका, हस्त, ज्येष्ठा, अनुराधा, आणि रेवती हीं नक्षत्रे; द्वितीया, तृतीया, पंचमी, सप्तमी, दशमी, एकादशी, त्रयोदशी, ह्या तिथि; बुध, गुरु, शुक्र, आणि सोम हे वार यांचे ठायीं जलाचा उत्सर्ग शुभ होय. ज्या उदकाचा उत्सर्गसंस्कार केला नसेल ते उदक घेऊं नये. "वापी, कूप, तलाव

इत्यादिकांच्या उदकाचा संस्कार केला नसेल तर ते असंस्कृत उदक होय, व त्याला हस्त-शोधि करूं नये. प्राशन केलें असतां चांद्रायण प्रायश्चित्त करावें.” उत्सर्गाचा प्रयोग दुसऱ्या ग्रंथी पहावा.

आतां वृक्ष इत्यादिकांचें रोपण — अश्विनी, रोहिणी, मृग, पुष्य, मघा, तीन उत्तरा हस्त, चित्रा, विशाखा, अनुराधा, मूल, शततारका, आणि रेवती ह्या नक्षत्रां; शुभ तिथि शुभ वार ह्या दिवसां वृक्ष, लता यांची लावणी शुभ होय. आश्लेषा नक्षत्र, सोमवार, लक्ष्मी बलिष्ठ चंद्र अशा योगावर ऊस, कदलीवृक्ष, आणि क्रमुक (पोफळीवृक्ष) इत्यादिकांची लावणी करावी. लक्ष्मी रवि असतां अश्विनी नक्षत्रावर नारळीचे वृक्ष भूमीत लावावे. चंद्र स्वांशस्थ, व लक्ष्मी गुरू असतां नागवल्लीची लावणी करावी.

यानंतर मूर्ति प्रतिष्ठेचा काल.—“मूर्तीची प्रतिष्ठा ह्यणजे अर्चा करावयाची ती वैशाख, ज्येष्ठ, व फाल्गुन या मासांत सर्व देवांची अर्चा करावी. चैत्रमासांत विकल्पें करून होते, ह्यणजे कितीएकांच्या मूर्ती होत नाही व कितीएकांच्या मूर्ती हेत. विष्णुच्या अर्चेवांचून इतर मूर्तीची अर्चा माघमासांत करावी. उत्तरायणांत शुभ होय. दक्षिणायनांत निच होय. कोणा ग्रंथकार, मातृका, भैरव, वाराह, नारसिंह, त्रिविक्रम, आणि देवी यांची स्थापना दक्षिणायनांतही करावी असें ह्यणतात. चैत्र, आश्विन आणि श्रावण ह्या मासांत विष्णूची अर्चा करावी. माघ, फाल्गुन, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ, मार्गशीर्ष, श्रावण आणि भाद्रपद या मासांत लिंगाचें स्थापन उत्तम होय. माघ; आश्विन या मासांत देवीची अर्चा करावी, ती उत्तम व सर्व काम देणारी होते.” अश्विनी, रोहिणी, तीन उत्तरा, मृग, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, चित्रा, स्वाती, अनुराधा, श्रवण, धनिष्ठा, शत-तारका, आणि रेवती ह्या नक्षत्रां; शनिवार व भौमवार हे वर्ज्य करून अन्यवारी; अमा-वास्या; रिक्ता ह्या तिथि वर्ज्य करून अन्य तिथ्यांचे ठिकाणीं सर्व देवांची अर्चा शुभ होय. श्रवण, लक्षिका, रोहिणी, मृग, आरद्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, मघा, पूर्वा उत्त-रा, हस्त, चित्रा स्वाती, विशाखा, द्वादशी, यांचे ठिकाणीं विष्णूची अर्चा शुभ होय. गणपतीच्या अर्चेविषयीं चतुर्थी उक्त होय. देवीच्या अर्चेविषयीं नवमी, व मूलनक्षत्र हीं उक्त होत. तसेच ज्या देवतेचें जें नक्षत्र असेल त्या नक्षत्रां त्या त्या देवतेची अर्चा करावी. उदाहरण,—शिवाची अर्चा आरद्रा नक्षत्रां, सूर्याची अर्चा हस्त नक्षत्रां इत्यादिक जाणावें.

“द्रव्यविरहित अर्चा, कर्माचा नाश करिते, मंत्रहीन अर्चा ऋत्विजाचा नाश करिते;

लक्षणहीन अर्चा स्त्रियेचा नाश करिते, याकरितां अर्चसारखा दुसरा शत्रु नाही. गावत्री-सहित ब्रह्मदेवाची स्थापना ब्राह्मणांनीं करावी. सुखाची इच्छा करणाऱ्या सर्व वर्णांनीं विष्णूची स्थापना करावी. "मातृका भैरव इत्यादिक देवतांची स्थापना सर्वांनीं करावी. शिवलिंगाची स्थापना संन्यासी यानेहि करावी. पुराणप्रसिद्ध अशा प्राचीन लिंगाची पूजा स्त्रिया व शूद्र यांनींहि करावी. "नूतन स्थापित केलेले अशा लिंगास स्त्रिया व शूद्र यांनीं स्पर्श करूं नये." स्त्रिया व शूद्र यांला शिव इत्यादि देवतांच्या स्थापनेविषयी अधिकार नाही. "शूद्र अथवा भौजी न झालेला, स्त्रिया, अथवा पतित (जातिवहिष्कृत) यांतून कोणीहि विष्णु किंवा शिव यांला स्पर्श करील तर तो नरकभोक्ता होईल." ज्या स्थिर मूर्ति पूर्वाभिमुख असतील त्यांची पूजा उत्तराभिमुख होतताता करावी. चलमूर्तींची पूजा प्राङ्मुख होतताता करावी. "मूर्ति करावयाची ती सुवर्णमयी, रौप्यमयी, ताम्रमयी, मृन्मयी, करावी. अथवा पाषाण, धातु, मृत्तिक, कांस्य, आणि पितळ यांतून कोणतीहि मूर्ति-करावी. गृहामध्ये पूजेला मूर्ति करावयाची ती ज्ञानात्म्या अंगुष्ठपर्वपरिमाणामासून एक वीत-पर्यंत उंचीची करावी ती शुभहोय, एक वीतहून अधिक उंचीची मूर्ति प्रशस्त नाही, असें शास्त्र ज्ञाणणारे सांगतात." "काचित् ग्रंथांत मृत्तिका, लाख, गोमेद मणि, मेण यांची मूर्ति करावी असें सांगितलें आहे." श्रीमद्भागवतांत—“पाषाणमयी, दारुमयी, लौही, मृन्मयी, भिती इत्यादिकांवर रंगानें काढलेली, वालुकामयी, मनोमयी, मणिमयी याप्रमाणें आठ प्रकारच्या मूर्ति कराव्या असें सांगितलें आहे.” लौहि ह्यणजे सुवर्णमयी. दारु ह्यणजे काष्ठ ते मधूक ह्यणजे मोहाच्या वृक्षाचेंच ग्रहण करावें. गृहामध्ये, पूजेला मूर्ति करणें ती सात अंगुळांहून अधिक बारा अंगुळांपर्यंत इतक्या उंचीची करावी असें देवी पुराणांत सांगितलें आहे. “पूजा करणाराचें तप, पूजेचा भक्तिविशेष, आणि मूर्तीचें सौंदर्य ह्या तीन कारणांनीं देवतेचें पूजाकालीं सान्निध्य असतें. मूर्ति, पट्ट, यंत्रे यांला निस्य ज्ञान घालूं नये, पर्वणीच्या दिवसां ज्ञान घालवें, किंवा मूर्ति मलिन झाल्या असतां ज्ञान घालवें.” पाथिवीलिंगाची पूजा इत्यादिकांचा निर्णय दुसऱ्या परिच्छेदांत सांगितला आहे.

यानंतर पंचसूत्रीनिर्णय—लिंगाची उंची, लिंगाची रुदी, लिंगाचा जाडेपणा, शा-ळुंखीचा विस्तार, प्रनालिकापरिमाण हीं पांच सूत्रे जाणावीं. त्यामध्ये लिंगाची उंची जितकी असेल तात्वपरिमाण लिंगाच्या मस्तकाचा विस्तार करून त्याच्या द्विगुण सूत्राचें वेष्टण केलें असतां पुरेल इतका लिंगाचा जाडेपणा करून लिंगाच्या सर्भोवार लिंगाइत-क्या विस्तारानें युक्त असें वर्तुळाकार पीठ करावें. पीठाची उंची लिंगाच्या उंचीपेक्षां दुप्पट

करावी. पीठाच्या बाहेर पीठाच्या उत्तरभागी लिंगाइतकी लांब असून मूलाचे ठिकाणी, लांबेच्या समान जीचा विस्तार ह्मणजे व्यास आहे अशी असून अग्रभागी मूलाच्या अर्ध्या भागाच्या विस्ताराने युक्त प्रनल्लिका करावी. लिंगाची जी उंची तिच्या तिप्पट पीठाची उंची करावी असे कोणी ग्रंथकार ह्मणतात. नंतर पीठाच्या मध्यभागी लिंगाहून दुप्पट जाड असा, पीठाच्या उंचीच्या तिसऱ्या अंशाने कंडू करावा. कंठाचा वरचा भाग व अधोभाग यांचे ठिकाणी सारख्या प्रमाणाच्या दोन भेखला करून पीठाच्या वर, लिंगाचा जो व्यास असेल त्याच्या सहाव्या अंशाने भेखला करून त्या भेखलेच्या आंत लागून राहिल अशी तत्तुल्य गर्ता करावी. प्रनालिकेचे ठिकाणीहि विस्ताराच्या तिसऱ्या अंशेकरून गर्ता करून पीठाच्या मानाप्रमाणे भेखला करावी. याप्रमाणे पंचसूत्रीचा प्रकार जाणावा.

“गृहामध्ये दोन लिंगे पुजून नयेत. तसेच दोन शाळग्राम, दोन द्वारकाचकें (चक्रांक), दोन सूर्यकांत, तीन देवी तीन गणेश, दोन शंख पुजून नयेत,” दुसऱ्या ग्रंथांत तर, “दोन चक्रांक पुजावे, एक चक्रांक पुजून नये” असे सांगितले आहे व पूर्वी दोन चक्रांकांचा निषेध केला यावरून असे सिद्ध होते की, दोन चक्रांक पुजण्याविषयी विकल्प आहे. “तसेच, गृहामध्ये मत्स्य, कूर्म इत्यादिक दशावतारमूर्ती पुजून नयेत. अग्नीने दग्ध झालेल्या व मोडक्या, फुटक्या मूर्ति घरांत पुजून नयेत. शालग्रामशिळा भंग्र असो अथवा फुटलेली असो तो पुजेला शुभ होय. शालग्राम पुजावयाचे ते सम पुजावे, समांमध्ये दोन पुजून नयेत व त्रिपम पुजून नयेत, त्रिपमांमध्ये एक मात्र पुजावा.” स्वर्णासहित शालग्रामाचे दान केले असतां पृथ्वीदानाचे फळ मिळते. शंभर शालग्रामांची पूजा केली असतां अनंत फळ मिळते. आते अविभक्त असतील तथापि त्यांनी देवपूजा, अभिहोत्र, संध्या, ब्रह्मयज्ञ हीं निरनिराळीं करावीं. स्त्रिया किंवा शूद्र यांनी शालग्राम, चक्रांक आणि बाणलिंग यांची स्पर्शसहित पूजा करूं नये. “कारण शूद्र, मौंजी न झालेला, सौभाग्यवती स्त्री, विधवा स्त्री यांनी स्पर्श न करितां दुरून शिव व विष्णु यांची पूजा करावी,” असे वचन आहे. शालग्राम व बाणलिंग यांच्याच स्पर्शाविषयी निषेध आहे; मूर्त इत्यादिकांच्या स्पर्शाविषयी निषेध नाही; कारण “सर्व वर्णांनीं सर्व देवांच्या मूर्ति पुजाव्या, न मणिमय केलेलीं लिंगे सुद्धां पूजावीं” असे वचन आहे. “विकृत घेतलेली शालग्रामशिळा ती मध्यम होय व याचना करून संपादन केलेली अधम होय. उक्त लक्षण संपन्न असून परंपरेनें प्राप्त झालेली जी शालग्रामशिळा ती उत्तम जाणावी व आपल्या गुरूनें दिलेली तीहि त्यासारखी उत्तम जाणावी. त्यामध्येहि जी शालग्रामशिळा आवळ्यापत्रटी

लहान असेल तीच पूज्य होय, याहिपेक्षां नितकी नितकी लहान असेल तिच्या पूजेपासून महत्फल प्राप्त होते. ज्या शालग्रामांत एक यव परिमित खळगा असून यवार्धपरिमित लिंग असेल त्या शालग्रामास शिवनाभि असें ह्मणतात व तो शालग्राम स्वर्ग, मृत्यु, पाताल अशा तीन लोकांत दुर्लभ आहे. शालग्रामशिळेची निश्चये अर्चा करूं नये; तर पूर्वी महापूजा करून नंतर तिची पूजा करावी. हे राजेंद्रा, बाणलिंगे त्रिभुवनांत प्रसिद्ध आहेत, त्या बाणलिंगांचा अर्चासंस्कार व आराहन हीं करूं नयेत." वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न आणि अनिरुद्ध यांची विप्रादिकांनीं क्रमेकरून पूजा करावी, ह्मणजे ब्राह्मणानें वासुदेवाची, क्षत्रियानें संकर्षणाची, वैश्यानें प्रद्युम्नाची, शूद्रानें अनिरुद्धाची पूजा करावी. त्यांचीं लक्षणें—ज्या शालग्रामशिळेवर पांच चक्रे असतील ती वासुदेवमूर्ति, जिच्यावर सहा चक्रे असतील तो प्रद्युम्न, जिच्यावर सात चक्रे असतील तो संकर्षण, आणि अकरा चक्रेनीं युक्त तो अनिरुद्ध याप्रमाणें लक्षणें जाणावीं. "प्रणवाचा उच्चार, शालग्रामशिळेची पूजा, ब्राह्मणी स्त्राच्येऽर्थां गमन हीं केल्यानें शूद्र चांडालत्वाला पावतो. मद्यपानानें विरहित असून विष्णुदीक्षेनें युक्त अशा शूद्रांनीं ब्राह्मणाकडून शालग्रामशिळेची पूजा करावी. हे नारदा, विष्णूचा निय संतोष करणारे असें तुलसीवाष्टाचें चंदन, कार्तिकमासीं केतकीपुष्प, दोपदान हीं कालियुगामध्ये हरीला ज्याणें अर्पण केलीं त्याणें स्वकीय कुलाचें तारण केलें असें होतें." शालग्रामसंबंधी तीर्थाप्रमाणें चक्रांकित शिळेचेंहि तीर्थ प्राशन करावें असा विधि आहे, याकरितां शालग्रामशिळेच्या सन्निध चक्रांकिताचीहि पूजा करावी. "शिवाचा निर्माल्य असीं पत्रे, पुष्पे, फले आणि जल हीं अग्राह्य होत, याकरितां शालग्रामाच्या स्पर्शानें सर्व शिवनिर्माल्य पवित्र होतो. देवावर पुष्प वाहणें तें मध्यमांगुली व अनामिका यांच्या मध्ये पुष्प घेऊन वाहावें. देवावरील निर्माल्य काढावयाचा तो अंगुष्ठ व तर्जनी यांच्या अग्रानीं काढावा. भस्माचा त्रिबुंड लाविल्यावांचून, व रुद्राक्षांची माला धारण केल्यावांचून महादेव पुजेला तथापि पूजा करणाराला तो फलदायक होत नाहीं. पृथ्वीवर मनुष्यानें मंत्रावांचून रुद्राक्ष धारण करूं नयेत. रुद्राक्षाच्या स्नानाच्या वेळीं पंचामृत व पंचगव्य योजावें. रुद्राक्षाच्या प्रातिष्ठेविषयीं पंचाक्षरमंत्र व त्र्यंबकादिक मंत्र हे योजावे. माला करणें ती अष्टोत्तरशत किंवा चौपन्न, अथवा सत्ताविंसांची करावी. याहून कमी मण्यांची माला करूं नये. सत्तावीस रुद्राक्षांची माला कंठांमध्ये धारण करून जो मनुष्य जप इत्यादिक पुण्यकर्म करितो त्याचें तें सर्व कोटिगुणित होईल.

आतां रुद्राक्ष, तुलसी इत्यादिक सर्व जपमालांचा संस्कार—कुशोदकसहित पंचग-

व्यानीं (दूध, दही, घृत, गोमय, गोमूत्र,) मालेचें प्रक्षालन करून ती माला विप-
ळाच्या पानावर स्थापन करून तीवर हात ठेवून पुढें सांगतो तीं अक्षरें ह्जपानीं हीं
असीं—“ ओंहीं अं आं ईइउंऊंऋंॠंऌंॡंएँऐँओँअंअः कंखंघंङं चंछंजंझं ढंढ-
डंढणं तंथंदंधंनं पंफंभंमं यंरंलंवंशंषंसंहंक्षं ”या प्रमाणें पन्नास सातृकाक्षरें यांचा न्यास
मालेवर करावा. नंतर “ सद्योजातं०, वायदेवाय०, अघोरेभ्यो०, यत्युरुषाण०, ईशा-
नः सर्व० ” ह्या पांच मंत्रांचा जप करून “ सद्योजातं० ” ह्या मंत्रानें पंचगव्येकरून
मालेचें प्रोक्षण करून शीतोदकानें ती माला प्रक्षालन करावी. “ नंतर वामदेवा० ”
ह्या मंत्रानें तिला चंदनानें घांसून “ अघोरे० ” ह्या मंत्रानें धूप दाखवून “ तत्पुरुषा० ”
हा मंत्र ह्जपून चंदन, कस्तुरी इत्यादिकानें लिप्त करून “ ईशानःस० ” ह्या मंत्रानें
प्रत्येक मण्याला शंभरपेळ किंवा दहा वेळ अभिमंत्रण करून “ अघोरे० ” हा मंत्र
ह्जपून मालेचा जो मेरू खाला शंभर वेळ अभिमंत्रण करावें. तदनंतर ह्याच पांच
मंत्रेकरून मालेची गंधादि पंचोपचारे करून पूजा करावी. या प्रमाणें माला संस्का-
राविधि सांगितला.

बोपदेव रुद्राक्षधारणाची संख्या सांगतो—“ कंठाचे ठिकाणीं ३२, मस्तकाचे ठायीं
४०, प्रत्येक कर्णाचे ठायीं सहा सहा, दोन हस्तांचे ठायीं बारा बारा, दोन बाहूंचे
ठायीं सोळा, दोन नेत्रांचे ठायीं एकेक, शिखेचे ठायीं एक, वक्षस्थळीं १०८, याप्र-
माणें जो मनुष्य रुद्राक्ष धारण करितो तो साक्षात् शंकर जाणावा. ” रुद्राक्षाचें दान केलें
असतां रुद्रपदाची प्राप्ति होते.

“ लिगास अभ्यंग करविणें तो पंचविंशतिपलपरिमित करावा. हाताच्या यंत्रपा-
सून काटलें अशा तिळांच्या तेलानें शिवाला ज्ञान घालावें. शंभर पळें उदकाचें
घालावें तें ज्ञान होय. अभ्यंग करणें तो पंचवीस पलपरिमित करावा. दोन सहस्र
पलपरिमित उदक घेऊन ज्ञान घालावें तें महाज्ञान होय. तदनंतर क्रमें करून
दुग्ध, दही, मधु, घृत आणि शर्करा यांहींकरून क्रमानें ज्ञान घालावें. शिवाला
शंभर पळें घृताचें ज्ञान घालावें असें सांगितलें आहे. मधु, दही, दूध हीं शंभर शंभर
पळें घेऊन ज्ञान घालावें. पंधराशें पळें प्रमाण उसाच्या रसाचें ज्ञान घालावें.
शिवाला उष्णोदक व शीतोदक यांहीं करून भक्तिपुरःसर ज्ञान घालावें. श्रीविष्णूला
दूध, दही इशादि पंचामृतांनीं ज्ञान घालणें तें दशगुणित क्रमानें उत्तरोत्तर घालावें;
ह्जपजे दुधाहून दही दशगुणित, दद्याहून घृत दशगुणित या प्रमाणें घालावें. कोणी
त्रयकार, दूध इत्यादिक पंचामृते समान घेऊन ज्ञान घालावें असें ह्जपतात.

आतां विष्णु इत्यादिकांचीं पंचायतनें मांडावीं कर्तो तीं—विष्णुपंचायतन—मध्ये विष्णु, ऐशानी दिशेस शिव, आग्नेयीस गणपति, नैऋत्येस सूर्य, वायवीदिशेस देवी या प्रमाणें स्थापावे. शिवपंचायतन—मध्ये शिव, ऐशानीस विष्णु, आग्नेयीस सूर्य, नैऋत्येस गणपति, वायवीस देवी या प्रमाणें स्थापावे. सूर्यपंचायतन—मध्ये सूर्य, ऐशानी दिशेपासून क्रमानें शिव, गणपति, विष्णु आणि देवी या प्रमाणें स्थापावे. देवीपंचायतन—मध्ये देवी, विष्णु, शिव, गणपति, सूर्य या प्रमाणें ऐशानी क्रमें करून मांडावे. गणपतिपंचायतन—मध्ये गणपति, नंतर क्रमानें विष्णु, शिव, सूर्य आणि देवी यांची ऐशानी क्रमानें स्थापना करावी. या प्रमाणें ईशानादि क्रमानें पांच पंचायतनें मांडण्याचा क्रम जाणावा.

पंचायतनें.

| | | | | | | | | | | |
|--------|-------|--------|-------|-------|--------|--------|------|--------|-------|------------|
| शंकर | गणेश | विष्णु | सूर्य | शंकर | गणेश | विष्णु | शंकर | विष्णु | शंकर | |
| २ | ३ | २ | ३ | २ | ३ | २ | ३ | २ | ३ | |
| विष्णु | | शंकर | | सूर्य | | देवी | | गणपति | | दक्षिणदिशा |
| १ | | १ | | १ | | १ | | १ | | |
| देवी | सूर्य | देवी | गणेश | देवी | विष्णु | सूर्य | गणेश | देवी | सूर्य | |
| ६ | ४ | ६ | ४ | ६ | ४ | ६ | ५ | ६ | ६ | |

यानंतर केशवादिक चोवीस मूर्तींच्या निर्णयाचा श्लोक बोंपदेवानें केलला, निर्णयसिंधत व्याख्यासाहित लिहिला आहे, त्याचा हा एथें संग्रह करितो. चतुर्भुज अशा ज्या केशवादिक चोवीस मूर्ती त्यांचे चार हस्तांमध्ये जीं चार आयुधें त्यांच्या उलटपालटीनें त्या त्या मूर्ति जाणाव्या, व तो आयुधांचा क्रम वरच्या दक्षिण बाहूपासून समजावा. तो असा— १ वरच्या दक्षिण हस्तांत शंख, खालच्या दक्षिण हस्तांत चक्र, खालच्या वामहस्तांत गदा, वरच्या वामहस्तांत पद्म अशा आयुधेंकरून युक्त तो केशव. २ वरच्या दक्षिण हस्तांत पद्म, खालच्या दक्षिण हस्तांत गदा, खालच्या वामहस्तांत चक्र, वरच्या वामहस्तांत शंख अशा आयुधांनीं युक्त तो नारायण. ३ चक्र, शंख, पद्म व गदा अशा आयुधांनीं सहित तो मधुव. ४ गदा, पद्म, शंख आणि चक्र यांहींकरून युक्त तो गोविंद. ५ पद्म, शंख, चक्र व गदा या क्रमानें युक्त तो विष्णु ६ शंख, पद्म, गदा, चक्र यांहींकरून युक्त तो मधुसूदन. ७ गदा, चक्र, शंख आणि पद्म यांहींकरून युक्त तो त्रिविक्रम. ८ शंख, चक्र, पद्म व गदा अशा क्रमानें युक्त तो वामन. ९ चक्र, गदा, शंख, पद्म यांहींकरून श्रीधर जाणावा.

१० चक्र, पद्म, शंख आणि गदा यांहींकरून युक्त तो इषीकेश. ११ पद्म, चक्र, गदा शंख यांहींकरून युक्त तो पद्मनाभ नाणावा. १२ शंख, गदा, चक्र, पद्म यांहीं युक्त तो दामोदर. १३ शंख, पद्म, चक्र, गदा ह्या अयुधानीं युक्त तो संकीर्ण. १४ चक्र, गदा, पद्म, शंख अशा अयुधानीं वासुदेव नाणावा. १५ शंख, गदा, पद्म, चक्र या क्रमानें धारण केलेल्या आयुधानीं प्रशुभन. १६ गदा, शंख, पद्म, आणि चक्र या अनुक्रमानें युक्त तो अमिहद. १७ पद्म, शंख, गदा, व चक्र या आयुधेंकरून युक्त तो पुरुषोत्तम. १८ गदा, शंख, चक्र, पद्म अशा क्रमानें हस्तांत धारण केलेल्या आयुधानीं अघोक्षज. १९ पद्म, गदा, शंख आणि चक्र ह्या आयुधानीं युक्त तो नारासिंह. २० पद्म, चक्र, शंख व गदा या क्रमेंकरून अभ्युत नाणावा. २१ चक्र, शंख, गदा, पद्म या आयुधांतें दक्षिणादि बाहूंकरून धारण करणारा जनार्दन होतो. २२ गदा, चक्र, पद्म, शंख यांहींयुक्त बाहूंनीं उपेंद्र नाणावा. २३ चक्र, पद्म, गदा, शंख ह्या क्रमानें हस्तांत धारण केलेल्या आयुधानीं हरि नाणावा. २४ गदा, पद्म, चक्र व शंख यांहींकरून युक्त तो श्रीकृष्ण. याप्रमाणें आयुधांच्या धारणावरून केशवादिक चौवीस मूर्ति सांगितल्या.

आतां निर्णयसिद्धीमध्ये सांगितल्या रीतीनें देवप्रतिष्ठाचा प्रयोग—यजमानानें द्वादश इत्यादि हस्तपरिमित मंडप करून आम्रयो दिशेंत किंवा पूर्व दिशेंत हस्तपरिमित कुंड अथवा स्थंडिल करून मध्यमार्गी वेदी करून त्या वेदीवर सर्वतोभद्र मंडल घालावें. ग्रह करण्याची इच्छा असल्यास, पूर्व दिशेकडे किंवा ऐशानी दिशेकडे ग्रह स्थापन करण्याकरितां वेदी करावी. प्रासादाचा (देवालयचा) संस्कार, किंवा मंडपाचा संस्कार कर्तव्य असता, नैऋत्य दिशेंत वास्तुपोठ करून यजमानानें संकल्प करावा. तो असा—
“अस्यां मूर्तीं लिंगेवा देवतासान्निध्यार्थं दीर्घायुर्लक्ष्मीसर्वकामसमृद्धयक्षय्यसुखकामोऽमुक्-
देवमूर्तिप्रतिष्ठां करिष्ये,” याप्रमाणें संकल्प करून पुण्याहवाचन व नांदीश्राद्ध शाल्या नंतर आचार्याला वरून आठ किंवा चार ऋग्विज वरून यांची पूजा करावी. नंतर आचार्यानें, “यद्दत्र०” हा मंत्र झणून पूर्वादि आठ दिशांला सर्षप (मोहत्या) टाकून “आपोहिष्ठा०” ह्या मंत्रांनीं कुलकेंकरून भूमीवर प्रोक्षण करून “देवा आयातु, यातृधाना अपयातु, विष्णो देवजयनंरक्षस्व” असो वाक्ये झणून भूमीवर प्रादेश करावा. नंतर मंडपप्रतिष्ठा करून किंवा न करितां मूर्तीला पंचगव्य, सुवर्ण, यव, दूर्वा, अश्वत्थ पळस यांचीं पत्रे हे पदार्थ उदकाच्या कलशांत घालून नंतर त्या उदकानें स्नान घालावें. व स्नानाचे मंत्र—“आपोहिष्ठा ऋचा ३, हिरण्यवर्णाःशुचयः पावकायासुजातःकश्यपो-
यास्विनः अग्निवागभेदीधरेविरूपास्तानआपःशस्पोनाभवंतु १ यासा राजावदणोयाति-

मध्येसंख्यानृतवपश्यवर्जनामां यधुश्रुतःशुचयोयाःपावकास्ता ० २ यातीदिवसदिदिकृणन्तिभक्त-
 याभंतरिक्षेवधुधाभवति याःशुचिर्धर्मपयसोदीतिशुकास्ताम ० ३ किमेवमांशुवापश्यतापःशिवया
 तनुवोपस्पृशतस्वचं ॥ सर्वाः॥ अथिभ्यास्तुघदोतुवे ॥ वीमयिर्धर्वावत्सभोजोविधत् ॥ ४ ॥ पञ्चमानः
 सुवर्जनःप्रविशेणविचर्षाणिः ॥ यःपोसासपुनातुमा ॥ पुनंतुमादेकजमाः ॥ पुनंतुमनसोधिषां पुनंतु
 निश्रमायवः जातवेदःपवित्रमत् पवित्रेणपुनादिहा शुकेणदेवदीयत् अभेकात्पाकत् ॥ ५ ॥ यस्ते
 पवित्रमर्षिविःअद्योदितसंभतराः ब्रह्मतेनपुनीमहे ॥ उमाप्यादेवसंभतः पवित्रेणसवेनष इन्द्रस-
 पुनीमहेवैश्रदेवीपुनतीदेव्यागात् यदेवब्रह्मैस्तनुवोवीतपृष्ठाः ॥ तयापदेतःसधर्मादिषु ववस्याम-
 पत्सुलोषीणाः ॥ वैश्रानरोवैशिमभिर्मापुनातु ॥ वातःप्राणेनेषितोमवीभूः ॥ वाग्नेय्यविषयिताप-
 योभिः ॥ अतापरीपयिषेमापुनीतां बृहद्भिःघनितस्तृभिः ॥ वधिष्टैर्देवमन्मभिः ॥ अनेदसैःपुनाहिम
 येनदेवा अपुनत येनयोरेपुनाकांक्षाः ॥ तेनदिल्लेनेनब्रह्मणा ॥ इदं ब्रह्मपुनीमहे यःपावमानोरभ्येति
 प्रपिभिः संभृत ॥ ६ ॥ संभृत ॥ अतितंमातरिदवनापविमनीयोअध्यातेःप्रविभिः
 संभृत ॥ ७ ॥ रसां तस्मैमरवतीदुह क्षीर ॥ सर्पिर्बधुत्क ॥ मावमानीःस्वस्ययनीः ॥ ८ ॥ सुदुघादिपय
 रयतीः ॥ ऋषिभिःसंभृताः ॥ ब्राह्मणेभ्यस्त ॥ इतं ॥ पावमानीदिशंतूनः ॥ इमंलोकमधोअमुकामा
 न्समर्धयतूनः देवोदेवैःतमाभुताः ॥ पावमानीःस्वस्ययनीः ॥ सुदुघादिघृतंश्रुतः ॥ ऋषिभिःसंभृतो
 रसः ॥ ९ ॥ ब्राह्मणेभ्यस्त ॥ इतं येनदेवाःपवित्रेण आस्थानंपुनतेसदा ॥ तेनसहस्रधारेण पावमान्यः
 पुनंतुमा प्राजापत्यपयिषे शतोवाम ॥ हिरण्यं तेनब्रह्मदिदोष्यं पूतं ब्रह्मपुनीमहे इन्द्रःसुनीतो
 सहसापुनातु सामःरत्खावरुणःसमीच्या यमोराजाप्रभृणामिःपुनातुमा जातवेदामूर्जेपंथापुना
 तु ॥ या अनुवाकाने आभियेक करून व्याहृतिमंत्राने व "इदंविष्णुं ०" ह्या मंत्राने फल,
 यव, दुर्वा हे पदार्थ देवांस अर्पण करावे. नंतर, "रक्षोहणं ०" ह्या मंत्र ह्रापून देवाच्या
 हातांत कंकण वांधून वस्त्रेकरून देवास आच्छादित करावे. नंतर "अथतेहोळो ०, उदुत्
 मं ०" हे मंत्र ह्रापून देवास उदकांत बुडवून ठेवावे:

यांत्रतर कर्तव्यविधि — ब्रह्मर्चा असेल तर अग्नि स्थापने करून अग्नीर्षे घ्यान करून
 ग्रहस्थापन इत्यादिक पक्ष अस्वस्थात नवग्रह, वास्तुदेवता यांची स्थापना करून अन्वा-
 धान करावे. ते असे — "चसुवीभाभ्येन" इतके जाटन्यानंतर ग्रह इत्यादिकांचा होम करणे
 हा पक्ष असेल तर ग्रह व यांच्या अधिदेवता इत्यादि दिवता आणि समिधा, चरु, आंग्य
 हीं यांचीं हव्ये व वास्तुपीठदेवता या सर्वांचा अन्वाधानामध्ये उद्देश करून नंतर "इंद्र,
 पृथिवी, शर्व, आर्षे आभिमूर्ति पशुपति, यमपनमानमूर्ति उग्रं निर्ऋतिसूर्यमूर्ति इहं बहूणं
 जलमूर्ति भवं वायुं वायुमूर्ति ईशानं कुबेरं सोममूर्ति महादेवं ईशानं आकाशं भीमं एताः
 लोकपालमूर्तिमूर्तिपतिदेवताः पञ्चशोदुंबरास्यत्वज्ञापयामागीसामिदिः भाव्याहुतिभित्तिहाहुति

विश्वदेवविद्या अथिरीसोविधिपरिनिमित्तमहत्तरतदोद्विगीतान्तरा आहोमिद्विगीतः को
 यधरोवर्द्धिवा अदितिर्वेद्या सोमोदिहया स्वष्ट्येन मिश्रुर्वेदेन वसतवायेन आदिकाद-
 क्षिणाभिः विश्वदेवाजर्जा पृथाचनगाकारेण बृहस्पतिःपुरोचता प्रजापतिरुद्विनेन अन्तरी-
 योवनेण वायुःपात्रैः अहस्त्रद्वयारवाहा" दाम्प्रमाणे हा अनुवाक झणून तिलाच्या ददा
 व आज्याच्या हहा आहुति द्याव्या. आणि देवाच्या चरणांत स्पर्श करावा. व संपा
 सोदकानें देवाला अभिषेक करावा.

याप्रमाणेंच दुसऱ्या पर्यायानें होम करून देवाच्या नाभीला स्पर्श करावा. तिसऱ्या
 पर्यायानें होम करून देवाच्या मस्तकाला स्पर्श करावा. प्रत्येक पर्यायी संपातोदकानें
 देवाला अभिषेक करावा. एक पर्यायावेळीं आहुतीची संख्या—पलांशसमिधा १९२,
 औदुंबरसमिधा १९२, अश्वत्थ १९२, शी १९२, अर्धमागी १९२, आज्याहुति १९२,
 तिलाहुति १९२, स्यापदेवतेचा अडावीस होम करण्यच्या पर्याय आहुति संख्या—पांच
 प्रकारच्या समिधांच्या आहुति १४०; चर, आज्य, व तिल यांच्या (प्रत्येकाच्या २०
 प्रमाणें) ८४, अनुवाक २०, मिळून १९८८. तीन पर्याय मिळून आहुति २७६४.
 याप्रमाणें होम करून मूर्तिची शुद्धि करावी. देवाला नमस्कार करून प्रार्थना करावी.
 प्रार्थनामंत्र—“स्वागतं देवदेवेश विश्वरूपनमोस्तुते ॥ शुद्धेपितृद्विष्टाने शुद्धिकुर्णः तदस्वता,
 याप्रमाणें प्रार्थना करून ऋत्विजांसहवर्तमान आचार्यानि “उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते.” हा
 मंत्रेकरून देवाला उठवून अग्न्युत्तारण करावें. तें असे—“अग्निःसति०” ही सूक्त आदि-
 पदहीन पठण करून पुनः अग्निपदसहित पठण करावें. याप्रमाणें अष्टशत किंवा
 अडावीस वेळ पठण करीत होस्ताता उदक देवतेवर पाड्यावें. तदनंतर गृत्तिका व जल
 पाडींकरून मूर्तीला वारा वेळ प्रक्षालन करून ताम्रक पंचगव्य करून ‘न्ययःप्रथिव्या
 पयमोषधीभुपयोदिव्यंतरिक्षे पयोधाः ॥ पदस्वतीः प्रदिशाः संतुमथां ॥ आधोराजानं०” हा
 मंत्रांनीं ज्ञान घालून “आभ्यायस्व०” इत्यादि पांच मंत्रांनीं पंचामृताचें ज्ञान घालीं
 लिंग असेक तर, “नमस्तेहर०” ह्या आठ ऋचांनीं ज्ञान घालून घृताचा अंगवंग, उदक
 हीं घालून जण्णोदकानें ज्ञान घालून गंध लावून संपातोदकानि अभिषेक करून संपा
 अशा चार कुंभानीं ऋकेकरून “आपोहिष्ठा० यावे० तस्या० आकलशेषु०” ह्या मंत्रांनीं
 ज्ञान घालून नंतर “समुद्रयेष्टा०” ह्या चार ऋचा व “आकलशे०” ही एक ऋचा
 मिळून चार कलशानीं ज्ञान घालावें. नंतर उंबर इत्यादिकांच्या पीठावर (पाटावर) मुळ
 ला बसवून देवाच्या आसमंतात पूर्वादि आठ दिशांस उदकयुक्त कलशा माडून त्या
 शास्त्रे गंध, पुष्प, दूधां हे पदार्थ टाकून पहिल्या कुंभाला सप्तपुत्रिका, दुसऱ्या कुंभाला

कलशात्, शशी, विक्रान्त (वेदकोश) आग्नि अर्पणक (आप्यवृक्ष) शशी, शशी
 शशी पावनः शशिका कलशात् सप्तकर्म्ये (श्व, गङ्, मात, तिल, काण, शनि, शशी, शशी,
 शशी कलशात् शशी (सुवर्ण, वज्रमणि, नीलमणि, यदिले आग्नि शीतल) शशी
 अथ कलशात् कले न सुवर्ण; महाव्या कलशात् कुश, दूर्वा, शीरोचन; सातव्यात् शशी
 कः आठव्यात् शशी (कुष्ठ, जठामांसी, स्वानिहलद, यमहलद, शीरोचनी, शिवा
 त, चंदन, बेलद, चंपक, मुस्ता); पात्रभाणे आठ कलशात् पदार्थ ठाकून कर्मकाण्ड
 "आपोदिष्ठा०" मंत्र ३, "हिरण्यवर्णाःसुचयः०" मंत्र ४ अग्नि पक्वाना नुवाकः ३
 पात्रभाणे आठ श्वेककून आठ कलशादकारि अभिषेक करून एका कलशात् शशी,
 शल्ल, बट, खदिर, विश्व, अश्वत्थ, विक्रान्त, जसकृष्ण, आम्र, शिरोचवृक्ष अपि उन्न
 याचे पक्षप व कषाध ठाकून "अश्वत्थ०" या वेदाने अभिषेक करून पंचरजोदकाराचे
 "हिरण्यवर्णाःसुचयः०" आ वेदाने आन ध्यातून देवाला दोन वरें देऊन किरीटक
 बन देवावर आंधका अंधतीस.

नंतर यज्ञोपवीत, गंध, पुष्प, कुश, दीप अर्पण करून "हिरण्यवर्णे १, शशादा ०
 २, वःपाशनां ० ३, यम्वं ० ४, येनः ० ५, यंत्रदत्ती ० ६, आपोहवत् ० ७, यशिकापो ० ८"
 पात्रभाणे आठ श्वेककून आठ दीप देवाच्या पीठावर ठावून सोन्याचे शल्लकेने भातूच्या
 पात्रातील मध व घून घेऊन "चित्रदेवा ० तेजाति ०" हे दोन मंत्र व "ओन्नमोभूगवते
 सुव्यंशिनःहरणेनमः ॥ हिरण्यवर्णेविष्णोर्हस्त्यायनेनमः" हा मंत्र अशा तीन मंत्रे
 करून देवाच्या उजव्या व डाव्या नेत्रांम्ये मंत्राकृतीने लिखून करावें. "अंजतिवा ०"
 हा मंत्र घातून काजळानें नेत्र अंकित करून "देवस्यस्या ० इरुष्ये त्रियेणामग्नि" या
 वेदानें मध, घून, शर्करा यांदिकरून अंकित करून पुढः काजळ नेत्रांत घातवें. तदनंतर
 आरहा दासवावा, व अश्यादि पदार्थ अर्पण करावे, या अर्कस्थानी कर्ताने आचा
 याला शोषदान व प्राविजांला दक्षिणा द्यावी. आचार्य पुरुषसुक्ताच्या प्रत्येक श्लोकाच्या
 पूर्वी ओंकार हाणत हास्तात पुढवसूक्तानें स्तुती करून वंशपादत्रय चंक्रम्य अथ (मात)
 ध्यातून तें श्वेककून देवाला आरती करून तें अथ पत्राठवापर, इत्याला शार्वे. आप्य
 मंत्र— "ओन्नमोभूगवतसर्भभूताधिपतयेदीतसुप्रशान्तोमादापितापनिश्चापितयेरावदेनमो
 नमः ॥ शिवनगाहितं कर्मास्तुवाहा." अन्त्याच्या पादावर प्रतेभ्यो नमः अति
 भावने घायें.

मानंतर आचार्याने सर्वाभयप्रदंकार देवतांन आवाहन करावें. तें असे— "मण्ड-
 भायी देवाः पुनदि अथ दिवांवा इन्द्रादिक आठ श्वे.पात्र, शिवान, इर इन्द्रादिक नें

ॐ वाँ ॥ मध्यमार्गी वसु, इन्द्र, आदित्य, अश्विनी, विश्वेदेव, पितर, वायु, अश्वि, रुद्र-
 वृष, ब्रह्मा, ईशान इत्यादिकांचे जे आठ मध्यप्रदेशां खात्री ठिकाणी दक्ष, विश्व, दुर्गा,
 सभाकार, मृत्युरोग, समुद्र, सरित्, मरुत्, गणपति; मध्यमार्गी पृथिवी, मेघ, आदि
 स्थाप्यदेव या प्रमाणें आवाहन करून पूर्वीदिक आठ दिशांच्या वज्र, शक्ति, इन्द्र, खडू,
 वायु, अंकुश, गदा आणि झुल यांची स्थापना करावी. यांच्या वाद्यप्रदेशां शीतल,
 भरद्वाज निष्कामित्र, कश्यप, जमदग्नि, वसिष्ठ, आर्षे आणि अश्वती यांची स्थापना
 करावी. यांच्या वाद्यप्रदेशां नवग्रह यांची स्थापना करावी. यांच्या वाद्यप्रदेशां ऐंरी,
 कौमारी, ब्राह्मी, वाराही, कामुंडा, वैष्णवी, मन्त्रेश्वरी, आणि तैनायकी, हांचें नामने
 वांनी आवाहन करून पूजा करावी. नंतर मूर्तीवर देवाचे आवाहन ह्या देवतेच्या
 मंत्रानें करून ह्या मूर्तीला मंडळाच्या मध्यमार्गी "सुप्रतिष्ठितो भव" असें हाणून वेत-
 नाची, व तिची पूजा करून मंडळदेवतांच्या मंत्रमंत्रांनीं प्रथम वाच्य या प्रत्येक देवता-
 च्या दहा दहा आहुतींनीं अतीमध्यं होम करावा. नंतर देवाला पुण्याजलिं समर्पण
 करून "नमोवहन्तं" ह्या मंत्रानें देवाला नमस्कार करून मंडळाच्या उत्तर प्रदेशां
 स्वस्तिंकावर मंचक स्थापून ह्या मंचकावर शय्या करून "ह्यनिप्रव०" ह्या मंत्र हाणून
 देवाला उठवून मंगलवाचांच्या शब्देकरून देवाला ह्या शय्येवर बसवार्जे नंतर पुन-
 रसूक्त व उत्तरनारायण यांहीं करून देवाची स्तुति करून देवावर न्यास करावा. तो
 असा— "पुरुषात्मनेमः, प्राणात्मने०, प्रकृतितत्त्वाय०, बुद्धितत्त्वाय०, वाहंकारतत्त्वा-
 य०, मनस्तत्त्वाय०" या प्रमाणें सर्व अवयवांवर न्यास करून "प्रकृतितत्त्वाय०, बुद्धि-
 तत्त्वाय०, वादे, शब्दतत्त्वाय०, शिरसि, स्वप्नतत्त्वाय०, त्वयि, अणुतत्त्वाय०, हृदि,"
 या प्रमाणें न्यास करून हृदयाचे ठिकाणीच "रस, गंध, शीत, त्वक्तु, चक्षु, निष्ठा,
 घ्राण, नाक, पाणि, पाद, वायु, उपरस्य, पृथिवी, आप, तेज, वायु, आकाश, सत्य,
 रज, तम," ह्या देहतरकांचा न्यास करावा. नंतर पुरुषसूक्ताचा न्यास करावा. तो
 असा— "पृथिव्या द्यौं अर्वाचा दक्षिण वामहस्तावर न्यास. ह्याच्या पुढच्या द्यौं अर्वाचा
 दक्षिण वामहस्तावर, आख्या पुढच्या द्यौं अर्वाचा दक्षिण वामकटीवर, साहून पुढच्या
 द्यौं अर्वाचा द्यौं अर्वाचा व कंठ यांचे ठिकाणी, साहून पुढच्या द्यौं अर्वाचा द्यौं
 दक्षिण वामहस्तावर, साहून पुढच्या द्यौं अर्वाचा द्यौं नासाराखावर, साहून
 पुढच्या द्यौं अर्वाचा द्यौं वाम नेत्रावर, शेषदृष्ट्या ऋचेचा मस्तकावर या प्रमाणें
 न्यास करून नंतर "सुप्रतिष्ठितो भव" असें हाणून देवाला शय्येवर निजवून देवा
 आणि शय्या यांच्या मधून कोणीं जाणें नये असें हाणून शिवदत्त इत्यादिक होम करावे

समाप्त कर्त्तव्य मंडल देवताया नाम मंत्रानां माताचे वारि घावे. नंतर चतुशताने लिखित करावा. तदनंतर "मामते." हा मंत्राने पूर्णाहुते हवन करावे. या प्रमाणे अधिवासनाचा प्रथम संश्रितला.

यात यांनंतर स्थिर अर्चेविषयी अनुष्ठानक्रम व विशेष सांगतो—संकल्प इत्यादिना प्रथम जलाधिवासपर्यंत कर्म करून देवाला नमस्कार करून "स्वागतं देवदेवेश०" इत्यादिक प्रार्थना, उद्यापन, अन्युत्तारण इत्यादि नेत्रोन्मीलनपर्यंत कर्म पूर्णनाशे करावे. उपर्ये स्थिर ले शिवलिंगा विषयी, सोन्याच्या शलाकेने गंध घेऊन त्या गंधाने "ओम्भोमगवते इत्यदि हिरण्यरेतसे प्रथमपरमात्मने विश्वरूपायामामिषाय नमः" असा मंत्र म्हणून कानळ इत्यादिकाने नेत्र लिखित करावे, इतका नेत्रोन्मीलनाचा लिंगाविषयी विशेष जाणारा. तदनंतर पुढपसूक्ताने मूर्ति इत्यादिक मंडलदेवतास्थापनापर्यंत कर्म केल्या नंतर मंडलाचे ठिकाणी नारी वसवणी व नंतर अर्चेवर देवता ठेवून नंतर स्तुति, व पूर्वी संश्रितल्याप्रमाणे न्यास करावे. नंतर अर्चेवर देवाला निजनावे, नंतर अर्घ्याची स्थापना इत्यादिक करावे. पूर्वी सांगितलेले अन्वाधान करावयाचे त्या काळी विष्णु देवता असल्या तर "मारात्तम योऽज्ञात्याहुनिमि" आणि शिवदेवता असल्या तर "पात इषुः० द्रापि० अनुवाकस्य ऋचांतीन्द्रमागेन" असा प्रथम देवतेच्या नंतर अन्वाधानांत उद्द करवावयाचा विशेष जाणारा लोकपाल मूर्ति, व मूर्तिपति यांच्या होमपर्यंत कर्म पूर्वी प्रमाणे प्रथम अन्वाध्यं देवतेच्या होमाचेटावी. नंतरागला कर्त्तव्ये नये. पातच होमपर्यंत अर्घ्याची. नंतर विष्णुच्या स्थिर अर्घ्या मध्ये पूर्वी सांगितलेला अशा समिधा, तिळ व आज्य यांचा होम केल्यानंतर पुढपसूक्ताच्या प्रत्येक ऋचेने आज्याचा होम करून "इदविष्णु०" हा होम म्हणून देवाच्या चरणांला हाथे करून पुनः आज्य (पुढपसूक्ताच्या) ऋचांनी होम करून "अतोऽज्ञा०" हा मंत्र म्हणून देवतापर्यंत मन्त्रकाराच्या स्पर्श करून, पुनः आज्य अर्घ्यांनी होम करून पुढपसूक्त म्हणून स्तोत्राच्या स्पर्श करावा. (स्थिर लिंगाची अर्घ्या मध्ये तर समिधा, आज्य, आणि तिळ यांचा होम केल्यानंतर "पातइषुः०" हा अन्वाध्यं, "द्रापि०" हा अनुवाक व "तद्वस्त्राणि०" हा अनुवाक अशा तीन अनुवाकांच्या प्रत्येक ऋचेने आज्याचा होम करून "सर्वोऽज्ञा०" हा मंत्रकळून लिंगाच्या मुळाला स्पर्श करावा. पुनः आज्य ऋचांनी होम करून "कद्रुद्रा०" हा मंत्रकळून लिंगाच्या मध्ये स्पर्श करावा. नंतर पुनः आज्य ऋचांनी होम करून "मयोऽहिरण्यवाहये०" हा मंत्रकळून लिंगाच्या अग्राला स्पर्श करावा. नंतर पुनः आज्य ऋचांनी होम करून लिंगाचा पाठ करून सर्व अंगांला स्पर्श करावा. याप्रमाणे अधिवासनाचा

विशेष आवाधा.

दुसऱ्या दिवशीं पीठिकेला आन घालून "वहीसुखी" ह्या मंत्र घालून आवाहन करून "आदिदेवी" ह्या मंत्राने स्तुति करून "ही मयः" ह्या मंत्राने पुजा करून याच मंत्राने घुणाहृति हवन करून "उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते" ह्या मंत्राने देवाला उठवून पुण्यांशु देऊन पुरुषसूक्ताने स्तुति करून "उदुखं" ह्या मंत्राने देवाला उदवून "कानि-कदं" ह्या सूक्ताने विष्णुमूर्तीचा व "सद्योजातं" ह्या पांच अनुवाकानीं लिगाचा घरांत प्रवेश करवून पीठिकेवर इशादिनाभेकरून आठ रत्ने घालून सप्त धान्ये, रोप्य, मनशीळ, हे मंत्राने घालून पायसाने लिह करून प्रणवमंत्राने अंगन्यास करून सुवर्णाची शालका मध्ये घालून "सुलभे प्रतिष्ठित परमेभूर" असें वाक्य घालून "अतोदेवा" ह्या सूक्ताने विष्णुची व रुद्राने लिगाची स्थापना करावी. नंतर चंद्रहोम, प्राणप्रतिष्ठा इत्यादिक कर्मे करावे. तदनंतर स्थिर अर्चेत अधिवासनामध्ये व दुसऱ्या दिवसविधा कळामध्ये जो विशेष प्रकार न इतर सर्व कर्मे पूर्वी सांगितल्या प्रमाणे व पुढे सांगायला जाणाऱ्या चलाचा तीप्रमाणे करावे.

यानंतर चलाजेंमध्ये अधिवासन केल्या नंतर दुसऱ्या दिवशीं, किंवा एकाह (एक दिवसाचा) परत आसण्यास तत्काली "उत्तिष्ठ ब्रह्मण" ह्या मंत्राने देवाला उठवून पुरुषसूक्त व उत्तरगारायण पार्श्विकरून स्तुति करावी.

आतां यानेता मरुधा स्थिचार्या व चलाचा साधारण प्रयोग सांगतो—
 "प्रतिष्ठानं पुरुषोर्होमं करिष्ये," असा संकल्प करून अन्वाधान करावे. ते असे—
 "वसुषी आज्येनेकोत्तियाध्वदेधे तन्मन्त्रेण घृतपक्वीहिचरुणाएशाहुतिभिराभिसोमं धन्वंतः।
 हूतमनुगतिं प्रजापतिं परमेष्ठिनमश्वाणमग्निं सोमवाग्निमन्नादं अग्निमन्वपतिप्रजापतिं विश्वादे
 वानुसवीं देवान्वाग्निं शिवष्टकृतं." निष्णु देवता असेल तर पूजागहोमामध्ये "संकर्षणप्रति
 ष्ठाशिवदेवताः साङ्गो अश्विनसुरस्वती विष्णुकतरुणैककयाहुत्यावेष्णुषङ्कारुसरुण. शिवदेवता
 असैल" सर भवकार्त्तेशानपशुनातेरुद्रमुग्रंभीममहातं कतरुणैककयाहुत्यायवस्यदे
 वस्यपत्नीमियायष्टीगुडोदनेनेककया० भवस्यदेवस्यसुतमियायष्टी शरिदीनेनएके०
 सप्तदशवारं शिवेशकरेसदमांशितिकंतकपदिनताममरुणमपगुरमायोहिरण्यवाहुं साव्यस्य
 म्भुवादिहिरण्यमेताः कतरुणैककया० सोषेणास्वष्टकामिस्यादे," याप्रकारेण अन्वाधान
 पूर्णामध्ये यत्राहित स्थान्य देवोकरिता चार सुष्टे आग्नि भाषे इत्यादि सांगितले

काली वा कम देवतेष्वपि नामाने चारचार मुठी तांदुळ घेऊन तसेच प्रत्येक देवतेच्या नामाने प्रोक्षण करून घृतयुक्त उदकाने चव शिजवून खुचि करून अवदानाच्या निष्-
 माप्रमाणे, स्थाप्य देवतेच्या मंत्रेकरून दहा आहुति देऊन नाममंत्रांनी होम करावा. तो
 असा—“अमयेऽन्नाहा १, सोमाय०२, धन्वंतरये०३, कुर्वहे०४, अनुमत्ये०५, प्रजापतये०
 ६, परमेष्ठिने०७, ब्रह्मणे०८, अमये०९, सोमाय०१०, अमयेऽन्नादाय०११, अमयेऽप-
 तये०१२, प्रजापतये०१३, विश्वेभ्योदेवेभ्यः०१४, सर्वेभ्योदेवेभ्यः०१५, भूर्भुवःस्वरमयोस्वि-
 ष्टकृतस्वाहा १६,” याप्रमाणे नाममंत्रांनी होम करावा. “सतते अग्ने १, पुनस्स्वादेस्या०”
 ह्या दोन मंत्रेकरून पूर्णाहुति हवन करून आचार्याने “याभोषधी०” ह्या मंत्राने पुष्पे, फळे व
 सर्वोषधि समर्पण करून संपातोदक तास्रपात्रांत घेऊन ते उदक देवाच्या मंत्राने शंभरवेळ अ-
 भिमंत्रण करून ते त्या मंत्राने देवाच्या मस्तकावर सिंचन करावे. नंतर “उचिष्ठब्रह्मण०” ह्या
 मंत्राने देवाला उठवून “विश्वतश्चक्षु०” ह्या मंत्राने उपस्थान करावे. उत्थापन व उप-
 स्थान ही चत्वार्या अक्षतांच करावी. याप्रमाणे ध्यान करून जप करावा. तो असा—
 “ब्रह्मणे नमः विष्णवे नमः रुद्राय७ इंद्राय० अमये० यमाय० निर्ऋतये० वरुणाय० वायु-
 वे० सोमाय० ईशाना० वसुभ्यो० रुद्रेभ्यो० आदित्येभ्यो० अश्विभ्यां० महद्भ्यो० कुषेराय०
 गंगादिमहानदीभ्यो० अभिषोमाभ्यां इंद्रायिभ्यां० द्यावापृथिवीभ्यां० धन्वंतरये० सर्वेशाय०
 विश्वेभ्योदेवेभ्यो० ब्रह्मणे०” याप्रमाणे जप केल्यानंतर संपातोदकाने यजमानावर अभि-
 शेक करावा. नंतर देवाचे ध्यान करून “प्रतिष्ठपरमेश्वर” असे झणून पुष्पांजलि सम-
 र्पण करून हातांत पुष्पे घेऊन अंत्रलि करावी. नंतर “सच्चिदानंदं ब्रह्मैव भक्तानुग्रहाय
 गृहीतविग्रहं स्वायुधादयं निजवाहनसुपेतं निजहृत्कमलेवस्थितं सर्वलोकसाक्षिणमणीयांसंपर-
 नेष्टयासि परमां श्रियं गमय” याप्रमाणे मंत्र झणून पुष्पांजलीमध्ये देव आला अशी भाव-
 ना करून तीं पुष्पे मतीवर समर्पण करून प्राणप्रतिष्ठा करावी. * ती अशी—“अस्य
 श्रीप्राणप्रतिष्ठामंत्रस्य ब्रह्मविष्णुरुद्राऋषयः ॥ ऋग्यजुःसामानिच्छंतीति ॥ किंप्रामयवपुः
 प्राणायुषादेवता ॥ आबीजं त्रींशक्तिः प्राणप्रतिष्ठायांविनियोगः ॥ ब्रह्मविष्णुरुद्राऋषिय्योनमः
 शिरसि ॥ ऋग्यजुः सामच्छंदीभ्यां० मुले ॥ प्राणायुषदेवतायै० हृदि ॥ आबीजाय० गुह्ये ॥
 काशयस्यै० वादयोः ॥ ओं कलंगधंनं अंष्टयिष्ठयसेजोवाय्वाकाशात्मने आहृदयाय० ओं
 अंष्टयिष्ठयसेजोवाय्वाकाशात्मने ई शिरसे स्वाहा ॥ ओं टंठंढंणं लं श्रींशक्ति-
 कृचस्तुक्तिं प्राणायुषे ऊं शिरसायै वषट् ॥ तंथदंघनं एं वाक्प्राणिपादपायूपस्यात्मने ऐं क-
 र्वाययुः ॥ ॐ ॥ परमेश्वरं ॐ ब्रह्मनादानविहरणोत्सर्गोर्नदात्मने ॐ नेत्रत्रयाय वषट् ॥
 ॐ परमेश्वरं वसुधैव कुटुम्बकमिति ॐ अक्षययुक् ॥ वा प्रजापतये ॥

च्या शरीरी व देवाच्या शरीरी न्यास करून देऊन स्वर्ग करून पुढे सांगतो हा जप करावा. तो असा—“ ओं आंर्हीर्कीं अंयंरंलंबंशंवंसंहंसः देवस्य प्राणा इह प्राणाः ॥ ओं आंर्हीं० हंसः देवस्य जीव इहस्थितः ओं आंर्हीं० हंसः देवस्य सर्वेभियाणि ओं आंर्हीं० हंसः देवस्य वाह्. मन चक्षुः भोजप्राणप्राणाइहागमस्वस्तये सुखेन ह्युचिरं तिष्ठन्तु स्वाहा ” या प्रमाणे जप केल्या नंतर मूर्तीच्या हृदयावर अंगुष्ठ ठेवून जप करावा. तो असा—“ अस्यप्राणाः प्रतिष्ठन्तु अस्यै प्राणाः क्षरंतुच्च ॥ अस्यै देवस्वमर्चायै मामहेतिच कश्चन ” या प्रमाणे जप करून प्रणवाने बायु रोधून सजीव अंते ध्यान करून “ भुवाद्यौ० ” ह्या ऋचेचा जप करून देवाच्या कर्णांत गायत्री व देवमंत्र पांचा जप करून पुरुषसूक्ताने स्तुति करून देवाचे चरण, नाभि आणि मस्तक यांला स्पर्श करून “ इहैवैषि० ” ह्या मंत्राचा तीन वेळ जप करावा. सदनंतर कर्णाने “ स्वागतं देवदेवेशमद्भाग्यास्वमिहागतः ॥ प्राकृतंष्टत्वदंष्ट्रामं बालवत्परिपालय ॥ धर्मधिकामति, दुर्बयं स्थिरोभवश्चिवायनः ॥ सामिध्वंतुतदादेव स्वार्चायां पारिकल्पय ॥ यावच्चंद्रावनीसूर्या स्तिष्ठन्प्रतिघ्नतितः ॥ तावच्चयात्रदेवशस्येयंभक्तानुकंपया ॥ भगवन्देवदेवेश त्वंपितासर्वदेहिना ॥ येनरूपेणभगवन् त्वयाव्यासं चराचरं ॥ तेनरूपेण देवेश स्वार्चायां सभिषौ भव, ” हे मंत्र छणून नमस्कार करावा.

यानंतर आचार्य किंवा यजमान याने लिंग अथवा मूर्ती यांचेठायीं आवाहन करावे. ते असे—भूःपुरुषमावाहयामि भुवःपुरुषमावाह० स्वःपुरुषमा०” भूर्भुवःस्वःपुरुष०” याप्रमाणे आवाहन करून प्रणवमंत्राने आसन देऊन दूर्वा, श्यामाक(साबि), विष्णुकांता(काळी गोकर्णी, शंखपुष्पी) आणि कमल यांहीं मिश्रित असे पादोदक करून “ओंइमाभापः शिवतमाःपूताःपूततमा मेध्यामेध्यतमा अमृता अमृतरसाःपाद्यास्ताजुषतां प्रतिगृह्यतां प्रतिगृण्हातुभगवान् महाविष्णुर्विष्णवेनमः” ह्या मंत्राने ते पादोदक समर्पण करावे. लिंग असेल तर “भगवान्महादेवोद्वायनमः” असा मंत्राच्या शेवटच्या भागांत ऊह करावा. याप्रमाणे अन्य देवतांविषयीहि ऊह करावा. “इमाभापःशिव० आचमनीयास्ताजुषतांप्रतिगृह्य० इमाभ्यप०अध्यास्ताः” याप्रमाणे आचमन, व अर्घ्य द्यावे. नंतर पंचामृत स्नान घालून मंत्रानी देवाला शुद्ध स्नान घालावे. “इदेविष्णु०” ह्या मंत्राने विष्णूस. “नमोअस्तुनीलश्रीवाय०” ह्या मंत्राने लिंगास. नंतर कंकणाचे विसर्जनकरून वस्त्र, वस्त्रोपवीत देऊन “इमेगंधाः शुभादिव्याः सर्वगंधैरलंकृताः ॥ पतान्नक्षपाविशेषपूताः सूर्यस्वरश्मिभिः” या मंत्राने आग्नि “पूता०” इत्यादिक पूर्वी सांगितलेल्या मंत्राने गंध समर्पण करावे. “इमेमाख्याःशुभादिव्याः सर्वपाण्यैरलंकृताः ॥ पूता०” इत्यादिक मंत्राने माळा अर्पण करव्या. “इमेपुष्पाःशुभा०”

या मंत्राने पुष्पे अर्पण करावी. "वनस्पतिरसोधूपो० धूपोयंप्रतिगृह्णतां प्रतिगृह्णहानुभवान्" मंत्राने धूप, "उपेतिसिःशुकंचलेजश्व देवानांसतसंप्रियं ॥ प्रभाकरःसर्वभूतानांदीपो० प्रतिगृह्णहानुभवान्" याप्रमाणे दीप देऊन विष्णु देव असेल तर त्याला संकर्षण इत्यादिक द्वादश नामे करून पुष्पे अर्पण करून त्याच द्वादश नामांनी तर्पण करून पायस, गुडमिश्रित अन्न आणि चित्रविचित्र अन्न हों "पवित्रते विततं०" ह्या मंत्राने निवेदन करून संकर्षणादिक द्वादश नामांनी घरांत सिद्ध केलेल्या कृसरान्नाच्या दहा दहा आहुति इवन करून कृसर-अन्नानेच "शाङ्गिणे० श्रियै० सरस्वत्यै० विष्णवे०" याप्रमाणे होम करून "विष्णोर्नुकं० स्वस्यमिया० प्रताद्विष्णु० परोमात्रया० विचक्रमे० त्रिदेवःश्रियेवी०" ह्या सहा मंत्रांनी होम करावा. लिंगदेवता असेल तर दीपांत पूजा करून "भवाय देवाय० इत्याय देवाय० ईशा नाय देवाय० पशुपतये देवाय० वराय देवाय० उग्राय देवाय० भिमाय देवाय० महते देवाय०" याप्रमाणे पुष्पे अर्पण करून त्याच नाममंत्रांनी तर्पण करून "पवित्रते०" ह्या मंत्राने पायस, गुडोदन निवेदन करून "भवाय देवाय स्वाहा" इत्यादि आठ नाममंत्रांनी कृसरान्नाचा होम करावा. तिळमिश्रित जो ओदन (भात)तो कृसर होय. "भवस्य देवस्यपत्न्यै स्वाहा" इत्यादि आठ नाममंत्रांनी गुडोदनाचा होम करून "भवस्य सुताय स्वाहा" इत्यादिक आठ नामांनी हरिद्रोदनाचा होम करावा. नंतर "प्र्यवकं० मानोवहात मानस्तोके० आरात्ते० विकिरिद० सहस्राणि०" ह्या चार ऋचा याही करून कृसरान्नाचा होम करून "शिवाय० शंकराय० सहमानाय० शितिकंठाय० कपर्दिने० ताम्रय० अहण्याय० अपगुरमाण्याय० हिरण्यनाहवे० सत्पिपजराय० बभ्रुशाय० हिरण्याय०" अशा ह्या द्वादश नामेकरून होम करावा. नंतर स्विष्टकृत इत्यादिक होमशेष समाप्त करून पूर्वी सांगितलेल्या सर्व होमद्रव्यांनी विष्णु किंवा लिंग जी देवता असेल तिला बलिदान समर्पण करावे. बलिदानाचा मंत्र— "त्वामेकमाद्यंपुरुषंपुरातनं नारायणं विश्वसृजंयजामहे ॥ त्वमेवयज्ञोविहितोविधेयस्वमात्मानात्मन्प्रतिगृह्णहीष्णहव्यं." लिंग असेल तर "नारायण" ह्या पदाचे ठिकाणी "वृद्धं, शिवं" असे पठण करावे. अश्वत्थाच्या पत्रावर '१' मूर्धुर्वःस्वरोम्० " ह्या मंत्राने हुतशेष ठेवून प्रदक्षिणा करून " विश्वभुजे सर्वभुजे आत्मनेपरमहमनेनमः" ह्या मंत्राने नमस्कार करून आचार्याला वारा, तीन व्यवा एक गोप्रदान देऊन अग्निजाला दक्षिणा देऊन शंभर व्यवा वारा, ब्राह्मणाला भोजन घालावे. नवीन देवालय असेल तर जयावायाला सांगितलेला जो यतिष्ठाविधि तो करावा. या प्रसादविधीमध्ये गाईचा उत्सर्णविधि व मात्रीचा मलेप (टाकणे) इत्यादिक हे विधि करू नयेत. वारूणहीमाच्या स्थानी वास्तुदेवतेच्या उद्देशाने होय क-

रावा. याप्रमाणें स्थिरार्चा आणि चलार्चा यांचा प्रतिष्ठाप्रयोग सांगितला.

आतां यानंतरहि संक्षिप्त असा एकाध्वराविधिकरून चळप्रतिष्ठेचा प्रयोग सांगतो—
संकरूपापासून नांदीश्राद्धपर्यंत कर्म पूर्वीप्रमाणें करावें. एक आचार्य व रावा. नंतर
आचार्यानें “अमुकदेवताप्रतिष्ठाकर्म करिष्ये,” असा संकरूप इत्यादिक मासून सर्वपांचे
विकिरण एवपर्यंत कर्म करावें. नंतर सर्वतोभद्रमंडलावर पूर्वी सांगितल्याप्रमाणें नाममंत्रें
करून ब्रह्मा इत्यादिक मंडलदेवतांचें आवाहन करून त्यांची पूजा करून आपल्या गृह-
सूत्रानुसार अग्नीची स्थापना करून अन्वाधान करावें. आज्यभागांपर्यंत कर्म झाल्यावर
अन्वाधान करावें. तें असें—“स्याप्यदेवतां सहस्रमष्टोत्तरशतंवा सभिदाज्यचरुहितलद्रव्यैर्ब्र-
ह्मादिमंडलदेवताः प्रत्येकं दशदश तिलाज्याहुतिभिः शेषेण इत्यादि.” चरु करण्याकरितां
प्रत्येक देवतेला चार चार मुष्टि सुपांत तांदुळ घेणें व त्यांचें प्रोक्षण करणें हीं कर्मे मंत्र-
विरहित करावीं. आज्यभागपर्यंत कर्म झाल्यानंतर तडाग, नदीतीर, गोष्ठ, आंगण,
पर्वत, हस्तिशाळा, अश्वशाळा, ऱ्हद, वारूळ, चवाठा ह्या स्थानाच्या दहामृत्तिकांनीं आठ
बेटे, देवाला ज्ञान घालून पंचगव्याचें क्रमानें ज्ञान घालून दूर्वा, शिरिस व पंचपल्लव
यांहींकरून युक्त जे आठ कलश यांहींकरून “आपोहिष्ठा०” इत्यादिक मंत्रेंकरून अभि-
षेक करून अग्न्युत्तारण करावें. सर्वतोभद्रावरील पांठावर देवाला वसवून नाममंत्रां
बस्र, गंध, धूप इत्यादि देऊन आठ दिशांचे ठायीं पंचपल्लवादिकांनीं युक्त असे आठ
उदकुंभ व आठ दीप स्थापन करून पूर्वीप्रमाणें नेत्रोन्मीलन करावें. चित्रानेंकरून बलि-
दान करून पुरुषसूक्तांनै स्तुति करून पूर्वी सांगितलेल्या चार द्रव्यांचा, स्याध देवाच्या
मंत्रानें होम करून एकेक द्रव्याचा होम केल्यानंतर देवाला स्पर्श करावा. व आज्यहोम-
नंतर कुंभांत संपात टाकावें. मंडलदेवतांचा होम करून होमशेष समप्त करून
पूर्णाहुति हवन करावी.

तदनंतर पूर्वी सांगितल्या रीतीनें सूक्ताचा न्यास, आवाहन, प्राणप्रतिष्ठा एवपर्यंत कर्म
करून “इहैवेधि०” ह्या तीन ऋचा व पुरुषसूक्त यांचा जप करून मूलमंत्रादिकांनै
आवाहन इत्यादिकापासून पंचामृतस्नानापर्यंत कर्म झाल्यावर संपातोदकेंकरून “इमाभापः
शिवप्रसा०” इत्यादि मंत्रांनीं अभिषेक करावा. नंतर बस्र इत्यादिकापासून नैवेद्यापर्यंत
पूजा पूर्वी प्रमाणें करावी. नंतर तांबूल, फल, दक्षिणा, नीराजन, नमस्कार प्रदक्षिणा
इत्यादिक करून पुष्पांजलि समर्पण करून आचार्यासहवर्तमान कर्मानें देवाला नमस्कार
करून मार्पना करून आचार्याला दक्षिणा दिव्यानंतर आचार्यानें आठ कुंभांतील
उदकेंकरून प्रजमानावर अभिषेक करावा, व विष्णूचें स्मरण करून कर्म ईश्वराकडे

अर्पण करावें, याप्रमाणें संक्षेप जाणावा.

आतां पुनःप्रतिष्ठा सांगतो.—मद्य, चांडाल यांचा स्पर्श नीस झाला ती, अग्नीनें दग्ध झालेली, ब्राह्मणाच्या रक्तानें दूषित झालेली, प्रेत व पापी यांनीं स्पर्श केलेली अशा मूर्तींची पुनः प्रतिष्ठा (अर्चा) करावी. खंडित; स्फुटित; स्थानभ्रष्ट; पूजेचा अभाव कुत्रा, गर्दभ इत्यादिकांचा स्पर्श व पतित, रजस्वला, चोर यांचा स्पर्श; हीं झालीं असतां पुनःप्रतिष्ठा करावी. खंडित झालेली, किंवा भंग झालेली अशी मूर्ती विधिकरून काढून दुसरी मूर्ति स्थापन करावी. मूर्तीचा नाश, किंवा चोरीस गेली इत्यादि ज्या दिवसी घडले त्या दिवसी उपोषण करावें. तांजें इत्यादिक धातूंच्या मूर्तीस चोर, चांडाल इत्यादिकांचा स्पर्श झाला असतां, तांजें इत्यादिक धातूंची सांगितल्या प्रमाणें शुद्धि करून पुनः प्रतिष्ठा करावी. पूर्वी प्रतिष्ठा केलेल्या मूर्तीची न जाणून एक रात्र, एक महिना, किंवा दोन महिनेपर्यंत पूजा इत्यादिकांचा नाश होईल, अथवा शूद्र, रजस्वला इत्यादिकांचा स्पर्श होईल तर जलाधिवास करून कलशानें स्नान घालावें. तदनंतर पंचगव्यानें स्नान घालून आठ सहस्र, अथवा अष्टशत किंवा अद्वावीस कलशांनीं शुद्धीदिकेंकरून पुढे-घसूक्तानें स्नान घालावें. नंतर गंध, पुष्प, इत्यादि उपचारांनीं पूजा करून गुडादिन समर्पण करावें, याप्रमाणें मूर्तीची शुद्धि करावी.

बुद्धिपूर्वक पूजेचा नाश किंवा शूद्राचा स्पर्श इत्यादिक झाला असतां पुनः प्रतिष्ठा केल्यानेंच शुद्धि होते. दुसरे ग्रंथकार तर, एक दिवस पूजा अंतरली असतां द्विगुण पूजा करावी, दोन दिवस अंतरली तर महापूजा करावी, दोन दिवसांहून अधिक दिवस अंतरली असल्यास प्रोक्षणविधि करावा, एक महिन्याहून अधिक पूजा अंतरली असतां पुनः प्रतिष्ठा किंवा प्रोक्षणविधि करावा असें ह्मणतात. पुनः प्रतिष्ठा इत्यादिक कारणें ती मलमास, शुक्राचें अस्तादिक यांमध्येहि करावी. देवालय, वापी, कूप, तडाग यांचा भेद झाला असतां; बाग, सेतु, सभा यांचा नाश झाला असतां "इदंविष्णु० मानस्तोके० विष्णोःकर्माणि० पादोस्य०" ह्या चार ऋचांनीं चार आज्याहुति हवन करून ब्राह्मणाला भोजन घालावें.

आतां प्रोक्षणाचा विधि—देवाचें विसर्जन करून मृत्तिका, उदक याहींकरून देवाला पांच वेळ प्रक्षालन करून पंचगव्येंकरून स्नान घालून कुशोदकांनीं देवाची शुद्धि करून मूलमंत्रानें अष्टोत्तरशतवेळ प्रोक्षण करून मूलमंत्रानें मस्तकापासून पीठिकेपर्यंत स्पर्श करावा. नंतर तत्वन्यास, लिपिन्यास, आणि मंत्रन्यास हे करून प्राणप्रतिष्ठा करून महापूजा करावी. "पूजेनें हीन इत्यादि झालेल्या ज्या मूर्ती अग्निवैद्यीहि ह्या प्रोक्षणविधि

सांगितला आहे.”

आतां निर्णोद्धारविधि संगतों—जीर्णोद्धार करणें तो लिंग इत्यादिक भद्र, किंवा दग्ध अथवा चलिता झालें असतां करावा. अनादिसिद्ध स्थापित ज्या लिंग, मूर्ति इत्यादिक झाला भंगादिदोष असला तथापि हा जीर्णोद्धार करूं नये, तर अविध्या महा-भिषेक करावा.

कर्मानें “अमुकदेवस्य जीर्णोद्धारं करिष्ये” असा संकल्प करून नांदीश्राद्धापर्यंत कर्म केल्यानंतर आचार्याला वरून सर्वतोभद्रपीठावर मंडलदेवतांचें आवाहन करून लिंगाचे ठिकाणी “व्यापकेश्वरहृदयाय नमः ओं व्यापकेश्वरशिरसे स्वाहा” इत्यादिक षडंगन्यास करून पूजा करावी. “अघोरे०” ह्या मंत्राचा अष्टोत्तरशत (१०८) जप करून आश्रि-स्थापना करून “अघोरेभ्यो०” ह्या मंत्रेंकरून, घृतानें भिजवलेल्या सर्षपांचा सहस्र होम करून इंद्रादिक देवतांला नाममंत्रांनी बलि देऊन प्रणवमंत्रानें जीर्ण देवाची पूजा करून घृतयुक्त तिलांनीं मंडलदेवतांचा होम करून प्रार्थना करावी. प्रार्थना मंत्र “जीर्णभद्रमिदं चैव सर्वदोषावहनृणां ॥ अस्योद्दारेकृतेशांतिः शास्त्रेस्मिन्कथितात्वया ॥ जीर्णोद्धारविधानंच नृपराष्ट्रहितावहं ॥ तदधिष्ठापतां देव प्रहरामितवाज्ञया,” ऋषमार्गे प्रार्थना करून दुग्ध, आज्य मध, दुर्वा आणि समिधा यांहीं करून देवाच्या मंत्रानें १०८ होम करून तिळांचा एक सहस्र होम करून पायसाचा शंभर होम करून त्रिगाची प्रार्थना करावी. प्रार्थनामंत्र-- “लिंगरूपं समागत्य येनेदं समधिष्ठितं ॥ यायास्त्वं संभितं स्थानं सत्यज्यैव शिवाज्ञया ॥ अत्रस्थानेच या विद्या सर्वविद्येश्वर्युताः ” याप्रमाणें प्रार्थना करून “शिवेनसह संतिष्ठ०” ह्या मंत्रानें अभिमंत्रित उदकें करून अभिषेक करून विसर्जन करावें. अस्त्रमंत्रानें मंत्रित केलेले जें स्वानेत्र (कुदळ इ०) तेंणें करून खणून तें लिंग घेऊन “वामदेव०” ह्या मंत्रेंकरून नदी इत्यादिकांत टाकावें. मूर्ते असेल तर ती प्रणवमंत्रेंकरून टाकावी. काष्ठमय असल्यास मधमध्ये भिजवून “अघोरेभ्यो०” ह्या मंत्रानें दहन करावें. सुवर्ण इत्यादि धातूंचें असेल तर तें यथायोग्य नष्ट करून त्याच स्थानी पुनः स्थापावें. तदनंतर शांतिकारितां “अघोरे०” ह्या मंत्रेंकरून घृत, दुग्ध, मध यांत भिजवलेल्या तिळांचा सहस्र होम करून प्रार्थना करावी. प्रार्थनामंत्र— “भगवन्भूतभव्येश लोकनाथ जगत्पते ॥ जीर्णलिंगसमुद्धारः कृतस्तवाज्ञायामया ॥ अभिनांदोऽजं दग्धं क्षिप्तंशैलादिकंजले प्रायश्चित्तायदेवेश अघोरास्त्रेणतार्पितं ॥ दग्धतोऽज्ञानतोवापि वयोक्तंरुतंयदि ॥ तत्तर्प पुर्णमेवास्तु त्वत्प्रसादान्महेश्वर.” यान्तर यज्ञमानानें प्रार्थना करावी. ती अती— “गोविप्राशिल्पिभुषाना माचार्यत्यच यज्ञजनः ॥ शोचिर्मयु देवेश अशुभं ज्ञायता मिदं.” मूर्ते असेल तर प्रार्थनेचा विशेष—

स्वप्नसादेननिविशं देहंनिर्मापयत्यसौ ॥ वासं कुच सुरश्रेष्ठ तातस्वंचारुपके गृहे ॥ वसन्ते-
शंलहिस्वेह मूर्तिर्वैतवपूर्ववत् ॥ यावत्कारयते भक्तः कुदतस्यचवाञ्छितं.” तदनंतर नवीन-
मूर्ति किंवा लिंग करून पूर्वी सांगितल्या विधीने, अर्चेच्या कालाची अपेक्षा न धरितो
एक महिन्याच्या पूर्वी स्थापना करावी. याप्रमाणे जीर्णोद्धार सांगितला.

मूर्ति, शिवलिंग, देवालय, देवालयाचा कळस इत्यादिकांचा नाश झाला असता स्वामी
ला मरण प्राप्त होतें या कारितां या विषयीं शांति करावी. ती असी—“ विधाने
करून कुंड करून नंतर होम करावा. विधि पूर्वक यमदेवताक (यम आहे देवता
ज्याची तो) चक्र करून त्या चक्रचा; व दाधि, मधु, घृत यांत भिजवलेल्या अशा
समिधांचा “ इमारुद्रा० ” ह्या मंत्रेकरून मंत्रज्ञ आणि विद्वान् अशा आचार्याने अष्टौ
चरशत होम करावा. उडीद; मूग, तिळ, घृन आणि मध यांहीं भरून, प्रत्येकाचा
सहस्र या प्रमाणे शक्तिबीजमंत्राने होम करावा. शक्तिबीज स्तणने “ ह्रीं ” बीज जाणावे.
द्विजाने भुमि, गाय, वृषभ, सुवर्ण आणि धान्य यांचीं सदक्षिण दाने करून देवाल-
यामध्ये पंचगव्याने स्नान करावे. नंतर कृतरात्राचा बलि यमाला देऊन ईशानाळा पाय
साचा बलि द्यावा. तेथे करून तो मनुष्य कृत्तुय होतो, या विषयीं मूळ प्रमाण
कमलाकरांत सांगितले आहे.

आतां देवपूजेविषयीं पुढें कशीं असावीं तें सांगतो.—अपर्युषित (नूतन), छिद्र-
रहित. प्रोक्षण केलेली, जंतुवाजंत असीं असून आपल्या वागांत उत्पन्न झालेलीं जीं
पुष्पें तीं मुख्य होत, अशा पुष्पांनीं भक्तीकरून देवांची पूजा करावी. कीटकांनीं भक्षण
केलेलीं, शीर्षे (गळलेलीं), पर्युषित (शिल्लीं), आपोआप पडलेलीं, मळादिकानें वारिंट
झालेलीं असीं पुष्पें देवपूजेविषयीं ग्रहण करूं नयेत. प्रफुल्लित न झालेल्या कळ्या, व पक-
झालेलीं व किले उघांत आहेत असीं फळे, यांहींकरून देवाची पूजा करूं नये.” पुष्पें
न मिळतील तर पत्रांनीं पूजा करावी पत्रें न मिळतील तर फलेकरूनहि पूजा करावी-
“ फळें न मिळतील तर दूर्वादि तृणें, गुग्गु (बल्लीच्या तंतूचे गुच्छ) व ओषधी (त्रीदि-
पवादि क) यांहींकरून पूजा करावी. ब्राह्मणानें समिधा, पुष्पें, आणि दर्भे इत्यादिक
आपण आणवीं, शूद्राकडून आणलेलीं, व विकत घेतलेलीं अशा पुष्पादिकांनीं पूजादिक
करणारा अशोयोनि पावतो. ” लक्ष पुष्पांनीं पूजा करणें ती पुष्पें विकत घेऊनहि करावी.
कृतीएक जन “ न्यायानें संपादित केलेल्या इष्ट्यानें विकत घेतलेलीं जीं पुष्पे इत्यादिक
यांहींकरून जो केशवाचे पूजन करितो त्याला दोष नाही, व माळयाच्या गृहातील जीं
पुष्पें त्यांच्या विषयीं पर्युषित दोष नाही, ” असें बघन आहे यास्तव माळयाकडून विकत

ओणलेल्या पुष्पांनी पूजा करितात. नित्यपूजे करितां दुसऱ्याच्या वाग इत्यादिकांतूनही पुष्पें पत्रें इत्यादि ग्रहण केलीं असतां चोरी केल्याचा दोष नाही. पूजेकरितां पुष्पें, पत्र इत्यादिकांची याचना करूं नये. “समिधा, पुष्पें, दर्भ इत्यादि पूजासाहित्य नेत असतां इतरांनीं त्यास, त्यानें इतरांस नमस्कार करूं नये. त्या दोघापैकीं एकानेहि परस्परविषयक नमस्कार केला असतां तें जवळ घेतलेलें पूजासाहित्य निर्मास्य ह्मणजे पूजेला निरूपयोगी होतें.” जें पुष्प देवास अर्पण केलेलें, केवळ यामहस्तांत घेतलेलें, नेसलेल्या वस्त्रांत ग्रहण केलेलें, व उदकामध्ये घालू प्रसालन केलेलें तें पुष्प निर्मास्य होय. “पर्युषित पुष्प बर्ष्य करावें. पर्युषित जल बर्ष्य करावें. तुलसीपत्रें आणि तिर्योदक हीं पर्युषित असतील तथापि तीं बर्ष्य नाहीत. नाईचें पुष्प एक प्रहरपर्यंत पर्युषित नाही. कण्हेरीचें पुष्प एक अहोरात्र पर्युषित होत नाही. कमळें, तुळशी, विन्वपत्रें, कुंदपुष्पें, दमन (दवणा) अगस्त्य पुष्पें, कळ्या, हीं पर्युषित होत नाहीं.

विन्व इत्यादिक पत्रें व पुष्पें हीं किती दिवसपर्यंत शिळीं होत नाहीत त्यांचे दिवसांचे अंक त्या त्या पदार्थापुढें दिले आहेत त्यांवरून तितक्या दिवसपर्यंत पर्युषित होत नाहीत असें जाणारवें. विन्व ३०, अघाडा ३, जाती १, तुलसी ६, शयी ६, शता वरी ११, केतकी ४, भृंगराज ९, दुर्वा ८, मंदार १, पद्म १, नागचांफा २, दर्भ ३० अगस्त्य ३, तिळ १, मल्लिका ४, सोनचांफा ९, कण्हेर ८, याप्रमाणें हीं इतक्या दिवसांमंतर पर्युषित होतात.

तुळसीभ्रमणाविषयी काल सांगतो — “वैधृती, व्यतीपात, भौमवार, शुक्रवार, रविवार, पौर्णिमा, अमावास्या, संक्रांति, द्वादशी, जननाशीच व मृताशीच, हीं असतां तुलसी तोडितात ते हरीचा शिरच्छेद करितात असें होय, याकरितां या दिवसां तुलसी तोडूं नयेत. पुष्पेच्छु बुद्धिमान् अशा मनुष्यानें रविवारी दुर्वा; रात्रि व दोन संधिकाल यांचे ठायीं तुलसी; व कार्तिक मासांत धात्रिपक्ष तोडूं नये. दिवसा निद्रा, तुलसी तोडणें, विष्णुस दिवसाखान हीं द्वादशीचे दिवसां सर्वकाल बुधानां बर्ष्य करावीं.” ह्या वाक्यास दिवसा ज्ञानाचा निषेध सांगितला यास्तव रात्रौ ज्ञानादिक सोळा उपचारां करून पूजा करावी. दिवसा जे पूजेचे उपचार वाहणें ते तर गंधापासून पुष्पांजलिपर्यंतच अर्पण करावे असें कमलाकराच्या आन्धिकांत सांगितलें आहे. द्वादशीचे दिवसां विष्णुवरील निर्मास्यहि काढूं नये असें अन्य तंत्रामध्ये सांगितलें आहे. याचा अपवाद, पुढे चर्चासिंतामणीमध्ये नारदीय पुराणवचनानें सांगितला आहे तो असा — “एकादशीचे दिवसां कनार्हनास पंचामृताचें ज्ञान घातल्यानें व द्वादशीचे दिवसां दुग्धाचें ज्ञान

घातव्यानें हरीचैठार्थी सायुज्यमुक्ति पावतो.” “अमावास्या दिवसीं विष्णुपूजे करितां तुलसी तोडणें, होमाकरितां सभिधा आणणें, व गार्दकरितां तृण कापणें हीं दोषकारक हेत नाहींत.” तुलसीग्रहणाचा मंत्र—“तुलस्यमृतनामासि सदात्वंकेशवप्रिये केशवार्थविचिन्वा मिशरदाभवशोभने.” जाई, मोगरी, कण्हेर, अशोक, कमळें, चांफा, बकुळपुष्पें, शमी आणि कुश हीं पुष्पें सर्व देवांस अर्पण करण्याविषयीं प्रशस्त होत.

यानंतर विहित आणि प्रतिषिद्ध अशीं असल्यामुळें वैकल्पिक होत. तीं हीं—पाटला, शमीपत्रें हीं दुर्गादेवीस विहितनिषिद्ध होत. कुंद, पलाशपुष्प, बकुळ, दुर्वा हीं शिवास विहितनिषिद्ध. कुमुदें व तगर हीं सूर्यास. तुलसी, माका, तमालपत्र हीं शिव व दुर्गा यांला विहितनिषिद्ध होत. अगस्ति, माधवीलता (कुसेरी), लोध्रपुष्प (घायटपुष्प) हीं शिव व विष्णु यांना विहितप्रतिषिद्ध होत. धुतरा व मंदार हीं विष्णु व सूर्य यांला विहित प्रतिषिद्ध होत. याप्रमाणें वैकल्पिक पुष्पें जाणावीं.

यानंतर विष्णूस प्रिय पुष्पें कोणतीं तीं सांगतीं—मालती, जाई, केतकी, मोगरी, अशोक, चंपक, पुन्नाग (उडिणांचें पुष्प), बकुळ, कमळ, कुंद कण्हेर, पाटलापुष्प, (सुरपुन्नाग), तगर, हीं पुष्पें विष्णूस प्रिय होत. इतर सुगंधी पुष्पें विष्णूस प्रिय होत. अपामार्ग (आघाडा), माका, खादिर, शमी, दुर्वा, कुश, दमनक, बिल्व, तुलसी यांचीं पत्रें एकाहून एक अधिक प्रिय होत. सर्वांपेक्षां तुलसी अधिक प्रिय आहे. जाईच्या सहस्र पुष्पांची माला करून ती विष्णूस अर्पण केली असतां कल्पकोटी सहस्रवर्षेपर्यंत विष्णुपुराचे ठायीं वास होतो. आंब्याच्या मोहुरानें पूजा केली असतां गोकोटिदानाचें फळ मिळतें.

यानंतर शिवास प्रिय पुष्पें कोणतीं तीं सांगतीं—शंकर अर्कपुष्प,^१ कण्हेर, बिल्व आणि बकपुष्प या चार जातींच्या पुष्पांचा सुगंध ग्रहण करितो. श्वेत अर्कपुष्पांनो शंकराची पूजा केली असतां दहा सुवर्णांच्या दानांचें फळ मिळतें. अर्कपुष्पाहून सहस्रगुण बकपुष्प प्रिय होय. याप्रमाणें धतूर (धोतरा), शमीपुष्प, शैलपुष्प, निळीं कमळें हीं एकाहून दुसरे अधिक याप्रमाणें सहस्रगुण प्रिय होत. “हे वरानने, हे पार्वति, बिल्वपत्रांचून हिरे, मोळें, पोवळीं व रत्नें यांहिकरूनहिं माझी पूजा केली तयापि तीं मी ग्रहण करणार नाहीं. बिल्वपत्र हें दरिद्राचा नाश करणारे व सर्व मनोरथ पूर्ण करणारे आहे. सहस्र निळ्या कमळांची माला अर्पण केली असतां कल्पकोटि सहस्र वर्षेपर्यंत शिवपुरांत वास प्राप्त होतो. धतूरपुष्पें व वृद्धीपुष्पें यांहींकरून पूजा केली असतां लक्षसंख्याक गोदानाचें फळ मिळतें. पाटला, मंदार, अपामार्ग, जाई,

चंपक, उशीर, तगर, मागकेशर, पुष्पाग, जासवंद, मोगरी, आंबा, कडईचे पुष्प, ही शिवास प्रिय होत. धतूर, कदंब ही पुष्पे शंकरास रात्री अर्पण करावी. मदनरत्न ग्रंथांत “धतूर कदंब” या स्थानी ‘केतकी’ कदंब असा पाठ आहे. पुष्पे व पत्रे न मिळाल्यास अन्न इत्यादिकांनी पूजा करावी. साळीचे तांदूळ, गहू, अथवा यव यांहीं करूनहि शंकराची पूजा करावी.

यानंतर निषिद्ध पुष्पे—बंधूक, कुंद, अतिमुक्त (कस्तुरमोगरा) केतकी, कपित्थ, बकुल, शिरीष आणि निंब ही शिवास निषिद्ध होत. पुष्पे पत्रे इत्यादिक अर्पण करणे ती आपणाकडे अग्ने करून उतार्णी अशी अर्पण करावी; कारण “पत्र, पुष्प आणि फल ही जशी उत्पन्न होतात तशी अर्पण करावी” असे वचन आहे. विश्वपत्र तर आपणाकडे अग्र करून उपडे वाहावे. पक झालेले आम्रफळ शिवास अर्पण केले असता दहा सहस्र वर्षपर्यंत शिवपुरी वास प्राप्त होतो. “शिवाला प्रदक्षिणा करावयाची ती पूर्वी सव्य प्रदेशाने प्रणाली (पन्हळी-गायमुख) पर्यंत जावे. नंतर तेथून पुनः फिरेन अपसव्याने प्रणालीपर्यंत जावे; परंतु प्रणालीचे उल्लंघन करू नये,” इत्यादिक प्रदक्षिणेचा प्रकार स्थिरालिंगाविषयी जाणावा. चरालिंगाविषयी तर, सव्य प्रदेशानेच प्रदक्षिणा करावी. बकुल, कुंदादिसहित हीच पुष्पे देवालाहि प्रिय होत. “धान्यवृक्षांची सर्व पत्रे व पुष्पे दूर्वा, कुंद, निर्गुंडी, बंधूक आणि अगस्ति यांच्या पुष्पांनीहि देवीचे पूजन करावे,” विश्व पर्वेकरून पूजा केली असता राजसूयाचे फल मिळते. कपेशीच्या पुष्पांच्या मालेने आम्र-ष्टोमाचे फल प्राप्त होते. बकुलपुष्पांच्या मालेने वाजपेयाचे फल मिळते. द्राणपुष्पांच्या मालेने राजसूयाचे फल मिळते. याप्रमाणे सूर्य, गणपति इत्यादिक देवतांची प्रिय पुष्पे बहु-धा विष्णूप्रमाणे जाणावी, ह्यणजे विष्णूला नी प्रिय पुष्पे ती सूर्य, गणपति यांला प्रिय होत असे तात्पर्य जाणावे.

यानंतर शिवनिर्माळ्यग्रहणाचा निर्णय—“शिवास अर्पण केलेला नैवेद्य, पत्र, पुष्प, फल, जल ही अग्राह्य होत; परंतु शालग्रामशिळेच्या संबंधाने शिवाचे सर्व नैवेद्यादिक पवित्र होते.” शिव, व सूर्य यांचा नैवेद्य भक्षण केला असता चांद्रायण करावे. अभ्यास असता दुष्पट चांद्रायण करावे. बुद्धिपूर्वक अभ्यास असता सांतपन करावे. आपांचि नसता इतर देवतांच्या निर्माळ्य (नैवेद्यादिक) ग्रहणाविषयीहि असाच निर्णय जाणावा. ज्योतिर्लिंग, स्वयंभूर्लिंग आणि सिद्ध पुरुषांनी स्थापन केलेले लिंग आंबांचून अन्य नी स्थापारलिंगे तद्विषयक हा शिवनिर्माळ्य ग्रहणाचा निषेध जाणावा. ज्योतिर्लिंग इत्यादिकाविषयी तर, पूजकाने दिलेले फल, तीर्थादिक मत्कीकरून शुद्धीकरिता ग्रहण करावे,

लोभाने ग्रहण करूं नये. पंचापतनातील चरवाणलिंगे व प्रतिमा यांचा अन्नादिक नैवेद्याहि स्वतां ग्रहण केला तयापि दोष नाही. उयोर्तिर्लिंगादिकांहून इतर जीं क्षिप्र लिंगे यांचें तीर्थोदक, चंदन हें मात्र भक्तिमान शिवोपासकांनीच ग्रहण करावें. ज्योतिर्लिंगादिकांनिषयीं पूजकार्ते दिलेलें असें अन्नाहि भक्षण करावें असें कितीएक सांगतात.

आतां यानंतर नक्षत्रांच्या संज्ञा सांगतो—उत्तरा, उत्तराषाढा, उत्तरा भाद्रपदा आणि रोहिणी हीं नक्षत्रे ध्रुवसंज्ञक होत. मघा, भरणी, पूर्वा, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा, हीं क्रूरसंज्ञक होत. श्रवण, धनिष्ठा, शततारका पुनर्वसु, आणि स्वाती हीं चरसंज्ञक जाणावीं. अश्विनी, हस्त, पुष्य, हीं क्षिप्र संज्ञक होत. अनुराधा, रेवती, मृग, चित्रा हीं मृदुसंज्ञक होत. कृत्तिका, विशाला हीं मिश्रसंज्ञक. मूल, आश्लेषा, ज्येष्ठा, आर्द्रा, हीं तीक्ष्णसंज्ञक. या प्रमाणें नक्षत्रांच्या संज्ञा सांगितल्या.

उपाविषयीं तिथि सांगितल्या नाहींत त्याविषयीं रिक्ता व अमावास्या यांचाचून इतर तिथि ध्याव्या. जेथें वाराहि सांगितला नाहीं तेथें रविवार, शनिवार आणि भौमवार हे वर्ज्य करून इतर वार ध्यावे. चर, मृदु, क्षिप्र, ध्रुव, मूल, विशाला, मघा हीं नक्षत्रे; भौमवार, शुभवार (चंद्रवार, बुधवार, वृहस्पतिवार व शुक्रवार) या वारीं भूकर्षण (भूमि नांगरणें) शुभ होय. सूर्यानें व्यक्त ह्मणजे भोगून टाकले जें नक्षत्र त्यापासून ह्मणजे सूर्यनक्षत्राचे पूर्वे नक्षत्रापासून ३, ८, ९, ८ या नक्षत्रांनीं क्रमानें अशुभ, शुभ, अशुभ आणि शुभ याप्रमाणें हलचक्र जाणावें. हीं जीं हलचक्राचीं नक्षत्रे सांगितलीं याच नक्षत्रां; शनि व भौम हे वार वर्ज्य करून अन्य वारीं बीज परणें, शेत लावणें, व शेत कापणें हीं शुभ होत. क्षीरवृक्षाचा (वटवृक्षाचा) स्तंभ (तिवडा) घालावा. ज्येष्ठा, मूल, मघा, श्रवण, रेवती, रोहिणी, अनुराधा, पूर्वा आणि उत्तरा या नक्षत्रां धान्याचें मर्दन ह्मणजे मळणी काढणें ती शुभ होय. क्षिप्र, ध्रुव, चर, मृदु, मूल, या नक्षत्रां; बुध, गुरु शुक्र या वारीं; चर लग्ने वर्ज्य करून इतर लग्नां धान्याचा संग्रह शुभ होय. धान्यसंग्रहकार्ती “ ओधन-दायसर्वलोकहितायदेहिमेधान्यंस्वाहा ” याप्रमाणें मंत्र लिहून कोठारांत टाकावा, तेणें करून धान्याची वृद्धि होते. बुधवार व मंदवार या वारीं धन आणि धान्य यांचा व्यय (व्याजावर रूपये लावणें, सवाई दिढीवर धान्य देणें तो) करूं नये. मृदु, क्षिप्र, आणि चर ह्या नक्षत्रां; शुभवारीं; दिवसा नवान्न भक्षण करावें.

यानंतर वंछादिधारणाचा मुहूर्त सांगतो.—ध्रुवसंज्ञक, अश्विनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाला, अनुराधा पुनर्वसु, पुष्य, रेवती, आणि धनिष्ठा, या नक्षत्रां; शुभ तिथींचे दिवसां;

शुभ, शानि व चंद्र यांचाचून अन्यवारीं वस्त्रे व भूषणे धारण करावी. ब्राह्मणाची आह्नी विवाहादि उत्सव, लाभ हीं असतां निव्व दिवसीही वस्त्र धारण केलें असतां तें इष्टदायक होतें. भुवसंज्ञक नक्षत्रें, पुष्य, पुनर्वसु या नक्षत्रां जी स्त्री वस्त्र व अलंकार धारण करिते आणि शततारका नक्षत्रां ज्ञान करिते तीं पतीच्या प्रीतिसि पात्र होत नाहीं. शुभ तिथि व शुभ वार या दिवसीं, ध्रुव, क्षिप्र, मृदु, श्रवण, भरणी, पुनर्वसु या नक्षत्रां पादुका; आसन, शय्यादिक यांचा उपभोग करावा. नूतन वस्त्राचे नऊ भाग मानून मध्यम तीन अंशांवर जर तें वस्त्र नूतन असतां दग्ध होईल अथवा फाटेल किंवा कर्दमयुक्त होईल तर तें टाकून शांति करावी. शेवटच्या दोन अंशांवर दग्ध इत्यादिक होईल तर केवळ वस्त्र मात्र टाकावें, शांति करूं नये. हा निर्णय शय्येवरील गादि इत्यादिक, पादुका, आसन यांविषयीहि जाणावा. अनुराधा, अश्विनी, चित्रा, मृग पुनर्वसु या नक्षत्रां सूचीकर्म हणजे शिवणकाम करावें. वस्त्र धारणास जो काल सांगितला त्या काली बुधवाराचाचून अन्यवारीं वस्त्रक्षालन करावें. रौप्य, सुवर्ण, कांस्य इत्यादिक धातूंचे केलेले जें पात्र व्यामर्ष्ये भोजन करणें तें अमृतयोगी व चर, क्षिप्र, मृदु; आणि भुवसंज्ञक या नक्षत्रां करावें. चर, क्षिप्र, मृदु ध्रुव नक्षत्रां आणि शुभवारीं अलंकार घडवावे. मिश्रनक्षत्रां व रवि, मंगळ या वारीं रत्नजडित अलंकार घडवावे. पापमार्गे वस्त्रादिधारणाचे मुहूर्त सांगितले.

कूर, मिश्र, अश्विनी, मृग, आणि तीक्ष्ण या नक्षत्रां खड्डू इत्यादि शस्त्रें घडवावीं, ध्रुव, क्षिप्र, मृदु, ज्येष्ठा, आणि विशाखा ह्या नक्षत्रां शस्त्रें धारण करावीं. क्षिप्र, भैत्र आणि ध्रुव या नक्षत्रां; बुध, गुरु, रवि, व शुक्र या वारीं; व स्वामिनक्षत्रापासून सेवकांचें नक्षत्र दुसरें नसेल तर, शानिवारींही स्वामीची सेवा करावी, हणजे चाकरीस रहावें. हस्त, चित्रा, स्वाति, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, ध्रुवसंज्ञक, श्रवण, रेवती, पुष्य आणि पुनर्वसु या नक्षत्रां पालखी, हस्ति, अश्व, इत्यादिकांवर आरोहण करावें तें शुभ होय. क्षिप्र, श्रवण, धनिष्ठा, मृदु, ध्रुव या नक्षत्रां राजांचें दर्शन करावें. पुष्य, मृग, ध्रुव, ज्येष्ठा, धनिष्ठा, अनुराधा, शततारका आणि हस्त या नक्षत्रां; शुभवारीं नृयारंभ शुभ होय. मृदु, क्षिप्र, ध्रुव, या नक्षत्रां (रिक्तातिथि व भौमवार वर्ज्य करून) विषाणे (विक्रीचा बाजार) शुभ होय. अश्विनी, स्वाती, श्रवण, चित्रा, शततारका आणि रेवती या नक्षत्रां क्रय (मौल्य देऊन वस्तु घेणें तो) करावा. भरणी, पूर्वा, पूर्वाषाढा; पूर्वाभाद्रपदा, आश्लेष्वा, आणि मिश्रसंज्ञक नक्षत्रें या नक्षत्रां विक्रय [मौल्य घेऊन वस्तु देणें तो] करावा. ध्रुवसंज्ञक, स्वस्ति, या नक्षत्रां; गुरु, रवि, शानि, या वारीं सेतुबंध कराना; हस्त,

बुध, आर्द्रा, मृग, मिश्रसंज्ञक नक्षत्रें, पुनर्वसु, धनिष्ठा, अश्विनी, सनि पूर्वा, ज्येष्ठा, शत-
तारका, रेवती, या नक्षत्रां; [रविवार, मंगळवार, चंद्रवार, शनि, श्रवण; चिन्ना, व भ्रुव-
क्षत्रं अमात्रास्या, रिक्ता हीं वर्ज्यं करुण] पशु नेणें व आणणें, विक्रय करणें, विकत खेपें
इत्यादिक नानभ्यकारचीं पशुसंबंधीं कर्में शुभ होय. लघुचरसंज्ञक नक्षत्रां चरलक्ष्मीं वृद्धि होण्या
करितां द्रव्याचा व्यापार करावा. भौमवार, वृद्धयोग, सूर्यसंक्रांति या दिवसीं कर्ज काढूं
नये. धनिष्ठा, शततारका, पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा, रेवती, हस्त, त्रिपुंकर,
द्विपुंकर, भौम, बुध, गुरु, शुक्र आणि शनि या दिवसीं कर्ज देणें व धन संग्रह
करणें हीं करावीं, बुधवारीं धन देऊं नये. बुधवारीं धनसंग्रह तर शुभ होय. शनिवार,
रविवार, भौमवार, हे वार; त्रिपाद नक्षत्रें ह्यणजे कृत्तिका, पुनर्वसु, उत्तरा, विशाखा,
उत्तराषाढा, पूर्वाभाद्रपदा; भद्रा तिथि ह्यणजे द्वितीया, सप्तमी, द्वादशी आ तिथि; या
तिथींचा योग असतां त्रिपुंकर योग होतो. मृग, चित्रा, धनिष्ठा हीं नक्षत्रें; भद्रातिथि;
शनिवार, भौमवार, रविवार या तिथींचा योग असतां द्विपुंकर योग होतो. हे त्रिपुंकर
द्विपुंकर योग शुभाशुभ कार्याविषयीं क्रमानें त्रिगुण द्विगुण फल देणारे होतात. (ह्यणजे,
हा योग असून त्या दिवसीं कोणी मृत झाल्यास तत्सहित त्याचे तीन मृत होतील, जर
काहीं वस्तु नष्ट होईल तर तत्सहित नष्ट होतील. तसाच काहीं लाभ झाला असतां ति-
प्पट लाभ होईल असें जाणावें, व द्विपुंकरांचेही फल असेंच जाणावें.) मिश्र, क्रूर, तीक्ष्ण
आणि स्वाती या नक्षत्रां दिलेलें, ठेवलेलें, प्रयुक्त, नष्ट झालेलें द्रव्य प्राप्त हात नाहीं असें
नारद सांगतो.

रोहिणी नक्षत्रापासून चार चार नक्षत्रें मोजून तीं कर्मकरुण अंध, मंद, चिबिट
आणि सुलोचनसंज्ञक होतात. ह्यणजे रोहिणी अंध; मृग मंद; आर्द्रा चिबिट; आणि
पुनर्वसु सुलोचन याप्रमाणें पुढें जाणावीं. अंध नक्षत्रावर नष्ट झालेली वस्तु शीघ्र सांपडेल.
मंद नक्षत्रावर नष्ट झालेली वस्तु यत्नेकरुण सांपडेल. चिबिट व सुलोचन या नक्षत्रावर
नष्ट झालेली प्राप्त होणार नाहीं. अंध नक्षत्रावर नष्ट झालेली वस्तु पूर्व दिशेस शोधावी,
मंद नक्षत्रावर नष्ट झालेली दक्षिण दिशेस, चिबिट नक्षत्रावर नष्ट झालेली वस्तु पश्चिम
दिशेस, सुलोचन नक्षत्रावर नष्ट झालेली उत्तर दिशेस पहावी. श्रवण, भ्रुवसंज्ञक, ज्येष्ठा,
मृग, क्षिप्र, या नक्षत्रां, रवि उत्तरायणीं असतां व चंद्रवारीं, गुरु, शुक्र यांचा उदय
असतां; मंगळवार, रिक्ता, अधिक मास, चैत्र मास, रात्रि हीं वर्ज्यं करुण राजाभियेक
करावा तो कैल्याणार्थ होतो. मघा, पुष्य, भ्रुव, मृग, पूर्वाषाढा, अनुराधा, रेवती, धनिष्ठा,
शततारका आणि हस्त या नक्षत्रां, व जलराशिगत चंद्र असून बुध व गुरु हे लक्ष्मीं

असता वापी, कुप तडागादिक खणावीं. चौलास जीं उक्त नक्षत्रे व वार इत्यादि सांगितले सांवर क्षीर कर्म करावें तें शुभ असें सांगतात. राजे यांनीं क्षीर करणें तें पांच पांच दिवसांनीं करावें. इतरांनीं उक्त दिवसां करावें. नवव्या दिवसां श्मश्रुकर्म कधींहि करूं नये. प्राण वांचण्याची इच्छा करणारानें चतुर्दशी दिवसां श्मश्रु, न अमावास्याचे दिवसां स्त्रीसंभोग हीं वर्ज्य करावीं अभ्यंगयुक्त, भोजन केलेला, स्नान केलेला, अलंकारादिकांनीं भूषित, अशांनीं क्षीर करूं नये. प्रयाणदिवस, युद्धाचा आरंभदिवस, रात्रि, संधिकाल, श्राद्धदिवस, प्रतिपदा, रिक्तातिथि, व्रतदिवस, वैधृति, या दिवसां श्मश्रु करूं नये. सर्व कर्म करण्याविषयीं जन्मनक्षत्र प्रशस्त आहे; परंतु श्मश्रु, प्रयाण, औषधसेवन आणि वादविवाद, यांविषयीं प्रशस्त नाही. षष्ठी अमावास्या, पौर्णिमा, व्यतीपात, चतुर्दशी, आणि अष्टमी या दिवसां तैलसेवन, स्त्रीसंभोग, श्मश्रु हीं करूं नयेत. राजकार्याचे ठायीं नियुक्त, राजाच्या योगानें उपजीविका करणारे यांनीं श्मश्रु, लोम, नखें यांच्या छेदाविषयीं कालशुद्धिविचार करूं नये. निषेध जरी असेल तथापि नैमित्तिक व यज्ञ, मृति, बंधमोक्ष, राजाज्ञा, ब्राह्मणाज्ञा हीं असतां क्षीर निश्चयें करावें. जीवात्पितृक अशा पूर्ववयस्कांनीं मुंडन करूं नये, मुंडन करूं नये असा जरी निषेध आहे, तथापि केशांचें कर्तन सदा करावें. श्मश्रुकर्म करविणें तें सुधी पुढ्यानें उत्तराभिमुख किंवा पूर्वाभिमुख होस्ताता करावें. केश, श्मश्रु, लोम आणि नखें यांचा छेद उपकृ-संस्थ करावा. निघ्नारादि दिवसां श्मश्रुकर्म कर्तव्य असतां दोषनिरसनाचा उपाय—“आनर्त्तंहिच्छत्रः पाटलिपुत्रोदितिदितिःश्रीशः ॥ क्षीरेस्मरणादेषां दोषानश्यतेनिशेषाः” (आनर्त्त, अहिच्छत्र, पाटलिपुत्र, अदिति दिति, आणि श्रीश यांचें श्मश्रुकालीं स्मरण केल्यानें सर्व दोष दूर होतात.)

यानंतर रोग उत्पन्न झाला असतां नक्षत्रांचीं फलें— १ अश्विनी नक्षत्रावर रोगाची (ज्वरादिकाची) उत्पत्ति झाली असेल तर एक दिवस, अथवा नऊ दिवस, किंवा पंचवीस दिवस पीडा जाणावी. २ भरणी नक्षत्राची पीडा अकरा दिवस, किंवा एक-वीस दिवस, मासपर्यंत अथवा मृत्यु. ३ कृत्तिका नक्षत्राची दहा दिवस, नऊ दिवस किंवा एकवीस दिवस. ४ रोहिणी नक्षत्राची दहा, किंवा नऊ, अथवा सात, तीन दिवस पीडा. ५ मृगाची पांच, नऊ किंवा तीस दिवस पीडा. ६ आरद्रा नक्षत्रीं मृत्यु दहा दिवस, अथवा मासपर्यंत पीडा. ७ पुनर्वसूची सात दिवस, नऊ दिवस पीडा किंवा मृत्यु. ८ पुष्याची पीडा सात दिवस किंवा मृत्यु ९ आश्लेषा नक्षत्रीं मृत्यु अथवा वीस दिवस, तीस दिवस, नऊ दिवस पीडा. १० मघा नक्षत्रीं मृत्यु, अथवा दंड

महिना किंवा एक महिना, अथवा वीस दिवस पीडा. ११ पूर्वा नक्षत्री मृत्यु, किंवा वर्षपर्यंत, मासपर्यंत, अथवा पंधरा दिवस साठ दिवस पीडा. १२ उत्तरा नक्षत्री सत्तावीस दिवस, पंधरा दिवस किंवा सात दिवस पीडा. १३ हस्त नक्षत्री मृत्यु, अथवा आठ दिवस, षड दिवस, सात दिवस, पंधरा दिवस पीडा. १४ चित्रा नक्षत्री पंधरा दिवस आठ दिवस दहा दिवस; अकरा दिवस पीडा. १५ स्वाती नक्षत्री मृत्यु, अथवा एक, दोन, तीन; चार आणि पांच महिन्यांनी किंवा दहा दिवसांनी रोगाचा नाश होईल १६ विशाखा नक्षत्री मास, पक्ष, अथवा आठ दिवस, वीस दिवस पीडा. १७ अनुराधा नक्षत्री दहा रात्री, किंवा अष्टावीस रात्री पर्यंत पीडा. १८ ज्येष्ठा नक्षत्री मृत्यु अथवा पक्ष, मास किंवा एकवीस रात्रीपर्यंत पीडा. १९ मूळ नक्षत्री मृत्यु किंवा पक्ष नऊ रात्री, अथवा वीस रात्रीपर्यंत पीडा. २० पूर्वाषाढा नक्षत्री मृत्यु किंवा दोन, तीन, सहा, इत्यादिक मासांनी अथवा वीस दिवस पक्ष याहीकरून रोगनाश होईल, २१ उत्तराषाढा नक्षत्री दोंड महिना, वीस रात्री, किंवा एक मासपर्यंत पीडा. २२ श्रवण नक्षत्री पंचवीस दिवस किंवा दहा दिवस अथवा अकरा, किंवा साठ दिवस पीडा २३ धनिष्ठा नक्षत्री दहा रात्री, पक्ष, मास अथवा तेरा रात्री पर्यंत पीडा. २४ शत तारका नक्षत्री बारा दिवस किंवा अकरा दिवस पीडा. २५ पूर्वाभाद्रपदा नक्षत्री मृत्यु अथवा दोन तीन महिने; किंवा दहा रात्रीपर्यंत पीडा. २६ उत्तराभाद्रपदा नक्षत्री दोंड महिना, पक्ष, सात दिवस दहा दिवस पीडा. २७ रेवती नक्षत्री उग्र इत्यादि रोग उत्पन्न झाला असतां दहा दिवस अथवा अष्टावीस रात्रीपर्यंत पीडा २८ जन्मनक्षत्र जन्मराशि, आणि अष्टमचंद्र यांचे ठायीं रोगाची उत्पत्ति झाली असतां मृत्यु प्राप्त होईल. रवि इत्यादिक वारीं क्रमैकरून मघा व द्वादशी, विशाखा व एकादशी, पंचमी व आर्द्रा नृमीया व उत्तराषाढा, शततारका व शष्ठी, अष्टमी व अश्विनी, पूर्वाषाढा व नवमी; याप्रमाणे वार, तिथि, नक्षत्र, या तिन्हींचा योग असतां रोग उत्पन्न होईल तर मृत्यु प्राप्त होतो. याप्रमाणे रवि इत्यादिक वारीं अनुराधा व भरणी, आर्द्रा व उत्तराषाढा, मघा व शततारका, विशाखा व अश्विनी, ज्येष्ठा व मृग, श्रवण व आश्लेषा पूर्वाभाद्रपदा व हस्त, हीं असतां मृत्युयोग होतो. याविषयीं सांगितलेल्या तिथी, वार आणि नक्षत्रे यांच्या शांति मोठ्या कराव्या. ज्या नक्षत्री मरण सांगितले त्या नक्षत्राची शांति अवश्य करावी. अन्य नक्षत्राची कृताकृत आहे.

आतां सर्व नक्षत्रांचा साधारण शांतिचा प्रयोग.—देशकालांचा उच्चार करून "मयो-त्पन्नव्याधेर्जीवच्छरीराविरोधेनसमूलनाशार्थं अमुकनक्षत्रशांतिं करिष्ये," असा संकल्प

करून गणपतिपूजादिक करावें. नंतर आचार्याला वरून कलशावर पूर्ण पात्रामध्ये द्वादशदलांचे ठायीं नक्षत्रदेवतेची प्रतिमा सुवर्णाची पुजून द्वादश दलांचे ठायीं संकर्षणादि द्वादश मूर्ते किंवा द्वादशादिस यांची पूजा करून दूर्वा, समिधा, तिल, दुग्ध; आणि आज्य याहींकरून गायत्रोमंत्रानें त्या त्या देवतेच्या उद्देशानें १०८ होम करावा. मरण इत्यादिक बहुत पीडा प्राप्त होईल असें सांगितलें त्याविषयीं सहस्र होम करून दाहिंभासाचा बलि देऊन आचार्याला गोप्रदान व प्रतिमादान करावें. याप्रमाणें संक्षेप जाणावा. शांतिमयूख इत्यादि ग्रंथांत नक्षत्रांच्या भेदानें होमद्रव्यें, मंत्र, बलिदान, धूपादिक यांचे भेद लक्षणजे निरनिराळें प्रकार व तिथि, वार, ह्यांच्या देवता व मंत्रादिक या सर्वांचे निरनिराळें प्रकार इत्यादिक विस्तार पाहावा. कर्म विपाकांत “जातवेदसे०” ह्या ऋचेचा दहा सहस्र किंवा एक लक्ष जप, अथवा शिवावर नमकानुवाकानां सहस्र कलशांनीं ज्ञान किंवा विष्णूवर पुरुषसूक्ताच्या सहस्रावर्तनांनी सहस्र घटांनीं ज्ञान घातलें असतां ज्वराचा नाश होतो असें सांगितलें आहे. अथवा श्रीमद्भागवतातील ज्वरस्तोत्राचा जप करावा.

सर्वरोगनाशक विधि सांगतो — लहान मोठा जसा रोग असेल तदनुसार लघुद्वय, महाद्वय, अथवा अतिरुद्र यांचा जप किंवा अभिषेक करावा. विष्णुसहस्रनामस्तोत्राचा शंभर किंवा सहस्र अथवा दहा सहस्र जप करावा. अथवा सौराचा (उर्ध्वनद्य० ह्या ऋचेचा मात्र जप) जप, सूर्याला नमस्कार आणि सूर्याचें अर्घ्यप्रदान, “मुंचामित्वा०” ह्या सूक्ताचा जप; “अच्युतानंतगोविंद” ह्या तीन नामांचा जप, आणि मृत्यंजयजप हीं जसा रोग लहान मोठा असेल त्याप्रमाणें सर्व रोग दूर करणारीं आहेत.

ज्येष्ठा, मूल, श्रवण, स्वाति, मृदुसंज्ञक, क्षिप्रसंज्ञक, आणि पुनर्वसु ह्या नक्षत्रीं; गुह, शुक्र, आणि इंद्र ह्या वारीं औषध भक्षण करणें प्रशस्त होय. रिक्तातिथि, चरलभे, मिश्रसंज्ञक, क्षिप्रसंज्ञक. ज्येष्ठा, मूल, तीन पूर्वा, चित्रा, भरणी श्रवण, धनिष्ठा, शतताराका, या नक्षत्रीं; रवि, मंगळ बुध, शनि ह्या वारीं ज्ञान करावें. वैधृति, व्यतीपात; भद्रा, संक्रांति ह्या दिवसीं रोगमुक्त ज्ञान करावें, याविषयीं चंद्रबळ व ताराबळ असो अथवा नसो.

अभ्यंगास निषिद्ध काल—भद्रा; संक्रांति व्यतीपात, वैधृति; शुक्र, गुरु; रवि; भौव; हे वार; षष्ठीपासून १० तिथि श्राद्धदिवस प्रतिपदा द्वितीया ह्या दिवसीं कारणाबांचून अभ्यंग ज्ञान करूं नये. विवाहादि मंगल कार्य, आश्विन शुक्र; दशमी; संवत्सारांभ प्रतिपदा; दीपवालो हे अभ्यंग करण्याचे कारणदिवस होत. या दिवसीं निषिद्ध दिवस

असतां हि अभ्यंग करावा. बुधवार, शततारका, मघा यांचे ठायीं अभ्यंग करून स्त्रीने ज्ञान केले तर ती स्त्री पतीचा नाश करणारी होते. यानंतर याचा अपवाद सांगतो. सार्षपतेल, सुगंधितेल अथवा पुष्पांनी सुवासित केलेले तेल, दुसरे द्रव्य घालून मिश्र केलेले, कढबलेले अथवा गार्हच्या घृताने युक्त तेल, किंवा ब्राह्मणाचे पादरजाने युक्त केलेले तेल ह्या तेलाने निषिद्ध दिवसां हि अभ्यंग केला असतां दोष नाही. निम्न अभ्यंग कर्तव्य असतां दोष नाही. रविवारी तैलांत पुष्प टाकावे, गुरुवारी दूर्वा टाकानी, भौमवारी तैलांत मृत्तिका टाकावी, भृगुवारी गोमय टाकावे याप्रमाणे तैलामध्ये द्रव्य टाकून निषिद्ध दिवसां ते तेल लावून ज्ञान केले असतां ते सुखदायक होतें.

गृहारंभास मुहूर्त—वैशाख, फाल्गुन, पौष, श्रावण आणि मार्गशीर्ष या मासांत घर बांधण्यास आरंभ व प्रवेश आणि खांब उभा करणे हीं शुभ होत. ज्येष्ठ, कार्तिक व माघ हे मास गृहकर्माविषयी शुभ असे नारद सांगतो. तृणगृह सर्व मासांत बांधावे. मुख्य गृह पौषमासांत बांधू नये. हस्त, चित्रा, स्वाति, ध्रुवसंज्ञक, मृदुसंज्ञक, धनिष्ठा, शततारका, पुष्य, या नक्षत्रां; रिक्तातिथी, रविवार व मंगळवार हीं वर्ज्य करून गृहाचा आरंभ करावा व गृहांत प्रवेशाहे करावा. श्रवण, अभिनी, कुरसंज्ञक, अनुराधा, आश्लेषा, मूल, पुष्य, हस्त; मृग, रेवती, ध्रुवसंज्ञक या नक्षत्रां शिलान्यास, खात हीं करावीं. कौंठस्थान व अष्टमस्थान या स्थानी पापग्रह नसतां स्थिरलक्ष्मी गृहकृत्य करावे. बुधांनी धनिष्ठापासून पांच नक्षत्रां घराचा खांब पुरणे वर्ज्य करावे. वृषवास्तुचक्र—सूर्यनक्षत्रापासून दिवसनक्षत्रापावेतो नक्षत्रे मोमावीं, पाहिलीं सात नक्षत्रे अशुभ, आठव्यापासून अकरा नक्षत्रे शुभ, अवशिष्ट दहा तीं अशुभ याप्रमाणे वृषवास्तुचक्र पाहून ज्या दिवसां शुभ नक्षत्र असेल त्या दिवसां आरंभ करावा. अथवा चवथ्या नक्षत्रापासून, पंधराव्या नक्षत्रापासून आणि तेविसाव्या नक्षत्रापासून क्रमाने १।१।१ हीं नक्षत्रे गृहारंभ व प्रवेश याविषयी अशुभ होत. मुख्य गृहाचे पूर्वे दिशेपासून ज्ञानगृह, पाकगृह, शयनगृह, वस्त्रगृह, भोजनगृह, पशुगृह, भांडारगृह, देवगृह याप्रमाणे गृहे करावीं. ध्रुवमुखावळून उत्तरदिशा समजून प्राचीदिशा साधावी. कोण, मार्ग, घट, कुलालचक्रादियंत्र, कूप, अन्वद्वार, चिखल, स्तंभ, वृक्ष, देव यांचे समोर गृहद्वार दुरुष्ट होय; गृहाचे उंचीचे दुप्पटांने कोणादिकांचे अंतर असल्यास वेधदोष नाही. सूत्रन्यास, भित्तिचा आरंभ, शिलान्यास, आणि खांब पुरणे यांचा आरंभ आग्नेयी दिशेपासून करावा असे कश्यप सांगतो. एक्या घराला लावलेले लांकूड दुसऱ्या घराला लावू नये. नूतन घराला नूतन काष्ठेच घ्यावीं; व जिरांला जीर्ण घ्यावीं, तीं प्रशस्त होत. नवीस हातां हून अधिक गृह, चतुरद्वार, तृणगृह यागृहांविषयी बुद्धिमान पुरुषांने आयव्ययादिक गुणांचा विचार करू नये.

यानंतर गृहप्रवेश—गृहांत प्रवेश करावयाचा आख्या पूर्वी वास्तुशांति करणे ही मैत्रसंज्ञक, भुवसंज्ञक, क्षिप्रसंज्ञक, चरसंज्ञक, मूल या नक्षत्रीं करावी; तेणेंकरून घन, पुत्र प्राप्त होतात. वास्तुशांतीचा प्रयोग ग्रंथांतरी पाहावा. वास्तुशांति दिवसासच प्रशस्त; क्वचित्ग्रंथांत रात्रीं करण्याविषयीं सांगितलें आहे. गृहारंभास जीं मारु, नक्षत्रे इत्यादिक सांगितलीं आंजवर गृहप्रवेश शुभ होय. क्वचित्ग्रंथांत माघ, कार्तिक, ज्येष्ठ या मारतीं; मृदुसंज्ञक व भुवसंज्ञक या नक्षत्रीं गृहप्रवेश श्रेष्ठ असें सांगितलें आहे. क्षिप्र, चर या नक्षत्रीं मध्यम होय. तीक्ष्ण, उग्र आणि मिश्र या नक्षत्रीं निश्च होय. गृहप्रवेशास लग्नशुद्धि—ज्या लग्नीं प्रवेश करावयाचा त्या लग्नापासून तृतीय, एकादश व षष्ठ या स्थानीं पापग्रह शुभ होय; षष्ठ, अष्टम आणि द्वादश या स्थानीं शुभ ग्रह नसावे. चतुर्थ व अष्टम या स्थानीं कोणी ग्रह नसावा; जन्मलग्न व जन्मराशि यांपासून अष्टम लग्न नसावें. सूर्य नक्षत्रापासून पांच नक्षत्रे अशुभ होत, चवदाव्या नक्षत्रापासून आठ नक्षत्रे अशुभ, शेष नक्षत्रे प्रवेशाविषयीं शुभ होत. हें घटचक्र. याप्रमाणें वास्तु प्रकरण सांगितलें.

आतां इव्यसंपादन इत्यादिकांविषयीं गमन—श्रवण, धनिष्ठा, अश्विनी, पुष्य, रेवती, अनुराधा, मृग, हस्त, आणि पुनर्वसु या नक्षत्रीं; गोचरीं शुभफलप्रदग्रहांचे वारी प्रयाण करावें. अभिजित् नक्षत्र व अभिजिन्मुहूर्त दक्षिण दिशेवांचून प्रयाणाविषयीं शुभ होत. मघा, चित्रा, स्वाती, विशाखा, आश्लेषा, भरणी, आर्द्रा, कृत्तिका, पूर्वाभाद्रपदा, आणि जन्मनक्षत्र हीं नक्षत्रे प्रयाणाविषयीं अशुभ होत. रिक्तातिथि, पर्व, षष्ठी, अष्टमी, द्वादशी ह्या वर्ज्य कराव्या. कृत्तिका, भरणी, तीन पूर्वा, मघा या नक्षत्रांच्या पाहिल्या घटिका क्रमेंकरून ११।७।१६।११ व ज्येष्ठा, आश्लेषा, विशाखा आणि स्वाती या नक्षत्रांच्या चवदा चवदा घटिका टाकाव्या. भृगूच्या मतीं स्वाती आणि मघा हीं नक्षत्रे सर्व; स्वाती, मघा, व कृत्तिका यांचें पूर्वार्ध; व चित्रा, आश्लेषा आणि भरणी त्यांचें उत्तरार्ध टाकावें.

वारशूल—पूर्वादिशेत प्रयाणीं सोम, शनि हे वार; दक्षिण दिशेत गुरुवार; पश्चिमेत रवि, शुक्र; उत्तर दिशेत बुध व मंगळ हे वार वर्ज्य करावे. पूर्वादि दिशांचे ठायीं क्रमेंकरून मेषादिक चंद्रराशि त्रिवार गणून चंद्र संमुख व दक्षिण प्रदेशीं असतां शुभ होय. पृष्ठभागीं व वामभागीं असतां निश्च होय. ज्या दिशेत शुक्र उदय पावतो त्या दिशेत प्रयाण करूं नये. संमुख बुध असतां हि प्रयाण वर्ज्य करावें. पृष्ठभागीं व वामभागीं बुध शुभ होय. चंद्र रेवती नक्षत्रीं व मेष राशीस असतां शुक्र अंध होतो

प्रस्तव शुक्राच्या संमुख गमन शुभ होय.

प्रयाणास लग्नशुद्धि—प्रयाण ज्या लग्नी करावयाचें त्या लग्नापासून १।१।७।१०।१।९ या स्थानींचे शुभ ग्रह इष्ट होत. ३।१।१।६।१० या स्थानींचे पापग्रह शुभ होत. दशमशानि अशुभ. सप्तम शुक्र अनिष्ट होय. ६।८।१२।१ या स्थानींचा चंद्र अशुभ. यात्रालग्नस्वामी ७।६।८।१२ या स्थानींचा अशुभ होय. केंद्री वक्रोग्रह, लग्नी वक्रिग्रहाचा वर्ग, वक्रिग्रहाचा वार, कुंभलग्न, कुंभलग्नाचा नवांश हे प्रयाणलग्नी प्रयत्नानें वर्ज्य करावेत. मीनलग्नी किंवा मीनांशीं प्रयाण करणारास मार्ग अति दुःखद होतो. आपल्या लग्नापासून किंवा जन्मराशीपासून सहावा राशि अथवा त्याचा स्वामी हे मृत्यु देणारे होत. शत्रुगृही किंवा त्याच्या अंशीं त्याची दृष्टि असतां प्रयाण शुभ नाही. अस्तंगतराशि व जन्मराशि लग्नी शुभ नाही. वर्गोत्तमी व वर्गोत्तमयुक्त लग्नी चंद्र असेल तर जय प्राप्त होतो.

शुक्लपक्षापासून तिथि, वार व नक्षत्रें मोजून व त्यांचा योग करून ७।८।३ या अंकांनी भागून सर्वांचा शेष जर अंक राहिल तर तो सार्वकाम देणारा होतो. तिलाहे ठिकाणी शून्य शेष राहिले तर कर्मकरून दुःख, दारिद्र्य व मृत्यु देणारे होत. एका दिवसामध्ये व एका नगरांतून दुसऱ्या नगरांत प्रयाण करील तर प्रवेशकालाची शुद्धि पहावी, प्रयाणकालाची शुद्धि पाहू नये. जयप्राप्तीची इच्छा करणारा यानें प्रयाण दिवसापासून नवव्या वारी, नवव्या तिथीस आणि नवव्या नक्षत्रीं स्वगृहीं प्रवेश करूं नये, व प्रवेश केल्या दिवसापासून नवव्या वारी नवव्या तिथीस व नवव्या नक्षत्रीं गमन करूं नये. कुंभ व मीन यांचा चंद्र असतां दक्षिण दिशेस गमन, माचा व बाज विणणें, घर शिवणें, तृण व काष्ठ यांचा संग्रह हीं करूं नयेत. अधि, सुहृन्, ब्राह्मण, स्त्री, यांची तृप्ति करून आपण तृप्त होतसाता प्रयाण करावें. आपली किंवा परस्त्री, अथवा पुरुष यांस ताडण करून व ब्राह्मणांज्या अवमान करून प्रयाण करील अथवा रोगग्रस्त, क्षुधित होतसाता प्रयाण करील तर त्यास मरण प्राप्त होईल.

प्रयाणां नियम—क्रोध, इमश्रुकर्म, वाति, तैलाभ्यंग, अश्रुपात, मध, मांस, गुड, तैल, श्वेततिलकावांचून अन्य तिलक, श्वेतभिल्ल वस्त्र, हे पदार्थ प्रयाणकालीं वर्ज्य करावे. प्रयाणदिवसाच्या पूर्वी क्षौर पांच दिवस, दूध तीन दिवस, मैथुन सात रात्रि, मध, तेल व घृत हीं प्रयाणदिवसीं वर्ज्य करावीं. संभोगदानापर्यंत स्त्रियेचें रजस्वलात्व व तसेच दुष्ट शकून प्रयाणीस वर्ज्य करावे. सुमहूर्ती स्वतां गमनाचा संभव नसेल तर प्रस्थान करावें. प्रस्थान क्षणजे इष्ट वस्तु नेऊन ठेवणें तें. ब्राह्मणानें यज्ञोपवीत, क्षत्रियानें आयुध, वैश्यां

मध, शुक्रानें फल, शमनमूहूर्ती दुसऱ्या गृही नेऊन ठेवावें. सुवर्ण, धान्य, वस्त्र इत्यादिक सर्वांनीं ठेवावीं. प्रस्थान केल्यानंतर राजानें १० दिवस, अन्यानें पांच दिवस घरीं राहवें, याहून अधिक दिवस राहूं नये. स्वतां प्रयाण करणें जाहून यज्ञोपवीतादिक वस्तु नेऊन ठेवणें याचें अर्थे फल जाणावें.

प्रस्थानाविषयीं देशमर्यादा—आपल्या गृहापासून दुसऱ्याचे घरीं जावें असें गर्गाचें मत, सीमा उल्लंघन झणजे दुसऱ्या सीमेंत जावें असें भृगूचें मत, स्वबलेंकरून टाकलेला वाण नितका दूर बाईल तावन्मात्र जावें असें मरद्वाजाचें मत, नगरापासून बाहेर जावें असें बसिष्ठाचें मत. प्रस्थान केलें असतांही महादोषयुक्त दिवस असेल तर त्या दिवसीं प्रयाण करूं नये. ज्या दिवसीं प्रस्थान करावयाचें त्या दिवसींही क्रोधादिक वर्ध् करारवें. शुभ शकुन व दुष्ट शकुन यांचा विस्तार ग्रंथांतरीं पाहाना याप्रमाणें यात्रा-प्रकरण सांगितलें.

आतां गोचरप्रकरण.—“जन्मराशीपासून पापग्रह व चंद्र १।६।१० या स्थानीं शुभ. चंद्र ७।१ वा स्थानीं शुभ. शुक्रपर्क्षां चंद्र १।९।५ या स्थानीं शुभ होय. बुध १।४।६। ८।१० वा स्थानीं शुभ. गुरु २।५।९।७ या स्थानीं शुभ. शुक्र १।२।१।४।५।९।८।१२ या स्थानीं शुभ. एकादशस्थानीं सर्व ग्रह शुभ होत. आपल्या जन्मनक्षत्रापासून दिवस-नक्षत्रापावेतो मिरावृत्तीनें नक्षत्रें मोजावीं. नंतर नऊ नऊ नक्षत्रांत जन्म, संपत्, विपत्, श्लेष, प्रसर, साधिका, वध, मैत्र, आणि अतिमैत्र ह्या संज्ञा होतात. क्रमेकरून सूर्यादिक ग्रहांचें बल पहावें. राजदर्शनास रविवल, सर्व कृत्वांस चंद्रबल, युद्धाविषयीं भौमबल, शास्त्राभ्यास करण्यास बुधबळ, विवाहाविषयीं गुरुबळ, प्रयाणाविषयीं शुक्रबळ आणि भेद्रदीक्षेविषयीं शनिबळ याप्रमाणें विशेषेंकरून त्या त्या ग्रहांचें बळ पाहून तें तें कार्य करावें.” अनिष्ट जे सूर्यादिक ग्रह यांचीं दानें द्वितीय परिच्छेदाच्या शेवटीं सांगितली आहेत.

पल्लीपतन—पुरुषांचें उजवें आंग आणि हनुवटीबांचून उदर, नाभि, हृदय, मस्तक यांचें ठायीं पल्लीपतन झालें असतां शुभ होय. हेंच स्त्राचे डावे आंगीं शुभ होय. सरठाचे आरोहणी हेंच फळ जाणावें. पल्लीचे आरोहणी व सरठाचे पतनीं विपरीत फळ जाणावें. पल्लीसरठाचे आरोहणपतनीं शुभाशुभ फळ नाहीं असें कोणी आचार्य झणतात. पल्लीसरठाचे पतनारोहणीं वस्त्रसहित ज्ञान करून शांति करावी.

यानंतर पल्लीसरठांचीं शांति—पाल आणि सरठ यांचा स्पर्श झाला असतां ज्ञान करून पंचमन्य प्राधान करून आप्याबलोकन करून अशुभ नाशाकरितां किंवा शुभवृद्धी

प्रार्थनां शांति करावी. पालीची किंवा सरठाची सुवर्णप्रतिमा करून या प्रतिमेस रत्न-वस्त्रानें वेष्टित करून पूजा करावी. नंतर कलशाचे ठायीं दह्याची पूजा करून मृत्युंजय, भेंत्रंकरून खादिरसमिधांचा अष्टोत्तर शत, व्याहृतिमंत्रांनीं तिळांचा अष्टोत्तर सहस्र किंवा शंभर होम करून दिवष्टरुतापासून अभिषेकापर्यंत कर्म केल्यानंतर सुवर्ण, वस्त्र व तिळ यांचीं दानें करावीं.

यानंतर घरांत कपोतपक्ष्याचा प्रवेश, मधमाशांचें पोहळ, वाहळ वाढणें, विंगळा पक्ष्याचा शब्द, काकवैरुत, ग्राह्य व आरण्यक इत्यादि मृगपक्षी यांचा विकार, हीं असतां शांति करावी. “देवाःकपोत०” ह्या पांच ऋचांचे सूक्ताचा सहस्र किंवा शंभर जप करून “यतइंद्रमयामहे० स्वस्तिदाविशः० स्वंबक०” ह्या मंत्रांनीं होम करून व्याहृतिमंत्रांनीं १०८ तिलहोम करावा. अथवा पांच ब्राह्मणांकडून क्रमानें “देवाः कपोत०” हें सूक्त, “सुदेवोअसि०” ही एक ऋचा, “कनिक्रदन्०” हें शाकुंतसूक्त आणि “मयो-ब्रह्मणेनमो०” हा मंत्र यांचा सहस्रादि संख्येनें जप करून उपनिषदें पठण करून व्याहृतिमंत्रांनीं तिळांचा होम करावा.

संकल्प, अभिस्थापन एवंपर्यंत कर्म झाल्यानंतर कलशावर सुवर्णमय इंद्र व ओकपाल यांची पूजा करून अग्नीवर चंद्र शिजवून पळसाच्या समिधा, चंद्र, आज्य आणि त्रीहि वा द्रव्यांचा प्रत्येकाचा १००८, किंवा शंभर “यतइंद्र०” ह्या मंत्रानें होम करून ओकपाल देवतांच्या उद्देशानें त्याच द्रव्यांच्या दहा दहा आहुतींनीं होम करून कुंभाच्या अग्रभागीं लोकपालांचें बलिप्रदान, व वायसांत बलिदान “ऐंद्रवाहण०” ह्या मंत्रानें करून अभिषेक झाल्यानंतर यजमानानें शंभर किंवा दाहा ब्राह्मणांला भोजन घालावें.

घिरट, उखळ, मुसळ, पाटा, वरवंटा, आसन, पाट इत्यादिक, माचा इत्यादिक आकस्मात् फुटेल तर घृतांत भिजवलेल्या अशा मधुयुक्त अश्वत्थसमिधांचा प्रजापतीच्या उद्देशानें होम करून १००८ गायत्रीमंत्रानें अभिमंत्रण करावें.

नानाप्रकारचे केतु, भूकंप आणि आंतरिक्ष हे उत्पात असतां शांति—संकल्पग्रीद करून कलशावर इंद्र व दह्र यांची पूजा करून “यतइंद्र०, स्वस्तिदाविशस्वसतीः०, अघोरे भ्ययोध०” ह्या मंत्रंकरून समिधा, आज्य, चंद्र, त्रीहि, आणि तिळ या प्रत्येक द्रव्याचा १०८ याप्रमाणे होम करून व्याहृतिमंत्रांनीं तिळांचा कोटि, लक्ष, दहा सहस्र अथवा त्याचा चतुर्थांश होम, द्रव्यशक्ति असेल याप्रमाणें व जसें लहान भोठें निमित्त असेल तदनुसार सप्तरात्र, त्रिरात्र अथवा एकरात्र करून सूर्य, गणेश, क्षेत्रपाल, दुर्गा यांच्या मंत्रा-चा जप करून पापसादिकानें ब्राह्मणभोजन करावें. अथवा चंडीसप्तशतीचा जप करावा.

किंवा रुद्राचा जप अथवा अभिषेक करावा. किंवा अश्वस्थाला प्रदक्षिणा, शिवपूजा, गार्गीनो-
हणांची पूजा इत्यादिक करावी. याप्रमाणे नानाविध उत्पातांच्या सामान्यशांति
सांगितल्या.

यानंतर गायत्रीपुरश्चरणाचा प्रयोग—देशकालांचा उच्चार करून संकल्प करावा. तो
असा—“करिष्यमाण गायत्रीपुरश्चरणे ऽधिकारसिद्धयर्थं कृच्छ्रत्रयमुक्तप्रत्याम्नायेनाहमाच
रिष्ये” असा संकल्प करून होमादिकाचा जो प्रत्याम्नायविधि तेणेंकरून तितके कृच्छ्र
आचरण करून “अमुकशर्मणो ममगायत्रीपुरश्चरणेऽनेन कृच्छ्रत्रयानुष्ठानेनाधिकारसिद्धिर
स्तु” असें ब्राह्मणांप्रत बोलावे. नंतर ब्राह्मणांनीं “अधिकारसिद्धिरस्तु” असें बोलावे.
तदनंतर, करिष्यमाणपुरश्चरणांगत्वेन विहितं गायत्रीजपादि करिष्ये” असा संकल्प करून
आपण किंवा ब्राह्मणद्वारा जप करावा. तो असा—प्रणव व व्याहृते यांहीं युक्त गायत्रीचा
दहा सहस्र जप करून “आपोहिष्ठा०” हें सूक्त, “ऐतोर्विद्रं०” ह्या तीन ऋचा, “ऋतं
च०” हें सूक्त, “स्वस्तिनो०” इत्यादिक स्तुतिमती ऋचा, आणि “स्वादिष्टया०”
इत्यादिक पावमानी ऋचा ह्या सर्व ऋचांचा, प्रत्येक ऋचेचा दहा वेळ याप्रमाणें आपण
किंवा दुसऱ्याकडून जप करून “तत्सवितुर्वरेण्यस्याचार्यमृषिर्विश्वामित्रं तर्पयामि ॥ गा-
यत्रीछंदस्तर्प० सवितारंदेवतां०” याप्रमाणें तर्पण करून रुद्रास नमस्कार करून “कटु
शाय०” इत्यादिक रुद्रसूक्तांचा जप करावा.

तदनंतर दुसऱ्या दिवसीं देशकालांचा उच्चार करून “मम सकल पापक्षयद्वारा श्रीप-
रमेश्वरप्रसिद्धं चतुर्विंशतिलक्षात्मक गायत्रीपुरश्चरणं स्वयं विप्रद्वारावा करिष्ये, तदंगत्वेन
स्वस्तिवाचनं मातृकापूजनं नांदीश्राद्धं (ब्राह्मणद्वारा जप कर्तव्य असतां) जपकर्तृवरणं च
करिष्ये” असा संकल्प करावा. ऋत्वेक यानें संकल्प करणें असतां “अमुकशर्मणो यज-
मानस्य सकलपापक्षयेत्यादि० यजमानानुज्ञया करिष्ये” य प्रमाणें पूर्वादि संकल्प जाणावा.
नांदीश्राद्धाच्या शेवटीं “सविता प्रीयतां” असें ह्मणावे. गायत्रीपुरश्चरणे जपकर्तारं त्वां
वृणे” असें वाक्य ह्मणून एकेका ब्राह्मणास वरावे, व वस्त्रादिकांनीं त्यांची पूजा करावी.

यानंतर नित्यकर्म— एकेक ब्राह्मण अथवा स्वतां आपण कुशासनादिकावर बसून
हातांत दर्भपविल धारण केलें होस्ताता आचमन प्राणायाम करून देवतांची प्रार्थना करा-
वी. प्रार्थनेचा मंत्र — “सूर्यःसोमोयमःकालःसंध्येभूतान्यहःक्षपा ॥ पवमानोदिकृपातिर्भूरा-
काशंसेचरामराः ॥ ब्रह्मशासनमास्थायकल्पध्वमिहसंनिधि” याप्रमाणें प्रार्थना केल्यानंतर
देशकालांचा उच्चार करून प्रयत्नीं कर्तव्य जपाचा संकल्प करून “गुरवेणमः गणपतये०
दुर्गायै० मातृभ्यो०” याप्रमाणें नमस्कार करून तीन प्राणायाम करून “ तत्सवितुर्वरि-
ति-

गायत्र्याविश्वामित्रऋषिः ॥ सवितादेवता ॥ गायत्रीछंदः ॥ जपेवि० विश्वामित्रऋषये नमः
शिरसि ॥ गायत्रीछंदसे नमो मुखे ॥ सवितृदेवतायै नमो हृदि ॥ असा न्यास करून
“तत्सवितुर्वरेण्यं बर्णो देवस्य धियो नमोऽस्य ॥” धीमन्नामिकाभ्यां
विमोचो नः कनेष्टिकाभ्यां० प्रचोदयात् करतलकरपृष्ठाभ्यां०” याप्रमाणे करन्यास करून
असाच हृदयादि सहा अंगांचेठायी न्यास करावा. नंतर पूर्वी सांगितल्याप्रमाणे संस्कार
केलेली जपमाला पात्रामध्ये ठेवून प्रोक्षण करून मालेची प्रार्थना करावी. प्रार्थनेचा
मंत्र-“ओं महामाये महामाले सर्वशक्तिस्वरूपिणि ॥ चतुर्वर्गस्त्वपिन्यस्तस्तस्मान्मां सिद्धिदा
भव” अशी प्रार्थना करून “ओं अविघ्नं कुरुमालेत्वं०” ह्या मंत्राने ती हार्ती घेऊन
मंत्रदेवतासवितेचे ध्यान करीत होत्ताता हृदयाचेठायी माला धारण करून मंत्रार्थाचे
स्मरण करीत मध्येदिनावधिपर्यंत जप करावा. अतिवरा असेल तर साडेतीन प्रहरां-
पर्यंत जप करावा. जपाच्या अंती पुनः प्रणव ह्मणून “त्वं माले सर्वदेवानां प्रीतिदा
शुभदा भव ॥ शिवं कुरुष्व मे भद्रे यशोवीर्यच सर्वदा” या मंत्राने माला मस्तकावर
ठेवून तीन प्राणायाम करून तीन न्यास करून जप ईश्वरास अर्पण करावा. प्रसही जप
समानसंख्यच करावा, अधिक उणा करूं नये. याप्रमाणे पुरश्चरणाची समाप्ति झाली असतां
होम करावा. होमाचा विधि सांगतो-“पुरश्चरणसांगतासित्ख्यर्षं होमविधिं करिष्ये” असा
संकल्प करून अग्नीची स्थापना करून पीठावर सूर्यादि नवग्रहांच्या पूजेपासून कलशस्था-
पनपर्यंत कर्म केल्यानंतर अन्वाधान करावे. ते असे-“चक्षुषी आज्येन” इतकें ह्यटल्यानंतर
ग्रहपीठदेवत चे अन्वाधान अर्कादिसमिच्चर्वाज्याहुतीनीं करून प्रधान अन्वाधान करावे.
ते असे-“प्रधानदेवतां सवितारं चतुर्विंशतिसहस्रतिलाहुतिभिस्त्रिसहस्रसंख्याकाभिः पाय
साहुतिभिर्मृत्तमिश्रतिलाहुतिभिर्दूर्वाहुतिभिः क्षीरद्रुमसामिदाहुतिभिश्च शोषेण स्विष्टकृतमिस्यादि
याप्रमाणे अन्वाधान करावे. चरु, पायस, आणि तिल यांसहवर्तमान आज्याचे
पश्र्भिकरणादिक करावे. आज्यभागांत कर्म शाल्यानंतर, “इदंहवनीयद्रव्यं अन्वा-
धानोक्तदेवताभ्यः अस्तु नमम” असा यजमानाने त्याग करावा. होमाचेठायीं
सप्रणवव्याहृतिरहित, व स्वाहाकारपर्यंत गायत्री ह्मणावी. तीन दूर्वांची एक आहुति
दावी. दूर्वा व समिधा हीं द्रव्ये दहीं, मध आणि आज्य यांत भिजवावी. स्विष्टकृतां-
पासून बलिदानापर्यंत कर्म केल्यानंतर, “समुद्रज्येष्टा०” इत्यादि मंत्रांनी यजमानावर
अभिषेक करावा. प्रत्येक लक्षसंख्याक जपास तीन निष्क सुवर्ण, अथवा टांड निष्क
सुवर्ण, किंवा यथाशक्ति दक्षिणा द्यावी होम केल्यानंतर उदकामध्ये सविता देवतेची
पूजा करून होमसंख्येच्या दशांशिकरून गायत्रीमंत्राच्या अंती “सवितारं तर्पयामि”

असें ह्मणून तर्पण करावें. तर्पणाच्या दशांशें करून गायत्रीमंत्राच्या अंती "आश्वानम-
भिषिचामिनमः" असें ह्मणून आपल्या मरतकावर अभिषेक करावा. होम, तर्पण,
अभिषेक यामध्ये जें करण्यात असंभव असेल तत्स्थानी त्याच्या त्याच्या द्विगुण जप
करावा. अभिषेकसंख्येच्या दशांशें करून अथवा अधिक ब्राह्मणभोजन करावें. "पुर-
श्चरणं पूर्णमस्तु" असें ब्राह्मणाकडून बोलवून कर्म ईश्वरास अर्पण करावें. प्रतिदिनी
"यजाग्रतो०" ह्या शिवसंकरूपमंत्राचे तीन पाठ करावे. कर्त्यानें ब्राह्मणांनहवर्तमान
हविष्यभोजन, सखवाक्, खालीं निद्रा करणे, परिग्रहीत भूमीच्या बाहेर संचार न करणे
असें रहावें. याप्रमाणें अनंतदेवाच्या ग्रंथांत सांगितल्या रीतीनें चोवीसलक्षपुरश्च-
णाचा प्रयोग सांगितला.

"ऋग्विधानग्रंथीं तर मध्याह्नीं मित भोजन करणारा व मनी होत्साता त्रिकाल ज्ञान
देवपूजा करून बुद्धिमान् अशा पुढघानें मंत्राचा तीन लक्ष जप करावा" असें तीन लक्ष
जपाचें पुरश्चरण सांगितलें आहे. जपाच्या शतांशानें तीन सहस्र होम करावा. "कलि-
युगीं चतुर्गुणित सांगितलें" या पक्षीं बारा लक्ष जप करावा, व बारा सहस्र होम करावा.
इत्यादिक जाणावें. विष्णुशयनमासांत ह्मणजे आपाढ शुक्ल एकादशीपासून कार्तिक शुक्ल
एकादशीपर्यंत पुरश्चरण करूं नये. तीर्थादिस्थानीं स्वरित सिद्धि प्राप्त होते. बिन्ववृक्षाच्या
आश्रयानें जप केला असतां एका दिवसानें सिद्धि होते असी सर्वत्र मंत्रप्रक्रिया जाणावी.
याप्रमाणें गादत्रिमंत्राचें पुरश्चरण सांगितलें.

यानंतर पुतकमलाकरांतील अश्वत्याचे उपनयनाचा प्रयोग—तें अश्वत्योपनयन
तीन वर्णानीं (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य यांनीं) कर्मकरून, वृक्ष लाविल्या दिवसापासून
आठव्या, अकराव्या व बाराव्या वर्षीं उपनयनास उक्त जो मुहूर्त यावर पूर्वाण्हकार्त्वी
करावें शुद्धानें स्थापन केलेल्या अश्वत्याची, पुराणोक्त मंत्रांनीं आरामप्रतिष्ठा करावी,
उपनयन करूं नये.

यानंतर प्रयोग सांगतो—कर्त्यानें देशकालांचा उच्चार करून "सर्वपापक्षयकुल
कोटिसमुद्धरणपूर्वकविष्णुसायुज्यप्राप्तिकामोऽश्वत्योपनयनं करिष्ये" असा संकल्प करून
नांदीश्राद्धांत कर्म केल्यानंतर आचार्याला बरावें. नंतर आचार्यानें पंचामूर्ते, शुद्धोदकें
आणि सर्वौषधियुक्त उदकें यांहींकरून अश्वत्यास स्नान घालून पिष्टातकानें (सुवासिक
चूर्णविशेष नुका ३०) अश्वत्यास सुशोभित करून अश्वत्याच्या पूर्वादिशेस स्थंडिल्यावर
अग्नि स्थापन करून अन्वाधान करावें. तें असें—'अग्निं वायुं सूर्यं त्रिराशिं पवमानं
प्रजापतिं द्विरोषधीर्वनस्पतिं पिप्पलं प्रजापतिंच पलाशसमिञ्चर्वाज्यैः प्रत्येकमेकैकया हुया

विधिगोत्यादि.” अष्टेवाळीस मुठी तांदुळ मंत्रराहित घेऊन मंत्रराहित प्रोक्षण करून चंद्रप्र-
पणापासून आश्रयभागांत कर्म करवानंतर ‘पुवंवस्त्राणि०’ ह्या मंत्रानें दोन वस्त्रे अश्वत्यास
सर्भार वेष्टित करून ‘यज्ञोपवीतं ०’ ह्या मंत्रानें यज्ञोपवीत देऊन ‘प्रावेपा०’ ह्या मंत्रा
नें मेखलेचें तीन वेळ वेष्टन करून आजिन व दंड हे मंत्रविरहित द्यावे. नंतर ‘अश्वत्ये०’
ह्या ऋचेनें गंधपुण्यांनीं पूजा करून ‘देवस्वत्वा०’ हा मंत्र लटव्यानंतर ‘हस्तंग्रह-
म्यश्वत्य’ असें वाक्य लणून अश्वत्याला स्पर्श करून प्रणव व व्याहृति यांहीयुक्त गायत्री-
मंत्राचा तीन वेळ जप करावा. ‘अश्वत्येवोनेपदनं०’ ह्या सूक्तानें व व्याहृतिमंत्रांनीं
‘अश्वत्यंस्वापयामि’ असें वाक्य लणून सुवर्णाच्या काडीनें स्पर्श करून आज्य, पळ-
साच्या सविधा आणि चरु या द्रव्यांचा प्रत्येकाच्या बारा आहुति याप्रमाणें बारा मंत्रांनीं
होम करावा. होमाचे मंत्र—‘भूःस्वा० अन्नप० भुवःस्वा० वायव० स्वःस्वाहा सूर्याये० अ-
न्नआयुंषि० अग्निऋषिः० अग्नेपवस्व० ह्या तीन ऋचांनीं अन्नयेपवमानायेदं० प्रजापते०
प्रजापतय० ओपधयः संव० अश्वत्येवो० ओषधीम्पइदं० वनस्पतेशत० वनस्पतय० द्वासु
पर्णा९ पिप्पलाये० समस्तव्याहृतिभिः प्रजापतयइ०’ याप्रमाणें होम करून स्विष्टकृ-
त् इत्यादि होमशेष समाप्त करून ‘अश्वत्येवो’ ह्या मंत्रानें गंध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, फल, तांबूळ
इत्यादि उपचारांनीं पूजा करून अश्वत्याला स्पर्श करून आचार्याला गोप्रदान व इतर
ब्राह्मणांला दक्षिणा देऊन अश्वत्याला समर्पण केलेलीं वस्त्रे इत्यादिक आचार्यांस देऊन
आठ ब्राह्मणांला भोजन घालावे. याप्रमाणें प्रयोग सांगितला.

पुत्रराहित अशा पुरुषांनें अथवा स्त्रियेनें वट, वृक्ष, आंबा इत्यादि वृक्षांत पुत्र असें
मानून त्यांचा प्रतिग्रह करावा. त्याचा विधि—देशकालांचा उच्चार करून ‘महापापक्षय
कुलत्रयसमुद्धारण प्रजापतिपुरगमन निरपस्थपिवुद्धार मधुवारातृभिसिद्धयर्थं सत्त्रत्वसिद्धयर्थं
अमुकवृक्षं प्रतिगृहीष्ये’ असा संकल्प करून उपोषण करून रात्री आठ ब्राह्मणांला बला-
नूतन श्रद्धेची पूजा करून जागरण अथवा भूमिशयन करून प्रातःकाळीं वृक्षाची पूजा
करून याच्या छायेखालीं ब्राह्मणांला भोजन घालून ‘पुण्याहं०’ असे वाक्य ब्राह्मणांची प्रार्थना
करावी. प्रार्थनेचा मंत्र—‘अपुत्रोभगवंतोव पुत्रप्रतिकर्तितर्क ॥ गृहीष्यामिममानुजां कतुमर्हः
सत्तमाः’ ह्या मंत्रानें प्रार्थना करून तांब्याचे पात्रांत, बीजरूप पंचरत्नें ज्यांत आहेत
असें पांच सुवर्णाची फळे ठेवून लोकपालांस बलि द्यावे.

नंतर दुसऱ्या दिवसीं तिल, आज्य, आणि चरु यांचा आठशें होम वनस्पतिमंत्रानें
करून जातकर्मापासून विवाहापर्यंत संस्कार करून अभिषेक केलेला असा कर्ता यानें
ःप्यांजलिं घेऊन प्रार्थना करावी. प्रार्थनेचे मंत्र—येशास्त्रिनःशिश्ररिणाशिरसांबिभू-

षायेनेदनादिषुवनेषुकृतप्रतिष्ठाः ॥ येकामदाःसुरनगोरगकिनराणातेमेनतस्यदुरितातेहरामे
 'पुंतु ॥ एतेद्विजाविधिवदत्रहुतोहुताशःपश्यस्यसौचहिमदीधितिरंतरस्यः ॥ त्वंवृक्षपुत्रारिकल्प्य
 मयावृतासि कार्ये सदैव भवता मम पुत्रकार्ये' असी प्रार्थना करून 'अंगादंगात्सं०'
 ष्या मंत्रानें वृक्षाच्या स्पर्श करून ब्राह्मला दक्षिणा देऊन विसर्जन करावें. याप्रमाणें वटा-
 दितरूचा पुत्रविधि सांगितला.

आतां सकलकर्माची साधारण परिभाषा—सर्व पाकयज्ञामध्ये ब्रह्मा कृताकृत आहे. पात्रासादन, आज्यादि द्रव्याचें श्रवण इत्यादि हीं ऐच्छिक होत. सुवादि पात्रांचें समार्जन इध्मांचें रज्जुग्रहण, पूर्णपात्र, आज्योत्पवन हीं नियम होत. तंडुळांचे ठायीं व्रीहांचा अवघात कृताकृत आहे. द्रवीभूत जें घृत त्याचा विलापनविधिहि तसाच आहे. प्रतिपदेक जो आज्यहोम त्यामध्ये परिस्तरण कृताकृत आहे. अनदिष्ट जो आज्यहोम त्यामध्ये परिस्तरण नियम आहे. आज्यभागसहित व आज्यभागरहित जीं कर्म त्यांच्या तंत्रप्रयोगा मध्ये आज्यभाग देऊं नयेत हेच योग्य होय. कारण, सर्वत्र ठिकाणीं आज्यभागांचा विकल्प आहे. अनेक पाकयज्ञांचें एककालीं अनुष्ठान कर्तव्य असतां समानतंत्र करावें असें आहे. यावरून स्विष्टकृत इत्यादिक एकच करावें. जेथें द्रव्य सांगितलें नाहीं तेथें आज्य ग्रहण करावें. मंत्र हा कर्माचें साधन असल्यामुळे मंत्राच्या अंतीं कर्म करावें. गृह्यकर्मांमध्ये कर्माची अवृत्ति असेल तर मंत्राचीहि अवृत्ति करावी. समंत्रक होमा- मध्ये मंत्रविरहित निर्वाप करावा. नाममंत्रानें होम असतां नाममंत्रानेंच निर्वापादिक करावें. जेथें मंत्रानें अथवा नाममंत्रानें होम सांगितला नाहीं तेथें नाममंत्रानेंच होम करावा. समंत्रक होमामध्ये बरोबरच अनेक दैवत्य चरूचें श्रवण असतांहि विभाग व अभिमर्श करूं नये. अनुक हस्तानें कर्म करावें असें जेथें सांगितलें नसेल तेथें दक्षिण हस्त जाणावा. जेथें दिशा सांगितली नसेल तेथें पूर्व, उत्तर, अथवा ईशानी दिशा घ्याव्या. जेथें उभा राहून किंवा बसून इत्यादिक सांगितलें नसेल तेथें उसन कर्म करावें. जेथें कर्ता सांगितला नसेल तेथें यजमान कर्ता असें जाणवें. आवि-
 ज्ञात आहेत स्वर ज्याचे तो व सूत्रोक्त हे मंत्र सरळ लघावे. होमामध्ये मंत्रोच्चार करणें तो प्रणव आहे पूर्वी ज्यास व स्वाहाकार आहे अंतीं ज्यास असा मंत्र लघावा. विप्र-
 दिकांनीं दोन दर्भांचें पवित्रक ग्रंथीयुक्त किंवा ग्रंथिरहित धारण करावें.

आहुतीचें प्रमाण—प्रत्येक आहुतीस आज्यादि पातळ द्रव्य एक कर्ष (तो-
 ळ्या) घ्यावें. लाढ्या मुष्टिपरिमित, चरू प्रासपरिमित, कंदाचा अष्टमांश, तिळ,
 पीठ आणि धान्यादिक यांची आहुति मृगीमुद्राप्रमाण घ्यावी. याप्रमाणें आहुतीचें

माण जाणवें.

“रौप्यपात्र किंवा तांब्याचें पात्र अथवा मृत्तिकापात्र यांत अग्नि घेऊन त्या पात्रावृत्त तांब्याच्या पात्राचें आच्छादन घालून तो अग्नि आणावा. श्रोत्रियाचे घरांतून घ्यावा तो उत्तम, आपल्या गृहादिकांतून घ्यावा तो मध्यम होय.” अग्नीत इंधनें उदकांनि प्रोक्षित न केलेलीं घालूं नयेत. सार्वकाल उपवीती, शिलाबंधन केलेला असें असावें. ‘सदा’ असें जें पद यानें शिलाबंधन हें कर्माचें अंग असून पुरुषार्थपणा आहे असें सूचित केलें. यावरून असें सिद्ध होतें कीं, कर्मकाली शिलाबंधनादिक न केलें असतां दोन प्रायश्चित्ते प्राप्त होतात. इतर काली एकच प्राप्त होतें. दहा प्रकारचे दर्भ सांगितले. वट, पिंपरी, बेल, वैकंकत, चंदन, देवदारु, आणि सरल ह्या वृक्षांच्याहि समिधा क्वचित् सांगितल्या आहेत. “प्रथम कल्पानें लणजे मुख्य कल्पानें कर्म काण्यास समर्थ असून जो अनुकल्पानें गौणकल्पानें कर्म करितो त्यास त्या कृतकर्माचें फल परलोकीं मिळत नाहीं अशी श्रुति व स्मृति आहे. अधिक किंवा उणे ज्यास जें आपल्या गृह्यसूत्रांत कर्म सांगितलेलें तें तितकें त्यानें यथाशास्त्र केलें असतां सर्व शास्त्रार्थ केल्यासारखा होतो.”

कर्माच्या विशेषेकरून अग्नीचीं नामें—“गर्भधान संस्कारामध्यें जो अग्नि स्थापन करितात तो महत्तनामक जाणावा. पुंमवनाचे ठायीं जो अग्नि तो पवमानसंज्ञक, सीमें-तोलयनीं मंगलनामा, जातकर्मसंस्कारी प्रचलनामक, नामसंस्कारी पार्यवसंज्ञक, अन्नप्राशनीं शुचिनामा, चौलसंस्कारी सभ्य, व्रत लणजे मंजी इत्यादिव्रतीं समुद्रवनामा, गोदान इत्यादिकांचे ठायीं सूर्यनामा, विवाहसंस्कारी योजक, आवसथ्य लणजे गृह्याग्निसंबंधी कर्म त्याचे ठायीं द्विजसंज्ञक होय. प्रायश्चित्ताचा पिट, पाकयज्ञांचे ठायीं पावकनामा, पित्र्यकर्मांचे ठायीं कव्यवाहन, दैवकर्मांचे ठायीं हव्यवाहन, शांतिकर्मांमध्ये वरदनामा, पौष्टिक कर्मांमध्ये बलवर्धननामक, मृताच्या दहनाविषयीं जो अग्नि तो ऋष्याद, याप्रमाणें अग्नीचीं नामें जाणून गृह्याग्निसंबंधी कर्मांला आरंभ करावा.” “पळसाच्या काठाची जुहू करावी. खदिराच्या काठाची श्रुवा व श्रुचि हीं पात्रें करावीं.” ते वृक्ष न मिळतील तर संभ्रव, असल्यास यज्ञास योग्य अशा वृक्षांचीं करावीं. यज्ञियवृक्षांचा अभाव असतां पळसाच्या मध्यम पर्णानीं अथवा पिंपळाच्या पर्णानीं होम करावा. याप्रमाणें चमस इत्यादिक पात्रांहि खदिर इत्यादि यज्ञियवृक्षांचीं करावीं. “काम्य कर्मांत प्रतिनिधि करूं नये. निसकर्म नैमित्तिक कर्म यांमध्ये प्रतिनिधि होतो. काम्य कर्मांमध्ये हो आरंभानंतर प्रतिनिधि करावा असें दुसरे ग्रंथकार सांगतात. मंत्र, कर्म, देवता, अग्नि आणि कर्ता यांचे ठायीं

प्रतिनिधि करू नये. देश, भरणी आणि काल यांचे ठायीं प्रतिनिधि करू नये. कोणत्याही कर्मांमध्ये निषिद्ध पदार्थ प्रतिनिधिस्थानीं योजू नये. सर्व कर्मांचा जो स्वकाल स्थाहून जो पुढचा काल तो गौण होय. तर्पण, श्राद्ध, आसन, भोजन, मूत्र, पुरीष या सहांचे ठायीं दर्भ निर्माल्य होतात, अभिचार कर्मांचे ठायीं दर्वीं आदिकरून जीं पात्रे तीं निर्माल्य होतात ह्यणजे त्या त्या कर्मानंतर ते दर्भ, व पात्रें अन्य कर्मांस योग्य नाहींत. शूद्राच्या कार्याविषयीं योजलेला मंत्र, व प्रेतश्राद्धीं भोजन केलेला ब्राह्मण हे निर्माल्य होत.”

आतां कर्मांच्या अंगदेवता—विवाहाची देवता अग्नि आहे याकरितां विवाहाचीं अंग-भूत जीं पुण्याहवाचन इत्यादि कर्म त्यांच्या अंतीं “कर्मांगदेवता अग्निः प्रीयतां” असे ह्यणवें. औपासनाचे ठायीं अग्नि, सूर्य आणि प्रजापति ह्या देवता होत. स्थालीपाकाची अग्निदेवता. गर्भाधानाची ब्रह्मा, पुंसवनसंस्काराची प्रजापति. सीमंतोन्नयनाची धाता, ज्ञातकर्माची मृत्यु, नामकर्म, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, यांची देवता सभिता. चौलसंस्काराची केशिन. उपनयनाच्या इंद्र, श्रद्धा व मेधा ह्या देवता, अंतीं सुश्रवा देवता. पुनरुपनयनाची अग्नि देवता. समार्वनाची इंद्र देवता. उपाकर्म व महानाम्यादि व्रतें यांचे सविता. वास्तुहोमाचे ठायीं वास्तोष्पति, त्याच्या अंतीं प्रजापति देवता. आग्रयणाचेठायीं आग्रयण देवता. सर्पवलीच्या सर्पदेवता. तडागादिकांची वरुण देवता. ग्रहयज्ञाच्या आदित्यादि नवग्रह देवता. कूर्मांड होम, चांद्रायण, आणि अश्यायान यांच्या अग्न्यादिदेवता. अग्निष्टोमाची अग्नि देवता. इतर जीं इष्ट कर्म त्यांच्या देवता प्रजापति.

कलियुगीं कार्याकार्य निर्णय—“गीता, गंगा, विष्णु, कापिलागाई, अश्वत्थसेवा आणि एकादशीव्रत हीं सहा सेव्य आहेत, सातवें कलियुगामध्ये नाही. विष्णु, शिव, यांचें भजन करणारे; गुरु व मातापिता यांची सेवा करणारे; गाई, वैष्णव, महाशैव, आणि तुळसी यांची सेवा करणारे; काशीसेवांत वास करणारे; या सर्वांचा कलिसंबंधी दोष प्राप्त होत नाही. कलियुगामध्ये गुरुभजन देवाच्या भक्तीहून विशेष असे सांगितलें आहे. लपादिकाविषयीं जीं संख्या सांगितली ती कलियुगीं चौपट जाणावी. शिव व विष्णु यांचे नामसंकीर्तन व दान हीं कलियुगांत महाश्रेष्ठ होत. कृतयुगीं जीं दहा वर्षांनीं सिद्धि होत ती त्रेतायुगीं एक वर्षांनीं, द्वापरयुगांत एक मासानें, आणि कलियुगांत एका अहोरात्रांनीं सिद्धि होते.” प्रथमस्कंधांत—“ज्या कलियुगाचे ठायीं कुशलें ह्यणजे पुण्यें शीघ्र फलरूप होतात, तशीं इतर ह्यणजे पापें शीघ्र सिद्ध होत नाहींत.” कारण, केलेलीं पापें तींच सिद्ध होतात, असें वचन असल्यामुळें कलियुगीं पुण्यकर्मांची संकल्पमात्रें करून दि

सिद्धि होते; पापे आचरण केलेलीं तींच सिद्ध होतात असे सांगितले आहे. “दुसऱ्या स्मृतीशीं विरोध असेल तर कलियुगीं पाराशरस्मृती ग्रहण करावी.” “कृतयुगीं ध्यान करून त्रेतायुगांत यज्ञेकरून, आणि द्वापरयुगांत पूजा करून जें प्राप्त होतें तें कलियुगांत केशवाच्या नामसंकीर्तनांनें प्राप्त होतें,” असें हेमाद्रिंत व्यासाचें वचन आहे. ह्या स्थलीं कृतयुगादिकांत जें ध्यानादिकांनें फल सांगितलें त्याच्या प्राप्त्यर्थे कलियुगांत केशवाचें कीर्तन करावें असा वाक्यार्थ कौस्तुभाचा कर्ता जो अनंतदेव त्याच्या पितामहांनीं भक्तिनिर्णय ग्रंथांत विस्तारानें निरूपण केला आहे. हेमाद्रिमध्ये, “चार युगांमध्ये कालिच श्रेष्ठ होय असें समजून कलीचा गुण जाणणारे, गुणाचा अंश ग्रहण करणारे असे आर्य ह्यणजे साधु कलीची प्रशंसा करितात. कारण, ज्या कलीमध्ये संकीर्तनें करूनच सर्व स्वार्थ प्राप्त होतो,” असें श्रीभागवतांतील वचन सांगून संकीर्तन ह्यणजे हरिकीर्तन असा अर्थ. याप्रमाणें हेमाद्रिमध्येच सांगितलें आहे. “अंगें ह्यणजे. ब्रह्मादिक, उपांगें ह्यणजे कौस्तुभादिक, अस्त्र ह्यणजे सुदर्शन, पार्षद ह्यणजे सुनंदनदादिक यांहीं युक्त, व कांतीकरून इंद्रनीलमण्यासारखा उज्ज्वल असा जो कृष्ण परमात्मा त्याची पूजा प्रायशः नामोच्चारण आहे ज्यामध्ये अशा यज्ञेकरून विवेकी करितात.” पंचमहायज्ञादिक आपापल्या आचारानें आचरण करणारे जे स्थानींही कीर्तननिष्ठ व्हावें ह्यणजे आपलें नित्य कर्म करून जो अवशिष्ट काल त्या कालीं भगवन्नामसंकीर्तन करावें असा अभिप्राय कौस्तुभांत आहे. येणेंकरून धर्म, अर्थ, काम, आणि मोक्ष ह्या चतुर्विध पुरुषार्थाचें फल प्राप्त होणें तें नारायणाच्या आश्रयमात्रानें होतें असें सिद्ध झालें; कारण, धर्म, अर्थ, काम, आणि मोक्ष या चतुर्विध पुरुषार्थांचे प्राप्तिविषयीं जीं साधनसंपत्ति तीवांचून नारायणाश्रय मनुष्यास ते प्राप्त होतात, असें भारतांतील वचन आहे.

श्रीभागवतांतहि सांगतो—“जो मनुष्य धर्म, अर्थ, काम आणि मोक्ष एतन्नामक कल्याणाची इच्छा करील त्यास त्याच्या प्राप्तिविषयीं एकच हरीचें पादसेवन कारण होय.” ह्या वाक्यांत एकपद, अवधारणादि पदे आहेत यांहींकरून भक्तियोगास इतर साधनांनीं गरज नाही असें सूचित होतें, व ज्ञानयोगादिकांस हरीपादसेवेची अपेक्षा आहे असा ध्वनितार्थ निघतो. तसेंच अकरावा इत्यादिक स्कंधांत स्पष्ट सांगितलें आहे तें असें—“माझ्या भक्तीनें युक्त अतएव माझे ठायीं आहे आत्मा ह्यणजे चित्त जणू असा जो योगी त्याचें श्रेयःसाधन बहुधा ज्ञान व वैराग्य हीं होणार नाहीत, जें कर्मांनीं प्राप्त होणारें; जें तपश्चर्येनें प्राप्त; ज्ञान, वैराग्य यांहींकरून जें प्राप्त; योग, दाने, धर्म व इतर श्रेयःसाधनें जीं तीर्थत्रतादिक यांहींकरून जें प्राप्त; तें सर्व माझ्या भक्तियोगानें माझ्या भक्ताला अनायासेंकरून प्राप्त होतें. स्वर्ग, मोक्ष व वैकुण्ठ यांची जरा कदा-

चित् इच्छा करील तरी तींही प्राप्त होतात.” “भक्तिवांचून ज्ञानाची प्राप्ति नाही असे प्रतिपादन करितात. हे विभो, अभ्युदय मोक्ष यांत देणारी अशी तुझी भक्ति सोडून जे पुरुष ज्ञानप्राप्तीविषयी यत्न करितात त्यांला केवळ क्लेश मात्र होतात; दुसरे कांहीं प्राप्त नाही; याविषयी दृष्टांत—जाडा कोडा घेऊन त्याचे कंडण करणारे जसे क्लेश पावतात, तद्वत् तुझी भक्ति तुल्य मानून ज्ञानाविषयी विचार करणारे होत,” इत्यादि आणखी हजारों नचने आहेत. भगवदाराधन व भगवत्प्रसाद यांवांचून ज्ञानयोगाची सिद्धि होते असे कोणीही कोणत्याही ठिकाणी सांगितलेले नाही. “सर्वापेक्षाच्यज्ञादिश्रुतेःअश्वत्” ह्या अधिकरणांत ‘अश्व जसा रथवहनाला साधन आहे’ ह्या दृष्टांताने “विविदिषंतियज्ञेन” या श्रुत्यनुरोधाने ज्ञानोत्पत्तिविषयी यज्ञादि सर्व साधनांची आवश्यकता आहे असे सांगितले आहे. आणखी दृढवैराग्यरहित, दुराचारी असा जरी असेल तथापि त्यालाही भक्तियोगाविषयी अधिकार आहे. “अत्यंत दुराचारी असा जरी असेल आणि दुसऱ्या देवतेची भक्ति न करितां माझेच भजन पूजन इत्यादिक करील तर तो साधुच आहे असा मानावा. कारण, “मी परमेश्वराच्या भजनानेच कृतार्थ होईन, असा त्याने सत्व्यवसाय केला आहे.” “तो दुराचारी असेल तथापि मते भजणारा धर्मात्मा होऊन परमेश्वरनिष्ठा-रूप शांतीत पावतो. हे कौंतेय अर्जुना, अशी प्रतिज्ञा जाण की, माझा भक्त कधीही नाश पावत नाही. निर्विण्ण नसला आणि अति आसक्त नसला तरी त्यास भक्तियोग सिद्धि देणारा होतो” इत्यादि वचने आहेत. दुराचारी असेल तथापि त्यानेही दृढवैराग्यादिक जी चार साधनें तद्रूप संपत्ति त्याच्या अंगां नसेल तथापि वेदांताचे श्रवणादिक केले असतां ज्ञानोत्पत्ति होते असे कोठेही प्रमाण मिळत नाही. यथेकाधिकारसंपत्तीवांचून काहीएक साधन आचरण केले असतां त्यापासून फलप्राप्ति होत नाही. तस्मात् सर्वसिद्धिभावेंकरून सर्वांनी कलियुगामध्ये श्रीहरिचरणाची सेवा करणे इत्यादिक जो भक्तियोग त्याचाच आश्रय करावा हे सिद्ध होतें.

कलियुगांत निषिद्ध—द्विज्यांनी नौकेत बसून समुद्रपर्यटनकरणाराचा स्वीकार करणे, उदकयुक्त कमंडलूचे धारण करणे, असवर्णकन्यांशी द्विज्यांनी विवाह करणे, दीर इत्यादि-दांतांपासून पुत्र उत्पन्न करणे, मधुपर्कामध्ये पशुचावध, श्राद्धांत मांस देणे, वानप्रस्थाश्रम-स्वीकारणे, उदकपूर्वक दान केलेली जी अक्षता कन्या तिचे दान पुनः दसऱ्यास करणे, दीर्घकाल ब्रह्मचर्य, नरमेघ, अश्वमेघ, महाप्रस्थानगमन लक्षणजे उत्तर दिशेची यात्रा करणे, गोनिधयज्ञ हे धर्म कल्युगामध्ये द्विज्यांनी वर्ज्य करावे असे विद्वान् लक्षणतात. मद्यपान वर्ज्य करावे. महापापाविषयी मरणांत प्रायश्चित्त, सौत्रामण्यादिक यज्ञांताहि सुगपात्ताचे ग्रहण वर्ज्य करावे. मद्यभक्षणादिक जीं वाममार्गादिकांचीं शास्त्रें तीं मानूं नयेत; कारण, पू-

वर्षीमांसा व उत्तरमांसा या दोनही शाखांत शिष्टांनीं मद्याचा निषेध केला आहे. औरस व दत्तक हे कलीमध्ये उक्त आहेत. इतर जे क्रीत इत्यादिक दहा प्रकारचे पुत्र कलीमध्ये वर्ज्य होते; कौस्तुभग्रंथांत स्वयंदत्त असा तिसराही पुत्र कलीमध्ये विहित होय असे सांगून नैजुच पुत्र कलीमध्ये निषिद्ध असे सांगितले आहे. कलियुगांत ब्रह्महत्या करणारासच अव्यवहार्यत्वादिरूप पातित्य आहे, ब्रह्महत्या करणाराचा संसर्ग जो त्याला तर, नरकास कारण असा दोष आहे परंतु पातित्य नाही; कारण, पापामध्ये संसर्गदोष नाही असे कलिवर्ज्यांत वचन आहे. “कृतयुगांत पाप्याशीं संभाषणादिकानें पातित्य होतें; त्रेतायुगांत पाप्याला स्पर्श केल्यानें पातित्य, द्वापरयुगांत पाप्यापासून अन्नस्वीकार केला असतां पातित्य आणि कर्त्त साक्षात् पापकर्म करावें तेव्हां पातित्य होतें, असेंहि वचन आहे.” ब्रह्महत्या इत्यादि कर्मानेंच पातित्य प्राप्त होते, संसर्गमात्रानें पातित्य नाही असा त्या वचनाचा अर्थ आहे याकरितां हें वचन लोकांमध्ये बहिष्कृत नसून जे पातकी त्याविषयी लोकविद्विष्टकरून परिहार करण्यास अशक्य असा जो संसर्ग त्याविषयी पातित्य नाही एकत्पर जाणवें. लोकांत बहिष्कृत नाहीं परंतु गुप्तपणानें अभक्ष्यभक्षण, अपेयपान, अगम्यागमन, इत्यादि पातकें करणारे जे त्यांना जाणणाऱ्या महाशिष्टानोहे, त्यांच्याशीं संभाषणादिक संसर्ग करणें ही जरी नरकास कारण आहे तथापि त्याचा परिहार करणें अशक्य आहे; कारण, तसें केल्यानें लोकांत द्वेष उत्पन्न होतो. लोकांतून बहिष्कृत झालेल्या पाप्यांचा संसर्ग तर, पातित्याला कारण आहेच आणि शिष्टाचाराहे तसाच आहे असें मला वाटतें. याकरितां “कृतयुगांत देशाचा त्याग करावा, त्रेतायुगांत ग्रामाचा त्याग करावा, द्वापरयुगांत एक कुलाचा त्याग करावा, आणि कलियुगांत तर, पातककर्त्याचा त्याग करावा” असें जें वाक्य त्यामध्ये कर्त्याचा त्याग करावा असा विधि प्राप्त होतो; त्याग क्षणजे संसर्गाचा परिहारच जाणवा. आणखी या वाक्येंकरून ज्या कुलादिकांमध्ये ब्रह्महत्यादि पातकें करणारा उत्पन्न होतो तें कुलादिक द्वापरादिक युगांमध्येच बहिष्कृत करावें; कलीमध्ये कुलादिकांस बहिष्कार नाही; तर प्रत्यक्ष कर्त्यासच बहिष्कार असें प्रतिपादन होतें. ह्या वाक्याला विरुद्ध असें दुसरे वचन पातित्याचे सगोत्र सपिंडांनीं कोणतेंहि कर्म करूं नये, व लोकांशीं कोणताही व्यवहार करूं नये असें सांगितले आहे कोणत्याही ग्रंथांत मिळत नाही. जें निर्णयसिद्धंत घटस्फोटप्रकरणीं “ग्रहामध्ये स्वैच्छयावें,” असें वसिष्ठवचन प्रबल मानून पात्रनिनयनाच्यापूर्वी पातित्याचे ज्ञातवा धर्मकार्याविषयी अधिकार नाही असें अपराकर्मग्रंथाचे व्याख्यानाचा उपन्यास केला तें सर्व पातित्यविषयक नाही, तर घटस्फोटाविषयी योग्य असून प्रयत्नितार्था इच्छा न करणारा जो

पतित तद्विषयक आहे. तसें नसतें तर 'पात्रनिनयनाच्यापूर्वी' असें न सांगता 'प्रायश्चित्ताच्या पूर्वी' इतकेंच सांगितलें असतें. 'कलियुगांत कर्त्याचा त्याग करावा' इत्यादिक जे-प्रत्यक्ष बचन त्याच्याशीं विरोध असतां अर्थापत्तिमूलक, सर्व पतितविषयक, कुलवाहिष्कारवर्णन, पुरुषव्याख्यानरूप जें तें अप्रमाण होईल असें वाटतें. याप्रमाणे संक्षेप सांगितला.

एतावता घटस्फोटाचा जो विधि सांगितला तो व्यर्थ असें ह्मणूं नये; कारण, तो घटस्फोटाविधि केल्यानं, परलोकसंबंधी दोषाचा पारिहार होतो. लोकांतून बहिष्कृत केलेले जे पातकी त्यांच्याशीं संभाषण इत्यादि संसर्ग केला असतां तो संसर्ग जरी पाते त्यास कारण नाही तथापि परलोकीं नरक उत्पन्न करणाऱ्या दोषास जसा कारण आहे तसा पतितासहवर्तमान एककुलरूप संसर्ग या लोकीं पातित्यादि दोषाला कारण जरी नाही, तथापि तो परलोकसंबंधी दोषास कारण आहे. ह्या स्थळीं घटस्फोटाविधि 'अर्थापत्ति' अशा प्रकारानें प्रमाणभूत आहे, व तसेच परलोकसंबंधी दोषाचा पारिहार होण्याकरितां घटस्फोटाविधि आहे तेव्हां घटस्फोटाविधीच्या सामर्थ्यानें पतितमात्राच्या कुलाचेठायीं बहिष्कार घडत नाही. सत्रनामक यज्ञ केलीत वर्ज्य करावा. कलियुगांत ब्रह्महत्या इत्यादि महापातके शालीं असतां प्रायश्चित्तेकरून नरकनिवृत्ति होत नाही तर, या लोकीं व्यवहाराची मात्र योग्यता केलीत प्राप्त होते. सुवर्णाची चोरी इत्यादिक पातकांचेठायीं तर, प्रायश्चित्त केल्यानं नरकनिवृत्ति व व्यवहाराची योग्यता हीं प्राप्त होतात. कोणी ग्रंथकार, एकांतांत शालेल्या अशा महापातकांविषयीं रहस्यप्रायश्चित्त कलियुगांत सांगूं नये असें ह्मणतात. ब्राह्मण इत्यादिकांच्या स्त्रियांच्या संभोगानें भ्रष्ट शालेल्या शूद्रादिकांनीं प्रायश्चित्त केले तथापि त्यांचा संसर्ग निषिद्ध आहे. यज्ञांत पशुचा वध व सोमपिकय हीं कलियुगांत ब्राह्मणांनीं करूं नयेत. "कलियुगांत ज्येष्ठ इत्यादिक सर्व भ्रात्यांस समान भाग उरू आहे. अततायीं द्विजांची धर्मयुद्धांताहि हिंसा करूं नये. नौकेत बसून समुद्रांत जाणाऱ्या द्विजानें प्रायश्चित्त केले तथापि त्याचा संसर्ग करूं नये. कलीमध्ये गाईकरितां व ब्राह्मणांकरितां प्राणत्याग करूं नये. कलीमध्ये शूद्रांनीं गवळी, शूद्र इत्यादिकांचे अन्नभक्षण करूं नये. शिष्यानें गुरूच्या स्त्रियांजवळ पिरकीळ वास करूं नये. आपत्तिकालांत ब्राह्मणानें क्षत्रिय, वैश्य इत्यादिकांचे वृत्तीचा त्याग करावा. कलियुगांत द्विजानें अश्वस्तनिकजीविक ह्मणजे दोन तीन दिवस पुरेले इतक्या धान्यसंचय करून उपजीविका करणारा असें राहूं नये. गुरूजवळ बारा वर्षे वास, मुखेकरून आग्ने प्रदीप्त करणें, संन्यासी यानें सर्व वर्णांकडे भिक्षा करणें, हीं तीन कलियुगांत

आरोहण केलें असें पाहिलें असता प्रवास होईल. आरक्त वस्त्र व आरक्त पुष्पे धारण करणाऱ्या स्त्रियांने आलिंगन केलें असता मृत्यु प्राप्त होतो. घृत, व तैलादिक यांचा वापर आरोग्य केला असें पाहिलें असता व्याधि प्राप्त होईल. के. गजाले व दंत डळे असें पाहिलें असता धननाश किंवा पुत्रशोक होईल. गर्दभ, उंट, टोणगा पक्षि-
 ॥ यज्ञी, अथा ते रयास जुपून यात आरोहण हें पाहिल्यानें मृत्यु. नाक, कान, इत्यादीं अक्षयवांचा छेद; चिखलात नुडणें; तैलाभ्यंग; विषमक्षण; प्रेतांचें आलिंगन; ज्योति-
 र्दीच्या पुण्यांची माळा धारण केल्या असून नम्र अशा कणवर्ण पुरुषाचें दर्शन हीं सर्व मृत्युकारक आहेत.

जागृतावस्थेतील अरुचे — अग्निपती, ध्रुव, आकाशगंगा स्वकाय नासिकाग्र, चत्रातील काळा दगड हीं यांना रतुर्पूर्व हीं शाला खाल दिसत नाहींत, ह्यणजे तो फार दिवस वाचणार नाहीं. ज्याची पाउले मूळ, शिराल दगादिकांत नुडकीं दिसतील; अथवा ह्यानें असां सभे अवयव आल असून ज्याचे सुख मात्र शीत शुष्क ह्यांत; सूर्य इत्यादीक दोन दोन दिवसांत; सर्व वृक्ष सुवर्णासारखे विचले दिसणें; चिखलांत आपली पाउले न दिसणें, दोनही कानांत वातें घातलीं असता आल होणारा अथवा ऐकून येणे नश्यादिकांत प्रतिविवाच्या ठायीं आपले शिर न दिसणें; आपल्या छायेत छिद्रे दिसणें, इत्यादीक लक्षण ह्याचीं असता तो फार दिवस वाचणार नाहीं.

आज्ञा विशेषेकरून शुभफलप्रद — जो पुरुष स्वप्नां ये राजा, हर्ना, अर्ध सुवर्ण, बेल-
 आणि गाय घट अथ शोकन करितो त्यानें कुटुंब वृद्धिगत होईल. बेल अथवा वृक्ष यांवर आरोहण केलीं असे पाहून तसाच आरोहण केलें असता जागा होईल तर रज्य प्राप्ति होईल. अतसपाने दक्षिण भुजास दक्ष केला असे अवलोकन करील तर दहा दिवसांनीं सहस्र धन मिळेल. उदकांत स्थित असता विंचू, सपें, याणां प्रस्त केलें असे पाहिले तर जव, पुत्र आणि धन प्राप्त होईल. देवालय, राजगृह व पवताचें शिखर यांवर चढलों. समुद्रांत पोहलों असे पाहिले तर राज्यप्राप्ति. तलावाच्या मध्यभागीं कमळाच्या पत्रांत घन, शिर यांचे भोजन केलें असें पाहिले तर राज्यप्राप्ति. बाळटोक, शिबडी, आणि गोपक्षिणी यांस अवलोकन केल्यानें स्त्रियांची प्राप्ति होते. आपणास शास्त्रदंडानें अथवा दोन्यांनीं बांधिले असें ज्ञा पहातो त्याला पुत्र, धन इत्यादि प्राप्त होतात. अतस किनासा, पालखी व गाडी इत्यादि वाहन, शरीर, गृह, इत्यादीकाना आर्गाळागळी असें ज्ञान तो जागा होईल यास लक्ष्मी सार्वकाल समुल्ल असेल. सूर्यमंडळ व चंद्र मंडळ यांचे पाहिले तर रोगी अतसपाने त्याचा रोगपरीहार होईल; इतरांस धन प्राप्ति.

